भारतीय आर्थिक चिन्तन

(Indian Economic Thought)

(महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर के बी. ए पार्ट–प्रथम के नवीनतम पाठ्यक्रमानुसार)

U. G. C. BOOKS

लेखक

डॉ एम. एल. छीपा
प्रोफेसर एव विभागाध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग
महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय
अजमेर

शंकर लाल शर्मा
विभागाध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग
राजकीय महाविद्यालय
राजगढ़ (अलवर)

CBH

कॉलेज बुक हाउस (प्रा.) लि.

चौड़ा रास्ता, जयपुर–3

प्रकाशक
कॉलेज बुक हाउस (प्रा.) लि.
चौड़ा रास्ता, जयपुर-3
फोन ऑफिस. 568763, 561963

प्रथम संस्करण 2002
द्वितीय संस्करण - 2004

मूल्य 150-00 रुपये

लेजर टाईप सैटिंग
मेघा कम्प्यूटर, जयपुर

मुद्रक
कन्हैया ऑफसैट प्रिन्टर्स,
जयपुर

आमुख

भारत का अतीत सभी दृष्टि से वैभवशाली रहा है। आर्थिक चिन्तन की दृष्टि से वेदों से लेकर ब्राह्मण ग्रन्थो उपनिषदो नीति ग्रन्थो महाकाव्यो स्मृतिग्रन्थ प्रमुख है। यहा शुक्राचार्य से लेकर मनु, बृहस्पति कामदक विदुर चाणक्य जैसे अनेक अर्थशास्त्रज्ञो ने शोषण मुक्त समाज का ढाचा तैयार किया। लोहिया के आय वितरण की असमानता का विचार नौरोजी का निकासी सिद्धात गाधी का प्रन्यासी सिद्धात विकेन्द्रीकरण खादी का अर्थशास्त्र व स्वदेशी का विचार नेहरू का तीव्र औद्योगीकरण का सिद्धान्त चरणसिह का कृषि एव ग्रामीण आर्थिक विकास तथा दीन दयाल की एकात्म अर्थनीति आदि मौलिक विचार भारतीय अर्थिक चिन्तन की प्रमुख विशेषता है परन्तु आर्थिक चिन्तन के क्षेत्र मे अब तक भारतीय योगदान की उपेक्षा की जाती रही है। भारतीय आर्थिक चिन्तन के उपेक्षित रहने के पीछे पाश्चात्य आर्थिक विचारको तथा पश्चात्य दृष्टिकोण से प्रभावित भारतीय विद्वानो के मध्य प्रचलित यह पूर्वाग्रह उत्तरदायी रहा कि भारतीय चिन्तन मूल रूप से आध्यात्मिक सामाजिक व कुछ सीमा तक राजनीतिक रहा है तथा आर्थिक पक्ष को तो इसमे कोई स्थान ही नही मिला। वास्तविकता यह है कि हमारा पुरातन साहित्य सामाजिक राजनीतिक व आर्थिक विचारो से भरा पडा है। आवश्यकता उसके एक जगह सकलन की है।

यह भी बडे आश्चर्य की बात है कि भारत के अधिकाश विश्वविद्यालयो से विद्यार्थी अर्थशास्त्र विषय लेकर स्नातक व स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त कर लेता है परन्तु उन्हे भारतीय आर्थिक विचारो या आर्थिक चिन्तन का किसी प्रकार का ज्ञान प्रदान नही किया जाता।

प्रस्तुत पुस्तक मुख्यत एम डी एस विश्वविद्यालय के प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों के पाठयक्रम को ध्यान मे रखकर लिखी गयी है परन्तु आशा है कि भारतीय आर्थिक चिन्तन मे रुचि रखने वाले अन्य छात्र शिक्षक शोधार्थी व जिज्ञासु लोग भी इस पुस्तक से लाभान्वित हो सकेगे। हमने भारतीय आर्थिक चिन्तन से सबधित सभी बिखरे हुए साहित्य को एक जगह सकलित कर सरल भाषा में प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

इस पुस्तक का लेखन विद्वान सहयोगियो, सामाजिक सेवा तथा राष्ट्रीय सास्कृतिक पुनरुत्थान मे लगे मित्रो व सस्थाओ शोध छात्रो तथा अन्य विद्यार्थियो से हमे प्राप्त प्रेरणा प्रोत्साहन व सहयोग का ही परिणाम है। हम उन सभी के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

हम महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डा पी एल चतुर्वेदी पूर्व कुलपति प्रो काता आहूजा व राजस्थान विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो एम सी वैश्य के विशेषत कृतज्ञ हैं जिन्होने भारतीय आर्थिक चिन्तन पर लेखन के लिए प्रेरित किया तथा बहुमूल्य सुझाव देकर सहयोग दिया।

हम दीन दयाल शाध सस्थान क डॉ महेश शर्मा के प्रति विशेष रूप से आभार व्यक्त करते हैं कि जिन्हाने इस पुस्तक मे प दीन दयाल उपाध्याय के आर्थिक विचारो पर विशेष लेखन व मौलिक साहित्य प्रदान कर हमे सहयोग किया।

कॉलेज बुक हाउस (प्रा) लि के श्री हर्षवर्धन जैन व मनीष जैन विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं जिन्हाने पुस्तक के प्रकाशन को अल्प समय म ही सभव बनाया है।

पाठय पुस्तक लखन के प्रयास मे काफी प्रयत्ना के बावजूद कई अशुद्धिया रही होंगी उनक सुधार सशोधन हेतु विद्वान शिक्षका व छात्रो के सुझावा का सदैव स्वागत व अपेक्षा रहेगी।

लेखकगण

SYLLABUS-ECONOMICS
M.D S. UNIVERSITY, AJMER
B A Part-I
Indian Economic Thought

Max Marks 100

Paper-II

3 hrs duration

Note

Unit I

Prominent ancient Indian economic thinkers and major source books (Only names and brief knowledge) Definition & scope of economics accordingly to Kautilya and Shukra Basic assumptions integral man, integrated rationality Dharma based economic structure Four purusarthas Human wants – nature origin and kinds The concept of restrained consumption & co-consumption Meaning and importance of wealth & code of conduct for earning and spending

Unit II

Economic ideas of Manu Shukra and Kautilya in the field of consumption, production, Exchange distribution and public finance

Unit III

Economic thoughts of Swami Dayanand Saraswati Dada Bhai Naraoji Mahadev Govind Ranade Gopal Krishna Gokhle

Unit IV

Economic ideas of R C Dutta M N Roy, M K Gandhi and Vinoba Bhave

Unit V

Major Economic ideas of B R Ambedkar J L Nehru, Ram Manohar Lohiya, Deen Dayal Upadhyaya, Charansingh , J K Mehta and Amratya Sen

Book Recommended

1 Gupta, B L (1992) Value and Distribution System in Ancient India Gian Publishing House, New Delhi

2 Ganguli, B N (1977) Indian Economic Thought a 19th Century Perspective Tata McGraw hill New Delhi

3 Kautilya (1951) Arthshastra Translated by R Sharma Shastry

4 Kulkarni, S A (1987) Ekatma Arthniti, Suruchi Prakashan, New Delhi
5 M G Bokare Hindu Economics, Janki Prakashan, New Delhi
6 Romesh Dutt Economic History of India Vol I & II
7 D R Gadgil The Industrial Evolution of India in Recent Times 1860-1930 (1971)
8 M C Vaish *Aarthik Vicharo Ka itihas*
9 Gandhi M K (1974), India of my dreams, Navjivan Publishing House, Ahmedabad
10 Sen, A K (1987), On Epics and Economics, oxford, New York
11 Sen, A K (1981)] Poverty and Famines An Essay on Enticement and Deprivation, oxford, University Press, Oxford
12 Sen A K (1971), Callective Choice and social welfare, New Halland, Adxterdarm

U. G. C. BOOKS

विषयानुक्रमाणिका

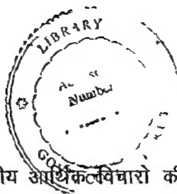
इकाई– I

इकाई–II

इकाई- III

इकाई–IV

इकाई–V



1

भारतीय आर्थिक विचारो की रूपरेखा

मानव मस्तिष्क विचारो का केन्द्र है। मानव के विचारो मे काल व परिस्थितियो के सापेक्ष परिमार्जन व रुपान्तरण होते हैं, तथा ये वैचारिक परिवर्तन ही वस्तुत मानव–चेतना के विकास के सवाहक होते हैं, मानव चेतना ही आर्थिक सामाजिक तथा धार्मिक भावनाओं को साकार तथा क्रियाशील बनाती है तथा सिद्धातो का निरुपण सभव बनाती है। मनुष्य की विचारशक्ति के साथ ही आर्थिक विचारो का भी विकास हुआ है। प्रो अलेक्जेण्डर ग्रे के अनुसार मानव विचार के इतिहास मे अर्थशास्त्र के सिद्धात के विधिवत नियमो का विकास भले ही हाल मे हुआ हो परन्तु अर्थशास्त्र सबधी बातों के बारे मे मनन और विचार–विमर्श तभी से चला आ रहा है जब से मनुष्य ने विचारना शुरु किया। अपनी आवश्यकताओ के लिये मनुष्य सदा से ही आर्थिक प्रयत्न करता रहा हैं। जैसे आर्थिक प्रगति हुई आवश्यकताओं का विस्तार हुआ और मनुष्य के आर्थिक प्रयत्नों का स्वरुप भी बदलते हुए परिवेश मे आगे बढने लगा। उदाहरण के लिए प्रारभिक युग मे मनुष्य पत्थरो से जगली जानवरो का शिकार करता था क्योकि उस समय उसकी आवश्यकताए सीमित थी। लकिन आज के औद्योगिक युग मे मशीनो एव वैज्ञानिक प्रयोगों तथा आविष्कारो ने मानव प्रयत्नों की दिशा ही बदल दी है। जहाँ पहले का जीवन स्थिर था आज का जीवन बहुत ही गतिशील हो गया है। आर्थिक उन्नति के क्रम मे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव ने विभिन्न माध्यमो एव समस्याओं जैस मुद्रा बैंक वाणिज्य उद्योग एव यातायात इत्यादि का सगठन किया जिससे भौतिक सभ्यता का निर्माण हुआ। इस प्रकार आर्थिक विचारो का इतिहास बहुत प्राचीन है जो मानव के प्रारभिक प्रयत्नो से जुडा हुआ है।

अत स्पष्ट है कि आर्थिक चितन और इतिहास के बीच सदैव ही पारस्परिक और प्रभावपूर्ण सबध पाया गया है। जहाँ एक और कालविशेष की स्थितिया एव समस्याएँ तत्कालीन आर्थिक चितन के स्वरुप एव दिशा को प्रभावित करती है वहीं दूसरी ओर आर्थिक विचार भी इतिहास की दिशा को निर्धारित करने मे योगदान देते हैं।

आर्थिक विचार समय एव परिस्थितियो के अनुरुप हमेशा बदलते रहे हैं और इनके स्वरुप मे निरतर विकास तथा परिवर्तन होता रहा। यह स्वीकार किया जाना चाहिये कि प्राचीन आर्थिक विचारों को वर्तमान की भाति वैज्ञानिक रुप भले ही न मिल पाया हा किन्तु

उनकी उपयोगिता व महत्त्व इस दृष्टि से असदिग्ध हैं कि वे तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियो की वास्तविकता से अवगत कराते है। नि सकोच इन्हे वैज्ञानिक विचारो की आधारशिला के रुप म स्वीकार किया जा सकता है क्योकि अतीत ही वर्तमान को जन्म देता है।

अनेक अर्थशास्त्री इन विचारो का मान्यता देने से कतराते है। उनके अनुसार केवल आधुनिक वैज्ञानिक आर्थिक विचार ही वास्तविक विचार हैं। यह दृष्टिकोण उचित नही कहा जा सकता क्योकि प्राचीन आर्थिक विचारा की यदि अवहेलना कर दी जाए तो निश्चय ही आर्थिक विचारो का इतिहास अधूरा रह जायेगा। इस पुस्तक मे भारत मे आर्थिक चिन्तन के क्रम विकास तथा भारतीय आर्थिक विचारो की एक झलक प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

पाश्चात्य एव भारतीय चितन का आधार

बीसवी सदी का अन्तिम दशक परिवर्तन का दशक था। इस समय विश्व मे परिवर्तन इतने तीव्र गति से हा रहे हे कि यह अवश्यभावी लगता है कि जो विचारधाराऐ आज प्रचलित है इक्कीसवी सदी मे उनका स्थान नयी विचारधाराए उभर कर ले लेगी। हम जानत हे कि 20 वी सदी म पूजीवाद ओर साम्यवाद सारे विश्व मे छाये रहे तथा विश्व इन दानो की सघर्ष स्थली बना रहा। साम्यवादी विचारधारा तो आज विश्व के अधिकाश देशो से समाप्त हा गयी हे तथा पूजीवाद के कारण जिस गति से सामाजिक सस्थाओ मानवीय मूल्या व नैतिकता का ह्रास हुआ है एव अमर्यादित उपभोग व अति ऊर्जा केद्रित औद्योगीकरण से जो पर्यावरण के समक्ष सकट खडा हो गया हे उससे अब विश्व ने विकास के 'तीसरे वेकल्पिक प्रतिमान' को खोजना प्रारम्भ कर दिया है। भारतीय आर्थिक चिन्तन परपरा का अध्ययन आर्थिक प्रणाली का वैकल्पिक प्रतिमान प्रस्तुत करने का आशाजनक सकेत देता हे। वैदिक युग स लेकर वर्तमान काल तक भारतीय चिन्तन मे व्याप्त मानववादी आग्रह आर्थिक प्रणाली मे 'मानव' की उस सर्वोपरिता को रेखाकित करते है जिसकी साम्यवादी व पूजीवादी आर्थिक प्रणालियो मे उपेक्षा हुई हैं।

पूजीवाद का जन्म तो अठारहवी शताब्दी मे ही हो गया था। उसने विश्व के अधिकाश देशो म साम्राज्य विस्तार कर अपनी जडे जमा ली थी। प्राय यह माना जाता है कि पूजीवादी देशो का विकास औद्योगिक क्राति के कारण हुआ। परन्तु यदि सूक्ष्मता से विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट होगा कि ओद्योगिक क्राति साम्राज्यवादियो द्वारा औपनिवेशिक राष्ट्रो की लूट से एकत्र धन के कारण सभव हो सकी। इगलैंड में औद्योगिक क्राति 1760 मे शुरु हुई हो पायी। उसका कारण था सन 1757 मे भारत मे प्लासी की लडाई हुई जिससे भारी धन लूट कर वहा ले जाया गया। इस कारण अनेक आविष्कार जो उप समय रुके पड थे लूट के धन से सभव हो सके। 1757 की प्लासी तथा 1815 में वाटर लू की लडाई के बीच प्रतिवर्ष 25 करोड रुपया (आज की कीमत पर 5000 करोड

रु प्रतिवर्ष से भी अधिक) लूट के रुप मे हिन्दुस्तान से जाता रहा तथा इसी धन ने इग्लैण्ड मे औद्योगीकरण की नीव रखी। इस तरह सम्पूर्ण यूरोप का औद्योगीकरण उपनिवेशा के दारिद्रीकरण से सीधा जुडा हुआ है।

अमेरिका की समृद्धि का मूल कारण है कि अमेरिका मे विश्व की 4 प्रतिशत जनसख्या रहती है जबकि वह दुनिया के 40 प्रतिशत से अधिक प्राकृतिक साधनो का उपयोग कर रहा है। मैसाच्युसेटस इस्टीटयूट ऑफ टेक्नालोजी जैसे अग्रणी सस्था के अध्ययन से स्पष्ट हैं कि अमेरिका अकेला अपने आर्थिक विकास के लिए विश्व के 42 प्रतिशत अल्यूमिनियम 44 प्रतिशत कोयला 33 प्रतिशत ताबा 28 प्रतिशत लोहा 38 प्रतिशत निकिल 63 प्रतिशत प्राकृतिक गैस 33 प्रतिशत पैट्रोल जन्य पदार्थ आदि पुनर्निर्मित न किये जा सकने वाले खनिजो का उपभोग कर रहा है। अमेरिका के आम नागरिक के पास इतनी समृद्धि है कि दुनिया के विकासशील राष्ट्र अमेरिका के विकास को आदर्श मानकर चल रहे हैं। आज आम अमेरिकी नागरिक के पास कार, टेलीफोन टेलीविजन फ्रिज वातानुकुलित मकान गैस तथा एशोआराम की सभी वस्तुएँ मौजूद हैं।

आज भी अधिकाश विकासशील देश विकसित राष्ट्रों को कच्चे माल की पूर्ति कर रहे है और यदि इन राष्ट्रो को कच्चे माल की पूर्ति वद हो जाये तो इनकी हालत खराब हो सकती है। ये राष्ट्र पहले तो अपनी साम्राजयवादी नीति के अन्तर्गत उनसे कच्चा माल प्राप्त कर लेते थे परन्तु आज वे इनको कर्जदार बनाकर आर्थिक साम्राज्यवाद फैला रहे हैं तथा अपनी शर्तों के अनुसार कच्चा माल प्राप्त कर रहे है। दक्षिण अमेरिका अफ्रीका दक्षिणी पूर्वी एशिया तथा भारत जेसे देश इन देशो तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय सस्थाओ के कर्जदार बने हुए हैं। सूडान कृषि के लिए बडा प्रगतिशील है परन्तु उसे कर्ज देकर कपास उत्पा न के लिए दबाव डाला जा रहा है तथा वहा के लोग भूखो मर रहे हैं। जापान की ‹ कडी की आवश्यकताऐं मलेशिया के जगल साफ करके पूरी की जा रही है। अफ्रीका के जगल अमेरिका व यूरोप की आवश्यकताए पूरी करने के लिए नष्ट हो रहे है तथा प र्यावरण का सकट खडा कर रहे हैं। इसलिए अब प्रश्न उठ रहा है कि सीमित साधनो का अमर्यादित उपभाग कैसे हो सकता है। इन पूजीवादी देशो में आज जिस गति से पारिवारिक जीवन टूट रहा है मानवीय मूल्यो का ह्रास हो रहा है तथा अनेक सामाजिक बुराईया पनप रही हे उनस नागरिक त्रस्त है।

यदि हम चाहे कि हिन्दुस्तान के लोगो को अमेरिका के लोगो जितनी समृद्धि मिले तो यह तभी समव होगा जब दुनिया भर के प्राकृतिक साधन केवल हिन्दुस्तान मे प्रयुक्त हो तथा अन्य किसी देश को कुछ भी नही मिले। क्या यह सभव है ? इसलिए आज अमेरिका मे तथा अन्य विकासशील देशो मे विचार प्रारम्भ हो गया हैं कि क्या विकास का यह पथ दुनिया के अन्य देशो मे चल सकता है ?

दूसरी तरफ 1917 मे पूजीवाद की प्रतिक्रिया स्वरुप सोवियत सघ ने साम्यवाद

का जन्म हुआ। 1961 मे साम्यवादी सोवियत सघ द्वारा इस प्रकार का दावा किया गया कि हम इतनी तीव्र गति से बढ रहे है कि अगले 20 वर्षो मे पूजीवाद पूरी तरह समाप्त हो जायगा। परन्तु 20 वर्ष बाद 1981 से सोवियत सघ की स्थिति मे निरतर गिरावट की स्थिति चालू हो गयी। उनका मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओ को पूरा करने का वायदा भी पूरा नही हो पाया तथा यह विचार प्रारम्भ हो गया कि इस व्यवस्था को अधिक दिन तक नही चलाया जा सकता है। यह सोचकर गोर्बाच्याव ने 'ग्लासनास्त' (खुलापन) तथा 'पेरस्त्रोइका' (पुर्नरचना) जैसे दो नाम लेकर परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ की। और अत मे रूस से साम्यवाद समाप्त हो गया। चीन ने भी 1978 मे देग जियाओ पिग ने ऐसे ही दो शब्दो 'गायगी व काईफाग' (विदेशो के लिए खाल देना) का प्रयोग किया।

इन दोनो देशो मे विद्यमान स्थितियो से यह स्पष्ट होता है रूस कि व चीन को अपनी मौलिक नीति मे केवल इसलिए परिवर्तन करना पडा कि वे लोगो की न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति भी नही कर पा रहे थे। इसलिए आज विश्व के अधिकाश साम्यवादी देशो ने 'साम्यवादी विचारधारा' को तिलजलि दे दी है।

रूस की यह स्थिति इसलिए हुई कि उसने अमेरिका से शस्त्रो की होड मे अपार धन खर्च किया तथा इस कारण वह नागरिको के लिए उपभोग वस्तुओ का भी उत्पादन नही कर पाया। इसलिए आज साम्यवादी देश भी पूजीवादी देशो का अनुसरण कर रहे है।

परन्तु पूजीवादी देशो मे भी जो दुर्व्यवस्था बन रही है उसके लिए पूजीवाद की चार अवधारणाऐ उत्तरदायी हैं। पूजीवाद का प्रथम सिद्धान्त है **अस्तित्व के लिए सघर्ष (Struggle for existence)**–पूजीवाद के जनक एडम स्मिथ व कीस के विचार ने पूजीवाद को पनपाने में काफी सहायता की। एडम स्मिथ ने कहा कि कभी किसी का भला मत करो यदि भला करना ही हो तो तब करो जब ऐसा करने से तुम्हारा कोई स्वार्थ सिद्ध होता हो (Do'nt try to do any good let good come out as a by product of selfishness)। कीस ने बताया कि आगे आने वाले सौ सालों के लिए के लिए हम यह मान ले तथा दूसरो स भी मनवा ले कि बुरा ही अच्छा है तथा अच्छा ही बुरा परिणाम देता है अच्छे से परिणाम नही मिलता। लोभ व लालच को हम कुछ ओर वर्षो तक अपना भगवान बनाकर रखे क्यो कि उसी के माध्यम से हम गरीबी के बोगदे (Tunnel) को पार करके प्रकाश की किरण देख सकते हैं। स्पष्ट है कि पूजीवाद का सम्पूर्ण महल स्वार्थ की मान्यता पर खडा है। इसलिए लोग अमेरिका में स्पर्द्धात्मक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हर व्यक्ति अपनी सोच रहा हे। परिवारा म भी यह बात पहुच गयी है कि दूसरा कोई मुझ से आगे नही पहुच जाये अत सभी को मशीनी जीवन व्यतीत करना पड रहा हे। इसी कारण वहा लोग कई शारीरिक व मानसिक कष्ट भोग रह है तथा सामाजिक व नेतिक बुराईयो से ग्रस्त हैं। पूजीवाद का दूसरा सिद्धान्त है 'सर्वोत्तम

का अस्तित्व' (Survival of the fittest) अर्थात जो योग्यतम होगा उसका अस्तित्व होगा बाकी नष्ट हो जायेगे, इसी कारण पाश्चात्य देशो मे अरबो रुपया रक्षा पर खर्च हो रहा है। अमेरिका व रुस ने किस प्रकार अपनी प्रधानता बनाए रखने व उत्कृटष्ता सिद्ध करने के लिए दुनिया को दो खेमो मे बाँटे रखा तथा अरबो डालर घातक हथियारो के जखीरे एकत्र करने पर व्यय किये। इन दोनो के पास आज इतने घातक हथियार हैं कि वे चाहे तो दुनिया का 14 बार विध्वस कर सकते हैं। पूजीवाद का तीसरा सिद्वात है **'प्रकृति का शोषण" (Exploitation of nature)** पाश्चात्य जीवन दृष्टि मे यह भी एक मान्यता है कि भगवान ने मनुष्य को पृथ्वी पर प्रकृति का उपभोग करने के लिए भेजा है और इसलिए मनुष्य यह समझता है कि पृथ्वी पर जो पेड–पौधे पशु–पक्षी आदि है वे मेरे उपभोग के लिए हैं तथा मैं प्रकति का मनमाना शोषण कर सकता हू। अर्नाल्ड टायन्बी ने रीडर्स डाइजेस्ट में एक लेख मे लिखा है कि आज हमारे सामने पर्यावरण की समस्याएँ जो खडी है उनका मूल कारण पाश्चात्य जीवन दृष्टि की यह मान्यता है कि भगवान ने मनुष्य को सम्पूर्ण सृष्टि मे अपने सुख के लिए उपभोग करने का अधिकार दिया है। पूजीवाद का चौथा सिद्वात है **'व्यक्तिगत अधिकार' (Individual rights)**– अर्थात हर व्यक्ति के अपने मौलिक अधिकार होते है जो उसे मिलने ही चाहिए। इसी धारणा के कारण आज दुनिया मे अधिकारो के लिए लडाइयाँ चल रही है तथा जगह–जगह आन्दोलन हो रहे है।

इन सब के विपरीत भारतीय जीवन दृष्टि मे इन चारो सिद्धातो के विपरीत आस्थाएँ हैं। ***अस्तित्व के लिए सघर्ष'*** के स्थान पर भारतीय दृष्टिकोण मे **"समन्वय एव सहयोग"** मे विश्वास व्यक्त किया गया है। भारतीय मान्यता है कि अस्तित्व के लिए कोई सघर्ष नही है विश्व मे सब जगह समन्वय व सहयोग है, सघर्ष कही नजर आता हैं तो वह केवल अज्ञान के कारण है, अज्ञान जिस दिन समाप्त हो जायेगा सघर्ष भी समाप्त हो जायेगा।

'सर्वोत्तम का अस्तित्व' के स्थान पर भारतीय जीवन दृष्टि **'सर्वे भवन्तु सुखिन'** अर्थात सभी सुखी होने चाहिए मे विश्वास करती है। हम विश्वास करते हैं कि दुनियॉ मे प्रत्येक व्यक्ति को भगवान ने किसी न किसी प्रयोजन से भेजा है इसलिए उसे कष्ट क्यो होना चाहिए। किसी भी सस्कृति की श्रेष्ठता का सहज मापदण्ड यह है कि वह प्रत्येक व्यक्ति की सुरक्षा करती हैं या नहीं। जो सबल होते हैं वे तो अपनी रक्षा कर लेते हैं परन्तु दुर्बलो की जहाँ रक्षा होती है वह समाज सुसस्कृत है। साम्यवादी विचार के अनुसार जो कमायेगा वह खायेगा परन्तु भारतीय विचार मे जो कमायेगा वह खिलायेगा रहा है। खुद कमाना व खुद खाना यह प्रकृति है (यही पशु प्रवृति होती हैं कि आप–आप चरते रहते हैं) दूसरे का छीनना और खाना विकृति है तथा खुद कमाना और दूसरे को खिलाना यह सस्कृति है। अत किसी सस्कृति की श्रेष्ठता का माप–दण्ड यही है कि उस सस्कृति मे लोग दुर्बल लोगो की कितनी चिन्ता करते हैं।

'प्रकृति के शोषण' की पाश्चात्य प्रवृत्ति की जगह भारतीय मान्यता है कि **प्रकृति का दोहन** करो। भारतीय आस्था है कि जीवन प्रकृति पर अवलंबित है प्रकृति नष्ट हो जायेगी तो हम सब नष्ट हो जायगे। इसी कारण भारतीय परम्पराओ मे प्रकृति की पूजा की जाती है। भारतीय लोगो ने प्रकृति से नाता जोडा हुआ है। हमारे यहा तुलसी वटवृक्ष पीपल आदि पेड पौधो की पूजा होती है नदियो को पवित्र माना गया है। पक्षियो को दाना डाला जाता है। पर्यावरण की रक्षा करना हमारी परम्पराओ मे विद्यमान है।

पाश्चात्य जीवन दृष्टि के अन्तिम सिद्धात **'व्यक्तिगत अधिकार'** की जगह भारतीय परम्परा **'मनुष्य के कर्त्तव्य'** को प्राथमिक मानती है। गाधीजी ने कहा कि मनुष्य के अधिकारो का निरपेक्ष अस्तित्व नही होता। गाधी के मत मे अधिकार केवल कर्त्तव्यो के प्रति समर्पण का सहज परिणाम होते है। यदि सभी व्यक्ति अपने-अपने कर्त्तव्यो का पालन करे तो दूसरे के अधिकारो की अपने आप रक्षा हो जायेगी। जैसे माता-पिता के कर्त्तव्यो मे सतानो के अधिकार निहित हैं सतान के कर्त्तव्य मे माता-पिता के अधिकार सुरक्षित है गुरु के कर्त्तव्य मे शिष्य के अधिकारो की रक्षा निहित है तथा शिष्य के कर्त्तव्य मे शासक के अधिकार सुरक्षित है। इस तरह से प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपने-अपने कर्त्तव्य के निर्वाह मे दूसरे के अधिकारो की अपने आप रक्षा हो जायेगी।

पाश्चात्य जीवन दर्शन तथा भारतीय जीवन दर्शन मे व्याप्त यह मौलिक अन्तर आर्थिक विचारो मे भी झलकता है। भारत का अतीत सभी दृष्टि से वैभवशाली रहा है। पश्चिमी देशो मे मनुष्य के आर्थिक विकास का विचार शुरु होने से बहुत पूर्व ही भारत मे उत्कृष्ट श्रेणी के वैज्ञानिक व तकनीकी विशेषज्ञ कार्यरत थे। जन सामान्य के आरोग्य का खयाल रखने वाला आयुर्वेद आज भी महत्वपूर्ण और उपयोगी साबित हुआ है। भारतीय ज्योतिर्विदो ने सब से पहले यह जान लिया था कि सूरज स्थिर है तथा पृथ्वी घूमती है। दशमान पद्धति का मूल स्थान भारतीय गणित शास्त्र माना जाता है। गुरुत्वाकर्षण की सकल्पना भारतीय पदार्थ विज्ञान शास्त्रज्ञो को न्यूटन के पहले से ही विदित थी। अजता एलोरा की गुफाओ मे अकित चित्रो का रग हमारे विकसित रसायन शास्त्र का परिचायक है। बदूक के बारुद से लेकर कई रसायन भारत से निर्यात किये जाते थे। हमारे वास्तुशास्त्र के विकास की पहचान अनेक भवनो ओर मन्दिरो के रुप मे मौजूद है। कुतुब मीनार के पास जग न लगने वाला लोह स्तम्भ हमारे विकसित धातु शास्त्र की पहचान देता है। उच्च श्रेणी के वस्त्रो से लेकर लोहे तक का निर्माण करने के लिए भारत दुनिया मे मशहूर था। शुक्राचार्य से लेकर चाणक्य तक अनेक अर्थशास्त्रज्ञो ने यहाँ शोषणमुक्त समाज का आर्थिक ढाचा बनाया। इसमें विकेद्रित कृषि व्यवस्था तथा हर घर 'उद्योग का केन्द्र' बने ऐसी रचना थी। समाज शास्त्र योग शास्त्र तथा आध्यात्मिक शास्त्रो मे तो हमारी विरासत अमूल्य है।

परन्तु भारत पर अनवरत आक्रमणो तथा गुलामी की वजह से सोच मे परिवर्तन आया। अग्रेजो के 200 वर्षो के शासन मे आर्थिक शोषण हुआ तथा हमारी विकेद्रित अर्थव्यवस्था नस्ट हो गयी तथा आत्मनिर्भर गॉव उजडने लगे। भारतीय कुशल कारीगर बेकार होने लगे। 1947 की राजनैतिक स्वतत्रता के बाद हमारे नेताओ न पश्चिमी शैली की अर्थ नीति अपना कर देश के विकास का ढॉचा ही बदल दिया। 1956 से समाजवाद से प्रेरित विकास की नीति के अर्न्तगत श्रमप्रधान देश मे भारी औद्योगीकरण पर बल दिया गया तथा इस निमित्त सार्वजनिक क्षेत्र को बढावा मिला। श्रम प्रधान तकनीक की जगह पूजी प्रधान तकनीक अपनायी गयी। भारी मात्रा मे विदेशो से पूजी व तकनीक का आयात करने से भुगतान सतुलन विपक्ष मे चला गया। हम सार्वजनिक क्षेत्र को निरतर घाटे मे चलाते रहे तथा विदेशो से भारी मात्रा मे कर्जा लेते रहे। कर्जा चुकाने के लिए अधिक कर्जा लेने के लिए बाध्य होना पडा तथा आज देश 5 लाख करोड से अधिक के ऋण के 'मकडी जाल' मे फस गया है तथा कठोर शर्तो पर ऋण मिलने लगा है। देश मे आर्थिक साम्राज्यवाद के बढने के सकेत मिलने लगे हैं। देश में आज चारो ओर 'डकैल' प्रस्तावों की चर्चा है। देश गरीबी बेरोजगारी विषमता व मुद्रास्फीति आदि की समस्याओ से ग्रस्त है। इस प्रकार उपर्युक्त परिस्थितियो मे भारतीय आर्थिक चितन पर भी विचार करना उपयोगी होगा जिससे आर्थिक विकास के सम्बन्ध में एक दिशा प्राप्त हो सके।

प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारो के स्रोत

प्राचीन सस्कृत वाडगमय अमूल्य भारतीय निधि है। आज उसके गहन अध्ययन व विश्लेषण की महती आवश्यकता है क्योकि इसके द्वारा सभ्यता एव सस्कृति के मूल प्रेरणा स्रोतों का ज्ञान प्राप्त कर उनसे लाभ उठाया जा सकता है।

प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारो के गभीर अनुशीलन की अभी तक प्राय उपेक्षा की गई है। सस्कृत वाडगमय मे बिखरे आर्थिक विचारो का सकलन कर उसका व्यवस्थित व सूत्रबद्ध प्रस्तुतीकरण श्रमसाध्य व कठिन अवश्य है परन्तु असभव नही।

आर्थिक विचारो को वस्तुत सभी प्राचीन भारतीय ग्रन्थो मे महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध समस्त स्रोतों को हम निम्नलिखित वर्गो मे विभक्त कर आर्थिक विचारो का अध्ययन कर सकते हैं –

(1) ऐतिहासिक स्रोत – इसमे शिलालेख एव ध्वसावशेषो के अतिरिक्त भारतीय इतिहास मे वर्णित प्रागैतिहासिक तथा सिधु सभ्यता का परिगणन होता है।

(2) वैदिक साहित्य– वैदिक साहित्य मे चार वेद (ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद एव अथर्ववेद) उपनिषद (मुख्यत 108) आरण्यक ब्राह्मण सूत्रग्रन्थ जातक आदि की गणना की जाती है।

(3) स्मृति साहित्य–स्मृतिया सौ से भी अधिक हैं। प्रमुख स्मृतियो मे मनु,

याज्ञवल्क्य नारद बृहस्पति गौतम पाराशर हारीत वशिष्ठ की स्मृतिया उल्लेखनीय हैं। स्मृतियो मे आर्थिक विचारो को भी काफी महत्व प्रदान किया गया है।

(4) पुराण–इतिहास – इस साहित्य मे रामायण महाभारत तथा उपपुराणो को शामिल किया जाता है। वायु अग्नि विष्णु वामन भागवत पुराण आदि ऐसे पुराण है जिनमे अर्थव्यवस्था सबधी विचार पर्याप्त मात्रा मे मिलते है।

(5) खण्ड काव्य व अन्य सस्कृत साहित्य – इस श्रेणी मे कालिदास बाणभट्ट भास शूद्रक दण्डी आदि के ग्रन्थ तथा नीति साहित्य सम्मिलित किये जा सकते हैं।

(6) ऐतिहासिक विचारक – मेगस्थनीज ह्वेनसाग फाहियान तथा इब्नबतूता आदि विदेशी इतिहासकारो के अतिरिक्त अबुलफजल फरिश्ता बदाउनी आदि के ग्रन्थो से आर्थिक विचारो का ज्ञान होता है। इसी कडी मे कौटिल्य के अर्थशास्त्र का उल्लेख जरुरी है क्योकि उसमे राजनीतिक प्रणाली के साथ–साथ आर्थिक व्यवस्था के विशिष्ट पक्षो यथा–उत्पादन वितरण मूल्य–नियत्रण सपत्ति का विनियमन कृषि वाणिज्य व व्यवसाय की उन्नति व्यापारियो व उपभोक्ताओ के हितो का सरक्षण करारोपण तथा समग्रत आर्थिक प्रणाली मे राज्य की भूमिका आदि का व्यवस्थित विवेचन किया गया है।

(7) मुद्राएँ तथा सिक्के – सिन्धु सभ्यता से ही मुद्रा विभिन्न रुपो मे प्राप्त हुई है जिनसे जीवन रहन–सहन व्यापार व्यवसाय आदि के बारे मे जानकारी मिलती रही है।

यह निर्विवाद सत्य है कि अभी तक भारतीय वाङमय मे यत्र–तत्र बिखरे हुए आर्थिक विचारो का क्रमबद्ध अध्ययन नहीं किया जा सका है। अतएव सामाजिक परिवर्तन के परिवेश में ही आर्थिक विचारो के विकास का अध्ययन समीचीन जान पडता है। आर्थिक विचार देशकाल एव परिस्थितियो के अनुकूल बदलते हैं और विकसित होते रहे हैं। यहा पर भारतीय आर्थिक विचारो का विवेचन इस तथ्य को ध्यान मे रख कर किया गया है।

ज्ञान की किसी भी शाखा को वैज्ञानिक बनाने के लिए उसका विश्लेषणात्मक अध्ययन तथा अनुशीलन कर सभी सामान्य परिस्थितियो मे खरे उतरने वाले मूलभूत शाश्वत सिद्धातो का निरुपण आवश्यक है। प्राचीन आर्थिक विचारो मे सत्य का अभाव नहीं है। अतएव तथाकथित वैज्ञानिकता का बहाना लेकर उन्हे उपेक्षित नहो किया जा सकता और न ही मानव जाति के ऐतिहासिक विकास क्रम से अलग किया जा सकता है। वैदिक ग्रन्थो से सम्बद्ध आर्थिक विचार दर्शन धर्म एव नीतिशास्त्र से समन्वय स्थापित कर आगे बढे तथा सदैव विकास की ओर उन्मुख रहे, वस्तुत सामाजिक एव आर्थिक जीवन के विकास के साथ आर्थिक विचारो का विकास क्रम भी चलता रहा है।

आर्थिक तथा सामाजिक विचारो का सबध

आधुनिक अर्थशास्त्री आज के वातावरण मे उत्पन्न समस्याओं जैसे मूल्य

अर्न्तर्राष्ट्रीय व्यापार, बड़े पैमाने पर उत्पादन सट्टा एकाधिकार आदि पर विचार करते हैं। इसी प्रकार प्राचीन विचारकों ने भी सम–सामयिक आर्थिक स्थितियो और समस्याओ पर विचार किया। उनके चिंतन की आधार शिला एक सुखी सम्पन्न क्रियाशील उत्क्रमणशील मानव समाज की परिकल्पना थी। परन्तु समाज ज्यो–ज्यो विकसित होता गया त्यो–त्यों इन विचारो में भी विकास परिवर्तन एव सशोधन होता गया।

इससे प्रकट होता है कि आर्थिक विचारों तथा सामाजिक विकास के इतिहास मे एक घनिष्ठ सबध है, और दोनो एक दूसरे के पूरक हैं।

प्राचीन भारतीय ग्रथों मे प्रतिपादित आर्थिक विचारों की निम्न विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं –

(1) प्राचीन हिन्दू दार्शनिक अर्थशास्त्र को अन्य विज्ञानो से पृथक नही मानते थे। वे जीवन को समग्रता की दृष्टि से देखते थे और उनके धार्मिक नैतिक दार्शनिक राजनैतिक और आर्थिक विचार मिले हुए थे। कौटिल्य ने चार विज्ञाना का उल्लेख किया है दर्शन नीतिशास्त्र अर्थशास्त्र और राजनीति। व्यक्ति के कल्याण के लिए चारों विज्ञान आवश्यक माने गए हैं। भारतीय ग्रथो मे आर्थिक विचारो को नैतिक उपेक्षाओ से पृथक नही किया गया।

(2) प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारो मे कल्याणकारी राज्य का विचार निहित था। प्रजा की समृद्धि और आर्थिक जीवन के नियमन का उत्तरदायित्व राज्य पर होता था। सार्वजनिक कल्याण ही राज्य का लक्ष्य होता था। वर्ग सघर्ष तथा वर्णों मे आपस में द्वेष एव घृणा को उचित नही माना गया। राज्य मे यातायात साधनों की व्यवस्था वस्तुओ मे मिलावट की मनाही नाप तौल की उचित व्यवस्था इत्यादि के सबध मे राजकीय दायित्वो का प्रतिपादन इस बात का प्रमाण है कि उस समय भी आर्थिक कल्याण राज्य का प्रमुख उद्देश्य था।

(3) भारत में प्राचीन काल मे लोगों का जीवन भौतिकवादी नहीं था उनका दैनिक जीवन धार्मिक और नैतिक वातावरण से प्रभावित था। यही कारण हैं कि उस समय आर्थिक विचारो का स्वतत्र महत्व नही था। यह विचार प्रचलित था कि धर्म का पालन करने से स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। वर्णाश्रम द्वारा सामाजिक सतुलन सुरक्षित रखा जाता था। प्राचीन युग मे आर्थिक जीवन काफी सरल था और औद्योगिक क्रियाएँ विकसित नहीं हुई थी।

प्राचीन आर्थिक विचारो की उपयोगिता

प्राचीन अर्थशास्त्र एव आर्थिक विचारों के अध्ययन के द्वारा सामाजिक जीवन के अनेक ऐसे प्रच्छन्न आर्थिक पहलुओ का पता चलता है जिनसे वर्तमान सामाजिक समस्याओ को हल करने मे मदद मिलती है साथ ही युग विशेष की आर्थिक व्यवस्था राजनीतिक समस्याओ और उसके निदान के उपायों की जानकारी के माध्यम से आज के प्रगतिशील समाज में बाधक तत्वो से निपटने मे भी मदद मिलती है।

यद्यपि पाश्चात्य अर्थशास्त्र पर विश्वास रखने वाले कतिपय अर्थशास्त्री प्राचीन युग को अर्थशास्त्र के विद्यार्थी के लिए आर्थिक विचारो की दृष्टि से उपयोगी स्वीकार नही करते है। उनके अनुसार प्राचीन आर्थिक विचारो का अध्ययन अनावश्यक एव अप्रासगिक है। किन्तु इस विचार से सहमत होना कठिन है।

प्राचीन आर्थिक विचारो की सहायता से न केवल हमे अपने पूर्वजो के रहन–सहन के स्तर का ज्ञान होता है बल्कि उनके द्वारा किये गये कार्यों व्यवहारो तथा उद्देश्यो आदर्शो का भी ज्ञान प्राप्त करने मे सहायता मिलती है। इन विचारो का अध्ययन हमे तत्कालीन सभ्यता के विकास की दिशा को भी समझने के लिए वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान करता है। प्राचीन साहित्य दर्शन एव अर्थशास्त्र का जिज्ञासु अध्येता अतीत की उपेक्षा नहीं कर सकता।

यदि आधुनिक अर्थशास्त्री नवीन या उपयुक्त विचारो की स्थापना करना चाहता है तो उसे प्राचीन आर्थिक विचारो का भी अध्ययन करना पडेगा। वर्तमान अतीत की भूमि पर ही खडा है। आज आर्थिक सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन को नियत्रित एव विकसित करने के लिए जो भी सिद्धात स्वीकृत है उन सबका आधार पारम्परिक विचार हैं।

यहॉ यह भी उल्लेखनीय है कि पाश्चात्य अर्थशास्त्र अथवा विचारो का इतिहास प्राचीन नही हैं यूरोप मे औद्योगिक क्राति के बाद ही अर्थशास्त्र का जन्म एव विकास हुआ। अर्थशास्त्रियो ने कतिपय यूनानी दार्शनिको के विचारो का सहारा लेकर ही अपने विचारों सिद्धातो को निरुपित किया और हमारे देश के अधिकाश आधुनिक अर्थशास्त्रियों विचारको ने उन्ही का अधानुकरण करके उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धातो–विचारो को भारतीय परिवेश मे आरोपित कर दिया। इस प्रकार पश्चिम–प्रेरित आर्थिक–विचार प्रणाली की भारतीय सदर्भ मे उपयोगिता व वैधता के गभीर परीक्षण की आवश्यकता है।

प्राचीन आर्थिक विचारो की परम्परा मे अनेक ऐसे विचार भी मिलते है जो आधुनिक युग मे भी परिवर्तित और सशोधित रुप मे मौजूद हैं। ये विचार ही हमे बताते हैं कि कोई भी ऐसा युग नही रहा है जिसमे तत्कालीन आवश्यकताओ के अनुरुप आर्थिक चितन न हुआ हो। दूसरे शब्दो मे आज के आर्थिक विचारो मे प्राचीन विचारो का अत्यत विकसित रुप ही हमे देखने को मिलता है। उदाहरणार्थ सामाजिक कल्याण की भावना द्रव्य–पण्य विनिमय व्याज लगान सम्पत्ति धन आदि से सबधित विचार आधुनिक युग की देन नही है उनका उद्भव अत्यत प्राचीन है।

यथार्थ इतिहास का निर्माण पुजीभूत क्रमिकता से होता है जिसमे एक व्यवस्था सगति और नियमितता होती है। भारतीय सस्कृति का उद्भव ऋग्वैदिक काल से माना जाता है और तब से ही इसकी धारा अविच्छिन्न रुप मे आज तक प्रवाहित रही है। वेदो के अलावा ब्राह्मण ग्रन्थ आरण्यक उपनिषद महाकाव्य पुराण नीतिग्रन्थ स्मृति साहित्य

आदि ग्रन्थो मे आर्थिक विचार प्राप्त होते हैं। प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन के स्त्रोत ग्रन्थो मे अर्थशास्त्र की परिभाषा क्षेत्र आवश्यकता व उपभोग सम्बन्धी अवधारणा धन की अवधारणा एव धनार्जन की आचार सहिता के अलावा मनु, शुक्र तथा कौटिल्य के प्रमुख आर्थिक विचारों का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त स्वामी दयानद सरस्वती दादा भाई नौरोजी महादेव गोविंद रानाडे गोपालकृष्ण गोखले आर सी दत्त एम एन राय महात्मा गॉधी आदि विचारको ने ब्रिटिश शासन की शोषण वादी नीतियो के खिलाफ अपने आर्थिक विचार प्रस्तुत कर जनता को जागरूक बनाया। उन्होने ब्रिटिश नीति के कारण अत्यधिक व दोषपूर्ण करारोपण धन का देश से बाह्य प्रवाह आदि की ओर ध्यान आकृष्ट किया तथा देश की आर्थिक उन्नति के लिए स्वशासन स्वदेशी राम राज्य आदि को आधार बनाया।

1947 मे देश को राजनैतिक स्वतत्रता प्राप्त होने के साथ हमने यह कल्पना की थी कि राजनैतिक आजादी तो मिल गई अब हम पलक झपकते ही वही पुराना वैभव और सम्पन्नता को प्राप्त कर लेगे। परन्तु हमारी यह धारणा निर्मूल सिद्ध हुई। नेहरूजी एव हमारे नीति निर्माता पाश्चात्य एव रूसी दर्शन से इतने प्रभावित हुए कि पुरातन भारतीय दर्शन को छोड हमने पश्चिमी अवधारणा का अनुसरण कर प्रगति करना चाहा। इसी वजह से गाँधी जी के सुझाये गये रास्ते को भी छोड दिया। कृषि के बजाय बडे उद्योगो को प्राथमिकता दी गई। लघु उद्योग भी नष्ट हो गये। 50 साल मे ऊपर का आर्थिक नियोजन भी कुछ नही कर सका।

नेहरू जी की पाश्चात्य परक नीतियो एव आर्थिक व्यूहरचना की राममनोहर लोहिया दीन दयाल उपाध्याय चरणसिह आदि ने आलोचना की तथा प्राचीन भारतीय परम्पराओ एव लघु व कुटीर उद्योगो की स्थापना पर बल दिया। उन्होन सुझाव दिया कि भारतीय आर्थिक विकास की व्यूहरचना भारतीय परिस्थितियों के अनुसार ही बननी चाहिए न कि पश्चिम के विकास मॉडलो पर। पुस्तक मे उपरोक्त विद्वानो के आर्थिक विचारो के साथ विनोबा भावे जे के मेहता तथा अमृत्य सेन के प्रमुख विचारो का भी विवेचन किया गया है।

प्रश्न

1 पाश्चात्य एव भारतीय आर्थिक चिंतन के क्या आधार हैं ? भारतीय आर्थिक विचारो की उपयोगिता बताते हुए आर्थिक व सामाजिक विचारो मे सम्बध बताइये।

2 भारतीय आर्थिक विचारो के स्त्रोतो की व्याख्या करत हुए भारतीय आर्थिक विचारो का सक्षिप्त इतिहास बताइये।



2

प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतक एवं आर्थिक स्त्रोत ग्रन्थ
(Prominent Ancient Indian Economic Thinkers and Source books)

भारत का अतीत सभी दृष्टि से वैभवशाली रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे भारत का योगदान अविस्मरणीय है। सांख्य दर्शन के प्रणेता आचार्य कपिल, प्रसिद्ध अणु सिद्धांत के प्रतिपादक कणाद, जनसामान्य के आरोग्य की रक्षा करने वाले आयुर्वेद के जनक आचार्य चरक महान भारतीय सर्जन आचार्य सुश्रुत, गणितज्ञ आर्यभट्ट, वराहमिहिर भास्कराचार्य आर्यभट्ट द्वितीय भारतीय रसायनविद् नागार्जुन आदि ने प्राचीन समय में विज्ञान के क्षेत्र में अद्वितीय योगदान किया जबकि विश्व को उस समय तक इन विषयों का ज्ञान भी नहीं था। विज्ञान के अतिरिक्त वैदिक वाङ्‌मय मे समाज विज्ञान के क्षेत्र मे राजनीतिशास्त्र अर्थशास्त्र लोकप्रशासन समाजशास्त्र भूगोल तथा साहित्य कला के क्षेत्र में शिक्षा संस्कृति संगीत एव विधि आदि का भी जगह–जगह वर्णन है। आचार्य बृहस्पति शुक्र मनु कौटिल्य याज्ञवल्क्य नारद विष्णु वशिष्ठ विदुर सुधन्वा कामदक आदि मनीषियो ने समाज विज्ञान के क्षेत्र मे उल्लेखनीय योगदान किया है।

भारतीय ज्योतिषविदो ने सर्वप्रथम यह जान लिया था कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी उसके चारो ओर चक्कर लगाती है। अथर्ववेद में सूर्य को काल विभाजन का मुख्य कारण माना गया है। सूर्य अपनी कक्षा मे बिना सहारे भ्रमण करता है और उसी के प्रकाश से चन्द्रमा एव अन्य ग्रह प्रकाशित होते हैं।[1] यजुर्वेद मे स्पष्ट कहा गया है कि पृथ्वी गोल है तथा गुरुत्वाकर्षण के कारण अपनी कीली पर घुमती हुई सूर्य की परिक्रमा करती है।[2] आज की कास्मोलाजी (Cosmology) की थ्योरी कपिल के सांख्यदर्शन से मिलती–जुलती है। भास्कराचार्य (लीलावती उनका प्रमुख ग्रन्थ है) ने खगोलशास्त्री स्मार्त से सैकड़ो वर्ष पूर्व पृथ्वी की सूर्य से प्रदक्षिणा की अवधि मापी थी। शून्य का आविष्कार पाँचवी शताब्दी मे आर्यभट्ट ने किया। दशमलव पद्धति का जन्म भी भारतीय गणित शास्त्र को माना जाता है। प्रसिद्ध इतिहासकार अलबरूनी लिखते हैं कि मैंने अनेक भाषाओ के अक सीखे है पर किसी भी जाति मे हजार से आगे की संख्या का कोई नाम नही मिला। हिन्दुओ मे अठारह अको की संख्या के लिए नाम है जिसमे अतिम संख्या

का मान परार्ध बताया गया है। श्री धराचार्य ने ग्यारहवी शताब्दी मे वर्ग समीकरण (Quadratic equation) की व्याख्या की थी। फ्रांसीसी विद्वान डॉ थीबो ने स्वीकार किया है कि भारत ही रेखागणित के मूल सिद्धातो का आविष्कर्त्ता है। वैदिक वाड्मय मे टूटी हड्डियो को जोडने चीर फाड पोल्टिस और बाण की नोक से मवाद निकालने तथा धातु की जघा बनाने का विवरण प्राप्त होता है।[1] सुश्रुत विश्व का प्रथम सर्जन माना गया है उन्हे सिजेरियन मोतियाबिद अवयव प्रत्यारोपण पथरी आदि जटिल शल्य क्रियाओ के साथ बेहोशी की दवा का ज्ञान था। औषधि विज्ञान के जनक चरक ने 2500 वर्ष पूर्व आयुर्वेद का निर्माण किया।

साहित्य के दृष्टिकोण से तत्कालीन समय मे कोई देश भारत की तुलना नहीं कर सकता। वेद विश्व साहित्य की प्रथम पुस्तक मानी गई है। वेदो के अलावा उपनिषद पुराण रामायण महाभारत स्मृतियाँ नीतियाँ मेघदूत अभिज्ञानशाकुन्तलम आदि साहित्य के दृष्टिकोण से ऐसे ग्रन्थो की रचना भारत मे हुई है। भारतीय साहित्य के उच्च कोटि होने का प्रमाण इसी बात से सिद्ध होता है कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रथम गवर्नर वारेन हैस्टिंग्स ने सर चार्ल्स विल्किन्सन से गीता और उपनिषदो का अनुवाद करवाकर उन्हे 1784 मे ऑक्सफोर्ड प्रेस द्वारा प्रकाशित करवाया। जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने वेद एव उपनिषदो का अनुवाद करने मे अपने जीवन के 45 वर्ष लगा दिए थे। अजन्ता एलोरा की गुफाओ मे अकित चित्रों का रग हमारे विकसित रसायन–शास्त्र का परिचायक है। हमारे वास्तुशास्त्र के विकास के प्रमाण अनेक भवनो एव मदिरो मे आज भी मौजूद है। कुतुबमीनार के पास जग न लगने वाला लोह स्तम्भ हमारे विकसित धातुशास्त्र एव उन्नत तकनीक का परिचय देता है। बेलूर (कर्नाटक) के चित्र केशव मदिर परिसर मे चालीस फीट ऊचा तथा बीस हजार किलोग्राम वजन का एक प्रस्तर सीधा खडा है। यह एक हजार वर्ष से बिना सहारे समतल भूमि में बिना गाडे खडा है। यह गुरूत्वाकर्षण तथा भौतिक शास्त्र के सिद्धातों के ज्ञान के बिना सभव नहीं था। भारत की उच्च तकनीक की झलक 1916 के औद्योगिक आयोग के इन शब्दो म मिलती हैं जिस समय आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था के जन्मदाता यूरोप में जगली जातियाँ निवास करती थी तब भारत अपने शासकों की अपार सम्पति और अपने शिल्पकारो की कलात्मक निपुणता के लिए प्रसिद्ध था। मौलिक ज्ञान एव सम्पन्नता के कारण भारत को विश्वगुरू एव सोने की चिडिया जैसी उपाधियाँ प्राप्त थी।

पश्चिमी देशों के आर्थिक विचार मुख्य रूप से यूरोप एव अमेरिका मे विकसित हुए। इन आर्थिक विचारो मे समाज को पूजीपतियो भूस्वामियो श्रमिकों आदि वर्गों मे विभाजित कर कई तरह के आर्थिक सिद्धातो एव आर्थिक अवधारणाओ का प्रतिपादन किया। आर्थिक विचारधाराओं को विकसित करने मे मार्क्स की भी अत्यधिक भूमिका रही है। धीरे–धीरे इन विचारधाराओ मे कई समूह तथा उपसमूह विकसित हुए परन्तु मुख्य रूप से पूजीवाद तथा साम्यवाद–ये दो विचारधाराएँ ही हावी रही। इन दोनो विचारधाराओं

ने हमेशा यह दावा किया गया कि मनुष्य की सभी समस्याओ का समाधान कर उसको ऐसा जीवन स्तर उपलब्ध करवायेगी जो कि सभी दृष्टियो से श्रेष्ठ होगा।

1989 से पूर्व विश्व की अधिकाश अर्थव्यवस्थाएँ दो खेमो मे बटी हुई थी। उनमे से कुछ को अमेरिका की प्रजातान्त्रिक पूजीवादी व्यवस्था के साथ तथा कुछ को सोवियत रुस की साम्यवादी व्यवस्था के साथ जुडे रहना ज्यादा लाभ नजर आता था। भारत जैसे कुछ देशो ने अपने आपको निर्गुट घोषित कर पूजीवादी एव समाजवादी व्यवस्थाओ के मिश्रण को अपने विकास का आधार बनाने की कोशिश की। 1989 से पूर्व विश्व इन दोनो अर्थव्यवस्थाओ की सघर्ष स्थली बना रहा तथा हमेशा शीतयुद्ध का वातावरण बना रहा। 1989 मे रुस की साम्यवादी व्यवस्था के विघटन के कारण पूजीवादी व्यवस्था के समक्ष चुनौती समाप्त हो गई। यही कारण रहा कि अन्य वैकल्पिक आर्थिक विकास के मॉडल के अभाव मे विश्व की सभी अर्थव्यवस्थाएँ पूजीवादी आर्थिक विकास के मॉडल को ही अपना रही है। परन्तु आज विश्व अर्थव्यवस्था के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित है कि क्या पूजीवाद की यह बाजार केन्द्रित अर्थव्यवस्था का वैश्वीकरण दीर्घकाल तक चल पायेगा? क्या इससे हम शोषणमुक्त समाज की स्थापना कर सकेगे ? या बेरोजगारी गरीबी भुखमरी मुद्रास्फीति आय की असमानता आदि समस्याओ को सुलझाने हेतु कोई नयी आदर्श व्यवस्था सामने आयेगी जिसमे विभिन्न आर्थिक समस्याओ का समाधान छिपा होगा? ये कुछ ऐसे प्रश्न है जो विश्व के सम्पूर्ण बौद्धिक समुदाय मे विवाद का विषय बने हुए हैं। यह आश्चर्य का विषय है कि कुछ पश्चिमी विवेकशील विचारक यह अनुभव करने लगे हैं कि यूरोपीय राजनीतिक व आर्थिक सस्थाओ द्वारा किये जा रहे बचाव के प्रयासो के बावजूद भी मुक्त बाजार प्रणाली पर आधारित पूजीवादी ढॉचा एक दिन अनिवार्यत समाप्त हो जायगा।[*]

आज यह विश्लेषण करने की आवश्यकता है कि पूजीवाद की विभिन्न आर्थिक अवधारणाएँ किन दार्शनिक आधारो पर टिकी हुई है। यदि हम पाश्चात्य आर्थिक अवधारणाओ का विश्लेषण करे तो मुख्य रूप से इस निष्कर्ष पर पहुचेगे कि पाश्चात्य आर्थिक–दर्शन एक प्रकार से टुकडो–टुकडो मे बटा हुआ (compartmentalised thinking) दर्शन हे जिसमे आर्थिक मानव की कल्पना की गई है जिसका मुख्य उद्देश्य अर्थ एव काम तक सीमित है। पाश्चात्य आर्थिक दर्शन मे वैयक्तिक प्रसन्नता (happness for one self) को केन्द्र बिन्दु बनाया गया है और इसलिए प्रत्येक का लाभ कमाना ही प्रमुख उद्देश्य होता है। पाश्चात्य दर्शन पर ईसाइयत के प्रभाव के कारण उपभोगवाद का सवर्द्धन हुआ हे। स्वय के उपभोग को बढाने के उद्देश्य पूजीवादी देशो मे शोषण तथा अधिकार प्रेरित कर्त्तव्या का जन्म हुआ है। इस आर्थिक दर्शन मे कृत्रिम दुर्लभताओ के कारण कीमतो की वर्द्धमान प्रवृति देखी जा सकती है। प्रतियोगिता के नाम पर कई अन्य विधिया से एकाधिकारी प्रवृत्तियो का बढते हुए देखा जा सकता है। अधिकाश आर्थिक सिद्धातो के मजदूरी–रोजगार पर केन्द्रित होने के कारण आय के वितरण मे भारी

असमानताओ का अवलोकन किया जा सकता है। इन देशो की बढती हुई उपभोग की आवश्यकताओ के कारण तथा अति–ऊर्जा केन्द्रित औद्योगीकरण को बढावा देने के कारण जिस गति से प्रकृति का शोषण किया जा रहा है उसके कारण विश्व के समक्ष पर्यावरण का सकट खडा हो गया है। पाश्चात्य आर्थिक दर्शन की उपर्युक्त सभी अवधारणाएँ मुख्य रूप से पूजीवाद के निम्न चार सिद्धातो पर आधारित रही है–(i) अस्तित्व के लिए सघर्ष (ii) सर्वोत्तम का अस्तित्व (iii) प्रकृति का शोषण (iv) वैयक्तिक अधिकार।

अत आज आवश्यकता इस बात की है क्या विश्व को उपर्युक्त इन चार सिद्धातो पर आधारित आर्थिक अवधारणाओं पर आगे बढना चाहिए या इनके विपरीत भारतीय दर्शन पर आधारित आर्थिक अवधारणाओ का विचार विश्व के समक्ष रखना है।

भारतीय दर्शन के मूल आधार पाश्चात्य दर्शन–अस्तित्व के लिए सघर्ष के स्थान पर परस्पर सहयोग को प्रमुखता देता है। सर्वोत्तम का अस्तित्व के स्थान पर समन्वय एव सहयोग को आधार माना गया है। प्रकृति के शोषण के स्थान पर प्रकृति के दोहन की आवश्यकता को प्रतिपादित किया गया है तथा वैयक्तिक अधिकारो के स्थान पर कर्त्तव्यों पर जोर दिया गया है। भारतीय दर्शन के उपर्युक्त इन चार सिद्धातो के आधार पर आर्थिक मानव के स्थान पर समग्र मानव की कल्पना की गई है जो अर्थ एव काम के अतिरिक्त धर्म तथा मोक्ष से भी ओतप्रोत रहता है। वैयक्तिक प्रसन्नता के स्थान पर सबके कल्याण की कल्पना की गई है। भारतीय दर्शन मे पश्चिम के लाभ उद्देश्य के स्थान पर सेवा की भावना तथा उपभोगवाद के स्थान पर सयमित उपयोग को स्थान दिया गया है। पाश्चात्य दर्शन में जहाँ शोषण को प्रमुखता है वहाँ भारतीय दर्शन मे अन्त्योदय के विचार को अपनाया गया है। पाश्चात्य दर्शन के कृत्रिम दुर्लभता के स्थान पर प्राचीन भारतीय वाङमय मे विपुल उत्पादन की परिकल्पना की गई है। जहाँ पाश्चात्य दर्शन मे मजदूरी रोजगार पर आधारित आर्थिक सिद्धात है वही भारतीय दर्शन मे स्वरोजगार केन्द्रित आर्थिक अवधारणाए शामिल है। इस प्रकार पाश्चात्य आर्थिक दर्शन एव भारतीय आर्थिक दर्शन के मूलभूत अतर देखे जा सकते हैं।

स्वतत्रता पश्चात पचास वर्षो से अधिक भारत का आर्थिक इतिहास इस बात का साक्षी है कि यहा अब तक की सभी पचवर्षीय योजनाएँ किसी न किसी प्रकार पश्चिम के प्रारूपो पर ही आधारित रही है। 1990 के बाद देश मे उदारीकरण तथा वैश्वीकरण को अपनाये जाने के बाद भी आज देश के समक्ष गरीबी बेरोजगारी आय की असमानताए तथा बढता हुआ प्रदूषण आदि समस्याएँ विकराल रूप धारण किए हुए हैं। इन समस्याओ के अनवरत चलते रहने के कारण भारतीय मन अब वर्तमान आर्थिक नीतियो से विचलित होने लगा है तथा इस बात की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है कि क्या इन समस्याओ का समाधान हमारे प्राचीन आर्थिक चितन मे नही है ? यदि इनका समाधान प्राचीन भारतीय आर्थिक चितन मे है तो क्या पूर्व मे उस समाधान को शोध करके देश

के समक्ष रखा गया। इसी बात से प्रेरित होकर प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता इसलिए महसूस की गई कि अब तक मेकाले शिक्षा व्यवस्था के कारण तथा पाश्चात्य दृष्टि से प्रेरित भारतीय विद्वानो के पूर्वाग्रहो के कारण प्राचीन भारतीय आर्थिक अवधारणाओ को उपेक्षित रखा गया तथा भारतीय चिंतन के बारे मे यह धारणा व्यक्त की गई कि भारतीय चिंतन मूलरूप से आध्यात्मिक सामाजिक व कुछ सीमा तक राजनीतिक रहा है तथा आर्थिक पक्ष को तो इसमे कोई स्थान ही नही मिला। वास्तविकता यह है कि हमारा प्राचीन साहित्य सामाजिक राजनीतिक दार्शनिक न्यायिक एव आर्थिक विचारो से भरा पड़ा है तथा आज उनकी उपयोगिता सार्थक जान पड़ती है।

प्रमुख प्राचीन आर्थिक चिंतक

विश्व मे अर्थशास्त्र की चिंतन परम्परा भारत मे सर्वाधिक प्राचीन रही है। ब्रह्मा द्वारा संहिता के निर्माण के बाद इसे मनु ने धर्मशास्त्र वृहस्पति ने अर्थशास्त्र तथा नंदी ने कामशास्त्र के रुप मे रचना की। इस दृष्टि से आचार्य वृहस्पति ही अर्थशास्त्र के जनक कहे जा सकते हैं। प्रसिद्ध अग्रेजी विद्वान ए बी कीथ ने अपने शोधपत्र A History of Sanskrit Literature मे लिखा है कि आचार्य वृहस्पति अर्थशास्त्र के प्राचीनतम संस्थापक (Primordial Founder) है। महाभारत मे भी आचार्य वृहस्पति को ही अर्थशास्त्र का प्राचीनतम संस्थापक माना है। उशना (शुक्र) तथा वृहस्पति का उल्लेख महाभारत मे राजशास्त्र निर्माता के रुप मे किया गया है।[8] एक अन्य स्थान पर महाभारत मे वृहस्पति विशालाक्ष काव्य (शुक्र) इन्द्र प्राचेतस मनु भारद्वाज और गौरशिरा मुनि को राजशास्त्र निर्माता बतलाया है।[9] प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारको मे कौटिल्य का नाम सबसे अत मे आता है परन्तु कौटिल्य ने अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र मे सर्वप्रथम शुक्राचार्य एव वृहस्पति को नमस्कार लिखा है। इससे तात्पर्य है कि शुक्र तथा वृहस्पति दोनों महान अर्थशास्त्री रहे है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे पॉच सम्प्रदायो के नाम उल्लिखित है–

(1) मानव (2) बार्हस्पत्य (3) औशनस (4) पाराशर तथा (5) आम्भीय। इनके अलावा कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे भारद्वाज विशालाक्ष पिशुन पिशुनपुत्र पाराशर कौणपदन्त वातव्याधि बाहुदन्तीपुत्र (इन्द्र) कात्यायन कणिक भारद्वाज दीर्घ चारायण घोटमुख किन्जल्क आदि का उल्लेख मिलता है। कामदक नीतिसार के अनुसार नारद शुक (इन्द्र) बृहस्पति भार्गव (शुक्र) भारद्वाज भीष्म पाराशर, मनु, कौटिल्य द्वारा ब्रह्मा द्वारा रचित शास्त्र को सक्षिप्त किया। नीतिप्रशाशिका' मे ब्रह्मा महेश्वर इन्द्र प्राचेतस मनु, वृहस्पति शुक्र भारद्वाज वेदव्यास तथा गौरशिरा को तथा बुद्धचरित[a] में भृगु, अगिरा शुक्र और वृहस्पति को राजशास्त्र निर्माताओ के रूप मे उल्लेख किया गया है।

इस प्रकार ब्रह्मा विशालाक्ष (शकर) बाहुदन्त (इन्द्र) बृहस्पति (देवगुरु) कामदक वातव्याधि (उद्धव) कौटिल्य मनु, याज्ञवल्क्य पाराशर कात्यायन तथा विभिन्न स्मृतिकार एव नीतिकार प्रमुख आर्थिक विचारकों के नाम उल्लेखनीय हैं। पुराणो मे अग्निपुराण

(अध्यया 218–242) गरुड पुराण (अध्याय 108–115) मत्स्य पुराण (अध्याय 215–243) मार्कण्डेय पुराण कालिक पुराण भागवत पुराण के अलावा मनुस्मृति बृहत्पाराशर स्मृति जेन व बोद्ध ग्रन्थ बुद्धहारित स्मृति रामायण महाभारत वेद कालीदास के ग्रन्थो आदि सभी मे आर्थिक विचारो का वर्णन प्राप्त होता है।

कुछ प्रमुख अर्थ चितको एव साहित्य का सक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है।

1 अर्थशास्त्र के प्रणेता आचार्य बृहस्पति

अर्थशास्त्र में एडम स्मिथ को अर्थशास्त्र के जनक (Father of Economics) के रूप मे जाना जाता है। एडम स्मिथ के अर्थशास्त्र मे योगदान की चर्चा की जाती है तो उनका समय 1723–1790 तक माना जाता है। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक An Inquiry into the Nature and Causes of wealth of Nations का प्रकाशन 1776 मे हुआ।

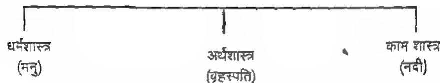
बृहस्पतियाम *अर्थशास्त्र* का गहराई से अध्ययन करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि आचार्य बृहस्पति ने चारों पुरूषार्थों (धर्म अर्थ काम एव मोक्ष) में से सर्वाधिक महत्व अर्थ को दिया तथा उनके *अर्थ* शब्द मे धर्म काम तथा मोक्ष के अलावा इस ससार के सभी विषय शामिल हैं। एडम स्मिथ के राजनीतिक अर्थशास्त्र (Political economy) में भी *अर्थ* का इतना व्यापक समावेश नहीं हैं।

कौटिल्य' ने एक जगह लिखा है कि पृथ्वी की प्राप्ति तथा उसकी रक्षा के लिए आचार्य बृहस्पति समेत जितने भी पुरातन आचार्यों ने जितने भी *अर्थशास्त्र–विषयक* ग्रथों का निर्माण किया है उन सब का सार–सकलन कर मैंने अर्थशास्त्र की रचना की है।

पृथ्वी की प्राप्ति (लाम) तथा उसकी रक्षा में अर्थशास्त्र के तीन आशय हैं–विशुद्ध अर्थशास्त्र (Pure Economics) पर्यावर्णीय अर्थशास्त्र (Environmental Economics) तथा राजनीतिक अर्थव्यवस्था (Political Economy)। विशुद्ध अर्थशास्त्र का तात्पर्य वार्ता से हैं। वार्ता मे मोटे रूप से वे सभी व्यवसाय शामिल है जिनसे व्यक्ति आजीविका प्राप्त करता है। वार्ताशास्त्र में उपभोग उत्पादन विनिमय तथा वितरण जैसी सभी आर्थिक क्रियाएँ शामिल है। दूसरा अर्थशास्त्र का आशय राजनीतिक अर्थशास्त्र से है। स्मिथ की राजनीतिक अर्थशास्त्र की उक्त पुस्तक स्मिथ के गुरु प्रो हचेसन के व्याख्यानों पर आधारित थी जिसमें प्राकृतिक अध्यात्म विद्या नीतिशास्त्र न्याय शास्त्र तथा राज्य की दौलत समृद्धि एव शक्ति बढाने के नियम आदि का समावेश था। श्रम, मुद्रा मजदूरी लगान पूँजी सचय स्वतत्र व्यापार, करारोपण के नियम आदि उनके प्रमुख आर्थिक विचार थे।

यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या एडम स्मिथ से पूर्व कहीं आर्थिक विचारों पर कोई व्यवस्थित कार्य नहीं हुआ ? यदि भारत के प्राचीन आर्थिक चिंतन पर विचार किया जाय तो आचार्य बृहस्पति को अर्थशास्त्र के प्रणेता कह सकते हैं।

आचार्य वात्सायन ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'कामसूत्र' (संस्कृत भाषा में) में बताया कि संसार के रचयिता ब्रह्मा ने "संहिता" की रचना की जिसमें एक करोड से भी अधिक श्लोक थे। कालांतर मे इस संहिता मे से तीन विद्याओ–धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र एव काम शास्त्र (कर्म शास्त्र) का प्रादुर्भाव हुआ। आचार्य मनु ने धर्मशास्त्र की आचार्य बृहस्पति ने *अर्थशास्त्र की तथा आचार्य नदी ने काम शास्त्र की रचना की।*



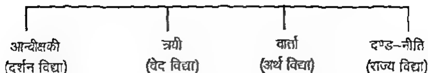
प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक ऐ बी केथ (A B Keith)[10] ने अपनी पुस्तक A History of Sanskrit Literature मे लिखा है कि आचार्य बृहस्पति अर्थशास्त्र के जनक थे।

महाभारत महाकाव्य मे भी आचार्य बृहस्पति को अर्थशास्त्र का प्रवर्तक बताया गया है। इसमे किसी प्रकार का संदेह नही होना चाहिए कि **बृहस्पतियाम अर्थशास्त्र** आचार्य बृहस्पति द्वारा लिखा गया है। **बृहस्पतियाम अर्थशास्त्र** का वर्णन आचार्य भास द्वारा लिखित **प्रतिमा** तथा आचार्य वात्सायसन द्वारा लिखित **'काम सूत्र'** मे भी मिलता है।

मौर्य काल मे आचार्य **कौटिल्य** *ने* **कौटिलीयम अर्थशास्त्रम्** (231–320 ई पू) *की रचना की जिसमे उन्होने आचार्य बृहस्पति एव आचार्य शुक्र को नमस्कार किया है जिससे तात्पर्य यह है कि आचार्य बृहस्पति एव आचार्य शुक्र कौटिल्य के पूर्व हुये है।* उन्होने प्रथम अधिकरण मे ही इस प्रकार लिखा है–

ॐ नम शुक्रबृहस्पतिम्याम्। अर्थात् शुक्राचार्य और बृहस्पति के लिए नमस्कार है।[11]

आचार्य कौटिल्य ने अपनी पुस्तक के प्रथम अधिकरण (अध्याय) विद्या सम्बन्धी विचार के अन्तर्गत बताया है कि विद्याये चार प्रकार की होती है –आन्वीक्षकी त्रयी वार्त्ता तथा दण्डनीति। मनु सम्प्रदाय के आचार्यो ने कवल तीन विद्याये–त्रयी वार्त्ता तथा दण्ड नीति मानी है। परन्तु आचार्य बृहस्पति ने केवल दो विद्याये–वार्त्ता तथा दण्डनीति को प्रमुख माना है। आचार्य शुक्र ने केवल दण्ड नीति का ही विद्या माना है तथा उसी को ही सभी विद्याओ का स्थान तथा कारण स्वीकार किया है। इन विद्याओ को सार रूप मे निम्न प्रकार लिखा जा सकता है–



महाभारत मे कहा गया है कि जब धर्म–विप्लव के कारण लोगो मे अनाचार अधिक बढ गया था तो सभी सन्त्रस्त देवता गण ब्रह्मा के पास गये तो ब्रह्मा ने एक लाख अध्यायो मे एक शास्त्र की रचना की तथा उसमे सभी पुरुषार्थ (धर्म अर्थ काम एव मोक्ष आदि ये मानव जीवन के लक्ष्य माने जाते है) तथा दण्ड–नीति आदि उपयोगी विषयों का समावेश है जिसे नीतिशास्त्र (सहिता) का नाम दिया गया। इसी शास्त्र से आचार्य बृहस्पति ने अपने शास्त्र की रचना की। शुक्र–नीति–सार के अनुसार इस ब्रह्मा द्वारा रचित नीतिशास्त्र मे एक करोड श्लोक थे परन्तु प्रजा की आयु मे ह्रास को देखकर भगवान शकर ने उस 'नीति शास्त्र' को दस हजार अध्यायो में सक्षिप्त किया। इस सक्षिप्त शास्त्र का नाम भगवान शकर के पर्याय **विशालाक्ष** के आधार पर **वैशालाक्ष नीतिशास्त्र** पडा। पुन इन्द्र ने इस विशालाक्ष शास्त्र को पाँच हजार अध्यायो मे सक्षिप्त किया तथा उसका नाम **बाहुदन्तक शास्त्र** रखा गया। तत्पश्चात बृहस्पति ने इस बाहुदन्तक शास्त्र को तीन हजार अध्यायो मे सक्षिप्त किया जिसका नाम **बार्हस्पत्य शास्त्र** पडा। अर्थशास्त्र का तीसरा आशय पर्यावर्णीय अर्थशास्त्र से है जिसमे पृथ्वी से प्राप्तियो व रक्षा के लिए पर्यावरण सतुलन बनाना आवश्यक है जो प्राकृतिक साधनो के उपयोग तथा उनकी रक्षा के सम्बन्ध मे किये जाने वाले उपाय शामिल है। तीसरे पृथ्वी से प्राप्तियाँ व उनकी रक्षा के लिए सुदृढ राज्य व्यवस्था (राजा) एव उसकी दण्ड नीति से हैं।

बुद्धचरित नीति प्रकाशिका अश्वघोष मे बृहस्पति को राजशास्त्र (अर्थशास्त्र विषयक) निर्माता के रूप मे उल्लेख किया है। बृहस्पति की वार्ता की अवधारणा मे "**कृषिपालन, पालय वाणिज्यम च वार्ता**" से अभिप्राय कृषि डेयरी और वाणिज्य विषयो का अनुशीलन है जो वस्तुत अर्थशास्त्र ही है। ऐसी विद्या का ज्ञान राज्य शासन एव लोक कल्याण के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। आचार्य बृहस्पति धर्म (कर्त्तव्य) और वार्ता (अर्थ) दोनो मे सतुलन पर बल देते हैं। जबकि पश्चातवर्ती आचार्य शुक्र दण्ड नीति को ही पूर्ण विद्या मानते हैं। आचार्य कौटिल्य ने भी शुक्र के मत को ही स्वीकार किया है। इस प्रकार आचार्य बृहस्पति आचार्य शुक्र से वरिष्ठ रहे हैं तथा उनको अर्थशास्त्र का जनक (Founder of Economics) कहा जाना चाहिए। बृहस्पति के प्रमुख आर्थिक विचारो को निम्नलिखित बिन्दुओ मे व्यक्त कर अध्ययन किया जा सकता है।

(1) वर्णाश्रम–बृहस्पति ने अपने पूर्व धर्मशास्त्रकारो की भाति भारतीय समाज के

लिए एक आदर्श कल्पना प्रस्तुत की थी जिसे वर्णाश्रम धर्म का नाम दिया गया है। चारो वर्ण अपने–अपने कर्तव्यों से भी समस्त क्रियाओ का सचालन करते थे। आपात काल मे अवश्य बृहस्पति दूसरी वृति अपनाने की आज्ञा देते है।

(2) धन का महत्व– बृहस्पति भी चाणक्य तथा शुक्र की भाति धन को ही समस्त आर्थिक क्रियाओ का उदगम मानते हैं।[3] उनके अनुसार सम्पूर्ण व्यावहारिक क्रियाओ का सचालन धन के माध्यम से होता है। अत असकी प्राप्ति के लिए मनुष्य को पयत्नशील होना चाहिए। बृहस्पति ने कोश–सवर्द्धन के लिए अधिकाधिक धन प्राप्ति न्यायोचित ढग से प्राप्त करने की सलाह दी है।

(3) सह–उपभोग की अवधारणा– बृहस्पति धन के समान वितरण के पक्ष मे थे और चाहते थे कि उपार्जित किया गया धन समाज में समान रूप से वितरित किया जाय। जीविकोपार्जन से जो भी धन की प्राप्ति हो अपने बधु–बाधव के साथ बाटकर उसका उपभोग करना चाहिए।[4] बृहस्पति उपार्जित धन का उपभोग उन्हीं वस्तुओं पर करने की सलाह देते हैं जो दैनिक जीवन के लिए आवश्यक है।

(4) बृहस्पति की वित्तीय नीति–बृहस्पति का कहना है कि जो राजा अधिक धन इकट्ठा करने के विचार से जनता पर अधिकाधिक कर लगाता है उससे राष्ट्र की वृद्धि नही होती वरन राष्ट्र का पतन हो जाता है।

हीन मध्योत्तमत्वेन प्रभिन्नानि प्रथक प्रथक विशेष एषा नर्दिष्टश्चतुर्णामप्यनुक्रमात। बृह स्मृति व्यवहार काण्ड 1/15

बृहस्पति करो के सग्रहण मे विश्वासपात्र एव ईमानदार कर्मचारियो की नियुक्ति पर जोर देते हैं। कामदकीय नीतिसार मे लिखा है कि –

बृहस्पतेरविश्वास इतिशास्त्रार्थ निश्चय

विश्वासी च तथा च स्याद् यथा सव्यवहारवान। कामदकीय नीतिसार (5/85–88)

कर नीति निर्धारण सिद्धान्त– बृहस्पति राज्य सचालन के लिए उचित कर नीति को आवश्यक मानते थे। उनकी कर नीति निम्न सिद्धातो पर आधारित थी।

(i) लोकहित–बृहस्पति कर निर्धारण का प्रथम व अतिम उद्देश्य लोकहित को मानते हैं क्योकि इसी के द्वारा सम्पूर्ण व्यवस्था सुनियन्त्रित होती है। देश, प्रजा भूमि तथा समय पर विचार करके ही कर निर्धारण एव वसूली करनी चाहिए। करो की वसूली छमाही या वार्षिक होनी चाहिए।[5]

(ii) शास्त्रविधि अनुकूल–करारोपण शास्त्रो की विधि के अनुकूल होना चाहिए। बृहस्पति ने कर की वसूली एक मापदण्ड तथा निश्चय होना अनिवार्य माना है। उन्होने शुल्क स्थानो या चुगीघरों पर होने वाले अन्याय को राष्ट्र की प्रतिष्ठा पर आघात माना है।

(iii) कर निर्धारण का आर्थिक आधार– बृहस्पति वर्णो की आजीविका के आधार पर करो की दरो मे भी भिन्नता की व्याख्या करते हैं। उनके अनुसार ब्राह्मण

क्षत्रिय वैश्य तथा सेवाजीवी की आय पर कर की मात्रा पृथक–पृथक होनी चाहिए।

(iv) बृहस्पति धीरे–धीरे कर बढाने के पक्ष में थे ताकि करो की अधिकता से जनता में असतोष भी उत्पन्न न हो तथा कर के अभाव मे कोश भी क्षीण न हो। उन्होंने कर निर्धारण एव वसूली मे ईमानदारी तथा अनुशासन पर जोर दिया है। उनका मत था कि जिस राजा का मत्री ही धन लो लुप हो जाता है उस राजा के पास धन कहाँ ? अत वे शुल्क स्थानो पर अन्याय को विनाशकारी मानते थे।*

भाग– कृषि भूमि तथा ऋतु के अनुरूप उपज का राजकीय भाग की वसूली को बृहस्पति देश स्थिति उपज तथा समयानुसार वसूल करने के पक्षपाती थे। उनके अनुसार कृषि बल अर्थात–कृषि पर जीविका निर्वाह करने वाले किसान खिल वर्ष और बसत की उपज का क्रमश 1/10 1/8 तथा 1/6 भाग राजा को दे। तथा यह कर देश की स्थिति के अनुसार छठे महीने या वार्षिक रूप में देना चाहिए।

शुल्क–बृहस्पति के शुल्क के बारे मे विचार था कि शुल्क स्थान पर पहुच कर व्यापारी को यथोचित शुल्क देना चाहिए। शुल्क की राशि बृहस्पति ने 10वा अश माना है। बृहस्पति वाणिज्य के अलावा कुसीद तथा शिल्पियो से प्राप्त होने वाले धन पर भी शुल्क लगाने का प्रावधान करते हैं।

कुसीद कृषि वाणिज्य शुल्क शिल्पानुवृतिभि
कृतोपकारदाप्त च शबल समुदाहृतम् ।। बृह–स्मृति व्यवहार काण्ड 7/4

मृतक सम्पति कर–बृहस्पति के अनुसार मृत व्यक्ति की सम्पति का निरीक्षण करना राजकीय अधिकारियो का कार्य है। यदि मृतक का कोई उत्तराधिकारी है तो उसे अन्य लोगो से स्थिति प्रमाणित करवानी होती है कि वही उसका उत्तराधिकारी है। अत उसे वर्ण के अनुकूल राजकीय अश देना पडता है। बृहस्पति राजा का अश शुद्र के धन से 1/6 भाग वैश्य के धन से 1/9 भाग क्षत्रिय के धन से 1/10 भाग तथा ब्राह्मण के धन से 1/20 भाग मानते हैं।

अन्यकर–उक्त स्त्रोतो के अलावा तस्कर वृत्ति कर, दण्ड युद्ध कुसीदनिधि गणिका आदि से प्राप्त होने वाली आय को भी बृहस्पति ने राजकीय आय का स्त्रोत माना है।

सार्वजनिक व्यय–बार्हस्पत्य अशो मे व्यय की मदो का स्पष्ट विवरण तो प्राप्त नही होता परन्तु कोश वृद्धि के नियमा मे ही व्यय की मदो का विवरण प्राप्त हो जाता है। बृहस्पति ने राष्ट्रीय आय का उपभोग उचित मदो पर ही करने की सलाह दी है। राजकीय व्यय प्रजारक्षण के निमित युद्ध निर्णय रक्षण राष्ट्रीय प्रशासन मन्त्रिमण्डल विभिन्न अधिकारियो का वेतन राजकीय परिवर्धन की योजनाओ तथा सामाजिक कार्यो पर किया जाना चाहिए।

* बृह स्मृति व्यवहार काण्ड 13/16

धन के प्रकार–आय के साधनो मे धन की गणना प्रमुख थी। वृहस्पति तीन प्रकार का धन मानते है।

(अ) **शुक्ल**– श्रुत शोर्य तप कथा शिष्य एव यान आदि की गणना इस धन रूप मे की जाती है।

(ब) **शबल**–कुसीद कृषि वाणिज्य शुल्क शिल्प उपकार के प्रतिरूप से प्राप्त होने वाली आय की गणना शबल धन मे की गई है।

(स) कृष्ण धन–इस धन मे द्यूत साहस ब्याज या धोखे से प्राप्त धन को शामिल किया गया है।

2 मनु (मानव)–मनु को वैदिक सहिताओ मे ऐतिहासिक व्यक्ति माना गया है। मनु को प्रथम मानव मानव प्राप्ति का पथप्रदर्शक कहा गया है। मनु रचित मानव धर्मशास्त्र भारतीय धर्मशास्त्र मे आदिम व मुख्य ग्रथ माना जाता है परन्तु मानव धर्मशास्त्र अभी तक देखने मे नही आया। वर्तमान **मनुस्मृति** को अच्छी मूल सूत्रो के आधार पर लिखी हुई कृति मान सकते हैं। मनु के आर्थिक विचारो को अध्याय–7 मे भी लिखा गया है।

3 औशनस (शुक्र)– इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक **'उशना'** के पर्याय शब्द शुक्राचार्य भार्गव काव्य दैत्यगुरु भृगु आदि है। इनके द्वारा सम्पादित **ब्रह्मनीति शास्त्र** के सक्षिप्त रूप के निर्देश के प्रसग मे महाभारत मे इन्हे अमित प्रज्ञ महायशा आदि उपाधियों से अलकृत किया है। इस सम्प्रदाय द्वारा सकलित शुक्र नीति की अन्यान्य प्राचीन ग्रथों मे अत्यन्त प्रशसा की गयी है। **शुक्र नीति सार**–शुक्र की ही परम्परा मे लिखा ग्रथ है। आचार्य शुक्र के शुक्र नीति मे वर्णित आर्थिक विचारो की चर्चा आगे अध्याय 8 मे दी गयी है।

4 पाराशर–ऋग्वेद मे शत्यातु तथा वशिष्ठ के साथ पाराशर का भी उल्लेख है। निरुक्त (वेद का अर्थ स्पष्ट करने वाला ग्रथ) के अनुसार पाराशर वशिष्ठ के पुत्र थे किन्तु बाल्मीकि रामायण मे इन्हे शक्ति का पुत्र तथा वशिष्ठ का पौत्र कहा गया है। जिन सात ऋषियो को ऋग्वेदीय मत्रो के सम्पादन का श्रेय हैं उनमे पाराशर का नाम भी सम्मिलित है।

स्मृति शास्त्र मे पाराशर स्मृति अथवा सहिता प्रसिद्ध रचना मानी जाती है। इस सहिता का प्रणयन कलियुग के लिए किया गया था (कलौ पाराशर स्मृत)। इसके प्रस्ताविक श्लोको मे लिखा है कि ऋषि लोग व्यास के पास जाकर प्रार्थना करने लगे कि आप कलियुग के लिए धर्मापदेश करे। व्यास जी ऋषियो को अपने पिता पाराशर के पास ले गये जिन्होने इस स्मृति का प्रणयन किया। इसके प्रथम अध्याय म स्मृतियो (उन्नीस) की गणना की गयी है और कहा गया है कि मनु गौतम शख लिखित तथा पाराशर स्मृतियाँ क्रमश सत्य युग त्रेता द्वापर तथा कलियुग के लिए प्रणीत हुई है। आचार्य कोटिल्य ने अमात्यो की नियुक्ति मे आचार्य पाराशर का उल्लेख किया है।

महाभारत के शांति पर्व मे आचार्य पाराशर का राजा जनक को दिये गये उपदेशो मे आर्थिक पक्ष को व्यक्त किया गया है।

ससार मे जीवन निर्वाह के लिए चार प्रकार की जीविका का विधान है (ब्राह्मण के लिए दान लेना क्षत्रिय के लिए कर लेना वैश्य के लिए खेती आदि तथा शुद्र के लिए सेवा)। मनुष्य जिस वर्ण मे उत्पन्न होता है उसके अनुकूल जीविका भी इच्छानुसार प्राप्त हो जाती है।

धन के सम्बन्ध मे आचार्य पाराशर ने बताया कि जो धन न्याय से प्राप्त हुआ है तथा न्याय से ही बढाया गया हो उसे धर्म के उद्देश्य हेतु यत्नपूर्वक बचाये रखना चाहिए–यह धर्मशास्त्र का निश्चय है। धर्म चाहने वाले को क्रूर–कर्म के द्वारा धन का उपार्जन नही करना चाहिए। अधर्म से सम्पत्ति बढाने का विचार भी मन मे नही लाना चाहिए।

■ भारद्वाज–ये भारद्वाज कुल मे उत्पन्न ऋषि है। ये यजुर्वेद के एक श्रौत एव गृह्य शाखा के सूत्रकार थे। तैतरीय प्रातिशाख्य मे इनका उल्लेख आचार्य के रूप में तथा पाणिनि के अष्टाध्यायी सूत्रो में व्याकरण के रूप मे हुआ है। इससे विदित होता है कि ऋषि भारद्वाज शिक्षा शास्त्री व्याकरण श्रौत एव गृह्य सूत्रकार भी थे। कौटिल्य ने अमात्यों (साधारण मत्री) की नियुक्ति मे आचार्य भारद्वाज के अभिमत की चर्चा की है। भारद्वाज के अनुसार राजा अपने सहपाठियो को अमात्य पद पर नियुक्त करे क्योंकि उनके हृदय की पवित्रता से वह सुपरिचित होता है उनकी कार्यक्षमता को भी वह जान चुका होता है। ऐसे ही अमात्य राजा के विश्वास पात्र होते हैं।

6 **विशालाक्ष**–कौटलीय अर्थशास्त्र के प्रकारण 3/अध्याय 7 मे अमात्यो की नियुक्ति में आचार्य विशालाक्ष द्वारा आचार्य भारद्वाज के राजा के सहपाठियो को आमात्य बनाने के सुझाव पर टिप्पणी की है। आचार्य विशालाक्ष के अभिमत से राजा के सहपाठी विश्वास पात्र हो ऐसा आवश्यक नही हैं। एक साथ खेलने उठने–बैठने के कारण सहपाठी अमात्य राजा का तिरस्कार कर सकते हैं। इसलिए विशालाक्ष के अनुसार अमात्य उनको बनाना चाहिए जो गुप्त कार्यों मे राजा का साथ देते रहे हो। समानशील तथा समान व्यसन होने क कारण ऐसे लोग गुप्त बातो का भेद खुल जाने के भय से राजा का अपमान नही करते हैं।

7 पिशुन–आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे आचार्य पिशुन का भी आमात्यों की नियुक्ति वाले अध्याय में वर्णन किया है। आचार्य पिशुन के अनुसार जो पुरुष राजा की प्राणघातक आपत्तियो मे रक्षा करे यह उसकी राजा के प्रति भक्ति है प्राणो की चिता न करके राजा की सहायता करना भक्ति है सेवाधर्म है, यह बुद्धि का प्रमाण नहीं, जो कि अमात्य का सर्वोच्च गुण ह। इसलिए अमात्य पद पर उन्ही को नियुक्ति करना चाहिए जो कि विशिष्ट राजकीय कार्यों पर नियुक्त हाकर अपने कार्यो को विशेष योग्यता के साथ सम्पन्न करके दिखा सके।

8 **कौणपदन्त**–आचार्य कौटिल्य ने कौणपदन्त का भी उल्लेख अमात्यों की नियुक्ति में किया है। आचार्य कोणपदन्त आचार्य पिशुन के मत से सहमत नही हैं। उनका कहना है कि आचार्य पिशुन के अनुसार लगाये गये लोग अमात्योचित गुणो से शून्य होते हैं। अमात्य पद जिनकों वश परम्परा से उपलब्ध रहा हो उन्ही को इस पद पर नियुक्त करना चाहिए। वे ही *सम्पर्ण रीति–नीति से परिचित रहते हैं। यही कारण है कि वे अपना अपकार होने पर भी परम्परा सम्बन्ध के कारण राजा को नही छोडते।*

9 **वातव्याधि**–आचार्य कौटिल्य ने अमात्यों की नियुक्ति मे आचार्य वातव्याधि का भी उल्लेख किया है। आचार्य वातव्याधि कौणपदन्त के अभिमत के समर्थक नहीं हैं। *उनकी मान्यता है कि इस प्रकार अमात्य,* राजा के सर्वस्व को अपने अधीन करके राजा के समान स्वतत्र वृत्ति वाले हो जाते हैं। इसलिए नीति कुशल राजा नये व्यक्तियो को ही अमात्य नियुक्त करे। नये अमात्य दण्डधारी राजा को यम का दूसरा अवतार समझ कर उसकी कभी *अवमानना नहीं करते।*

10 **आचार्य बाहुदन्ती पुत्र (इन्द्र)**– इनके अनुसार आचार्य वातव्याधि का मत भी उचित नही है। आचार्य बाहुदती–पुत्र के अनुसार नीतिशास्त्र पारगत किन्तु *क्रियात्मक अनुभव से शून्य व्यक्ति राजकार्यों को नहीं कर सकता। इसलिए जो लोग* कुलीन–बुद्धिमान–विश्वास पात्र वीर और राजभक्त हो उनको अमात्य पद पर लगाना चाहिए।

बाहुदन्तेय इन्द्र का पर्याय है। **बाहुदन्तक** जो कि नीति विषयक एक प्राचीन ग्रन्थ है इसमे आचार्य बाहुदन्ती पुत्र के विचारो का उल्लेख है। 'बाहुदन्तक ग्रन्थ' *विशालाक्ष (इन्द्र) नीतिशास्त्र का सक्षिप्त रूप है। यह भीष्म पितामह के समय बार्हस्पत्य* शास्त्र के नाम से प्रसिद्ध था। राजनीति की परम्परा म कथित है कि सर्वप्रथम पितामह ने एक लाख पद्यों मे दण्डनीति शास्त्र की रचना की। उसका सक्षिप्त सस्करण दस हजार पद्यो मे *विशालाक्ष ने किया। इसका भी सक्षिप्तीकरण आचार्य बाहुदन्तक ने 5000 पद्यों मे* किया।

11 **कौटिल्य**–आचार्य कौटिल्य का पर्याय चाणक्य विष्णुगुप्त भी है। चाणक्य उन्हे चणक के पुत्र होने के कारण *तथा कौटिल्य उन्हे कुटिल राजनीतिज्ञ होने के कारण* कहा जाता है। वे दोनों नाम उनके पितृ–प्रदत्त न होकर वश नाम या उपाधि नाम है। *कौटिल्य का वास्तविक* पितृ प्रदत्त नाम विष्णुगुप्त था। विष्णुगुप्त नाम का हवाला आचार्य कामदक के नीतिसार मे उपलब्ध होता है जिसकी रचना 400 ई पू के लगभग हुई। कामदकीय नीतिसार स स्पष्ट है कि कोटिल्य ने *अर्थशास्त्र* की रचना की है। कामदकीय नीतिसार का आधार *कौटिल्य का अर्थशास्त्र ही था। आचार्य कौटिल्य के आर्थिक विचार* अध्याय 9 में वर्णित है।

प्राचीन भारतीय आर्थिक चितन के प्रमुख स्रोत ग्रथ

प्राचीन भारतीय ज्ञान के प्रमुख स्रोत ग्रथ वेद ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद वेदाग छ शास्त्र कल्पसूत्र व्याकरण ज्योतिष स्मृति पुराण महाकाव्य नीतियाँ आदि है। इन मौलिक ग्रथों के भी कई भाग है। जैसे वेदों मे ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्व वेद ब्राह्मण ग्रन्थों में ऐतरेय शतपथ साम तथा गोपथ, उपवेद में आयुर्वेद धनुर्वेद गाधर्व वेद अथर्व वेद, आरण्यक मे ऐतरेय शाखायन तैतरीय मैत्रायणी तलव भार बृहदारण्यक उपनिषद मे ईश केन कठ प्रश्न मुण्डक माण्डूक्य ऐत्तरेयी तैतरेयी छान्दोग्य बृहदारण्यक, वेदाग मे शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द व ज्योतिष, शास्त्रो में न्याय वैशेषिक साख्य योग मीमासा वेदात, कलसूत्र मे श्रोत सूत्र (आश्वलायन शाखायन कात्यायन बोधायन आपस्तम्ब हिरणकेशी वैखानस भारद्वाज मानव लाटयायन द्राह्मायण जैमिनीय वैतान) गृह्य सूत्र (गोथिल व पारस्कर) धर्म सूत्र एव शुल्य सूत्र, व्याकरण मे पाणिनीय निरुक्त निघण्टु एव पतजलि, ज्योतिष मे वेदाग ज्योतिष सूर्य सिद्धान्तादि, स्मृतियो मे मनुस्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति नारद स्मृति पाराशर स्मृति हारीत स्मृति बृहस्पति स्मृति, पुराणो मे ब्रह्म पद्म विष्णु शिव लिग गरुड नारद भागवत अग्नि स्कन्द भविष्य ब्रह्मवैवर्त मार्कण्डेय वामन मत्स्य कूर्म एव ब्रह्माड, महाकाव्यो मे रामायण तथा महा भारत नीतियो मे विदुर नीति चाण्क्य नीति शुक्र नीति कामन्दक नीति कणिक नीति आदि प्रमुख है। इनके अतिरिक्त जैन व बौद्ध धर्म ग्रन्थों तथा दक्षिणी भारत के साहित्य में भी आर्थिक विचार प्राप्त होते हैं। भारत मे अर्थशास्त्र विषयक ग्रन्थो की रचना परम्परा 18वीं शताब्दी तक पहुँचती है। इनमे वैशम्पायन रचित नीति प्रकाशिका भोज का 'युक्ति कल्पतरु' सोमदेव का नीति वाक्यामृत लक्ष्मीधर के कृत्य कल्पतरु का राजनीति खण्ड चण्डेश्वर का राजनीति रत्नाकर मित्र मिश्र का प्रकाश आदि प्रमुख है।

परन्तु आर्थिक ज्ञान एव आर्थिक अवधारणाये सभी ग्रन्थो में नही है। आर्थिक ज्ञान किन ग्रथो मे है इस क्षेत्र मे भी अधिक शोध नही हुआ है। प्राचीन भारत में अर्थशास्त्र आर्थिक क्रियाएँ आर्थिक विचार आदि शब्दों का प्रयोग काफी व्यापक अर्थों में होता था। अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, धर्मशास्त्र विधि शास्त्र, नीतिशास्त्र आदि सभी का समावेश एक ही शास्त्र में हुआ करता था। अत विशुद्ध रूप से आर्थिक विचारों का सकलन उपर्युक्त मौलिक ग्रथों से ही करना होता है।

प्राचीन भारतीय आर्थिक चितन के स्रोत ग्रथो की सख्या इतनी अधिक है तथा उनमे दिया गया आर्थिक ज्ञान इतना व्यापक है कि यहाँ अर्थशास्त्र के प्रारम्भिक विद्यार्थियो के लिए सभी का समावेश करना सभव नही है। फिर भी प्राचीन भारतीय आर्थिक चितन के प्रमुख स्रोत ग्रथो में निम्न ग्रथो का परिचय देना उचित रहेगा।

(1) चार वेद
(2) उपनिषद

(3) विदुर नीति
(4) शान्ति पर्व
(5) मनुस्मृति
(6) याज्ञवल्क्य स्मृति
(7) शुक्र नीति
(8) कौटिल्य का अर्थशास्त्र।

1 चार वेद

वैदिक परम्परा के अनुसार सृष्टि के रचयिता–ब्रह्मा के मुख से वेद प्रकट हुए। तत्पश्चात ब्रह्मा का यह दिव्य ज्ञान ऋषियो को प्रदान किया गया तथा ऋषियो ने उक्त ज्ञान को मत्रो से सम्बद्ध किया।

प्राचीन समय मे 'वेद' शब्द का प्रयोग सम्पूर्ण वैदिक वाङमय के अर्थ मे होता था जिसमे सहिता ब्राह्मण आरण्यक तथा उपनिषद सभी सम्मिलित थे। परन्तु आगे चलकर 'वेद' शब्द केवल चार वेद सहिताओ, ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद तथा अथर्व वेद का ही द्योतक रह गया। दयानन्द सरस्वती के अनुसार 'वेद' शब्द का आशय 'सहिता भाग से ही है। ब्राह्मण आदि ग्रन्थ वेद–व्याख्यान और भाष्य माने जाते है।

विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति विन्दते लभन्ते,
विदन्ति विचारयन्ति सर्वे मनुष्या सत्यविद्याम्
यैर्येषु वा तथा विद्वासश्च भवन्ति ते वेदा।"

अर्थात जिनसे सभी मनुष्य सत्य विद्या को जानते है अथवा प्राप्त करते हैं अथवा विचारते है अथवा विद्वान होते है अथवा सत्य विद्या की प्राप्ति के लिए जिनमे प्रवृत होते है उनको वेद कहते है। आचार्य मनु ने वेदो को सर्व ज्ञानमय कहा है।

चार वेदो के चार उपवेद भी माने जाते है–आयुर्वेद धनुर्वेद गाधर्व वेद तथा अर्थ वेद। कहते है कि आयुर्वेद ऋग्वेद का उपवेद है धनुर्वेद यजुर्वेद का उपवेद है गाधर्व वेद सामवेद का तथा अर्थ वेद (अर्थशास्त्र) अथर्व वेद का उपवेद है। कहा जाता है कि द्वापर युग मे महर्षि वेद व्यास ने समस्त वेद वाग्मय का सम्पादन किया तथा चारो वेदो को अपने चार शिष्यो को पढाया जिन्होने अपनी–अपनी शैली मे वेदो का प्रचार किया।

(अ) ऋग्वेद

ऋग्वेद प्राचीन भारतीय आर्थिक चितन का आधारभूत ग्रथ है। अर्थव्यवस्था के सभी प्रमुख तत्त्व वेदो मे प्राप्त होते है। मानवीय सभ्यता की प्रथम पुस्तक ऋग्वेद तथा ऋग्वेद मे आधुनिक अर्थशास्त्र के सभी तत्त्व विद्यमान है। अत पश्चिमी अर्थशास्त्रियो से यह कहा जा सकता है कि आधुनिक अर्थशास्त्र की प्रथम पुस्तक भारत मे लिखी गयी है तथा उसके प्रमुख सूत्र चार वेदो मे भी ऋग्वेद मे है। आधुनिक अर्थशास्त्र मे आर्थिक ससाधन जनसख्या उत्पादन उपभोग विनिमय वितरण सार्वजनिक वित्त कल्याणकारी राज्य

आदि मुख्य भाग होते हैं तथा ऋग्वेद मे ये सभी तत्त्व विद्यमान है। ऋग्वेद विश्व मे मानव सभ्यता का प्रथम ग्रथ है। इसमे अर्थशास्त्र के निम्न तत्त्वो का वर्णन मिलता है।

(i) जनसख्या–प्रत्येक अर्थव्यवस्था का उद्देश्य जनता का अधिकतम कल्याण करना होता है। जन समुदाय प्रत्येक अर्थव्यवस्था का विषय क्षेत्र होता है। ऋग्वेद मे लोगो की दीर्घायु पर जोर दिया गया है। प्रत्येक व्यक्ति अनुशासित होकर दैनिक गतिविधियो को नियन्त्रित करे तो वह सौ वर्ष तक जीवित रह सकता है। ऋग्वेद मे कहा गया है कि लोगो को साहसी होना चाहिए तथा अपनी सम्पत्ति आदि की रक्षा की शक्ति होनी चाहिए। सतानोत्पत्ति से सम्बन्धित प्रार्थनाये हमे ऋग्वेद मे मिलती है। हमे समाज मे योद्धा स्वरुप नागरिक होना चाहिए। परिवार को एक इकाई के रूप मे माना गया है।

ऋग्वेद मे व्यावसायिक सरचना दी गयी है योद्धा किसान शिल्पकार व्यापारी आदि का वर्णन मिलता है। अच्छे व बुरे लोगो का वर्णन भी हमे इस ग्रथ मे मिलता है। बुरे लोगो की दण्ड की व्यवस्था है उदाहरण क लिए जुआ तथा जुआरी किस प्रकार परिवार व समाज के लिए कष्टदायक होता है इसका वर्णन हमे ऋग्वेद में प्राप्त होता है।

(ii) आर्थिक साधन– आज आधुनिक अर्थशास्त्र मे आर्थिक साधनो का विस्तार से वर्णन मिलता है। ऋग्वेद मे प्रमुख आर्थिक साधनो जैसे–भूमि समुद्र वर्षा जलवायु, वन पेड–पौधे खनिज तथा पशुधन का बहुत ही रोचक वर्णन है।

(iii) उपभोग–हम अर्थशास्त्र मे इच्छाओ/आवश्यकताओ के बारे मे पढते हैं। ऋग्वेद मे यज्ञ का वर्णन है अर्थात हम अग्नि देव की पूजा करते हैं। यज्ञ इच्छाओं व उपभोग का केन्द्र बिन्दु हैं। इच्छाओ को नियन्त्रित किया जाना चाहिए। इच्छाएँ हमे पाप तथा दुष्टता की तरफ नही प्रेरित करे ऐसा ऋग्वेद मे कई जगह वर्णित है। हमे अपनी आवश्यकताओ की सतुष्टि करनी चाहिए।

(iv) उत्पादन–ऋग्वेद मे कृषि उत्पादन प्रक्रिया का वर्णन मिलता है। अन्नो के प्रकार दिये हुए है। शिल्प कपडा मकान सोम घी दूध आदि उत्पादो का उल्लेख है। खाती चर्मकार दर्जी नाई आदि व्यवसायियो का भी वर्णन है।

(v) विनिमय–अर्थव्यवस्था मे वस्तुओं के विनिमय की व्यवस्था थी। अर्थव्यवस्था मे व्यापारियो के इधर–उधर भ्रमण का वर्णन है। कई श्लोकों में वस्तु की कीमत आपूर्ति तथा बाजार मे क्रय आदि का उल्लेख मिलता है।

(vi) वितरण–घरो मे नौकर (सेवक) रखने का सदर्भ मिलता है। कई प्रार्थनाये अधिक सम्पति एव अधिक नौकर होने की की गयी है। लोगों की सम्पत्ति के खत्म होने का भी जिक्र ऋग्वेद मे हैं।

(vii) करारोपण–ऋग्वेद म एक श्लोक मे जनता द्वारा राजा को कर देने की सलाह दी गयी है। इनके अतिरिक्त ऋग्वद म कुछ ऐसी प्रार्थनाओ तथा आशीर्वाद का उल्लेख है जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध अर्थशास्त्र से हैं जैसे–

(क) प्रकृति की उदारता का वर्णन,

(ख) लोगो द्वारा भगवान की पूजा तथा बदले मे विपुल मात्रा मे खाद्यान्न दूध पशुधन गाडियॉं बच्चे दीर्घायु अच्छा पारिवारिक जीवन के लिए प्रार्थना।

(ग) भगवान उनको विपुल मात्रा मे वस्तुएँ व साधन प्रदान करने का आशीर्वाद देते है बशर्ते वे धर्म का पालन करे तथा सही जीवन व्यतीत करे।

(घ) भगवान लोगो को सभी साधन प्रदान करते है परन्तु राक्षस (दुष्ट लोग) साधनो के प्रवाह मे बाधा पहुँचाते है लोग भगवान से प्रार्थना करते है तथा भगवान राक्षसो को मार कर साधन प्रवाह के गतिरोध को दूर करते है तथा विपुलता की स्थिति को पुन निश्चित करते हैं।

(ङ) जो साधनो का दुरुपयोग करते है भगवान उनको चेतावनी देते है तथा दुरुपयोग करने वालो के लिए दण्ड की व्यवस्था की जाती है।

(ब) यजुर्वेद

कर्मकाण्ड प्रधान इस वेद मे जहॉं यज्ञो और यज्ञ के विधानो का वर्णन है वही ज्ञान–विज्ञान आत्मा–परमात्मा तथा समाजोपयोगी सम्पूर्ण ज्ञान है। यजुर्वेद मे अर्थशास्त्र व आर्थिक अवधारणाओ से सम्बन्धित प्रमुख श्लोको का अर्थ निम्न प्रकार है।

(i) सुख प्राप्ति के लिए प्रार्थना–हे भगवान ! पृथ्वी आदि लोक मे हमे स्वस्थ इद्रिया पशु तथा उन्नति के साधन प्राप्त कराऐं। हमे और हमारे पशुओ धनो तथा सतानो को कोई हानि न पहुँचाऐं। सभी पदार्थ हमे सुख देने वाले हो। हम दुष्टो को सतापमुक्त करे तथा सुखद स्थान व अपार सुख प्राप्त करे। उक्त प्रार्थना से मुनष्य के उद्देश्य फलन की जानकारी होती है।

(ii) अग्नि से विभिन्न आवश्यकताओ के लिए प्रार्थन–यज्ञ (अग्निदेव) को मनुष्य ने विभिन्न कष्टो के मुक्तिदाता धन–सतान एव समृद्धिदाता अन्नोत्पादक वर्षा कारक विषावत अन्न–जल के रक्षक कल्याणकारी कर्म कराने वाला गृहपति बनाने वाले आदि नामो से सम्बोधित किया है। आगे प्रार्थना मे कहा गया है कि यह अग्नि हमे उस स्वर्ग मे स्थापित करे जहा मधु दुग्ध दधि आदि की अक्षीण धाराएँ साथ बहती है। यह अग्नि यज्ञ के विघ्नकर्त्ताओ को अपने तीक्ष्ण तेज से भगा दे तथा हमे धन प्रदान करे।

(iii) कृषि की प्रधानता– हे पृथ्वी ! तुम रत्न–धन की खान और कृषि–कर्म सम्पादन कारिणी हो मुझे इच्छित ऐश्वर्य दो और मेरी रक्षा करो।* उक्त प्रार्थना से कृषि की प्रधानता तथा बहुमूल्य खनिजो की जानकारी प्राप्त होती है।

(iv) उपभोग के प्रति दृष्टिकोण–यजुर्वेद मे कहा गया है कि ससार मे जो भी पदार्थ है उनमे ईश्वर व्याप्त है वे उसी के है। अत उनका त्याग–भावना से भोग करो। किसी के धन का लोभ न करो।** उक्त वाक्यो मे प्राचीन समय मे हमारा उपभोग के

* यजुर्वेद 12/70 18/12

** यजुर्वेद 40/1

प्रति दृष्टिकोण नजर आता है जो आज के उपभोगवादी सस्कृति के विरुद्ध है। किसी के धन का लोभ न करने की सलाह आज के युग मे वास्तव मे काफी सार्थक है।

(v) कार्य संस्कृति व जीवन की प्रत्याशा— इस लोक मे धर्मयुक्त कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करो। इससे भिन्न दूसरा कोई मार्ग नहीं है। निष्काम भाव से कर्म करने वाला कर्म से लिप्त नही होता। जो मन मनुष्यों को कार्य में प्रवृत करता है तथा मनुष्यों को प्रेरित करके ऐसे ले जाता है जैसे–सारथी लगाम से वेगवान रथ को ले जाता है। वह मेरा मन शिव सकल्प वाला हो। हे देव ! तुम कृषि, वृष्टि और बीज द्वारा उत्पन्न होने वाले, प्राणियों को कर्म प्रवृत करने वाले इन्द्रियों को अपने–अपने कर्म में लगाने वाले, जीवन के साथ चलने वाले भूख मिटाने वाले के समान हो। मैं तुम्हें अन्न लाभ कर्म प्रवृत्ति इद्रियों के द्वारा किये जाने वाले कार्यों के लिए स्थापित करता हूँ।

(vi) अन्न की किस्म—महान बल धारक उस अन्न की हम स्तुति करते हैं जिसके बल से इन्द्र ने वृत्र को मारा [वृत्र सूखा (अनावृष्टि) का दानव है तथा उन बादलो का प्रतीक है जो आकाश मे छाये रहने पर भी एक बूँद जल नहीं बरसाते इद्र अपने वज्र प्रहार से वृत्ररूपी दानव का वध कर जल को मुक्त करता है तथा फिर पृथ्वी पर वर्षा होती है] आगे प्रार्थना मे कहा जाता है कि हमारी बात मानो और हमारा कल्याण करो। हमारी सकल्प सिद्धि के लिए हमारी आयु वृद्धि करो।

(vii) व्यावसायिक सरचना—एक प्रार्थना मे कहा गया है कि अद्भुत धनो के धारक और मनुष्यो के कर्म दृष्टा सविता (परमेश्वर) को हम यज्ञ मे बुलाते है। ब्राह्मण को परमात्म सेवनीय है। क्षत्रिय को वीर कर्म वैश्य को मरुदगण शूद्र को सेवा चोर को अन्धकार, नपुसक को पापाचरण व्यभिचारिणी को कामाचार सेवनीय है। हे परमेश्वर! नृत्य के लिए सूत को, गीत के लिए नट को धर्म रक्षा के लिए सभापति कोमलता के लिए स्तुति करने वाले को, बुद्धि के लिए कारीगर को धीरज के लिए महीन काम करने वाले बढई को उत्पन्न कीजिये। हे परमेश्वर! बर्तन पकाने के ताप को झेलने के लिए कुम्हार को, बुद्धि बढाने के लिए शोभा कर्मा को सुन्दर स्वरूप बनाने के लिए मणि बनाने वाले को शुभाचरण के लिए गुणो को बोने वाले को बाण बनाने के लिए बाणकर्त्ता को हथियार बनाने के लिए आयुधकर्त्ता को उत्पन्न कीजिये। हे जगदीश्वर! बडे तालाबो के प्रबन्ध के लिए धीवर को समीपस्थ निकृष्ट क्रियाओ के लिए दास को छोटे जलाशयो के प्रबन्ध के लिए निषाद को नरसल वाली भूमि के लिए मत्स्य जीवी को पार की भूमि के लिए नौका को इस पार से उस पार पहुँचाने वाले को, तैरने के साधनो के लिए बाध बाधने वाले को, शब्दो के लिए व्याध पुत्र को श्वानों के लिए भील को गुदाओ के लिए बहेलिये को उत्पन्न कीजिये।

(viii) पशुधन की महत्ता—हे देव! हमे सब धनों को प्राप्त कराओ। हम

दानशील उपासक धनो का सदुपयोग करे। हम वीर पुत्र पाये। हम गौओ और अश्वो से युक्त हो तथा हमारे ऐश्वर्य मनुष्य तथा पशु पुष्टि प्राप्त करे। यज्ञफल के रूप मे मुझे पशुधन गृह सम्पति इच्छित पदार्थ प्राप्त हो। ग्राम्य–वन्य–पशु, धन पुत्रादि से मैं सम्पन्न होऊँ।

(स) सामवेद

चारो वेदो मे सामवेद तृतीय वेद है। इसमे अग्नि इन्द्र वरुण पूषा अर्यमा द्यावा–पृथिवी सूर्य सोम आदि की स्तुतियाँ है। इसके अतिरिक्त उपदेश तथा शिक्षाप्रद मत्र है। वेद को अखिल धर्म का मूल कहा गया है परन्तु गीता मे भगवान कृष्ण ने कहा है कि मैं वेदो में सामवेद हूँ। इससे सामवेद की उत्कृष्टता प्रकट होती है। सामवेद मे प्रमुख आर्थिक विचार निम्न है।

(ı) सामवेद मे अग्नि से प्रार्थना की गयी है कि तुम धन के स्वामी हो। तुम्हारी उपासना करने पर सब सुख प्राप्त होते है। तुम हमारे लिए अन्न उत्पन्न करने वाले हो सुख के साधन धन को देने वाले हो उस अग्नि के लिए हमारी मुख्य स्तुतियॉ पहुँचे। अग्नि को गो आदि पशुओ धन एव सतान का भी अधिपति बताया गया है। हे अग्नि! तू पृथ्वी के लिए हितकारी जल बरसाने वाला है तथा कृषि को पुष्ट करता है। मनुष्य से कहा गया है कि तेरा जो बडे से बडा वहनशील द्रव्य है उसे प्रकाशमान अग्नि मे होम दे। ऐसा करने से तेरे बहुत साधन तथा बहुत–सा अनाज उपजेगा।

(ıı) इन्द्र से रक्षा के लिए बहुत धन तथा सदा प्रहार सह सकने वाली विजयी सेना को सुदृढ रखने के लिए प्रार्थना की गयी है। विपुल धन से धनी इन्द्र तुम बडे हाथो वाले हो। हमे प्रशसनीय एव ग्रहणीय धन सब ओर से सग्रह कराओ। मनुष्य से कहा गया है कि सूर्य की किरण से चन्द्रमा प्रकाशित होता है। अत्यधिक वर्षा करने वाला इन्द्र जब जल बरसाता है तो सूर्य की पुष्टिकारक किरणे वृक्ष–वनस्पति पोषण करने मे सहायक होती है। धन–धान्यादि की गमनशील इन्द्र वर्षा तथा पूषा पोषण करता है। पृथ्वी माता के समान उस वृष्टि–पुष्टि को धारण करती है तथा वायुओ को अपने साथ घुमाती हुई अन्य उत्पन्न करने की इच्छा करती है।

हे इन्द्र! जैसे हमारे पूर्व–यज्ञ मे पधारे थे वैसे ही गौ अश्व रथ एव प्रतिष्ठाप्रद धन देने के लिए इस यज्ञ मे पधारिए। हे इन्द्र! जो मनुष्य तुम्हारा सखा हो जाता है वह अश्वो रथो और गोओ वाला होकर श्रेष्ठ रूप और अन्न–धन से सम्पन्न हो जाता है।

हे इन्द्र तुम जितने धन के स्वामी हो वह मेरा ही होगा। अत मुझे इतना दीजिये कि मै सोम गायक को धन देने मे समर्थ होऊँ। मैं व्यर्थ नष्ट करने में धन का उपयोग न करूँ।

(ııı) सामवेद के आरण्यक काण्डम् मे कहा गया है कि हे परमेश्वर! हम मनुष्यों

के इन सब अन्नो को प्राप्त करते तथा बाटना चाहते हुए न्यायपूर्वक बाटते हैं। अन्न कहता है कि हे मनुष्यो! मैं वायु आदि देवताओ का पूर्वज हूँ और सच्चा अमृत देने वाला हूँ। जो मेरा दान करता है वह ऐसे मनुष्यो की रक्षा करता है जो किसी को न देकर आप ही खाते है उस अन्न खाते हुए को मैं स्वय खा जाता हूँ।

(iv) सोम से प्रार्थना की गयी है कि तू हमारे लिए गौ अश्व सुवर्ण आदि ऐश्वर्य और अन्नो का दाता बन। हे सोम! हमारे लिए विपुल रस विपुल अन्न तथा सौभाग्य बरसाओ। हमारी गौओ के लिए सुख की वर्षा करो। अन्न–राशि से हमारा घर पूर्ण करो।

(v) समुद्र से उत्पन्न अश्विनीकुमार अपनी अच्छा तथा कर्म से धनो के प्रदायक है। उनसे प्रार्थना की गयी है कि हमे विपुल पशु–धन एव सुवर्णादि धन हमारे गृहो की ओर प्रेरित करो। हमें तेजस्वी बनाने के लिए अन्न प्रदान करो। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सामवेद मे उपभोक्ता के उद्देश्य तथा उपभोग के प्रति दृष्टि धन के सग्रह एव उपयोग की दृष्टि वितरण आदि की जानकारी प्राप्त होती है। सामवेद मे भी विपुलता की बात की गयी है।

(द) अथर्व वेद

वेदो मे अथर्ववेद का भी काफी महत्त्व है। मानव जीवन का जितना वैज्ञानिक विवेचन इसमे हैं उतना अन्यत्र कही नही है। इसमे जल अन्न औषधि अग्नि आदि की प्रार्थना की गयी है तथा सभी से सुख समृद्धि की कामना की गयी है।

व्यापार के सम्बन्ध मे इन्द्र से प्रार्थना की गयी है। प्रार्थना मे कहा गया है कि मैं इन्द्र की वणिक भाव से स्तुति करता हूँ। वह इन्द्र यहाँ आगमन करे और वणिक की हिंसा करने वाले शत्रु मार्ग को रोकने वाले दस्यु तथा व्याघ्र आदि को नष्ट करते हुए अग्रसर हो। इन्द्र मुझे व्यापार से होने वाले लाभ के रूप में धन प्रदान करें। व्यापार के सम्बन्ध में आशा की गयी है कि जिन देशो से हम व्यापार करते हैं उन देशो के मार्ग घृत–दुग्ध से हमारी सेवा करने वाले हो जिससे मैं क्रय–विक्रय द्वारा प्राप्त मूलधन को लाभ सहित घर ले आऊँ।

हे अग्नि! मैं व्यापार मे लाभ की कामना करता हुआ शीघ्र चलने की शक्ति पाने के निमित्त तुम्हारी स्तुति करता हुआ धन सम्पन्न बनूँ। इस प्रार्थना मे आगे कहा गया है कि हे अग्ने! दूर मार्ग चलने के कारण हमारे व्रत का लोप हो गया है उस दोष को क्षमा करो। मुझे इस दूर देश मे कष्ट सहने की शक्ति दो। क्रय–विक्रय दोनों लाभप्रद और सुखदायी हों। हे देव गण! मूलधन से बढा हुआ लाभ का धन हमें सुखी बनायें। हे अग्ने! लाभ को रोकने वाले देवताओ को उस हवि (भेट) से सतुष्ट कर लौटा दो। हे देवगण! जिस धन की मैं वृद्धि करना चाहता हूँ वह धन तुम्हारी कृपा से निरतर बढे। इन्द्र सविता सोम प्रजापति और अग्नि मेरे मन

को उस धन की ओर प्रेरित करे जिस धन की इच्छा करता हुआ मै व्यापार करने की इच्छा करता हूँ। अथर्व वेद मे सूर्य को धारणकर्ता तथा पोषणकर्ता तथा दरिद्र व्यक्ति के लिए काम्य फल का साधन माना गया है।

कृषि के सम्बन्ध मे अथर्व वेद मे बडा ही सुन्दर चित्रण है। कृषक सुखपूर्वक खेत जोते। वृषभ उन्हे सुख देने वाले हो हल और रस्सियाँ अनुकूल हो। हे शुन देव! तुम चाबुक मे रस भर दो। आकाशस्थ जल के देवता! इस जुती हुई भूमि को वृष्टि जल से भिगो दो। हे सीते! हम तुझे नमस्कार करते है तू जिस प्रकार सुन्दर फल से युक्त हो उसी प्रकार हमारे सामने आओ।

समानता की चर्चा अथर्व वेद मे काफी रोचकता से की गयी है। परमेश्वर कहते है। हे विवादी पुरुषो! तुम्हारे लिए मैं विद्वेष भाव को दूर करने वाला प्रीतियुक्त सामजस्य कर्मदाता हूँ। गौएँ जैसे– वत्स से स्नेह करती हो वैसे ही तुम परस्पर व्यवहार करो। पुत्र पिता का अनुगत हो माता भी पुत्र के अनुकूल मन वाली हो पत्नी पति से मधुर वाणी बोलने वाली हो। भाग बाटने के लिए भ्राता भ्राता का बुरा न करे। बहिन–भाई से बैर नहीं करे। यह सब भाई समान कार्य और समान गति वाले होकर मगलमय बाते करे। तुम समान मन वाले समान कार्य वाले रहकर छोटे--बडो का ध्यान रखते हुए परस्पर सुन्दर वचन कहते हुए जाओ। हे मनुष्यो ! मैं तुम्हें समान कार्यों में प्रवृत्त करता हूँ समानता के इच्छुको तुम्हारा अन्न–पानी का उपभोग एक जैसा हो।

उत्तराधिकार की संस्था का उस समय अस्तित्व था इसकी जानकारी इस श्लोक से लगती है–अन्न उत्पत्ति के कर्म को शीघ्र प्राप्त करे। यह सभी दृश्य प्राणी वृद्धि से अन्न पैदा करने वाले 'बीज प्रसव देवता' के बीच रहते है वे दान न देने वाले को भी दान करने की प्रेरणा करे। हमारे धन को पुत्र, पौत्रादि में चिरकाल तक स्थिर करे ।

धन प्राप्ति के लिए मनुष्य प्रार्थना करता है– पृथ्वी आकाश दिन रात्रि, जल और औषधि हमको इच्छित धन दे। पूर्वादि दिशाएँ हमकों काम्य धन प्राप्त कराये। सर्व प्रकार धन देने वाली वाणी का मैं उच्चारण करता हूँ। अथर्ववेद मे सौ हाथों से धनार्जन करने तथा हजार हाथो से बाटने का निर्देश दिया गया है।

पशुधन मे बैल (वृषभ) के महत्त्व की इस श्लोक से जानकारी प्राप्त होती है–गाडी को खीचने वाला बैल जोतने व भार ढोने के कर्म द्वारा पृथ्वी का पोषण करता है यही चारु पुरोडाश की उत्पत्ति मे सहायक होने से अकाल का पोषक है। यह वृषभ इन्द्र रुप प्रतीत होता है। जैसे इन्द्र वृष्टि जल से इस चराचरात्मक ससार का पालन करता है वैसे ही वृषभ पशुओ की उत्पत्ति करता हुआ दूध दही धान्य आदि प्राप्त करता हुआ ससार का पोषण करता है।

ऋण चुकाने के महत्त्व का भी अथर्व वेद मे सुन्दर वर्णन है। ऋणी पुरुष के पश्चात पुत्र पौत्रादि ऋण से तर जाते हैं। जिस ऋणी का पिता से चला आता ऋण

पुत्र–पौत्रादि चुका देते हैं वे भी तर जाते हैं। जिनके कुल में पुत्र–पौत्रादि नहीं होते और अपने तथा अपने पिता के ऋण का भुगतान नही कर पाते परन्तु भुगतान करने की उत्कृष्ट इच्छा रहती है तो वे उस इच्छा के कारण ही मुक्ति को प्राप्त होते हैं। चार वर्णों में ब्राह्मण के धन एव सम्पत्ति को छीनने से सम्बन्धित बातें इस प्रकार है–ब्राह्मण के अन्न को स्वादिष्ट वस्तु समझकर भक्षण करने वाला पापी अनेक विपत्तियो को निगलता है। ब्राह्मण से कर चाहने वाले और उन पर थूकने वाले रक्त की नदी मे बालो को खाते हुए अब तक पडे हैं। जिस राष्ट्र मे ब्राह्मण की गौ तडपती है वह उसके तेज का नाश कर देती है। जो राजा ब्राह्मण को नष्ट करता है वहा ब्राह्मण दुखी रहता है वह राज्य और राजा नष्ट हो जाते हैं।

ब्राह्मण पर डाली गयी विपत्ति उस पापी के राज्य को चार नेत्र चार ठोड़ी आठ पैर दो मुख और दो जीभ वाली होती हुई नष्ट कर देती है। हे नारद! जो ब्राह्मण के धन को अपना धन समझता है उसे वृक्ष भी अपनी छाया में नहीं आने देना चाहते हैं। वरुण कहते हैं कि ब्राह्मण का धन छीनना विष के समान है। ब्राह्मण की सम्पत्ति लेकर कोई जीवित नहीं रहता है।

2. उपनिषद

उपनिषदों मे ग्यारह उपनिषद मुख्य माने जाते हैं। ये हैं–इशावास्योपनिषद् केनोपनिषद कठोपनिषद् प्रश्नोपनिषद् मुण्डकोपनिषद् माण्डूक्योपनिषद ऐतरेयोपनिषद् तैतिरीयोपनिषद् श्वेताश्वतरोपनिषद् छान्दोग्योपनिषद बृहदारण्यकोपनिषद आदि। इनको सक्षेप में ईश केन कठ प्रश्न मुण्डक माण्डूक्य ऐतरेयी तैत्तिरेयी श्वेताश्वतर छान्दोग्य एव बृहदारण्यक कहते हैं।

ऋग्वेद में मानव जाति को विपुल धन एव सम्पत्ति का आशीर्वाद दिया है। ऋग्वेद के प्रत्येक पृष्ठ पर विपुलता एव धन का सदर्भ मिल जाता है। यजुर्वेद तो ज्ञान की समकालीन पुस्तक थी। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में समस्या को सुचारू रूप से स्पष्ट किया है। इस अध्याय को यजुर्वेद से अलग कर ईशावास्योपनिषद के रूप मे लिखा गया है।

प्रो एम जी बोकरे ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू अर्थशास्त्र' में ईशा उपनिशद में व्यक्त आर्थिक शब्दावली से सम्बन्धित निम्न बाते बतायी गयी है–

(i) इस पृथ्वी पर रहने वाले सभी व्यक्तियो के लिए सभी प्रकार के साधन दिये गये हैं।

(ii) अपनी आय दूसरो को दे देनी चहिए।

(iii) अपनी आय का उपभोग करो।

(iv) दूसरो के धन का अपहरण मत करो।

(v) धन किसका ? धन क्या है ?

यदि हम उपर्युक्त मुद्दो पर विचार करे तो सभी अर्थशास्त्री इस बात पर सहमत होगे कि ये आधुनिक अर्थशास्त्र के मूलभूत तत्त्व है। एडम स्मिथ की पुस्तक का नाम **An Enquiry into the Nature and Causes of Wealth of Nations** था जो कि ईशा उपनिषद मे सुझाये गये धन/सम्पत्ति की अवधारणा के नजदीक है।

3 विदुर नीति

विदुर नीति मे महाभारत के उद्योग पर्व के अन्तर्गत राजा धृतराष्ट्र को विदुर द्वारा दिये गये उपदेश सकलित है। विदुर नीति के अन्तर्गत राजनीतिक व्यवस्था तथा उसकी अर्थव्यवस्था एव समाजशास्त्र का वर्णन है। महात्मा विदुर का मानना है कि यदि समाज द्वारा धर्मशास्त्रो के नियमो का पालन नही होता है तो समाज पथ भ्रष्ट हो जाता हैं। उन्होंने धृ ष्ट्र को चेतावनी दी थी कि उसके निर्णय पाण्डवो के प्रति दुर्भावनापूर्ण है अत आगे बुरे दिनो के लिए तैयार रहो। विदुर नीति के अन्तर्गत व्यष्टि एव समष्टि परक विचार विमर्श है। उदाहरण के लिए परिवार एक व्यष्टि इकाई है अत पति–पत्नी सम्बन्ध पुत्र–पुत्रियो के जीवन की गुणवत्ता आदि परिवार के व्यष्टि परक विचार है। समष्टि स्तर पर महात्मा विदुर ने सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था को दण्ड नीति से अ षित करने पर जोर दिया है। प्रत्येक अर्थव्यवस्था मे अपराध तथा असामजस्य पर नियत्रण नही किया गया तो राष्ट्र की दुर्दशा हो जाती है। राष्ट्र के नागरिक राजा की आज्ञा का पालन नही करेगे तथा उसे हटा देगे। राजा के गैर–अनुशासित होने पर राजनीतिक व्यवस्था ही खण्डित हो जाती है। महात्मा विदुर ने अर्थशास्त्र से सम्बन्धित निम्न निर्देश दिये हे।

(i) लोगो को बचत करनी चाहिए जिससे वे सकट के समय स्वय तथा पत्नियो की रक्षा कर सके।

(ii) जीवन मे स्व–रोजगार श्रेष्ठ स्तर हे।

(iii) दूसरे के धन का स्वामित्व हरण वास्तव मे आत्महत्या के समान है।

(iv) एक परिवार को बिना बच्चों की बहिन तथा गरीब मित्र को आश्रय एव सरक्षण प्रदान करना चाहिए।

(v) जिस प्रकार मधुमक्खी फूलो से शहद एकत्र करती है उसी तरह राजा को प्रजा से कर लेना चाहिए।

(vi) राज्य को आय एव व्यय का अनुमान लगाना चाहिए तथा उसकी क्रियान्वति के लिए प्रशासक नियुक्त करने चाहिए। यह वास्तव मे आधुनिक बजट निर्माण प्रक्रिया ही है।

4 शान्ति पर्व

शान्ति पर्व महाभारत के विभिन्न पर्वो मे से एक हें। महाभारत सस्कृत वाङमय की एक अमूल्य निधि है। इसे शास्त्रो मे पचम वेद की सज्ञा दी गयी हैं। यह भारत का

सच्चा इतिहास तो है ही परन्तु साथ ही सभी तरह का ज्ञान इसमें भरा पड़ा है। इसे भारतीय ज्ञान का विश्व कोष कहा जाय तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। इसके रचयिता महर्षि *कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने कहा– 'यन्नेहास्ति न कुत्रचित्' –अर्थात जिस विषय की* चर्चा इसमे नही की गयी उसकी चर्चा अन्यत्र कही भी उपलब्ध नहीं हैं। महाभारत मे आदिपर्व सभापर्व वनपर्व विराटपर्व उद्योगपर्व भीष्मपर्व द्रोणपर्व कर्णपर्व शल्यपर्व सौप्तिकपर्व स्त्रीपर्व **शान्तिपर्व**, अनुशासनपर्व आश्वमेधिकपर्व आश्रमवासिकपर्व मौसलपर्व, महाप्रास्थानिकपर्व तथा स्वर्गारोहणपर्व प्रमुख हैं।

शान्तिपर्व मे अर्थशास्त्र से सम्बन्धित निम्न बाते हैं –

(i) राज्य अपने नागरिकों की सुरक्षा तथा उनकी आजीविका की व्यवस्था के लिए उत्तरदायी है। यही विषय आधुनिक अर्थशास्त्र का है।

(ii) राजा को सडको का निर्माण तथा पीने के पानी की व्यवस्था करनी चाहिए।

(iii) ब्राह्मणे द्वारा चलाये जाने वाले शिक्षा के आश्रयो की व्यवस्था राजा द्वारा दिये गये दान से होनी चाहिए। नागरिको को भी दान देना चाहिए।

(iv) ज्ञान धन कमाने मे सहायता करता है तथा धन से सुख की प्राप्ति होती है।

(v) राजा को बाजार के लिए स्थान की व्यवस्था करनी चाहिए।

(vi) वस्तुओ के उत्पादन मे लोगो मे प्रतियोगिता को उचित बताया गया है। सफलता प्राप्त करने के लिए प्रतियोगिता को बढावा देना चाहिए।

(vii) यदि किसी कार्य में साझेदारी है तो लाभ व हानि को बराबर बाटना चाहिए। यदि साझेदारी मे दिवाला निकल जाता है तो दायित्वो को बटवारा पूँजी के अनुपात में करना चाहिए।

राजस्व के सम्बन्ध मे शान्तिपर्व मे निम्न बाते मिलती है–

(i) राज्य को आय व व्यय का अनुमान लगाना चाहिए तथा उसी के अनुसार कर्मचारियो को रोजगार देना चाहिए।

(ii) युद्ध के समय राज्य को नागरिको से जमाएँ एकत्र करनी चाहिए तथा युद्ध के बाद लौटा दी जानी चाहिए।

(iii) जिस प्रकार मधुमक्खी फूलो से शहद एकत्र करती है उसी तरह राज्य को कर लेना चाहिए।

(iv) प्रारम्भ मे कर बहुत कम होने चाहिए तत्पश्चात धीरे–धीरे उनमे वृद्धि करनी चाहिए।

(v) जब तक सकट काल न हो राज्य को जनता से धन एव करों की माग नही करनी चाहिए। सकट के समय नागरिको को अपनी सम्पत्ति को छिपाना नही चाहिए।

(vi) वस्तुओं की लागत का अनुमान लगाने के बाद कर लगाना चाहिए।

राज्य व्यवस्था तथा अर्थ व्यवस्था पर नियत्रण के लिए भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा "हे राजन! दण्ड ही समस्त प्रजाओं का शासन और इनकी रक्षा करता है सबके सो

(i) मजदूरी–पूर्ण तथा अपूर्ण कार्य की मजदूरी की परिभाषा दी गयी है। प्रत्याशित लाभ से अधिक होने पर बोनस प्रदान करने के लिए कहा गया है। यह राजा का कर्त्तव्य है कि वह यह देखे कि मजदूरी की इन निर्धारित दरो का भुगतान हो रहा है या नही।

(ii) साझेदारी–साझेदारी का विभिन्न प्रकार की देयताओ तथा लाभ के विभाजन के सम्बन्ध मे विवेचन दिया गया है।

(iii) सयुक्त परिवार मे सम्पत्ति वितरण के नियम दिये गये हैं।

(iv) आयात–निर्यात की जाने वाली वस्तुओ का विवरण मिलता है।

(v) ऋण पर ब्याज को परिभाषित किया है।

(vi) उत्पादन लागत की सिफारिश की गयी है।

(vii) कारटेल व्यवस्था मे वस्तुओ की बिक्री निषेद्ध है।

(viii) वजन एव माप बताये गये हैं। कम तौल तथा मिलावट के लिए दण्ड की व्यवस्था है।

7 शुक्र नीति

शुक्र को दैत्यगुरु उशना भार्गव भृगु आदि नामो से भी जाना जाता है। शुक्र (उशना) राजशास्त्रकार के रूप मे प्रसिद्ध है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ये दण्ड नीति के एक सम्प्रदाय (औशनस) के प्रवर्तक कहे गये हैं जिसके अनुसार दण्ड नीति ही एक मात्र विद्या हैं। शुक्रनीतिसार शुक्र की ही परम्परा मे लिखा गया ग्रथ है।

शुक्र नीति पूर्णरूप से राजनीतिक अर्थव्यवस्था की अवधारणाओं से सम्बन्धित है। शुक्रनीति मे वैदिक साहित्य से किये गये धर्मशास्त्र के अनुसार जनता तथा राजा को राजनीतिक व आर्थिक गतिविधियो के सम्बन्ध मे निर्देश दिये गये हैं।

शुक्र ने अर्थशास्त्र को ज्ञान की 32 शाखाओ मे से एक बताया है। शुक्र नीति में प्रमुख आर्थिक ज्ञान निम्न है–

(i) अर्थशास्त्र की परिभाषा–अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो श्रुतियो व स्मृतियो के अनुसार राजा के कार्यों तथा प्रशासन का तथा उचित तरीके से आजीविका के साधनो का वर्णन करता है।

(ii) शुक्र ने धन (Dhanam) तथा द्रव्य (Dravyam) को परिभाषित किया है। धन मे पशु अनाज कपडे घास शामिल है तथा द्रव्य मे चॉदी सोना ताँबा तथा जवाहरात शामिल होते हैं।

(iii) किसी वस्तु के उत्पादन के लिए दी गयी कीमत उस वस्तु का मूल्य (Value) होती है।

(iv) वस्तु के सरलता एव दुर्लभता से उपलब्धता के अनुसार कीमत कम व अधिक होती है। इसके अतिरिक्त कीमत वस्तु में निहित उपयोगिता के गुण से भी प्रभावित होती है।

(v) हीरे जवाहरात तथा खनिजो की कीमत कम नही तय करनी चाहिए। ये सभी आधुनिक अर्थशास्त्र के विषय है। इसके अतिरिक्त निम्न विषयो के बारे मे शुक्र नीति मे श्लोक मिलते है।

(vi) ऋणो पर ब्याज

(vii) मजदूरी

(viii) करारोपण

(ix) वस्तुओ सम्पत्ति एव भूमि की बिक्री

(x) अर्थव्यवस्था मे झगडे एव विवादो का निपटारा

(xi) वजन एव माप तथा

(xii) मिलावट एव भ्रष्टाचार।

8 कौटिल्य का अर्थशास्त्र

भारत तथा यूरोप मे प्राचीन भारत की उक्त पुस्तक को अर्थशास्त्र की अधिकृत पुस्तक माना जाता है। इस पुस्तक के सम्बन्ध मे यह गलत धारणा है कि प्राचीन भारत मे यह प्रथम व एकमात्र अर्थशास्त्र की पुस्तक थी। जबकि वास्तविकता यह है कि कौटिल्य का अर्थशास्त्र तो प्राचीन भारत मे अर्थशास्त्र की अन्तिम पुस्तक थी। इस पुस्तक की रचना 321–300 ई पू के बीच माना जाता है। उक्त पुस्तक मे निम्न आर्थिक विचार है–

(i) अर्थ एव अर्थशास्त्र–मनुष्यो के व्यवहार या जीविका को अर्थ कहते है मनुष्यो से युक्त भूमि का नाम ही अर्थ है। इस भूमि को प्राप्त करने तथा रक्षा करने के उपायो को निरूपण करने वाला शास्त्र ही अर्थशास्त्र कहलाता है।

(ii) कौटिल्य के अनुसार–सुख का मूल धर्म है धर्म का मूल अर्थ है तथा अर्थ का मूल राज्य है। कौटिल्य के अनुसार ससार मे धन ही वस्तु है धन के अधीन धर्म और काम है।

(iii) कोष सग्रह के नियम

(iv) राजा को दिये जाने वाले अश का नाम शुल्क तथा इस कार्य के प्रधान को शुल्काध्यक्ष कहते है।

(v) शुल्क के नियम एव प्रकार

(vi) उत्पादन एव उसके साधन

(vii) कृषि नीति सिचाई तथा पशुपालन

(viii) वाणिज्य तथा व्यापार

(ix) स्त्री श्रमिक

(x) श्रमिक सघ

(xi) मुद्रा व्यवस्था

(xii) बाजार व्यवस्था

(xiii) मापतौल

(xiv) व्यक्तिगत सम्पत्ति एव सम्पत्ति का बटवारा

(xv) लाभ के नियम

(xvi) राजकीय आय एव व्यय

(xvii) ऋण एव ब्याज

सदर्भ

1 अथर्ववेद 13/2/12–19

2 यजुर्वेद 23/10

3 अथर्ववेद 1/4/2 4/6/5 ऋग्वेद 1/116/15

4 बोकरे एम जी हिन्दू इकॉनामिक्स (1993) जानकी प्रकाशन दिल्ली पृ245

5 महाभारत (शांति पर्व) 57/2 57/40 37/1 56/28

6 पूर्वोक्ति 58/1–3

7 काणे पी वी धर्मशास्त्र का इतिहास पृथम भाग पृ580

8 बुद्धचरित–•46

9 कौटिलीय अर्थशास्त्रम वाचस्पति गौरो चौखम्भा प्रकाशन पृ 1

10 Keith, A B , A History of Sanskrit Literature (Hindi translation by mangal Dev shastri) P 560

11 कौट अर्थशास्त्र पृ 1

12 साख्य योग तथा लोकायत (नास्तिक दर्शन) सभी आन्वीक्षकी विद्या के अन्तर्गत धर्म एव अधर्म त्रयी मे अर्थ–अनर्थ वार्त्ता के अन्तर्गत तथा सुशासन–दु शासन (कुशासन) दण्ड नीति के अन्तर्गत माने जाते है।

13 बृहस्पति स्मृति व्यवहार काण्ड 7/1

14 कृत्यकल्पतरू भाग 2 पृ 261

15 बृह स्मृति व्यवहारकाण्ड 1/44

प्रश्न

1 भारत के प्राचीन प्रमुख अर्थशास्त्रियो के नाम लिखिए।

2 भारत का अतीत सभी दृष्टि से वैभवशाली रहा है इस कथन को सिद्ध कीजिए।

3 आज प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन के अध्ययन की आवश्यकता है इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

4 पूजीवादी आर्थिक अवधारणाएँ मुख्यत किन सिद्धातो पर आधारित है ?

5 आचार्य बृहस्पति अर्थशास्त्र के जनक थे। सिद्ध कीजिए।

6 आचार्य बृहस्पति के प्रमुख आर्थिक विचारो को स्पष्ट कीजिए।

7 प्राचीन भारतीय आर्थिक ग्रन्थो के नाम लिखिए।

8 'प्राचीन भारतीय चिंतन आर्थिक ज्ञान से भरा पडा है आवश्यकता उसे सकलित करने की है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।

9 वेदो मे पाये जाने वाले आर्थिक चिंतन पर प्रकाश डालिए।

10 शांति पर्व याज्ञवल्क्य स्मृति उपनिषदो मे वर्णित आर्थिक विचारो को बताइये।

3

प्राचीन भारत में अर्थशास्त्र की परिभाषा, क्षेत्र एवं मान्यताएँ (Definition, Scope & Assumptions of Economics in Ancient India)

प्राचीन भारतीय वाग्मय मे अर्थशास्त्र के लिए 'राजधर्मशास्त्र' शासन शास्त्र दण्डनीति नीति वार्त्ता शास्त्र लोक व्यवहार आदि शब्दो का प्रयोग किया जाता रहा है। अर्थशास्त्र मे मुख्यत राजा के अधिकारो विशेषाधिकारो एव उत्तरदायित्वों के अलावा लोगो के जीविकोपार्जन से सम्बन्धित विचारो का समावेश रहा हैं । धर्म ग्रन्थों में अर्थशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र का मिश्रित रूप ही मिलता है जिसे हम **राजनैतिक** अर्थव्यवस्था कह सकते हैं ।

प्राचीन समय का वार्तशास्त्र आज का अर्थशास्त्र

प्राचीन अर्थ चितको ने **'वार्ता'** को सामाजिक जीवन का एक विशेष अग मानकर उसका अनुशीलन किया । उन्होने वार्ता के अन्तर्गत कृषि वाणिज्य तथा पशुपालन के अध्ययन को रखा । **'वार्ता'** शब्द सस्कृत के **वृति'** शब्द से सम्बद्ध है जिसका अर्थ व्यवसाय है । इसका प्रयोग सीमित तथा व्यापक अर्थ में किया जा सकता है । कृषि के अलावा वनो से प्राप्त सामग्री खनिज पदार्थ आदि का उल्लेख इसी शास्त्र के अन्तर्गत किया गया हैं । अर्थ उत्पादन विनिमय तथा वितरण आदि आर्थिक क्रियाओं के बारे मे वार्ताशास्त्र से जानकारी मिलती है । वार्ता' के नियन सामाजिक जीवन के नियमों पर आधारित है इसलिए इसे जीवन का महत्त्वपूर्ण अग माना गया है ।

वार्ताशास्त्र की चर्चा वैदिक काल से लेकर सम्पूर्ण सस्कृत साहित्य मे की गयी है । रामायण तथ महाभारत दोनो ही ग्रथो मे कहा गया है कि **वार्ता के सिद्धान्तों पर आश्रित रहने से ही यह ससार सुख पाता है ।**

आचार्य कौटिल्य के अनुसार—आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्या अर्थात आन्वीक्षकी त्रयी वार्त्ता तथा दण्ड नीति – ये चार विद्यायें होती है। मनु सम्प्रदाय के अनुयायी आचार्य त्रयी वार्ता ओर दण्डनीति इन तीन विद्याओ को मानते हैं। उनका मत था कि आन्वीक्षकी का समावेश त्रयी के अन्तर्गत हो जाता हे। आचार्य वृहस्पति के अनुयायी विद्वान केवल दो ही विद्याय मानते हैं— वार्ता तथा दण्ड नीति। उनके अनुसार त्रयी तो दुनियादार (लोकयात्राविद) लोगो की आजीविका का साधन मात्र हैं।

शुक्राचार्य के अनुयायी विद्वानों ने तो केवल दण्डनीति को ही विद्या माना है और उसी को सम्पूर्ण विद्याओ का स्थान व कारण स्वीकार किया है । परन्तु आचार्य कौटिल्य उक्त चारो विद्याओ को मानते हैं।

आचार्य कौटिल्य के अनुसार **कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता। धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टि प्रदानोदौपकारिकी। तथा स्वपक्ष परपक्ष च वशीकरोति कोश दण्डाभ्याम।** अर्थात कृषि पशुपालन और व्यापार ये वार्ता के विषय है । यह विद्या धान्य पशु, हिरण ताम्र आदि खनिज पदार्थ और नौकर–चाकर आदि की देने वाली परम उपकारिणी है । इसी विद्या से उपार्जित कोष और सेना के बल पर राजा स्वपक्ष तथा परपक्ष को वश मे कर लेता है। शुक्र नीति मे भी उधार लेना व देना कृषि वाणिज्य पशुपालन ये सब वार्ता शास्त्र के अग माने गये हैं ।

सामान्यत वार्ता के चार विभाग माने जाते हैं–कृषि वाणिज्य पशुपालन तथा उधार का लेन–देन। इनमे आगे चलकर कर्मान्त अर्थात शिल्पकारी को भी वार्ता के साथ जोड दिया गया। इसका उल्लेख देवी पुराण मे मिलता है यथा ओ देवी पशुपालन कृषि तथा शिल्पकारी में लगे हुए लोग वार्ता के उपासक हैं । आजकल **'वार्ता** अर्थशास्त्र के रूप मे परिवर्तित हो गयी है जिसके अन्तर्गत उपभोग उत्पादन विनिमय वितरण व राजस्व का अध्ययन होता है।

पाश्चिम के लोगो का ऐसा दावा है कि यह अर्थशास्त्र हमने ही प्रारम्भ किया। दुनिया मे अन्य किसी ने हम से पहले अर्थशास्त्र एव अर्थचितन के बारे मे विचार नही किया। परन्तु हमारे यहा के मनीषियो ने बहुत पहले ही इस सदर्भ में विचार करना प्रारम्भ कर दिया था। कौटिल्य (300 ई पू) तथा शुक्र आदि ने हजारो वर्षो पूर्व ही अर्थशास्त्र को परिभाषित कर दिया था ।

शुक्र की अर्थशास्त्र की परिभाषा

शुक्र नीति वास्तव मे राजनीतिक अर्थव्यवस्था (Political Economy) से सम्बन्धित हैं । इस शब्द का प्रयोग इसलिए किया जा सकता है क्योकि शुक्र ने राजा तथ प्रजा की धर्मशास्त्र के अनुसार सचालित की जाने वाली आर्थिक गतिविधियो का वर्णन शुक्र नीति मे किया है । शुक्र ने अर्थशास्त्र को ज्ञान की 32 शाखाआ मे से एक शाखा के रूप मे परिभाषित किया है । आधुनिक अर्थशास्त्र की तरह शुक्र ने भी शास्त्र (ज्ञान) तथा कला (Art) मे अन्तर किया हैं । शुक्र के अनुसार

श्रुतिस्मृत्यविरोधेन राजवृतादि–शासनम सुयुक्त्याऽर्थार्जन यत्र ह्यर्थशास्त्र तदुच्यते।

अर्थात–जिसमे श्रुति तथा स्मृति के अनुकूल राजाओ के लिए आचरण के विषय मे उपदेश किया गया हो तथा अच्छे कौशल से धन अर्जन करने की विद्या कही गयी हो उसे अर्थशास्त्र कहते है ।

प्रो एम जी बोकारे ने अपनी पुस्तक Hindu Economics मे शुक्र द्वारा दी *गयी अर्थशास्त्र की परिभाषा को इस प्रकार अनुवाद किया है । Arthshastra is that* Science Which describes the action and administration of kings in accordance with the dicotes of SHRUTI and SMRUTI as well as means of Livelihood in proper manner

उक्त परिभाषा मे दो बातो पर विशेष जोर दिया गया है प्रथम श्रुति तथा स्मृति के अनुकूल राजाओ द्वारा किये जाने वाले आचरण का उपदेश तथा द्वितीय अच्छे कौशल से धन अर्जन की विधि ।

श्रुति एव स्मृति के अनूकूल राजाओ के कई तरह के आचरण बताये गये है । नित्य प्रजाओ का पालन तथा दुष्टो का दमन करना ये दोनो राजाओ के परम धर्म है आधुनिक सदर्भ मे प्रत्येक राज्य को जनता की सभी तरह की आवश्यकताओ की पूर्ति करनी चाहिए। दुष्टो के दमन से तात्पर्य बाहरी आक्रमण से प्रजा की सुरक्षा तथा आन्तरिक अराष्ट्रीय तत्वो का दमन कर शाति व्यवस्था बनाये रखने से है। शुक्र नीति मे राजा के बारे मे कहा गया हे कि राजाओ को 7 गुणो से युक्त होना चाहिए अर्थात उसे पिता माता गुरू भ्राता बधु कुबेर यम आदि के वक्ष्यमाण गुणो से युक्त होना चाहिए। राजा को पिता की तरह अपनी सतान (प्रजा) के अपराधो को क्षमा करने वाला गुरू की तरह शिष्य को हित का उपदेश करने वाला तथा सुन्दर विद्या को पढाने वाला भ्राता की तरह पिता के धन मे से अपने भाग को ग्रहण करने वाला अर्थात प्रजा से ग्रहण करने वाला होना चाहिए । जिस तरह से बधु अपने मित्र के शरीर स्त्री धन तथा गुप्त रहस्य की रक्षा करने वाला मित्र के समान होता है उसी प्रकार राजा को भी प्रजा के लिए होना चाहिए। आवश्यकता पडने पर कुबेर के समान धन देने वाला एव यम के समान अपराधी को यथार्थ दण्ड देने वाला होना चाहिए । इस प्रकार राजा मे उपर्युक्त सात गुण होने अति–आवश्यक है ।

शुक्रनीति मे राज को आठ तरह के आचरण करने के लिए निर्देश है ।

(1) दुष्टो का निग्रह करना (2) दान देना (3) प्रजा का परिपालन (4) राजसूर्यादि यज्ञ (5) न्यायपूर्वक कोष (खजाना) बढाना (6) राजाओ से कर वसूल करना (7) शत्रुओ का मान मर्दन करना (8) बार–बार राज्य को बढाना। ये आठ प्रकार के आचरण है ।

शुक्र ने अर्थ का अर्जन युक्ति पूर्वक ही नही वरन सुयुक्तिपूर्वक करने को कहा है । अच्छी युक्ति से नैतिक तरीको से अर्थ अर्जन के उपाय जिस शास्त्र मे बताये गये है उसे अर्थशास्त्र कहते है ।

शुक्र नीति के प्रथम अध्याय के 154 वे श्लोक मे अर्थानर्थौ तू वार्ताया का वर्णन है अर्थात वार्ता मे अर्थ और अनर्थ विषयक ज्ञान होता है । इसी अध्याय के 156 वे श्लोक मे लिखा है–

कुसीद कृषि वाणिज्य गोरक्षा वार्तयोच्यते ।
सम्पन्नो वार्तया साधुर्न वृत्तेर्भयमृच्छति ।।

अर्थात कुसीद (सूद लेना) कृषि वाणिज्य (व्यापार) गोपालन इन सबको वार्ता कहते हैं । इस वार्ता शास्त्र का भलीभाति ज्ञान वाला राजा जीविका सम्बन्धी भय को प्राप्त नही करता है।

कौटिल्य की अर्थशास्त्र की परिभाषा

कौटिल्य अर्थशास्त्र के 180 वे प्रकरण अध्याय 1 तन्त्रयुक्तय नामक शीर्षक मे अर्थशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार दी हुई है –

मनुस्याणा वृतिरर्थ मनुष्यवती भूमि रित्यर्थ तस्या पृथिव्या लाभपालनोपाय शास्त्रमर्थशास्त्रमिति ।

अर्थात मनुष्यों की जीविका को अर्थ कहते हैं। मनुष्यों से युक्त भूमि को भी अर्थ कहते हैं। इस प्रकार की भूमि को प्राप्त करने तथा उसकी रक्षा करने वाले उपायो का निरूपण करने वाला शास्त्र अर्थशास्त्र कहलाता है।

आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में कहा है कि पृथ्वी की प्राप्ति तथा उसकी रक्षा के लिए पुरातन आचार्यो ने जितने भी अर्थशास्त्र विषयक ग्रथो का निर्माण किया उन सबका सार सकलन कर अर्थशास्त्र की रचना की है ।

प्राचीन आर्थिक चिंतन पर आधारित अर्थशात्र की आधुनिक परिभाषा

वार्ता नाम से अभिहित प्राचीन अर्थशास्त्र का सम्बन्ध ज्ञान की प्रत्येक शाखा से था। प्राचीन काल मे लोग ज्ञान प्राप्ति का लक्ष्य मोक्ष मानते रहे तथा मोक्ष का सम्बन्ध पुरूषार्थो के साथ जुडा था । धर्म अर्थ काम एव मोक्ष चार पुरूषार्थ कहे जाते थे । इन्हीं पुरूषार्थो के अन्तर्गत मानव समाज की सारी मर्यादाये निहित थी । इसी प्रकार प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूप से वार्ता शास्त्र का चार पुरूषार्थो से सम्बन्ध रहा है । इसी को आधार मानते हुए डा बी एल गुप्ता ने अपने लेख प्राचीन भारतीय अर्थ चिंतन की प्रासगिकता मे प्राचीन भारतीय मनीषियो की दृष्टि को ध्यान मे रखते हुए अर्थशास्त्र को इस प्रकार परिभाषित किया है *अर्थशास्त्र एक ऐसा सामाजिक विज्ञान है जो उन मानवीय व्यवहारो का अध्ययन करता है जो धर्म के अनुसार अर्थ और काम की साधना करते हुए मोक्ष के परम् लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयत्नो से सम्बन्धित होते है।*

इस परिभाषा की पुष्टि चाणक्य–प्रणीत सूत्रो से भी होती है जैसे–सुखस्य मूल धर्म। धर्मस्य मूलअर्थ। अर्थस्य मूल राज्यम। राज्यमूलमिन्द्रि जय। अर्थात सूखका मूल धर्म है । धर्म का मूल अर्थ है । अर्थ का मूल राज्य है। राज्य का मूल इन्द्रिजय है।

अर्थशास्त्र का क्षेत्र (Scope of Economics)

पाश्चात्य विचारो पर आधारित आर्थिक चितन परम्परा के अनुसार हमे यह जानकारी है कि मनुष्य की आवश्यकताएँ अनन्त होती है । आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए वह प्रयत्न करता है तथा प्रयत्नो से उसे धन प्राप्त होता है तथा धन के व्यय से वह आवश्यकता की पूर्ति कर सतुष्टि प्राप्त करता है। इस प्रकार आवश्यकता प्रयत्न धनार्जन एव सतुष्टि का आर्थिक चक्र चलता रहता है। इस आर्थिक चक्र को निम्न चित्र से व्यक्त कर सकते हैं। *प्राचीन भारतीय चितकों ने इस दृष्टिकोण को अधूरा या सकुचित बताया है ।*



प्राचीन भारतीय चितन मे धर्म अर्थ काम एव मोक्ष जैसे चार पुरूषार्थो की कल्पना की है। इन चारो पुरूषार्थो की सहायता से उन्होने अर्थशास्त्र को अधिक व्यापक समग्र तथा सतुलित आधार प्रदान किया है। इन चारो पुरुषार्थे के अन्तर्गत मानव समाज की सभी मर्यादाये निहित थी। प्राचीन विचारको ने प्रवृति तथा निवृति मार्ग मोक्ष के दोनो साधनो को समान रुप से प्रमुखता प्रदान की है। सारे समाज के लोग इन्ही पुरुषार्थों को पथ प्रदर्शक मानकर अपने व्यावहारिक जीवन मे इनका प्रयोग करते थे

पाश्चात्य अर्थशास्त्र केवल शारीरिक–भौतिक आवश्यकताओ व समस्याओ का समाधान देने का प्रयास करता है जबकि *प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्र* शरीर और आत्मा दोनो की समस्या का समाधान प्रस्तुत करता है। पाश्चात्य अर्थशास्त्र केवल अर्थ एव काम तक सीमित है जबकि भारतीय अर्थ चितन धर्म अर्थ काम एव मोक्ष तक व्यापक है। प्राचीन भारतीय अर्थ चितन आवश्यकताओ की पूर्ति शरीर के लाभ और आत्मा के विकास दोनो को साथ–साथ लेकर करने पर जोर देता है ।

शरीर वाहन है **आत्मा** का। *शरीर का काम आत्मा के विकास में सहायता करना* है। शारीरिक उन्नति आत्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करने के लिए आवश्यक है । आत्म ज्ञान के साथ–साथ जिस अर्थशास्त्र का विकास होगा उसका आधार धर्म होगा उसका लक्ष्य **मोक्ष** होगा और उसका काम शरीर का पोषण और सवर्द्धन होगा।

धर्म ओर मोक्ष का लक्ष्य रखने पर आवश्यकताएँ सीमित रहती है। शरीर की आवश्यकताएँ तो गिनी–चुनी होती है समस्या तब खडी होती है तब आवश्यकता 'वासना' बन जाती है। शरीर तब भौतिक पदार्थो का उपयोग अपने विकास और सरक्षण के लिए करता है तब उसे वस्तु चाहिए वह उसकी आवश्यकता होती है। किन्तु जब शरीर किसी वस्तु की प्राप्ति मे मौजमस्ती का अनुभव करने लगता है तथ शरीर के लाभ–हानि की बात भूल जाता हे तब वह वासना की कोटि मे आ जाती है । प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्र मे शारीरिक आवश्यकताओ की पूर्ति का मार्ग तो प्रस्तुत है ही साथ ही उन आवश्यकताओ को कम–से–कम रखने का मार्ग दर्शन भी दिया गया है । जबकि पाश्चात्य अर्थशास्त्र आवश्यकताओ को बढाकर उन्हीं की पूर्ति को जीवन का लक्ष्य मानता है । यही कारण है कि आजकल पाश्चात्य देशो मे उपभोगवाद अपनी चरम सीमा पर है । पाश्चात्य आर्थिक दर्शन का आधार जहाँ असयमित उपभोग पर खडा है वही प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्र का आधार सयमित उपयोग है ।

भारतीय आर्थिक विचार एकात्मवादी हैं । ईशावास्योपनिषद में कहा है कि जो केवल भौतिकवाद का विचार लेकर चलते हैं वे अन्धकार को प्राप्त होते हैं जो केवल अध्यात्मवाद को लेकर चलते हैं वे घोर अधकार को प्राप्त होते है । पहले से (भौतिकवाद से) मृत्यु को जीतना चाहिए और दूसरे से (आत्मवाद से) अमरता प्राप्त करनी चाहिए ।

वास्तव में भौतिक तथा आत्मिक सुख अलग–अलग नहीं हैं कपडे के ताने–बाने के समान परस्पर गुम्फित है ।

गीता में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि जिन व्यक्तियों का और कोई लक्ष्य न हो तथा अनन्यभाव से मेरे दिव्यस्वरूप का ध्यान करते हुए निरन्तर मेरी पूजा करते है। उनकी जो आवश्यकतायें होती हैं उन्हे मैं पूरी करता हूँ तथा जो कुछ उनके पास है उसकी रक्षा करता हूँ।* इस प्रकार प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्र का आधार भौतिक व आत्मिक दोनों प्रकार के सुख प्राप्ति रहा है । इसकी विस्तार से चर्चा पुरूषार्थ चतुष्टय शीर्षक मे और की जायेगी ।

अर्थशास्त्र की विषय वस्तु (Subject Matter)

प्राचीन भारतीय अर्थ चिंतन विशुद्ध रूप से आर्थिक नही रहा । अर्थशास्त्र के साथ राजनीति शास्त्र नीतिशास्त्र व धर्मशास्त्र भी सम्बन्धित था । प्राचीन समय मे इनको अलग करने की कोशिश नही की गयी । प्राचीन भारतीय अर्थ चिंतन मे अर्थशास्त्र की विषय वस्तु क्या हुआ करती थी उसका विवरण कोटिल्य के अर्थशास्त्र मे दिया गया है ।

---

* गीता–9.22

प्राचीन भारतीय आर्थिक चितन की आधारभूत मान्यताएँ

(Basic Assumptions of Ancient Indian Ecomomic Thinking)*

प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन की मूलभूत मान्यताएँ निम्नलिखित है–

(1) एकात्म मानव

(2) समग्र विवेकशीलता

(3) धर्माधारित आर्थिक सरचना

(4) अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे औचित्य (न्याय) का सिद्धात तथा

(5) पुरूषार्थ चतुष्टय।

1 एकात्म मानव (Integral Man)**

पाश्चात्य अर्थशास्त्र 'आर्थिक मानव' की परिकल्पना पर आधारित है जिसमें निर्णय मात्र वित्तीय एव भौतिक सम्पत्ति के रूप मे लाभ–हानि की गणनाओं पर आधारित होते है । पूँजीवादी व्यवस्था मनुष्य को धन के पीछे दौड़ने वाले स्वार्थी व्यक्ति के रूप मे प्रस्तुत करती है तो साम्यवादी अर्थव्यवस्था उसे जडवत काम करने वाले मशीनी पुर्जे के रूप मे मानती है । परन्तु प्राचीन भारतीय चिंतन 'आर्थिक मानव' की अवधारणा को पूर्णतया नकार कर उसके स्थान पर **एकात्म मानव** की अवधारणा प्रस्तुत करती है । चूँकि आर्थिक या **अर्थ मानव, वैज्ञानिक मानव, जैविकीय मानव,** सामाजिक पशु आदि समस्त पाश्चात्य अवधारणाये आज अपर्याप्त एव असगत सिद्ध हो चुकी है। अत एकात्म मानव की भारतीय अवधारणा ही आर्थिक सामाजिक सरचना एव वैकल्पिक आर्थिक नीति का आधार बनना चाहिए। भारतीय चितको ने मनुष्य को केवल अपनी जैवकीय एव भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए यत्रवत काम करने वाली किसी भौतिक एव स्थूल इकाई के रूप मे नहीं देखा है बल्कि वे तो उसे सर्वव्यापक ब्रह्म के स्वरूप मे सूक्ष्म एव चैतन्य 'एकात्म मानव' के रूप मे ही स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार तो प्रत्येक मनुष्य साक्षात ब्रह्म का ही स्वरूप है–**'अह ब्रह्मोऽस्मि'** ।

डा वी के आर वी राव के अनुसार मनुष्य शरीर व बुद्धि का मिश्रण मात्र ही नही अपितु उसमे आत्मा की शक्ति भी है जो शुद्ध 'कल्याणकारक एव दैवीय गुणो' से परिपूर्ण है । अत मनुष्य जहाँ अपने हृदय की दुर्बलताओ मन की कमजोरियों एव स्वार्थवृतियो के कारण समाज मे अनेक समस्याओ को जन्म देता है वहाँ वही यदि उसके अन्तस की सदवृतियो एव देवत्व को जगाने एव बढाने का प्रयास किया जाय तो सब समस्याओं को सुन्दर सुख कारक हल प्रस्तुत कर सामाजिक कल्याण का वाहक बन सकता है ।

विश्व मे प्रचलित वर्तमान व्यवस्थाओ मे मनुष्य अपना स्थान खोता जा रहा है ।

* डॉ बी एल गुप्ता प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन की प्रासगिकता म द स वि अजमेर में आयोजित सगोष्ठी (मार्च 1997) में प्रस्तुत लेख।

** M S G Guruji Integeral Man Bhartiva Concept

मनुष्य व्यवस्था का केन्द्र बनने के स्थान पर व्यवस्था का दास बनता जा रहा है । अत हमे मनुष्य केन्द्रित मानवीय सवेदनाओ से परिपूर्ण एक मानवीय व्यवस्था का निर्माण करना होगा । यह एक ऐसी व्यवस्था होगी जिसमे मनुष्य को उसकी महानता का अहसास कराते हुए उसकी योग्यताओ व क्षमताओ का जागरण कर उसे उसका उचित स्थान दिलाना होगा और साथ ही उसके व्यक्तित्व मे अन्तर्निहित दैवीय ऊँचाइयो को प्राप्त करने के प्रयास मे उसे सब प्रकार प्रोत्साहित करना होगा ।

माधवराव सदा शिवराव गोलवलकर गुरुजी के अनुसार जिस व्यक्ति का प्रमुख ध्येय अर्थ एव काम की प्राप्ति होता है वह भोग विलासी होता है। परन्तु जो व्यक्ति पूरे समाज की सोचता है, जिसमें सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने के गुण हैं, जो समाज में बिना सतुलन बिगाडे धन कमाता है तथा उसका उपभोग करता है जो बिना किसी पुर्वाग्रह के स्वय की इच्छा से किसी भी पूजा पद्धति को अपनाता है तथा ईश्वर के किसी भी स्वरूप में आस्था व्यक्त कर जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करता है उसे सम्पूर्ण एकात्म मानव कहते हैं ।

दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार एकात्म मानव, जीवन के सभी अगो का ध्यान मे रखते हुए सकलित विचार करता है । मनुष्य प्राणी शरीर मन बुद्धि और आत्मा का सकलित रूप है । इसलिए मानव का सर्वांगीण विचार उसके शरीर मन बुद्धि और आत्मा सबका सकलित विचार है। व्यक्तित्व के इन चारों पक्षो की समुचित आवश्यकताओं को पूरा करने उनकी विविध मागो और इच्छा–आकाक्षाओ को पूर्ण करने तथा उनका सर्वांगीण विकास करने के लिए भारतीय सस्कृति ने व्यक्ति के सामने कर्त्तव्य के रूप मे चार पुरुषार्थों का आदर्श रखा है । यहाँ व्यक्ति के सर्वांगीण विकास मे उसकी भौतिक प्रगति के साथ–साथ नैतिक एव आध्यात्मिक उन्नति भी शामिल है जिससे समाज की सुयोग्य धारणा हो सके । मनुष्य के चार पुरुषार्थ–धर्म अर्थ काम एव मोक्ष होते है। उनकी उपासना से मनुष्य को सुख प्राप्त होता है ।

व्यक्ति की तरह समाज का भी शरीर मन बुद्धि व आत्मा होती है तथा उसे भी धर्म अर्थ काम व मोक्ष की साधना करनी होती है। चूँकि व्यक्ति व समाज एकात्मता के सम्बन्धो से आपस में जुडे होते हैं अत व्यक्ति व समाज की पुरुषार्थ साधना एक दूसरे की पूरक होती है।

जिस व्यवस्था मे व्यक्ति का विचार पुरुषार्थी मानव के बजाय किसी विशालकाय यन्त्र के पुर्जे के रूप में किया जाता है वह व्यवस्था अधूरी हैं। जिस व्यवस्था में मानव का विचार शरीर मन बुद्धि और आत्मा के सुख को ध्यान में रखकर करने की बजाय इनमे से कुछ ही अगो के लिए किया जाता है वह व्यवस्था भी अधूरी है। व्यक्ति–जीवन का सर्वांगीण तथा चारों पुरूषार्थो के अनुसार विचार करने वाला, उसके लिए प्रयत्नशील रहने वाला ओर साथ ही व्यक्ति से लेकर विश्व–मानव तक परिवार, राष्ट्र आदि विविध एकात्म समूहों ओर उनसे भी परे जाकर परमेष्ठी से तादात्म्य स्थापित

करने की क्षमता रखने वाला व्यक्ति एकात्म मानव कहलाता है तथा यह एकात्म मानव एकात्मक मानववादी दर्शन का आधार है।

2 समग्र विवेकशीलता (Integrated Rationality)

जिस प्रकार पाश्चात्य आर्थिक दर्शन की आर्थिक मानव (Economic man) की अवधारणा के स्थान पर भारतीय आथिक चितन मे एकात्म मानव (Integeral man) की अवधारणा रही है उसी प्रकार भारतीय आर्थिक चितन पाश्चात्य आर्थिक दर्शन की आर्थिक विवेकशीलता (Economic Rationality) के स्थान पर समग्र विवेकशीलता की बात करता है। आर्थिक विवेकशीलता एक सकुचित दृष्टिकोण है जिससे जीवन के एक आर्थिक पक्ष की ही चर्चा होती है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो के आर्थिक मानव की आवधारणा स्वार्थ पर टिकी हुई है इसमे मनुष्य अपने स्वार्थ के आधार पर निर्णय लेता है। उदाहरण के रूप मे एक उपभोक्ता उस वस्तु या वस्तुओ के सयोगो को चुनाव करता है जिससे उसे अधिकतम सतुष्टि प्राप्त होती हैं। एक उत्पादक अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए न्यूनतम लागत सयोग का चयन करता है । एडम स्मिथ ने पूँजीवाद को स्वार्थी भावना उत्पन्न कर बढाया। एडम स्मिथ ने एक जगह लिखा है कि कभी किसी का भला मत करो यदि भला करना ही हो तो तब करो जब ऐसा करने से तुम्हारा कोई स्वार्थ सिद्ध होता हो (do not try to do any good, let good come out as by product of selfishness)। आर्थिक मानव व आर्थिक विवेकशीलता के सकुचितपन तथा स्वार्थीपन का अनुमान कीस के इस कथन से भी होता है आगे आने वाले सौ वर्षों के लिए हम यह मान ले तथा दूसरो से भी मनवा ले कि बुरा ही अच्छा है तथा अच्छा ही बुरा है क्योकि बुरा परिणाम देता है अच्छे से परिणाम नहीं मिलता । लोभ व लालच को हम कुछ आर वर्षों तक अपना भगवान बनाकर रखे क्योकि उसी के माध्यम से हम गरीबी के बोगदे (Tunnel) को पार कर प्रकाश की किरण देख सकते है । इस प्रकार पाश्चात्य आर्थिक विचार स्वार्थ की मान्यता पर खडा है ।

आर्थिक विवेकशीलता के विरूद्ध भारतीय आर्थिक चिंतन में पहले से ही समग्र विवेकशीलता का विचार दिया है । भारतीय दर्शन प्राचीन समय से ही समग्र समन्वित एव सतुलित दृष्टिकोण मे विश्वास करता है । भारतीय दर्शन के अनुसार वह आर्थिक प्रणाली सर्वोत्तम मानी जायेगी जिसमे व्यष्टि एव समष्टि के प्रति उचित समन्वय बनाये रखा जा सके । आर्थिक क्षेत्र में एक सीमा तक स्वतत्रता एव स्वहित की प्रेरणा का महत्त्व होता है किन्तु इसे नैतिक मूल्यो एव वैधानिक प्रावधानो के माध्यम से सार्वजनिक हित मे निर्देशित एव नियमित भी किया जाना चाहिए । अत हमारी आर्थिक सरचना इस प्रकार की होनी चाहिए जिसमे निजी उद्यम प्रेरणा व पहल के साथ-साथ सामाजिक नैतिक नियत्रण की व्यवस्था रहे ।

भारतीय आर्थिक चितन मे आर्थिक मानव की जगह एकात्म मानव की अवधारणा पर विचार किया है भारतीय दर्शन मे एक ऐसे मनुष्य को आर्थिक क्रियाओं का केन्द्र माना

है जो केवल अर्थ या आर्थिक कारको से परिचालित नही होता बल्कि आर्थिक सामाजिक नैतिक धार्मिक राजनैतिक जैवकीय पारिस्थितिकीय एव अनेक कारको के सामूहिक प्रभावो से प्रभावित होता है । प्राचीन भारतीय चितको ने मनुष्य को उसकी विभिन्न आवश्यकताओ व समस्याओ के सदर्भ मे अलग–अलग टुकडों मे देखने–समझने की बजाय समग्र एव एकात्म स्वरूप मे ही देखा है। उनकी दृष्टि मे मनुष्य की आर्थिक समस्याएँ एक–दूसरे के साथ गहरे रूप से जुडी हुई हें एक–दूसरे को अनवरत प्रभावित करती रहती हैं। अत न तो किसी एक समस्या को अलग से समझा जा सकता हे तथा न ही उसका अलग–अलग कोई हल ही प्रस्तुत किया जा सकता है। मानवीय जीवन से सम्बन्धित इस प्रकार के समग्र दृष्टिकोण के कारण ही भारतीय चितको ने आर्थिक समस्याओ को उनके अपने सकीर्ण अर्थों मे केवल आर्थिक एव वित्तीय दायरो तक ही सीमित नही रखा बल्कि उनका सम्बन्ध सम्पूर्ण सामाजिक परिवेश से जोडकर उसी व्यापक धरातल पर उनका हल खोजने का प्रयत्न किया था यही कारण है कि उनके द्वारा दिए गये विधान एव व्यवस्थाएँ तथा विकसित की गयी सस्थायें एकाकी एव एकपक्षीय न होकर सर्वतोमुखी एव सर्वपक्षीय है। उनकी विभिन्न व्यवस्थाओ में हमे आर्थिक सामाजिक राजनैतिक धार्मिक आदि सभी पक्षो का समन्वय मिलता है ।

इस प्रकार समग्र विकासशीलता से तात्पर्य आर्थिक चितन के ऐसे आधार से है जिसमें मनुष्य का विचार आर्थिक मानव के एकागी दृष्टिकोण से न करते हुए जीवन के समग्र पहलुओं (आर्थिक सामाजिक धार्मिक राजनैतिक आध्यात्मिक, पर्यावर्णीय) तथा ऐसे मानव के अन्य मानवों एवं मानवेत्तर सृष्टि के साथ परस्पर पूरक एकात्म सम्बन्धों पर विचार कर समृद्ध सूखी एवं कृतार्थ जीवन की दिशा का बोध करावे।

जिस अर्थशास्त्र को मानव के समग्र जीवन और उसके आर्थिक घटको की भाति आर्थिकेत्तर घटको के सम्बन्धो का भान न हो वह मानव का शाश्वत कल्याण की योग्य दिशा कदापि नही दे सकता ।

3 धर्माधारित आर्थिक सरचना

भारतीय चितक अर्थशास्त्र को एडम स्मिथ की तरह केवल धन का विज्ञान ही स्वीकार नहीं करते । उनके अनुसार तो अर्थशास्त्र एक **नैतिक अर्थ रचना** का विज्ञान है। भारतीय चितन के अनुसार अर्थशास्त्र को धर्मशास्त्र के नियमो व मर्यादाओं मे काम करना चाहिए। जब कभी इस नियम का उल्लघन हुआ समाज को कष्ट उठाने पडे । इस पीडा से आहत व्यास जी ने भारत सावित्री स्त्रोत मे कहा था –

उर्ध्वबाहुविरोभ्येष ने हि कश्चित् श्रुणोति माम ।
धर्मादर्थश्यकामश्च स धर्म कि न सेव्यते ।।

प्राचीन भारतीय चितको ने अपन विचारो को व्यावहारिक रूप देने के लिए उस समय की सामाजिक सरचना मे ऐसी सस्थाओं का विकास किया जिनके माध्यम से मूल्यों

व सामाजिक आदर्शो के अनुरूप व्यवहार करना व्यक्ति की रोजमर्रा की दिनचर्या का अभिन्न अग बन जाये । इस दृष्टि से हम चार पुरूषार्थो की कल्पना वर्णाश्रम व्यवस्था सयुक्त परिवार प्रणाली शिक्षा की गुरूकुल प्रणाली पचमहायज्ञ एव अन्य विभिन्न प्रकार के यज्ञ दान दक्षिणा इष्टापूर्त सर्वव्यापक ब्रह्म की अवधारणा पुनर्जन्म कर्मफल प्रकृति के प्रति मातृभाव ट्रस्टीशिप दया परोपकार परहित एव त्याग जैसे गुणो को महत्त्व स्नेह सहयोग शुचिता सात्विकता सहभागिता एव सर्वकल्याण की भावना पर जोर आदि भारतीय जीवन की विशेषताओ को देख सकते है। इसके अतिरिक्त इसी क्रम मे धर्म्य अर्जा धर्म्यावृद्धि धर्म्याभृति धर्मानुसार वितरण आदि अवधारणाये भी प्राचीन भारतीय दर्शन मे मिलती है

प्राचीन भारतीय चिंतन हमें उन सामाजिक–नैतिक मूल्यों की याद दिलाता है जिनके अनुसार नवीन सामाजिक–आर्थिक सरचना की जा सकती है । इसके अनुसार हमें सग्रह की बजाय त्याग स्वार्थ की बजाय सेवा शोषण की बजाय पोषण सघर्ष की बजाय सहयोग घृणा की बजाय स्नेह सम्पति पर पूर्ण निजी या सरकारी स्वामित्व की बजाय ट्रस्टीशिप इस नयी अर्थ रचना के आधार सूत्र हो सकते हैं।

आज ससार के प्रमुख अर्थशास्त्री एव विचारक नैतिक व मानवीय मूल्यो से युक्त वैकल्पिक अर्थरचना की आवश्यकता अनुभव करने लगे है तथा इस दृष्टि से उनका झुकाव स्वाभाविक रूप से भारतीय चिंतन की ओर आया है । डा शूमारवर ने A Technology with human face ओर A Study of Economics as if people mattered पर जोर दिया है । पाल एम हेनरी का मत है कि नयी विश्व रचना का उदय एक नैतिक– राजनैतिक सुमेल (Ethico Political Negotiation) मे ही हो सकता है। UNESCO द्वारा प्रकाशित एक पुस्तक– Culture Society and Economics for a New world मे इस बात पर जोर दिया गया है कि समूचे समाज के लिए एक अधिक न्यायपूर्ण प्रणाली के विकास के लिए चीजो को एक नये ढग से देखने–समझने ओर नयी आदतो व नये दृष्टिकोण को अपनाने की आवश्यकता है । इसी क्रम मे Richard L Brinkman ने अपनी पुस्तक Cultural Economics में आर्थिक विकास की प्रक्रिया की सास्कृतिक ढॉचे के भीतर विवेचना करने एव टेक्नोलॉजी की सास्कृतिक दृष्टि पर जोर दिया है ।

धर्म पर आधारित अर्थ रचना की अवधारणा आज के युग मे बहुत महत्त्व रखती हैं आज के अनेक देशो मे जहा भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर है तथा नैतिक मूल्यो का सकट खड़ा हो गया है एसे समय मे धर्माधारित अर्थरचना की बात करना बड़ा अजीब लगता है। भारत में आज गरीबी बेरोजगारी भ्रष्टाचार नैतिक मूल्यो के सकट आदि बुराइयो से मुक्त करने का हल धर्माधारित अर्थरचना में ही निहित है । धर्माधारित अर्थरचना धर्मराज्य का अग होती है ।

धर्म पर आधारित राज्य व्यवस्था के दर्शन हमारे प्राचीन महाकाव्य रामायण एव महाभारत मे होते है तथा उस काल में जो अर्थरचना थी वास्तव में वह धर्माधारित ही थी। धर्माधारित अर्थरचना श्रीकृष्ण की धर्म सस्थापना या अर्थव्यवस्था मे सास्कृतिक जीवन मूल्यो की प्रतिस्थापना के लिए आवश्यक हैं। धर्माधारित अर्थव्यवस्था का लक्ष्य एक ऐसी व्यवस्था की स्थापना करना होता है जिसमें अक्षय समृद्धि प्राप्त कर प्रजा का अधिकतम कल्याण सभव हो सके । महाभारत काल मे युधिष्ठिर की आर्थिक व्यवस्था धर्माधारित अर्थरचना का आदर्श थी। **महाभारत के सभापर्व अध्याय 33 के अनुसार** 'युधिष्ठिर के सरक्षण सत्य के पालन ओर शत्रुओ का वध हो जाने के कारण प्रजा को आन्तरिक और बाह्य सब सकटो तथा ईति भिति से छुटकारा मिल गया था । युधिष्ठर स्वय तो सत्य धर्म का आचरण किया करते थे साथ ही सदैव यह भी चिता किया करते थे कि प्रजा मे भी सत्य धर्म के आचरण की प्रवृति किस प्रकार उत्पन्न की जाय। इस कारण अपना-अपना कर्त्तव्य यथाविधि पूरा करना (स्वधर्म पालन) उनकी प्रजा का स्वभाव बन गया था और धमपूर्वक अक्षय समृद्धि आ गयी थी ।

धर्म शब्द धृ धातु से बना है जिसका अर्थ है धारण करना निर्वाह करना पोषण करना या पालना । इससे यह सिद्ध होता है कि धर्म की अवधारणा ऐसी व्यवस्थाओं एव क्रियाकलापो का नाम है जो मानव जीवन का निर्माण निर्वाह ओर पोषण करती है। महाभारत के अनुसार धर्म प्रजा को धारण करता अर्थात व्यवस्था मे रखता है ओर यही सब प्राणियो की रक्षा करता है जिसका आधार नैतिक-नियम और सदाचरण है । राजा भी इससे बाहर नही है अत धर्म राजाओ का भी राजा है । धर्म से बढकर कोई नही यह राष्ट्र के रक्षको के सो जाने पर भी जागता रहता है। **धारणाद् धर्म मित्याहु धर्म ए विधृत प्रजा** । इस दृष्टि से धर्म का अर्थ उन सामाजिक नैतिक नियमो एव मर्यादाओ से है जो समाज के धारण पोषण और विकास के लिए आवश्यक है । इस दृष्टि से धर्म एव नैतिकता पर्यायवाची हो जाते हैं। भारतीय चितको के अनुसार वही अर्थसरचना मगलकारी हो सकती है जो धर्माधारित हो और धर्म-नियन्त्रित हो । अत नैतिकता (अथवा धर्म) को अर्थशास्त्र अर्थव्यवहार अर्थरचना एव आर्थिक सिद्धातो से अलग नही किया जा सकता है। **प्रो के वी रगास्वामी आयगर के अनुसार** अर्थशास्त्र तथा नीतिशास्त्र मे अर्न्तनिर्भरता सभी भारतीय विचारों की मूल भावना रही है। चाणक्य अर्थ को लोक जीवन का मुख्य प्रवर्तक मानते हुए कहते हैं कि सुख का मूल धर्म है और धर्म का मूल अर्थ । परन्तु उन्होने भी धर्म को प्रथम मानते हुए अर्थ को द्वितीय स्थान दिया है अर्थात अर्थ ओर काम की प्राप्ति धर्म पर ही आधारित है । पचतत्र ने अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र को एक-दूसरे का पर्याय माना है। मिताक्षरा ने अर्थशास्त्र को धर्मशास्त्र एव राजनीतिशास्त्र का अभिन्न अग माना है। गौतम याज्ञवल्क्य (1/115) मनु (2/224) विष्णु धर्म सूत्र (71/84) एव भागवत पुराण मे (1/2/9) मे धर्म को ही प्रधानता दी ह ।

महाभारत (शांति पर्व) मे लिखा है कि सब लोग धर्म से ही प्रतिष्ठित है । देवताओं ने धर्म से ही दिव्य स्वर्ग को पाया है । धर्म मे ही अर्थ स्थित है । (धर्मैयार्थ समाहित)। नारद कहते हे कि धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र के अनुसार निपुण राजा यत्नपूर्वक व्यवहार का निरीक्षण करता है । जब धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र के बीच विप्रतिपत्ति पैदा होती है तब अर्थशास्त्र को छोडकर धर्मशास्त्र के अनुसार ही निष्पति लेना चाहिए ।

यत्र विप्रतिपत्ति स्याद्धर्मशास्त्रार्थशास्त्रयो ।
अर्थशास्त्रोक्तमुत्सृज्य धर्मशास्त्रोक्तमाचरेत् ।।(ना स्मृ 1/39)

मर्यादा पुरूषोत्तम राम काम व अर्थ पर धर्म की श्रेष्ठता बताते हुए कहते हैं–

धर्मार्थकामा खलुजीवलोके । समीक्षिता धर्मफलोदयेषु ।
ये तत्र सर्वे स्युरसशय मे । आर्ये भवस्या भिमता सुपुत्रा ।।
यस्मिस्तु सर्वे स्युरसनिविष्ठा धर्मोयत स्यात् तदुपक्रमेत ।
द्वेष्यो भवत्यर्थपरो हिलोके कामात्मताखल्पपि न प्रशस्ता ।।

अर्थात लोक मे भी अर्थ और काम की अपेक्षा धर्म का ही अधिक महत्त्व है । धर्म अर्थ और काम का प्रभाव तो है ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और जीवलोक के सर्वश्रेयो का एकमात्र कारण भी है । सीता भगवान राम को स्मरण दिलाती है –

धर्मादर्थ प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम् ।
धर्मेण लभते सर्व धर्मसारमिद जगत ।।(वा रा अरण्य 9/30)

अर्थात्–धर्म से ही धन मिलता है और धर्म से ही सुख मिलता है। धर्म से ही सब कुछ मिल जाता है । अत विश्व में धर्म ही सार सर्वस्य ग्राह्य वस्तु है । महात्मा गाँधी ने भी कहा हे सच्चा अर्थशास्त्र कभी भी सर्वोच्च नैतिक स्तर का विरोध नही करता ठीक वैसे ही जैसे सभी सच्चे नीतिशास्त्र अपने नामानुकूल अवश्य ही अच्छे अर्थशास्त्र भी होने चाहिए। उन्होने आगे लिखा है कि मै अर्थशास्त्र तथा नीतिशास्त्र के बीच कोई अतर नही करता हूँ, बल्कि जो अर्थशास्त्र नीतिशास्त्र की मर्यादाओं के विपरीत चलता है वह अनैतिक है और इसलिए अन्यायपूर्ण है। इस भारतीय दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री गुर्नार मिर्डल ने कहा है कि अर्थशास्त्र एक नैतिक विज्ञान है। वेदो मे भी धर्म को प्रथम स्थान माना है। अशुद्ध धन से प्राप्त सुख परमार्थ विरोधी होने के कारण त्याज्य है। हमारा पुराण साहित्य तथा मनुस्मृति भी इस मत का प्रतिपादन करता है ।

भारतीय चितन के अनुसार अर्थ मे नैतिक एव भौतिक दोनो मूल्यो का समावेश है। महात्मा विदुर ने कहा है कि जो अर्थ की पूर्ण सिद्धि चाहता है उसे पहले धर्म का ही आचरण करना चाहिए जैसे स्वर्ग अमृत से दूर नहीं होता उसी प्रकार धर्म से अर्थ अलग नही हो सकता ।

भारतीय चिंतन हमे उन सामाजिक नैतिक मूल्यो की याद दिलाता है जिनके अनुसार नवीन सामाजिक–आर्थिक सरचना की जा सकती है । इसके अनुसार हमें सग्रह के बजाय त्याग, स्वार्थ के बजाय सेवा, शोषण के बजाय पोषण, सघर्ष के बजाय सहयोग, घृणा के बजाय स्नेह, सम्पत्ति पर निजी या सरकारी स्वामित्व के बजाय ट्रस्टीशिप, इस नयी अर्थ–सरचना के आधार सूत्र हो सकते हैं ।

(4) अर्थशास्त्र के क्षेत्र में औचित्य (न्याय) का सिद्धांत

प्राचीन भारतीय चिंतको का दृष्टिकोण आर्थिक क्षेत्र मे उचित कीमत, उचित मजदूरी, उचित ब्याज, उचित लाभ, न्यायपूर्ण वितरण तथा सह–उपभोग एव समान उपभोग की व्यवस्था लागू करने का रहा है। वस्तुओ के मूल्य निर्धारण में एव क्रियान्वयन के काम मे सरकार, उत्पादको एव व्यापारियो, कीमत विशेषज्ञो, नैतिक–मर्यादाओ के विशेषज्ञ, सामाजिक कार्यकर्ताओ को शामिल करते हुए इनकी सामूहिक जिम्मेदारी का कार्य माना है। **शुक्राचार्य** मूल्यो मे उच्चावचन को राज्य की जिम्मेदारी मानते हैं तथा बढते और घटते दोनो ही मूल्यो पर नियन्त्रण कर उचित मूल्य की व्यवस्था हेतु राज्य को निर्देश दिया है ।

समाज मे समानता लाने के लिए प्राचीन साहित्य मे वस्तुओं को बाटकर उपभोग करने तथा समानता व कल्याण का भाव प्रस्तुत किया है। ऋग्वेद मे उन लोगो की निदा की गई है जो गरीब व दरिद्रो को दिये बिना उपभोग करते हैं। **महाभारत** (शांति पर्व) में कहा गया है कि धन को अन्य लोगो में बाटकर आनद लेना चाहिए। सामूहिक उपभोग एव सह उपभोग की अवधारणा का जन्म 'यज्ञ' सस्था से माना जाता है। **गीता** मे भी यज्ञ के बाद बचे हुए खाद्यान्नों का ही उपभोग का निर्देश है। **भागवत पुराण** मे व्यक्ति को अपनी न्यूनतम आवश्यकताओ से अधिक धन सग्रह को भी दण्डनीय माना है **पद्मपुराण** मे कहा गया है कि जब तुम खाद्यान्नो, सम्पत्ति का सग्रह बद कर दोगे तो सभी प्रकार की समस्याएँ समाप्त हो जायेगी ।

प्राचीन भारतीय वाड मय मे श्रमिको की उचित मजदूरी को भी नितात अनिवार्य माना है। उचित मजदूरी उसे माना गया है जिसके द्वारा श्रमिक अपने पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों को सरलता एवं सम्मान के साथ पूरा कर सके एवं कार्य में अपनी कार्यक्षमता का संरक्षण तथा संवर्द्धन भी कर सके। प्रसिद्ध श्रम अर्थशास्त्री **शुक्राचार्य** ने राज्य को निर्देश दिया है कि श्रमिक को उसके माता–पिता आदि के भरण–पोषण के योग्य वेतन उनकी योग्यतानुसार दिलावे । **शुक्र** ने मजदुरी को कार्य के परिमाणानुसार, समयानुसार तथा कार्य एव समयानुसार विभाजित किया है । कम मजदूरी देकर राज्य मजदूरो को अपना शत्रु बना लेता है क्योंकि वे अपना पेट न भर सकने के कारण राज्य का कार्य छोडकर दूसरे का कार्य करते हैं और राजा के छिद्र खोजते फिरते हैं तथा जनता को लूटते हैं । शुक्र ने मजदूरो को रोग के समय वेतन, छुट्टियाँ, पेशन, बोनस, बीमा आदि

की भी व्यवस्था की है। शुक्र ने श्रमिक व नियोक्ता के बीच सम्बन्ध को एक नयी दृष्टि को जन्म दिया है जिसे हम व्यावसायिक सहभागिता कहते है।

वैसे तो प्राचीन भारतीय वाङ्मय मे सूदखोरी तथा ब्याज द्वारा अपनी आजीविका चलाने वालों की निंदा की है परन्तु अर्थव्यवस्था के विकास तथा उत्पादक कार्यों के लिए पूँजी की आवश्यकता एव महत्त्व को देखते हुए ऋण व्यवसाय को वार्ता के अंग तथा वैश्य वर्ग की आजीविका के एक वैधानिक एवं नैतिक साधन के रूप में मान्यता दी गई है। नारद ने कुसीद (ब्याज) का अर्थ बताते हुए लिखा है कि मूलधन के फलस्वरूप निश्चित लाभ (जैसाकि पूर्व में तय किया गया हो) की प्राप्ति करने को 'कुसीद' कहा जाता है और जो इस प्रकार वृत्ति करते हैं वे 'कुसीदी' कहे जाते हैं। नारद (4/1) ने ऋण दान के सात प्रमुख रूप दिए हैं – (1) कौनसा ऋण दिया जाना चाहिए (2) कौनसा नहीं (3) किसके द्वारा (4) कहाँ (5) किस रूप में (6) ऋण देने का समय एवं (7) लौटाने समय के नियम। नारद (4/102–104) ने ब्याज के चार प्रकार बताये हैं – (i) कारिता (ii) कालिका (iii) कायिका तथा (iv) चक्रवृद्धि। बृहस्पति ने इनके अलावा शिखावृद्धि (शिखा की भांति बढ़ने वाला सूद) एव भोगलाभ (गृह उपयोग हेतु) का भी वर्णन किया है। विष्णु धर्मसूत्र (4/4) लिखित एव अलिखित ऋणों का उल्लेख करते हैं। याज्ञवल्क्य तथा विष्णु मे सामान्य नियम आया है कि सभी जातियों को चाहिए कि सभी जाति के ऋणदाताओं को ब्याज दे जो पारस्परिक समझौते से तय हो जिसमें प्रतिज्ञापत्र एव ब्याज दर आदि शामिल हो। मनु तथा बृहस्पति ने पूर्व निश्चित ब्याज दर से अधिक ब्याज लेने चक्रवृद्धि ब्याज लेने या मूलधन के दुगुने से अधिक धन लेने की भर्त्सना की है। कौटिल्य ने ऋण के नियमों का उल्लेख करते हुए अधिक ब्याज लेने वाले पर दण्ड का प्रावधान किया है। ऋण चुकाने की कोई अवधि नहीं थी तथा ब्याज तीन पीढ़ियों तक भी प्राप्त किया जा सकता था, अतः ऋषियो ने यह नियम बना दिया कि ऋण वसूली दुगुनी से अधिक नहीं हो सकती।

ऋण चुकाने के भी नियम निश्चित थे। मनु के मत में राजा तथा न्यायालय ऋणी से ऋणदाता को धन दिलाने की व्यवस्था कर सकता है। ऋण स्वीकार करने पर मनु, नारद एव बृहस्पति ने ऋण उगाहने के पाँच प्रकार बताये हैं –(i) धर्म (ii) व्यवहार (iii) छल (iv) आचरित धरना ऋणी के द्वार पर बैठ जाना तथा (v) बल प्रयोग। ऋण को किस्तों में भी चुकाने का प्रावधान था तथा जमा किस्तों को रसीद देने (याज्ञ 2/93 नारद 4/114 विष्णु 6/26) का भी प्रावधान किया गया था। ब्याज के सम्बन्ध में स्मृतिग्रन्थों में एक न्यायपूर्ण (उचित) ब्याज दर (धर्म्यावृद्धि Just Interest) की अवधारणा प्राप्त होती है। गैर–जमानती ऋणों की तुलना में जमानती ऋणों पर ब्याज दर कम तथा व्यावसायिक ऋणों की तुलना में उपभोक्ता ऋणों पर ब्याज दर कम रखने का सुझाव दिया गया था। इसके पीछे सम्भवतः यह भावना होगी कि उपभोक्ता ऋण

समाज के गरीब व साधनहीन लोग अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए लेते थे अत उनसे ब्याज दर कम ली जानी चाहिए ।

प्राचीन भारतीय वाडमय में अधिकाधिक लाभ पर अधिकाधिक दण्ड की व्यवस्था की गई है । वस्तुओं की कीमत का निर्धारण एव राजा द्वारा उसका क्रियान्वयन स्वाभाविक रूप से लाभ की मात्रा व दर का नियमित एव नियत्रित करने के रूप मे हुआ । **कौटिल्य** ने स्थानीय उत्पादित वस्तुओ से पाच प्रतिशत तथा विदेशो मे उत्पादित वस्तुओ पर क्रय से दश प्रतिशत लाभ लेने के नियम बनाए । इससे अधिक लाभ लेने पर व्यापारी पर 200 पण दण्ड लगाने का प्रावधान किया। इसके अतिरिक्त कोई भी वस्तु, बाजार के अतिरिक्त कही भी क्रय–विक्रय नहीं की जा सकती थी। **शुक्र ने राजा को प्रदेश तथा समयानुसार उस वस्तु के व्यय को समझकर अधिकतम 32वा या 16वा भाग लाभ नियत करने का निर्देश दिया है ।**

याज्ञवल्क्य स्मृति मे लाभ की मात्रा तथा लाभ की दर को निर्धारित किया गया है तथा **मनुस्मृति** एव जातक में विभिन्न साझेदारो के बीच लाभ के उचित वितरण के सम्बन्ध में भी व्यवस्थाएँ काफी विस्तार से मिलती है।

(5) पूरूषार्थ चतुष्टय

मानव जीवन का **उद्देश्य**– मानव जीवन की सफलता एव असफलता का मापदण्ड सुख है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति मे सुख का अनुभव करता है। अत सुख प्राप्ति की दिशा मे मानवीय प्रयत्नो को ध्यान मे रखतें हुए भारतीय मनीषियो ने मनुष्य के पुरूषार्थ को चार श्रेणियो में रखकर मानव जीवन को अनुशासित करने का प्रयत्न किया है। भारतीय परम्परानुसार चार पुरूषार्थ माने गये है –धर्म अर्थ काम एव मोक्ष। धर्म अर्थ व काम–इन त्रिवर्ग का ही व्यक्ति के सामाजिक जीवन से सम्बन्ध है क्योकि मोक्ष तो अतिम लक्ष्य तथा सभी प्रकार के बधनो से मुक्त है । **बार्हस्पत्य सूत्र** के अनुसार नीति का फल धर्म अर्थ एव काम की प्राप्ति है । **सोमदेव** ने अपने ग्रन्थ नीतिवाक्यामृत का शुभारम्भ उस राज्य को प्रणाम करके किया है जो अर्थ धर्म एव काम नामक तीन फल देता है। मनुस्मृति रघुवश विष्णुपुराण अमरकोश महाभारत आदि मे पुरूषार्थ चतुष्टय का वर्णन कर इनका आधार शरीर मन बुद्धि एव आत्मा माने गये हैं। **कामसूत्र** मे धर्म अर्थ एव काम के समूह को त्रिवर्ग मानते हुए लिखा है कि अर्थ और काम का सेवन धर्मपूर्वक करना चाहिए । काम से श्रेष्ट अर्थ है और अर्थ से श्रेष्ठ धर्म है ।

(1) धर्म– प्राचीन भारतीय शास्त्रो मे धर्म सम्बन्धी बडी व्यापक धारणा थी और वह मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को स्पर्श करती थी । धर्म सदगुण तथा आजीविका की शुद्धता से सम्बन्धित बाह्य आडम्बरो से नहीं। धर्म श्रेष्ठ बनने के लिए धारणीय और आचरणीय है। ऋग्वेद के अनुसार धर्म सृष्टि सचालक सुकृत नियम और कल्याणकारी कर्म है । मनु

ने ज्ञान नीति सदाचार और अन्तरात्मा की चेतना को धर्म के लक्षण माने हैं । पूर्व मीमासा ने धर्म को कल्याण कारक तथा **तैतिरीय आरण्यक** ने धर्म से ही कर्त्तव्यों का सृजन माना है। महाभारत के अनुसार धर्म समाज में व्यवस्था बनाये रखता है। यही सब प्राणियो की रक्षा करता है जिसका आधार नैतिक नियम और सदाचरण है ।

पुरूषार्थ योजना मे धर्म का प्रथम स्थान–मनु (2/224) याज्ञवल्क्य (9/46–47) विष्णु धर्मसूत्र (71/84) भागवत(1/2/9) ने धर्म को ही पुरूषार्थ चतुष्टय मे प्रधानता दी है । महाभारत तथा पद्मपुराण मे धर्मपूर्वक अर्थ और काम को लक्ष्य सिद्धि मे सहायक माना है ।

(II) अर्थ– जीवन की इस चतुरगिणी यात्रा मे अर्थ की अग्रणी एव अहम् भूमिका है। इस जगत की गति और नियति का सूत्रधार अर्थ ही है। **'अर्थो ही मूल सर्वस्य' (चाणक्य)**। अर्थ के बिना लोकयात्रा का रथ सचल हो ही नही सकता । न बिना ऽर्थ लाभेन लोकयात्रा पवर्तते (महाभारत)। अर्थ 'शब्द ऋगृ धातु से निष्पन्न है जिसका अभिप्राय है –गति। अर्थात जिससे जीवन गतिमान होता है वही अर्थ है। धन शब्द भी अर्थ का पर्याय माना गया है। शास्त्रो मे मनुष्य की सुख सुविधाओ का मूल धर्म को माना है एव धर्म का मूल है अर्थ ।

सुखस्य मूल धर्म । धर्मस्य मूलम अर्थ । चाणक्य सूत्र

इसलिए अर्थ को पाने की सबकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है । अत प्राप्त करने की अभिलाषा सभी करते हैं वही अर्थ है । **यास्काचार्य** का मानना है कि धन वह है जो सबको सन्तुष्ट और प्रसन्न करता है । **कामसूत्र** ने अर्थ की परिधि मे विधा भूमि सोना–चादी पशु, धन–धान्य धातु निर्मित उपकरण घर–गृहस्थी के अन्य पदार्थ मित्र लाभ एव अर्जित का सवर्द्धन–आदि को शामिल किया है । **प्रो दयाकृष्ण** लिखते हैं कि अर्थ किसी भी कामना की पूर्ति का साधन या निमित्त कहा जा सकता है अथवा इसे शक्ति या धन भी कह सकते है। जिसे किसी भी अवस्था मे सभी कार्यों के सम्पादनार्थ प्रयोग मे लाया जा सकता है। **शतपथ ब्राह्मण** के अनुसार समाज व्यवस्था का आधार धन है । मनुष्य जो कुछ भी प्राप्त करता है धन से ही प्राप्त करता है । रघुवश के अनुसार जो दु ख मे मुनष्य को सात्वना देता है उसे अनुरजित करता है और कार्यों मे प्रेरणा एव स्वावलम्बन प्रदान करता है वह धन है। वेदो मे धन (अर्थ) का अर्थ सम्पति वैभव (Property, Wealth) तथा मुद्रा से लगाया गया है ।

(III) काम– मनुष्य की समस्त गतिविधियाँ काम से प्रेरित होती है । यह विश्व का चालक है । **अथर्ववेद** मे कहा गया है कि काम सबसे पहले प्रकट हुआ । **ऋग्वेद** ने लिखा है कि प्रारम्भ मे मन का वीर्य 'काम' सबसे पहले उत्पन्न हुआ । **वृहदारण्यक उपनिषद** के अनुसार काम सबका आधार स्थान है । काम सबका कर्ता है जिस प्रकार

के मनुष्य के काम होते हैं वैसा ही मनुष्य बन जाता है । डॉ अमरनाथ राणा ने काम के रूपो को (i) कामना (ii) इच्छा (iii) भावना (iv) आनद एव (v) यौनसुख मे वर्गीकृत किया है । सृष्टि की उत्पत्ति भी ईश–कामना से ही हुई है । **छान्दोग्य उपनिषद** के अनुसार समस्त प्रवृतियों का मूल बीज एकमात्र 'काम' है इसलिए जीव को कामनामय माना गया है । काम सभ्यता सस्कृति एव आविष्कारों की जननी है । काम ससार–मच का चितेरा और सूत्रधार है जो जीवात्मा एव परमात्मा की लीला स्थली है । **अथर्ववेद** के अनुसार 'काम' ही विविध कामनाओ के रूप मे विभिन्न कार्यों का कारण और उत्पत्ति स्थान है । **यजुर्वेद** के अनुसार मनुष्य अपने सकल्प–विकल्पो द्वारा जो कर्म करते हैं उनका उत्पत्ति–स्थान ये कामनाएँ ही है । इन कामनाओ का फल भी कामनाओ की पूर्ति ही है । अत सृष्टि – सचालन के लिए काम अनिवार्य है । मनुष्य को कामना करने वाला होना चाहिए क्योकि ससार मे जो कुछ हो रहा है वह सब कामनाओ के कारण ही है । अथर्ववेद मे कामनाओ की सतुष्टि और दम्पत्ति प्रेम को एक दिव्य वरदान माना है जो उदात काम का प्रतिफलन है । इस कामनामय ससार में कामनाएँ मनुष्य के लिए अनिवार्य है क्योकि कामनाएँ जीव का एक लक्ष्य है। इसीलिए मनुष्य को मनु स्मृति तथा बृहदारण्यक उपनिषद मे कामनामय कहा है । मनु (2/2) ने तो यहाँ तक कहा है कि जब परमात्मा ही सृष्टि विकास की कामना करता है तो फिर उसका प्रतिनिधि मनुष्य कामना क्यो न करे । **महाभारत (शाति पर्व)** मे भीम युधिष्ठिर से कहते हैं कामहीन पुरूष धर्म एव अर्थ की इच्छा नही करता। ऋषि लोग भी कोई कामना रखकर ही तपस्या करते हैं। वणिक कृषक गोपालक शिल्पी आदि सभी कामनाओ से ही अपने–अपने कार्यों में सलग्न होते हैं। अत सभी प्राणी कामनायुक्त है। कामनारहित प्राणी कभी न तो था और न भविष्य मे कभी होगा। धर्म और अर्थ इसी मे ही स्थित रहे हैं ।

(iv) **मोक्ष** – मोक्ष को बधन से छूटना निश्रेयस परमपद परमपुरूषार्थ आवागमन के भावचक्र से मुक्ति आदि नामो से व्यवहृत करते हैं । उपनिषदो म धन को साधन माना है साध्य नही । ब्रह्म की प्राप्ति के लिए अपने आपको इष्णाओ से रहित करना आवश्यक है । मोक्ष की अवस्था में मनुष्य की सम्पूर्ण कामनाओं का विलय हो जाता है । त्रिवर्ग का अवसान हो जाता है ।

प्रश्न

1 प्राचीन भारतीय शास्त्रो मे अर्थशास्त्र के लिए किन–किन शब्दो का प्रयोग किया गया है ?

2 'वार्ता' का अभिप्राय बताइये ।

आवश्यकता की इस धारणा के आधार पर एक व्यक्ति की खाने की आवश्यकता आवश्यकता नही बन पाती है जब तक उसके पास भोजन प्राप्त करने के लिए साधन या धन नहीं है। एक भूखे या नगे की भोजन व वस्त्र की उसकी आवश्यकता वास्तविक है किन्तु पाश्चात्य अर्थशास्त्र मे आवश्यकता की जो धारणा प्रतिपादित की गई है उसके अनुसार किसी साधनहीन व्यक्ति की आवश्यकता को आवश्यकता नहीं कहते।

भारतीय वाड्मय मे आवश्यकता का प्रादुर्भाव

प्राचीन भारतीय चिंतन मे 'समग्र सुख' की आशा की गई है। शरीर मन बुद्धि व आत्मा का सम्पर्क सुख ही **'समग्र सुख'** कहलाता है। इसे प दीनदयाल उपाध्याय' ने **'चतुर्विध सुख'** की सज्ञा दी है। चतुर्विध सुख की प्राप्ति के लिए अर्थात् व्यक्तित्व के चारो पक्षो—शरीर मन बुद्धि एव आत्मा की आवश्यकताओं को पूरा करने उनकी विविध मागो और इच्छा—आकाक्षाओ को पूर्ण करने तथा उनका सर्वांगीण विकास करने के लिए भारतीय सस्कृति ने व्यक्ति के सामने चार कर्म या पुरूषार्थों का आदर्श रखा है।

धर्म अर्थ काम व मोक्ष—ये चार पुरूषार्थ है। मनुष्य के मन मे उत्पन्न होने वाली विविध कामनाओ इच्छाओं आकाक्षाओ का अन्तर्भाव काम पुरूषार्थ होता है। काम पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए मनुष्य निरतर आर्थिक क्रियाओ मे सलग्न रहता है। भीम ने महाभारत में काम के महत्त्व को सिद्ध करते हुए कहा है कि 'सभी प्राणी कामनायुक्त है कामनारहित प्राणी कही नही है कभी नही था और भविष्य मे न होगा ही इसलिए यही काम त्रिवर्ग का सार है। धर्म और अर्थ इसी मे स्थित रहे है। पर बिना अर्थ के काम की पूर्ति असभव है। इसीलिए अर्थ को जगत का मूल कहा गया है। अर्थ के विना व्यक्ति प्रभावहीन और निरर्थक हो जाता है। इसीलिए निर्धनता को पाप माना गया है। परन्तु धर्माधारित अर्थ ही सुखकर है। जिसे विख्यात अर्थशास्त्री पी आर ब्रह्मानद ने **'धर्माधिष्ठित अर्थ'** की सज्ञा दी है।

सुख की इच्छा से ही व्यक्ति प्रयत्न कार्य (कर्म या पुरूषार्थ) करता है। तब सुख की इच्छा ही आवश्यकता का रूप धारण कर लेती है। चर्तुपुरुषार्थ मानव की सम्पूर्ण आवश्यकताओ एव समग्र विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया है। कौटिल्य ने यह प्रश्न उपस्थित किया है कि सुखस्य मूलम किम ? अर्थात सुख का मूल क्या है ? उन्होने इसका उत्तर स्वय ही दिया है—

सुखस्य मूलम् धर्म धर्मस्यमूलम् अर्थ ।
अर्थस्य मूलम् राज्यम् राजस्य मूलम् इन्द्रिय जय।।

अर्थात्—धर्म सुख का कारण है अर्थ धर्म का कारण है। राज्य से अर्थ की प्राप्ति होती है और राज्य का आधार इन्द्रियो पर नियत्रण है। इसका तात्पर्य यह है कि राज्य अर्थ एव धर्म आदि व्यवस्थाएँ मूलत मनुष्य के सुख को सिद्ध करने के लिए उत्पन्न हुई

है। यजुर्वेद मे भी हमेशा सुख की ही कामना की गई है। सुख से बढकर त्रिवर्ग (धर्म अर्थ और काम) का फल और कुछ भी शेष नही है। सुख के लिए ही धर्म और अर्थ मे प्रवृत्ति होती है। धर्म और अर्थ से ही सुख की उत्पत्ति हुआ करती है। सब काम ही सुख के लिए आरभ किये जाते है। सुख ही सबसे परम श्रेष्ठ पदार्थ है सुख से अधिक त्रिवर्ग का फल नही है।

न ह्यतस्त्रिवर्गफल विशिष्टतरमस्ति। स एष काम्यो गुणविशेषो
धनार्थयोरारम्भ स्तद्धेतुरस्योत्पति सुख प्रयोजना।। (महा शाति। 183/9)

प्राथमिक आवश्यकताएँ

वेदो मे मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओ का विस्तार से वर्णन मिलता है। प्राथमिक आवश्यकताओ मे अन्न वस्त्र मकान चिकित्सा तथा शिक्षा पर वेदो मे विस्तार से चर्चा है। वेदो मे खाने–पीने तथा रहन–सहन स्तर दान देना यज्ञ करना तथा उद्योग धधो आदि मे धन के उपभोग का वर्णन है। ऋग्वेद मे ऋषि कामना करता है कि इन्द्र तथा वरुण से प्राप्त धन का हम उपभोग करे। वह धन प्रचुर परिमाण से सचित हो अर्थात कही धन की कमी से हमारी कोई आवश्यकता अपूर्ण नही रह जाए। शरीर पोषणार्थ अर्थ की आवश्यकता प्रत्यक्ष है। सभ्यता की समस्त रचना अर्थाधीन है। मनुष्य की मौलिक एषणाओ म से प्रथम स्थान वित्तैषणा का है जिसका सम्बन्ध शरीर (भोजन) से है। शुक्र[1] के अनुसार अन्न वस्त्र मकान बगीचा पशुओ विद्या (शिक्षा) आदि के उपार्जन के लिए जो धन प्राप्त कर व्यय किया जाता है उसे उपभोग्य कहते है। मनुस्मृति मे अन्न वस्त्र मकान शिक्षा आदि के उपभोग के साथ–साथ यह भी निर्देश दिया गया है कि कौन सी वस्तु उपभोग योग्य है तथा कौनसी वस्तु उपभोग योग्य नही है। अति–उपभोग को मनु ने अस्वास्थ्यकर आयुनाशक स्वर्ग एव पुण्य मे बाधक तथा लोक निदित माना है। मनु के अनुसार उपभोग्य धन होने पर फटे और मैले कपडो को नही पहनना चाहिए। आवास ऐसी जगह हो जहाँ धान्य फल–फूल वृक्षो आदि उपभाग्य वस्तुओ की कमी न हो तथा आजीविका के साधन (खेती व्यापार आदि) सुलभ हो।

रामायण महाभारत, शुक्र एव कौटिल्य के अनुसार प्रजा की प्राथमिक आवश्यकताओ की पूर्ति एव व्यवस्था का दायित्व राजा का माना है।[2]

भारतीय वाड्मय मे आवश्यकताओ के सदर्भ मे दृष्टिकोण

पाश्चात्य अर्थशास्त्र मे यह वर्णित है कि मनुष्य की आवश्यकताएँ असीमित होती है तथा उन आवश्यकताओ की पूर्ति के साधन सीमित है। आवश्यकताओ की तुलना मे साधनों की सीमितता के कारण मनुष्य की कुछ आवश्यकताएँ अतृप्त रहने से मनुष्य दु खी होता है। आवश्यकताओं के सदर्भ मे यही अवधारणा प्रो रॉबिन्स से हजारों वर्ष पूर्व भारतीय चितन मे कही गई है।

ईशोपनिषद मे कहा गया है कि स्वाधीनता का न होना या आवश्यकता का होना

और उसके दूर करने की सामग्री का न होना ही दुख है। यदि उसके पूरा करने की सामग्री उपस्थित होगी तो सुख होगा और यदि पूरा करने की सामग्री न होगी तो भारी दुख होगा क्योंकि अज्ञानी मनुष्य अधिक आवश्यकता रखते हैं परन्तु जो मनुष्य प्राकृत *विद्या उपार्जन करते है उनकी आवश्यकताएँ बढ जाती है। इसलिए न तो वह कभी पूरा* हो सकती है ओर न ही उनका दुख दूर हो सकता है। **कठोपनिषद** कहता है कि कोई मनुष्य कितना ही धन प्राप्त करले कभी उस धन से तृप्त नही हो सकता। जिस प्रकार *भोजनादि से पेट भर जाता है फिर भी खाने की इच्छा बनी रहती है उसी प्रकार धन से* इच्छा कभी पूर्ण नहीं होती। जितना धन मिलता जाता है उतनी ही इच्छा बढती जाती है। सौ वाला सहस्त्र में सुख समझ कर सहस्त्र की इच्छा करता है तो सहस्त्राधीश लक्ष की इच्छा करता है और लक्षपति करोडपति होने की इच्छा करता है। धन मनुष्य की आवश्यकता न होकर तृष्णा है जो कभी भी पूर्ण नही होती। पृथ्वी मे जितने धान जौ सुवर्ण पशु ओर स्त्रियाँ य सब भी एक पुरुष की कामनाओ की तृप्ति मे पर्याप्त नही है। अग्नि के समान चित्त का तृप्त होना अत्यन्त कठिन है। काम इच्छा या तृष्णा को कहते है। भोगो की कामना उपभोग से कभी शात नहीं होती। जिस प्रकार हवि से अग्नि प्रज्वलित होती है वैसे ही उनसे तो वह और भी बढ जाती है। विषय की प्राप्ति होने पर तो उस समय इच्छा निवृत्त हो जाने पर भी उसका पुनपुन प्रादुर्भाव होता रहता है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं हे भारत श्रेष्ठ! रजोगुण की वृद्धि होने पर लोभ--प्रवृत्ति कर्मों का आरभ अशाति और स्पृहा ये चिन्ह प्रकट हो जाते हैं। धन की बहुत सी आमदनी हो जाने पर भी उसके लिए प्रतिक्षण बढने वाली अभिलाषा का नाम लाभ है। अर्थात अपने विषय की प्राप्ति से जिसकी निवृत्ति न हो सके वह इच्छा विशेष ही लोभ है। निरतर प्रयत्न करते रहना प्रवृत्ति है। जिनमे बहुत सा धन व्यय और परिश्रम हो ऐसे काम्य निषिद्ध और विशाल *भवन आदि लौकिक विषयो के लिए उद्यम करना आरभ है। दूसरो का थोडा या बहुत* धन देखते ही उसे किसी न किसी उपाय से लेने की इच्छा स्पृहा है।[4]

सतगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है रजोगुण से लोभ उत्पन्न होता है तथा तमागुण से प्रमाद मोह और अज्ञान की ही उत्पत्ति होती है। निरतर बढती हुई आवश्यकताओं के पूर्ण न होने के कारण मनुष्य को दुख होता है। मनु कहते है विषयो के उपयोग से इच्छा कभी तृप्त नही हो सकती बल्कि घी से अग्नि के समान यह इच्छा फिर बढती ही जाती है। महात्मा वशिष्ठ ने तृष्णा को ही सब दुखो का मूल और अधर्म की जड बताया है। उनके अनुसार यह तृष्णा ऐसी उत्कर जिज्ञासा है जो कभी शात नहीं होती नित्य बढती जाती है। व्यक्ति जहा तृष्णा के अकपाश में फसा फिर वह उससे जब तक निवृत्त नही हो सकता जब तक उसका समूल पतन न हो जाय। वृद्ध मनुष्य के दाँत भी टूट जाते है किन्तु धन की आशा मनुष्य के वृद्ध होने पर भी कभी जीर्ण नही होती। यह सदा युवा बनी रहती है। तृष्णा बुद्धि को ढक लेती है (तृष्णयामतिश्छाद्यते ।। 226 चाणक्य सूत्र)।

प्राप्त हुए धन से मनुष्य कभी सतुष्ट नही होता बल्कि फिर भी अधिक की इच्छा करता है। धन की लालसा से सुख लाभ नही होता धन प्राप्त होने पर भी बहुत सी चिंता हुआ करती है। मनुष्य लोग धनवान होकर फिर राज्य की इच्छा करते है राज्य प्राप्त होने पर फिर देवत्व की इच्छा किया करते है और देवत्व प्राप्त होने पर इन्द्रत्व लाभ के अभिलाषी होते है। अर्थात आवश्यकताएँ बढ़ती हो जाती है। जैसे अग्नि मे घी डालने से ज्वालाएँ का प्राप्त होने पर अग्नि उसी प्रकार प्रिय वस्तुओ के मिलने से विषय तृष्णा अत्यत ही बढ़ती है। जिस प्रकार बहुत जल पीने पर भी बढ़ती प्यास कभी शात नही होती। कालक्रम मे वर्द्धित गऊ की सींग जैसे वृद्धि को प्राप्त होती है वैसे ही बढ़ते हुए वित्त की तृष्णा की वृद्धि हुआ करती है। **हितोपदेश** मे कहा गया है जिस वस्तु की इच्छा की जाती है उसी से और इच्छा बढ़ती है। इस प्रकार इच्छाएँ चक्र की पक्ति के समान बढती ही चली जाती है। उनकी कभी तृप्ति नही होती है। विख्यात **ययाति–प्रकरण** के माध्यम से यह स्पष्ट समझाया गया है कि सुदीर्घ जीवन तक उपयोग करते रहने के बावजूद भी कामेष्णा शात न होकर बढ़ती जाती है। भगवान शिव पार्वती से कहते है कि भोगो की तृष्णा कभी भोग भोगने से तृप्त (शात) नही होती अपितु घी से प्रज्वलित होने वाली आग के समान अधिकाधिक बढती ही जाती है। तृष्णा के समान कोई दु ख नही है। त्याग के समान कोई सुख नही है।

ससार मे ऐसा कोई द्रव नही है जो मनुष्य की आवश्यकताओ का पेट भर सके। पुरुष की आशा समुद्र के समान है जो कभी भरती नही। जैसे उत्पन्न हुए मृग का सींग उसके बढ़ने के साथ–साथ बढ़ता रहता है उसी प्रकार मनुष्य की तृष्णा सदा बढ़ती ही रहती है उसकी कोई सीमा नही है।

आवश्यकताएँ असीमित ही नहीं होती वरन एक आवश्यकता पूर्ण होतीहै तब दूसरी नयी उत्पन्न हो जाती है। तृष्णा तीर की तरह मनुष्य के मन पर चोट करती है। **ब्रह्मर्षि विश्वामित्र** के अनुसार मनुष्य की कामनाएँ कभी पूर्ण नही होती। मनुष्य की एक कामना पूर्ण होती है तो दूसरी नई कामना उत्पन्न होकर उसे पुन बाण के समान बींधने लगती है। भोगो की इच्छा उपभोग के द्वारा कभी शात नही होती वरन् घी डालने से प्रज्वलित होने वाली अग्नि के समान वह अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है। पवित्र वेद आवश्यकता–विहीनता की बात नही करते हैं और न ही वे जीवन से भाग जाने की बात करते हैं। वे सही जीवन की सस्कृति अपनाने का उपदेश देते हैं। जहाँ सुविधाओ की सबको बाहुल्यता होगी जिसमे केवल दिखावी प्रभाव समाप्त हो जाएगा अति उपभोग के स्थान पर मर्यादित व सयमित उपभोग का आदर्श होगा। ऋग्वेद मे ऋषि कहता है हे इन्द्र! हमे पुत्र–पौत्रादि सहित धन प्राप्त कराओ। हमारे निमित्त उज्ज्वल धन लेकर आओ। हमारी कामना अत्यन्त बढ़ी हुई है तुम धन के स्वामी हो हमारी कामना की पूर्ति करो।

आवश्यकताओ की पूर्ति एव अधिकतम सतुष्टि

आवश्यकताओ की पूर्ति होने पर मनुष्य को अधिकतम सतुष्टि या सुख प्राप्त होता है। वैदिक वाङमय मे उत्तम न्यायोचित स्वय द्वारा अर्जित तथा पुत्रादि से युक्त धन द्वारा कामनाओ को पूर्ण कर सुख की कामना सर्वत्र मिलती है। ऋग्वेद मे ऋषि कहता है हे देवगण ! हमे पुत्रादि से युक्त धन दो। आदित्य वसु रुद्र मरुदगण हमारी कामना पूर्ण कर सुखी करे। दरिद्रता हमारे पास से भागे और हम अन्न प्राप्त कर सुख पावै। हे इन्द्र तथा अग्नि हमे उपभोग योग्य विविध प्रकार का धन दो। हे इन्द्र पति–पत्नी को सुन्दर गृह और सतान युक्त रखो। हम जीवन भर विभिन्न भोगो को भोगते रहे। हमारी कामनाओ (इच्छाओ) को गो घोडे और श्रेष्ठ धन से पूर्ण करो। धन द्वारा हमे प्रसिद्धि प्राप्त हो। सुखकारी अन्न के उपभोग से हमारी देह पुष्ट हो और बुढापा हमसे दूर रहे। हे मरुदगण ! तुम हमे गो घोडे रथ पुत्र सुवर्ण तथा बहुत सा अन्न दो। तुम हमारी सम्पन्नता की वृद्धि करो। वैदिक साहित्य मे उपयोग हेतु प्रचुर परिमाण मे धन की कामना की गई है। ऋग्वेद मे ऋषि कहता है कि इन्द्र व वरुण आदि देवताओ की रक्षा से हम धन को प्राप्त कर उसका उपभोग करे वह धन प्रचुर परिमाण मे सचित हो। हे इन्द्र हमारे उपभोग के निमित्त उपयुक्त अन्न दिलाने वाला तथा रक्षा करने वाला समर्थ धन प्रदान करो। हे इन्द्र हमको उपयोग्य धन दो हम नित्य ही इसकी इच्छा करते है। स्तोता उसी धन को प्राप्त कर देवो के निमित्त यज्ञ का प्रबध करते है। हे वरुण ! मुझे किसी ऐश्वर्यवान व्यक्ति के समक्ष अपनी दरिद्र गाथा न कहनी पड़े। मुझे आवश्यक धन की कभी कमी न खटके। सब सुखो की कामना करने वाले मुझ यजमान का कल्याण हो। पारलौकिक सुख की कामना भी कल्याणकारी हो। मै दोनो लोको का सुख से उपयोग करु। बहुत सा अन्न सुवर्ण जलवृष्टि धान्य पशु प्रजा आदि सभी प्रयोजनीय वस्तुओ से समृद्ध होते हुए हमारा कल्याण हो। वस्तुओ के उपभोग से इहलोक एव पारलौकिक सुखो तथा प्रसन्नता प्राप्त होने वाले पदार्थ अनुकूल होने एव इन्द्रिय सम्बन्धी सब सुखो का उपभोग कर सतुष्ट रहने की कामना की गई है। व्रीहि धान्य जौ उडद तिल मूग चना कागनी चावल आदि खाद्य पदार्थों एव सु र्ण लोहा ताबा सीसा रागा आदि पाषाण श्रेष्ठ मिट्टी वनस्पति आदि यज्ञ फल के रूप मे प्राप्त कर उपभोग करके सभी कामनाएँ पूर्ण हो ऐसी आशा की गई है। आवश्यकताओ को पूर्ण कर सतुष्टि प्राप्ति हेतु सहस्त्रो धनो से सम्पन्न होने तथा बहुत दूध देने वाली गोओ से अपने घर को पूर्ण करने की कामना की गई है। मनुष्य की भौतिक सुख की आपूर्ति पूर्णत अर्थ से ही सभव है। मानव के ज्ञान भोग और यथाशक्ति परिश्रम द्वारा अपनी आजीविका उत्पन्न करे ताकि समाज मे दरिद्रता और अभाव का प्रवेश न हो क्योकि दरिद्रता से आवश्यकताओ की सतुष्टि नही हो सकती। ऋग्वेद मे दरिद्रता को दुत्कारने का एक रोचक उदाहरण मिलता है जहाँ कहा गया है कि हे धनहीन और कुरुप दरिद्रे ! तू निर्जन पर्वत पर जा। यहाँ तेरे लिए कोई स्थान

नहीं है। यहाँ सुदृढ अत करण और अध्यवसायी मनुष्य अपने पराक्रम से अपना भाग्य अकित करता है जो तेरा विनाश कर देवे। बहुत से धन और मधुर पदार्थों से सम्पन्न होने तथा भूख प्यास की व्याकुलता को प्राप्त न होवे।

प्राचीन भारतीय वाङमय का 'अप्राप्य अर्थ की इच्छा प्राप्त अर्थ की वृद्धि और बढाये हुए धन को विधिपूर्वक सत्पात्रो को दान करना मुख्य ध्येय रहा है। यजुर्वेद मे आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विभिन्न वस्तुओं पर धन व्यय करने के बाद पुन धन प्राप्त करने तथा पूर्व सम्पादित धन को पुन सम्पादित करने की कामना की गई है। भारतीय चितन में काम की तृप्ति को अग्नि व समुद्र की तरह असभव मानकर एव सम्पत्ति के द्वारा अमरत्व–प्राप्ति की आशा को व्यर्थ जानकर व्यक्ति को उपभोग में सयम बरतते हुए उसी में सतोष धारण करना चाहिए क्योकि सतोष को ही 'परम सुख' माना गया है। कामनाओं के जिस–जिस अश का मनुष्य परित्याग करता है उसकी ओर से वह सुखी होता है। जो सदा काम के वश में रहता है वह केवल दुख ही भोगता है। बिना त्याग के सुख नहीं मिलता त्याग के बिना परम श्रेष्ठ परमात्मा प्राप्त नही होता। बिना त्याग के निर्भय होकर शयन नहीं किया जाता इसलिए तुम विषयों के परित्याग करके सुखी हो जाओ। तृष्णा का अत नहीं है तुष्टि ही परम सुख है इसलिए पडित लोग इस लोक में सतोष को ही परम धन समझते हैं। सतोष ही उत्तम स्वर्गलोक से बढकर है और सतोष ही परम सुख है इससे बढकर कोई भी वस्तु श्रेष्ठ नही है। हितोपदेश में भी कहा गया है कि सतोष रूपी अमृत से तृप्त और शात चित वालो को जो सुख मिलता है वह धन के लोभी और इधर–उधर भटकने वालो को कहाँ से प्राप्त होगा अत विश्व के प्रत्येक पदार्थ को ईश–धन मानकर व्यवहार करना तथा त्यागपूर्वक उपभोग में लाना ही आवश्यक एव उचित है।

उपभोग का अर्थ

अर्थशास्त्र में उपभोग का अर्थ उस क्रिया से लिया जाता है जिससे उपभोक्ता की किसी आवश्यकता विशेष की सतुष्टि होती हैं। व्यक्ति की आवश्यकताओं की सतुष्टि के लिए वस्तुओ तथा सेवाओं का प्रत्यक्ष एव अतिम प्रयोग ही उपभोग कहलाता है। वास्तव मे उपभोग ही अर्थव्यवस्था का आधार है। उपभोग की इच्छा या आवश्यकता के कारण ही वस्तुओ तथा सेवाओं की माग उत्पन्न होती है। इस माग के कारण ही उत्पादन के लिए प्रयत्न किये जाते हैं। माग की पूर्ति के लिए उत्पादित वस्तुओं व सेवाओ का विनिमय तथा वितरण किया जाता है।

प्राचीन भारतीय वाङमय में उपभाग का सीधा सम्बन्ध उत्पादित वस्तुओ की खपत (माग) समाज में किस प्रकार की जाए, से रहा है। आधुनिक अर्थशास्त्र की भाति उस समय भी किसी वस्तु का उपभोग उसकी माग पर निर्भर माना गया है। वेदों मे इन्द्र वरुण अग्नि आदि देवताओं से विभिन्न उपभोग्य वस्तुओं की माग करके उपभोग करने की

प्रार्थनाएँ की गई है। अथर्ववेद का यह मत्र 'इमे गृहा भयोभुव' स्पष्ट करता है कि मनुष्य अपने जीवन यापन की वस्तुओ की माग करता था। शुक्राचार्य उपभोग का अर्थ बताते हुए कहते हैं–

> धान्य वस्त्र गृहाराम–गोगजादि रथार्थकम्।
> विद्याराज्याद्यर्जनार्थ धनाद्यर्थ तथैव च।।
> *व्ययीकृत रक्षणार्थमुपभोग्य तदुच्यते।* (शु नी 2/344–45)

अर्थात्–धान्य वस्त्र गृह बगीचा गो गज आदि तथा रथ के लिए एव विद्या तथा राज्य आदि के उपार्जन के लिए और धन आदि की प्राप्ति के लिए तथा इन सबो की रक्षा के लिए जो व्यय किया जाता है उसे 'उपभोग्य' कहा जाता हैं। शुक्र ने सोना रत्न चादी निष्क (स्वर्ण मुद्रा) रखने के जो स्थान है एव रथ घोडे गो गज ऊट बकरे भेड़े आदि के तथा इनके अध्यक्षों के लिए पृथक–पृथक बने हुए जो स्थान है तथा बाजे शास्त्र अन्न धान्य रखने के लिए जो स्थान है तथा मत्री शिल्प नाटय वैद्य मृग पाक पक्षी इनके लिए जो स्थान है उन सबो की गणना भोग्य के अन्दर है और इन सबो के सम्बन्ध मे होने वाले व्यय को भी भोग्य कहते है।

उपभोग के प्रकार

प्राचीन भारतीय वाडमय मे उपभोग सम्बन्धी विभिन्न अवधारणाओ को हम सयमित उपभोग सह–उपभोग एव समान उपभोग मे बाट कर अध्ययन कर सकते है।

(अ) सयमित उपभोग की अवधारणा–स्वय द्वारा अर्जित अर्थ (वित्त राज्य आदि) का इच्छा पूर्ति के लिए न्यून एव सयमित उपभोग हो ऐसा आग्रह वैदिक साहित्य मे बार–बार दिखाई देता है। ऋग्वेद मे कहा गया है कि 'हे मित्र वरुण ! हम किसी अन्य व्यक्ति के धन अपने लिए उपभोग नही करते। किसी के धन से शरीर को पुष्ट नहीं करते। हम अपने सतान के साथ हमारे कुटुम्बी भी अन्य किसी के धन का उपभोग नही करते। अर्थात् हम तुम्हारी कृपा से प्राप्त हमारे द्वारा अर्जित धन से ही सतुष्ट रहते है। जीवन रक्षा के लिए जितने आहार का प्रयोजन हो उतना ही अन्न ग्रहण करना चाहिए। सयमित उपभोग पर भारतीय वाडमय में इसलिए जोर दिया गया है कि मनुष्य की सम्पूर्ण आवश्यकताओ की पूर्ण सतुष्टि (तृप्ति) असभव है तथा इन्द्रिय–सुखेच्छा जीवन भर पूर्ण नही हो सकती। अत कामवासनाओ की तृप्ति को असभव मानकर एव सम्पत्ति द्वारा अमरत्व प्राप्ति की आशा को व्यर्थ जानकर व्यक्ति को उपभोग मे सयम बरतते हुए उसी मे सयम धारण करना चाहिए क्योकि सतोष ही परम–सुख माना गया है। उसके लिए इस विश्व के प्रत्येक पदार्थ को ईश (परमात्मा) वृत मानकर व्यवहार करना तथा त्याग पूर्वक उपभोग मे लाना ही आवश्यक एव उचित है। ईशोपनिषद का उन्मेष ही आर्थिक ससाधनो को मर्यादित और सयमपूर्ण अर्जन और उत्सर्जन से होता है –

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेनत्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।। (यजु 40/1)

अर्थात्–अखिल ब्रह्माण्ड मे जो कुछ भी जड चेतन स्वरूप जगत है यह समस्त ईश्वर मे व्याप्त है। उस ईश्वर को साथ रखते हुए त्यागपूर्वक (इसे) भोगते रहो (इसमें आसक्त मत होओ (क्योकि) धन भोग्य किसका है अर्थात किसी का नहीं। जगतगुरु शकराचार्य ने इस मत्र की व्याख्या मे स्पष्ट कहा है कि तू किसी के धन की अर्थात अपने या पराये किसी के भी धन की इच्छा मत कर आकाक्षा न कर क्योंकि धन भला किसका है धन तो किसी का भी नही है जो उसकी इच्छा की जाए। जीवन–निर्वाह के लिए विविध सामग्री का एकत्रण व उपभोग इच्छानुसार न होकर आवश्यकतानुसार अर्थात न्यूनतम करना ही न्यायोचित है।

धनोपार्जन के साथ उसका वितरण अर्थात धन का उपभोग का शास्त्र–सम्मत मार्ग भी ईशोपनिषद के इस मत्र में बताया गया है। परमेश्वर हमारा मार्गदर्शन कर हमें सन्मार्ग और न्यायपूर्ण ढग से ही धनापार्जन की शक्ति और सकल्प प्रदान करे। श्रमोपार्जित धन और उसका त्यागपूर्वक भोग ही श्रेष्ठधर्म है जो व्यक्ति धन का सदुपयोग नही करते वे धन के स्वामी न होकर सेवक की भाँति बन जाते हैं जो उसके सकेतो पर नाचते हैं। मनु कहते हैं कि यदि अर्थ और काम धर्म–विरोधी हो तो उन्हे छोड देना चाहिए। अशुद्ध धन से प्राप्त सुख–परमार्थ विरोधी होने के कारण त्याज्य है। अथर्ववेद में पूर्ण परिश्रमार्जित धन को पूर्ण उदारता के साथ लोक कल्याण मे व्यय करने का निर्देश है। अर्थ की महत्ता न्यायपूर्वक अर्जन तथा नीतिपूर्वक उपभोग मे ही देखी जा सकती है। नारद युधिष्ठर से कहते हैं –

यावद् भ्रियते जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति।।

अर्थात–पुरुषार्थ चतुष्टय के सम्पादन हेतु गृहस्थ अर्थ–सचय करे परन्तु मनुष्यो का अधिकार केवल उतने ही धन पर है जितने से उसका पेट भर जाए। इससे अधिक सम्पत्ति को जो ग्रहण करता है वह चोर है एव दण्ड का पात्र है। प्रो उदय जैन हिन्दु अर्थशास्त्र मे लिखते हैं कि भारतीय चिंतन मे जीवन यापन की गतिविधियो के दो पहलू हैं। प्रथम, धर्मपरायण जीवन के लिए उपभोग तथा दूसरा धर्म परायणहीन जीवन के लिए उपभोग। दोनो ही प्रकार के लोगो की जीवन शैली मे माग का स्वरूप और ढाँचा अलग–अलग रहा है। प्रो केन्नेथ बोल्डिग ने माग के इस स्वरूप को अर्थव्यवस्था मे रखा है। यह निश्चित है कि दोनो ही प्रकार के लोगो मे माँग का ढाँचा अलग–अलग रहेगा। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अति एव अमर्यादित तथा एकाकी उपभोग पर आधारित होने से गैर–धर्मपरायण लोगो की माँग का ढाचा तैयार करती है जबकि भारतीय चिंतन माग का ढाचा धर्मपरायण लोगो की माग पर आधारित है। आर्थिक प्रगति से देश की शक्ति तो

बढती है पर यह आवश्यक नहीं कि आर्थिक प्रगति के साथ--साथ चरित्र निर्माण भी बढे। व्यवहार म यह देखा जा रहा है कि आर्थिक प्रगति के साथ चरित्र का विखण्डन हुआ है तथा धर्म--परायण लोगो का कल्याण कम हुआ है। अत ऐसी माग जो रोटी कपडा और शिक्षा से हटकर दिखाऊ एव भडकीले जीवन को सहारा देती है वह समाजहित मे नही है। स्कन्दपुराण के अनुसार मुद्रा अर्जन तथा धन सग्रह कभी भी दण्डनीय नही है परन्तु गलत तरीके से कमाया धन तथा आवश्यकताओ से अधिक धन सग्रह दण्डनीय है। न्यायाचित तरीके से कमाये हुए धन का 10 प्रतिशत भाग ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए व्यय किया जाना चाहिए।

व्यक्ति को कमाने मे ईमानदार होना चाहिए तथा दूसरा अपनी आवश्यकताओ से अधिक न कमाए। भारतीय चितन फिर भी यह कहता है कि यदि अनायास कभी अधिक धन कमा भी लिया जाय तो उसे अति--दरिद्र व्यक्तियो मे वितरण या दान कर दिया जाये। क्योकि अधिक मुद्रा न तो दान की जाती हे ओर न ही स्वय के लिए उपभोग की जाती है वरन् लुप्त हो जाती है अर्थात अधार्मिक एव गलत कार्यो मे व्यय हो जाती है। मनु कहते हैं कि उपभोग से इच्छा कभी शात नही होती वल्कि अग्नि मे घी डालने पर ज्वाला के समान बढती जाती है। जो मनुष्य इन विषया को प्राप्त करले और जो मनुष्य इन विषयो को त्याग दे। उन दोनो मे सब विषयो को प्राप्त करने वाले की अपेक्षा विषयो का त्याग करने वाला मनुष्य श्रेष्ठ है। इन्द्रिय सुख मे लिप्त मनुष्य की बुद्धि वैसे ही नष्ट हो जाती है जैसे चमडे के बर्तन (मशक आदि) के एक भी छिद्र से सब पानी बहकर नष्ट हो जाता है। प्रो पचमुखी भी इसी मत को स्पष्ट करते हुए लिखते है कि मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं से अधिक सग्रह नही करना चाहिए। खाद्यान्नों का सग्रह पापपूर्ण एव अधार्मिक कार्यों से नही किया जाना चाहिए। अपनी मेहनत से कमाये हुए धन का सग्रह कभी नही करना चाहिए क्योकि यह कई परेशानियो को जन्म देता है।

चाणक्य सयमित उपभोग को स्वास्थ्य के लिए भी ठीक मानते हैं। भागवतपुराण के अनुसार मनुष्य का स्वत्व केवल उतने पर ही है जितने से उसका पेट भरता है। इससे अधिक को जो अपना मानता है वह चोर है एव दण्ड का पात्र है।

भारतीय आथिक आदर्शो मे व्यक्ति के स्वत्व को स्वीकार नही किया है किन्तु साम्यवादियों की तरह स्वत्व त्याग को व्यक्ति पर बलात् आरोपित भी नही किया है। उसे दण्डनीय अवश्य माना है किन्तु केवल उसे हेय बताने के लिए अथवा उसका अनौचित्य प्रदर्शित करने के लिए। इस चितन का उद्देश्य स्वय की प्रेरणा से त्याग की भावना उत्पन्न करना हे बलात् सम्पत्ति छीनना नही। शुक्र ने अति उपभोगवाद पर कटाक्ष करते हुए कहा हे कि जो मनुष्य उपभोग के सम्बन्ध मे ज्यादा आशा लगाये रहते है उनके लिए ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण वस्तुए भी उपलब्ध करादी जाए तो भी पूर्ण नही हो सकती। नारद भी अति उपभोग को द्रव्य का अपहरण करना अर्थात् स्तेय मानते हैं।

(ब) सह–उपभोग की अवधारणा–प्राचीन भारतीय विद्वानो ने अपने नैतिक उपदेशो के आधार पर लोगो मे परस्पर वस्तुओ को बाटकर उपभोग करने तथा समानता व कल्याण का भाव उत्पन्न किया है। यह धारणा कूट–कूट कर भरी हुई है कि मनुष्य को स्वय अपने आपके लिए वस्तुओ का उपभोग नही करना चहिए बल्कि समाज के अन्य लोगो मे बाट कर उपभोग करना चाहिए। वेदो में कहा गया है कि ऐश्वर्य वैभव या सम्पत्ति परमात्मा की देन है अत इसे बाटकर उपभोग करो जो सम्पत्ति का अकेला उपभोग करता है वह पापी है। जब विपत्ति मे पडता है तो उसका कोई साथी नही होता। कोई भी व्यक्ति उसके सुख–दुख मे सहयोग करने के लिए तैयार नहीं होता। ऋग्वेद मे मनुष्यो को ही नही वरन देवताओ को भी धन को विभिन्न लोगों मे बाटकर उपभोग करने का सदेश है।

पृथ्वी पर जो कुछ वस्तु है उसमे मेरा कुछ भी नही हे अर्थात इसमें जैसा मुझे अधिकार है वैसा ही दूसरो का भी है। धन को बाटकर उपभोग करना वर्णों के साधारण धर्मों मे से एक है। प्राप्त हुए उत्तम भक्ष्य भोज्य पेय ओर अन्य वस्तुओ को दूसरों के देखते हुए जो पुरुष अकेला भोजन करता है उसे नृशस कहते है। उपार्जित धन का मात्र पचमाश (पाचवा हिस्सा) स्वउपयोगार्थ रखकर शेष (4/5) राशि स्वजन पुनअर्जन यश व धर्मार्थ खर्च करने एव ब्रह्म विप्र सेवार्थ व्यय करने के पश्चात शेष धन धान्य अर्थात यज्ञ शेष को ही अमृत मानकर उपभोग करने का आदेश भारतीय चितन का है। अधिकतम सतुष्टि के लिए परिश्रमपूर्वक पर्याप्त साधन (धन–धान्य) अर्जन का समर्थन किन्तु केवल स्वय या स्व परिवार के लिए उसका प्रयोग–उपभोग का अथर्ववेद विरोध करता है।

शतहस्त समाहर सहस्त्रहस्त स किर।
कृतस्य कार्यऽस्य चेह स्फार्ति समावह।। अथर्ववेद 3/24/5

अर्थात– हे मनुष्य ! तू सो हाथो से धन प्राप्त (कमाई) कर और हजार हाथोवाला बनकर उस धन को दान कर। इस उदार भावना से ही मनुष्य की अधिक से अधिक आर्थिक उन्नति हो सकती है। साथ ही हर एक मनुष्य अपने कार्यक्षेत्र की वृद्धि करे जिससे सबकी उन्नति होगी ओर सम्पूर्ण राष्ट्र का सुख बढ सकता है। शतपथ ब्रह्मण कहता हे कि असुर प्रवृत्ति के लोग स्वय उपभोग करते हैं या स्वार्थवश अपना ही कार्य करते हैं जबकि देव प्रवृत्ति के लोग उपभोग बाटकर करते हैं तथा कार्य सामुहिक हित मे करते हैं। प्रजापति दक्ष के अनुसार जो पुरुष इस लोक में अनेक व्यक्तियों की जीविका चलाता है उसी का जीवन सफल हे। अन्य लोग जो केवल अपना ही पेट भरते हैं वे जीते जी मरे हुए के समान है। कूर्मपुराण भी कहता है कि जो व्यक्ति खाद्यानों का उपभोग अकेला या स्वय की सतुष्टि के लिए करता है वह निरर्थक जीवन व्यतीत करता है। मनु विष्णु धर्मसूत्र याज्ञवल्क्य आपधर्म सूत्र बोधायन धर्म सूत्र के मत में गृहस्थ तथा उसकी पत्नी को चाहिए कि वे मित्रो सम्बन्धियो एव नौकरो को खिलाकर ही स्वय खाए। गृहस्थ को

अतिथियो व नौकरो के भोजन मे कटौती नही करनी चाहिए। गीता मे शिक्षा दी गई है कि जो व्यक्ति दूसरो को दिए बिना अकेला उपभोग करता है वह पाप को खाता है अर्थात् पापी होता है। महात्मा विदुर भी इसी नीति का समर्थन करते हुए कहते हैं कि जो अपने द्वारा भरण पोषण के योग्य व्यक्तियो को बाटे बिना अकेले ही उत्तम भोजन करता है और वस्त्र पहनता है उससे बढकर क्रूर कौन होगा। स्वय अकेला भोजन नही करना चाहिए। यदि धनी होकर भी जो दान नही करता उसके गले मे पत्थर बाधकर नदी मे डुबो देना चाहिए। इसीलिए उन्होने कहा है कि जो व्यक्ति अपने आश्रितो को बाट कर थोडा भोजन करता है बहुत अधिक काम करके भी थोडा सोता है तथा मागने पर जो मित्र नही है उसे भी धन देता हे उस मनस्वी पुरुष के सारे अनर्थ दूर हो जाते है। शुक्र ने भी अकेले उपभोग का निषेध किया है।

नैक सुखी न सर्वत्र विरत्रब्धो न च शकित ।।शु नी 3/13

शुक्र स्वय के परिवार के अलावा असहाय असमर्थ को भी पालना का उपदेश देता है। उन्होने कीडे चीटियो तक के दुख सुख को अपने भाति ही समझने का उपदेश दिया है तथा अकेले उपभोग नही करना चाहिए। कौटिल्य तो एक कदम और आगे बढ जाते हैं। उन्होने उन लोगो पर 12 पणो के दण्ड का प्रावधान किया है जो बच्चो पत्नी माता–पिता छोटे भाइयो बहिनो कुवारी कन्याओ विधवाओ पुत्रियों का भरण–पोषण नही करता। बृहस्पति भी खाद्य सामग्री को अपने बधुओ मे बाट कर उपयोग करने का मत प्रकट करते हैं।

(स) समान उपभोग की अवधारणा– प्राचीन भारतीय चितन मे सयमित उपभोग एव सह–उपभोग की अवधारणा का विवेचन ही नही किया गया है अपितु समान उपभोग का भी पर्याप्त विवरण प्राप्त होता है। अथर्ववेद मे समान उपभोग का निर्देश देते हुए कहा गया है हे पुरुषो ! तुम समान मन वाले समान कार्य वाले रहकर छोट–बडो का ध्यान रखते हुए परस्पर सुन्दर वचन कहते जाओ। हे मनुष्यो मै तुम्हे समान कार्यो मे प्रवृत्त करता हूँ। समानता के इच्छुको ! तुम्हारा अन्न पानी का उपभोग एक सा हो। मै तुम्हे समान मन बनाकर एक से कार्य मे प्रवृत्त करता हूँ। सभी को अन्न धन और उन्नत सरक्षण मिले जिससे सबकी उन्नति हो। समान उपभोग की धारणा का समर्थन करते हुए गाँधीजी कहते है प्रत्येक को सतुलित भोजन रहने के लिए साफ सुथरा मकान बच्चों की शिक्षा की सुविधा और दवा–दारु की पर्याप्त मदद मिलनी चाहिए। यह है मेरी आर्थिक समानता की तस्वीर। आर्थिक समानता का अर्थ हमे यह नही मान लेना चाहिए कि प्रत्येक के पास एक समान धन रहेगा। इसका अर्थ यह जरूर है कि प्रत्येक के पास रहने के लिए मकान पहनने के लिए पर्याप्त वस्त्र और भोजन के लिए पर्याप्त अन्न होगा। धर्मयुक्त धन प्राप्त करके हम सभी सगठित होकर आनद का उपभोग करे। वैयक्तिक उन्नति के स्थान पर सामुदायिक उन्नति के उद्देश्य की प्राप्ति मे सलग्न व्यक्ति को अभ्युदय तथा नि श्रेयस दोनो की प्राप्ति होती है। (ऋग 5/20/4 5/44/12)

महाभारत मे समान उपभोग का समर्थन करते हुए कहा गया है कि तुम हमारे समान होकर रहो। हम लोग तुम्हें भक्ष्य वस्तु देवे जो हम लोगो का भोजन है वही तुम्हारा भक्ष्य होवे। दानादि से प्राप्त धन को स्वजनोसहित समभाव से भोग किया जाना चाहिए। सम्पूर्ण जगत के उपभोग योग्य वृष्टि जल की धारा से सभी तृण लता और धान्यादि औषधियो वनस्पतियो आदि को सचित करने का निर्देश है। सभी लोग भोजन पर निर्भर रहते हैं। भोजन जीवन (प्राण) है। अत सभी को भोजन देना चाहिए क्योकि यह सर्वोत्तम है। बिना अन्य व्यक्ति को खिलाए स्वय भोजन नही करना चाहिए।

अय निज परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरिताना तु वसुधैव कुटुम्बकम।।

अर्थात्–यह मेरा है यह पराया है ऐसे विचार तुच्छ या निम्न कोटि के व्यक्ति करते हैं। उच्च चरित्र वाले व्यक्ति समस्त ससार को ही कुटुम्ब मानते है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' का मन विश्व बधुत्व की शिक्षा देता है। भारतीय वाङमय में सदा सब के कल्याण की कामना की गई है। इसे ही सार्वभौम मानव धर्म माना गया है।

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु खभाग्भवेत्।

मार्कण्डेय पुराण में महर्षि मार्कण्डेय सभी प्राणियों के कल्याण मगल की प्रार्थना करते हैं। समस्त प्राणी प्रसन्न रहे। किसी भी प्राणी को कोई व्याधि या मानसिक व्यथा न हो। सभी कर्मो से सिद्धि हो। सभी प्राणियो को अपना एव अपने पुत्रों के हित के समान बर्ताव करे।

दान एव दक्षिणा की अवधारणा

सयमित मर्यादित आवश्यकतानुसार तथा सह उपभोग के अमोघ अस्त्र या उपकरण दान एव यज्ञ की अवधारणा है। वर्णाश्रम व्यवस्था में गृहस्थाश्रम ही सभी लोगो का जीविकोपार्जन करता है। जैसे माँ का आश्रय लेकर सभी प्राणी जीवित रहते हैं। उसी प्रकार गृहस्थाश्रम का आश्रय लेकर अन्य आश्रयवासी जीवित रहते हैं। जैसे नदी समुद्र में जाकर वास करती है वैसे ही सब आश्रमों के लोग गृहस्थ के अवलम्ब से निवास करते है। गृहस्थाश्रम ही सब आश्रमो का मूल है। मनु ने कलियुग मे जीवन का प्रमुख रूप दान को कहा है तथा गृहस्थ सभी आश्रयो के लोगो का पालन करता है।

दान मे किसी दूसरे को अपनी वस्तु का स्वामी बना दिया जाता है। दान लेने की स्वीकृति मानसिक या याचिक या शारीरिक रूप से हो सकती है। दान की महत्ता बतलाते हुए अपरार्क ने कहा है कि "दो प्रकार के व्यक्तियों के गले में शिला बाधकर डुबो देना चाहिए अदानी धनवान् एव अतपस्वी दरिद्र। तुलसीदासजी ने कलियुग में दान को मुख्यधर्म एव महान कल्याणकारी बताते हुए कहा है–

प्रगट चारि धर्म के कालि महुँ एक प्रधान।
जेन केन विधि दीन्हे दान करई कल्यान्।।

व्यासजी कहते हैं कि जो विशिष्ट सत्पात्रों को कुछ दान देता है उसी को मैं उस व्यक्ति का वास्तविक धन या सम्पत्ति मानता हूँ, अन्यथा शेष सम्पत्ति तो किसी अन्य की है। बिना दान के पशु के समान जीवन होता है। शूरवीर व्यक्ति तो सौ में से खोजने पर एक प्राप्त हो जाता है हजार मे ढूढने पर एक विद्वान् व्यक्ति मिल जाता है उसी प्रकार एक लाख मे सभी पर नियत्रण करने वाला वक्ता भी मिल जाता है किन्तु असली दाता खोजने पर मिल जाय यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। दान धन की सुरक्षा का एक अप्रत्यक्ष साधन है। धन दान से जितना सुरक्षित रहता है उतना सग्रह से नहीं।

अतिदान का निषेध– परतु भारतीय साहित्य अतिदान को ठीक नहीं मानता। दान देना चाहिए ओर अवश्य देना चाहिए किन्तु दयालुता अपने घर के विषय में भी होनी चाहिए अर्थात् स्वय या उनके आश्रित भूखे मरे और अन्य लोगों को सम्पूर्ण सामग्री का दान करदे। **अग्निपुराण आपधर्मसूत्र, बौधायन धर्म सूत्र** अपने आश्रितों नौकरों दासों की चिता न करके अतिथियों एव अन्य को भोजन बाट देना अनुचित मानते हैं। **बृहस्पति** एव **मनु** ने भी अपने कुटुम्ब के भरण–पोषण की परवाह न करके दिये जाने वाले दान की भृर्त्सना की है। **भागवत पुराण** भी ऐसे दान की प्रसशा नही करता जिससे वृत्ति में अवरोध हो क्योकि लोक में दान यज्ञ एव कर्म वृत्ति की सहायता से ही किये जा सकते हैं। शुक्र ने कहा है कि ससार मे अतिदान तपस्या तथा सत्य का सम्बन्ध ये तीनों दरिद्रता उत्पन्न करने वाले होते हैं अर्थात् अतिदान से दरिद्र हो जाना जगप्रसिद्ध है। जो धन किसी को दान नही दिया जाए। इस ससार में परिग्रह का कोई प्रयोजन नही है क्योकि परिग्रहयुक्त पुरुष ही दोषवान हुआ करता है जैसे रेशम का कीडा निज परिग्रह निबन्धन से बद्ध होता है।

यज्ञ एव दक्षिणा–भारतीय त्यागमयता का सर्वोपरि विधायक है– यज्ञ। जिसका प्रारभ ही 'इदन्नमम' की भावना से होता है। यज्ञ का मूल त्याग है। अत यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म तथा कृपणता को पाप कहा गया है। अन्न से प्राणियों के शरीर उत्पन्न होते हैं। वृष्टि से अन्न होता है। यज्ञ से वृष्टि होती है।

दक्षिणा श्रम प्राप्त धन का द्योतक है। वस्तुत दाहिने हाथ अर्थात् परिश्रम द्वारा उपार्जित को विसर्जित करना ही दक्षिणा का अभिप्राय है। दान–दक्षिणा व्यक्ति को परिश्रम की ओर प्रवृत्ति करती है। इसीलिए कहा गया है कि वित्त की उत्पत्ति यज्ञ के लिए है। अत इसे धर्म में लगाना चाहिए। यज्ञ की सफलता उसकी समृद्धि और प्रभाव हेतु दक्षिणा देना आवश्यक है। यज्ञ धन का त्यागपूर्ण वितरण तथा अर्थव्यवस्था मे सामग्र माग को बढ़ाने का प्रमुख साधन है। यज्ञ धन को सामूहिक हितकारी और उद्देश्यपूर्ण बनाकर अर्थ–कोटि में लाता है।

उपभोग के नियम

व्यक्ति को अपने निर्वाह के लिए कितने प्रकार का अन्न सग्रह करना चाहिए। किस प्रकार से उसका उपभोग हो आदि के सम्बन्ध मे प्राचीन भारतीय वाडमय में अनेक नियम बनाये गये थे। महाभारत (शाति पर्व 9/56–58) मे उपभोग के नियमो की निम्न रूप मे व्याख्या की गई है–

भाति–भाति की दु श्चेष्टा अपने सेवको की जीविका का विचार, सबके प्रति सशक रहना प्रमाद का परित्याग करना प्राप्त हुई वस्तुओ को सुरक्षित रखते हुए उसे बढी हुई वस्तुओ का सुपात्रो को विधिपूर्वक दान देना यह धन का पहला उपयोग है। कर्म के लिए धन का त्याग उसका दूसरा उपयोग है। कामोपयोग के लिए उसका व्यय करना तीसरा और सकट निवारण के लिए खर्च करना उसका चोथा उपयोग है।

इन चार प्रकार के उपभोगो के आधार पर ही व्यक्तिगत तथा सामुहिक जीवन की आर्थिक गतिविधियों का सचालन होता था। इन चारों कार्यों के अलावा आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अन्य मदो पर भी धन का उपभोग किया जाता था। प्राचीन चितको ने अधिकाधिक आवश्यकताओं की पूर्ति उपलब्ध साधनो द्वारा करने के नियम प्रतिपादित किए थे। स्व–अर्जित धन से ही उपभोग को भारतीय चिंतन उचित ठहराता है। आचार्य शुक्र ने परिवार के पालन–पोषण को आवश्यक बताते हुए कहा है कि जो मनुष्य कुटुम्ब पालन के विषय मे प्रयत्नशील नही रहता वह सर्वगुण सम्पन्न होते हुए भी जीवित रहकर मरे हुए के समान है अर्थात उसका जीवन व्यर्थ है। केवल ग्रहस्थाश्रम के काल मे ही धन सम्पत्ति उपार्जित करने का नियम है ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ व सन्यास आश्रम मे व्यक्तियो की जीविका उपार्जन और सग्रह का जीवन बद हो जाता है। आश्रम मर्यादा मे पिछली पीढी आने वाली पीढी के लिए कमाने की जगहो को खाली करती जायेगी इससे बेरोजगारी नहीं बढेगी। कोई व्यक्ति भूखा और निकम्मा नही रहेगा। ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ एव सन्यास आश्रमो मे प्रत्येक व्यक्ति की पालना समाज करेगा।

उपभोग मुख्य रूप से सामाजिक व्यवस्था के अनुसार चार वर्णो एव चारो आश्रमों पर निर्भर करता था। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्रो को पृथक–पृथक ढग से धन का उपभोग करने का आदेश दिया था। इसी प्रकार ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थी तथा सन्यासी के लिए यह नियम बनाये गये थे कि वे शास्त्र के नियमो के अनुसार महान धन वाला होने के बाद भी धन का उपभोग पालन–पोषण के योग्य व्यक्तियो में किया जाना चाहिए। शुक्र ने अधिक व्यय करने वाले को राज्य से बाहर निकालने का निर्देश देते हैं। कौटिल्य ने ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले तथा धन का अनुचित व्यय करने वाले व्यक्ति को रोकने का दायित्व राज्य पर डालते हैं।

उपभोग की आचार सहिता

(1) न्यायोचित साधनो से प्राप्त धन से ही उपभोग– वैदिक समाज

शास्त्रियो का मत है कि समस्त शुचिताओ मे अर्थ की शुचिता प्रमुख है।[7] कृषि–वाणिज्य आदि का मूल उद्देश्य मानव के अभावो को दूर करके उन्हे सुखी बनाने मे दिखाई देता है। पर अन्याय से उपार्जित धन द्वारा उपभोग व्यर्थ हैं। उपार्जित धन के दशमाश का दान करने का विधान सामान्य कोटि के लोगो के लिए है। वैभवशाली धनी और उदारवेता लोगो को अपने उपार्जित धन को पाँच भागो में विभक्त करना चाहिए। (i) धर्म (ii) यश (iii) अर्थ (व्यापार आदि आजीविका) (iv) काम/जीवन के उपयोगी भोग (v) स्वजन *(परिवार के लिए) अशुद्ध धन से प्राप्त परमार्थ विरोधी होने के कारण त्याज्य है।*

एक धनवान व्यक्ति पर पाच तरह से आक्रमण होता है–राजा चोर सम्बन्धी अन्य दूर के रिश्तेदार व पशु तथा स्वय का व्यय। अत व्यक्ति को उचित तरीके से कमाए हुए धन से ही नीतिपूर्वक उपभोग करना चाहिए।

(ii) अकेले सुख उपभोग का निषेध–शुक्र के अनुसार व्यक्ति को अकेले सुखो का उपभोग नही करना चाहिए। जीविका से रहित तथा शोक से पीडित लोगो की यथाशीघ्र सहायता करनी चाहिए। यहाँ तक कीडे व चीटियो तक के दु ख दर्द को भी अपना ही समझना चाहिए। देवता पितृगण तथा अतिथियो को खिलाए बिना कभी भोजन नही करना चाहिए।[8] जो व्यक्ति अकेला खाद्य सामग्री का उपभोग करता है उसका जीवन निष्फल है। जो देवता आदि को अन्न न देकर केवल अपने लिए ही भोजन पकाता है वह पाप को भोगता है। अत यज्ञ से बचा हुआ अन्न ही सज्जनों का अन्न कहा गया है। मनु भी अधिक भोजन को स्वास्थ्य आयु, स्वर्ग एव पुण्य के लिए अहितकर मानते हैं।

(iii) सयमित उपभोग स्वास्थ्यवर्धक–चाणक्य कहते है। कि सयमित उपभोग स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। मनुष्यो का अधिकार उतने पर है जिससे उसकी भूख मिट जाए। *अपनी आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति को जो अपनी मानता है वह चोर* है तथा दण्ड का भागी होता है। अत धन को बाटकर ही उपभोग करना चाहिए।

(iv) उपभोग में नैतिकता–मनु वस्तुओ के उपभोग मे नैतिकता को प्रमुख स्थान देते है। वस्तुओ को चुराकर उपभोग करने वाले पर उन्होने दण्ड का प्रावधान किया है। शुक्र जुआ मद्य आदि व्यसना के उपभोग को उचित नही मानते। मनु के अनुसार जीविका (भोजन वस्त्र आदि) का प्रबध करके पति को परदेश जाना चाहिए। यदि पति भोजन वस्त्र आदि का प्रबन्ध किये बिना ही परदेश चला जाए तो स्त्री को सूत कातकर सिलाई पिरोना आदि कार्यों से अपनी जीविकोपार्जन करना चाहिए।

(v) अति उपभोग का निषेध–शुक्र अति उपभोगवाद पर कटाक्ष करते हुए लिखते हैं कि जो मनुष्य उपभोग के सम्बन्ध मे ज्यादा आशा लगाये रहते हैं उनके लिए ब्रह्माण्ड के अदर उपलब्ध वस्तुए भी उनकी थोडी सी इच्छा पूर्ति के लिए पर्याप्त नही होती। अत सयमित उपभोग ही सर्वोपरि है। परन्तु साथ ही उन्होंने भिक्षावृत्ति को अत्यत ही अधम आजीविका कहा है। चाणक्य दरिद्रता को जीवित अवस्था मे ही मृत्यु के समान

मानते हैं। ऋग्वेद में ऋषि प्रार्थना करता है कि हमारे दारिद्रय दूर हो और हम अत्यन्त धन प्राप्त करे।

(vi) कर्जाधारित उपभोग वृत्ति का निषेध– प्राचीन भारतीय चिंतन मे स्वोपार्जित तथा स्व–स्वामित्व धन से ही विधिपूर्वक औषधिवत व्यय करने का निर्देश दिया गया है।[8] ऋण लेकर उपभोग करने को उचित नही माना है। ऋग्वेद मे ऋषि कहता है–

> माहं मघोनो वरुण प्रियस्यं भूरिदान्न आविदं शूनमापेः।
> मा रायो राजन् त्सुयमादवस्थां बृहद वदेम विदर्थे सुवीरा ।।
> ऋग्.2/27/17

अर्थात्–हे वरुण ! मुझे किसी ऐश्वर्यवान व्यक्ति के समक्ष अपनी दरिद्रगाथा न कहनी पडे। मुझे आवश्यक धन की कमी कभी न खटके। दरिद्रता हमारे पास से भागे। हम ऋणरहित ऊषाओ मे जीवित रहे ओर हम अन्नप्राप्ति सुख पावे। उधार लिया हुआ ऋण नही लौटाने पर मनुष्य को पापी कहा गया है। इहलोक व परलोक में कभी भी ऋणी न रहे। तीसरे लोक मे भी हम उऋण होकर ही रहे। ऋण लेकर उपभोग को अनुचित माना गया है। शुक्र ने दरिद्रता तथा नित्य ऋण लेकर उपभोग को सुखदायक नही मानकर दु:खदायी माना है।

इसका तात्पर्य यह नही है कि ऋण नही लिया जाता था। तत्कालीन समय मे भी विपत्ति के समय उपभोग ऋण (खाद्यान्नो के उपभोग हेतु) लिया जाता था पर उससे जल्दी ही उऋण होने की इच्छा की गई है। ऋणी द्वारा ऋण लेने पर उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र–पौत्रादि को चुकाने का निर्देश था। मनुष्य धर्माधारित मार्ग से ही अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने मे समर्थ हो।

उपभोग की दीर्घकालीन प्रवृत्ति

भारतीय चिंतन दीर्घकाल तक धन सम्पन्न होकर विभिन्न भोगो को भोगते रहने का समर्थन करता है। वेदो में देवताओं से प्रार्थना की गई है कि हमें सुन्दर गृह और संतान से युक्त रखो तथा जीवन भर भोगो को भोगते रहे। मनुष्य सौ वर्ष तक जीवित रहकर पुत्र–पुत्रादि वाला तथा धन से युक्त होकर सौ वर्षों तक पुष्ट एव सम्पन्न रहे। हमे सहस्त्रो दूध की धारो वाली गाए और धन ऐश्वर्य प्राप्त हो और उनका उपभोग करे। सौ वर्ष तक जीवित रहकर उपभोग करने के लिए निरोग रहे। बहुत सा धन और मधुर पदार्थो से सम्पन्न होवे तथा भूख व प्यास की व्याकुलता प्राप्त न हो। हमारे घरो में भेड, बकरी, गो, अन्नादि सभी उपयोग्य वस्तुएँ उपहृत हो और उनका उपभोग कर सौ वर्षो तक जीवित रहे।

हम अपने पुत्रो को सौ वर्ष तक पालने वाले हो। देवाताओ की रक्षा से हम धन को प्राप्त कर उसका उपभोग करे वह धन प्रचुर परिमाण मे संचित हो। यजुर्वेद

आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु, विभिन्न वस्तुओ पर धन व्यय करने के बाद पुन धन प्राप्त करने एव पूर्व सम्पादित धन को पुन सम्पादित करने की कामना की गई है ताकि उपभोग की क्रिया दीघकाल तक निरन्तर चलती रहे। सौ वर्ष तक सुखकारी अन्न से मनुष्य की आवश्यकताएँ सतुष्ट हो और बुढापा मनुष्य से दूर रहे। पृथ्वी आकाश से प्राप्त असख्य धन एव ऐश्वर्य से पूर्ण हो। अभीष्ट धन प्राप्त कर हम सतुष्ट हो। धन प्राप्त कर दरिद्रता को पलट दिया जाता है। बढन योग्य धन मे से दीर्घायु प्राप्त करे।

अथर्ववेद में बहुत से धन और मधुर पदार्थों से घरो को परिपूर्ण होने की कामना की गई है। घरो म रहने वाले मनुष्य धनादि से सम्पन्न रहे। घरो मे भेड–बकरी गौ अन्नादि सभी उपभोग्य वस्तुएँ उपहुत हो। हमारे गृह सुन्दर अन्न धन से सम्पन्न होवे। गृहो में निवास करने वाले भूखे प्यासे न रहे। कल्याण करने वाले धन को देश–देशान्तर से कमा कर उस धन का उपभोग कर अधिक तेजस्वी होवे। यजुर्वेद सम्पूर्ण जगत के उपभोग योग्य वस्तुओ से सुख का उपभोग करने की कामना करता हे।

प्राप्त होने योग्य वस्तुओ की इच्छा करनी चाहिए अप्राप्त अर्थ की कभी अभिलाषा नही करनी चाहिए। वर्तमान मे प्राप्त विषयो का उपभोग करना चाहिए। अनागत विषयो के लिए शोक नही करना चाहिए।

उपभोग की नास्तिक अवधारणा

वेदों के प्रति श्रृद्धा की कसोटी को लेकर भारतीय दर्शन की शाखाओं को आस्तिक तथा नास्तिक दो वर्गों मे बाटा गया। भारतीय दर्शनो की नास्तिक वर्ग की शाखाओ में चार्वाक जैन और बौद्ध दर्शनो की गिनती होती है। हम यहाँ पर उपभोग के सम्बन्ध मे प्राचीन वाडमय मे सयमित मर्यादित एव सह–उपयोग के आधार पर चार्वाक दर्शन को ही नास्तिक वर्ग में शामिल कर रहे है। क्याकि चार्वाक दर्शन सुख को ही जीवन का परम लक्ष्य मानते है। खान पान पर जोर देने के कारण इस मत का नाम 'चार्वाक' पड़ा। इसे 'लोकायत मत' भी कहा गया है। प्राचीन भारतीय साहित्य मे जडवादी को 'चार्वाक' कहा गया है। इस मत के अनुसार प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है। सुखोपयोग ही मानव–सत्ता का एकमात्र श्रेय है। मानव जड की एक उत्पत्ति मात्र है। कोई स्वर्ग नही है कोई अतिम मोक्ष नहीं है कोई परलोक नही है। अग्निहोत्र तीनो वेद तपस्वी की तीन अवस्थाएँ और अपने शरीर के राख लपेटना प्रकृति के उन लोगो की जीविका हेतु बनाये थे जिनमे ज्ञान और पौरुष नही है। यदि हमारे यहाँ श्राद्ध करने से स्वर्ग के जीवो को तृप्ति मिलती है तब उनको मकान के नीचे ही भोजन क्यो नही देते हैं जो कि मकान की छत पर खडे हैं ? चार्वाक दर्शन सुख को ही जीवन का परम लक्ष्य मानता है। परलोक की आशा मे इस जीवन के सुख को नही ठुकराना चाहिए। कल मोर मिलेगा इस आशा से कोई हाथ में आये कबूतर को नही छोडता (वरमद्यकपोत नश्वो मयुर)। जिस सोने के मिलने में सदेह हो उससे कोडी ही अधिक मूल्यवान है। हाथ मे आये धन को दूसरा के लिए

छोड देना मूर्खता है। अत अधिकतम सुख ही परम श्रेय है। कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति अनाज को इस कारण नही छोड सकता कि उसमे भूसा मिला हैं। कांटो के होने से मछली का खाना नही छोडा जा सकता।

परलोक की आशा मे इस जीवन के सुख को ठुकराना नही चाहिए। चार्वाक दर्शन के अनुसार–

यावज्जीवेत सुख जीवेत् ऋण कृत्वा घृतम पिवेत।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमन कुत।।

अर्थात– जब तक जीवन चलता है तब तक मनुष्य को सुख से रहना चाहिए ऋण लेकर भी घी पीना चाहिए जब शरीर एक बार राख बन जाता है तो वह फिर यहा कैसे लौट सकता है ?

प्रत्यक्ष एकमात्र प्रमाण है (प्रत्यक्षमेव प्रमाणम)। ईश्वर आत्मा स्वर्ग परलोक जीवन की नित्यता आदि तत्व दिखाई नही पडते इसलिए चार्वाक इनको नही मानते है। चार्वाक चारो पुरुषार्थों मे से मोक्ष व धर्म को स्वीकार नही करते तथा अर्थ को काम का साधन मानते है। अत अर्थ का उपार्जन आवश्यक है। परन्तु चार्वाक मत को भारतीय समाज मे मान्यता नही मिली है। हमारी सस्कृति भोगवादी न होकर त्यागमयी है। सुख *ही जीवन का एकमात्र एव सर्वोच्च लक्ष्य होगा। वेद धूर्त पुजारियो की रचना नही बल्कि* उन महर्षियो के द्वारा रचे गये है जिनमे किसी तरह का स्वार्थ धोखेबाजी जीविकोपार्जन की इच्छा झूठ बोलने की आदत अथवा सासारिक सुखभोग के आकर्षण की प्रवृत्तियॉ बिल्कुल नहीं थी तथा वे त्यागी बुद्धिमान एव महान थे। अत चार्वाक दर्शन एकागी एव पक्षपातपूर्ण है।

सुखवाद के प्रश्न पर भी चार्वाकों मे दो मत थे। धूर्त चार्वाक स्थूल स्वार्थ सुखवाद का समर्थन करते हैं। परन्तु वात्सायन जैसे सुशिक्षित चार्वाको ने परिष्कृत एव सुसस्कृत *सुखवाद की स्थापना की है। कामसूत्र के लेखक वात्सायन ईश्वर तथा परलोक को भी* मानते थे लेकिन पुरुषार्थ चतुष्टय मे काम को सर्वोच्च मानते थे। काम का मूल पॉचो इन्द्रियो को तृप्त करना है। वात्सायन ने ब्रह्मचर्य धर्म तथा नागरिक वृत्ति को भी महत्त्व *दिया है। ब्रह्मचर्य एव वेदाध्ययन के बाद ही चौसठ कलाओ (जीविकोपार्जन की क्रियाओं)* पर अधिकार किया जा सकता है।

कृपणता एव उपभोग

प्राचीन भारतीय चिंतन मे सयमित उपभोग पर बल दिया है परन्तु कृपणता (कजूसी) का विरोध किया है। न्यायोचित तरीके से धन प्राप्त कर उस धन को यज्ञादि कर्मों मे धन का दान काम भोग हेतु उसका व्यय तथा विपदा उपस्थित होने पर धन दान करने की विधि ब्रह्माजी द्वारा रचित शास्त्र मे वर्णित है। सौ हाथो से अर्जन एव हजार हाथों से वितरण भारतीय दर्शन का आधार है।

कृपणता मनुष्य को नगा कर देती है। कजूस के हाथ मे पहुँचे धन का मनुष्य को कोई लाभ नही होता। सचित किया हुआ तथा बार–बार विचार करके सुरक्षित रखा हुआ कृपण का धन चूहे द्वारा एकत्रित किए गये धन के तुल्य हे। एसा धन दु ख देने के लिए ही होता हे उपार्जनकत्ता को उससे कोई भी सुख प्राप्त नही होता। कजूस प्रवृत्ति (लोभ की वृत्ति) को त्याग कर ही उपभोग करना चाहिए। क्योकि जो भी मनुष्य के साथ पशु तुल्य व्यवहार किया जाता हे। लोभीजना को तिरस्कृत कर पापा को दूर किया जाए। लोग तुम्हे कृपण नही कहे। समाज म कोई भी हमे कृपण न कहे। महाभारत अदाता या कृपण को समाज का शत्रु मानता हैं तथा कृपणों का गले म पत्थर बाधकर जल म डुबोने तक का निर्देश दिया गया है। प्रात कालीन स्वपन्न ओर सम्पदा का उन्हे भाग न करने वाला धनिक (कजूस) दाना ही उपक्षा के पात्र हैं तथा शीघ्र नष्ट हा जात है। इन्द्र अदानशील कजूस व्यक्ति का मनुष्य के पाव से सूखे पत्त के समान नष्ट कर देता है तथा लालची व कजूस व्यक्तिया के धन को छीन कर कर्मशील उपासको (अर्थात् जो धन को सत्कार्यों में व्यय करते हे) म बाटत हैं। महाभारत राजा को प्रकाश रीति स कृपणों के धन को हरण करन का निर्देश दता हे। कजूसी तथा अदानशीलता का अनवरत पुरजोर शब्दा म विरोध भारतीय दशन म इसलिए किया गया है कि कृपणता समाज मे प्रभावी माग (Aggregate/Effective Demand) को कम करती है तथा बेरोजगारी को बढावा देती हैं अन्यायपूर्ण वितरण का पोषक हे तथा समाज म न्यायपूर्ण वितरण के उद्देश्य को नष्ट करती है। अत समाज के सुसवर्धन एव समानता के लिए दानशीलता की प्रवृति परमावश्यक है। शुक्र क अनुसार हृदय के अन्दर उदारता रखकर तथा ऊपर स कजूसी रखकर समय आन पर मनुष्य का उचित व्यय करना चाहिए।

खाद्यान्नों का सग्रहरण बनाम उपभोग

प्राचीन भारत म लाग सम्पत्ति खाद्यान्नो आदि के सग्रह के पक्ष में नहीं थे। वे सोचते थे कि सम्पत्ति व खाद्यान्ना का सग्रह अनेक परेशानिया को आमन्त्रित करता है।

अर्थनामर्जने दु खमर्जिताना च रक्षणे।
नाशे दुख व्यये दुख धिगर्थाम्कष्टसश्रयान्।।12।।

चाणक्य कहते हैं कि खाद्यान्न महत्त्वपूर्ण धन है। अर्थ का तात्पर्य धन से ही नहीं है अपितु वह खाद्यान्नो को भी अर्थ म शामिल करते हैं।

(क) न्यूनतम् आवश्यकताओ से अधिक सग्रहण अनुचित–खाद्यान्नो का सग्रह अपनी न्यूनतम आवश्यक्ताओं स अधिक नही होना चाहिए तथा सग्रहण एक न्यूनतम अवधि के लिए ही हाना चाहिए। यदि अपनी आवश्यक्ताओ से अधिक सग्रह हो भी जाए तो अतिरिक्त खाद्यान्नों को जरूरतमद लोगा को दान (वितरण) कर देना चाहिए। ईशावास्या उपनिषद धन खाद्यान्न आदि के सग्रहण का निषेध करता है। क्योंकि खाद्यान्ना के सग्रहण बद हान स सभी प्रकार की समस्याएँ समाप्त हो जायगी। सग्रहण

कभी भी सलाह योग्य नहीं है। समुद्र मे सग्रहित पानी पीने योग्य नही होता जबकि समुद्र मे बादलो से स्वच्छ पानी बरसता है। अत जो व्यक्ति सम्पति खाद्यान्नो के सग्रह मे लगे रहते हैं वे कभी भी समाज में सम्मानीय स्थान नही पाते हैं। ईश्वर सभी व्यक्तियो को दिन मे सुबह तथा शाम का भोजन देता है तो किसी को अपने लिए तथा अपने सम्बन्धियो के लिए खाद्यान्न का सग्रहण नही करना चाहिए। चाहे मेहनत से कमाया जाए या गलत कार्यों से कमाया जाए सभी प्रकार से प्राप्त धन व खाद्यान्ना का सग्रहरण अनेक समस्याओ को जन्म देता है। क्योंकि सग्रहण पर राजा सम्बन्धियो तथा चोरो की निगाह रहती है।

महाभारत गृहस्थ के लिए चार प्रकार की वृत्ति का विधान करता है। पहले में कोठे भर धान्य का सग्रह करके रखे और जीविका का निर्वाह करे। दूसरा कुम्भधान्य अर्थात घड परिमित धान्य सचय करके वृत्ति स्थापित करे। तीसरा दूसरे दिन के लिए सचय न करे यह तीसरी वृत्ति है चौथा इच्छवृत्ति अवलम्बन करके जीविका निर्वाह करे।

(ख) राज्य द्वारा लोक कल्याण हेतु सग्रह उचित है—लोगो के कल्याण के लिए खाद्य–सग्रह उचित है। लाभ कमाने एव अति–उपभोग के लिए खाद्य सग्रह अनुचित है। खाने तथा राज्य के लोगो के सरक्षण के लिए खाद्यान्नो सम्पत्ति आदि का सग्रह आवश्यक है। राज्य का जीवन उसके खाद्यान्न सग्रह सम्पत्ति सग्रह आदि पर निर्भर करती है। सम्पत्ति एक राजा का शरीर होता है। सेवको को खिलाने तथा अकाल सूखा बाढ आदि से उत्पन्न विपरीत परिस्थितियों का सामना करने के लिए खाद्यान्नो का सग्रह करना चाहिए। शुक्राचार्य अच्छी तरह पका हुआ सूखा हुआ खाद्यान्न को ऊचे मूल्यो पर भी राज्य द्वारा खाद्यान्न भण्डारण को उचित बताते है।

महाभारत मे सब विषयो का सग्रह का अत विनाश माना गया है। उन्नति का अत पतन है सयोग का अत वियोग है और जीवन का अवश्य मरना है। साधारण मनुष्य पृथक से धन का सग्रह प्राप्त होने पर भी तृप्त नहीं होते वे और अधिक की आशा करके मर जाते हैं और पडित लोग सतोष को ही परम धर्म मानते हैं।

सदर्भ सूची

1 शर्मा महेशचन्द्र–दीनदयाल उपाध्याय कर्तृत्व एव विचार (1994 वसुधा पब्लिकेशन्स प्रा लि नई दिल्ली पृ 420–425

2 शुक्रनीति 2/344–345

3 वाल्मिकी रामायण 2/100/43 महाभारत अनु पर्व 63/7 द्योग पर्व 34/14 शाति पर्व 36/25 32 शु नी 1/14 कौट अर्थ/प्रथमअधिकरण अट्ठारहवा अध्याय।

4 लोभ प्रवृत्तिरारम्भ मर्यणामशम स्पृहा।
एजस्येतानि जायते विवृद्धे भारनर्षभ ।। गीता 14/12

5 ते नो रायो द्युमतो वाजयतो दातारो भूत नृवत पुरूक्षो दसस्पन्तो दिव्या पार्थिवासो गोजाता अप्या मृलता च देवा ।। ऋग् 6/50/11

6 भागवत पुराण 7/14/8

7 मनु 5/106

8 शु नी 3/139 3/111 3/126

9 यजु 34/38

प्रश्न

1 *प्राचीन भारतीय चिंतन मे 'समग्र सुख' किसे कहा गया है ?*

2 धर्माधिष्ठित धर्म को स्पस्ट कीजिए।

3 प्राचीन भारतीय चिंतन मे वर्णित प्राथमिक आवश्यकताओ को स्पष्ट कीजिए।

4 प्राचीन भारत मे सुख की अवधारणा की व्याख्या करते हुए आवश्यकताओं का प्रादुर्भाव वर्गीकरण एव निर्धारको का विवेचन कीजिए।

5 प्राचीन भारतीय चिंतन मे वर्णित सयमित उपभोग की अवधारणा पर प्रकाश डालिए।

6 सयत्रित उपयोग तथा सह–उपभोग की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

7 दान एव दक्षिणा के अर्थशास्त्र को समझाइये।

8 *प्राचीन भारतीय दर्शन मे वर्णित उपभोग की आचार सहिता को स्पष्ट कीजिए।*

9 प्राचीन भारतीय शास्त्रो मे अकेले उपभोग का निषेध क्यो किया है ? कारण बताइये।

10 भारतीय दर्शन मे वर्णित उपभोग की नास्तिक अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

11 प्राचीन भारतीय साहित्य मे खाद्यान्नो के सग्रहण के बारे मे वर्णित विचारों को स्पष्ट कीजिए।



5

धन का अर्थ, महत्त्व एव धनार्जन की आचार सहिता
(Meaning, Importance of Wealth and code of conduct of Ear ning)

धन से आशय (Meanirg of Wealth)

भारतीय सस्कृति में मानव जीवन के चार पुरुषार्थ माने गये हैं– धर्म अर्थ काम एव मोक्ष । अर्थ पुरुषार्थ का प्रयोग धन के रूप मे ही किया गया है । धर्म अर्थ मानव जीवन की मूल आवश्यकता है । उसके बिना मानव शरीर जीवित नहीं रह सकता। अर्थ धर्म की भ ति मोक्ष मार्ग में सहायक होता है क्योकि यह स्थूल शरीर की आवश्यकता है। अर्थ के बिना धर्म एव काम लगडा है । अर्थ के बिना धर्म एव काम सिद्ध नहीं होते। अर्थ की महत्ता पर मनु ने लिखा है कि **सब पवित्रताओं में अर्थ की पवित्रता अति श्रेष्ठ होती हैं।** मनु ने धर्म अर्थ काम एव मोक्ष के क्रम मे अर्थ की महत्ता के साथ–साथ अर्थ को धर्म से नियत्रित करने पर जार दिया हे क्योंकि अर्थ की महत्ता तभी तक है जब तक कि वह अधर्म की ओर प्रवृत नही होता है।

महाभारत के शाति पर्व मे *त्रिवर्ग (अर्थ धर्म एव काम)* के विचार पर प्रकाश डाला गया है। युधिष्ठिर द्वारा भीष्म से पूछने पर कि धर्म अथ एव काम का निर्णय कैसे करना चाहिए इनकी उत्पत्ति का क्या कारण है तथा ये किस उद्देश्य से किये जाते हैं भीष्म ने बहुत ही सार्थक जवाब दिया जिससे इनकी अवधारणा स्पष्ट होती है। भीष्म ने कहा कि ससार मे जब मनुष्यो का चित्त शुद्ध होता है ओर वे धर्मपूर्वक किसी अर्थ प्राप्ति का निश्चय करके प्रवृत होते हैं उस समय उचित काल कारण तथा मिले हुए प्रकट होते हैं । इनमे धर्म अर्थ का कारण है और अर्थ काम का फल कहलाता है । परन्तु इन तीनो का मूल कारण है **सकल्प** । सकल्प विषय रूप है तथा सम्पूर्ण विषय इद्रिया के उपभोग के लिए है । यही अर्थ धर्म व काम का मूल है तथा इससे निवृत होना ही मोक्ष हे ।

धन की आधुनिक अवधारणा मे चार विशेषताएँ प्रकट होती है–धन भौतिक है वह उपभोग्य है वह विनियोज्य है तथा वह हस्तान्तरण करने योग्य है। धन या तो भौतिक वस्तु–समुच्चय हे या भौतिक वस्तुओं के स्वामित्व का अधिकार है। प्राचीन भारतीय चितन

मे धन की अपधारणा मे मौलिक विचार हे उसका भोतिक गुण उसकी नियोज्यता उसका कमाये जाने का परिणाम स्वर्ण से उसका सूक्ष्म भेद उसकी उपभोग्य क्षमता तथा उसकी कमी के कारण उसके प्रति तीव्र आकर्षण।

महाभारत मे प्रथम द्रव्य अन्न कहा गया है। कौटिल्य के अनुसार **धन ही वस्तु है धन के अधीन धर्म एव काम है ।**

आचार्य शुक्र ने धन के लक्षणा की चर्चा करते हुए बताया है कि लोक व्यवहार के लिए ढाले गये चादी सोना एव ताम्बे के सिक्को का प्रजाओ से व्यवहार करना चाहिए। कोडी से लेकर रत्न पर्यन्त की सज्ञा 'दव्य है। पशु, धान्य वस्त्र से लेकर तृण पर्यन्त की सज्ञा धन है।

वेदो के महान भास्यकार यास्काचार्य मानते है कि धन' वह है जो सबको सतुष्ट एव प्रसन्न करता है। यह समस्त पदार्थों के विनिमय का साधन है इसलिए अर्थ को **'वित्त'** भी कहा गया हे । अर्थात दान एव भोग मे जिसका प्रयोग हो उसे वित्त' कहा गया हे। अत अर्थ धन ओर द्रव्यो का पर्याय माना गया है। वेदो मे प्रयुक्त धन के 28 नामो का सकलन किया गया है–मघम रेक्ण रिक्थम वेद वरिव श्वात्रम रत्नम रयि क्षत्रम् भग मीलहुय गय मीलहुय गय द्युम्नम इन्द्रियम् वसु राय राध झेजनम तना नृक्णम वन्धु मेधा यश ब्रह्म द्रविणम् अव वृत्रम् वृतम् । अर्थ के अन्य पर्याय और भी दिए गए है– इष्टका वेद भग वसु आदि। अर्थ के प्रयोग के आधार पर विविध नाम एव भेगद निम्न प्रकार है।[1]

(i) रयी अथवा रयि (अचल सम्पत्त)– यह शब्द स्वर्ण तथा अन्य अचल धन सम्पत्ति का याचक है। स्व–अर्जित धन ही वास्तविक धन तथा सुख–समृद्धि व कल्याण का निमित्त भी है। वेदो के अनुसार हम ऐसे ही शुद्ध धनो के स्वामी बने ।

(ii) इष्टका (मूल पूँजी)– वाणिज्य–विनिमय की मूल–पूँजी का नाम इष्टका हे।

(iii) धेनु– (मूजी का प्रतिफल)–मूल पूजी से द्रव्यो का क्रय–विक्रय करने के बाद जो राशि अर्जित हाती है वह धेनु की भाँति फलवती होती है।

(iv) ब्रह्म– यह धन से बढी हुई राशि ह जो श्री सम्पन्न मानी गई है। उन्नति और विकास का मार्ग प्रशस्त करने के कारण धन का ब्रह्म कहा गया है।

(v) क्षत्र– जिस धन को हम अपनी सुरक्षा और आपातकालीन स्थितियो में अपने परिश्रम हतु प्रयोग मे लाते है वह क्षत्र सज्ञक है।

(vi) मेधा–विना पूँजी के केवल अपने बुद्धि कौशल द्वारा उपार्जित राशि मेधा कहलाती है। इसे हम दलाली या कमीशन द्वारा प्राप्त धन कह सकते हे।

(vii) द्रविण (खर्च योग्य आय)– उपार्जित आय मे से जो लाभाश हमारे व्यक्तिगत प्रयोग के लिए रहता है उसे दविण कहा गया है।[2] यह हमे धन ओर बल प्रदान करता है।

(viii) राध (बचत)– द्रविण अर्थात खर्च योग्य आय में से जो शेष भाग हमारी निधि को बढ़ाता है उसे 'राध' की संज्ञा दी गई है।[8]

(ix) वसु (अचल सम्पत्ति)– भू-सम्पत्ति एवं भवन आदि अचल सम्पत्ति की संज्ञा 'वसु' है।[9] क्योंकि यह हमें पृथ्वी की तरह बसाती और प्रतिष्ठा प्रदान करती है।

(x) वृत्र– वह राशि जिसे हम किसी को देकर उसके वाणिज्य या स्वामित्व की सम्पत्ति पर अपना प्रभुत्व स्थापित करते हैं 'वृत्र' संज्ञक है।[10] डॉ. पचौली के अनुसार जिस धन को पाकर व्यक्ति जब कर्त्तव्य विमूढ़ हो जाए तो ऐसे धन को 'वृत्र' (एक असुर नाम) कहना उचित है।

(xi) नीहार– मूल्य से क्रय योग्य वस्तु को 'नीहार' कहा गया है।

(xii) वित्तायिनी– ये वे पदार्थ हैं जिनसे वित्त प्राप्त होता है।

(xiii) वित्त– ब्रह्म राशि अर्थात समस्त राशि में से जो भाग ऋण चुकाने के लिए नियत हो उसकी संज्ञा 'वित्त' है। धन समस्त पदार्थों के विनिमय का साधन है इसलिए अर्थ को 'वित्त' भी कहा गया है। दान एवं भोग में जिस धन का प्रयोग हो उसे 'वित्त' कहा गया है।

(xiv) भूति (भोग)– यह वह राशि है जिससे हम अपनी सुख-सुविधाओं को प्राप्त करते हैं। अर्थ के 'रयि' और 'भग' दोनों रूप समाज के विकास में सर्वाधिक महत्त्व के प्रतीत होते हैं। रयि को दान में दिया जा सकता है। भग को बांटा जा सकता है। भग की महिमा अथर्ववेद में मिलती है।

भग प्रणेतर भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्न।
भग प्रणोजनय गोभिरश्वैर् भग प्र नृभिर् नृवन्तः स्याम।। अथर्व.3/16/3

अर्थात भग प्रणेता है सत्य-प्रेरक है भग बुद्धि एवं रक्षा को प्रदान करता है। गौ और अश्वों द्वारा प्रकृष्ट भग हमारे लिए जनो। प्रकृष्ट भग (यह) नरों द्वारा नर-वान हो जाए।

(xv) रिक्थम्– धन को रिक्थम इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह पृथक करने वाला होता है।

(xvi) वृतम्– धन गुणों को प्रकाशित करे और अवगुणों पर आवरण डाल दे तब वह 'वृतम' कहा गया है।

धन के 'वेद' और 'मेघ' पर्याय भी है। वेद का अर्थ ज्ञान और बुद्धि ये सबसे उत्कृष्ट धन है। धन जब रक्षक का काम करे तब यह 'अव' नाम को सार्थक करता है। यह सज्जनता का संचार करे और सज्जनों से मिलावे तब –'बंधु' कहलाता है। यह यशोवृद्धि करे तो यह 'यश' है। इन्द्र द्वारा प्रदत्त अथवा इन्द्रियों के अनुकूल होने से यह 'इन्द्रियम' है। फैलते रहने से धन 'तना' होता है। सुखकारी होने से 'गय' है। सुप्रसिद्ध कोशकार अमरसिम्हा के अनुसार धन के निम्न आठ लक्षणों पर ध्यान दिया

जाना चाहिए। (i) द्रव्य या वस्तु (ii) वित्त या जो कमाया जाता है (iii) स्वापतेय या जो स्वय की सम्पत्ति होता है (iv) हिरण्य या सोना या सग्रहित धन (v) अर्थ या सग्रह का फल (vi) श्री या लक्ष्मी या विभव या सम्पन्नता (vii) भोग्य या जो भोगने लायक है तथा (viii) व्यवहार्यम– जो हस्तान्तरणी है इसलिए जो विवादो का विषय बनने लायक है। **प्रो** *रगास्वामी आयगर* ने धन के चार लक्षणो का उल्लेख किया है– (i) पदार्थ रूप (ii) उपभोग योग्य (iii) विनियोजन योग्य तथा (iv) हस्तातरणीय।

अर्थ के स्त्रोत–भारतीय वाडमय मे मनुष्य पशु एव वनस्पतियो को अर्थ के स्त्रोत तथा कृषि भूमि वाणिज्य व्यवसाय व उद्योग को इन स्त्रोतो के उप–साधन कहा गया है विश्व धरा कर्मभूमि है यहा सभी कार्य अर्थ–मूलक है। धर्म अर्थ के तत्वज्ञ *अर्थशास्त्र व जानने वाले अर्जुन (तस्मिन्नर्थ शास्त्र विशारद पार्थो 161/9) का कहना* है कि कृषि वाणिज्य **पशुपालन तथा भाति–भाति के शिल्पादि–ये सब अर्थधारा के स्त्रोत हैं।**

धन–धान्य वस्त्र गृह एव सम्पत्ति आदि पदार्थो की जननी पृथ्वी ही मुख्य अर्थ मानी गई है। **अथर्ववेद** के अनुसार यह विश्व का पालन करने वाली धनो की खान स्वको प्रतिष्ठा देने वाली स्वर्ण–वक्षस्थला और जगत् को अपने ऊपर बसाने वाली है।

कृषि पशुपालन के अलावा वाणिज्य को भी अर्थ प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन माना गया है। **पचतत्र** *मित्रभेद मे कहा गया है।*

अर्थेभ्योऽतिप्रवृद्धेभ्य आहृतेभ्यस्ततस्तत। प्रवर्तन्ते क्रिया सर्वा पर्वतेभ्य इवाऽपगा। वाणिज्यात्त्विमपि परम वर्तनमिह।

शुक्राचार्य ने किसी भी वृति का सहारा लेकर धनार्जन करने की सलाह दी है सुन्दर विद्या उपार्जन या सुन्दर सेवा शूरता कृषि करके या व्याज पर ऋण देकर दुकानदारी या सगीत कला के द्वारा दान लेकर या किसी भी वृति का सहारा लेकर मनुष्य को धनवान बनना चाहिए।

धनार्जन का उद्देश्य एव महत्ता

अर्थ मानव–जीवन की मूल आवश्यकता है। इसके बिना मानव शरीर ही जीवित नही रह सकता। मनुष्य के समस्त सामाजिक–कर्त्तव्य और उसके दायित्वो का सम्पादन अर्थ से ही सभव है। अर्थ जीवन के पुरूषार्थो (धर्म अर्थ काम व मोक्ष) को प्राप्त करने का महत्त्वपूर्ण साधन है। अर्थ मे सभी गुण समाहित है। अर्थात् धनवान व्यक्ति मे सभी गुण माने गये हैं। उसके अवगुण भी गुण माने जाते है। अर्थ को मित्रो को बाधने वाला कहा गया है। जिसके पास धन है उसी के मित्र है। धनहीन मनुष्य के बधु भी उसे छोड देते है। *महाभारत (उद्योग पर्व 72/73) म धन की महत्ता के बारे मे कहा गया है।*

अर्थात – *अर्थ* उच्चतम धर्म है। प्रत्येक वस्तु अर्थ पर निर्भर करती है। अर्थ सम्पन्न लोग सुखी रह सकते हैं अर्थहीन (निर्धन) लोग मृत समान हैं। धन को काम और धर्म

का आधार माना गया है। इससे स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त होता है। धर्म–स्थापन के लिए अर्थ अनिवार्य है। अर्जुन युधिष्ठिर से कहते है जटा और मृगछाला धारण करने वाले ब्रह्मचारी लोग भी अर्थ के अभिलाषी होकर पृथक्–पृथक धर्म के अनुसार निवास करते है। गेरूऐं वस्त्रधारी लज्जाशील शात तथा आसक्तिरहित विद्वान पुरुष भी धन की इच्छा करते है। जो पुरुष स्वर्ग की इच्छा करते है वे भी धन की इच्छा करते है। आस्तिक व नास्तिक लोग परम सयम मे रत होकर भी अर्थ के अभिलाषी होते हैं। अर्थ का महत्त्व न जानना तमोमय अज्ञान है ओर अर्थ का महत्त्व ज्ञान प्रकाशमय है।

आस्तिका नास्तिका श्रैव नियता सयमे परे।
अप्रज्ञान समोभूत प्रज्ञान तु प्रकाशता। (महा शाति. 161/18)

बृहस्पति के अनुसार अर्थ सम्पन्न (धनी) व्यक्ति के पास मित्र धर्म विद्या क्या गुण नही होता। दूसरी ओर अर्थहीन (निर्धन) व्यक्ति मृतक अथवा चाडाल के समान है। इस प्रकार धन ही जगत का मूल है। **कौटिल्य** ने अर्थ को धम और काम का आधार माना है। **अग्निपुराण** मे मानव जीवन मे अर्थ के महत्त्व को इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

धनवानधर्म्ममाप्नोति धनवान माममश्नुते। उच्छिद्यन्ते विनाह्यर्थे क्रियाग्रीष्मे सरिद्यथा। विशेषो नास्ति लोकेषु पतितस्याधनस्य च। पतितान्न तू गृहन्ति दरिद्रो न प्रयच्छति।

अर्थात–धनवान ही धर्म का उपार्जन करता है धनवान ही काम–सुख का भोग करता है। जैसे गर्मी मे नदी का पानी सूख जाता है उसी प्रकार धन के अभाव मे सब कार्य चौपट हो जाते हैं। ससार मे पतित और निर्धन मनुष्य मे कोई अतर नहीं है। लोग पतित मनुष्य के हाथ से कोई वस्तु नहीं लेते और दरिद्र (निर्धन) अपने अभाव के कारण स्वय नही दे पाता है।

प्राचीन भारतीय चितन मे अर्थ की महत्ता को निम्न बिन्दुओ मे रखा जा सकता है–

(1)**अर्थ का जीवन में स्थान**–प्रो दयाकृष्ण लिखते है कि, अर्थ किसी भी कामना की पूर्ति का साधन या निमित्त कहा जा सकता है इसे शक्ति या धन भी कह सकते हैं। अर्थ के बिना किसी भी कार्य का उद्योग बालू से तेल निकालने के समान है। भीष्म युधिष्ठर से कहते हैं कि व्यक्ति अर्थ का दास है अर्थ किसी का दास नही है यह सही बात है कि मैं भी कौरवो के द्वारा अर्थ से बधा हुआ हूँ।

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
इति सत्य महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवै।।

धन ही वह प्रियतम है जो ससार को बसाता और प्रफुल्लित करता है। याज्ञवल्क्य स्मृति मे कहा गया है कि अर्थ ओर काम मे अर्थ का स्थान प्रथम है। अर्थ

परिश्रम का फल हैं। आर्यो का अर्थतंत्र परिश्रम साध्य और परमार्थगामी था । वेदो के अनुसार जो कुछ अपने परिश्रम से अर्जित हो उसी के अनुसार व्यय करे ऋण लेकर नही क्योकि ऋण व्यक्ति के सम्मान को प्रभावित करता है।[6]

वेदो के प्रचुर मात्रा मे अक्षय रमणीय सात धातु युक्त बलवर्धक निरोग भरपूर अन्न घृत पेयरस दूध आदि की कामना की गई है। मै प्रजा पशु गृह और धन से परिपूर्ण होऊ मुझे धनादि की समृद्धि और ज्ञानादि की वृद्धि प्राप्त हो। **रामायण** मे धन का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि केवल धनवान व्यक्ति ही बहादुर ज्ञानी और सब गुणो से सम्पन्न माना जाता है। **नीतिशतक** मे कहा गया है।

यस्यास्ति वित्त स नर कुलीन स पण्डित स श्रुतिवान् गुणज्ञ ।
स एव वक्ता स च दर्शनीय सर्वे गुणा काञ्चनमा श्रयन्ति।।

अर्थात– केवल धनी व्यक्ति ही अच्छे परिवार से विद्वान अच्छा वक्ता तथा सुन्दर माना जाता है।

सभी गुण सम्पत्ति पर ही निर्भर होते हे। मुद्रा ही व्यक्ति को अधिक शिष्ट बनाती हैं मुद्रा द्वारा ही व्यक्ति की सभी परेशानिया दूर हो जाती है। मुद्रा से निकट कोई सम्बन्धी नही होता। कोई भी वस्तु मुद्रा द्वारा कमाई जा सकती है। **सोमदेव नीति सूत्र** मे कहा गया है कि कोई व्यक्ति मनुष्य का दास नही है पर सम्पत्ति का दास है। अर्थ के बिना जीवन यापन असभव है।

(ii) अर्थ जीवन दृष्टि– जीवन मे अर्थ पहले आया फिर अर्थ को नियन्त्रित करने हेतु धर्म की उत्पत्ति हुई। इसलिए धर्म को अर्थ का नियत्रक माना जाता है। धर्मशास्त्रो का आदेश है कि धर्म–अनुशासित अर्थ ही जीवन का भौतिक एव परमार्थिक साधन होता है। **मनुस्मृति** मे लिखा है कि

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौच पर स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचि शुचि ।।

अर्थात् – सब शुद्धियो मे धन की शुद्धि (न्यायोचित धन का होना) ही श्रेष्ठ शुद्धि कही गई हे। जो धन मे शुद्ध है अर्थात जिसने अन्याय से किसी का धन नही लिया है वही शुद्ध है। **उपनिषदो** ने सदा शुद्ध धनोपार्जन का ही अनुमोदन किया है। **महाभारत** मे अर्जुन युधिष्ठर को कहते हैं कि विजयी धनवान पुरूष ही उत्तम धर्म का पालन ओर असयमी पुरूषो के लिए दुष्प्राप्य इच्छाओ की प्राप्ति कर सकता है।

धर्म ओर काम अर्थ के ही दो अवयव है ऐसा श्रुति का कहना है अर्थ की सिद्धि से ही इन दोनों की भी सिद्धि होती है ।

(iii) अर्थ परमार्थ– मनुष्य के सभी कर्म अर्थमूलक है ओर स्वय अर्थ का मूल साधन है श्रम।[7] कृषि वाणिज्य ओर शिल्पादि अर्थ प्राप्ति के साधन है जो सभी

श्रम–साध्य है। धर्म ओर काम दोनो इसी के दो पहलू हैं ओर इसी पर निर्भर है। अर्थ ही सब कर्मो की मर्यादा के पालन मे सहायक है। अर्थ के बिना धर्म ओर काम स्थित नही हो सकते ऐसा श्रुति कहती है। धन के बिना इस पृथ्वी पर मनुष्यो के धर्म अर्थ काम तथा स्वर्गगमन ओर प्राणयात्रा का निर्वाह नहीं हो सकता। धन से धर्म कामना स्वर्ग हर्ष क्रोध शास्त्रो का अध्ययन–श्रवण ओर दमन–ये सब धन से ही सिद्ध होते है।"

(iv) अर्थ तत्व भौतिक एव आध्यात्मिक अनुसधान–शुक्रनीति' *कहती है कि भौतिक अर्थ से ही आध्यात्मिक अर्थ अर्थात् मोक्ष सहित सभी पुरूषार्थ सिद्धि* प्राप्त करते हैं। धन से ही लोगो के कुल गौरव व धर्म की वृद्धि होती है। निर्धन पुरूष को यह लोक ओर परलोक कोई भी सुखदायक नही होता। धन से ही धर्म का स्त्रोत उत्पन्न होता है जैसे पहाड से नदी प्रकट होती है। इसलिए निर्धन व्यक्ति धर्म–क्रियाओ की क्रियाविधि नही कर सकता। जो धन मे अनाद्धत हे वह धर्म मे भी, क्योकि समस्त धर्मिक कार्यों मे धन की अपेक्षा की जाती है।

अर्थ मे मानव के ज्ञान भोग और परलोग सभी सन्निविष्ट है। अर्थ धर्म का साधक है। वेदो का आदेश है कि सभी लोग यथाशक्ति परिश्रम द्वारा अपनी आजीविका उत्पन्न करे ताकि समाज मे दरिद्रता ओर अभाव का प्रवेश न हो। ऋग्वेद[10] मे दरिद्रता को दूत्कारने का रोचक परिदृश्य है जहाँ कहा गया है कि 'हे धनहीन ओर कुरूप दरिद्रे! तु निर्जन पर्वत पर जा यहाँ तेरे लिए कोई स्थान नहीं। यहाँ सुदृढ अत करण ओर अध्यवसायी मनष्य अपने पराक्रम से अपना भाग्य अकित करता है जो तेरा विनाश कर दगे।

(v) राष्ट्र की सुरक्षा एव समृद्धि के लिए– राष्ट्र की सुरक्षा व समृद्धि भी अर्थ पर ही आश्रित है। महाभारत[11] मे कहा गया है कि 'राजा का मूल कोष ही है क्योंकि कोष के द्वारा राजा भृत्यो का भरण–पोषण दान–कर्म भरण–पोषण हाथी–घोडे का क्रय स्थिरता शत्रु पक्ष की लुब्ध प्रवृतियो मे धन देकर फूट डालना दुर्ग की मरम्मत व सजावट सेतुबध वाणिज्य प्रजा एव मित्रो का सग्रह धर्म अर्थ एव काम की सिद्धि करता है। महाभारत मे आगे कहा गया है कि कोषागार ओर सेना ही एकमात्र राजा का मूल है *उसके बीच खजाना ही सेना का मूल है। सेना सब धर्मो की रक्षा का मूल है* और धर्म ही प्रजा समूह का मूल होता है। इससे सबकी जड धनागार की बढती करनी उचित है। अग्निपुराण मे भी अर्थ को राज्य की समृद्धि व सुरक्षा का साधन माना हैं। केवल धनवान व्यक्ति ही शक्तिवान होता है। राजा की शक्ति भी उसके कोष पर ही निर्भर करती है।

धनवान् बलवान् लोके सर्व सर्वत्र सर्वदा।
प्रभुत्व धनमूल हि राज्ञामप्युपजायते।। सुभाषित

धन के भेद/धनार्जन कैसा?

बृहस्पति नारद मनु, विष्णु आदि ने कर्मो की श्रेष्टता ओर निकृष्ठता के आधार पर धन को कई भागो मे विभक्त किया है। रक्षण वर्धन ओर भोग–ये तीन धन व्यवहार की विधि हैं अत इनका साधन मे यत्न करना चाहिए। **नारद स्मृति एव विष्णु धर्मशास्त्र** मे धन(मुद्रा) को तीन भागो में बाटा है जो धन व्यवहार की विधि है।

(i) शुक्ल धन (White money)

(ii) शबल धन (Brinded money) तथा

(iii) कृष्ण धन (Black money)

इन्हे क्रमश उत्तम मध्यम और अधम धन भी कह सकते है।

(i) शुक्ल धन–विष्णु धर्म शास्त्र के अनुसार अपनी उचित वृत्ति (श्रम) से कमाया हुआ सब धन शुक्ल धन कहा जाता है। **नारद** के अनुसार विद्या वीरता तपस्या कन्या शिष्य पौरोहित्य ओर दाय के माध्यम से आने वाला धन शुक्ल है ओर उनका उद्योग भी शुक्ल हैं।

(ii) सबल धन–ब्याज कृषि वाणिज्य शुल्क शिल्प सेवा के द्वारा लब्ध धन ओर उपकृत व्यक्ति का धन सबल या राजस धन है। ये शबल धन के सात प्रभेद है। **विष्णु स्मृति** मे चालाकी व्याज से तथा न बिकने वाली वस्तु को बेच देने से मिले धन को भी शबल धन माना गया है।

(iii)–कृष्ण धन–लाञ्ज द्यूत दूतकार्य दूसरो को पीड़ा देकर उपार्जित चोरी डकेती कपटता के द्वारा अर्जित धन काला धन है। इन भ्रष्ट क्रियाओ से कमाया हुआ धन कृष्ण है। **विष्णु स्मृति** म धूर्तता चोरी जुआ तथा मिलावट छलकपट डकैती ब्याज आदि से प्राप्त धन को काला धन कहा है।

इन तीनो प्रकार के धनों द्वारा क्रय–विक्रय दान प्रतिग्रह नाना क्रिया ओर उपभोग होते है। इन तीनो प्रकार के धनों मे से जिस धन को लेकर मनुष्य कर्म करता हे उसे इहलोक एव परलोक मे उसी प्रकार का फल मिलता हैं। मुद्रा के भेद के साथ इनके उपयोग एव फल का प्राचीन ग्रन्थो मे विवेचन मिलता हैं **स्कन्द पुराण** अनुसार एक व्यक्ति अपनी सफेद मुद्रा को धार्मिक कार्यों पर खर्च करता है तो वह प्रसन्नता व प्रसिद्धि प्राप्त करता है तथा देवता के समान स्थान पाता है। सवल मुद्रा से व्यक्ति चारों पुरूषार्थ को प्राप्त कर सकता है।

कृष्णमुद्रा को दण्डनीय माना गया हे। **महाभारत** के अनुसार कष्ण मुद्रा पाप को समाप्त नही कर सकती सवल मुद्रा ही पाप को समाप्त कर सकती है। दूसरों के धन के अपहरण से प्राप्त मुद्रा स्वय की मुद्रा को भी नष्ट कर देती है।

रिश्वतखोरी व भ्रष्टाचार

भारतीय आर्थिक चितन मे रिश्वतखोरी (Bribery or Corrupation)को मुद्रा

लेनदेन का एक विलक्षण रास्ता माना गया है जिसमे काली मुद्रा लगी रहती है। समस्त लेन–देन गुप्त तथा भययुक्त होता है। क्रेता व विक्रेता दोनों ही पक्षो की तरफ से धोखे की सम्भावना रहती है तथा लेन देन मे कोई उचित मापदण्ड नही होता। यह पापयुक्त लेनदेन होता है। रिश्वत को 'मुखपिण्ड', 'मुखलेप', उत्कोच, लञ्च आदि नामो से सम्बोधित किया गया है। नारद, याज्ञवल्क्य तथा कात्ययन स्मृतियों मे अप्रामाणिक भेट (invalid gift) तथा अवैधानिक लेनदेन को रिश्वत माना गया है। जैन लेखक सोमदेव (9वीं व 10वीं शताब्दी) ने रिश्वत (लञ्च) को सभी पापो का द्वार माना है। जो व्यक्ति रिश्वतखोरी मे सलंग्न हैं वह अपनी माँ का खून करने मे भी नही हिचकिचाता है। जो व्यक्ति रिश्वतखोरी मे सलग्न होते हैं वे सम्पन्न व्यक्तियो द्वारा खरीदे जा सकते हैं। यदि राजा भी ऐसे लोगो को प्रश्रय देता है तो उस राज्य के नागरिक खुशहाल नही हो सकते।

धन के उपयोग

अर्थ में सभी गुण समाहित है अर्थात् धनवान व्यक्ति मे सभी गुण माने गये हैं एव उसके अवगुण भी गुण माने जाते हैं। अर्थ को मित्रों को बाधने वाला कहा गया है। धनहीन के बंधु उसे छोड देते हैं और धनवान पर लोग कल्पतरू की भाँति अनुराग रखते हैं।

अर्थ प्राप्ति के साथ–साथ उसका उचित प्रयोग भी अनिवार्य है, अन्यथा वह 'अर्थ' से 'अनर्थ' बन जायेगा जो व्यक्ति ओर समष्टि दोनों के लिए घातक है। अर्जित धन की तीन गतियाँ शास्त्रो ने कही गई हैं–दान,भोग ओर नाश। यदि स्वोपार्जित धन का सदुपयोग या दान आदि शुभ कार्य नही किये जाए तो उसकी तृतीय गति अर्थात् विनाश संभव है। लोक–परलोक को सवारने के लिए अर्थ का संयत व्यक्तिगत उपभोग तो अनिवार्य है ही, इसके अतिरिक्त शास्त्रों की यह भी आज्ञा है कि स्वोपार्जित 'अर्थ' का रसायन की भाँति थोडा–थोडा ओर धीरे–धीरे सयत उपयोग करना चाहिए। अग्निपुराण में अर्थदुषण (धन के दुरूपयोग) एव सदुपयोग का वर्णन हे। धन का सग्रह, विभिन्न व्यसन, धन का स्वार्थपरक प्रयोग, दुर्गों की मरम्मत न कराना आदि कार्यों को अर्थदूषण की श्रेणी में उल्लेख किया गया है। दीनों, अनाथो, वृद्धो तथा विधवा स्त्रियो के निर्वाह तथा उनके लिए जीयिकापार्जन का प्रबध करना आदि कार्य अर्थ के सदुपयोग की श्रेणी मे आते हैं।

वेदों में विविध उपयोगो हेतु सहस्त्रो मत्रो द्वारा धन प्राप्त करने की कामना की गई है। सुरक्षा के लिए लाभप्रद एव वृद्धिशील धन, उपभोग के लिए, यज्ञ सम्पूर्ण करने के लिए प्रजा, पशु गृह और धन से परिपूर्ण होन के लिए, अपार, वृद्धिशील एव निरतर धन प्राप्त होने की कामना की गई है। अर्थ के 'रयि' ओर 'भग' दोनो रूप समाज के विकास मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। रयि को दान दिया जा सकता है ओर 'भग' को बाटा जा सकता है। अथर्ववेद मे कहा गया है, भग प्रणेता है, सत्प्रेरक है, भग बुद्धि एव रक्षा प्रदान करता है। गौ और अश्वो द्वारा प्रकृष्ट भग हमारे लिए जनो। प्रकृष्ट भग (वह) नरो द्वारा नरवान हो जाए।

भग एव भगवा अस्तु देवस्तेना वय भगवन्तस्याम।
त त्वामग सर्व इज्जोहवीमि से नो भग पुरएताभववेह।।

(अथर्व 3/16/5)

अर्थात्– भग से ही भगवान हो। उससे हम भगवान बने। भग हमारा अग्रगामी बने। भग से ही व्यक्ति सु–भग एव सौभाग्यशाली बनता है। ऐश्वर्य की अधिष्ठाती देवी धन सम्पदा के प्रयोग की दृष्टि से दो नाम है–लक्ष्मी और श्री। जो सम्पदा केवल अपने ही पोषणार्थ हो उसे 'लक्ष्मी' कहा गया है। वह पुरुषार्थ की कोटि मे नही आती। किन्तु जब वह विश्व कल्याण ओर बहुजन हिताय के लिए प्रयुक्त हो तो यह यशस्काम श्री बन जाती है जो समस्त समाज को आश्रय देती है। **महाभारत** के अनुशासन पर्व मे प्राप्त धन के तीन उपयोग सुझाए गये हैं– (i) एक भाग धार्मिक कार्यो के लिए (ii) दूसरा भाग आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए तथा (iii) तीसरा भाग पूँजी निर्माण या विनियोग के लिए।

भागवत **पुराण** मे धन के पॉच उपयोग बताये गये है– (i) दान धर्म के लिए (ii) यश प्राप्ति के लिए (iii) अर्थ के लिए (अर्थ–पुरुषार्थ) (iv) काम के लिए (काम–पुरुषार्थ) तथा (v) स्वजनो के लिए। धन का वास्तविक उद्देश्य धर्म है और धन का यह पचधा विभाग के अन्तर्गत आ जाता है।**शुक्राचार्य** ने धन के उपयोग के *सम्बन्ध मे निर्देश दिया है कि उत्तम भार्या (स्त्री) पुत्र या मित्र के लिए दान के लिए तथा* नित्य धर्नाजन करना हितकर है।**भर्तृहरि** के अनुसार धन का उपयोग दान उपभोग एव नाश के लिए होता है जो व्यक्ति न तो स्वय उपभोग करता है तथा न ही दूसरो को दान देता है उसके धन की तीसरी गति नाश होती है।**महात्मा विदुर** का कहना है कि न्यायपूर्वक उपार्जित किए हुए धन के दो ही दुरुपयोग समझने चाहिए–अपात्र को दान देना तथा सत्पात्र को न देना। विदुर ने अदाता या कृपण को समाज का शत्रु बताया है और कहा है कि उन्हे गले मे पत्थर बाध कर जल मे डुबो देना चाहिए।

अर्थ का सामाजिक पक्ष है– इसका सत्पात्रो मे दान।दान और कल्याणकारी कार्यों मे लगाया धन कल्याणमय माना गया है। जैसे समुद्र का खारा पानी मेघ–मुख म पहुँच कर और मीठा होकर भूमण्डल पर बरसता है और उसे हरा–भरा बनाकर पुन जलनिधि के पास पहुँच जाता है। दानी का धन भी ऐसा ही उपकारी माना गया है। **व्यास स्मृति** मे दान के बारे मे लिखा है–

शतेषु जायते शूर सहस्त्रेषु च पण्डित।
वक्ता शतसहस्त्रेषु दाता भवति वा न वा।।

आर्थात्– सौ मे से एक शूर सहस्त्रो मे एक विद्वान् तथा शत–सहस्त्रो मे एक वक्ता मिलता है। किन्तु दाता तो शायद ही मिल सकता है ओर नही भी। इसलिए दानवीर को परमवीर माना गया है। मनुष्य का वास्तविक धन वही है जिसका सभी मर्यादित लाभ उठा सके अन्यथा वह वैभव किस काम का जिसे व्याधि के समान व्यक्ति

स्वयं अकेला ही भोगे। महाभारत में अर्जित धन को कल्याणकारी कार्यों मे न लगाना उसका 'मल' अर्थात् बुराई कहा गया है। शुक्र[12] के अनुसार अर्थशास्त्र का सिद्वात है कि 'अर्थ' का उपार्जन ओर संरक्षण तो कृपणता की भॉति सतर्कता से करना चाहिए किन्तु समय आने पर उसका उपभोग या उचित व्यय विरक्त की भाति उदारता से होना चाहिए। वेदो मे पूर्ण परिश्रमार्जित धन को उदारता के साथ लोक कल्याण मे व्यय करने का आदेश मिलता है।[13]

उपनिषदो मे अर्थ की शुद्धता, उसके शुचि साधन और उसके सयत उपभोग की विधियो पर बल दिया गया है। ईशोपनिषद का प्रारभ ही सयत अर्थ–योजना से होता है जहाँ समाज की अर्थव्यवस्था पर ध्यान केन्द्रित करते हुए सावधान किया है कि इस ससार मे सम्पूर्ण जड–चेतन पदार्थ ईश्वर से परिव्याप्त है। अत उनका उपभोग त्यागपूर्वक करे और किसी के धन का लोभ न करे। यह धन किसका है ? अर्थात् यह किसी एक का नही, सभी का है। मनुष्य इसे न तो साथ लाया है और न ही साथ ले जायेगा। यह यही का है, यही रह जायेगा। उपनिषदो के अनुसार श्रमोपार्जित धन और उसका त्यागपूर्वक भोग ही श्रेष्ठ धर्म है जो व्यक्ति धन का सदुपयोग नहीं करते वे धन के स्वामी न होकर सेवक की भाँति बन जाते है जो उसके सकेतो पर नाचते हैं। मनु का भी मत है कि यदि अर्थ ओर काम धर्म–विरोधी है तो उन्हे छोड देना चाहिए। अशुद्ध धन से प्राप्त सुख, परमार्थ विरोधी होने के कारण त्याज्य है। विदुरनीति मे कहा गया है कि जो अपने भरण पोषण के योग्य व्यक्तियो को बाटे बिना अकेले ही उत्तम भोजन करता है और अच्छा वस्त्र पहनता है, उससे बढकर क्रूर कौन होगा। ऋग्वेद मे यह शिक्षा दी गई है कि ऐश्वर्य, वैभव या सम्पत्ति परमात्मा की देन है। अत इसे बांटकर ही खाओ, जो सम्पत्ति का अकेला उपभोग करता है, वह पापी है, जब विपत्ति में पडता है तो उसका कोई साथी नही होता। कोई भी व्यक्ति उसके दु ख–सुख मे सहयोग के लिए तैयार नही होता। गीता में कहा गया है कि ईश्वरीय देन को जो अकेला खाता है और दान नहीं करता, वह चोर है, इसी प्रकार जो अकेला उपभोग करता है वह पाप को खाता है अर्थात् पापी होता है।

किन्तु दान की भी एक सीमा है। उस दान की प्रशसा नही की जा सकती जिससे वृत्ति में अवरोध हो क्योकि लोक मे दान, यज्ञ एव कर्म वृत्ति की सहायता से ही किये जा सकते है। अत जहाँ अर्थ की मर्यादा के लिए धर्म आवश्यक है वही धर्म पालन के लिए धन भी आवश्यक है।

धनार्जन की विधि व साधनों की शुद्धता –प्राचीन भारतीय चिंतन मे ध न का महत्त्व तो स्वीकार किया था, लेकिन साथ में इसको प्राप्त करने की विधि पर तथा इसके उपभोग व समाज मे वितरण पर भी विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया था। शुक्राचार्य के अनुसार, " धन कण–कण रूप में प्राप्त किया जाता है, जैसे विद्या प्रतिक्षण

प्राप्त की जाती है। जो व्यक्ति धन या ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक होता है उसे प्रत्येक कण या क्षण को नही गवाना चाहिए।

न्यायपूर्ण एव उपयुक्त साधनो से ही अर्जित धन अर्थ–कोटि मे आ सकता है अन्यथा यह अनिष्ट का कारण बन सकता है। इसलिए मनु का विचार है कि समस्त शुद्धताओ मे अर्थ की शुद्धता सर्वोपरि है। अर्थार्जन करते समय निम्न पाच बातो का ध्यान प्राचीन वाङमय मे अनिवार्य माना गया है– (i) जिससे अन्य प्राणियो को पीडा न पहुँचे (ii) अपने शरीर को भी अनुचित कष्ट न हो (iii) वह गर्हित साधनो से अर्जित न हो (iv) उसके उपार्जन से स्वाध्याय आदि परमार्थिक कार्यों मे बाधा न हो तथा (v) सदा स्व–अर्जित अर्थ से ही जीवन–निर्वाह किया जावे। ऋग्वेद में कहा गया है कि हे अग्नि! हमे कभी क्षीण न होने वाला पुष्टिकारक दीप्तिमान सहस्त्र सख्यक स्वास्थ्यकारक तथा उत्तम साधनों से युक्त धन शीघ्र प्रदान कर। अर्थार्जन के लिए परिश्रम प्रथम अनिवार्यता है। उद्यमशील के पास ही लक्ष्मी आती है। क्योकि यही बुद्धिमानो का लक्ष्य है। इसीलिए इसे 'लक्ष्मी' कहा गया है उद्योगशील कभी असफल नहीं होते। उद्यमी के पास सभी 'अर्थ' उसी प्रकार चले आते है जैसे रत्नाकार के पास रत्न। उसका अभाव और कष्टो का अवतार होता है। भूख दरिद्रता की उपज है। इससे बढकर कोई शत्रु नही। दरिद्र का जीवन निर्वाह अत्यत कठिन है। इसीलिए दरिद्रता को 'जीते जी मृत्यु' कहा गया है।

धनार्जन की आचार संहिता–धनार्जन की आचार सहिता से तात्पर्य उन नियमो से है जिनकी पालना प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आजीविका कमाते समय करनी चाहिए। प्राचीन भारतीय विद्वानो ने जीविकोपार्जन के लिए बनाये गये नियमो या जीविकोपार्जन के लिए ध्यान मे रखी जाने वाली बातो को ही धनार्जन की आचार सहिता का नाम दिया है जो प्राचीन साहित्य मे वर्णित है।

(i) धर्म मार्ग से धनार्जन–धनोपार्जन पर किसी प्रकार का अकुश लगाना वेदो मे अभीष्ट नही है। सहस्त्रो वेद मत्रो मे धनोपार्जन के लिए सामूहिक प्रार्थनाएँ की गई है। 'नदी के प्रवाह तुल्य हमे निरतर धन मिलता रहे'। 'हमारे दोनों हाथ धन से भर दो'। 'तुम्हे भी धन मिले मुझ भी धन मिले'। 'विश्वो राय इषुध्यति'। 'हमे उत्तम धन प्राप्त हो'।

परन्तु उचित मार्ग से न्यायपूर्वक नैतिकता एव धर्मानुसार धन अर्जन की सलाह दी गई है। (धर्मेण धन) क्योकि धर्मपूर्वक कार्य करने से अटल और शाश्वत सुख प्राप्त होता है। धर्मयुक्त धन प्राप्त करके हम सभी सगठित होकर आनन्द का उपयोग करते है। प्राचीन भारतीय विद्वानो ने अर्थ के महत्त्व को नकारा नही है अपितु न्याय और बुद्धिपूर्वक ही धन कमाने की आज्ञा दी है अन्यथा हानि का भय रहता है। इसीलिए अर्थोपार्जन को नियत्रित एव परिभाषित करने के लिए एक पृथक शास्त्र की रचना हुई जिसे अर्थशास्त्र की सज्ञा दी गई है। भारतीय परम्परा मे अर्थ का उद्देश्य धर्म ही माना

गया है। अर्थ और धर्म दोनो मे सामजस्य होना अत्यन्त आवश्यक है। **ऋग्वेद** मे कहा गया है, "सविता, भग, वरुण, मित्र अर्यमा, इन्द्र, ये सभी देव ऐश्वर्ययुक्त होकर हमारे पास आये तथा हमे वह धन सम्यक् रीति (न्याय संगत तरीके से) प्रदान करे। धर्म का एक पैसा, चोरी या अधर्म के एक हजार रूपये से अच्छा होता हे क्योकि उसमे आध्यात्मिक तथा मानसिक सुख का भाव रहता है। धर्माधारित अर्थार्जन टिकाऊ होता है तथा यह सदा चतुर्विध सुख देता है यह समृद्धि का मूलमत्र है। **महाभारत** मे श्रमोपार्जित धन और उसका त्यागपूर्वक भोग को ही श्रेष्ठ धर्म माना है। यजुर्वेद मे 'सुपथाराये' अर्थात् जो धन हम प्राप्त करना चाहते हे वह सही सही रास्ते से प्राप्त हो, हेतु कहा गया है। **मनु** अनिदित कर्मो से धनार्जन की सलाह देते है तथा धर्म और काम को धर्म विरोधी होने पर छोडने हेतु निर्देश देते हैं तथा सब प्रकार की शुद्धियो मे से श्रेष्ठ शुद्धि 'अर्थ शुद्धि' को मानते है। **भागवत पुराण** मे हीन उपायो से प्राप्त धन को 'धर्म्य धन' नही कहा है, अपितु न्याय एव उचित रूप से कमाये गये धन को ही 'धर्म्य धन' कहा गया है। **स्कन्द पुराण** मुद्रा अर्जन तथा धन–सग्रह को दण्डनीय कहा गया है। न्यायोचित तरीके से कमाया धन तथा आवश्यकताओ से अधिक धन–सग्रह को दण्डनीय कहा गया है। न्यायोचित तरीके से कमाए हुए धन का 10 प्रतिशत भाग ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए व्यय किया जाना चाहिए। **शुक्रनीति** मे भी धर्मानुसार अर्थार्जन करने का निर्देश है, यदि कोई व्यक्ति धर्म तथा अर्थ मे समर्थ है, अर्थात् धर्मानुसार अर्थार्जन करने मे निपुण है और तदनुसार कार्य करने वाला है, वह सदा पूज्य होता है।

वैदिक चितन मे एक तरफ न्यायोचित उपायो से धनार्जन का निर्देश है वही मनुष्य को अपनी न्यूनतम आवश्यकताओ से अधिक भी धनार्जन नही करने की सलाह दी गई है। यदि अनायास कभी अधिक धन कमा लिया भी जाए तो उसे अति–दरिद्र व्यक्तियो मे वितरण या दान करने हेतु कहा गया है।

इसका तात्पर्य यह नही है कि भारतीय चितन दान धर्म का ही निर्देश देता है। दान धर्म का अग है पर दान की भी एक सीमा है। **भागवत पुराण** मे उस दान की प्रशसा नही की गई है जिसमे वृत्ति मे अवरोध हो क्योकि लोक में दान, यज्ञ और कर्म वृत्ति की सहायता से ही किये जा सकते है। अत जहॉ अर्थ भी मर्यादा के लिए धर्म आवश्यक है वही धर्मपालन के लिए भी धन आवश्यक है। विदुरनीति मे लिखा है कि जो अर्थ की पूर्ण सिद्धि करना चाहता है उसे पहले धर्म का ही आचरण करना चाहिए। जैसे स्वर्ग से अमृत दूर नही होता, उसी प्रकार धर्म से अर्थ अलग नही होता।

महर्षि दयानन्द सरस्वती सत्यार्थ पकाश (पृ 564) मे कहते है कि अर्थशास्त्र तथा धर्मशास्त्र मे पूरी तरह सामजस्य होना चाहिए। अर्थशास्त्र यदि सम्पत्ति की व्याख्या कर उसे अर्जित करने की बात कहता है तो धर्मशास्त्र उस सम्पत्ति का सदुपयोग करना सिखाता है।

वैदिक ऋषियो ने धनार्जन मे साधनो की पवित्रता पर सदा बल दिया। छल चोरी कपट झूठ अपहरण आदि से अर्जित धन अच्छा नही माना जाता था। जो लोग ऐसे गलत साधनो से अर्थोपार्जन करते थे उन्हे 'पणि' कहा जाता था और उन्हे हेय दृष्टि से देखा जाता था। ऋग्वेद मे अनेक ऐसे मत्र है जिनमे पणियो के प्रति घृणा का भाव देखा गया है तथा देवताओ से प्रार्थना की गई है कि वे पणियो के धन को नष्ट करे।

प्र बोधयोष पृणतो मघोन्यबुध्यमाना पणय ससन्तु।
रेवदुच्छ मघवद्भयो मघोनि रेवत्स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती।।

(ऋग् 1/124/10)

अर्थात्– हे धनवन्ती उषे ! जो धनी व्यक्ति दूसरे को धन देकर (दान) प्रसन्न करते हैं उनको तुम जगावो और जो पणि (लोभीजन) है वे सोये पडे रहे।

(ii) धन सग्रह में सयमी–मनु सुख चाहने वालो को अत्यन्त सतोष धारण कर सयमी बनने की सलाह देते हैं।

सतोष परमास्थाय सुखार्थी सयतो भेत्।
सतोष मूल हि सुख दुख मूल विपर्यम।। (मनु 4/12)

अर्थात्–मनुष्य को सतोष धारण कर सयमी बनना चाहिए। उसे यथासभव अपने परिवार की तथा अपनी रक्षा के साथ यज्ञ आदि के लिए आवश्यक धन से अधिक की इच्छा नही करनी चाहिए क्योकि सतोष सुख का कारण है तथा असतोष दु ख का कारण है।

कठोपनिषद मे कहा गया है कि 'कोई मनुष्य चाहे कितना ही धन प्राप्त करले कभी उसे धन से तृप्ति नहीं होती अर्थात् धन की इच्छा कभी पूर्ण नहीं होती। जिस प्रकार भोजनादि से पेट भर जाता है फिर भी खाने की इच्छा बनी रहती है उसी प्रकार धन से इच्छा पूर्ण नहीं होती। जितना धन मिलता है उतनी ही इच्छा बढती जाती है। सौ वाला सहस्त्र मे सुख समझ कर सहस्त्र की इच्छा करता है तो सहस्त्राधीश लक्ष की इच्छा करता है और लक्षपति करोडपति होने की इच्छा करता है। धन मनुष्य की आवश्यकता न होकर तृष्णा है जो कभी समाप्त नही होती।

ईशावास्य उपनिषद मे भी सम्पत्ति खाद्यान्न आदि के सग्रह को उचित नहीं माना गया है। पद्मपुराण मे कहा गया है कि जब तुम खाद्यान्न सम्पत्ति आदि का सग्रह बद कर दोगे तो सभी प्रकार की समस्याएँ समाप्त हो जायेगी। शुक्र के अनुसार 'मनुष्य को हृदय के अन्दर उदारता रखकर और ऊपर से कृपणता रखकर समय आने पर धन का उचित व्यय करना चाहिए'।

(iii) आवश्यकतानुसार धनोपार्जन–प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन म आवश्यकतानुसार धनोपार्जन को आदर्श माना गया है। द्रव्य का एक स्थान पर केन्द्रीकरण सदा ही राष्ट्र की सम्पत्ति है व्यक्ति की नहीं। व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति मात्र करने का ही अधिकार है उससे अधिक नही। इसलिए भागवत पुराण मे कहा गया

है कि जितने से पेट भर जाए। व्यक्ति का केवल उतने पर अधिकार हो, इससे अधिक जो ग्रहण करता है, वह चोर है एव दण्ड का पात्र है। मनुष्य अपने श्रम–साध्य धन को यज्ञ ओर यज्ञमय भावनाओ द्वारा 'अर्थ' मे परिणत कर सकता है जिससे अर्थ उद्देश्यपूर्ण बन जाता है। इसीलिए पच महायज्ञो का विकास हुआ जो निजी–सम्पत्ति का प्राचीनतम् राष्ट्रीयकरण दिखाई देता है। वैदिक संस्कृति मे इस त्यागमयी भावनाओ के कारण ही विश्वबधुत्व का उदय हुआ और पारस्परिक सहयोग प्रथम कर्तव्य माना गया। (सगच्छध्व सं वदध्वं स वोमनासि जानताम्। (ऋग्/10/19/2–4)। आवश्यकतानुसार धनार्जन की महत्ता को निम्न दोहा ओर अधिक स्पष्ट करता है।

साई इतना दीजिए जामे कुटुम्ब समाय।
मै भी भूखा न रहू साधु भी भूखा न जाय।।

(iv) धनार्जन में त्रि–वर्ग का ध्यान– महाभारत (शाति पर्व) मे नकुल तथा सहदेव युधिष्ठर से कहते हैं कि मनुष्य को सोते, उठते, बैठते, चलते, फिरते समय, छोटे–बडे हर तरह के उपायो से दृढतापूर्वक धन कमाने का उद्यम करना चाहिए। धन दुर्लभ एव अत्यत प्रिय वस्तु है, इसकी प्राप्ति हो जाने पर मनुष्य ससार में अपनी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण कर सकता है। निर्धन मनुष्य की कामनाएँ पूर्ण नही हो सकती। परन्तु फिर भी मनुष्य को धर्म के अनुसार ही धन–सग्रह करना चाहिए, बाद मे कामनाओ का सेवन करे।

(v) धनार्जन के प्रति अनासक्ति भाव– मुनष्य अर्थ का स्वामी न होकर दास ही न बन जाए अथवा कहीं अर्थ इसका साधन न होकर साध्य ही बन जाए। इसलिए प्राचीन भारतीय परम्परा में सर्वत्र अनासक्ति की भावना पर बल दिया है। मनुष्य को भोग तो करना चाहिए किन्तु त्याग की भावना से अथवा अनासक्तिपूर्वक । ईश. उपनिषद तथा भागवत पुराण में त्यागपूर्वक भोग का आदर्शभाव प्रस्तुत किया है। इसी भावना को प्रसिद्ध कवि सियाराम शरण गुप्त ने कविता के रूप मे प्रस्तुत किया है।

ईश का आवास यह सारा जगत, जीवन यहाँ जो कुछ उसी मे व्याप्त है।
अतएव करके त्याग उसी के नाम से, तू भोगता जा यह जो तुझे प्राप्त है।
धन के किसी के भी तू न रख कामना।
धन के किसी के भी तू न रख वासना।।

भारतीय त्यागमयता का सर्वोपरि विधायक है–यज्ञ। जिसका प्रारंभ ही 'इदन्नमम्' की भावना से होता है। उपनिषदो का मानना है कि मानव कभी 'धन' से सतुष्ट नही हो सकता। अतः यह भी याचना की गई है कि "परमात्मा हमारे पास धनों को सुपथ से लाए। परन्तु त्यागमय–भोग के साथ–साथ त्यागमय कर्म भी अनिवार्य है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु। गीता 2/47

जगत भोगों का साधन है। इसी मे और इसी के द्वारा मनुष्य भोग भोगता है परन्तु भोग वही सार्थक है जिसमें त्याग–भावना का समावेश है। न भोगने का नाम त्याग नही। भोगना अवश्य है किन्तु त्याग–भाव से। इसीलिए मर्यादित–भोगो को धर्म का अग माना गया है।

(vi) धनार्जन में इच्छा–परिमाण व्रत की पालना– गीता मे कहा गया है कि पृथ्वी पर जितने धान जौ सुवर्ण पशु और स्त्रियाँ हैं–वे सब भी एक पुरुष की कामनाओ की तृप्ति मे पर्याप्त नही है ऐसा समझकर शात हो जाना चाहिए।

अपने श्रम की उपलब्धि मे से भी अपनी जीवन–यात्रा के लिए आवश्यक हो उससे अधिक ग्रहण न करना अपरिग्रह है। अपनी आवश्यकता से अधिक को समाज की सम्पत्ति मानकर उसकी रक्षा करने के लिए कहा गया है। महावीर स्वामी के अनुसार गृहस्थी अपरिग्रही नही हो सकता गृहस्थ चलाने के लिए भिक्षा जीवी भी नही हो सकता अत उसके लिए उन्होने इच्छा–परिमाण–परिग्रह के सीमाकरण का सुझाव दिया। लाभ से लोभ बढता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है अत आवश्यकताओ को समाप्त नही किया जा सकता। अत उन्होने मध्य–मार्ग के रूप मे इच्छा परिमाण–व्रत का प्रतिपादन किया। इसके अन्तर्गत अनिवार्यता एव सुविधा की श्रेणी की आवश्यकताओ की पूर्ति करते हुए विलासिता श्रेणी की इच्छाओ का दमन करना आवश्यक है। इससे आर्थिक विकास का मार्ग अवरुद्ध नही होता। महावीर स्वामी ने इच्छा–परिमाण व्रत धारण करने के लिए धनार्जन के तीन नियम निश्चित किए है। (1) झूठ तौल माप न करना (2) मिलावट न करना तथा (3) असली वस्तु दिखाकर नकली वस्तु न बेचना।

महावीर अर्थार्जन मे अप्रमाणित साधनो का प्रयोग न करने तथा व्यक्तिगत जीवन मे सीमा निश्चित करते हैं। धन के अर्जन मे अप्रामाणिक साधनो का प्रयोग न करना सग्रह की सीमा निश्चित करना तथा व्यक्तिगत उपभोग का सयम करना ये तीनो इच्छा–परिमाण व्रत का निर्माण करते है। विदुर ने भी कहा है कि इस पृथ्वी पर जो भी धान जौ सोना पशु और स्त्रिया हैं वे सब के सब एक पुरुष के लिए भी पूरे नही है ऐसा विचार करने वाला मनुष्य मोह मे नही पडता।

(vii) आय की तुलना मे कम व्यय करना– शुक्र कहते हैं कि बुद्धिमान व्यक्ति को थोडे से कार्य के लिए अधिक धन का त्याग नही करना चाहिए और अभिमान से कभी छोटे कार्य को सिद्ध करने के लिए अधिक धन का व्यर्थ व्यय न करे अर्थात् बहुत थोडा व्यय करे।

अयम एव परोधर्म इयम् एव कुलीनता।
इदय एव परम् ज्ञानम आयात अल्पतरो व्यय।।

अर्थात् परम धर्म कुलीनता व ज्ञान की बात यह है कि आय से व्यय कमतर हो। राम भरत से पूछते हैं कि तुम्हारी आमदनी तो बढी हुई और तुम्हारे खर्च घटे हुए है ना?

(आयस्ते विपुल कश्चित्कश्चिदल्पतरो व्यय । 2/100/54)। परन्तु शुक्र तथा राघवेन्द्र विजय अति कृपणता को निंदनीय मानते हैं, क्योंकि कजूस व्यक्ति कभी भी सतुष्टि प्राप्त नहीं कर सकता है।

(viii) शुक्राचार्य कहते हैं कि धन को बढाने के लिए लिखा–पढी के साथ ब्याज पर दे देवे परन्तु स्वयं के पास निष्क्रिय रूप में न रखे यह विचार आधुनिक पूँजी–निर्माण के विचार से भी अधिक विकसित है इसके साथ ही वे धन उधार किसे दिया जाये, किस रूप में दिया जाय, इसकी भी व्याख्या करते हैं। उनके अनुसार व्यवसाय करने वालों के लिए लिखित से बढकर दूसरा अन्य स्मरण–सूचक चिन्ह नही होता। अत बुद्धिमान को बिना लेख के व्यवहार (रुपया देना) नही करना चाहिए।

(ix) स्वयं के परिश्रम व प्रयत्नों से धनार्जन–*भारतीय चिंतन मे इस बात पर काफी जोर दिया गया है कि अपनी पारिवारिक, सामाजिक एव धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति को स्वय के प्रयत्न एवं परिश्रम से ही धनार्जन करना चाहिए।* यह विचार हमे विदेशी निर्भरता एवं विदेशी ऋणों से बचकर स्वावलम्बी अर्थतंत्र विकसित करने की ओर सकेत करता है।

(x) पर्यावरण संरक्षण का ध्यान–आज जीव–जन्तुओ, पेड़–पौधों को नष्ट करके उत्पादन बढाने को विकास का नाम दिया जा रहा है। मनुस्मृति तथा महाभारत (शांति पर्व) में स्पष्ट रूप से निर्देश दिया गया है कि "अद्रोहेण भूतानामल्पद्रोहेण वापुन ।" अर्थात् व्यक्ति को जीविकोपार्जन के लिए ऐसे माध्यम को ही अपनाना चाहिए जो भूतप्राणियो को बिल्कुल भी कष्ट न देने वाला हो अथवा कम से कम कष्ट देने वाला हो। *अर्थात् धनार्जन तो करना चाहिए परन्तु भूतप्राणियो तथा वनस्पति को खतरा न हो।*

(xi) मनु ने कहा है कि धनार्जन का कार्य अपने शरीर एव मन–मस्तिष्क को बहुत अधिक पीडा पहुँचाकर नही करना चाहिए। (अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसचयम्)। अर्थात् काम का स्वरूप एवं समय ऐसा होना चाहिए जिससे न तो शारीरिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडे और न ही मानसिक तनाव उत्पन्न हो। इसी के अलावा व्यक्ति को धनार्जन के ऐसे उपायो से दूर रहना चाहिए जिससे ज्ञानार्जन एव स्वाध्याय के काम में बाधा पडे। 'सर्वान् परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिन ।'

धनार्जन के लिए वृत्तियाँ एवं धनार्जन का महत्त्व

प्राचीन भारत में चार प्रकार की विद्याएँ थी आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्ता तथा दण्डनीति। अर्थशास्त्र का सम्बन्ध वार्त्ता से है। वार्त्ता का सम्बन्ध वृत्ति से था। प्राचीन काल में जीविका के साधन (धनार्जन) को 'वृत्ति' कहा जाता था। सामाजिक सुव्यवस्था किसी देश की अर्थव्यवस्था पर निर्भर करती है। आर्थिक व्यवस्था के अभाव में सामाजिक व्यवस्था की कल्पना नही की जा सकती। अत प्राचीन काल मे वार्ता के आधार पर ही सामाजिक

व्यवस्था का गठन किया गया। कार्य या वृति के आधार पर चार वर्णों की व्यवस्था की। इस प्रकार प्राचीन काल मे निम्न वृतियो से धनार्जन की व्यवस्था थी।

1 ब्राह्मण वृति–इसक अन्तर्गत दान यज्ञ अध्यापन।

2 क्षत्रिय वृति–पृथ्वी एव प्रजा की रक्षा करना।

3 वेश्य वृति–कृषि वाणिज्य गा रक्षा तथा कुसीद अर्थात ब्याज पर ऋण देना।

4 शुद्र वृति–सेवा आदि। इस प्रकार उपर्युक्त वृतियो से धनार्जन की व्यवस्था थी।

आचार्य शुक्र ने बताया कि **इस ससार में जन्म से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य एव शूद्र नहीं होता बल्कि गुण या कर्म के भेद से होता है।**

शुक्र के अनुसार कुसीद (सूद लेना) कृषि वाणिज्य गोपालन इन सबको वार्ता कहते है। इस वार्ता सम्बन्धी शास्त्र का भलीभाति ज्ञान रखने वाला व्यक्ति जीविका सम्बन्धी भय को प्राप्त नही होता है।

शुक्रनीति में धर्मानुसार अर्थार्जन करने वाले व्यक्ति को श्रेष्ठ बताया गया है। यदि कोई मनुष्य धर्म तथा अर्थ मे समर्थ है अर्थात धर्मानुसार अर्थार्जन करने मे निपुण है और देश काल का ज्ञाता अर्थात तदनुसार कार्य करने वाला एव सशय–रहित है तो वही सदा पूज्य होता है। शुक्रनीति मे आगे बताया गया है कि मनुष्य अर्थ का दास होता है न कि पुरुष का दास अर्थ होता है। अत अर्थ के लिए सदा प्रयत्न पूर्वक यत्नशील रहना चाहिए। मनुष्यो को अर्थ से ही धर्म काम तथा मोक्ष जैसे सभी पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं। शुक्र नीति मे राजा को धर्म शास्त्र क अनुसार अर्थशास्त्र पर विचार करने को कहा गया है। धनार्जन को आवश्यक बताते हुए शुक्रनीति मे कहा गया है कि जब तक मनुष्य धनयुक्त रहता है तब तक सब लोग उसकी सेवा करते हैं तथा जब वही धन से रहित हो जाता है तो भले ही गुणवान हो किन्तु उसे स्त्री–पुत्रादिक भी छोड देते हैं अत ससार मे व्यवहार चलाने के लिए धन ही सारभूत कहा हुआ है।

सुन्दर विद्या उपार्जन या सुन्दर सेवा शूरता कृषि करके या ब्याज पर रुपया ऋण देकर दुकानदारी या सगीत आदि कला के द्वारा जिस भी प्रकार मनुष्य धनवान बन सके उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए क्योकि धनियों के द्वार पर गुणी लोग नौकर की तरह पडे रहते हैं। शुक्र ने धन के प्रभाव की चर्चा करते हुए कहा है कि धनवान पुरुषो के दोष भी गुण के समान हो जाते हैं और निर्धनो के गुण भी दोष तुल्य हो जाते हैं। इससे निर्धन की सभी लोग निंदा करते है। इस प्रकार शुक्र ने समृद्धि प्राप्त करने को अच्छा तथा निर्धनता को बुराई माना है।

आचार्य शुक्र ने अर्थशास्त्र को धन अर्जन का शास्त्र कहा है आधुनिक अर्थशास्त्र की भाषा में शुक्र ने अर्थशास्त्र को धन का विज्ञान ही माना है।

धनार्जन की विधि एव धनार्जन करने वालो की श्रेणी–शुक्र नीति के अनुसार विद्या तथा धन चाहने वाले को नित्य कर्म से क्षण तथा कण का त्याग नही करना चाहिए। क्षण–क्षण भर प्रतिदिन अभ्यास करके विद्या का एव कण–कण भर का सग्रह कर

धन का अर्जन करना चाहिए। परन्तु शुक्र नीति मे मान–सम्मान से कमाए हुए धन को ही उत्तम माना है। शुक्र के अनुसार, 'जो केवल धन चाहते हैं, वे 'अधम', जो धन तथा मान दोनो चाहते है वे 'मध्यम' एव जो केवल मान चाहते हैं वे 'उत्तम' जन कहलाते हैं क्योकि बडे लोगो का धन मान (आदर) ही है।'

सांदर्भ

1 यजु 23/65,34/38, 40/16, ऋग् 7/4/7–8, निरुक्त 3/1
2 अथर्व, 19/71/1, शतपथ ब्राह्मण 3/9/13, निरुक्त 8/1
3 सत्यराधो भगेया । ऋग् 7/41/3
4 पूर्वोक्त 7/35/6
5 ऋग् 1/32/5/7 (दयानन्द भाष्य)
6 अथर्व, 19/31/5
7 चाणक्य सूत्र 90
8 महा शाति, 161/11, 8/17, 21
9 शु नी, 1/84
10 ऋग् 10/155/1
11 महा शाति, 199/16
12 शु नी 3/195
13 अथर्व, 3/24/5

प्रश्न

1 प्राचीन भारतीय साहित्य में वर्णित धन का अर्थ बताइये।
2 प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन मे वर्णित धन सम्बन्धी अवधारणा की व्याख्या कीजिए।
3 भारतीय वाङ्मय में वर्णित धन के स्त्रोतो का वर्णन कीजिए।
4 प्राचीन भारतीय साहित्य मे उल्लिखित धन का अर्थ एव महत्व बताते हुए ध नार्जन की आचार संहिता पर प्रकाश डालिए।
5 प्राचीन भारतीय वाङ्मय के अनुसार धनार्जन कैसा होना चाहिए।
6 रिश्वतखोरी व भ्रष्टाचार पर प्राचीन भारतीय साहित्य के दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।
7 अर्थ के सदुपयोग से आपका क्या आशय है ?
8. धनार्जन की आचार संहिता को स्पष्ट कीजिए।
9 प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन में धनार्जन के लिए कौन–कौन सी वृत्तियाँ बताई गयी है ? नाम लिखिए।



6

प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन एव पाश्चात्य आर्थिक चिन्तन
(Ancient Indian Economic Thought and Western Economic Thought)

भारतीय आर्थिक चितन विश्व के किसी भी आर्थिक चितन से अधिक प्राचीन है। भारतीय आर्थिक चितन के प्रमुख स्त्रोत पवित्र वेद हैं जो कि मानव जाति के लिए ज्ञान की प्रथम पुस्तक के रूप मे प्रसिद्ध ह।

पाश्चात्य आर्थिक विचारा का इतिहास इतना प्राचीन नही है। यूरोप मे औद्योगिक क्राति के बाद ही अर्थशास्त्र का जन्म व विकास हुआ है। उन अर्थशास्त्रियो ने कतिपय यूनानी दार्शनिको के विचारों का सहारा लेकर ही अपने विचारो सिद्धान्तो को निरुपित किया तथा हमारे देश के अधिकाश आधुनिक अर्थशास्त्रियों विचारकों ने उन्हीं का अंधानुकरण करके उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्ता व विचारो को भारतीय परिवेश में आरोपित कर दिया। इस प्रकार पश्चिम प्रेरित आर्थिक विचार प्रणाली की भारतीय सदर्भ में उपयोगिता व वैधता के गभीर परीक्षण की आवश्यकता है। प्राचीन भारतीय आर्थिक चितन मे हम उन आर्थिक विचारा को लेते हैं जो कि वेदो से लेकर कौटिल्य तक की समयावधि में मिलते हैं। प्रसिद्ध आर्थिक चितक दत्तोपत ठेंगडी ने पाश्चात्य एव प्राचीन भारतीय आर्थिक चितन की तुलना निम्न विन्दुओं के आधार पर की है।[1]

प्राचीन भारतीय आर्थिक चितन एव पाश्चात्य आर्थिक चितन की तुलना

भारतीय आर्थिक चिन्तन व पाश्चात्य आर्थिक चितन की तुलना निम्न विन्दुओं के आधार पर कर सकते हैं–

क्र स	पाश्चात्य आर्थक चितन	भारतीय आर्थिक चितन
1	पृथक्त वादी (टुकडा मे बटा हुआ) चिन्तन। (Compartmentalised Thinking)	एकात्म चितन (Integrated Thinking)

1 M G Bokare Hindu Economics

क्र.सं.	पाश्चात्य आर्थिक चिंतन	भारतीय आर्थिक चिंतन
2	मनुष्य एक भौतिक प्राणी (Man-a mere Material being)	मनुष्य–एक भौतिक, मानसिक बौद्धिक एवं आध्यात्मिक प्राणी (Man-a physical, Mental intellectual, Spiritual being)
3	अर्थ एव काम के प्रति झुकाव (Sub-Servience to Artha-Kama)	पुरूषार्थ चतुष्टय के प्रति आकर्षण (Drive towards purusharth Chatushtayam)
4	समाज एक स्व–केन्द्रिय व्यक्तियो का एक क्लब (Society, a club of self-centred individuals)	समाज सभी व्यक्तियो की एक सस्था जिसमे व्यक्ति उसके अग (Society, a body with all individuals therein as its limbs)
5	स्वय का सुख (Happiness for one Self)	सभी का सुख (Happiness for all)
6	सग्रहशीलता या परिग्रह (Acquisitiveness)	अपरिग्रह Aparigraha (Non possession)
7	लाभ उद्देश्य (Profit-motive)	सेवा उद्देश्य (Service Motive)
8	उपभोगवाद (Consumerism)	सयमित उपभोग (Restrained Consumption)
9	शोषण (Exploitation)	अन्त्योदय (Antyodaya)
10	अन्य के कर्त्तव्यो के प्रति अधिकारोन्मुख चेतना (Rights-oriented consciousness of others duties)	अन्य के अधिकारो के प्रति कर्त्तव्योन्मुख चेतना (Duty-oriented consciousness of other's Rights)
11	कृत्रिम दुर्लभता (Contrived Scarcities)	विपुल उत्पादन (Abundance of production)

12	बढती कीमतो की अर्थव्यवस्था (Economy of rising prices)	गिरती कीमतो की अर्थव्यवस्था (Economy of declining Prices)
13	कई तकनीको द्वारा एकाधिकारी पूँजीवाद (Monopoly Capitalism through Various devices)	स्वतत्र प्रतियोगिता बिना छलयोजित बाजारो के (Free competition without Manipaluted Markets)
14	मजदूरी–रोजगार केन्द्रित आर्थिक सिद्धात (Economic theories centred round wage-employment)	स्व–रोजगार केन्द्रित आर्थिक सिद्धात (Economic theories Centred round Self-employment)
15	सर्वहारा वर्ग की बढती हुई फौज (An ever-increasing Army of proletariat)	हमेशा बढता हुआ विश्वकर्मा क्षेत्र (स्वरोजगार क्षेत्र) (The ever-growing sector of vishwakarma (self employment)
16	हमेशा बढती हुई विषमताएँ (Ever-widening disparities)	समता एव समानता की तरफ गति (Movement Towards Equitability and equality)
17	प्रकृति का शोषण या लूट (The rape of nature)	प्रकृति माँ का दोहन (The milking of Mother nature)
18	व्यक्ति समाज एव प्रकृति मे हमेशा सघर्ष (Constant Conflict between an individual, the society and the nature)	प्रकृति समाज एव व्यक्ति मे हमेशा सद्भाव (The Complete harmony between an individual, the society and the nature)

अब हम प्रत्येक का सक्षेप मे वर्णन करेगे।

1 पृथकतावादी बनाम एकात्म आर्थिक चितन

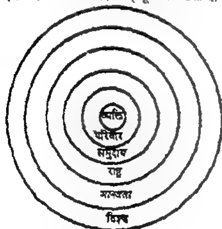
पाश्चात्य आर्थिक चितन पृथकतावादी अध्ययन पर आधारित है। उन्होंने समष्टि जीवन के व्यक्ति परिवार राष्ट्र विश्व मानव आदि वृहत घटकों का विचार पृथक–पृथक किया है व इन सबको जोडने वाली एक सुदृढ आतरिक कडी की परिकल्पना का वहाँ सर्वथा अभाव है। इनके अनुसार इनमें से प्रत्येक घटक अपनी स्वार्थ सिद्धि मे लगा हुआ

है जिसके परिणामस्वरूप परिवार के विरुद्ध व्यक्ति, एक राष्ट्र के विरूद्ध दूसरा राष्ट्र, विश्व मानवता के विरुद्ध राष्ट्रवाद, प्रकृति के विरुद्ध मानव खड़ा है परिणामस्वरूप सघर्ष स्वाभाविक है। जबकि वास्तविकता यह है कि इन समस्त इकाईयो मे सम्बन्ध है। परन्तु इनमे कैसा सम्बन्ध है इस बात को भुला दिया गया। व्यक्ति का विचार करते समय अन्य सामाजिक अवयवो को भूला दिया गया। यही बात परिवार, समाज ओर मानवता का विश्लेषण करते समय हुई। पाश्चात्य चितन मे एक–एक इकाई का विचार हुआ। चित्र–1 के अनुसार पाश्चात्य चिंतन मे बीच मे एक बिन्दु है जो व्यक्ति है। उसका आवृत करने वाला बडा घेरा परिवार है। परिवार को आवृत करने वाला परन्तु पिछले घेरे से असम्बद्ध एक दूसरा घेरा समुदाय का है, समुदाय को आवृत करने वाला घेरा राष्ट्र का है तथा उसके आगे का घेरा मानवता का है। यह रचना सकेन्द्रीय है। इसमें प्रत्येक घेरा एक दूसरे को आवृत अवश्य करते हैं परन्तु एक दूसरे से अलग है।

जबकि भारतीय चितन एकात्म चिंतन है जिसकी रचना सनातन रचना है। इसे कुण्डलित, सर्पिल या उत्तरोत्तर वृद्धि करने वाली अखण्ड मडलाकार रचना कहा जाता है।

चित्र 2 मे भारतीय एकात्म चिंतन की अखण्ड मण्डलाकार रचना बतायी गयी है। इसका प्रारम्भ व्यक्ति से होता है तथा व्यक्ति से सम्बन्ध जोडते हुए अगला घेरा परिवार का है, उसे खडित न करते हुए अगला घेरा समुदाय, राष्ट्र व मानवता का है।

प्रसिद्ध चिंतक ठेंगडी के अनुसार पाश्चात्य चिंतन में प्रत्येक इकाई एक–दूसरे को आवृत तो करती है, परन्तु परस्पर असम्बद्ध है। अत प्रत्येक इकाई का हित–चिंतन एकातिक है अत इनमें हित विरोध व निरकुशता आती है। जबकि भारतीय चिंतन एकात्म मानववादी है अर्थात् भारतीय जीवन रचना व्यक्ति एव समाज की विभिन्न इकाइयों में असम्बद्धता को स्वीकार नहीं करती। परस्पर सम्बद्धता के परिणामों से यह विकसित समाज चेतना है। अत इनमें हित विरोधी नहीं, वरन् पूरकता रहती है, समन्वय रहता है।



पाश्चात्य संकेन्द्री रचना



भारतीय अखण्ड मण्डलाकार रचना

एकात्म आर्थिक चिंतन एक ऐसा चितन है जो मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए मनुष्य का विचार केवल 'आर्थिक मानव' के एकागी दृष्टिकोण से न करते हुए जीवन के समग्र पहलुओ का तथा ऐसे मानव के अन्य मानवो व मानवेत्तर सृष्टि (प्रकृति) के साथ परस्पर पूरक एकात्म सम्बन्धों पर विचार करते हुए समृद्ध सुखी एव कृतार्थ जीवन प्राचीन भारतीय आर्थिक चितन एव पाश्चात्य आर्थिक चितन की दिशा बताता है।

2. भौतिक बनाम चतुर्विध सुख

पाश्चात्य दर्शन के अनुसार मनुष्य एक भौतिक प्राणी है अत शारीरिक सुख ही प्रधान है तथा यही सम्पूर्ण सुख है। इसलिए मनुष्य जीवन भर शारीरिक सुख की प्राप्ति के लिए ही सघर्ष करता रहता है। शारीरिक सुख मे रोग मुक्त शरीर हाथ में भरपूर पैसा रहने के लिए सुख-सुविधाओ से युक्त मकान सुन्दर पत्नी, होनहार सतान, अच्छा भोजन, उत्तम वस्त्र आभूषण टीवी कार टेलीफोन आदि शामिल है। अर्थात् विविध विषय भोगों की पूर्ति ही सुख सर्वस्व है।

परन्तु भारतीय चितन मे मनुष्य को केवल भौतिक प्राणी ही नही माना है बल्कि वह मानसिक बौद्धिक तथा आध्यात्मिक प्राणी भी है। उसे शारीरिक सुख के साथ मन का सुख बुद्धि का सुख तथा आत्मा का सुख भी चाहिए। इस प्रकार भारतीय चितन में शारीरिक सुख की एकागी अवधारणा की तुलना मे चतुर्विध सुख की कल्पना की गयी है।

3 अर्थ, काम बनाम पुरुषार्थ चतुष्टय

पाश्चात्य आर्थिक चितन मे मनुष्य के केवल शारीरिक सुख की कल्पना की गयी है जिसके लिए केवल अर्थ एव काम पुरुषार्थ पर जोर दिया जाता है। पाश्चात्य दर्शन मे शारीरिक सुख की क्षुधा ही काम है तथा काम पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए विविध साधन जुटाना अर्थ पुरुषार्थ है।

अर्थ की प्राप्ति के लिए पाश्चात्य दर्शन मे स्वहित की प्रमुखता होती है तथा अर्थार्जन की कैसी विधिया है उनके नैतिक पक्ष पर कोई ध्यान नही दिया जाता । जबकि भारतीय चितन मे चतुर्विध सुख (शारीरिक मन बुद्धि एव आत्मा का सुख) प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ चतुष्टय का सुझाव दिया गया है। शरीर मन बुद्धि एव आत्मा के सुख की प्राप्ति के लिए व्यक्ति को काम अर्थ धर्म एव मोक्ष जैसे पुरुषार्थ करने चाहिए। भारतीय चितन पाश्चात्य चितन की तरह केवल अर्थ एव काम को प्रमुखता नही देता बल्कि अर्थ धर्मपूर्वक कमाया जाना चाहिए अर्थात अर्थ रचना धर्माधारित होनी चाहिए। भारतीय चितन मे त्याग पूर्वक भोग पर बल दिया गया है।

4 समाज के प्रति धारणा

पाश्चात्य चितन मे समाज को एक स्वकेन्द्रित व्यक्तियो का एक क्लब माना जाता है अर्थात समाज स्वार्थी व्यक्तिया द्वारा निर्मित क्लब है। सरल शब्दो मे व्यक्ति

एकत्र होकर परस्पर हितो की रक्षा हेतु समाज का निर्माण करते हैं। इसे सोशल कान्ट्रेक्ट थ्योरी का नाम दिया गया है। इस धारणा ने कई प्रश्न उत्पन्न किये है कि समाज व व्यक्ति मे कौन श्रेष्ठ है । कुछ मानते हैं कि व्यक्तियो ने एकत्र होकर समाज का निर्माण किया है अत निर्माता होने के नाते व्यक्ति श्रेष्ठ है। दूसरी तरफ लोगो का कहना है कि व्यक्ति के लिए समाज का निर्माण अपरिहार्य हो गया है इसलिए समाज व्यक्ति से हर तरह से श्रेष्ठ है। पाश्चात्य देशो में दोनो ही विचारधाराएँ प्रचलन मे हैं। पहली विचारधारा के लोग व्यक्ति स्वातंत्र्य के नाम पर समाज की उपेक्षा करते हैं तो दूसरी विचारधारा के लोग समाज को सर्वसत्ताधीश बनाने की धुन मे व्यक्ति के बहुरगी व्यक्तित्व को समाप्त कर डालते हैं। पूँजीवादी समाज व्यवस्था पहले विचार की उपज है तो साम्वादी समाज रचना दूसरी का प्रतिनिधित्व करती है।

भारतीय चिंतन के अनुसार समाज कोई क्लब नहीं है, सयुक्त पूँजी कम्पनी या सहकारी संस्था भी नहीं है। समाज तो प्रकृति से ही उत्पन्न होने वाली सहज जैविक सृष्टि है। समाज अपनी रक्षा, जीवन के आदर्शों की अभिव्यक्ति तथा विकास के लिए अनेक व्यवस्थाएँ व संस्थाएँ (शिक्षा के लिए गुरूकुल, आतरिक व बाहरी आक्रमण से रक्षा हेतु राज्य, व्यक्ति व समाज व्यवस्था के लिए वर्णव्यवस्था) स्थापित की है। इस प्रकार विकास के भारतीय चितन मे व्यक्ति व समाज दोनों का समन्वित कल्याण साध्य करने की दृष्टि से सारा चितन प्रस्तुत किया गया है।

5. स्वहित बनाम विश्व कल्याण

पाश्चात्य आर्थिक चितन मे स्वय के सुख की कल्पना की गयी है। यहाँ मनुष्य पूर्ण रूप से स्वार्थी है अर्थात् व्यक्तिगत सुख ही प्रमुख है। एडम स्मिथ ने कहा है कि कभी किसी का भला मत करो यदि भला करना ही है तो तब करो जब ऐसा करने से तुम्हारा स्वार्थ सिद्ध होता हो। कीस ने बताया कि आगे आने वाले सौ वर्षों के लिए हम यह मान ले तथा दूसरों से भी यह मनवा ले कि बुरा ही अच्छा है तथा अच्छा ही बुरा है क्योकि बुरा परिणाम देता है तथा अच्छे से परिणाम नही मिलते। लोभ व लालच को हम कुछ वर्षों के लिए भगवान बनाकर रखे क्योकि उसी माध्यम से हम गरीबी के बोगदे को पार करके प्रकाश की किरण देख सकते हैं।

भारतीय आर्थिक चितन मे व्यक्ति के बिना समष्टि की कल्पना करना असम्भव है तथा समष्टि के बिना व्यक्ति का मूल्य शून्य है। इसलिए भारतीय दर्शन 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना पर आधारित है। इसमे सामूहिक उत्थान की भावना निहित है। इस प्रकार भारतीय आर्थिक दर्शन मे व्यक्तिगत लाभ की जगह विश्व के कल्याण की बात की गयी है। भारतीय चितन मे प्राणी मात्र के सुख की कामना को ही अपना जीवन व्रत मानकर नित्य प्रार्थना की जाती है–

सर्वे भवन्तु सुखिन. सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुख भाग भवेत्।।

अर्थात् सभी प्राणी सुखी रहे सभी स्वस्थ रहे सभी को जीवन की उत्तम वस्तुएँ मिले एवं भी प्राणी को किसी भी प्रकार का दुख नही हो।

6 परिग्रह बनाम अपरिग्रह

पाश्चात्य दर्शन परिग्रह या संग्रह मे विश्वास करता है जबकि भारतीय दर्शन मे अपरिग्रह मुख्य मुद्दा है। पाश्चात्य आर्थिक चिंतन अधिक संग्रह पर जोर देता है। भारतीय चिंतन मे संतोष को परम सुख माना गया है। मनु का कहना है कि सुख चाहने वाले को अत्यन्त संतोष धारण कर संयम करना चाहिए। मनुष्य को अपने परिवार की अपनी रक्षा तथा यज्ञ आदि कार्यों के लिए आवश्यक धन से अधिक धन की इच्छा नही करनी चाहिए क्योंकि संतोष सुख का कारण है तथा असंतोष दुख का कारण। भागवत पुराण मे कहा गया है कि मनुष्य को अपने पेट भरने लायक धन व स्वामित्व रखना चाहिए। इससे अधिक रखने वाला चोर है तथा दण्ड का भागीदार है।

7 लाभ बनाम सेवा उद्देश्य

पाश्चात्य आर्थिक दर्शन मे व्यक्तिगत लाभ प्रमुख लक्ष्य होता है। एक उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि व एक उत्पादक अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहता है। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार मनुष्य हमेशा व्यक्तिगत लाभ को ध्यान मे रख कर निर्णय लेता है। उनका तर्क है कि जब लोग व्यक्तिगत स्वार्थों का ध्यान रखकर निर्णय लेते हैं तो उनमें प्रतियोगिता होती है तथा इससे समाज का हित भी पूरा हो जाता है। परन्तु भारतीय चिंतन व्यक्तिगत हित की तुलना मे समाज राष्ट्र व हित को प्रमुखता दी जाती है जहाँ सेवा का भाव मुख्य आधार होता है।

8 उपभोगवाद बनाम संयमित उपभोग

पाश्चात्य आर्थिक दर्शन उपभोगवाद पर टिका हुआ है। पाश्चात्य आर्थिक दर्शन मे आवश्यकताओ को बढाने पर जोर दिया जाता है। उनके अमर्यादित उपभोग के कारण आज पर्यावरण का संकट खड़ा हो गया है। आज यूरोपीय देशो मे साख कार्ड के द्वारा एक–दो वर्ष की भविष्य की आय का अनुमान से ही उपभोग कर लेते हैं। विज्ञापन आदि की तकनीक से उपभोक्तावादी संस्कृति पनप रही है। पाश्चात्य आर्थिक दर्शन की भोगवादी संस्कृति का आधार **Old Testament** के **Book of Genesis** में मिलता है। **Book of Genesis 1 26 28**

26 Then God said let us make man in our image according to our likeness Let them have dominion over the fish of the sea over the birds of the air and over the Cattle over all the Earth and over every creeping thing weeps on the earth

27 So God created man in His Own Image in the image of God He Created Male and female He created them

28: Them God blessed them and God said to them. Be fruitful and multiply, fill the earth and subdue it· have dominion over the fish of the sea, over the birds of the air and over every living thing that moves on the earth.

जबकि भारतीय आर्थिक चिंतन का आधार हमे ईषोपनिषद के प्रथम मत्र में मिलता है–

ईशा वास्यमिदँ सर्व यत्किञ्च जगत्या जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्।।

अर्थात् इस ब्रह्माण्ड के भीतर जड व चिंतन पदार्थ भगवान द्वारा नियत्रित है तथा यह उसी की सम्पत्ति है। अत मनुष्य को उन वस्तुओ का त्याग पूर्वक भोग करना चाहिए उन वस्तुओ में उसे आसक्त नही होना चाहिए क्योकि यह धन (भाग्य पदार्थ) किसका है अर्थात् किसी का भी नही।

9. शोषण बनाम अन्त्योदय

पाश्चात्य आर्थिक दर्शन मे शोषण को स्थान है। क्योकि व्यक्तिगत लाभ (स्वहित) की प्रमुखता के कारण साधन सम्पन्न वर्ग, साधन विहीन वर्ग का शोषण करता है। लाभ अधिकतमकरण के कारण श्रमिक वर्ग को कम पारिश्रमिक देकर शोषण किया जाता है जिसमे वर्ग सघर्ष को जन्म मिलता है। भारतीय चिंतन में अन्त्योदय की अवधारणा है अर्थात् विकास की दृष्टि से जो व्यक्ति लाइन के अन्तिम किनारे पर खडा है उसका विचार करना।

आचार्य शुक्र ने कहा है कि मनुष्य को अकेले सुखों का उपभोग नही करना चाहिए। जीविका से रहित तथा शोक से पीडित लोगो की यथाशीघ्र सहायता पहुँचा कर उपकार करना चाहिए एव कीडे तथा चीटियो तक के भी सुख–दु खादि को अपनी ही भाति समझना चाहिए ।

10. कर्त्तव्य–अधिकार विवाद

पाश्चात्य चिंतन मे अधिकार की पहले बात होती है तथा बाद मे कर्त्तव्य की। इस प्रकार वहाँ कर्त्तव्यों के प्रति अधिकारोन्मुख चेतना है। जबकि भारतीय चिंतन में कर्त्तव्य को प्रमुखता है अत यहाँ अधिकारो के प्रति कर्त्तव्योन्मुख चेतना है। गीता मे तो भगवान कृष्ण ने मनुष्य को कर्म (कर्त्तव्य) करने की प्रेरणा दी है तथा फल की आशा नहीं करने को कहा है। गीता मे भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सगोऽस्त्वकर्मणि।।

अर्थात् तुम्हें अपना कर्म (कर्त्तव्य) करने का अधिकार है किन्तु कर्म के फलो के तुम अधिकारी नही हो। तुम न तो कभी अपने आपको अपने कर्मो के फलो का कारण मानो। न ही कर्म न करने मे कभी आसक्त होवो।

आगे भगवान श्री कृष्ण ने कहा है–

नियत कुरु कर्म त्व कर्म ज्यायो ह्यकर्मण।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मण ।।

अर्थात् अपना कर्म नियम करो क्योकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। कर्म के बिना तो शरीर–निर्वाह भी नही हो सकता।

गाधी जी के मत मे अधिकार केवल कर्त्तव्यो के प्रति समर्पण का सहज परिणाम होते है। यदि सभी व्यक्ति अपने–अपने कर्त्तव्यो का पालन करे तो दूसरो के अधिकारो की रक्षा अपने आप हो जायगी। उदाहरण के लिए माता–पिता के कर्त्तव्यों में सतान के अधिकार निहित है सतान के कर्त्तव्य मे माता–पिता के अधिकार सुरक्षित है। गुरु के कर्त्तव्य मे शिष्य के अधिकार निहित है तथा शिष्य के कर्त्तव्य में गुरू के अधिकार सुरक्षित है। राजा के कर्त्तव्य मे प्रजा के अधिकार निहित है जबकि प्रजा के कर्त्तव्य मे राजा के अधिकार सुरक्षित है।

11 कृत्रिम दुर्लभता बनाम विपुल उत्पादन

पाश्चात्य आर्थिक चिंतन कृत्रिम दुलर्भता पर आधारित है जबकि भारतीय आर्थिक चिंतन मे विपुल उत्पादन के दर्शन होते हैं। प्रो रोबिंस ने अर्थशास्त्र की परिभाषा मे दुर्लभता की बात स्वीकार की है। पाश्चात्य चिंतन स्व–हित को प्रमुखता देता है जिसके अन्तर्गत लाभ को अधिकतम करने के लिए कृत्रिम दुर्लभता उत्पन्न करना आम बात है। जबकि भारतीय आर्थिक चिंतन मे विपुल उत्पादन की अवधारणा के दर्शन होते हैं। ऋग्वेद मे जिन प्रार्थनाओं व आशीर्वाद का वर्णन है उसे विपुल उत्पदन की अवधारणा की जानकारी मिलती है। उदाहरण के लिए–

(i) इसमे प्रकृति की उदारता का वर्णन है।

(ii) लोग भगवान की पूजा करते हैं तथा उनसे प्रार्थना करते हैं कि वह उन्हें विपुल साधन भोजन दूध पशुधन गाडिया (Carts) सतान दीर्घायु एव अच्छा पारिवारिक जीवन दे।

(iii) भगवान के आशीर्वाद का वर्णन है जिसमे कहा गया है कि यदि वे धर्म के रास्ते पर चलते है तथा उनका धार्मिक विधियो (*Ritual*) मे विश्वास है तो उनको विपुलता प्राप्त होगी।

(iv) लोगो ने व्यक्त किया है कि भगवान ने उनको विपुल साधन दिये हैं परन्तु जब ये हमारे पास पहुचते है तो दानव उनके प्रवाह मे बाधा डालते हैं–वर्षा को रोका जाता है दूध के प्रवाह को रोका जाता है। लोग भगवान से इन अवरोधको को दूर करने के लिए प्रार्थना करते हैं तथा वह इन बाधाओ को हटाता है।

(v) भगवान आशीर्वाद देते है कि दानवो को मार दिया जायेगा तथा विपुलता के प्रवाह को अनवरत रखा जायेगा।

(vi) लोग प्रार्थना करते है कि भगवान ने कुछ लोगो को साधन दिये हैं वे उनका दुरुपयोग करते हैं अत उन्हे दण्डित करना चाहिए।

(vii) भगवान ने लोगो को चेतावनी दी है कि जो साधनो का दुरूपयोग करेगा उन्हे दण्ड मिलेगा।

ऋग्वेद मे श्रम सिद्धान्त, प्रतियोगिता के सिद्धान्त तथा सुदृढ राज्य के सिद्धान्त का वर्णन है। इस प्रकार विपुलता के आर्थिक जीवन के दर्शन हमे वेदो मे होते है।

12 बढती कीमतें बनाम गिरती कीमतें

पाश्चात्य आर्थिक चिंतन मे आवश्यकताओ मे वृद्धि कर उपभोगवाद को बढाया जाता है। माग मे वृद्धि होने पर कृत्रिम दुर्लभता उत्पन्न की जाती है जिससे कीमतो में वृद्धि होती है। भारतीय आर्थिक चिंतन मे राज्य द्वारा ब्याज रहित ऋण देने, स्व-रोजगार प्रतियोगिता तथा सयमित उपभोग के कारण कीमतो मे बढने की प्रवृति नही हो पायेगी।

13. एकाधिकार बनाम स्वतंत्र प्रतियोगिता

प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन मे स्वतन्त्र प्रतियोगिता का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद मे कहा गया है कि लोगो की प्रसन्नता के लिए सभी तरह के ज्ञान को आपस मे विभाजित करना चाहिए तथा उसका विस्तार करना चाहिए। इससे प्रतियोगिता के तत्त्वों की झलक मिलती है। जबकि पाश्चात्य चिंतन में पैटेंट, ब्राड, कापीराइट, लाइसैंस, कोटा आदि के कारण एकाधिकारी प्रवृतियाँ रही है।

14 मजदूरी रोजगार बनाम स्व-रोजगार केन्द्रित आर्थिक सिद्धांत

पाश्चात्य आर्थिक सिद्धात मजदूरी-रोजगार केन्द्रित है जबकि भारतीय चिंतन पर आधारित सिद्धात स्व-रोजगार केन्द्रित है। विदुर नीति में स्वरोजगार को जीवन का श्रेष्ठ आधार बताया गया हैं। प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था स्व-रोजगार आधारित ही थी। आज भी बेरोजगारी समाप्त के लिए स्व-रोजगार बढाने पर जोर दिया जाना चाहिए।

15. सर्वहारा वर्ग बनाम विश्वकर्मा क्षेत्र

पाश्चात्य आर्थिक चिंतन में पूँजीवाद व साम्यवादी विचार के कारण सर्वहारा वर्ग (मजदूर वर्ग) की बडी फौज खडी हो गयी जिसके कारण वर्ग सघर्ष का दृश्य नजर आता है। जबकि भारतीय आर्थिक चिंतन मे स्व-रोजगार के महत्त्व के कारण *विश्वकर्मा* (समस्त शिल्प के अधिदेवता) क्षेत्र बढा रहा है जहाँ किसी प्रकार के सघर्ष की नौबत नही आती बल्कि परिवार की सहायता से शाति पूर्वक सभी उत्पादन प्रक्रियाएँ सम्पादित हो जाती है।

16. विषमता बनाम समता व समानता

पाश्चात्य आर्थिक चिंतन में स्वहित की भावना के कारण शोषण को जन्म मिलता है जिससे विषमताएँ बढती हैं। जबकि भारतीय आर्थिक चिंतन में समता व समानता के विचार

को प्रमुखता दी गयी है अथर्व वेद मे कहा गया है—**शत हस्त समाहर सहस्त्रहस्त विकिर अर्थात् सैंकडों हाथों से उत्पाद करो और हजारों हाथों से उसे बाटो।** इससे समता पूर्वक वितरण की दृष्टि नजर आती है। साम्यवादी अर्थव्यवस्था का नारा है— कमाने वाला खायेगा अर्थात श्रमिक का राष्ट्रीय आय में अधिकाश हिस्सा हो। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था पूँजीपति का ज्यादा हिस्सा तय करती है।

परन्तु भारतीय अर्थ चिंतन में इस बात पर जोर है— **कमाने वाला खिलायेगा और जन्मा है वह खायेगा।** अर्थात खाने का अधिकार जन्मत प्राप्त होता है। कमाने की योग्यता शिक्षण से प्राप्त होती है। समाज को उनको भी खिलाना होता है जिनका राष्ट्रीय उत्पादन में कोई योगदान नहीं होता —जैसे बच्चे बूढे अपाहिज बीमार आदि। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध चितक कुसी सुदर्शन ने साम्यवादी पूँजीवादी एव भारतीय चिंतन की दृष्टि स्पष्ट की है— **खुद कमाना एव खाना पशु प्रवृत्ति है दूसरे का छीनना व खाना विकृति है तथा खुद कमाना एव दूसरों को खिलाना सस्कृति है।** अत किसी अर्थव्यवस्था की श्रेष्ठता का मापदण्ड यही है कि उसके अन्दर सबल लोग दुर्बल लोगों का कितना ख्याल करते हैं।

धन के उचित विभाजन के लिए एक नीतिकार ने कहा है—

जो बढे नाव में नीर, बढे हाथ में दाम।
दानों हाथ उलीचिए यह चतुरन को काम।।

अर्थात जिस प्रकार नाव मे अधिक पानी भर जाता है उसी तरह से यदि हाथ मे अधिक धन आ जाय तो उसे दोनो हाथो से बाट देना चाहिए नही तो वह धन नाव के पानी की तरह विनाशकारी हो जायगी। विपुल धन होने पर भारतीय चिंतन में दान देना आवश्यक बताया गया है।

17 प्रकृति का शोषण बनाम दोहन

पाश्चात्य आर्थक चिंतन की विभिन्न अवधारणाओ के कारण प्रकृति का शोषण हो रहा है। मनुष्य की स्वहित लाभ व अमर्यादित उपभोग के कारण प्रकृति का असीमित मात्रा में शोषण सम्भव हुआ हे। उपभोगवाद तथा सयमित उपभोग शीर्षक मे हमने बताया Old Testament के Book of Generis मे ही लिखा है कि इस धरती पर जितने भी जीवधारी है वे मनुष्य के उपभोग के लिए है। इस कारण प्रकृति दत्त पदार्थों का अमर्यादित उपभोग हो रहा है एव इसी कारण विश्व मे पर्यावरण का सकट खडा हो गया है। इसके विपरीत भारतीय चिंतन के अुनसार प्रकृति का दोहन ही सार्थक है। भारतीय आस्था है कि मानव जीवन प्रकृति पर निर्भर है प्रकृति नष्ट हो जायेगी तो हम भी नष्ट हो जायेंगे। इसी कारण भारतीय परम्पराओ मे प्रकृति की पूजा होती है। भारतीय लोगों ने प्रकृति से नात जोडा हुआ है। हमारे यहाँ तुलसी वटवृक्ष पीपल आदि की पूजा होती हैं। नदियो को पवित्र माना जाता है पक्षियो को दाना डाला जाता है। पर्यावरण की रक्षा के लिए आवश्यक विषय हमारे जीवन मे बस गये हैं। वास्तव मे प्रकृति से हमे उतनी साधन सामग्री लेनी चाहिए तथा इस प्रकार लेनी चाहिए कि उसके कारण होने वाली क्षति को

प्रकृति स्वय अपने आप पूरा कर सके। इस प्रकार अर्थव्यवस्था का उद्देश्य असीमित उपभोग के स्थान पर सयमित उपभोग होना चाहिए। प्रकृति का दोहन करके ही हम जी सकते हैं, न कि शोषण करके।

18. प्रकृति, व्यक्ति व समाज में संघर्ष बनाम सद्भाव

प्रकृति, व्यक्ति व समाज के बीच सम्बन्धों को लेकर पाश्चात्य एवं भारतीय चिंतन मे काफी मतभेद है। पाश्चात्य दर्शन मे व्यक्ति, समाज एव प्रकृति का अध्ययन पृथक–पृथक किया है। व्यक्ति के बारे मे विचार करते समय उसका समाज एव राष्ट्र,प्रकृति के साथ क्या सम्बन्ध हो सकता है, छोड दिया गया। उन्होंने यह बिल्कुल भी ध्यान नही दिया कि व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र मानव जाति या मानवेत्तर सृष्टि का अग है। इसी कारण परिवार के विरुद्ध व्यक्ति, एक राष्ट्र के विरुद्ध दूसरा राष्ट्र, विश्व मानवता के विरुद्ध राष्ट्रवाद, प्रकृति के विरुद्ध मानव सघर्ष के लिए खडे हो गये है। पाश्चात्य विचारधारा मे इनके सम्बन्धों को सकेन्द्री रचना मे समझाया जा चुका है।

भारतीय सस्कृति मे व्यक्ति, समाज, प्रकृति इन सबका एक साथ अध्ययन किया गया है। इन तीनो में किसी प्रकार का सघर्ष नही है बल्कि पूरकता के कारण आपस मे सद्भाव है। इनके सम्बन्धों को पीछे के पृष्ठो मे अखण्ड मडलाकार रचना में बताया गया है। भारतीय आर्थिक चिंतन एकात्म मानव दर्शन पर आधारित है जो मनुष्य का विचार केवल आर्थिक मानव के एकागी दृष्टिकोण से न करते हुए जीवन के समग्र पहलुओं का तथा ऐसे मानव के अन्य मानवो तथा मानवेत्तर सृष्टि के साथ परस्पर पूरक एकात्म सम्बन्धों को ध्यान मे रखकर समृद्ध, सुखी एव कृतार्थ जीवन की दिशा दर्शाता है।

प्रश्न

1. प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारको एवं प्रमुख ग्रथो पर एक निबन्ध लिखो।
2. प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन की मुख्य अवधारणाये बताइये।
3. प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन व पाश्चात्य चिंतन की तुलना कीजिए।
4. निम्न पर सक्षिप्त टिप्पणी लिखो।
   (i) उपभोगवाद एव सयमित उपभोग
   (ii) पुरूषार्थ चतुष्टय
   (iii) पृथकतावादी बनाम एकात्म चिंतन
   (iv) पाश्चात्य एव भारतीय चिंतन में सुख की अवधारणा
   (v) प्रकृति का शोषण बनाम दोहन
5. "विश्व के समस्त पर्यावरण के सकट के लिए पाश्चात्य आर्थिक चिंतन की अमर्यादित उपभोग की अवधारणा उत्तरदायी है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?



7

मनु
(Manu)

संक्षिप्त परिचय

सब स्मृतिकारो मे मनु का व्यक्तित्व महान् है। वह अद्भुत ज्ञानी व्यक्ति के रूप मे प्रतिपादित है। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी सब शास्त्रो मे अपनी छाप छोड़ते हैं। भारतीय साहित्य मे मनु को मानव सभ्यता के प्रवर्तक के रूप मे जाना जाता है। मनु के विषय मे धर्मशास्त्र का इतिहास जो पी वी काणे द्वारा रचित है एक प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करता है उसमे मनु के बारे मे विवरण प्राप्त होता है ऋग्वेद के अनुसार मनु मानव जाति के आदि पिता है। ये ब्रह्मा के मानस पुत्रो की परम्परा मे आते है। मनु से पैदा होने के नाते हम मानव कहलाते है। ऋग्वेद की एक स्तुति मे यह प्रार्थना है कि हम मनु के मार्ग से कही गिर न जाय फिर वही यह भी कहा गया है कि भारतवर्ष मे सबसे पहले मनु ने ही यज्ञ किया। तैत्तिरीय संहिता एव ताण्डय–महा ब्राह्मण के अनुसार मनु ने जो कुछ कहा है वह सब औषध है। शतपथ ब्राह्मण मे मनु एव प्रलय की घटना का उल्लेख है। महाभारत शांति पर्व मे मनु को मनु, स्वायम्भुव मनु तथा प्राचेतस मनु कहा गया है। गौतम वशिष्ठ तथा आपस्तम्ब ने मनु का उल्लेख किया है मनु का पाण्डित्य प्रौढ था। इसका मनुस्मृति ग्रन्थ ही साक्षी रहा है। वैदिकधारा तथा दार्शनिक धारा को जोडने वाली मनुस्मृति है। यहाँ वेदान्त की भाति ब्रह्म का भी वर्णन है।

मनुस्मृति

मनुस्मृति वेदार्थ के अनुसार रचित होने से सब स्मृतियो मे प्रधान है।

'मनुस्मृति विरुद्धा या सा स्मृति र्न प्रशस्यते।

वेदार्थोपनिबद्धत्वात् प्राधान्य हि मनो स्मृते ।।

मनुस्मृति का प्रणयन किसने किया इस पर प्राय विवाद है। नारद स्मृति के अनुसार मनु ने एक धर्मशास्त्र लिखा था और उसे नारद को पढाया। नारदजी ने मार्कण्डेय ऋषि को मार्कण्डेय जी ने सक्षेप करके सुमति भार्गव को पढाया फिर भार्गव ने इसका और छोटा सक्षेप मे चार हजार श्लोको मे बना दिया जो मानवधर्मसूत्र या 'मानवधर्मशास्त्र का अति सशोधित रूप सभवत आजकल का यह मनुस्मृति ग्रन्थ है। वर्तमान मनुस्मृति के प्रथम अध्याय मे ससार की उत्पत्ति की कहानी है इसमे कहा गया

है– ब्रह्मा ने अपने शरीर को दो भागो में किया, फिर आधे भाग से पुरुष तथा आधे भाग से स्त्री हो गई और उसी स्त्री से विराट् नामक पुरुष की उत्पत्ति हुई। फिर उस विराट् पुरुष ने जिस व्यक्ति को जन्म दिया वह ससार का रचियता मनु है।[1] फिर मनु से भृगु, नारद आदि ऋषि पैदा हुए। ब्रह्मा ने मनु को धर्मशास्त्र पढाया फिर मनु ने मरीच्यादि दस मुनियो को वह ज्ञान दिया। कुछ ऋषिगणो ने मनु के पास जाकर वर्णो और धर्म समबन्धी कर्त्तव्यो को बताने के लिए निवेदन किया तो उन्होने यह कार्य अपने प्रिय शिष्य भृगु को दिया। मनुस्मृति मे भृगु के व्याख्यानो में मनु सर्वत्र विराजमान है।

इन सब बातों से यह विदित होता है कि मनु सचमुच सर्वज्ञानी थे, कुशल व्यवहार वेत्ता थे और इनका धर्मशास्त्रीय ज्ञान व्यापक सदर्भो से जुड़ा हुआ था। इस प्रकार यह तथ्य सत्य रूप से प्रकट होता है कि इस मनुस्मृति का कर्त्ता मनु नही है, फिर भी प्राचीनता और प्रामाणिकता लाने के लिए स्वयभू पुत्र मनु को 'स्मृति' शब्द के साथ जोड दिया गया है। डा पी.वी. काणे जैसे विद्वान इसे आदि पुरुष मनु द्वारा रचित नहीं मानते है।[2] किन्तु महर्षि दयानद सरस्वती मनुस्मृति को आदिपुरूष मनु द्वारा ही रचित मानते हैं।[3]

मनुस्मृति के रचना काल के विषय मे विद्वान एकमत नही है क्योंकि जिस प्रकार मनुस्मृति के रचियता के विषय मे मत–मतान्तर है वैसे ही रचनाकाल के विषय मे भी तर्क–वितर्क हुए हैं।

मनुस्मृति पर प्राचीन टीका मेधातिथि की है, जिसका समय 825–900 ई. माना गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति के टीकाकार विश्वरूप ने मनुस्मृति के बारहवे अध्याय से लगभग 200 श्लोको का हवाला दिया है। वेदात सूत्र के भाष्य मे आचार्य शकर ने मनु का उल्लेख किया है और उनके प्रतिपादित विचार मनुस्मृति पर ही अधिक निर्भर है। तत्रवार्तिक में कुमारिल ने मनुस्मृति को सबसे प्राचीनम कहा है। वलभी के राजा धारसेन (571ई) के समय मनुस्मृति थी, जिसका उपयोग उन्होने अभिलेख मे किया है। आचार्य बृहस्पति (500ई) मनुस्मृति की बहुत प्रशंसा करते हैं। वर्तमान रामायण मे भी मनुस्मृति के विचार मिलते हैं। बौद्ध महाकवि अश्वघोष कृत वज्रकोपनिषद् मे मनुस्मृति के श्लोक मिलते हैं।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि द्वितीय शताब्दी के बाद के अधिकाश विद्वान लेखक वर्तमान मनुस्मृति को एक प्रामाणिक सदर्भ में ग्रहण करते हैं तथा इस अनुपम कीर्ति कौमुदी की छाप ब्राह्मण ग्रन्थ से लेकर रामायण व महाभारत पर भी पडी है।

वर्तमान मनुस्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति से बहुत पहले की रचना है। याज्ञवल्क्य का समय तीसरी शताब्दी है। डॉ काणे के अनुसार मनुस्मृति का रचनाकाल ई. पू. दूसरी शताब्दी तथा ईसा के बाद दूसरी शताब्दी के बीच सभावित है। परन्तु कविराज सामरचद ने अपने 'आयुर्वेद का इतिहास' मे काणे के इस काल निर्णय के विचार को भ्रमात्मक कहा है। उनके अनुसार भृगु का समय ईसा से सत्रह सौ वर्ष पहले स्थित होता है।[4] डॉ विनय

कुमार सरकार मनुस्मृति को 150 ई पू का ग्रन्थ मानते हैं। डा सालेटोर ने मनुस्मृति की रचना का समय 1900 ई पू से 1800 ई पू निर्धारित किया है। मैक्समूलर मनुस्मृति को ईसा के पश्चात् चौथी शताब्दी के बाद की रचना मानते हैं परन्तु उनके शिष्य एव उनके ग्रन्थो के सम्पादक व अनुवादक जार्ज ब्हूलर का मत है कि मनुस्मृति ईसा के पश्चात् दूसरी शताब्दी मे निश्चित रूप से अस्तित्व मे थी। पी वी काणे का अतिम विचार यह है कि ई पू दूसरी शताब्दी एव ईसा के उपरात दूसरी शताब्दी के बीच सभवत भृगु ने मनुस्मृति का सशोधन प्रस्तुत किया। जबकि भारतीय धार्मिक व साहित्य परम्परा तथा महर्षि दयानद के अनुसार मनुस्मृति का रचनाकाल आदिपुरुष मनु द्वारा रचित होने के कारण आज से लाखो वर्ष पूर्व सृष्टि के आदि मे ठहरता है।[6]

मनुस्मृति का विषय–सकलन

मनुस्मृति भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था देने म न्यायालयों में न्याय दिलाने म अमूल्य योगदान कर रहा है। मनुस्मृति वेद के बाद राजधर्म अथवा राज–व्यवस्था विषयक विचारों का पहला ग्रन्थ है। इसका प्रभाव भारत के बाहर भी पड़ा है। जावा स्याम बालि द्वीप का विधान (कानून) वर्तमान मनुस्मृति पर अवलम्बित है। बर्मा का धम्मथट मनुस्मृति पर केन्द्रित है। स्मृतियो में एक मात्र मनुस्मृति ही ऐसा ग्रन्थ है जिसम काम अर्थ मोक्ष तथा धर्मरूप चारों पुरुषार्थो का विशद् प्रतिपादन किया गया है। इसकी भाषा सरल सुबोध धाराप्रवाह शैली में है। सम्पूर्ण मनुस्मृति 12 अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में ससारोत्पत्ति का द्वितीय अध्याय में जातकर्मादि सस्कारविधि ब्रह्मचर्य व्रतविधि और गुरु के अभिवादन विधि का तीसरे अध्याय में ब्रह्मचर्य व्रत की समाप्ति के बाद समापवर्तन पचमहायज्ञ और नित्य श्राद्ध विधि का चतुर्थ अध्याय में ऋतु ब्रह्मचर्य आदि जीविकाओं के लक्ष्य व गृहस्थ आदि के नियमों का पचम अध्याय में भक्ष्य और अभक्ष्य पदार्थो और मनुष्यों द्वारा शुद्ध रहन–सहन को सुनिश्चित करने के नियमों का छठें अध्याय में वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम का सप्तम अध्याय में व्यवहार (मुकदमो) के निर्णय तथा कर ग्रहण आदि राजधर्म का अष्टम् अध्याय में न्यायालयों में साक्ष्य की प्रक्रिया आदि का नवम् अध्याय में वैवाहिक सम्बन्धों से सम्बधित विधि सम्पत्ति का विभाजन अपराधों का निवारण तथा वैश्य व शुद्र के अपने धर्म म अनुष्ठान का दशम् अध्याय में विभिन्न जातियों की उत्पत्ति और आपत्तिकाल में मनुष्यों के कर्त्तव्यों का ग्यारहवें अध्याय में पापो की निवृत्ति की विधि का तथा अतिम बारहवें अध्याय में कर्मो के अनुसार मनुष्य की उत्तम मध्यम व अधम प्रकार की तीन सासारिक गतियों आत्मज्ञान मानवीय गुण–दोषों देश धर्म जातिधर्म आदि का वर्णन किया गया है।

मनुस्मृति में आर्थिक विचार

हमारे शास्त्रीय ग्रन्थों म धर्मशास्त्र के अन्तर्गत धर्म राजनीति समाज सस्कृति एव अर्थनीति आदि सभी कुछ पाया जाता है। मानव तथा मानव समाज के सम्पूर्ण आर्थिक

विचार एव क्रियाएँ धर्मशास्त्र मे राज्य–व्यवस्था के साथ वर्णित की जाती थी। धर्मशास्त्र के अन्दर ही अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, नीतिशास्त्र, राजशास्त्र आचारशास्त्र, वर्ण, संस्कार, आश्रम, यज्ञ, पूजापाठ, योग उपासना आदि सभी कुछ आ जाता है। राजधर्म, धर्मशास्त्र का महत्वपूर्ण विषय है। अर्थशास्त्र जो मुख्यत राजा के अधिकारो, विशेषाधिकारो एव उत्तरदायित्वो से सम्बधित धर्मशास्त्र का ही एक अग है। हमारे धर्मशास्त्रकारों ने धर्म एव अर्थ के मतभेदो पर धर्म को अधिक महत्व दिया है। उनके अनुसार अर्थ वह है जो धर्म से ही प्राप्त किया जाए। कौटिल्य मनु को वेदों के बाद राजनीति, दण्डनीति एव अर्थशास्त्र का पहला आचार्य मानते हैं।[1] मनुस्मृति मे आये आर्थिक विचार राज्य–व्यवस्था के साथ–साथ वर्णित किये गये हैं। इन्हीं आर्थिक विचारो को यहाँ पर प्रस्तुत किया गया है।

त्रयीविद्या और अर्थ की महत्ता

त्रयी से तात्पर्य ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद मे समाविष्ट मौलिक ज्ञान से है। यों तो वेद चार हैं और चौथा वेद अथर्ववेद है, किन्तु त्रयीविद्या की दृष्टि से यह ज्ञानत्रयी (तीन) आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक विद्याओं में बटा हुआ है। यथा–ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड और उपासना विज्ञान काण्ड। ऋग्वेद मे ज्ञान, यजुर्वेद में कर्म, सामवेद तथा अथर्ववेद में उपासना तथा विज्ञान विद्या का समावेश है। वेदो में सम्पूर्ण मानव समाज की समस्याएँ जैसे–सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, सास्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक एव पर्यावरणीय आदि का हल विस्तारपूर्वक मिलता है। इसलिए प्राचीन अर्थशास्त्रियो ने त्रयी विद्या को अपने अर्थशास्त्रीय विचारों की पृष्ठभूमि माना था। मनु ने भी सम्पूर्ण मानव समाज के सुव्यवस्थित जीवन का आधार वेदों को माना है। क्योंकि वेदों का विषय–विस्तार या स ं विद्याओं का बीज वेदो मे ही मिलता है। अर्थात्,

'भूतं भव्यं भविष्य च सर्व वेदात्प्रसिध्यति।
चातुर्वर्ण्य त्रयो लोकाश्चत्वारश्चा श्रमा. पृथक्। (मनुस्मृति 12.97)

अर्थ मानव–जीवन की मूल आवयश्यकता है। उसके बिना मानव शरीर जीवित नही रह सकता। अर्थ धर्म की भाति मोक्ष मार्ग मे सहायक है, क्योकि यह स्थूल शरीर की आवश्यकता है। अर्थ के बिना धर्म और काम लगडा है। अर्थ के बिना धर्म और काम सिद्ध नहीं होते। अर्थ की महत्ता पर मनु ने लिखा है कि 'सब पवित्रताओ में अर्थ की पवित्रता अतिश्रेष्ठ है।' मनु ने धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष के क्रम मे अर्थ की महत्ता के साथ–साथ अर्थ को धर्म से नियंत्रित किया है, क्योकि अर्थ की महत्ता तभी तक है जब तक कि वह अधर्म की ओर प्रवृत्त नहीं होता है। मनु ने त्रयीविद्या (वेद) को ही सर्वोपरि माना है।

उपभोग सम्बन्धी विचार

मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं जैसे अन्न, वस्त्र, मकान, शिक्षा आदि के विषय मे मनुस्मृति मे अनेक श्लोको द्वारा व्याख्या की गयी है। मनुस्मृति मे यह विस्तार से

बताया गया है कि कोन सी वस्तुए उपभोग योग्य हे तथा कौनसी वस्तुएँ उपभोग योग्य नही हे।

(i) खाद्यान्न– मनुस्मृति मे व्रीहि (साठीधान) शालि (अगहनीधान) मूग तिल उडद ५व लहसुन गन्ना आदि के उपयोग की चर्चा की गयी है। मनु के अनुसार जीविका (भोजन वस्त्र आदि) का प्रबध कर पति को परदेश जाना चाहिए। यदि पति भोजन वस्त्र आदि का प्रबध किए बिना ही परदेश चला जाये तो स्त्री को सूत कातना सिलाई पिरोना आदि कार्यो से अपनी जीविकोपार्जन करना चाहिए।[8] मनु वस्तुओ के उपभोग मे नैतिकता को प्रमुख स्थान देते है वस्तुओ को चुरा कर उपभोग करने पर उन्होने दण्ड का प्रावधान किया हे। मनुस्मृति क अनुसार सूत कपास (रुई) सुरा बीज गोबर दही दूध छाछ पेय पदार्थ घास बास से बने बर्तन नमक मिट्टी के बर्तन *चिउडे मछली पक्षी घी तेल मास मधु तथा पशुओ से उत्पन्न होने वाले पदार्थ (जैसे* सीग खुर चमडा हाथी दात हड्डी आदि) मदिरा पकवान भात आदि के चुराने पर चोरी की गयी वस्तु का दुगना दण्ड चोर पर करना चाहिए।[9] वे शाकाहारी भोजन के पक्ष मे थे मास खाना उनके अनुसार उचित नही है क्योकि जीवो की हिसा किये बिना मास उत्पादन नही हो सकता है ओर जीवो की हिसा स्वर्ग–साधन नही हे अत मास को नहीं खाना चाहिए।[10] अधिक भोजन करना आरोग्य आयु स्वर्ग ओर पुण्य के लिए अहितकर है अत अधिक भोजन नही करना चाहिए।

(ii) वस्त्र–वस्त्रो के सम्बन्ध मे मनुस्मृति मे लिखा है कि धन (वैभव) रहने पर *फटे ओर मैले कपडो को न पहने।[12] गृहस्थ ब्राह्मण के लिए बास की छडी जल सहित* कमण्डल यज्ञोपवीत वेद तथा सोने के दो सुन्दर कुण्डलो को धारण करने के लिए कहा है दूसरों के पहने हुए जूते कपडे यज्ञोपवीत आभूषण माला आदि को नही पहनना चाहिए

(iii) आवास– आवास ऐसी जगह होना चाहिए जहा धान्य फल–फूल वृक्षो आदि से रमणीय हो आसपास विनम लोग निवास करते हो तथा आजीविका (खेती सुलभ *व्यापार आदि) के साधन हो।*

उत्पादन सबधी विचार

मनु ने अपने द्वारा प्रतिपादित वर्ण व्यवस्था (समाज व्यवस्था) मे उत्पादन करने का अधिकार केवल वैश्य वर्ण को ही दिया है। पशुओ की रक्षा करना दान देना पढना व्यापार करना व्याज लेना खेती करना आदि सभी कार्य वेश्य के लिए है।[1] वैश्य यज्ञोपवीत सस्कार हाने के बाद विवाह करके खेती आदि करने तथा पशुपालन का कार्य करे। मनु के अनुसार ब्रह्मा ने पशुओं की सृष्टि करके उनके पालने का अधिकार वैश्य को दिया ह। उन्हाने वैश्य को वस्तुओ के मूल्य तथा खेती के गुण–दोप तौल क्रय–विक्रय आदि क बार मे जानकारी के लिए कहा है। मनु के अनुसार मणि मोती

मूगा, कपड़ा कपूर, नमक आदि के मूल्यो मे परिवर्तन का वैश्य को जानकारी होनी चाहिए। बीजो को बोने की विधि, खेती के गुण–दोष, तौल तथा तौलने के उपायो को भी मालूम करना चाहिए। वैश्य को क्रय–विक्रय, वेतन, व्यापार की जाने वाली वस्तुओ के लाभ–हानि तथा पशुओ के बढने के उपाय भी करने चाहिए। वैश्य धर्म से व्यापार, पशुपालन, खेती आदि द्वारा धन बढाने का प्रयत्न करता रहे तथा सब प्राणियों के लिए प्रयत्नपूर्वक अन्न का अधिक दान करता रहे।

मनु ने वर्ण जन्म से न मान कर गुण तथा कर्मानुसार माना है।[14] मनु उत्पादन करने का अधिकार वैश्य वर्ण को ही देते है तथा सभी वर्णों के कार्य निश्चित किये है। जैसे पढना, पढाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना और लेना, ब्राह्मणो के कर्म बताये। प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, पढना, क्षत्रिय के कर्म है। पशुओ की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना व्यापार करना, ब्याज लेना, खेती करना, आदि कार्य वैश्यो के है तथा ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णों की सेवा का कार्य शुद्रो के लिए निश्चित किये है। परन्तु मनु ने आपातकाल मे ब्राह्मण, क्षत्रिय को भी उत्पादन करने का अधिकार दिया है। शुद्र वर्ग भी शिल्पकर्म को अपनी आजीविका का साधन बना सकता है।[15] मनुस्मृति मे जीवन निर्वाह हेतु निम्न 10 कर्म बतलाये है–

(i) विद्या (वेद–वेदागादि का तथा वैद्यक तर्क विष–निवारण आदि की विद्या)

(ii) शिल्प (वस्त्र, तेलादि को सुगन्धित करना)

(iii) भृत्ति (दूतादि बन कर वेतन लेना),

(iv) सेवा (दूसरे वर्णों की नौकरी करना),

(v) गोरक्षण (गो तथा अन्य पशुओ के पालन, सवर्द्धन आदि)

(vi) व्यापार (vii) खेती (viii) धैर्य (थोडे धन से भी सतोष से निर्वाह करना),

(ix) भिक्षा–समूह तथा (x) सूद।

(अ) कृषि–व्रीहि (साठीधान) शालि (अगहनीधान), मूग, तिल उडद, लहसुन, जौ गन्ना आदि की खेती की मनुस्मृति मे चर्चा की गयी है।[16] मनु ने कृषि करने के नियमो कृषि की रक्षा तथा कृषि सम्बधी विवादो के निदान हेतु भी नियम बनाये हैं। खेती को पशुओं द्वारा नष्ट करने पर पशुस्वामी से क्षति को खेत के स्वामी के लिए दिलवाने का उल्लेख किया गया है। एक ग्राम मे ही खेत कुआ तालाब बगीचा, आदि की सीमा का विवाद उपस्थित होने पर राजा उस ग्राम मे रहने वाले लोगो के कहने के अनुसार ही सीमा के चिन्ह निश्चित करे। मनु ने कहा है कि यदि कोई भय दिखाकर बगीचा खेत, घर छीन ले तो राजा उसे 500 पर्णों से दण्डित करे।[17] उत्तम किस्म के बीजो के खेती मे महत्व के बारे मे मनु के विचार हैं कि जो मनुष्य नही उगने वाले बीजो को उगने वाला कह कर बेचे तथा अच्छे बीज मे दूषित बीज मिला कर बेचे तो राजा को उसे दण्डित करना चाहिए। उन्होने खेती के साधनो के रूप मे हल–कुदाल आदि का भी

उल्लेख किया है। मनु ने अच्छे बीजो का महत्व बताते हुए लिखा है कि 'बीज तथा क्षेत्र मे बीज ही श्रेष्ठ कहा जाता है। समय पर जोते तथा सीचे गये खेत मे जैसा बीज बोया जाता है अपने गुणो से युक्त वही बीज उस खेत मे वैसा ही उत्पन्न होता है भूमि मे किसानो के द्वारा एक खेत मे भी समय–समय पर बोये गये (विभिन्न जातीय) बीज अपने–अपने स्वभाव के अनुसार भिन्न–भिन्न रूप वाले उत्पन्न होते है। (भूमि का एक रूप होने पर भी बीजो का एक रूप नही होता अत बीज को ही प्रधान मानना चाहिए)। अत जैसा बीज बोया जाता है वैसा ही उत्पन्न होता है। (मनुस्मृति अध्याय 9 श्लोक 33–40)

मनु ने सिचाई साधनो एव उनकी सुरक्षा का भी उल्लेख किया है उनके अनुसार तडाग के बाध या पुल तोडने वाले को राजा पानी मे डुबा कर या दूसरे प्रकार से वध करे अथवा यदि वह उस तोडे हुए पुल या बाध को ठीक कराकर दे तो उसे एक सहस्त्र पण से दण्डित करे। तडाग या बाध से पानी चुरावे या चोरी कर खेत आदि की सिचाई करे अथवा उसके पानी के मार्ग मे बाध बनाकर रोके तो राजा उस व्यक्ति को 250 पण से दण्डित करे।

(ब) पशुपालन–मनु के अनुसार ग्राम के चारो तरफ 100 धनुष अर्थात 400 हाथ तक तीन बार छडी फेकने से जितनी दूरी तक और नगर के चारो तरफ ग्राम से तिगुनी भूमि पशुओ के घूमने–फिरने के लिए छोडनी चाहिए अर्थात् इस दूरी तक फसल नही बोनी चाहिए। इस दूरी में बोये गये धान्य आदि को यदि कोई पशु नष्ट कर दे तो राजा को पशुपालक को दण्डित नही करना चाहिए। उनके अनुसार जो गो–रक्षक गायो के स्वामी से वेतन के स्थान मे धन नही लेकर दूध लेता हो तो वह दस गायों मे एक अच्छी गाय चुनकर वेतन के बदले उसी का दूध लिया करे। पशु चोरी होने पर रखवाला स्वामी को उसकी चोरी होने की उसी समय सूचना देदे तब वह उस चुराये गये पशु का देनदार नहीं होता है।[1] मनु ने पशुओ के बढाने के उपायो का उल्लेख किया है तथा यह भी कहा है कि पशुओ का पालन न करे तो उन्हे कष्ट भी नही देना चाहिए। मनु के अनुसार ब्रह्मा ने पशुपालन का कार्य वैश्यो को दिया है। मनु ने पशु चिकित्सा का भी उल्लेख किया है उनके अनुसार चिकित्सा करने वाला यदि अज्ञानतावश पशुओ को ठीक चिकित्सा न करे तो उसे प्रथम साहस (250पण) तथा मनुष्यो की ठीक चिकित्सा न करे तो मध्यम साहस (500पण) से राजा दण्डित करे। (मनु स्मृति 9 284)

(स) वन सम्पदा की वृद्धि–मनु के अनसुार राजा को वनसम्पदा की सुरक्षा कर राज्य की सीमा पर बड पीपल सेम्ल साल ताड गूलर आदि पेडो को लगाये।

(द) धन का अर्जन– मनु ने आजीविका के साधनो की चर्चा करते हुए धर्मपूर्वक धन कमाने का मनुस्मृति मे उल्लेख किया है। उन्होने कुटिलता एव शठता से रहित आजीविका को अच्छा माना है। मनु ने शास्त्र–विरूद्ध कर्म के द्वारा तथा आपत्ति में भी धन सग्रह को अनुचित माना है। उन्ही के शब्दो मे कर्म करने क योग्य धन से

अधिक का सग्रह करने की इच्छा न कर सयमी बने, क्योकि सतोष सुख का कारण है और असतोष दुःख का कारण है।[19]

विनिमय और व्यापार

मिलकर व्यापार करने की चर्चा करते हुए मनु क्रय-विक्रय के नियमो का निर्धारण भी करते है। मनु के अनुसार अधिक मूल्यवाली वस्तु मे थोडे मूल्य वाली वस्तु को मिलाकर साधारण वस्तु को अत्युत्तम बतलाकर तौल मे कम या अधकार आदि के कारण जिसका वास्तविक रूप मालूम नही पडता, ऐसी वस्तुएँ नहीं बेची जानी चाहिए। यदि कोई मनुष्य किसी वस्तु का स्वामी नहीं होता हुआ भी उस वस्तु के स्वामी की आज्ञा लिए बिना ही दूसरे की कोई वस्तु बेच दे। और इस प्रकार चोर होता हुआ भी वह अपने को चोर नहीं माने तो राजा उसके साक्षी को प्रमाणित नही माने।[20] मनु के मत मे यदि कोई वस्तु खरीद कर या बेच कर जिनका पश्चाताप होने लगे तो वह दस दिन के भीतर (यदि सामान खरीदा हो तो) वापस कर दे तथा (यदि बेचा हो तो) वापस ले ले। उन्होंने तिल, पत्थर नमक, पशु, दास-दासी, विष, मास तेल, घी, मदिरा आदि का ब्राह्मणो व क्षत्रियो के लिए व्यापार वर्जित किया है। मनु ने स्थल तथा जल मार्ग से व्यापार का भी उल्लेख किया है, उनके अनुसार जल एव स्थल से व्यापार करने वाले व्यक्तियों को अपने लाभ का बीसवा भाग राजा को कर के रूप मे देवे।

(i) उद्योग धंधे—*मनु के अनुसार ब्राह्मण का वेदाध्यापन, क्षत्रिय का रक्षा करना* और वैश्य का पशुपालन करना ये कर्म इनकी जीविकार्थ अपने कर्मों मे कर्म कहे गये हैं। मनु की वर्ण व्यवस्था कर्म, योग्यता एव परिस्थिति अनुसार थी। उनके मत मे यदि ब्राह्मण अपने कर्म से जीवन-निर्वाह नही कर सके तो वह क्षत्रिय का कर्म करता हुआ जीवन-निर्वाह करे। यदि ब्राह्मण कर्म तथा क्षत्रिय कर्म से जीवन निर्वाह नहीं हो तो ब्राह्मण वैश्य कर्म-खेती, गो पालन और व्यापार से जीविका करे। उन्होने लोहार, बढई, चित्रकारी, कृषि, पशुपालन, मजदूरी, ब्याज, सेवा कार्यो आदि का विवेचन भी अपनी स्मृति मे किया है।[21]

मनु राजा से सम्बद्ध बिक्री करने योग्य सामान (हाथी, घोडा, गाडी आदि) अकाल के समय अन्न, पशु वध के लिए गाय, भैंस, बैल आदि तथा अधिक लाभ की आशा से दूसरे देश मे ले जाने वाले व्यापारी को दण्ड देने हेतु कहा है।

मनु मिलकर काम करने वाले कारीगरो आदि को उनके उत्पादन मे से विज्ञान, व्यापार, कला आदि की कुशलता को ध्यान मे रखते हुए, हिस्से के बटवारे की सलाह देते हैं। मनु ने बडे यत्रो के प्रयोग को हानिकारक माना है जो निम्न श्लोक से स्पष्ट होता है।

'सर्वाकरेष्वधीकारो महायत्र प्रवर्तनम्।
हिंसौषधीना स्त्र्याजीवो ऽभिचारो मूलकर्म च।। (11 63)

मनु ने देश मे बड़े–बड़े यत्रो का प्रयोग निषिद्ध माना है।

(ii) मुद्रा—मनुस्मृति मे लोगो के व्यवहार के लिए ताबे चादी तथा सोने की सज्ञाओ (मुद्रा माध्यम) की चर्चा आयी है। सूर्य की किरणो के मकान की खिडकियो के अदर से प्रवेश करने पर जो बहुत छोटा रजकण दिखाई पडता है उसे मनु की दृष्टि मे प्रमाणो के बीच मे प्रथम 'त्रसरेणु' कहते है। आठ त्रसरेणु का एक 'लिक्षा' तीन लिक्षाओं का एक राजसर्षप तीन राजसर्षपो का एक 'गौर सर्षप' होता है। छ गौर सर्षपों का एक मध्ययव तीन मध्ययवो का एक कृष्णल (रत्ती) पाच कृष्णलो (रत्तियों) का एक मासा (मासा अर्थात एक आना भर) सोलह मासो (मासाओ = 16 आने) का एक सुवर्ण अर्थात एक रुपया भर = 80 रत्ती भर होता है। चार सुवर्णो (रूपय भर) का एक पल (छटाक) दस पलो का एक धरण तथा दो कृष्णल (रत्तियों) को काटे (तराजू) पर रखने पर उनके बराबर एक 'रौप्यमापक' माना गया है। सोलह रोप्यमापको का एक 'रौप्यधरण' तथा 'राजत' अर्थात चादी का 'पुराण' ओर ताबे के 'कर्ष (पैसे) को 'कर्ष' तथा 'पण' कहते हैं। दस रौप्य (चादी का) धरणो का एक राजत (चादी का) 'शतमान' जानना चाहिए और प्रमाण से चार सुवर्णो का एक 'निष्क' (अशर्फी) जानना चाहिए। ढाई सौ पणो का प्रथम (पहला) साहस कहा गया हे। पाच सौ पणो का 'मध्यम साहस' तथा एक सहस्र पणो का एक 'उत्तम साहस' होता हे।

(iii) तौल और बाट—मनु के अनुसार राजा को पाच–पाच या पन्द्रह–प्रन्द्रह दिनो बाद मुख्य व्यापारियो के सामने वस्तुओ के मुल्य का निर्धारण करते रहना चाहिए। मनु राजा को यह भी निर्देश देत हे कि राजा तुलामान प्रतीमान तथा तराजू को अच्छी तरह जाच कर परीक्षा करे तथा प्रति छ मास पर उनकी जाच कराता रहे। मनुस्मृति मे छोटे तौल के लिए छोटे बाटो तथा बडे तौल के लिए बडे बाटो के नाम और उनके माप का वर्णन किया गया है। मनु ने अलग–अलग वस्तुओ को कम तौलने पर अलग–अलग दण्डा का वर्णन किया है।[22]

वितरण सम्बन्धी विचार

अर्थव्यवस्था मे वेश्य द्वारा जो उत्पान होता है उसका वितरण राजा की व्यवस्था से आवश्यकतानुसार करने का मनुस्मृति मे वर्णन किया है। उत्पादन के वितरण मे राज्य का भाग परिश्रम करने वालो का हिस्सा पूँजी का ब्याज ओर लाभ की एक निश्चित मात्र' निर्धारित की गयी हे जो निम्न प्रकार से हे।

(1) **लगान**—मनुस्मृति मे भूमि पर राजा का स्वामित्व माना गया है। अत लगान लेने का अधिकारी भी राजा अथवा राज्य ही है।

(2) **मजदूरी**—मनुस्मृति मे श्रमिको कर्मचारियो आदि की एक निश्चित वेतन राशि निर्धारित हे। मनुस्मृति म राजा को निर्देश दिए गये हे कि राजकार्य मे नियुक्त दास–दासियों के लिए कार्य के अनुसार प्रतिदिन का वेतन एव स्थान निश्चित करे। राजा

साधारण कार्य करने (पानी भरना, झाडू लगाना आदि) कार्य करने वाले व्यक्ति को एक पण (एक पैसा), छ मास मे एक जोडा वस्त्र, प्रतिमास एक द्रोण (4 आढक = 2 सेर), धान्य और उत्तम दास दासी के लिए प्रतिदिन 6 पण (पैसा) वेतन दे।[23] मनु ने वेतन के नियमो का भी निर्धारण किया जो निम्न प्रकार से है–

(i) वेतन पाने वाला जो कर्मचारी स्वस्थ रहते हुए भी कहने के अनुसार कार्य नहीं करे तो राजा उसे आठ कृष्णल (रत्ती) सुवर्ण आदि से दण्डित करे और उनका वेतन नहीं दिलवाये।

(ii) वेतन पाने वाला जो कर्मचारी रोगी रहता हुआ काम नही करे तथा पुन स्वस्थ होकर कहने के अनुसार काम करने लगे तो वह बहुत समय के बाद भी आरम से वेतन पाता है।

(iii) जो कर्मचारी कहे हुए काम को स्वय रोगी होकर दूसरे से नही करावे तथा स्वस्थ होकर स्वय भी नही करे तो वह कुछ किये गये काम का भी वेतन नही पायेगा।

(iv) मनु ने खाली यान पर उतराई का एक पण, बोझा उतराई का आधा पण, पशु तथा स्त्री उतराई का चोथाई पण एव बोझ रहित पुरूष की उतराई का अष्ट मास निर्धारित किया है।

(v) जलमार्ग से दूर तक जाने मे नदी के वेग–प्रवाह की अनुकूलता एव प्रतिकूलता तथा समय आदि के अनुसार नोका का भाडा निश्चित करना चाहिए।

(vi) दो मास से अधिक की गर्भवती, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ सन्यासी और ब्राह्मण से पार उतराई न ली जाय। नाव खेने वाले की भूल से यदि यात्रियों का कोई सामान नष्ट हो जाये तो नाविक गण अपने पास से थोडा–थोडा देकर क्षतिपूर्ति करे।

मनु ने गोरक्षक के वेतन के बारे मे कहा है कि जो गोरक्षक गायो के स्वामी से वेतन के स्थान मे धन नही लेकर दूध ले तो वह दस गायो मे से एक अच्छी गाय को चुनकर वेतन के बदले उसका दूध ले सकता है।

(3) ब्याज–मनुस्मृति मे ब्याज विषयक विचार बहुत क्रातिकारी है। मनु के शब्दो मे 'ब्याज पर ऋण देने महाजन वशिष्द मुनि द्वारा प्रतिपादित धनवर्द्धक सूद ले, उसे ऋण द्रव्य का 1/80 भाग अर्थात सवा रूपया प्रतिशत सूद लेना चाहिए। यदि ऋणदाता धर्म का स्मरण करता हुआ दो प्रतिशत अर्थात दो रुपया सैकडा प्रतिमास ब्याज ले तो वह पाप का भागी नही होता। 'मनु ने वर्णों के अनुसार भी ब्याज दर का निर्धारण किया है। उनके अनुसार 'ब्राह्मण से दो रूपया सेकडा तथा शुद्र से पाच रूपया सैकडा ब्याज लेना चाहिए। मनु ने ऋण एव ब्याज के सम्बन्ध मे निम्न नियम निश्चित किए हे।[24]

(1) न्यायलय मे ऋण लेने वाले द्वारा ऋण लेना स्वीकार कर लेने पर ऋण द्रव्य का 5 प्रतिशत ओर असत्यता से ऋण लेना स्वीकार नही करने पर उसे 10 प्रतिशत दण्डित करना चाहिए।

(ii) भूमि तथा गो आदि गिरवी रखकर ऋण लेने पर उनका उपभोग करता हुआ ऋणदाता ऋणी से सूद नही लेता तथा अधिक समय बीत जाने पर (मूल धनराशि से दुगना हो जाने पर) भी ऋणदाता रहन रखी हुई सम्पत्ति को न तो दूसरे को देने का अधिकारी है और न ही बेचने का।

(iii) धरोहर मे रखे आभूषण आदि का उपभोग ऋणदाता न करे यदि वह उपभोग करता है तो उसे ब्याज नही लेना चाहिए। धरोहर की वस्तु खराब हो जाय तो उसके स्वामी को उचित मूल्य देकर सतुष्ट करे अन्यथा वह चोर माना जायेगा।

(iv) गिरवी और उधार की वस्तु बहुत समय व्यतीत होने पर भी छुड़ाने वाला जब मागे तभी लेने का अधिकारी होता है। अत नियत समय बीत जाने पर भी उन वस्तुओ को देने वाला जब मागे तभी वे वस्तुएँ वापस कर देनी चाहिए।

(v) मनु स्वामित्व के अधिकार को मान्यता देते है उनके अनुसार यदि वस्तु का स्वामी अपनी वस्तु का उपभोग किसी अन्य द्वारा दस वर्ष से किया जाता देखे और लेने का प्रयत्न न करे तो फिर उस वस्तु का स्वत्व नही रहता। 16 वर्ष से अधिक आयु के वयस्क पुरुष के समक्ष धन का उपभोग अन्य पुरुष बेरोकटोक करे तो भोगने वाला ही उसका अधिकारी होता है स्वामी नही।

(vi) धरोहर बालक का धन दासी राजस्व और श्रोत्रिय का धन अन्य भोगे तो भी धन का अधिकार नष्ट नही होता।

(vii) बधक रखे गये वस्त्र आभूषण आदि वस्तुओ का भोग जो व्यवहार शून्य स्वामी की आज्ञा को नही पाकर करता हो उसे उन वस्तुओ के भोग के बदले मे आधा सूद लेना चाहिए।

(viii) एक बार लिए ऋण पर ब्याज की वृद्धि मूलधन से दुगनी नहीं होनी चाहिए। उन्होने अधिकतम ब्याज की दर पाच प्रतिशत निश्चित की है।

(ix) वर्ष से अधिक बीतने पर ब्याज न ले (अर्थात वर्ष के भीतर ही ब्याज का हिसाब कर ले तथा शारीरिक श्रम के रूप मे या कष्ट देकर बढाया हुआ ब्याज न ले।

(x) ऋण चुकाने मे असमर्थ हो और पुन लिखित देने का इच्छुक हो तो पूर्व का सब ब्याज ऋणदाता को देकर लेख का परिवर्तन करे।

(xi) यदि ऋणी ब्याज भी देने मे असमर्थ हो तो सूद को मूलधन मे जोड कर जो धन राशि हो उतने का कागज (हैण्डनोट आदि) लिख कर दे ऐसा करने पर उस धन (ब्याज सहित मूलधन) का सूद भी ऋणी को देना होगा।

(xii) जो व्यक्ति ऋण लेने मे ऋणी का जमानतदार रहे वह यदि समय पर उस ऋणी को उपस्थित नही करे तो अपनी सम्पत्ति मे से उस ऋण को चुकता करे। परतु जमानतदार की सतान 'उसके मरने की स्थिति मे उस ऋण को चुकता करने के लिए बाध्य नही है।

(xiii) यदि पिता यह कर कर जमानतदार बना हो कि ऋणी के ऋण चुकता नहीं करने पर मै ऋण चुकता करूँगा तो ऐसी अवस्था मे ऋणी के द्वारा ऋणदाता का ऋण नहीं देने पर पिता के मरने पर भी वह ऋण उस जमानतदार के पुत्र को देना पडेगा।

(xiv) पागल, रोगी, बालक (16वर्ष से कम) नशायुक्त और वृद्ध आदि को इनके पिता, भाई आदि सम्बन्धियो की राय के बिना दिया गया ऋण शास्त्र मर्यादा के प्रतिकूल होता है।

(xv) छल या कपट से बधक रखी गयी या बेची गयी सम्पत्ति को राजा अमान्य या नही किये के बराबर कर सकता है।

(xvi) सम्मिलित कुटुम्ब के काम के निमित्त ऋण लेने वाले की मृत्यु हो जाय तो भाई बटे हुए अपने अपने धन से ऋण चुकावे।

(xvii) घर के मालिक के देश या विदेश मे रहने पर अधीनस्थ सेवक आदि ने भी यदि घर के पालन–पोषण के लिए जो ऋण लिया है उसे स्वामी को चुकाना पडेगा।

(xviii) मनु ने चक्रवृद्धि ब्याज, जबरन लिखाये गये दस्तावेज को अमान्य बतलाया है।

(xix) यदि ऋणदाता अपना ऋण पाने के लिए राजा के यहा प्रार्थना करे तो राजा को चाहिये कि ऋणी से ऋणदाता को धन दिलवाये।

(xx) धर्म, व्यवहार, छल, आचरण तथा जबरन ऋण लेने वाले व्यक्ति से ऋण देने वाले व्यक्ति को उसका धन राजा वापस दिलवाये।

(xxi) यदि ऋण देने वाला ऋणी से बल आदि द्वारा अपना दिया ऋण वापस वसूल करता हो तो राजा मना न करे अर्थात् अपना ऋण वसूल करने देवे।

(xxii) यदि ऋणी ऋण लेने से मुकर जाये तथा लेख या साक्षी द्वारा उसका ऋण लेना प्रमाणित हो जाय तो राजा उस ऋणी से ऋण की राशि के अलावा ऋण राशि का दसवा अश अतिरिक्त धन दण्ड के रूप मे ऋणदाता को दिलवाये।

(xxiii) न्यायाधीश द्वारा ऋण की राशि, ऋण देने के स्थान, तथा बिना लिखवाये धन के बारे मे ऋणदाता से पूछने पर सतोषजनक जवाब नही दे या ऋणदाता घबराकर दूसरी बाते कहने लग जाये तो वह ऋणदाता उक्त ऋणी से धन का अधिकारी नही होता।

(xxiv) न्यायाधीश के कहने पर यदि ऋणदाता साक्षी उपस्थित नही कर सके तो न्यायाधीश को उस ऋणदाता को धन वापस नही दिलवाये।

(xxv) यदि ऋणी धन लेना स्वीकार न करे तो न्यायाधीश के सामने वादी (मुद्दई) कम से कम तीन गवाहो को अपनी बात को प्रमाणित करने के लिए पेश करे।

(xxvi) ऋणी अधिक धन लेकर भी कम लेना बतलाये या ऋणदाता कम धन देकर अधिक धन का दावा करे तो राजा द्वारा नियुक्त न्यायाधीश को उसके दुगने धन से उन्हे दण्डित करे।

(xxvii) गृहस्थ पुत्रवाले पहले से वहाँ निवास करने वाले क्षत्रिय वेश्य शूद्र जाति वाले ये लोग मुद्दई (ऋणदाता) के साक्षी (गवाह) हो सकते है।

(xxviii) ऋण देने व लेने वालो के सम्बधी मित्र नौकर शत्रु (ऋणी का विरोधी) रोग पीडित आदि से साक्षी (गवाह) नही दिलानी चाहिए।

(xxix) राजा कारीगर नट–भाट वैदिक ब्रह्मचारी तथा सन्यासी इनको साक्षी नही बनावे।

(xxx) लोक निन्दित चोर वृद्वा बालक अकेला चाण्डाल आदि को भी गवाह नही बनाना चाहिए।

(xxxi) दु खी पागल भूख–प्यास से पीडित थका कामी क्रोधी ओर चोर को भी साक्षी नही बनाया जाना चाहिए।

(xxxii) स्त्रियो के मुकदमो मे स्त्रियों को द्विजो के व्यवहार (मूकदमो) में द्विजो को शुद्रो के व्यवहार म शूद्रो को साक्षी बनाना चाहिए।

इस प्रकार मनु ने ऋण देने की प्रक्रिया वसूल करने गवाह आदि विचारो का *विस्तृत रूप मे विवेचन किया है जो आज भी हमारी न्यायिक प्रकिया का आधार है।*

लाग सम्बन्धी विचार

किन वस्तुओ का आयात हुआ किनका निर्यात हुआ रखने से लाभ बेचने से वृद्धि रख–रखाव पर व्यय आदि पर ठीक प्रकार विचार करके राजा को सभी वस्तुओ की कीमत निश्चित कर क्रय–विक्रय करवाना चाहिए। पाच–पाच रात्रि या प्रति पखवाडा राजा को व्यापारिक वस्तुओ की कीमते व्यापार मे दक्ष व्यक्तियो से करवानी चाहिए। उस प्रकार मनु व्यापारियो द्वारा अधिक मूल्य लेने के प्रति सजग थे तथा शोषण को रोकने हेतु राजा को निर्देश दिए कि वह वस्तुओ के क्रय–विक्रय पर ध्यान रखे।[25]

राजस्व सम्बन्धी विचार

(अ) राज्य की आय

मनुस्मृति मे कर (टेक्स) शुल्क आर्थिक दण्ड युद्ध मे जीते हुए माल असवाव *आदि को राज्य की आय के साधन बतलाये गये हैं। उन्होने कर देने के निषिद्ध व्यक्ति* तथा अधिक एव अनुचित कर निषेध की भी चर्चा की है।

कर सम्बन्धी विचार

कर व्यवस्था के सम्बन्ध मे मनुस्मृति मे निश्चित प्रणाली एव नियमो का प्रतिपादन किया गया है। मनु ने राजा को परामर्श दिया है कि वह अपनी प्रजा से न्यायपपूर्वक करो की प्राप्ति करे। वे कर व्यवस्था के सम्बन्ध मे शासक की निरकुशता को प्रतिबन्धित करते है।

करारोपण के सकारात्मक नियम

(1) राजा खरीद–विक्री मार्ग भोजन मार्ग आदि मे चोर आदि से रक्षा का व्यय तथा लाभ को देखकर व्यापारी से कर लेवे।

(2) जिस प्रकार जोक, बछडा और भ्रमर थोडे–थोडे अपने–अपने खाद्य (क्रमश रक्त, दूध और मधु) को ग्रहण करता है, उसी प्रकार राजा को प्रजा से थोडा–थोडा वार्षिक कर ग्रहण करना चाहिए।

(3) राजा को पशु तथा सुवर्ण का कर (मूलधन से अधिक) का पचासवॉ भाग और धान्य का छठा आठवॉं या बारहवॉं भाग (भूमि की श्रेष्ठता अर्थात् उपजाऊपन एव परिश्रम आदि का विचार कर) ग्रहण करना चाहिए।

(4) वृक्ष, मास शहद, घी गन्ध, औषधि रस (नमक) फूल, मूल फल, पत्ता, घास, चमडा बास मिट्टी के बर्तन और पत्थर से बनी वस्तुओ का छठा भाग कर के रूप मे ग्रहण करे।

(5) राजा अपने विश्वासपात्रो से वार्षिक कर वसूल करावे और लोगो से कर लेने मे न्याययुक्त बर्ताव करे ओर मनुष्यो मे राजा पिता के समान बर्ताव करे।[27]

(6) राजा प्रजा के धन का छठा या बारहवॉं हिस्सा कर के रूप मे लेवे परतु आपत्तिकाल मे यदि उतना कर लेने से राज्य कार्य चलना असभव हो तो प्रजा के धान्य का चौथा भाग ले सकता है।[28]

(7) राजा को आपत्तिकाल में वैश्य के धन्य मे से आठवा भाग (विशेष आपत्ति काल मे चोथा भाग) तथा सोने–चादी आदि में से बीसवा भाग (आपत्तिकाल मे 50 वॉं भाग) कर लेना चाहिए।

(8) बढई, शूद्र एव अन्य कारीगरो से कोई कर नही लेना चाहिए, क्योकि वे तो काम (बेगार) के द्वारा राजा का उपकार करते है।[29]

(9) राजा आयात–निर्यात की दूरी स्थान, कर्मचारियो या अन्य कुली आदि तथा कीडे आदि के कारण कितना माल घटेगा, इत्यादि सभी बातो को ध्यान मे रखकर बाजार में बेचने योग्य सब सौदो (अन्न,वस्त्र, शस्त्र, काष्ठ आदि) का मूल्य निश्चित कर क्रय–विक्रय करावे। राजा खरीद बिक्री, मार्ग भोजन मार्ग में चोर आदि से रक्षा पर व्यय ओर लाभ को देखकर ही व्यापारी से कर लवे।

करारोपण के सम्बनघ में निषेधात्मक नियम

मनु ने राज की कर ग्रहण शक्ति को अनेक निषेधात्मक नियमों द्वारा नियत्रित किया हे जो निम्नलिखित है–

(i) राजा द्वारा आपत्तिकाल मे भी वेदपाठी ब्राह्मणो से कर नही लेना चाहिए। क्योंकि राजा द्वारा सुरक्षित वेदपाठी ब्राह्मण जिस धर्म का करता है उससे राजा की आयु, धन और राज्य मे वृद्धि होती है।

(ii) देश मे सामान्यतम वस्तुओ जैसे शाक, पत्ता आदि के व्यवहार अर्थात उनकी खरीद बिक्री से जीवन–निर्वाह करने वाले व्यक्तियों पर वार्षिक कर की मात्रा बहुत ही कम होनी चाहिए।

(iii) राज्य के बढई लौहार आदि अति निर्धन व्यक्तियो पर राज्य द्वारा किसी प्रकार का कर–भार नही डालना चाहिए। कर के स्थान पर राजा उन व्यक्तियो से प्रतिमाह एक दिन कार्य करवाने के रूप मे ही कर वसूली कर लेना चाहिए।[10]

(iv) राजा को अधिक लालच मे प्रजा पर किसी भी परिस्थिति मे कर वा अधिक भार नही डालना चाहिए।

इस प्रकार करारोपण के सम्बन्ध मे मनु ने निश्चित एव स्पष्ट नियमो का पतिपादन किया है तथा राजा की निरकुश शक्ति को भी प्रतिबधित किया है। अतिरिक्त कर भार तथा निर्धन व्यक्तियो से कर वसूली को भी मनु ने उचित नही माना है। उनकी कर प्रणाली मे प्रजा के कल्याण की धारणा शामिल थी। मनु के अनुसार कर निर्धारण मे उद्देश्य की एकाग्रता आवश्यक है तथा कर का सग्रह वार्षिक होना चाहिए ताकि इससे वसूलने का बेकार खर्च नही होगा।

शुल्क के विषय मे दक्ष एव विक्रय योग्य वस्तुओ का मूल्य जानने वाले पुरुष जिस वस्तु का जो मूल्य निश्चित करे उसके लाभ का बीसवा भाग राजा को मिले। राजा के क्रय योग्य विशेष पात्र वस्त्र वाहनादि तथा जिन वस्तुओ का निर्यात राजा ने रोक दिया हो उन वस्तुओ को जो लोभवश देशान्तर मे ले जाये उस व्यापारी की सम्पूर्ण सम्पत्ति को राजा जब्त कर ले।

मनु के अनुसार शुल्क (चुगी–कस्टम) से बचने के लिए चुगी कर का रास्ता छोडकर व्यापारी दूसरे रास्ते से माल ले जाये या असमय (रात्रि आदि मे गुप्त रूप से) मे क्रय–विक्रय करे अथवा कर बचाने के उद्देश्य से वस्तु का परिमाण कम बतावे तो उसने जितना कर बचाया हो राजा उसका आठ गुना दण्ड दे।

मनु ने आर्थिक दण्ड को भी राज्य आय का साधन माना है परन्तु उन्होने समाज मे नैतिकता स्थापित करने या बुरे कार्यों को रोकने के लिए ही आर्थिक दण्ड का प्रावधान किया है। स्थायी आय के रूप मे नही। मनु ने आर्थिक दण्ड के रूप मे निम्न विचार प्रकट किये है–

(i) लोभ से असत्य गवाही देने पर 1000 पण मोह से असत्य गवाही देने पर प्रथम साहस भय से असत्य गवाही देन पर दो मध्यम साहस मित्रता या प्रेम से असत्य गवाही देने पर चौगुना अर्थात चार प्रथम साहस काम से असत्य गवाही देने पर दस गुना प्रथम साहस क्रोध से असत्य गवाही देने पर तिगुना मध्यम साहस अज्ञान से असत्य गवाही देने पर दो सौ पण और असावधानी से असत्य गवाही देने पर सौ पण का दण्ड (जुर्माना) न्यायाधीश करे।[11]

(ii) राजा या न्यायाधीश बार–बार किये गये अपराध देश काल अपराधी की शारीरिक एव आर्थिक शक्ति तथा अपराध की प्रकृति के अनुसार व्यक्ति को दण्डित करे।

(iii) यदि राजा अदण्डनीय व्यक्ति को दण्डित करे या दण्डनीय व्यक्ति को छोड दे तो वह राजा बडा अपयश पाता है और नरक को भी जाता है।

(iv) राजा गुणियो को प्रथम बार अपराध करने पर वाग्दण्ड, उसके बाद दूसरी बार अपराध करने पर घिग्दण्ड तीसरी बार आर्थिक दण्ड (जुर्माना) और उसके बाद वधदण्ड (अगच्छेद या प्राणदण्ड) से दण्डित करे। वेतन पाने वाला कर्मचारी स्वस्थ रहता हुआ भी करने के अनुसार कार्य नही करे तो राजा उसे आठ कृष्णल (रत्त) सुवर्ण से दण्डित करे तथा उसको वेतन नही देवे।

(v) मनु के अनुसार चोरी करने पर शुद्र को आठ गुना, वैश्य को सोलह गुणा, क्षत्रिय को बत्तीस गुना, ब्राह्मण को 64 या 100 या 128 गुना तक दोष होता है। अत अपराध के अनुसार शुद्र, वैश्य, क्षत्रिय व ब्राह्मण उत्तरोत्तर अधिक दण्डनीय होते हैं।

(vi) ग्रामवासी देशवासी या व्यापारी आदि के समुदाय (कम्पनी आदि) का जो व्यक्ति सत्यादि शपथपूर्वक किये गये समय ('यह काम मैं इतने दिनों मे पूरा करूँगा' इत्यादि रूप मे शर्त–ठेका) को लोम आदि से भग करे तो राजा शर्त तोडने वाले पर चार 'सुवर्ण' (एक सुवर्ण अर्थात एक रूपया भर =80 रत्ती भर), छ निष्क (अशर्फी) या शतमान अर्थात 32 रत्ती चादी का दण्ड (जुर्माना) दिलावे।

(vii) किसी वस्तु को खरीद या बेच कर पछतावे तो वह वस्तु दस दिन में लौटाई जा सकती है। किन्तु दस दिन के बाद वस्तु नहीं लौटाई जा सकती है। यदि इस स्थिति के पश्चात् क्रेता या विक्रेता कोई बल प्रयोग करे तो राजा उस पर 400 पण का दण्ड करे।

(viii) पशुपालक साथ रहते हुए भी यदि मेडयुक्त खेत मे घुस कर पशु धान को नष्ट करे तो पशुपालक पर 100 पण का दण्ड करे।

(ix) किसान के दोष से उसी के पशु द्वारा खेत चरे जाने के कारण अथवा असमय मे बोने के कारण जितने राज देय (राजा को कर रूप मे देने योग्य अन्न) की हानि हो, उसका दस गुना दण्ड उस किसान को होता है। यदि किसान की बिना जानकारी में नौकरो के दोष से उक्त प्रकार की हानि हो तो उस हानि का पांच गुना दण्ड उस किसान से राजा को लेना चाहिए।[32]

इस प्रकार मनुस्मृति मे दण्ड धर्म सम्मत, शास्त्रानुकूल, एव अपराध की मात्रा के अनुरूप प्रयोग आवश्यक माना गया है। मनु ने दण्ड के महत्व को निम्न शब्दों मे व्यक्त किया है, "दण्ड ही समस्त प्रजा पर शासन करता है, जब प्रजा सोती है, तो दण्ड जागता है, चोर दण्ड के भय से चोरी नही करते। धार्मिक कार्यो का सम्पादन भी दण्ड के भय से ही किया जाता है, अत दण्ड को धर्म माना जाता है।"

राजा को युद्ध मे जीते हुए माल असबाब से भी आय प्राप्त होती थी। मनु के अनुसार रथ, घोडा, हाथी, छत्र, धन, धान्य, पशु, स्त्रियाँ, गुड, नमक, सोना चादी, पीतल, तांबा आदि को जो योद्धा जीत कर लाता है उसे राज को देवे और राजा विजयी योद्धाओं के लिए सम्मिलित रूप मे जीत कर प्राप्त किये द्रव्यो में से प्रत्येक को पुरूषार्थ के अनुसा विभाग कर देवे।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि कर शुल्क दण्ड एव युद्ध मे जीते हुए माल से राजा को आय प्राप्त होती थी। मनु की राज्य आय के सदर्भ मे यह कथन उल्लेखनीय है कि राजा अप्राप्त (नही मिले हुए भूमि तथा सुवर्ण आदि) को पाने की इच्छा करे प्राप्त (भूम्यादि) की यत्नपूर्वक रक्षा करे रक्षा किये गये को बढावे और बढायें हुए (द्रव्य भूमि आदि) को सत्पात्रो मे दान करे

मनु केवल करो के स्रोत नियम आदि की ही व्याख्या नही करते वरन् उन्होने अधिक एव अनुचित करो के निषेध की भी चर्चा की है। मनु के अनुसार निर्धन राजा भी वेदपाठी ब्राह्मण (श्रोत्रिय) से कर न ले। अधे बहरों पगुओ सत्तर वर्ष से अधिक वृद्धो से किसी भी प्रकार का राजा कर (टैक्स) नही लेवे।[33] मनु के मत मे जो राजा मोह वश अपने राज्य की देखरेख न करके धन ग्रहण करता है। (प्रजा की रक्षा न करके भी अन्यायपूर्वक उनसे अनेक प्रकार के कर लेता है)। वह शीघ्र ही राज्य से भ्रष्ट हो जाता है। राजा को अपने राज्य मे अल्प मूल्य के व्यापार से वृत्ति चलाने वालो से स्वल्प कर ले। शिल्पी श्रमिको आदि से कर के रुप मे एक दिन काम करवाये।

(ब) राज्य का व्यय

मनुस्मृति मे मुख्य रूप से राज्य के तीन प्रकार के व्ययो का वर्णन मिलता है–(1) राज्य का प्रशासकीय व्यय (2) राज्य का सुरक्षा व्यय तथा (3) प्रजा की भलाई पर व्यय। राजा द्वारा राजकार्य मे नियुक्त दास–दासियो के लिए कार्य के अनुसार प्रतिदिन का वेतन एव स्थान निश्चित किया जाता था। रथ घोडे नाव हाथियो तलवार धनुष भाला–बर्छा आदि को राजा खरीदने तथा राज्य की रक्षा के लिए सैनिको पर व्यय का मनुस्मृति मे उल्लेख है। मनु के अनुसार आय व्यय करने मे कुशल गणितज्ञ धर्मयुक्त अर्थ का विचार करने वाले व्यक्तियो को दूत अथवा राजदूत नियुक्त किए जाने चाहिए। चोर–डाकुओ से प्रजा की रक्षा करने पर व्यय किया जाता था। विधवा रोगी स्त्रियों की सम्पत्ति की रक्षा तथा उनके लिए भोजन वस्त्र आदि की व्यवस्था राज्य द्वारा किए जाने का उल्लेख मनुस्मृति मे है।[34] मनु के अनुसार राजा को यज्ञ करने के इच्छुक पथिक गुरु–माता–पिता के लिए भोजन वस्त्र देने के इच्छुक पढने के लिए भोजन वस्त्र का इच्छुक रोगी आदि को गो सोना अन्न वस्त्र आदि दान देना चाहिए। राजा को वेदज्ञाता ब्राह्मणो के लिए यज्ञविधानार्थ मोती माणिक्य आदि सब प्रकार के रत्न और दक्षिणा के लिए धन देना चाहिए। मत्रियो एव राजदूतो पर व्यय का भी मनुस्मृति मे उल्लेख है।

इस प्रकार मनु स्मृति मे राजा द्वारा राज्य की सुरक्षा पर प्रजा की भलाई एव राज्य के प्रशासन पर होने वाले व्यय का वर्णन किया गया है।

उत्तराधिकार एव सम्पत्ति के वितरण सम्बन्धी विचार

मनु उत्तराधिकार को जन्म से स्वीकार करते हैं इस सम्बन्ध मे उनके विचार इस प्रकार से हैं–

(1) माता–पिता के मरने पर सब भाई एकत्रित होकर पैत्रक सम्पत्ति को बराबर

बाट ले, क्योकि वे माता–पिता के जीवित रहते उनकी सम्पत्ति को लेने मे असमर्थ रहते हैं।

(2) अथवा बड़ा भाई ही पिता के सब धन को प्राप्त करे और अन्य छोटे भाई पिता के समान उस बडे भाई से भोजन वस्त्र आदि पाते हुए जीवन यापन करे या उसी के साथ मे सम्मिलित होकर रहे। परतु उन्होने यह भी कहा है कि ऐसा तभी सभव है जब ज्येष्ठ भाई धार्मिक एव भातृवत्सल हो।

(3) मनुष्य ज्येष्ठ पुत्र के उत्पत्ति मात्र से (उसके सस्कार युक्त नहीं होने पर भी) पुत्रवान हो जाता है और पितृ ऋण से छूट जाता है अत ज्येष्ठ पुत्र पिता की सब सम्पत्ति पाने योग्य है।

(4) ज्येष्ठ भाई छोटे भाईयों का पालन पिता के समान करे तथा छोटे भाई ज्येष्ठ भाई में धर्म के लिए पुत्र के समान बर्ताव करे अर्थात ज्येष्ठ भाई को पिता तुल्य माने।

(5) पिता के सम्पूर्ण धन में से ज्येष्ठ भाई को बीसवाँ भाग तथा श्रेष्ठ पदार्थ (चाहे वह एक ही हो), कनिष्ठ (सबसे छोटे) भाई को अस्सीवा भाग और मध्यम भाई को चालीसवा भाग, तथा शेष बचे हुए भाग को परस्पर समान भाग मे बाट ले।

(6) यदि तीन से अधिक भाई हो तो सबसे बडे और सबसे छोटे भाई को हिस्सा क्रमश बीसवां तथा अस्सीवा होगा तथा अन्य मध्यम भाइयो का बचे हुए धन का प्रत्येक को चालीसवा भाग प्राप्त होगा।

(7) सम्पूर्ण सम्पत्ति में से श्रेष्ठ वस्तु ज्येष्ठ भाई को मिलती है, यदि एक ही श्रेष्ठ वस्तु हो तो वह भी उसे ही मिलती है, तथा दस–दस गाय आदि पशुओ मे से एक–एक श्रेष्ठ भाई को मिलती है।

(8) पितृ धन राशि में से ज्येष्ठ भाई दो भाग, उससे छोटा भाई डेढ भाग तथा उससे छोटा (या तीन भाई से अधिक होने पर छोटा) भाई एक भाग ले, यह व्यवस्थित धर्म है।

(9) अपने–अपने भाग का चतुर्थांश भाग अविवाहित बहिनों को भाई देवे।

(10) भेड, बकरी, घोड़ा आदि के विषम होने (भाइयों मे विभाजित नहीं होने की स्थिति में) पर वह बडे भाई का ही भाग होता है, उसे समान बाटने के लिए बेचकर या उसके बराबर धन को सब भाइयों में विभाजित नहीं किया जा सकता।

(11) पुत्रहीन पिता की सम्पत्ति अपने जामाता (अपनी पुत्री से उत्पन्न पुत्र) को प्राप्त होगी, दूसरे को नहीं।

(12) माता का धन उसकी अविवाहित पुत्री का ही भाग होता है तथा पुत्रहीन नाना के सब धन को दौहित्र (धेवता, नाती) को ही प्राप्त होता है।

(13) मनु ने पौत्र (पुत्र का पुत्र अर्थात पौता) तथा दौहित्र (धेवता, नाती अर्थात पुत्रिका) में कोई भेद नहीं किया है। पुत्रिका (पुत्री के पुत्र को कन्यादान के समय पारलौकिक क्रिया करने हेतु कहने पर) करने के बाद यदि किसी को पुत्र उत्पन्न हो जाय तो धेवता तथा पौत्र दोनों को सम्पत्ति में समान भाग मिलेगा।

(14) यदि किसी कारण वश बिना पुत्र उत्पन्न किये ही पुत्रिका (धेवता) मर जाय तो उसके पिता (श्वसुर) के धन को पुत्रिका का पति (जमाई) ही नि सदेह ग्रहण करे।

(15) पिता के धन पाने का अधिकारी सहोदर भाई या पिता नही होते वरन उसकी सतान होती है। पर मुख्य पुत्र तथा स्त्री एव कन्या के न होने पर पुरुष के धन का भागी पिता या भाई होते है।

(16) ब्राह्मणो को छोडकर क्षत्रिय वैश्य तथा शुद्र वर्णो के धन को पुत्र पुत्री या कोई भी उत्तराधिकारी के नही होने पर राजा ग्रहण करे।

(17) माता के मरने पर सब सहोदर भाई या अविवाहित सहोदरी वहने उसके धन को बराबर भाग मे प्राप्त करे।

(18) विवाहकाल मे अग्नि साक्षित्व के समय पिता आदि के द्वारा दिया गया (कन्यादान) पिता के घर से पति के घर लाने हेतु दिया गया (दहेज) प्रेम–सम्बन्धी किसी सुअवसर पर पति आदि के द्वारा दिया गया भाई माता या पिता द्वारा विविध अवसरो पर दिया गया धन स्त्री धन कहलाता हे

(19) विवाह के बाद पति कुल मे या पितृकुल मे प्राप्त हुए स्त्री के धन को पाने का अधिकार उसके पति के जीवित रहने पर भी पुत्रो या पुत्रियो को ही होता है। परतु मनु के अनुसार ब्राह्म देव आर्ष गान्धर्व और प्रजापत्य विवाहो से प्राप्त सतानहीनता स्त्री के उपर्युक्त धन का अधिकारी पति ही होता है।

(20) नपुसक पतित वहरा पागल गूगा लगडा आदि धन के भागीदार नही होते किन्तु वे भोजन वस्त्रादि के अधिकारी होते हे।

(21) पिता के मरने के वाद यदि बडा भाई अपने पुरूषार्थ से धनोपार्जन करे तो उस धन मे पढे–लिखे भाइयो का भाग होता है।

(22) विद्या से मित्र से और अन्य कर्म से जिसको जो धन प्राप्त होता है वह धन उसी का होता है।

(23) पिता के धन को नष्ट करता हुआ यदि कोई पुत्र केवल अपने पुरूषार्थ (व्यापार आदि) से उपार्जित धन मे से किसी के लिए कुछ नही देना चाहे तो वह अपने पुरूषार्थ से उपार्जित धन मे से किसी को भी नही देवे।

(24) भाइयो मे से बडा या छोटा भाई विदेश चला जाये या सन्यासी हो जाए या मर जाये तो उसके भाग का लोप (नाश) नही होता है। वरन उसके भाग में से सब छोटे भाई वहने समान भागीदार होते हैं।

(25) यदि ज्येष्ठ भाई पिता के धन मे से अपने छोटे भाइयो को उचित हिस्सा न दे तो वह राजा द्वारा दण्डनीय होता है।

(26) जुआ खेलने मद्य पीने वैश्यागमन करने वाले भाई पिता के धन के भागीदार नही हो सकते। इस प्रकार मनु ने धन वितरण को नैतिकता से जोडा है।

(27) पिता के जीवित रहते ही उन पुत्रों की इच्छा से उनमे धन का बटवारा करने और इसके बाद पिता के अन्य पुत्र उत्पन्न हो जाय तो पिता के मरने के बाद वह पिता का भाग ही प्राप्त कर सकता है। परन्तु यदि कुछ भाई विभाजित होने पर भी पिता के साथ मिलकर रहने लगे तो बाद मे उत्पन्न पुत्र पिता के मरने पर उसके साथ मिलकर रहने वाले भाइयो के साथ सभी धन मे से समान भाग प्राप्त करता है।

(28) सतानहीन पुत्र के धन को माता लेवे तथा माता मर गयी हो तो पिता की माता (दादी) प्राप्त करे।

(29) मनु के अनुसार वस्त्र, आभूषण, वाहन सार्वजनिक जलस्थान, दासियाँ, मत्री, पुरोहित आदि अविभाज्य होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मनु ने पैत्रक धन के बटवारे या उत्तराधिकार के सदर्भ मे निश्चित एव स्पष्ट नियमो का प्रतिपादन किया है। उत्तराधिकार सम्बन्धी विचारो मे मनु ने नैतिकता को प्रमुख स्थान दिया है। उनके उतराधिकारी सम्बन्धी नियम न्यायसगत एव विवेक सम्मत है।

वर्ण व्यवस्था एवं आश्रम व्यवस्था की आर्थिक उपयोगिता

मनु ने सामाजिक व्यवस्था को चार वर्णों –ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, एव शुद्र मे वर्गीकृत किया है। आयु के अनुसार व्यक्ति के जीवन की चार विभिन्न अवस्थाओ के चार आश्रमो –ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ एव सन्यास के रूप मे विभाजित किया है। मनु ने समाज के निर्माण एव व्यवस्था के निर्वाह के लिए चार वर्णो के द्वारा भिन्न–भिन्न विशेषीकृत कार्यों को सम्पन्न किया जाना आवश्यक माना है। वर्ण व्यवस्था अपने मूल रूप मे योग्यतानुसार कार्यो के विभाजन के एक सस्थागत माध्यम के रूप में प्रतिपादित की गयी।किन्तु कालातर मे इसने जातीयता का रूप धारण कर लिया। यदि हम कर्म के आधार पर मनु की वर्णाश्रम–व्यवस्था को स्वीकार कर ले तो आज जो बेकारी का उग्र रूप हमारे समाने है वह समस्या ही समाप्त हो सकती है। यदि सभी वर्णो एवं आश्रमी अपने–अपने नियत कार्यो में लगे होते हैं तो बेकारी समाप्त हो सकती है। आज बेरोजगारी की समस्या इसलिए बढ रही है कि धन कमाने की अवधि 25 वर्ष से बढा कर 50 वर्ष कर दी गयी है। जिन्हें निशुल्क सेवा के क्षेत्र में होना चाहिए था जिन्हे विद्याध्ययन मे लगा होना चाहिए, वे रोजगार मे डटे हैं। अत योग्य व्यक्ति बेकार है। वर्ण–व्यवस्था सबको योग्य बनाने का मौका देती है और सबको योग्य बनने का अधिकार देती है। मनु की वर्ण व्यवस्था मे चारो वर्णों को एक दूसरे पर निर्भर माना गया है।

मूल्यांकन

प्राचीन भारतीय चितन के प्रणेताओ में मनु का एक महत्वपूर्ण स्थान है। मनुस्मृति वेद के बाद राज्य व्यवस्था विषयक विचारो का पहला ग्रन्थ है। मनुस्मृति मुख्यत राजनीतिक प्रकृति का ही ग्रन्थ नहीं है अपितु इसमे आर्थिक जीवन से जुडे विषयो पर

भी महत्वपूर्ण सिद्धात एव नियम उल्लेखित है। प्राचीन शास्त्रीय ग्रन्थो मे धर्मशास्त्र के अन्तर्गत ही धर्म राजनीति समाज सस्कृति एव अर्थनीति आदि सब कुछ आ जाता है। मनुस्मृति मे भी आर्थिक विचार राज्य–व्यवस्था के साथ साथ ही वर्णित किये गये है। मनु ने कृषि उद्योग पशुपालन व्यापार करारोपण उत्तराधिकार आदि विषयो पर महत्वपूर्ण नियमो एव विचारो का प्रतिपादन किया है। मनु के दर्शन की व्यावहारिक उपयोगिता प्रभावशीलता और महत्व इस बात से स्वय सिद्ध है कि आज भी हिन्दु व्यवस्था के अनेक सदर्भो को मनुस्मृति निर्दिष्ट करती है।

सदर्भ

1 मनुस्मृति अध्याय 1 श्लोक 32–33
2 काणे पी वी धर्मशास्त्र का इतिहास पृष्ठ 43
3 पूना प्रवचन पृष्ठ 67 (आठवा प्रवचन)
4 श्री गैरोला सस्कृति साहित्य का इतिहास पृष्ठ 746
5 काणे पी वी धर्मशास्त्र का इतिहास पृष्ठ 47
6 पूना प्रवचन पृष्ठ 67 (आठवा प्रवचन)
7 कौटिल्य अर्थशास्त्रम् 1 2 1 8
8 मनुस्मृति अध्याय 9 श्लोक 75
9 मनुस्मृति अध्याय 8 श्लोक 326–329
10 मनुस्मृति, अध्याय 5 श्लोक 48–56
11 मनुस्मृति अध्याय 2, श्लोक 57
12 मनुस्मृति अध्याय 4 श्लोक 34
13 मनुस्मृति 1 90 9 326–333
14 मनुस्मृति 1 87–91
15 मनुस्मृति 10 74–117
16 मनुस्मृति 9 39
17 मनुस्मृति 8 262, 264
18 मनुस्मृति 8 231–237
19 मनुस्मृति 4 11–12 15
20 मनुस्मृति 8 197 203 210
21 मनुस्मृति 10 75–84 115–116
22 मनुस्मृति 8 320–321 403
23 मनुस्मृति 7 125–126
24 मनुस्मृति 8 139–170
25 मनुस्मृति 8 401

26 मनुस्मृति, 7 127–138
27 मनुस्मृति, 7 80
28 मनुस्मृति, 10 118–119
29 मनुस्मृति, 10 120
30 मनुस्मृति, 7 80, 126–130
31. मनुस्मृति, 8 118–121
32 मनुस्मृति, 8 215–243, 118–119
33 मनुस्मृति, 7 133, 8.394
34 मनुस्मृति, 7.143–144, 8 27–28, 206–209
35 मनुस्मृति, 9 103–218, 145–147, 192–219

प्रश्न

1 मनु के माप–तौल के बारे मे क्या विचार थे। बताइये
2 आवश्यकता से अधिक धन सग्रह को मनु ने असंतोष का कारण क्यो माना है?
3 मनु के मजदूरी सम्बधी नियमो को स्पष्ट कीजिए।
4 मनु के अनुसार राजकीय आय के स्रोत बताइये। मनु के करारोपण के सम्बन्ध मे निषेधात्मक नियमो का वर्णन कीजिए।
5 मनु के उत्पादन सबधी विचारों को स्पष्ट कीजिए।
6 मनु के लगान, मजदूरी, ब्याज एव लाभ सबधी विचारो का परीक्षण कीजिए।
7 करारोपण के सबध मे मनु के विचारो को स्पष्ट कीजिए।
8 मनु द्वारा प्रस्तावित कर–व्यवस्था का परीक्षण कीजिए।
9 आर्थिक चितन मे मनु के योगदान का मूल्याकन कीजिए।
10 मनु के राजस्व सबधी विचारो को स्पष्ट कीजिए।
11 निम्न पर सक्षिप्त टिप्पणी कीजिए–
(i) मनुस्मृति
(ii) मनु के ब्याज सबधी विचार
(iii) मनु के मुद्रा एव तौल व बाट सबधी विचार।



8

शुक्र
(Shukra)

सक्षिप्त परिचय

भारतीय नीतिशास्त्र के इतिहास में शुक्राचार्य का नाम बहुत सम्मान के साथ लिया जाता है। शुक्राचार्य के पर्याय उशना काव्य भार्गव आदि हैं। शुक्राचार्य के परिचय के नाम पर यह लोक कथा प्रचलित है ब्रह्मा जी के तीसरे मानसिक पुत्र भृगु हुए। भृगु के पुत्र *कवि हुए और कवि के असुर गुरू महर्षि शुक्राचार्य उत्पन्न हुए। यद्यपि ये असुरो के* गुरु थे किन्तु मन से भगवान के अनन्य भक्त थे असुरों के मध्य रहते हुए भी वह सदैव उनको धार्मिक शिक्षा दिया करते थे। आचार्य शुक्र योगविद्या मे पारगत थे। इन्हीं के प्रभाव व ससर्ग से प्रहलाद विरोचन बलि आदि भगवद भक्त बने।' दण्डी के 'दशकुमारचरितम्' राजनीति–शास्त्रकारो के नामो के उल्लेख मे सर्वप्रथम स्थान शुक्राचार्य को दिया गया है। भृगु पुत्र शुक्राचार्य ने एक हजार अध्यायो मे शुक्रनीति का सक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया। *'शुक्रनीतिसार' के अनुसार शुक्रकृत सक्षिप्त नीतिशास्त्र मे मात्र 2200 श्लोक थे जो* शुक्रनीतिसार में आज भी मौजूद हैं लेकिन यह तथ्य असगत जान पडता है कि एक हजार अध्याय के ग्रन्थ मे मात्र 2200 श्लोक ही हो।

शुक्रनीति अपने विषय का एक बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। शुक्रनीति का मूलग्रन्थ उपलब्ध नही है। इस ग्रन्थ का अनेक बार प्रकाशन हुआ। प्रमाणिक सस्करण के रूप मे विद्वान ऑपर्ट (Oppert) के द्वारा मद्रास से प्रकाशित एव जीवानद विद्यासागर के सस्करण को ले सकते हैं। प्राध्यापक विनय कुमार सरकार ने 'सैक्रेड बुक्स ऑफ हिन्दू सीरीज' में इस ग्रन्थ का अग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित किया। सभी ग्रन्थो मे शुक्रनीति चार अध्यायों मे विभक्त है।

शुक्रचार्य के काल का निर्धारण करना कठिन है। यह कहना भी कठिन है कि *महाभारत कौटिल्य के अर्थशास्त्र आदि मे जिस शुक्र का उल्लेख किया गया है ये वही* शुक्रचार्य हैं जिनका ग्रन्थ 'शुक्रनीति–सार' आजकल उपलब्ध है। विषयवस्तु एव विवेचनशैली के आधार पर 'शुक्रनीति सार' कौटिल्य के अर्थशास्त्र के बाद की रचना मालूम होती है। डॉ घोषाल आदि ने इसकी रचना 12 वीं और 16 वीं शताब्दी के मध्य हुई मानी है। तथापि यह उचित प्रतीत होता है कि इसका अधिकाश भाग 11 वीं और 12 वीं शताब्दियों में लिखा

गया और कुछ अश 14 वी शताब्दी तक जुडता चला गया।[2] स्पष्ट है कि उपलब्ध शुक्रनीतिसार ग्रन्थ की रचना एक लम्बे समय तक चलने वाली प्रक्रिया रही है।

शुक्रनीति मे मूल चार अध्याय है। इसमे एक पाचवा अध्याय 'खिलनीति' के रूप में है। शुक्रनीति के अन्तर्गत 'राज्यकृत्याधिकार' के सदर्भ मे नीतिशास्त्र का उपक्रम, प्रशसा, प्रयोजन एव उपयोग के विषय मे बतलाते हुऐ धर्म की प्रशसा, राजा के भेद, कर्म की महत्ता, जातिभेद, कर्मफल और भाग्य, राजा के अग, स्त्री का आकर्षण, मद्य और काम–क्रोध का प्रयोग, राजा की योग्यता, गुण–दोष, राजा के आदेश, पडित, वक्ता तथा दाता, विशैले अन्न की परीक्षा, राजा निर्णय तथा बल–पराक्रम आदि विषयो पर विचार किया गया है। द्वितीय अध्याय मे युवाराजादिलक्षण के अन्तर्गत युवराज, मत्री, पुरोहित, प्रधानसचिव, जज, पडित अमात्य, सेनापति, सैनिक, कोषाध्यक्ष, सेनाध्यक्ष दानाध्यक्ष, सभासद, परीक्षक, कराधिकारी, दानी, पौराणिक, शास्त्रविज्ञ, ज्योर्तिविज्ञ, वैद्य, तात्रिक, जासूस आदि के कर्त्तव्यों की चर्चा की गयी है। इसके अतिरिक्त दानपत्र, शासनपत्र, क्रयपत्र, ऋणलेख, शुद्धिपत्र के बारे मे बताया गया है। शासन चलाने के विषयो, वेतन तथा पेशन सम्बन्धी नियमो की जानकारी दी गयी है। तृतीय अध्याय मे 'नृपराष्ट्रादि के लक्षण' के अन्तर्गत निषिद्वाचरणो और आततायियो के लक्षण, जगत को वश मे करने के उपायो के साथ–साथ यह भी बताया गया है कि व्यवहार कैसे करे, सबसे बडा सुख क्या है, आजीविका कैसी, देश के लिए कौन श्रेष्ठ, गृहस्थी के लिए क्या दु खदायक, कौन मित्र व कौन प्रिय एव माता–पिता, मित्र, स्त्री आदि के लक्षणो का वर्णन किया गया है। चतुर्थ अध्याय 'मिश्र प्रकरण' को शुक्रचार्य ने सात प्रकरणो मे विभाजित किया है। पहला प्रकरण– सुहृदादि निरुपण, दूसरा प्रकरण–कोष निरुपण, तीसरा प्रकरण विद्या–कला, निरुपण, चौथा प्रकरण–लोकधर्म निरुपण, पाचवा प्रकरण–राजधर्म निरुपण, छठा प्रकरण–दुर्ग निरुपण और सातवा प्रकरण– सेना निरुपण है। शुक्रनीति में पाचवां अध्याय 'खिल नीति निरुपण' के अन्तर्गत जीवन में सुपथगामी होने के लिए अन्य उपयोगी नीतियों को सरल ढग से कहा गया है। महर्षि शुक्राचार्य ने इस अध्याय मे अवशिष्ट नीति का सक्षेप मे वर्णन करते हुए राज्य वृक्ष, धूर्त व सज्जन मे अन्तर, धर्म–अधर्म मे भेद, सुखी राजा कौन हो सकता है, आपत्ति पडने पर राजा के क्या कर्तव्य हो सबसे बडा कूटनीतिज्ञ किसे कहे, छल क्या है सेवकों के भेद, कार्य मे प्रवृति तथा उनके दोषो के कारणो को जानने आदि के सम्बन्ध में चर्चा की है।

इस प्रकार शुक्रनीति की विषयवस्तु बहु–आयामी है। प्राचीन भारतीय राजनीति के ग्रन्थो की भाति इसका दृष्टिकोण सैद्धातिक होने के स्थान पर व्यावहारिक अधिक है। अपनी विषयवस्तु के कारण भारतीय ग्रन्थो मे शुक्रनीति का महत्वपूर्ण स्थान है। शुक्रनीतिसार मे तो यहाँ तक कहा गया है कि शुक्रनीति को छोडकर अन्य सब नीतियाँ कुनीतियाँ हैं। दण्डी के 'दशकुमारचरितम्' मे राजनीति–शास्त्रकारो के नामोल्लेख में सर्वप्रथम स्थान शुक्राचार्य को दिया गया है।[3]

शुक्रनीति मे वर्णित आर्थिक विचार

शुक्रनीति मे वर्णित आर्थिक विचारो को मुख्यत निम्न शीर्षको के अन्तर्गत अभिव्यक्त किया जा सकता है–

(1) अर्थशास्त्र की परिभाषा

मानव जीवन की सर्वागीण उन्नति के चार मूलाधार हैं जैसे धर्म अर्थ काम और मोक्ष। मोक्ष ओर धर्म की इच्छा तो केवल मनुष्य को ही होती है किन्तु अर्थ और काम की इच्छा और उसकी पूर्ति के बिना तो मनु, पशु, पक्षी कीट पतग और तृण–पल्लव आदि का भी निर्वाह नही हो सकता। पशु आदि की आर्थिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये किसी शास्त्र की रचना करने की आवश्यकता नही होती किन्तु मनुष्य की आर्थिक शारीरिक आदि आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये जिस शास्त्र की रचना की गई है उस शास्त्र को अर्थशास्त्र के नाम से जाना जाता है।

प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुसार मनुष्य–शरीर को जीवित रखने के लिये सभी साधन अर्थ है और उन साधनो तथा उनकी पूर्ति का जो शास्त्र अध्ययन करे वह अर्थशास्त्र है। राजधर्म को सभी धर्मों का तत्व या सार कहा गया है। राजनीति राजधर्म का ही दूसरा नाम है। प्राचीन भारत मे अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र पर्यायवाची माने जाते थे। अर्थशास्त्र शब्द दण्डनीति या राजनीतिशास्त्र का पर्याय माना जाता रहा है। शुक्रनीति भी अर्थशास्त्र की परिभाषा राजनीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र दोनो अर्थो मे करती है। अर्थशास्त्र एव दण्डनीति शब्द दो दृष्टिकोणो से शासनकाल के लिए प्रयुक्त हुए हैं। जब सभी प्रकार के धन एव सम्पत्ति के उद्गम एव वृत्ति के निरुपण को शास्त्र की सज्ञा दी गयी तो इनके विषय विवेचन को अर्थशास्त्र कहा गया। इसी प्रकार प्रजा–शासन एव अपराध–दण्ड की विशिष्टता दी गयी तो शासनशास्त्र को दण्डनीति के नाम से कहा गया। प्राचीन काल मे धर्म शब्द के अन्तर्गत मानव–जीवन के सम्पूर्ण क्रिया–कलाप आ जाते थे। धर्मशास्त्र के अन्दर ही अर्थशास्त्र कामशास्त्र राजशास्त्र नीतिशास्त्र आचारशास्त्र वर्ण सस्कार आश्रम यज्ञ पूजापाठ योग उपासना आदि सब कुछ आ जाता है। धर्म और अर्थ के मतभेदो पर धर्मशास्त्रकारो ने धर्म पर अधिक बल दिया है। धर्मशास्त्र को स्मृति किन्तु अर्थशास्त्र को उपवेद की सज्ञा से विभूषित किया है। अर्थ और धर्म या अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्र मे पूरी तरह सामजस्य होना चाहिए। अर्थशास्त्र यदि सम्पत्ति की व्याख्या कर उसे अर्जित करने की बात कहता है तो धर्मशास्त्र उस सम्पत्ति का सदुपयोग सिखाता है। अर्थ वह है जो धर्म से ही प्राप्त किया जाए।

शुक्रनीति वास्तव मे राज्य की राजनीतिक अर्थव्यवस्था (Political Economy) से भरी पडी है। एडम स्मिथ तथा रिकार्डो की तरह आचार्य शुक्र ने भी 'राजनीतिक अर्थव्यवस्था' (Political Economy) शब्द का प्रयोग राजा तथा प्रजा की धर्मशास्त्र के अनुसार सचालित की जाने वाली आर्थिक गतिविधियो के लिए किया है।

शुक्र ने अर्थशास्त्र को ज्ञान की 32 शाखाओ मे से एक शाखा के रुप में परिभाषित किया है। आधुनिक अर्थशास्त्र की तरह शुक्र ने भी शास्त्र (ज्ञान) तथा कला (Art) में अन्तर किया है। शुक्र के अनुसार "Arthshastra is that science which describes the actions and administration of kings in accordance with the dicotes of *sruti and smruti as well as means of livehihood in a proper manner.*"

आचार्य शुक्र ने अर्थशास्त्र की परिभाषा करते हुए लिखा है कि "जिसमें श्रुति तथा स्मृति के अविरुद्ध (अनुकूल) राजाओ के लिये आचरण के विषय में उपदेश किया गया हो तथा अच्छे कौशल से धन अर्जन की विधि कही गई हो, उसे 'अर्थशास्त्र' कहते हैं।"

उक्त परिभाषा में दो बातो पर विशेष जोर दिया गया है प्रथम, श्रुति तथा स्मृति के अनुकूल राजाओं द्वारा किये जाने वाले आचरण का उपदेश तथा द्वितीय, अच्छे कौशल से धन अर्जन की विधि।

(i) राजा के आचरण – श्रुति एव स्मृति के अनुकूल राजाओ के कई तरह के आचरण बताये गये हैं। 'नित्य प्रजाओं का पालन तथा दुष्टो का दमन करना' ये दोनों राजाओ के परम धर्म हैं। आधुनिक सदर्भ मे प्रत्येक राज्य को जनता की सभी तरह की आवश्यकताओ की पूर्ति करनी चाहिए। दुष्टो के दमन से तात्पर्य बाहरी आक्रमण से प्रजा की सुरक्षा तथा आन्तरिक अराष्ट्रीय तत्वो का दमन कर शाति व्यवस्था बनाये रखने से है। शुक्र नीति मे राजा के बारे मे कहा गया है कि राजाओं को 7 गुणो से युक्त होना चाहिए अर्थात उसे पिता, माता, गुरु, भ्राता, बुधु, कुबेर, यम आदि के वक्ष्यमाण गुणो से युक्त होना चाहिए। राजा को पिता की तरह अपनी सतान (प्रजा) को निपुण बनाने वाला, माता की तरह अपने सतान (प्रजा) के अपराधों को क्षमा करने वाला गुरु की तरह शिष्य को हित का उपदेश करने वाला तथा सुन्दर विद्या को पढाने वाला भ्राता की तरह पिता के धन मे से अपने भाग को ग्रहण करने वाला अर्थात प्रजा से ग्रहण करने वाला होना चाहिए। जिस तरह से बधु अपने मित्र के शरीर, स्त्री धन तथा गुप्त रहस्य की रक्षा करने वाला मित्र के समान होता है उसी प्रकार राजा को भी प्रजा के लिए होना चाहिए। आवश्यकता पडने पर कुबेर के समान धन देने वाला एव यम के समान अपराधी को यथार्थ दण्ड देने वाला होना चाहिए। इस प्रकार अच्छे राजा मे उपर्युक्त सात गुण होने अति–आवश्यक हैं।"

शुक्रनीति मे राजा को आठ तरह के आचरण करने के लिए निर्देश है।

(1) दुष्टो का निग्रह करना (2) दान देना (3) प्रजा का परिपालन (4) राजसूर्यादि यज्ञ (5) न्यायपूर्वक कोष (खजाना) बढाना (6) राजाओ से कर वसूल करना (7) शत्रुओ का मान मर्दन करना (8) बार–बार राज्य को बढाना। ये आठ प्रकार के राजा के आचरण है।

शुक्रनीति मे आगे कहा गया है कि जिन राजाओ ने सेना नही बढायी राजाओ

को कर देने वाला (अधीन) नही बनाया प्रजाओ का भलीभाति पालन–पोषण नही किया वे बाझ तिल के समान तुच्छ कहलाते हैं।

(ii) धनार्जन – शुक्रनीति मे धर्मानुसार अर्थाजन करने वाले व्यक्ति को श्रेष्ठ बताया गया है। यदि कोई मनुष्य धर्म तथा अर्थ मे समर्थ है अर्थात धर्मानुसार अर्थाजन करने मे निपुण है और देश काल का ज्ञाता अर्थात तदनुसार कार्य करने वाला एव सशय–रहित है तो वही सदा पूज्य होता है। शुक्रनीति म आगे बताया गया है कि मनुष्य अर्थ का दास होता है न कि पुरुष का दास अर्थ होता है। अत अर्थ के लिए सदा प्रयत्न पूर्वक यत्नशील रहना चाहिए। मनुष्यो को अर्थ से ही धर्म काम तथा मोक्ष जैसे सभी पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं। शुक्रनीति मे राजा को धर्मशास्त्र के अनुसार अर्थशास्त्र पर विचार करने को कहा गया है। धनार्जन को आवश्यक बताते हुए शुक्रनीति मे कहा गया है कि जब तक मनुष्य धनयुक्त रहता है तब तक सब लोग उसकी सेवा करते है तथा जब वही धन से रहित होता है तो भले ही गुणवान हो किन्तु उसे स्त्री–पुत्रादिक भी छोड देते है अत ससार मे व्यवहार चलाने के लिए धन ही सारभूत कहा गया है।

सुन्दर विद्या उपार्जन या सुन्दर सेवा शूरता कृषि करके या ब्याज पर रुपया ऋण देकर दुकानदारी या सगीत आदि कला के द्वारा जिस भी प्रकार मनुष्य धनवान बन सके उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए क्योकि धनियों के द्वार पर गुणी लोग नौकर की तरह पडे रहते है। शुक्र ने धन के प्रभाव की चर्चा करते हुए कहा है कि धनवान पुरुषो के दोष भी गुण के समान हो जाते है और निर्धनो के गुण भी दोष तुल्य हो जाते हैं। इससे निर्धन की सभी लोग निदा करते है। इस प्रकार शुक्र ने समृद्धि प्राप्त करने को अच्छा तथा निर्धनता को बुराई माना है।

आचार्य शुक्र ने अर्थशास्त्र को धन अर्जन का शास्त्र कहा है अत यहा यह भी आवश्यक है कि उनके अनुसार धन से क्या तात्पर्य है। आधुनिक अर्थशास्त्र की भाषा मे शुक्र ने अर्थशास्त्र को धन का विज्ञान ही माना है।

इस प्रकार शुक्र के अनुसार *अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसके माध्यम से मनुष्य* को अधिकतम सभव सन्तोष प्राप्त होता है। मनुष्य शरीर को जीवित रखने के लिए सभी साधन अर्थ है और उन साधनो तथा उनकी प्राप्ति का जो शास्त्र अध्ययन करे वह अर्थशास्त्र है। शुक्रनीति की परिभाषा में अर्थशास्त्र को श्रुति स्मृति के अनुकूल दिखाकर मनुष्यो की सभी आवश्यकताएँ अर्थशास्त्र मे समाविष्ट कर दी गयी है।*

(2) अर्थ की महत्ता एव धन के स्त्रोत व उपयोग

भारतीय आर्य सभ्यता की चार आधारशिलाओं (धर्म अर्थ काम और मोक्ष) मे अर्थ का अति महत्व है। ये चारो आधारशिलाएँ ऐ दूसरे से सम्बन्धित और पूरक हैं।

* श्रुतिस्मृत्या विरोधेन राजवृत्तादि–शासनम्
सुयुक्त्याऽर्थार्जन यत्र ह्यर्थशास्त्र तदुच्यते।।

अर्थ मानव–जीवन की मूल आवश्यकता है उसके बिना मानव शरीर ही जीवित नही रह सकता तो फिर धर्म का धारण, काम का उपभोग और मोक्ष की प्राप्ति कौन करे? शरीर माद्य खुल धर्म साधनम्। अर्थात् शरीर ही धर्म और मोक्ष प्राप्त करने की सीढी है। अर्थ धर्म की भॉति मोक्ष मार्ग मे प्रधान सहायक है क्योकि यह स्थूल शरीर की आवश्यकता है। अर्थ के बिना धर्म और काम लगडा है फिर मोक्ष पद को प्राप्त करने का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता।

अर्थ के महत्व का प्रतिपादन करते हुए महाभारतकार लिखते है, 'अर्थ के बिना धर्म और काम सिद्ध नही होते अत अर्थ ही समस्त धर्म और काम के पालन करने मे सहायक और अग्रणी है' * अर्थ की महत्ता पर मनु ने लिखा है कि "सब पवित्रताओ मे अर्थ की पवित्रता अतिश्रेष्ठ है।" ** कौटिल्य ने लिखा है, 'धर्म, अर्थ और काम इन तीनों मे अर्थ प्रधान है, धर्म और काम अर्थ पर निर्भर हैं।' कौटिल्य धर्म और काम को अर्थ पर निर्भर मानते हैं। शुक्र के मत मे अर्थ से धर्म, काम और मोक्ष तीनो प्राप्त होते है। यह पुरूष अर्थ का दास है, किन्तु अर्थ किसी का दास नही है अत अर्थ की प्राप्ति के लिए मनुष्य अपश्य प्रयत्न करे।"

शुक्र ने शिल्पशास्त्र को अर्थशास्त्र का अग माना है। जिस शास्त्र में मन्दिर, प्रतिमा, बगीचा, घर, बावडी आदि बनाने का विधान हो वह वास्तु शिल्पशास्त्र है।

शुक्र ने कोडी से लेकर रत्नादि को द्रव्य कहा है। पशु, अन्न, वस्त्र, तृण, आदि को धन कहा है।' शुक्र के अनुसार अध्वर्यु आदि के कर्म से जो वेतन ग्रहण किया जाए एव वाणिज्य, व्यापार, व्यवसाय से जो धन प्राप्त किया जाए वह सबसे बडा धन होता है अर्थात् ये महाधन है।

(अ) धनार्जन की विधि, सीमाधन, एव धनार्जन करने वालो की श्रेणी — शुक्रनीति के अनुसार विद्या तथा धन चाहने वाले को नित्य कर्म से क्षण तथा कण का त्याग नहीं करना चाहिए। क्षण–क्षण भर प्रतिदिन अभ्यास करके विद्या का एव कण–कण भर का सग्रह कर धन का अर्जन करना चाहिए। परन्तु शुक्रनीति मे मान–सम्मान से कमाए हुए धन को ही उत्तम माना है' शुक्र के अनुसार 'जो केवल धन चाहते हैं, वे 'अधम' जो धन तथा मान दोनो चाहते हैं वे 'मध्यम' एव जो केवल मान चाहते हैं वे 'उत्तम' जन कहलाते हैं क्योकि बडे लोगो का धन मान (आदर) ही है।

धनार्जन की सीमा बताते हुए आचार्य ने कहा कि जो धन 12 वर्ष तक परिवार की रक्षा करने लायक होता है वह नीच सज्ञक, जो 16 वर्ष तक रक्षा करने योग्य हो वह मध्यम तथा जो 30 वर्ष तक परिवार की रक्षा करने योग्य होता है वह उत्तम सज्ञक धन होता है।

* अर्थ इत्येव सर्वेषा कर्मणाम् व्यतिक्रम।
न ह्यृयतेऽर्थेन वर्तेत धर्म कामाविविश्रुति ।। — महाभारत शाति पर्व 167 12

**सर्वेशामेव शौचनामर्थ शौच पर स्मृतम — मनुस्मृति 5 106

(ब) धनार्जन का उपयोग – शुक्रनीति मे धन अर्जन एव उसके उपयोग को निम्न प्रकार से व्यक्त किया गया है–

(1) उत्तम भार्या पुत्र या मित्र के लिए एव दान (आज की भाषा मे हस्तातरण भुगतान) के लिए तो नित्य धनार्जन करना हितकर है। अत बिना इस सब भार्यादिदो के धन और भृत्यादिजनो के धनादि व्यर्थ है।

(2) भविष्य मे रक्षा करने मे समर्थ धन की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। सौ वर्ष तक मै जीऊँगा एव इस धन से आनद प्राप्त करूँगा– इस बुद्धि से धन और विद्या का पच्चीस वर्ष पर्यन्त या उसका आधा 12 ½ वर्ष या उसका आधा 6 ¼ वर्ष पर्यन्त सदा सग्रह करना चाहिए।

(3) विद्यारूपी धन अत्यत श्रेष्ठ है इससे अन्य धन विद्यामूलक हैं अर्थात विद्या से ही अन्य धन का उपार्जन होता है। विद्या धन देने से नित्य बढता है अन्य धन घटता है। विद्या रुपी धन से भार नही होता। जबकि अन्य धन मे भार होता है इसे कोई उठाकर नही ले जा सकता है जबकि अन्य धन को उठाकर ले जा सकता है।

(4) जब तक मनुष्य धन युक्त रहता है तब तक सब लोग उसकी सेवा करते है और जब वही मनुष्य धन से रहित हो जाता है तो भले ही गुणवान हो किन्तु उसे स्त्री–पुत्रादिक भी छोड देते हैं। * अत ससार मे व्यवहार चलाने के लिए धन ही सारभूत कहा गया है और इसी धन–प्राप्ति के लिए मनुष्य प्राणो को सशय मे डालने वाले कठिन कार्यों के द्वारा भी प्रयत्नशील रहे।

(5) सुन्दर विद्या उपार्जन या सुन्दर सेवा शूरता खेती करके या ब्याज पर रुपया देकर दुकानदारी या सगीत आदि कला द्वारा दान लेकर एव चाहे जिस किसी वृत्ति या आश्रय लेकर मनुष्य धनवान बन सके और उसी के अनुकूल कार्य करे क्योकि धनियो के द्वार पर गुणी लोग नौकर की तरह पडे रहते है

(6) धनवान पुरुषो के दोष भी गुण के समान हो जाते हैं और निर्धनो के गुण भी दोष–तुल्य हो जाते है। इससे निर्धन की सभी लोग निंदा ही किया करते हैं

(7) धन के फेर मे पडकर अनेक व्यक्ति चिन्ता करते–करते पागल हो जाते है। कितने ही शत्रुओ की अधीनता स्वीकार कर लेते हैं और कितने ही एक–दूसरो की या शत्रुओ की नौकरी भी कर लेते है।

(8) लोभ से रहित धनी पुरुष या विश्वासपात्र या श्रेष्ठ पुरुष अथवा राजा इनमे किसी एक के पास मे अच्छी तरह से सचित धन को रखना चाहिये अथवा रखने के लिए एकत्र धन को लिखने के बाद चाहे जिसके पास रखना चाहिये

(9) मित्रता के नाते मागने पर मित्र के लिए बिना ब्याज पर धन देना चाहिये और

---

* अरिन यावत् सधनस्तावत्सर्वेस्तु सेव्यते
निर्धनस्त्यज्यते भार्यपुत्राद्यै सगुणौप्यत

यदि उस मित्र के ऊपर वैसा बिना ब्याज धन शेष हो तो भी पुन धन देना हानिकारक नही है।

(10) ऋण लेने वाले को ब्याज देने मे समर्थ देखकर सदा बंधक या किसी के जमानत पर और किसी की गवाही के साथ लिखा–पढी करके उचित मात्रा मे सुखपूर्वक लौटाने लायक धन देना चाहिये। ब्याज के लाभ से उपर्युक्त रीति से भिन्न अवस्था मे धन नही देना चाहिये अन्यथा मूलधन नष्ट हो जाने की सभावना रहती है।

(11) मनुष्य को हृदय के अदर उदारता रखकर और ऊपर से कृपणता रखकर समय आने पर धन का उचित व्यय करना चाहिए।

(12) भार्या, पुत्र और मित्र ये सब यदि उत्तम हो तो इनकी रक्षा धन से करनी चाहिए।

(13) अपना कल्याण चाहने वाला पिता, स्त्री एव कार्य करने मे समर्थ हुये पुत्रो को अपना धन आपस मे शीघ्र विभक्त करदे जिससे कलह न हो सके और इसी प्रकार से सहोदर भाई भी विवाह हो जाने एव कार्य करने मे समर्थ हो जाने पर आपस मे सम्पत्ति का बटवारा करले अन्यथा परस्पर लडकर निश्चय ही समाप्त हो जाते हैं।

(14) कृपण (कजूस) की भाति धन की रक्षा करे और समय आने पर विरक्त की भाति दे देवे अन्यथा इसके विपरीत आचरण होने पर व्यक्ति मूर्खता को प्राप्त होता है।

3 उपभोग

आचार्य शुक्र ने मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओ के रूप मे अन्न, वस्त्र, मकान, चिकित्सा तथा शिक्षा पर आवश्यक रूप से विचार किया है। उनके अनुसार राजा का यह महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है कि वह प्रजा की इन भौतिक पदार्थों की निश्चित रूप से पूर्ति करे।

आचार्य ने कहा है कि लोगो को अपनी प्राथमिक आवश्कताओं की पूर्ति हेतु धर्मानुसार अर्थार्जन करना चाहिए। उनके अनुसार जो व्यक्ति धर्मानुसार अर्थार्जन में निपुण है तथा देश काल का ज्ञाता अर्थात तदनुसार कार्य करने वाला एवं सशय–रहित है तो वही सदा पूज्य होता है। आचार्य ने बताया कि अर्थ का दास पुरुष ही होता है न कि पुरुष का दास अर्थ होता है। अत अर्थ के लिए सर्वदा प्रयत्न पूर्वक यत्नशील रहना चाहिए। अर्थ से ही मनुष्य को धर्म, काम तथा मोक्ष सभी पुरुषार्थ प्राप्त होत हैं।(5 38–39)

उपभोग की चर्चा करते हुऐ आचार्य ने कहा मनुष्यो को सदा समय पर मिलकर तथा उचित मात्रा के साथ आहार–विहार, देवादि को भोग लगाकर प्रसाद–भोजन, अकातर स्वभाव, अच्छी तरह से सोना तथा शरीर एव मन से पवित्र रहना चाहिए। इन सब विषयों को सदा करना चाहिए (3 111)

देवता, पितृगण तथा अतिथियों को बिना दिये कभी भोजन नही करना चाहिए, क्योंकि जो मोहवश केवल अपने लिए भोजन बनाता है तथा देवादि को बिना दिये भोजन करता है उसका जीवन नरक के लिए होता है। (3 139)

मनुष्यो को सदा शिकार जुआ खेलना स्त्री–सभोग करना मद्यादि पीना आदि चार व्यसन सदा करना त्याग कर कभी थोडा–सा समय आने पर कर लेना उचित होता है अन्यथा नही। (3 156)

उपभोग के विषय मे किसी को प्रतिनिधि बनाने पर आपत्ति करते हुए आचार्य ने बताया कि तपस्या कृषि किसी वस्तु का उपभोग करना भोजन करना आदि कार्यों में मनुष्य को अपना प्रतिनिधि नही बनाना चाहिए क्योकि ऐसा करने मे हानि की ज्यादा सभावना रहती है। (3 267)

अति उपभोगवाद पर कटाक्ष करते हुए आचार्य ने बताया कि जो मनुष्य उपभोग के सम्बन्ध में ज्यादा आशा लगाये रहते है उनके लिए ब्रह्माण्ड के अन्दर उपलब्ध वस्तुएँ भी उनकी थोडी–सी इच्छा पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं होती अर्थात ब्रह्माण्ड की सारी वस्तुएँ भी उपलब्ध करा दी जाये तो भी उनकी इच्छा की पूर्ति नहीं हो सकती।

आवास के सम्बन्ध में आचार्य की यह धारणा है कि राजा ग्राम मे दीन मध्यम तथा उत्तम लोगो के लिए तथा कुटुम्बियो के लिए नगर मे घर बनाने के योग्य सदा उचित भूमि की व्यवस्था करे। (5 87)

आवास के लिए उपयुक्त माप की चर्चा करते हुए आचार्य ने सुझाव दिया कि 32 हाथ लम्बी तथा 16 हाथ चौडी अधमा 64 हाथ लम्बी तथा 32 हाथ चौडी उत्तमा और 48 हाथ लम्बी तथा 24 हाथ चौडी मध्या सज्ञक भूमि वासार्थ देनी चाहिए तथा जैसी कुटुम्ब की स्थिति न्यून या अधिक हो उसी के समान भूमि व्यवस्था करनी चाहिए। उससे न कम तथा न अधिक होनी चाहिए।

आचार्य शुक्र ने सुझाव दिया कि सभी नियुक्त किये गये अधिकारियो को ग्राम से बाहर की भूमि में निवास करना चाहिए।

उपभोग्य वस्तुएँ – *तिक्त कटु अम्ल लवण कषाय (कसैला) मधुर* इन छ रसों से युक्त एव प्रधान रूप से मिठाईयुक्त जो भोजन होता है उसे सर्वोत्तम समझना चाहिए। अन्न की निदा नही करनी चाहिये एव स्वस्थ रहने पर ही आमत्रित प्रतिभोज मे भोजन स्वीकार करना चाहिये। धान्य वस्त्र गृह बगीची गौ गज आदि तथा रथ के लिये एव विद्या तथा राज्य आदि के उपार्जन के लिये और धन आदि की प्राप्ति के लिए तथा इन सबकी रक्षा के लिये जो व्यय किया जाता है उसे 'उपभोग्य कहते हैं।

विषाक्त अन्न की परीक्षा – शुक्र के अनुसार विष–दोष के भय से बदर मुर्गा आदि के द्वारा अन्न की परीक्षा करनी चाहिये। विषयुक्त अन्न को देखते ही हस लडखडाने लगते हैं भौरे शब्द करने लगते हैं मयूर नाचने लगते हैं मुर्गे बोलने लगते हैं बदर मल–मूत्र त्यागने लगते हैं सारिका पक्षी वमन करने लगती है। राजा और अधिकारियो को चाहिये कि किसी भी प्रकार के अन्नादि के सेवन से पूर्व उसकी जॉच करके यह जान लेना चाहिये कि भोजन विषाक्त तो नही है।

अकेले सुख उपभोग का निषेध – शुक्र के अनुसार मनुष्य को अकेले सुखो का उपभोग नही करना चाहिये। जीविका से रहित तथा शोक से पीडित लोगो की यथाशीघ्र सहायता पहुँचा कर उपकार करना चाहिये एव कीडे तथा चीटियो तक के भी सुख–दु खादि को अपनी ही भाति समझना चाहिये।

उपभोग सम्बन्धी अन्य उपदेश – (i) मृगया (शिकार) और अच (जुआ) खेलना, स्त्री सभोग करना, मद्यादि पीना, ये चार मनुष्यो के लिए व्यसन कहे गये है, मनुष्य को इनका कभी भी सेवन नहीं करना चाहिये, कभी–कभी कर लेना उचित होता है अन्यथा नहीं।

(ii) किसी के साथ कपट पूर्ण व्यवहार करके आजीविका की हानि नही करनी चाहिए तथा कभी किसी का अहित भी मन से नहीं सोचना चाहिये।

(iii) गुरुजनो के तथा राजा के आगे उनसे ऊँचे आसन पर या पैर के ऊपर पैर रखकर नही बैठना चाहिए और उनके वाक्यो का तर्क द्वारा खण्डन नही करना चाहिये।

(iv) मद पैदा करने वाले द्रव्यो से अधिक मतवाला नहीं होना चाहिये और नालायक सतान पर 'यह मेरा पुत्र है' ऐसी ममता नही करना चाहिये।

(v) जिसने कुटुम्ब का भरण–पोषण नही किया और शत्रुओ को नष्ट नहीं किया एव प्राप्त वस्तु की भलीभाति रक्षा नही की अर्थात् उसका जीवन व्यर्थ है।

(vi) अत्यत दरिद्र, ऋणी, स्त्रियो के वशीभूत रहने वाला, याचक, गुणहीन और धन से रहित व्यक्ति जीवित होते हुए भी मरे हुए के समान होते हैं।

(vii) धनु, आयु, गृह के दोष, मत्र, मैथुन, औषध, दान, मान–अपमान, इन नौ विषयों को अत्यत गुप्त रखना चाहिये।

(viii) भोजन करते हुये रास्ता चलना, हसते हुए बात करना, नष्ट हुई वस्तु या बीती हुई बात या मरे हुये व्यक्ति के विषय में शोक करना, अपने किये हुये कार्य की स्वय प्रशसा रूप मे वर्णन, ये कार्य नहीं करने चाहिये।

(ix) वस्त्र, अन्न, आभूषण, प्रेम तथा मृदुवचनो से यथाशक्ति व्यवहार करते हुये अपने अत्यत समीप रखकर स्त्री तथा पुत्र की रक्षा करनी चाहिए।

(x) रात्रि मे पेड के नीचे नहीं रहना चाहिये तथा किसी देवता के चबूतरे या वृक्ष, चौराहा तथा देवमदिर में रात्रि निवास नही करना चाहिये और जगल व श्मशान में दिन मे भी नहीं रहना चाहिये, रात्रि में तो कभी भी नहीं रहना चाहिये।

(xi) निरतर सूक्ष्म, अत्यत चमक से युक्त, अपवित्र या अप्रिय वस्तुओ को देर तक नहीं देखना चाहिये तथा सिर से बोझा नही उठाना चाहिये।

4. परिवार एवं पालनपोषण

गृह मे जब अधिक परिवार, बहुत से दीपको का प्रकाश, बहुत सी गायें तथा बहुत

से बाजार सुन्दर हो तब उसकी नित्य शोभा होती है और जब तक गृह का स्वामी एक व्यक्ति रहता है तभी तक उसकी शोभा बनी रहती है अनेक स्वामी बनने पर उसकी शोभा नष्ट हो जाती है। (3.241)

आचार्य ने परिवार के पालन पोषण को आवश्यक बताते हुए कहा कि जो मनुष्य कुटुम्ब पालन के विषय मे प्रयत्नशील नहीं रहता वह सर्वगुण सम्पन्न होते हुए भी जीवित रहकर मरे हुये के समान है अर्थात् उसका जीवन व्यर्थ है। (3.126)

परिवार व अन्य लोगो को भी पूरी सुरक्षा प्राप्त हो इस सम्बन्ध मे आचार्य शुक्र ने निर्देश दिया है कि सुशीला स्त्री विमाता माता अविवाहिता कन्या पिता पुत्रवधू, बिना पति और पुत्र की कन्या या बहन मामी भाई की वधू, पिता की बहन माँ की बहन निःसन्तान नाना गुरु श्वसुर या मामा निज पिता का पुत्र लडकी का लडका (नाती) भाई या भानजा इन सबो का धन न रहने पर भी यथाशक्ति यत्नपूर्वक अवश्य पालन करना चाहिए। और यदि धन हो तो पिता तथा माता के कुल वाले एव मित्र, पत्नी कुल (ससुराल) वाले दास दासी और भृत्य वर्गों का पालन–पोषण करना चाहिए और विकलांग (काने लगडे अधे) सन्यासी दीन तथा अनाथ लोगो का पालन करना चाहिए।*

■ उत्पादन (उद्योग एव व्यवसाय)

आचार्य शुक्र ने एक श्रेष्ठ व्यवसायी के लिए भी निर्देश जारी किये हैं। उनके अनुसार जानकार व्यवसायी को किसी कार्य (व्यवसाय) को प्रारम्भ करने से पूर्व यह देखना चाहिए कि उक्त कार्य कैसा है? इस कार्य के कौन–कौन से साधन (उपाय) हैं? इसमे कितना व्यय होने की सभावना है? उसके माल की खपत कहा–कहा है? उस पर कितना व्यय होगा तथा कितने लाभ की सभावना है? इन सब बातों पर भलि–भाति विचार करता है अन्यथा वह कोई छोटे से छोटा व्यवसाय भी नहीं करता। *

आचार्य ने आगे कहा है श्रेष्ठ व्यवसायी को अधिक व्यय वाले तथा स्वल्प लाभ वाले कार्यों को करने की इच्छा नही रखनी चाहिए। जिन कार्यों मे अधिक लाभ हो ऐसे कार्य ही व्यवसायियो को करने चाहिए तथा कम लाभ वाले कार्य छोड देने चाहिए तथा हमेशा बेचने योग्य द्रव्यो के मूल्य था तौल या सख्या का यथार्थ रूप से ख्याल रखना चाहिए। इस प्रकार शुक्र ने आधुनिक अर्थशास्त्र की तरह लाभ कमाने की प्रवृति को ही प्रमुखता दी है।

परन्तु लाभ कमाने में भी नैतिकता को स्थान दिया है। आचार्य ने कहा है कि जिस आजीविका से अपने धर्म की हानि न हो वही आजीविका श्रेष्ठ होती है। जिस देश में अपने कुटुम्ब का भलीभाति पोषण हो वही देश सबसे उत्तम है।

विभिन्न आजीविकाओ की चर्चा करते हुए आचार्य ने बताया कि नदी से सिचाई की जाने वाली कृषि उत्तम आजीविका होती है। वैश्य वृत्ति (व्यवसाय–गो रक्षा) मध्यम

* शुक्रनीति पृष्ठ 170 (263 264 265)

आजीविका है। शूद्र वृत्ति (सेवा) अधम आजीविका है। इस तरह आचार्य ने वैयक्तिक व्यवसाय को नौकरी (सेवा) की तुलना मे श्रेष्ठ माना है।

भिक्षावृत्ति अत्यन्त अधम आजीविका है किन्तु वही तपस्वियो के लिए उत्तम है। कही धर्मशील राजा की सेवा भी उत्तम आजीविका मानी जाती है।

आचार्य शुक्र ने विपुल धन प्राप्ति के लिए राजसेवा को श्रेष्ठ माना है। उनका कहना है कि बिना राज सेवा के विपुल धन की प्राप्ति नहीं होती है किन्तु राजसेवा अत्यन्त गहन (कठिन) है और बुद्धिमान को छोडकर अन्य मूर्खजनो के द्वारा वह नही की जा सकती है क्योकि वह तलवार की धार के समान तीक्ष्ण है उस पर मूर्ख लोग सदा नही चल सकते।

निर्धनता व धनी की अवस्था का जिक्र करते हुए आचार्य ने बताया कि मनुष्य को पहले निर्धनता की स्थिति प्राप्त कर लेनी चाहिए तथा बाद में उसे धनी बनना चाहिए। पहले पैदल चलना तथा बाद मे सवारी पर चढना श्रेष्ठ होता है। इससे सुख की प्राप्ति होती है यदि इसके विपरीत होवे तो दुख होता है।

अर्थाजन में न्याय की बात स्पष्ट करते हुए आचार्य ने कहा कि जिसने अन्यायपूर्वक धन उपार्जन किया है वह उस अन्यायोपार्जन के पाप का फल भोगने वाला होता है और जो धन सुपात्र से लिया जाता है या सुपात्र को दिया जाता है वह धन बढता है। (4.202)

(i) वर्ण–व्यवस्था का आधार – शुक्र ने वर्ण तथा आश्रम व्यवस्था को मान्यता दी है परन्तु उन्होने वर्ण का आधार जन्म के स्थान पर व्यक्ति के गुण एवं कार्य को माना है। शुक्रनीति के अनुसार, 'इस ससार में जन्म से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या मलेच्छ नही होता है, अपितु गुण तथा कर्म के भेद से ही होता है।*

सम्पूर्ण जीव ब्रह्मा से उत्पन्न हुये हैं तो भला वे सभी क्या ब्राह्मण कहला सकते हैं? नही, क्योकि वर्ण (जाति) से और पिता से ब्रह्म तेज प्राप्त नहीं होता है।

शुक्र ने वर्ण और जाति के मध्य भेद किया है तथा स्पष्ट किया है कि भिन्न–भिन्न वर्ण के माता–पिता के द्वारा सतानें उत्पन्न होने पर असख्य जातियो का जन्म होता है। मनु ने वर्ण का आधार जन्म को माना है परन्तु शुक्र का विचार है कि मूलत. वर्ण का आधार जन्म होते हुये भी, कर्म से भी किसी विशेष वर्ण की सदस्यता प्राप्त हो सकती है। शुक्र ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चारो वर्णों के कर्तव्यो का विवेचन किया है।

शुक्र के अनुसार ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड और उपासना काण्ड का प्रकाण्ड विद्वान होता हुआ, देवताओ की आराधना मे लीन, शांतचित, इन्द्रियो का दमन करने वाला एव दयालु होना – इन समस्त गुणो से 'ब्राह्मण' का निर्माण हुआ है। अर्थात यज्ञ करना, वेदों

* न जात्य ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न।
न शूद्रो न च वै मलेच्छो भेदिता गुणकर्मभि ॥

का अध्ययन–अध्यापन व दान लेना ब्राह्मणों के उपयुक्त कर्म है। जनता की भली–भांति रक्षा करने में चतुर, शूर, इन्द्रियों का दमन करने वाला, पराक्रम से युक्त, स्वभावतः दुष्टों को दण्ड देने वाला क्षत्रिय कहलाता है। क्षत्रिय सज्जनों की रक्षा करता है, दुष्टों का दमन करता है और इनके प्रतिफल में अपना अंश करों के रूप में ग्रहण करता है।

क्रय विक्रय करने में कुशल, नित्य दुकानदारी से जीविका चलाने वाले, पशुपालन तथा खेती करने वाले वैश्य कहलाते हैं, दूसरे शब्दों में कृषि, पशु–पालन, व्यापार–वाणिज्य शुक्र के अनुसार वैश्यों के कर्म हैं। शुक्र के अनुसार शूद्र लेना ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण की सेवा में तत्पर, शूर, शान्तचित, जितेन्द्रिय, काष्ठ तथा तृण (घास आदि) का भार वहन करने वाला वर्ण शूद्र कहलाता है।

स्वधर्माचरण का परित्याग करने वाले, दयाशून्य, दूसरे को पीड़ा पहुँचाने वाले, अत्यन्त क्रोधी तथा हिंसा करने वाले लोग म्लेच्छ कहलाते हैं और उनमें विवेक नाममात्र का भी नहीं होता है।

शुक्र ने यद्यपि अलग–अलग वर्णों का उल्लेख किया है किन्तु श्रम विभाजन की इस योजना का कोई नैतिक महत्व नहीं है तथा व्यावहारिक कारणों से किसी भी वर्ण के सदस्य द्वारा भरण–पोषण के लिये यदि कोई अन्य वृत्ति अपनायी जाये तो उसे निंदनीय नहीं माना जा सकता। शुक्र ने इस सम्बन्ध में यह निर्देश दिया है कि ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य वर्णों द्वारा भिक्षा मांग कर जीविका चलाना अनुचित है। शुक्र द्वारा प्रतिपादित वर्ण–व्यवस्था जीविका की दृष्टि से समाज के विभिन्न सदस्यों के मध्य श्रम विभाजन की विवेकसम्मत योजना है। शुक्र ने सामाजिक व्यवस्था में शूद्रों को हीन या उनके प्रति भेदभाव करने का समर्थन नहीं किया है। शुक्र के मत में कर्मशील तथा गुण से मनुष्य पूजनीय होता है, जाति और कुल से नहीं, क्योंकि श्रेष्ठता जाति और कुल से नहीं होती है। कुल और जाति का विचार तो केवल विवाह व भोजन में किया जाता है।

(ii) कर्म की महत्ता– शुक्र के अनुसार इस संसार में सुगति और दुर्गति के पीछे कर्म ही कारण होता है। पूर्व जन्म के कर्म ही प्रारब्ध होते हैं बिना कर्म के कोई भी जीव क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकता है। मनुष्यों को पूर्वार्जित कर्मों के फल भोगने योग्य जब जैसी बुद्धि उत्पन्न होती है तब उसके अनुसार पाप या पुण्य कर्म करने में मनुष्य समर्थ या असमर्थ होता है। मनुष्य के जैसे कर्मों का फल उदय होता है उसी के अनुसार वैसी बुद्धि होती है तथा जैसा भाग्य होता है उसी के अनुसार वैसे साथी भी होते हैं। शुक्र के अनुसार जो बुद्धिमान एवं प्रशंसनीय चरित्र वाले हैं वे पुरुषार्थ को बड़ा मानते हैं अर्थात उद्योग करते हैं और जो पुरुषार्थ करने में असमर्थ तथा कायर पुरुष है वे भाग्य की उपासना करते हैं अर्थात भाग्य के भरोसे बैठे रहते है।

भाग्य और पुरुषार्थ इन दोनों के ऊपर ही सम्पूर्ण जगत् के कार्य स्थित हैं। इनमें पूर्व जन्म में किया हुआ कर्म भाग्य और इस जन्म में किया हुआ कर्म पुरुषार्थ कहलाता

है। इस प्रकार शुक्र ने एक ही कर्म के दो बड़े भेद किये हैं। भाग्य और पुरुषार्थ इन दोनो मे से जो दुर्बल होता है उसको हटाने वाला सदा बलवान होता है। सबल और दुर्बल का ज्ञान न तो फल-प्राप्ति से होता है और न ही किसी अन्य रीति से कभी-कभी थोड़े से कर्म से ही मनुष्यो को जो अधिक फल की प्राप्ति दिखाई देती है वह प्राक्तन कर्म के वश से ही होती है. कोई-कोई आचार्य उसे पुरुषार्थ से हुआ ही मानते हैं। मनुष्यो को जो पुरुषार्थ फलप्राप्ति के लिये होता है उसमे इसी जन्म के तात्कालिक कर्म ही कारण बनते हें, जेसे ससार मे तेल और बत्ती से प्रज्ज्वलित दीपक की हवा से रक्षा प्रयत्न करने से ही होती है। शुक्र ने भगवान राम तथा अर्जुन का उदाहरण देकर बताया कि जब भाग्य (देव) अनुकूल होता है तब अल्प पुरुषार्थ भी सफल हो जाता है। अशोक वाटिका को अकेले हनुमानजी द्वारा ध्वस होने से रावण को तथा अकेले अर्जुन द्वारा विराट नगर मे गायो को पकड कर रख लेने से भीष्म, द्रोण, कर्ण दुर्योधन आदि कौरवो को भाग्य की प्रतिकूलता ज्ञात हुई। भाग्य प्रतिकूल रहने पर अत्यत पुण्य कार्य भी अनिष्ट फल देने वाले हो जाते हें। जैसे दान देने के बाद भी राजा बलि बाधे गये और राजा हरिश्चद्र को भी डोम के यहॉ नौकरी करनी पडी। अच्छे कार्यो से अच्छा तथा बुरे कार्यो या कुकर्मो से बुरा फल होता है। सत् (अच्छा) तथा असत् (बुरा) कर्म को कराने वाले काम का भी कारण (विधाता) राजा होता है। अत राजा अपनी क्रूरता से तथा दण्ड देने के लिये उद्यत रहकर प्रजाओ को अपने-अपने धर्म पर स्थित रखे। शुक्र के अनुसार जन्म से उत्तम वर्ण का मनुष्य भी ससर्गवश नीच हो जाता है। कर्म के द्वारा मनुष्य तत्काल उत्तम और नीच कहलाता है किन्तु गुणो के द्वारा कुछ काल के बाद उत्तम या नीच माना जाता है। विद्या तथा क ा के आश्रय से भी उसके नामानुसार अनेक जातियो की कल्पना की गयी है।

(iii) उत्पादन करने का अधिकार— मनुस्मृति, रामायण, महाभारत की भॉति शुक्र ीति भी उत्पादन करने का अधिकार वैश्य वर्ण को ही देती है। कही-कही ब्राह्मण अ दे वर्णो को भी उत्पादन करने का अधिकार दिया गया है। शुक्र के अनुसार जिस आजीविका से अपने धर्म की हानि न हो वही आजीविका श्रेष्ठ है। जिस देश मे अपने कुटुम्ब का भलीभाति पोषण हो, वही देश सर्वोत्तम है। शुक्र ने खेती करना, गोपालन तथा वाणिज्य करना, ये तीन कर्म वैश्य की जीविकार्य के निश्चित किये हैं।

(iv) भूमि उत्पादन का प्रमुख साधन— शुक्र ने भूमि को उत्पादन का प्रमुख साधन माना है। भूमि सम्पूर्ण धनो की खान है। भूमि के कारण ही राजा भूमिपति कहलाता है। सोना, चॉदी ताम्बा वग, सीसा, लोहा, रागा ये सात धातुएँ मूल होती है।

(१) कृषि— खेती अर्थ (धन) प्राप्त करने का उत्तम साधन है। शुक्रनीति मे अन्न, फल, मेवा आदि की खेती की चर्चा की गयी है। खेती के लिये सिचाई के साधनो की व्यवस्था का दायित्व राजा का माना है। शुक्र ने खेती को हानि पहुँचाने वालो के लिए दण्ड की व्यवस्था की है। जल को आवश्यकतानुसार खेतो मे लाना एव सिचाई करने

का शुक्र न कला माना है। राज्य म कितने ग्राम नगर तथा जगल है? किसने कितनी भूमि जोती है और उससे कितना उसने धान्य पाया? किस खेत म कितना भाग बचा है? कितनी भूमि बिना जुताई की बची है? और इस देश म प्रतिवर्ष शुल्क (मालगुजारी) और अपराधियो के दण्ड आदि से प्राप्त भाग द्रव्य (राजा के अश का द्रव्य) कितना है? जगल से मिलने वाला द्रव्य कितना है? खान से निकलने वाला द्रव्य कितना है? राज्य म लावारिस धन कितना है? हरण किया हुआ द्रव्य कितना है? चारो से दण्ड के रूप म प्राप्त धन कितना है? इन सबो की सख्या जोड कर राजा को बताने का दायित्व अमात्य का है इस प्रकार क्षेत्र उत्पादन जगल से प्राप्त आय आदि के आकडे रखने तथा कृषि जगल खानो आदि से प्राप्त राज्य की आमदनी की शुक्रनीति म व्याख्या की गयी है।

(vi) वनसम्पदा– वनसम्पदा का सरक्षण कर राजा नये–नये वृक्षों को व्यवस्थित ढग से लगवाये।

(vii) पशुपालन– शुक्रनीतिकार ने पालन योग्य पशुओ के नाम देते हुए राज्य को यह निदेश दिया है कि वह पशुपालन–विभाग का गठन करे। पशुपालन को प्रोत्साहन देने का दायित्व राज्य का माना है।

(viii) प्रमुख अन्य व्यवसाय – खेती और पशुपालन के अतिरिक्त वस्त्र उद्योग स्वर्णकारिता शिल्पकारिता संगीत दुकानदारी वकालत आदि उद्योग–व्यवसाय के नाम शुक्रनीति म आये हैं। साझेदारी के नियम भी शुक्रनीति म मिलते है। शुक्र ने कार्य को महत्ता दी है उनके अनुसार व्यक्ति विद्या उपार्जन खेती दुकानदारी संगीत ब्याज पर रुपया देकर या किसी भी वृत्ति का आश्रय लेकर मनुष्य को धनार्जन करना चाहिये क्योकि धनिको के द्वार पर गुणी लोग नौकर की तरह पडे रहते हैं। शुक्रनीति में औषधियो का निर्माण शस्त्रों का निर्माण शिल्पशास्त्र नृत्यकला वस्त्र आभूषण आदि कलाओं का विस्तार से विवरण मिलता है जो निम्न प्रकार से है–

प्रासाद (राजभवन–देवमदिर) प्रतिमा उद्यान गृह बावडी आदि का सुदर नीति से निर्माण तथा सस्कार करने की विधि वर्णित हो उसे शुक्र ने शिल्पशास्त्र कहा है। हावभाव के साथ नाचने को 'नृत्यकला' तथा अनेक प्रकार के वाद्ययत्रों के बनाने एव बजाने के ज्ञान को 'वाद्य तथा वादन' कला कहते है। स्त्री तथा पुरुष के वस्त्राभूषणो को सुदर रीति से पहनाने को 'वस्त्रालकार सज्जन कला' कहते हैं। पुष्परस से आसवादि मादक द्रव्य तथा मद्यादि बनाने को भी कला कहते हैं। छिपे हुए शल्य को सुखपूर्वक निकालने तथा शिराओं पर उत्पन्न हुये व्रण का शस्त्र से चीरने के ज्ञान को भी कला कहा गया है।

पत्थरो को तोडना तथा स्वर्णादि धातुओं को गलाना और उनको भस्म करना भी व्यवसाय बताया गया है। धातुओ तथा औषधियों को मिलाने तथा प्रयोग करने का ज्ञान धातुओं को एकत्र कर मिलाने तथा बाद म पुन उन्हे पृथक करना मिट्टी काष्ठ पत्थर

तथा धातु के बर्तन आदि को सुंदर रीति से बनाना, चित्र बनाना भी व्यवसाय बताये गये हैं। इनके अलावा शुक्रनीति में अन्य बत्तीस कलाओ की भी चर्चा की है जो इस प्रकार है–''

हीन, मध्यम तथा उत्तम रूप से मिलाये हुये रग आदि के द्वारा वस्त्रो को रगना। जल, वायु और अग्नि के सयोग और निरोध के द्वारा वाष्प यत्रो का निर्माण करना। रथ, नौकाओ आदि का निर्माण तथा सूत्र आदि से रस्सी तैयार करना। अनेक सूत्रो के सयोग से कपडा बुनना तथा रत्नो मे छिद्र कर उन्हें आकर्षक बनाना। स्वर्णादि धातुओ को भलि–भाति परखना तथा कृत्रिम सोना एव रत्नादि का निर्माण। स्वर्णादि के आभूषण बनाना तथा स्वर्णादि का पानी चढाना। पशुओं के चमडे को उनके शरीर से अलग करने की रीति, दूध दुहने से लेकर घी बनाने की क्रियाओ का ज्ञान। पहिनने के वस्त्रो की सिलाई का कार्य, वस्त्रो को साफ करना, बाल बनाना, तेल निकालना, बास तथा तृण आदि से पात्रों का निर्माण, काच (सीसे) के पत्रादि बनाने की क्रिया, लौहे से अस्त्र–शस्त्रो का निर्माण आदि उन्होने उद्योग व्यवसाय की 64 कलाये बतायी हैं। इनमे से जिस–जिस कला का जो मनुष्य आश्रय लेकर उसमे निपुण बनता है सर्वथा निपुणता के साथ करने के लिए उसी–उसी कला को सदा उसे करते रहना चाहिए।

शुक्र ने उद्योग–व्यवसाय मे निपुर्णता एव कार्यकुशलता को महत्व दिया है। उनके अनुसार जो व्यक्ति जिस कार्य मे दक्ष हो उसी कार्य को करे। उन्होने राजा को भी यह निर्देश दिया है कि कार्यपालन के लिए उस पद पर स्थित सहायक जो उस कार्य के करने मे कुशल हो उसे नियुक्त करें। शुक्रनीति मे मनुष्य की कार्य करने की क्षमता बढाने के लिए निम्न बातो पर जोर दिया है–

(i) निद्रा (दिन मे या अधिक सोना) तन्द्रा (अर्द्धनिद्रित अवस्था), भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता (कम समय मे होने योग्य कार्य को देर लगाकर करना) इन छ दोषो को शुक्र ने कार्यनाशक माना है।

(ii) सोच–समझ कर किसी कार्य को करना चाहिये और कभी मनमानी नही करनी चाहिए ।

(iii) किसी वस्तु के क्रय –विक्रय मे अत्यत आग्रह एव हर किसी के सामने अपनी दीनता प्रकट नही करनी चाहिये क्योकि इनसे क्रय से लाभ मे हानि तथा लघुता होती है।

(iv) बहुत अर्थो से भरा हुआ तथा थोडे शब्दों से युक्त, कार्य को सिद्ध करने वाला सुंदर वार्तालाप करना चाहिये। बिना पूछे किसी से अपने घर के कार्यों या बातो को नही बताना चाहिये।

(v) बिना अनुभव किये हुये किसी विषय मे अपना विचार सदा प्रकट नही करना चाहिए और दूसरों के अभिप्राय को भलीभाति समझ कर उससे अज्ञात उत्तर देना चाहिये।

(vi) अपने कार्य तथा योजनाओ को मनुष्य को गुप्त रखना चाहिये अर्थात बिना कार्य पूर्ण हुये प्रकाशित नही करना चाहिये।

(vii) यथाशक्ति प्रत्येक कार्य करने की इच्छा करनी चाहिये और कार्य करते हुए आपत्ति पडने पर विचलित नही होना चाहिये।

(viii) जो कार्य लोक मे निदित होता है वह यदि धर्मयुक्त भी हो तो नरक मे ले जाने वाला होता है अत उसे नही करना चाहिये।

(ix) सदा दूर तक सोचने वाला तथा समयानुसार तत्काल कर्त्तव्य स्थिर निभाने वाला और सहसा कार्य करने वाला आलसी तथा देरी से धीरे–धीरे कार्य समाप्त करने वाला नही होना चाहिये।

(x) जो व्यक्ति किसी कार्य के अच्छे–बुरे फल या निष्फलता को विचार कर तदनुसार कार्य करने की चेष्टा करता है और जो कार्य करने के प्रथम शीघ्र ही दूर तक उसके परिणाम को जानने वाला होता है वह चिरकाल तक सुख भोगता है। अत व्यक्ति को दीर्घदर्शी होना चाहिये।

(xi) जो आलसी होता है वह समय उपस्थित होने पर भी करने योग्य कार्य के करने मे प्रयत्नशील नही होता है उसके कार्य की सिद्धि कभी भी नही होती है और वह वश–सहित या साथी–सहित नष्ट हो जाता है।

(xii) अकेले किसी कार्य के विषय मे विचार नही करना चाहिये अकेले स्वादिष्ट भोजन नहीं करना चाहिए अकेले मार्ग पर नही चलना चाहिये। इससे शुक्रनीति मे साझेदारी के विचार की जानकारी प्राप्त होती है।

शुक्रनीति में व्यवसाय और वाणिज्य के सदर्भ मे उपभोक्ताओ के हितो की रक्षा के लिये राजकीय हस्तक्षेप की अपेक्षा की गयी है।

शुक्र ने राजा को आदेश दिया है कि तुला (तौलने में) मान (बटखरा) नाणक (मुद्रा सिक्का मात्र) निर्यास (गोंद आदि) धातु (स्वर्णादि) तथा उसके समान अन्य पदार्थ घृत मधु दुग्ध चर्बी चूर्ण आदि मे कभी किसी प्रकार की बेईमानी या मिलावट लोगो को नहीं करना चाहिये। कभी किसी से जबर्दस्ती कुछ नही लिखाना चाहिये और घूस नही लेना चाहिये। राजा की आज्ञा के बिना स्थावर पदार्थ (गृहादि) चादी सोना रत्न मादक द्रव्य (भाग अफीम आदि) विष आदि द्रव्यो का क्रय दान ऋण तथा गडे हुये धन को लेना आदि कार्यो को नही करना चाहिये।

6 विनिमय– इसके अन्तर्गत निम्न आर्थिक बिन्दु रखे जा सकते हैं।

(i) मूल्य एव मूल्य मे उच्चावचन

शुक्र के अनुसार प्रत्येक वस्तु के लिए स्वर्णादि मुद्राये निश्चित होती है। लोक व्यवहार मे लेनदेन के लिए ढाले गये चादी सोना एव ताबे के सिक्कों का उपयोग प्रजाओ को करना चाहिए। आचार्य शुक्र ने कौडी से लेकर रत्न तक की बहुमूल्य धातुओं को द्रव्य की सज्ञा दी है। परन्तु उन्होने द्रव्य को धन से अलग किया हे। धन में शुक्र ने पशु–

धन्य, वस्त्र से लेकर तृण पर्यन्त तक को शामिल किया है। इस तरह द्रव्य मे सिक्को के रूप मे ढाले जा सकने वाली मूल्यवान धातुओ को शामिल किया है तथा धन मे उपयोगी वस्तुओ व पशुधन को शामिल किया है।

आचार्य शुक्र के अनुसार व्यवहार (लेनदेन) के लिए राजा द्वारा निश्चित स्वर्णादि मुद्राये प्रत्येक वस्तु की मूल्य समझी जाती है।(व्यवहोरे चाधिकृत स्वर्णाद्य मूल्यतानियात्)

मूल्य की परिभाषा करते हुए आचार्य शुक्र ने स्पष्ट किया कि "ससार मे कारण आदि के सयोग होने से जो पदार्थ जितने व्यय मे सिद्ध होता है उतना व्यय उसका मूल्य होता है।"* अर्थात् मूल्य निर्धारण मे वस्तु की उत्पादन लागत का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी वस्तु को सिद्ध होने (निर्माण में) यदि उत्पादन लागत ज्यादा आती है तो उसका मूल्य अधिक होगा तथा इसके विपरीत नीची उत्पादन लागत वाली वस्तु का मूल्य भी नीचा होगा।

आचार्य शुक्र ने न केवल मूल्य निर्धारण का आधार बताया बल्कि किसी वस्तु के मूल्य मे परिवर्तन आने के कारण को भी स्पष्ट किया । उन्होने स्पष्ट किया कि पदार्थों की सुलभता से किवा अच्छा या बुरा होने से (तारतम्यानुसार) उनका मूल्य विक्रेता की इच्छानुसार अधिक या कम होता है। अर्थात वस्तु के मूल्य मे उच्चावचन वस्तु की उपलब्धता तथा विक्रेता की इच्छा के कारण होता है। यहाँ वस्तु की सुलभता व दुर्लभता का आशय वस्तु की माग के अर्थ मे है। जिस वस्तु की सुलभता अधिक होगी तो उसका मूल्य कम होगा तथा दुर्लभता है तो मूल्य अधिक होगा। वस्तु की सुलभता को शुक्र ने अच्छा तथा दुर्लभता को बुरा माना है। इसके अतिरिक्त शुक्र ने विक्रेता की इच्छा को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

वस्तु की सुलभता एव दुर्लभता के अनुसार विक्रेता वस्तु के मूल्यो को कम या अधिक करता रहता है।

आचार्य शुक्र ने राजा को बहुमूल्य धातुओ के मूल्य के सम्बन्ध में कुछ निर्देश दिया है। उनके अनुसार राजा मणियो तथा सोना चादी आदि धातुओ का मूल्य थोड़ा न रखे। यदि इनके मूल्यो मे कमी आती है तो वह राजा की दुष्टता की द्योतक होगी न की प्रजा की। अर्थात मणियो, सोना, चादी के मूल्य शासन के सुचारूपन या स्थिरता के द्योतक है। यदि मूल्य एक स्तर पर बने रहते हैं तो यह माना जाएगा कि शासन प्रभावशाली है परन्तु इनके मूल्यो मे गिरावट होती है तो शासन की कमजोरी स्पष्ट होगी।

बहुमूल्य धातुओं के विपरीत आचार्य शुक्र ने बताया कि जो वस्तु गुणों से हीन तथा व्यवहार करने के लिए अयोग्य होती है, उसका मूल्य कुछ भी नही होता। और बुद्धिमान व्यक्ति को लोक परम्परा द्वारा सर्वत्र मूल्य निश्चय करने मे समस्त वस्तुओ के नीच,

* कारणादिसमायोगात्पदार्थस्तु भवेद भुवि।
येन व्ययेन सिद्धस्तद्व्ययस्तस्य मूल्यकम।।

मध्यम तथा उत्तम भेदो को सदा समझ कर तदनुसार मूल्य पर विचार करना चाहिए (न मूल्य गुणहीनस्य व्यवहाराक्षमस्य च। नीच मध्योत्तमत्व च सर्वस्मिन्मूल्यकल्पने चिन्तनीय बुधैर्लोकाद्वस्तुजातस्य सर्वदा।)।

आचार्य शुक्र ने वस्तु के मूल्य निर्धारण मे देश तथा काल की भी कल्पना की है। इस सम्बन्ध मे उन्होने कहा है कि जो–जो वस्तुएँ ससार मे अनुपम (बेजोड) होती है वे सभी रत्नस्वरूप (बहुमूल्य) मानी जाती है। अत उन सभी वस्तुओ का मूल्य देश तथा काल के अनुसार निश्चित करना चाहिए (रत्न भूत तु तत्तस्याद्यद्यदप्रतिम भुवि। यथादेश यथकाल मूल्य सर्वस्य कल्पयेत।।)।

(ii) मूल्य का नियमन

आचार्य ने न केवल मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध मे कुछ नीति निर्धारित की है बल्कि मूल्य निर्धारण करने वाली सस्थाओ जिसमे व्यापारी तथा सरकार प्रमुख है को भी कुछ निर्देश जारी किये है। जैसा कि उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सभी वस्तुओ का मूल्य लोक परम्परानुसार उनके गुणात्मक भेदानुसार (नीच मध्यम व उत्तम) तथा देश कालानुसार निर्धारित होने चाहिए।

इसके अतिरिक्त हम जानते है कि वस्तु को उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुँचने मे *कई प्रक्रियाओ से गुजरना पड़ता है। उसकी कुछ यातायात लागत होती है तथा उन* प्रक्रियाओ के बीच कई तरह के बिचौलिये प्रवेश कर जाते है। ये लोग वस्तु की कीमत बढाकर वस्तु को महगा कर देते है जिससे उपभोक्ता को मुक्ति दिलाने हेतु शुक्र ने राजा को निर्देश दिये है कि बनिया (व्यवसायी) बिक्री की वस्तुओ पर जैसा प्रदेश या समय हो उसके अनुरूप उस वस्तु को लाने मे किये हुये *व्यय* को समझ कर 32 *वाँ* या 16 *वाँ भाग अर्थात 3 12 प्रतिशत या 6 25 लाभ लेने की व्यवस्था करे इससे अधिक लाभ न लेवे (द्वात्रिंशाश षोडशाश लाभ पण्ये नियोजयेत। नान्यथा तद्व्यय ज्ञात्वा प्रदेशाद्यनुरूपत।)*

आचार्य ने वस्तुओ मे मिलावट या खोटेपन के विरूद्ध भी उपभोक्ता को सरक्षण प्रदान किया है। इस सम्बध मे उन्होने कहा है कि जो खोटी वस्तु या धोखेबाजी से किसी वस्तु को बेचता है तो वह सदा राजा द्वारा चोर की भाति दण्डनीय होता है (कूटपण्यस्य विक्रेता स दण्ड्यश्चौरवत् सदा)।

इस प्रकार मूल्य निर्धारण व नियमन की व्यवस्था कर आचार्य शुक्र ने कल्याणकारी राज्य की स्थापना की दिशा मे एक महत्वपूर्ण कदम उठाया है।

(iii) मुद्रा एव विनिमय अनुपात

जो वस्तु विनिमय माध्यम मूल्य के मापन तथा मूल्य के सग्रह हेतु सरकार द्वारा मुद्रा घोषित की जाती है तथा जनता जिसे स्वीकार करती है उसे मुद्रा कहते है।

आचार्य ने बताया कि लेनदेन के लिए राजा (सरकार) द्वारा निश्चित स्वर्णादि मुद्राये प्रत्येक वस्तु *की मूल्य समझी जाती है (व्यवहारे चाधिकृत स्वर्णाद्य मूल्यमागियात्।* 2 357) स्वर्णादि से तात्पर्य सात धातुओ (सोना चादी ताम्बा वग सीसा रागा एव लोहा)

से हैं। बाकी धातुये इनके मेल से बनती हैं। मुद्रा (सिक्के) इन धातुओ से ही बनते है। लोहे के अतिरिक्त सभी धातुये श्रेष्ठ होती हैं परन्तु सोना सर्वश्रेष्ठ धातु माना जाता है। यंत्र तथा शास्त्र का रूप लेने पर लोहे का मूल्य अत्यधिक बढ जाता है। चादी से सोलह गुना मूल्य सोने का होता है। प्राय ताम्बे से अस्सी गुना अधिक मूल्य चादी का होता है। वग से डेढ गुना अधिक मूल्य ताम्बे का होता है। वग से अन्य सगा तथा सीसा क्रमश ताम्र से द्विगुण तथा त्रिगुण मिलते हैं और लौह छ गुने मिलते हैं। यह विशिष्ट रूप से मूल्य कहा गया है। इस प्रकार आचार्य ने धातुओ के विनिमय अनुपात उनकी श्रेष्ठता के आधार पर निश्चित किये हैं।

धातुओ के विनिमय अनुपात की तरह ही आचार्य ने पशुओं के मूल्यों का निर्धारण उनके गुण दोष के आधार पर तय किया है। आचार्य ने पशुओ को भी धन की सज्ञा दी है। उदाहरण के लिए सुन्दर सींग तथा वर्णवाली, दुहने मे क्लेश नही पहुँचाने वाली, अधिक दूध देने वाली, सुन्दर बछडे वाली गाय का मूल्य अधिक होता है। पीत वर्ण के बछडे वाली गौ यदि अच्छा दूध देने वाली हो तो उसका मूल्य पल (4 तोला) चादी है।

बकरी का मूल्य गौ के मूल्य से आधा होता है तथा भेडी का मूल्य बकरी से आधा होता है। भैंस का मूल्य उत्तम मूल्य गौ के बराबर या डेढ गुना अधिक होता है। उसी तरह बैल घोडे, हाथी व ऊँट के मूल्य भी तय होते हैं।

गौ का उत्तम मूल्य 10 या 8 पल चादी बैल का 60 पल चांदी, हाथी व घोडे का श्रेष्ठ मूल्य 2,3, या 4 हजार पल चादी ऊँट का मूल्य 100 पल चादी होता है।

इस तरह आचार्य शुक्र ने धातु विनिमय अनुपात तथा वस्तु विनिमय अनुपात मे सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया है।

(iv) व्यापार

आचार्य का कहना है कि राजा को कभी भी क्रय–विक्रय के लिए रखी हुई वस्तुओ को बिना धन (मूल्य) दिये हुए वैश्यो से जबर्दस्ती नहीं लेना चाहिए। यदि राजा बिना मूल्य दिये ले लेता है तो उससे उत्पन्न हुई प्रजा सन्तापरुपी अग्नि वश के सहित उस राजा को जला देती है। उक्त सिद्धान्त से आज की तरह प्रशासन व्यापारी को बेवजह से तग नही कर सकता था। राजा को यदि किसी वस्तु की आवश्यकता होती थी उस पर भी उस वस्तु का मूल्य देने की बाध्यता थी जबकि आजकल भ्रष्टाचार इतना बढ गया है कई तरह के शासनाधिकारी अपने उपभोग के लिए वस्तुएं व्यापारियो से बिना मूल्य दिये ही ले जाते है।

आचार्य शुक्र ने व्यापारियो को मोलभाव करते समय आवश्यक निर्देश जारी किये हैं।

शुक्र के अनुसार किसी वस्तु को क्रय–विक्रय मे अत्यत आग्रह एव हर किसी के सामने अपनी दीनता प्रकट नही करनी चाहिए क्योंकि इससे लाभी के बजाय हानि होती

(iii) नौकरी और वेतन आदि के नियम

राज्य कर्मचारियों के लिए आचार संहिता--शुक्र ने राज्य कर्मचारियों के लिए एक आचार संहिता की रचना की है। अलग--अलग पदो के लिए आवश्यक योग्यताओ के अतिरिक्त राज्य--कर्मचारियो के आचरण के सम्बन्ध मे भी कुछ सामान्य नियमों के पालन की अपेक्षा की गयी है।

शुक्रनीति मे कर्मचारियो को स्वास्थ्य ओर सफाई सम्बन्धी बातो पर उचित ध्यान देने का निर्देश दिया है। शासक की इच्छा के विपरीत भी उचित व कल्याणप्रद बात को राजा के समक्ष निर्भीकतापूर्वक कहने की योग्यता व सामर्थ्य को राज्य कर्मचारियों के लिए आवश्यक माना गया हे। शुक्रनीति मे कर्मचारियो से राजकीय कार्यों मे गोपनीयता के निर्वाह की भी अपेक्षा की गयी हे। शुक्रनीति मे निम्नलिखित गुणो से युक्त कार्मिक को श्रेष्ठ माना गया है।

शुक्र नौकरी का प्रारभ वेतन दिन अवकाश रोगी नौकर को अवकाश एव भृति सवेतनिक अवकाश नियमानुसार भृति न करने वाले के लिए दण्ड--व्यवस्था नौकर--स्वामी के मधुर सम्बन्ध इत्यादि पर शुक्रनीति मे क्रातिकारी विचार प्रस्तुत किये है।

बन्दी मागध तथा मल्ल आदि लोगो को अपना--अपना कार्य करने पर जो पुरस्कार दिया जाता है उसे 'पारितोष्य कहते है। और जो यश के लिए दिया जाता है उसे श्रियादत्त कहते हैं। राजा बलवान ओर कार्य को नष्ट करने वाला इन लोगो को जो कार्य के लिये दिया जाता हे अथवा न देने मे पाप है' इस भय से दिया जाता है उसे भीदत्त भय से दिया हुआ कहा जाता है। देवता यज्ञ ब्राह्मण गो इनके लिए जो दिया जाता है वह परलोक सुख साधन के लिये होता है और उसी को 'सविद् दान अर्थात अवश्य देना चाहिये इसे बुद्धि से दिया हुआ कहते हैं।

शुक्र के अनुसार वेतन कर चुगी सूद बल और छल से दूसरे को दबाकर पीड़ा नही पहुँचानी चाहिये। इससे स्पष्ट होता है कि वे श्रमिक से जितना कार्य लिया जाता हे उतना वेतन देने के समर्थक थे श्रमिको के शोषण के पक्ष म नही थे।

(iv) पदोन्नति

शुक्रनीति मे कार्मिको की समयबद्ध पदोन्नति के बारे मे भी स्पष्ट प्रावधान किया है। नीति के अनुसार जब कोई कार्मिक अपने अनुभव के आधार पर अपने पद से श्रेष्ठ हो जाये तो उसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ पद पर नियुक्त किया जाना चाहिये। गुणो से युक्त सत्य बोलने वाला उच्च वश मे उत्पन्न सुशील उत्तम कर्म करने वाला आलस्य रहित जिस भांति अपने कार्य में यत्न करता है उससे अधिक कायिक वाचिक तथा मानसिक चौगुने यत्न के साथ स्वामी का कार्य करने वाला केवल वेतन मात्र से ही सतुष्ट रहने वाला मधुरभाषी कार्य करने मे चतुर पवित्र चित्तवाला कार्य करने मे स्थिर विचार रखने वाला परोपकार करने मे निपुण अन्याय--पथ पर चलने वाले स्वामी को सत्यपथ पर चलाने मे यत्नशील स्वामी की बातो पर आक्षेप नही करने वाला और उनकी त्रुटियो को देखकर

कभी किसी के सामने प्रकाशित न करने वाला अच्छे कार्यो मे शीघ्र तथा बुरे कार्यो मे देर लगाकर कार्य करने वाला, स्वामी के भार्या, पुत्र मित्र के दोषो को भी नही देखने वाला स्वय अपनी प्रशसा नही करने वाला स्वामी या स्वामी के सम्बन्धीजनो के साथ स्पर्धा या उनके गुणो मे दोषारोपण या निदा नही करने वाला दूसरे के अधिकार पाने की लालसा नही रखने वाला, नि स्पृह होकर सदा प्रसन्न रहने वाला, स्वामी के समक्ष उसके दिये हुये वस्त्र और भूषणादि को सदा धारण करने वाला वेतन के अनुसार व्यय करने वाला इंद्रियो का दमन करने वाला, दयालु, शूर और स्वामी के अनुचित कार्यो को एकात मे उसके सामने सूचित करने वाला सेवक श्रेष्ठ कहलाता हे और उपर्युक्त गुणो के विपरीत गुणो वाला सेवक निन्ध कहलाता है। शुक्र के अनुसार बिना विचारे अचानक कार्य करने वाला रिश्वतखोर जुआरी, कायर लोभी निदक सेवक के लक्षण होते हैं।

शुक्र ने राजा के कर्मचारियो के बारे मे लिखा है कि राजा कर्मचारी को किसी पद पर ज्यादा दिन तक रहने न दे तथा कार्य के लिए समर्थ देखकर ही उसे किसी कार्य पर रखे। राजा कार्यकुशल व्यक्ति को ही कर्मचारी नियुक्त करे। कर्मचारी का पुत्र पिता तुल्य कार्य करने वाला हो तो उसके कार्य पर उसी को नियुक्त करे। जब कोई नया कर्मचारी जैसे–जैसे अपने से श्रेष्ठ पद के योग्य होता जाये वैसे–वैसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ पद पर उसे नियुक्त करे। इस प्रकार शुक्र ने पदोन्नति मे कार्यकुशलता को महत्त्व दिया है।

सुनने मे प्रिय, सत्य तथा हितकारक, धर्म एव अर्थ से युक्त वचन सदा राजा को कहे। जो जिस कार्य पर नियुक्त किया गया हो वह उस कार्य के करने में तत्पर रहे किसी दूसरे के अधिकार छीनने की इच्छा न करे। किसी की त्रुटि पर ध्यान न दे बल्कि अपनी शक्ति से उसकी त्रुटि को दूर करे क्योकि दूसरे के साथ उपकार करने से बढकर दूसरा कोई मित्रता करने वाला कार्य नही हे। जिस किसी का अन्न यदि आदर के साथ एक बार भी खा लिया जाय तो उसका हित नित्य चितन करना उचित होता है। सेवा मे आलस्य करने से मुख्य सेवक भी अप्रधान सेवक हो जाता है। गुप्त रूप से विचार किये हुये किसी राजकार्य को अपने मित्र से नही कहना चाहिये। वेतन को छोडकर राजा के किसी धन को बिना उनके दिये लेने की इच्छा भी नही करनी चाहिये। राजा की आज्ञा के बिना कार्य के मध्य मे अर्थात बिना कार्य समाप्त किये वेतन लेन की इच्छा न करे और द्रव्य के लोभ से किसी के अच्छे कार्य को नष्ट न करे। सकट काल मे अपनी स्त्री पुत्र धन तथा प्राण देकर भी राजा की रक्षा करे। घूस न ले ओर राजा को वस्तुस्थिति से विपरीत न समझाये। जिस कार्य से केवल राजा का हित होता हो पर प्रजा का अहित हो ऐसे कार्य को राजा से न कराये क्योकि नवीन कर तथा चुगी आदि लगाने से प्रजा उद्विग्न हो उठती है।

सेवक को बिना लिखित राजाज्ञा के कभी कोई कार्य नहीं करना चाहिये तथा राजा को भी बिना लिखे छोटी या बडी कोई भी आज्ञा नही देनी चाहिय। क्योकि भ्रम हो जाना

मनुष्य का स्वभाव है इसलिये भ्रम–निवारणार्थ निर्णय करने मे लेख बहुत बडा प्रमाण सिद्ध होता है। शुक्र के अनुसार जो राजा बिना लिखे आज्ञा देता है और जो सेवक बिना लिखित राजाज्ञा के अनुसार राजकार्य करता है वे दोनों ही चोर है। राजमुद्रा से अकित राजाज्ञा है। वही वस्तुत राजा है किन्तु राजा–राजा नही है।

शुक्र ने कार्य करने की प्रकृति के अनुसार सेवको मे भेद किया है। मद (धीरे–धीरे कार्य करने वाला सुस्त) मध्य (न धीरे और न जल्दी कार्य करने वाला) और शीघ्र (शीघ्र कार्य करने वाला) इस प्रकार सेवक तीन प्रकार का होता है अत इन सबकी क्रम से समा मध्या तथा श्रेष्ठा नामक तीन प्रकार की आजीविका देना उचित माना है।

(v) अवकाश

शुक्रनीति मे सेवको को छुटटी देने के नियमो का भी उल्लेख किया है। सेवको से प्रतिदिन अपना ग्रह कार्य करने के लिये दिन मे एक प्रहर (तीन घटे) की और रात्रि मे तीन प्रहर की छुटी देनी चाहिये। देनिक सेवको (रोजाना मजदूरी पर कार्य करने वालो) को दिन मे आधा प्रहर (डेढ घटे) की छुटटी देनी चाहिये।[5]

बोनस (अधिलाभ) तथा ग्रेच्यूटी – शुक्र ने राजा को राज्य–कर्मचारियों को बोनस तथा ग्रेच्यूटी प्रदान करने का भी निर्देश दिया है। उनके अनुसार शासक प्रतिवर्ष कर्मचारियो को एक पखवाडे का वेतन बोनस के रूप में प्रदान करे।[6] बोनस के अलावा वेतन का अष्टमाश कर्मचारियो को प्रतिवर्ष ग्रेच्यूटी के रूप मे दिये जाने की व्यवस्था की गयी है। शुक्र ने कर्मचारी के रोगग्रस्त होने पर वेतन देने के इस प्रकार नियमों का उल्लेख किया है – पाच वर्ष तक कार्य करने वाले सेवको की पीडित अवस्था (बीमारी की स्थिति) में चतुर्थांश कम वेतन दे और एक वर्ष तक पीडित हो तो उन्हे तीनमास का वेतन (चतुर्थांश) दे। पीडा आदि की जैसी न्यूनाधिकता हो उसके अनुसार वेतन देने में भी न्यूनाधिकता करनी चाहिये। एक वर्ष से अधिक रोगग्रस्त कर्मचारी को उसके छ माह तक का वेतन दिया जाना चाहिये तथा एक सप्ताह तक पीडित सेवका का वेतन नही काटना चाहिये। अत्यत योग्य सेवकों को एक वर्ष तक बीमार होने पर सदा उसको आधा वेतन देना चाहिये। शुक्र के अनुसार यदि कोई कार्मिक एक वर्ष तक के अवकाश पर हो तो उसे शुक्र ने यह अधिकार प्रदान किया है कि वह अपने स्थान पर अपने किसी प्रतिनिधि को राजकीय सेवा में नियुक्त करवा सके।

(vi) पेशन भविष्यनिधि व पारिवारिक पेशन

शुक्र ने कर्मचारियो को पेशन देने की भी शुक्रनीति में विवेचना की है। उनके अनुसार जिस सेवक ने सेवा करते हुये चालीस वर्ष बिता दिये हो उसे सेवानिवृत्त कर दिया जाये तथा राजा उसे बिना सेवा लिये आजीवन पेशन के रूप मे आधा वेतन सदा देता रहे और उसके बच्चे जब तक कार्य करने योग्य न हो जाये तब तक उन्हे अपने कल्याणार्थ सेवक के आधे वेतन से आधा वेतन दे। इसी प्रकार कर्मचारी की पत्नी एव अविवाहिता कन्या को भी पेशन का आधा वेतन देना चाहिए। शुक्र ने कर्मचारियो के लिए प्रतिपादित किया है कि राजकीय कार्य करने म यदि सेवक मर जाये जो उसके पुत्र को

उसके वेतन के बराबर राशि भुगतान की जाये जब तक कि वह बडा और कार्य करने योग्य न हो जाय अथवा बडा हो जाय।

कर्मचारी को समय पर वेतन देने का भी शुक्रनीति मे वर्णन किया है। शुक्र ने कर्मचारियो के लिए भविष्यनिधि की व्यवस्था किये जाने पर भी बल दिया है। नीति मे स्पष्ट व्यवस्था की गयी है कि कर्मचारियो के वेतन का षष्टाश या चतुर्थांश काटकर राजकीय कोष मे जमा किया जाना चाहिये और कुछ वर्षो की अवधि के बाद यथा अवसर पर एकत्रित राशि को पूर्ण या आशिक रूप से कर्मचारी को वापिस की जानी चाहिये।

8. ऋण व ब्याज

शुक्रनीति मे व्यापार के नियमो अथवा उत्पादन करने के नियमो के साथ-साथ मूलधन और पूँजी (उत्पादन की लागत) पर ब्याज के नियमो का भी निर्धारण किया गया है। शुक्र ने मनुष्य के धनवान बनने के लिए जिन वृत्तियो का वर्णन किया है उसमे ब्याज पर रुपया उधार देना, खेती करना सुन्दर विद्या उपार्जन दुकानदारी सगीत आदि कला के द्वारा, दान लेकर मनुष्य धनवान बन सके और उसी के अनुकूल कार्य करे। शुक्र के अनुसार व्यवसाय करने वालो के लिये लेख से बढकर दूसरा कोई स्मरण सूचक चिन्ह नहीं है इसलिये बुद्धिमान को सदा बिना लेख के व्यापार हेतु लेनदेन नही करना चाहिये। मित्रता के नाते मागने पर मित्र के लिये बिना ब्याज पर धन देना चाहिये और यदि उस मित्र के ऊपर पैसा बिना ब्याज धन शेष हो तो भी पुन देना हानिकारक नही है।

ऋण लेने वाले को ब्याज देने मे समर्थ देखकर सदा बधक या किसी के जमानत पर और किसी की गवाही के साथ लिखा पढी करके उचित मात्रा मे सुखपूर्वक लौटाने लायक धन देना चाहिये। इनके बिना धन उधार नही देना चाहिये नही तो मूलधन नष्ट हो जाने की सभावना रहती है। शुक्र के अनुसार व्यापारी लोग मूलधन से व्यापार करते हैं मात्र ब्याज पर अपना सारा मूलधन नही लगाते हैं। शुक्र ने सगृहीत धन की रक्षा की भी शुक्रनीति में व्याख्या की है। उनके अनुसार सग्रह किये हुये धन आदि की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये क्योकि इनके सग्रह करने मे बहुत दु ख उठाना पडता है और उससे चौगुना दु ख उसकी रक्षा मे उठाना पडता है।

शुक्र ने राजा को यह निर्देश दिया है कि जब मूलधन से चौगुनी वृद्धि (ब्याज) धनिक ने ऋण लेने वाले से ले तो उससे अधिक धन लेने के लिए धनिक को रोक दे अर्थात् ऋण चुकता होने पर ऋणी धनी को अधिक नही देवे।

ब्याज की प्राप्ति सचित धन से होती है अत आचार्य ने कहा है कि सचित धन की रक्षा के लिए लिख लेने के बाद लोभ से रहित धनी पुरूष विश्वासपात्र या क्षमावान तथा राजा के पास रखना चाहिए। (3 190)

आचार्य का कहना है कि अपने सचित धन की जानकारी अपनी स्त्री पुत्र या मित्र तक को भी नही होनी चाहिए। यह प्रयत्न होना चाहिए कि उस धन को बढाने के लिए

लिखा–पढी के साथ सूद (ब्याज) पर दे देना चाहिए तथा घर पर नही रखना चाहिए। यदि स्त्री पुत्र या मित्र को सचित धन की जानकारी हो गयी तो उसकी रक्षा होना सभव नही हो सकेगा। (3 188)

ऋण लेने वाले सूद देने मे समर्थ देख कर सदा बन्धक या किसी के जमानत पर और किसी के गवाही के साथ लिखा–पढी करके उचित मात्रा मे सुखपूर्वक लौटाने लायक धन देना चाहिए। तथा ब्याज के लोभ मे उपर्युक्त रीति से भिन्न अवस्था मे धन नही देना चाहिए नही तो मूलधन नष्ट होने की सभावना रहती है। (3 192–193)

इस प्रकार वास्तव मे आचार्य ने मूलधन की रक्षार्थ उस जमाने मे ही सुरक्षित अग्रिम (Secured Advances) की चर्चा कर दी थी।

मित्रता को स्थायी बनाने के लिए आचार्य ने सलाह दी है कि मित्र को दूसरे मित्र से शाश्वत मैत्री रखने के लिए आपस मे धन का लेनदेन (ऋणादि) नही करना चाहिए। परन्तु आचार्य ने आगे यह भी कहा है कि मित्रता के नाते मागने पर मित्र को बिना सूद पर धन सदा देना चाहिए। यदि उस मित्र पर बिना सूद पर लिया गया धन बहुत–सा बाकी पडा हो तो भी पुन देना हानिकर नही है। अर्थात मित्र के लिए सभी सत्य है। ।। 3 191 ।। परन्तु आपस मे मित्रो मे परस्पर क्लेश नही पहुँचे अत सूद पर या बिना सूद पर ऋण देने वाले (महाजन) को बिना साक्षी तथा बिना ऋणपत्र पर लिखाये ऋण नही देना चाहिए।

9 आय

आचार्य शुक्र के अनुसार प्रतिवर्ष–प्रतिमास तथा प्रतिदिन जो सोना पशु तथा धान्य आदि जो अपने अधीन हो जाता है अर्थात अपने पास आता है उसे **आय** कहते हैं। तथा जो सोना पशु एव धान्य दूसरो के अधीन कर दिया जाता है उसे **व्यय** कहते हैं।

आय दो प्रकार की होती है – प्रथम तात्कालिक तथा द्वितीय प्राचीन जिसे सचित भी कहते है। सचित आय तीन प्रकार की होती है – एक निश्चितान्य स्वामिक (जिसका दूसरा कोई स्वामी निश्चित है) दूसरी अनिश्चित स्वामिक (जिसके स्वामी का निश्चय नही है) तीसरी स्व–स्वत्वनिश्चित अपना स्वत्व जिस पर निश्चित है अर्थात निजी आदि सचित आय के भेद है।

निश्चितान्यस्वामिक आय भी तीन प्रकार की होती है जैसे औपनिध्य याचितक एव औतमर्णिक। जो धन किसी सज्जन द्वारा विश्वास मानकर किसी के पास रखा जाता है वह औपनिधिक (औपनिध्य) कहलाता है। जो बिना सूद का दूसर से अलकार आदि (रुपया आदि) लिया जाता है वह याचित कहलाता है तथा जो सूद पर ऋण लिया जाता है वह औतमर्णिक कहलाता है। जो मार्ग आदि म किसी का भूल से छूट गया गिरा हुआ किवा कही पर गढा हुआ निध्यादि धन मिल जाता है वह अज्ञातस्वामिक अर्थात अनिश्चित स्वामिक कहलाता है।

स्वत्वनिश्चित अर्थात स्व–स्वत्वनिश्चित किंवा निश्चितस्वत्व धन दो प्रकार का होता है जैसे साहजिक एव अधिक। जो धन का आय दाय (पैत्रिक सपत्ति मे से अपने हिस्से) या वृत्ति (व्यवसाय) के द्वारा निश्चित रूप से दिन, मास अथवा वर्ष में होती है वह साहजिक आय कहलाती है। जो आय दाय (पैत्रक धन) एव परिग्रह (दान लेने) से बिना क्लेश के प्राप्त होती हे उसे उत्तम स्वभावज (साहजिक) कहते हैं।

जो आय उचित मूल्य से अधिक रूप मे या सूद रूप में किंवा यज्ञ आदि कराने से प्राप्त होती है एव पारितोषिक (इनाम) या वेतन किया युद्ध आदि से जीत के रूप में प्राप्त धन है वह अपने स्वत्व से अधिक होने से अधिक आय कहलाती है। इससे अन्य रीति से जो धन प्राप्त होता है वह साहजिक कहलाती है।

सचित धन भी दो प्रकार का होता है – प्रथम, पूर्व वर्ष का शेष तथा वर्तमान वर्ष का सचित धन। अधिक व साहजिक भेद से पूर्वोक्त दो प्रकार की जो आय हे वे प्रत्येक पार्थिव (स्थावर) तथा इतर (चल) दो प्रकार की होती है। जो भूमि के भागो से प्राप्त होती है उसे पार्थिव आय कहते हें। पार्थिव सज्ञक आय मे देवालयो, कृत्रिम वस्तुओ, जल देश, ग्राम तथा पुरो के भूमि सम्बन्धी विभागो की आय शामिल है। चल सज्ञक आय में व्यवसायी वर्ग से प्राप्त होने वाले शुल्क (चुगी, टैक्स), दण्ड (जुर्माना) खान कर (मालगुजारी), भाटक (भाडा) उपायन (नजर–भेंट) आदि चल या इतर आय कहते है।

10. व्यय

व्यय की चर्चा करते हुए शुक्र ने निर्देश दिया कि हृदय मे उदारता रखकर और ऊपर से कृपणता (कजूसी) रख कर समय आने पर उचित व्यय मनुष्य को करना चाहिए अन्यथा नहीं करना चाहिए।

व्यय दो प्रकार का होता हे – एक पुनरावर्तक (फिर लौट कर आने वाला), दूसरा स्वत्वनिवर्तक (देने वाले के स्वत्व को निवृत करने वाला) कहलाता है। जो व्यय निधि, उपनिधि एव विनिमय रूप मे हुआ है एव सूद सहित व बिना सूद का ऋण आदि पुनरावर्तक व्यय कहलाता है। स्वत्वनिवर्तक व्यय के अन्तर्गत–निधि व्यय उसे कहते हैं जो पृथ्वी मे गाढ दिया जाता है इसे उत्पन्न कष्ट पडने पर भी ग्रहण नही किया जाता अत यह भी एक प्रकार का व्यय है। उपनिधि व्यय वह है जो दूसरे के पास रखा हुआ है। विनिमय कृत व्यय वह है जो दिये हुए मूल्यादि से बदले मे मिला हुआ है। सूद पर या बिना सूद के जो धन दिया गया है उसे आधमर्णिक व्यय कहते हैं। इसमे सूद पर जो दिया जाता है उसे ऋण तथा बिना सूद पर दिया जाता है उसे याचित (हाथ उधार) कहते है ।। 2 337–345 ।।

स्वत्वनिवर्तक व्यय दो प्रकार का होता है –प्रथम एहिक तथा द्वितीय पारलौकिक। एहिक व्यय मे प्रतिदान पारितोष्य–वेतन तथा भोग्य व्यय शामिल हे तथा पारलौकिक व्यय में जप, होम, पूजन तथा दान मे होने वाला व्यय शामिल हे।

मूल्य रूप मे जो दिया जाता है उसे प्रतिदान कहते है। सेवा तथा शूरता आदि से प्रसन्न होकर जो दिया जाता है उसे पारितोषिक (पारितोष्य) कहते है भरण-पोषणार्थ जो भृत्यो को दिया जाता है उसे वेतन कहते है।

धान्य वस्त्र गृह बगीचा गौ गज आदि तथा रथ के लिए एव विद्या तथा राज्य आदि के उपार्जन के लिए एव धन आदि की प्राप्ति के लिए जो व्यय किया जाता है उसे उपभोग्य कहते है। जो व्यय जाकर पुन आने वाला हो उसे विशेष व्यय कहते है तथा जो आय आकर पुन जाने वाली हो उसे विशेष आय कहते है।

11 बचत

आचार्य ने उपभोग के अतिरिक्त बचत पर भी अपना ध्यान केंद्रित किया। उन्होने नित्य 'कण-कण' भर सग्रह पर धन अर्जन पर जोर दिया। बचत का महत्व आचार्य के इस वाक्य से स्पष्ट है कि भविष्यकाल मे रक्षा करने मे समर्थ धन की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए और 100 वर्ष तक मै तो जीऊगा एव धन से आनन्द करुगा-इस बुद्धि से धन और विद्या आदि का 25 वर्ष पर्यन्त या उसका आधा 12½ वर्ष या उसका आधा 6¼ वर्ष पर्यान्त सदा सग्रह करना चाहिए (3 178-179)

यद्यपि यह सही है कि बचत मे वृद्धि तब ही सभव है जबकि हम कृपणता (कजूसी) से व्यय करे। परन्तु आचार्य ने अति कृपणता को निन्दनीय माना है । 3 219 ।।

बचत एव व्यय के प्रति सोच आचार्य के इस निर्देश से प्रकट होती है कि बुद्धिमान व्यक्ति थोडे से कार्य के लिए बहुत अधिक धन की प्राप्ति का त्याग न करे तथा अभिमान से छोटे कार्य को सिद्ध करने के लिए अधिक धन का व्यय व्यर्थ नही करे अर्थात् छोटे से कार्य के लिए भी अधिक धन प्राप्ति का लक्ष्य रखना चाहिए तथा उसको सिद्ध करने के लिए उस पर कम से कम व्यय करना चाहिए। तथा सदा 'बहुत धन का व्यय होगा' इस भय से सत्कीर्ति की प्राप्ति का त्याग न करे अर्थात अधिक धन के व्यय से सत्कीर्ति प्राप्त होती है तो व्यय करना चाहिए।

12 कोश कर एव शुल्क

किसी भी एक समान वस्तुओ के समूह को कोश कहते है वह पृथक-पृथक अनेक प्रकार का होता है।

राजा को किसी भी प्रकार से धन एकत्र करना चाहिए तथा उस धन से राष्ट्र सेना तथा यज्ञादि कर्मो की रक्षा करनी चाहिए। (4 4 3) अत सेना प्रजा की रक्षा तथा यज्ञ के लिए जो कोश सग्रह किया जाता है वह राजा के लिए इस लोक तथा परलोक दोनो के लिए सुखप्रद होता है इससे भिन्न कार्य के लिए किया हुआ कोश सग्रह दु ख प्रदान करता है।

जो कोश सग्रह स्त्री-पुत्र के लिए एव केवल मात्र उपभोग के लिए किया जाता

है उसे केवल नरक देने वाला समझना चाहिए क्योंकि वह परलोक मे सुखप्रद नही होता है।

कोश की वृद्धि की चर्चा करते हुए आचार्य ने बताया कि जिसने अन्याय से धनार्जन किया है वह पाप का भागी होता है और जो धन सुपात्र से लिया जाता है तथा सुपात्र को दिया जाता है वही धन बढ़ता है। न्याय से धनार्जन करने वाला तथा सत्कार्य मे व्यय करने वाला व्यक्ति सुपात्र कहलाता है तथा इसके विपरीत अन्याय से धनार्जन करना तथा कुमार्ग पर धन व्यय कने वाला कुपात्र होता है।

कोश सग्रह के सम्बन्ध मे आचार्य ने आगे बताया कि बिना विशेष आपत्ति पडे प्रजा पर अधिक जुर्माना, मालगुजारी या चुगी बढ़ाकर एव तीर्थस्थान तथा देवोत्तर सम्पत्ति पर कर लगाकर राजा को अपना कोश नहीं बढ़ाना चाहिए।

जिस समय राजा शत्रु का विनाश करने के लिए सेना की रक्षा करने मे तत्पर हो उस समय विशेष प्रकार का अधिक जुर्माना या चुगी लगाकर प्रजा से धन का हरण करे तो उचित है।

इसके अतिरिक्त अपने ऊपर आपत्ति आ पडने पर 'मै सूद दूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर धनिको से उस धन को जबरदस्ती राजा को ले लेना चाहिए तथा जब आयी हुई आपत्ति पार कर जाय उस लिये हुये धन को सूद सहित धनिक को लौटा देना चाहिए।

कोश सग्रह की सीमा के बारे मे आचार्य ने कहा कि बिना जुर्माना, मालगुजारी तथा चुगी से प्राप्त धन के भी केवल राजा के कोश से ही 20 वर्ष तक सेना की रक्षा भली भाति जितने से हो सकती है उतने कोश का तथा अपनी प्रजा की रक्षा के लिए उपयुक्त सग्रह करना उचित है।

प्रजा सरक्षण मे कोश की महत्ता का बखान करते हुए आचार्य ने लिखा है कि कोश का मूल सेना है अर्थात सेना से ही कोश सग्रह होता है और सेना का मूल कोश है अर्थात कोश के द्वारा सेना का सग्रह होता है तथा सेना एव कोश की रक्षा करने से कोश तथा राष्ट्र की वृद्धि तथा शत्रुओं का नाश होता है तथा प्रजा की रक्षा करने से पूर्वोक्त कोश राष्ट्र शत्रु का नाश तीनो होते हैं तथा अन्त मे स्वर्ग भी मिलता है।

कोश वृद्धि मे गुणात्मकता का जिक्र करते हुए आचार्य शुक्र ने बताया कि जो माली की भाति व्यवहार रखकर अर्थात अपने बाग के वृक्षो को सींच कर जैसे माली उसकी रक्षा करता है उसी भाति प्रजा की रक्षा करने के साथ-साथ शत्रु को कर (मालगुजारी) देने वाला बनाकर उनके धनो से कोश बढ़ाता है वह भृत श्रेष्ठ कहलाता है, जो वैश्य वृत्ति व्यवसाय आदि से कोश बढ़ाता है वह राजा मध्यम एव सेवा से तथा जुर्माना, तीर्थ स्थान, तथा देव मन्दिरो पर कर लगाकर जो कोश बढ़ाता है वह अधम राजा कहलाता है।

धनार्जन के आधार पर प्रजा का वर्गीकरण करते हुए आचार्य ने बताया कि हीन धन तथा मध्यम धन वाली प्रजा की रक्षा राजा को वेतन देकर राजा को स्वामी की भाति

करनी चाहिए अर्थात निम्न आय वर्ग तथा मध्यम आय वर्ग के बीच प्रजा व राजा का सम्बन्ध प्रजा–स्वामी का होना चाहिए तथा अधिक धन वाली उत्तम प्रजा की रक्षा जामिनदार (गारटर) होकर करनी चाहिए क्योकि उत्तम धनवाली धनिक प्रजा राजा से न हीन तथा न अधिक समर्थ होती है अत वह राजतुल्य होती है।

कर एव शुल्क – सदा कर ग्रहण का अभिलाषी राजा प्रथम भूमि का नाप कर और उससे बहुत मध्यम या कम पैदावार को समझ कर पश्चात तदनुसार कर का निश्चय करे तथा कृषक से उतना ही कर वसूल करे जितने से वह नष्ट (क्षतिग्रस्त) न होवे। (4 108–109)

कर की मात्रा के सम्बन्ध मे आचार्य शुक्र का मत था कि जिस प्रकार माली जैसे लता आदि से थोडा–थोडा फूल चुनता है उसी भाति राजा भी थोडा कर लेवे किन्तु जैसे कोयला बनाने वाला सपूर्ण वृक्षो को जड सहित जलाकर कोयला बनाता है वैसे सम्पूर्ण आयकर रूप में न लेवे। और बहुत मध्यम तथा कम पैदावार के तारतम्य को समझ कर तदनुसार ही कर लेवे (4 2 110)। कृषि पर कर लगाने से पूर्व राजा को कृषि पैदावार की श्रेष्ठता की जाच कर लेनी चाहिए। इस सम्बन्ध मे शुक्र का कहना है कि राजा का कर (मालगुजारी) आदि सम्पूर्ण व्यय को काटकर जिस खेती से दुगना लाभ हो वह उत्तम खेती कहलाती है इससे कम लाभ होने पर कृषको को दु ख देने वाली खेती हो जाती है। (4 2 111)

आचार्य ने कृषि पैदावार की श्रेष्ठता की बात की बल्कि सिचाई की स्त्रोतो के अनुसार कृषि भूमि पर कर लगाने का सुझाव दिया। उनका कहना था कि राजा क्रमानुसार सदा तडाग (तालाब) वावडी या कूप के जल से सीचे जाने वाले खेतो से तृतीयाश वर्षा से सिचाई होने वाले खेतो से चतुर्थाश तथा नदी से सिचाई होने वाले खेतो से उपज का आधा अश एव बजर तथा पथरीली जमीन से होने वाली आय का छठा अश कर रूप मे ग्रहण करे। (4 2 112–113)

जिस कृषक से राजा को 100 रुपये कर चादी (चादी का रुपया) कर रूप मे मिलता है तो उस (कृषक) के लिए राजा अपने कर मे से बीसवा भाग (5 रुपये) अपनी ओर से दे देवे।

खानो से प्राप्त आय मे से कर की बात करते हुए आचार्य ने कहा कि व्यय को काटकर खान से उत्पन्न होने वाले सोना से आधा अश चादी से तृतीयाश ताम्बा से चतुर्थांश लोहा वग तथा सीसा से षष्ठाश रत्नो से तथा क्षार पदार्थ जैसे नमक आदि से आधा अश एव कृषक आदि की लाभ की अधिकता देखकर तदनुसार तृतीयाश पचमाश सप्तमाश या दसमाश कर राजा को ग्रहण करना चाहिए। (4 2 116)

इनके अतिरिक्त तृणकाष्ठ आदि लाकर बेचने वालो से 20 वा अश कर लेना चाहिए। उपर्युक्त वस्तुओ के अतिरिक्त आचार्य ने पशुधन से भी कर वसूल करने की बात की। आचार्य के मतानुसार बकरी भेड गौ भैस तथा घोडो की वृद्धि मे से अष्टमाश कर

राजा ग्रहण करे। भैंस, बकरी, मेड तथा गाय के दूध मे से 16 वा भाग कर ग्रहण करे।

आचार्य शुक्र कुछ मामलो मे कर की राशि नकद प्राप्त करने की बजाय राज्य की सेवा के रूप में लेने का भी सुझाव दिया। उदाहरण के लिए शुक्र के मतानुसार कारू (बढई) तथा शिल्पी (चित्रकार आदि) के वर्गों से हर एक पक्ष (15 दिन) मे एक दिन कर रूप मे उनसे मुफ्त मे काम करा लेवे। और जो राज्य की उन्नति के लिए तालाब, बावडी या कृत्रिम नदी (नहर) या इसी के समान और किसी दूसरे कार्य का निर्माण करते हैं उन लोगो से तथा जो नवीन भूमि को जोत कर खेती के योग्य बनाते हैं, उन लोगो से जब तक व्यय काटकर दूना लाभ न होने लगे तब तक कर नही लेना चाहिए। उसके बाद अधिक लाभ होने पर कर लेना चाहिए।

आय के कुछ स्त्रोतो को तत्काल वसूल करने की आचार्य शुक्र ने सिफारिश की है। उन्होने इस सम्बन्ध में बताया कि अपनी जमीन का हिस्सा अलग कराने, वेतन, चुगी, ब्याज, घूस या दलाली, कर (मालगुजारी) इन सब को तत्काल ले लेना चाहिए इनमे विलम्ब करना अनुचित है।

कर एकत्रीकरण के सम्बन्ध मे आचार्य ने बताया कि राजा को प्रत्येक किसान को मालगुजारी की रसीद लिखकर तथा उस पर अपनी मुहर लगाकर देनी चाहिए। अथवा ग्राम की सभी भूमि का कर नियत कर किसी एक धनिक से सभी कर ले लेना चाहिए तथा उस धनिक को किसान का जामिनदार (गारटर) मान लेना चाहिए जो राज कर को प्रतिमास या प्रति ऋतु सबसे अलग–अलग राजा को दिया करे ओर योग्यतानुसार सोलहवा बारहवा दशवा या आठवा अश जो राजा को मिलने वाला कर हो, उसका छठा भाग वेतन रूप मे देकर राजा को ग्रामपाल (मुखिया) या अधिकारी की नियुक्ति करनी चाहिए।

व्यापार करने वालो और ब्याज पर रुपया देने वालो से लाभाश का 32 वा अश (रुपये मे दो पैसा) कर राजा को ग्रहण करना चाहिए तथा ग्रह बनाने के लिए दी हुई भूमि का कर बोने के लिए दी हुई भूमि के समान ही लेवे।

राजा को दुकानदारो से दुकार की भूमि का कर भी वसूल करना चाहिए तथा यात्रियो से मार्ग की सफाई तथा रक्षा के लिए भी कर ग्रहण करना चाहिए।

परन्तु आचार्य ने राजा को यह भी निर्देश जारी किये हैं कि इन सब करों को ग्रहण कर नौकर की भाति उनकी रक्षा करनी चाहिए।

शुक्रनीति मे कर व्यवस्था के सम्बन्ध मे प्रतिपादित किये गये सकारात्मक एव निषेधात्मक नियमो को निम्नलिखित रूप से व्यक्त किया जा सकता है –

(1) आचार्य ने बताया कि परिवार के पालनार्थ रखी हुई गौ आदि के दूध के ऊपर किसी प्रकार का कर नही लेना चाहिए तथा अपने उपभोग के लिए धान्य तथा वस्त्र खरीदने वाले से भी कर नही लेना चाहिए।

(ii) भूमि को नापकर तथा अधिक मध्यम या कम पैदावार को समझ कर उसी अनुरूप कर का निश्चय करना चाहिये। कृषक से उतना ही कर लेना चाहिये जिससे उसे कष्ट न हो।

(iii) जिस प्रकार माली अत्यत यत्न से वृक्षो को बढाकर उससे फल तथा पुष्प का सग्रह करता है उसी प्रकार से प्रजा से भी शासक को कर व मालगुजारी ग्रहण करने वाला हो वैसा ही कराधिकारी नियुक्त करना चाहिए।

(iv) बिना आपत्ति पडे प्रजा के ऊपर अधिक जुर्माना मालगुजारी या चुगी बढाकर तीर्थ–स्थान तथा देवोत्तर सम्पत्ति पर कर लगाकर राजा को अपना कोष नही बढाना चाहिये।

(v) जिस प्रकार राजा शत्रु का विनाश करने के लिए सेना की रक्षा करने मे तत्पर हो उस समय विशेष प्रकार का अधिक जुर्माना या चुगी लगाकर प्रजा से धन लेना उचित है।

(vi) व्यापारी और ब्याज पर रुपया देने वालों से लाभाश का 32 वा अश कर राजा ग्रहण करे और गृह बनाने के लिये दी हुई भूमि का कर बोने के लिये दी हुई भूमि के समान ही ले।

(vii) राजा दुकानदारो से दुकान की भूमि का कर ग्रहण करे और यात्रियो से मार्ग की सफाई व रक्षा के लिए भी कर वसूल करे।

(viii) शासक प्रजा से कर ग्रहण कर नोकर की भाति उसकी रक्षा करे।

(ix) आपत्तिकाल मे राजा द्वारा प्रजा से लिये गये अधिक धन को आपत्तिकाल समाप्त होने पर प्रजा को ब्याज सहित धन को वापस करना चाहिए।

(x) शासक को सूझ–बूझ एव निपुणता से कोष बढाने का प्रयत्न करना चाहिये।

(xi) लकडी घास आदि लाकर बेचने वालो से शासक को 20 वा अश कर के रूप मे लेना चाहिये।

(xii) शिल्पी बढई आदि से शासक को 15 दिन मे एक दिन कर के रूप मे बिना वेतन दिये काम करवाना चाहिये।

(xiii) राजा द्वारा किसानो को मालगुजारी की रसीद लिखकर देनी चाहिये और ग्राम के किसी धनी को प्रतिभू बनाकर उसी के माध्यम से कर प्राप्त करना चाहिये।

(xiv) शासक को तडाग कूप या बावडी के पानी से सिचाई की जाने वाले खेतो से तीसरा भाग वर्षा द्वारा सिचित खेतो से चौथा तथा नदी से सिचित खेतो से उपज का आधा भाग और बजर व पथरीली जमीन से उपज का छठा भाग कर के रूप मे वसूल करना चाहिये।

(xv) गाय घोडो ओर बकरी की सख्या मे वृद्धि होने पर आठवा अश कर ग्रहण करे तथा दूध मे से सोलहवा भाग कर के रूप मे शासक वसूल करे।

(xvi) शासक को तालाब बावडी, नहर आदि के निर्माण करने वाले लोगो से तथा बजर व नयी भूमि को जोतकर खेती योग्य बनाने वाले कृषको से जब तक कर नही लेना चाहिये जब तक उन्हे उन पर किये गये व्यय से दुगना लाभ प्राप्त न होने लगे।

(xvii) अपने निजी उपभोग के लिये अनाज वस्त्र एव परिवार के लिए रखी गयी गायो के दूध पर शासक को कर नही लेना चाहिये।

(xviii) शासक को व्यय को निकालकर खानो से निकलने वाले सोने से आधा अश चादी से तीसरा ताबे से चौथा लौहा व सीसा से छठा रत्नो व नमक आदि से आधा अश कर लेना चाहिये। कृषक आदि से लाभ की अधिकता देखकर उसी के अनुसार तीसरा पाचवॉ, सातवॉ एव दसवा अश कर वसूल करना चाहिये।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शुक्र ने राज्य की कर–व्यवस्था को लोक–कल्याणकारी राज्य की अपेक्षाओ के अनुरुप स्वरुप प्रदान किया है। शुक्र की कर नीति मे निम्न बातो पर बल दिया गया है –

(अ) राष्ट्र की वृद्धि कोष से ही होती है। (ब) राज्य की आय–व्यय की जाच नियमित होती रहे। (स) कर वसूल करने वाले कर्मचारी ईमानदार एव कर्तव्यनिष्ठ होने चाहिये। (द) राजा की कर नीति मनमानी नही होनी चाहिये। (य) शुक्र की कर नीति दो प्रकार की है – (i) सामान्यकालीनकर नीति – करो की दर सामान्य होनी चाहिये तथा तीर्थों एव देवस्थानों को कर–मुक्त रखना चाहिये। (ii) आपत्तिकालीन कर नीति – आपातकाल मे विभिन्न करो की दरे बढायी जा सकती हैं, राज्य–कर्मचारियो के वेतन काटे जा सकते हैं और देवस्थानो एव तीर्थों पर भी कर लगाया जा सकता है।

शुल्क (चुगी)[19] – शुक्र के अनुसार बेचने तथा खरीदने वाले से राजा जो अपना अश लेता है उसे शुल्क (चुगी) कहते है। शुल्क (चुगी) सम्बन्धी विचारो को हम निम्न बिन्दुओ मे रखकर अध्ययन कर सकते हैं –

(अ) बेचने वालो के मूलधन मे जिससे कमी न आये ऐसे शुल्क (चुगी) को जो व्यापारियो से वसूल करने वाला हो उसे 'शौल्किक' अर्थात चुगी अधिकारी पद पर नियुक्त करना चाहिये।

(ब) शुक्र ने चुगी के स्थानो एव चुगी चोरी करने वालों पर दण्ड का प्रावधान भी किया है। उनके अनुसार शुल्क (चुगी) लेने वाला स्थान बाजार के मार्ग (खरीदने वालों से लेने के लिये) तथा कर सीमा (चुगी लगाने के स्थान की सीमा पर बना चुगी घर) जहॉ व्यापारियो से चुगी ली जाती है।

(स) समस्त वस्तुओ पर प्रयत्नपूर्वक एक बार ही चुगी लेनी चाहिये।

(द) अपने राज्य मे शासक कभी भी छल से बार–बार किसी वस्तु की चुगी न ले अर्थात एक वस्तु पर एक बार ही शुल्क वसूल करे।

(य) शासक को खरीदने एव बेचने वालो से वस्तु के मूल्य का 32 वा अश चुगी के रूप मे ग्रहण करे अथवा मूलधन को छोडकर लाभ मे से बीसवा या सोलहवा अश चुगी ले।

(र) जिस विक्रेता को मूलधन से कम या बराबर मूल्य वस्तु का मिले उससे चुगी न ली जाये और राजा थोडे मूल्य से अधिक द्रव्य को लाभ देख कर तदनुसार ही क्रेता से चुगी वसूल करे।

(ल) आपत्तिकाल मे राजा शत्रु का विनाश करने के लिए विशेष प्रकार की चुगी या जुर्माना लगा कर प्रजा से धन वसूल कर सकता है।

अन्य मदो से प्राप्त आय– शुक्र ने करो एव चुगी के अतिरिक्त अर्थ–दण्ड दान भेट अन्य राजाओ से प्राप्त कर दुष्ट पुरुषो के धन का हरण तथा दुष्ट राजाओ के धन के हरण को भी राज्य आय का साधन माना है जिनमे प्रमुख मदे इस प्रकार से है–

(अ) ***अन्य राजाओं से प्राप्त कर–*** शुक्र के अनुसार राजा शत्रु को जीतकर योग्यतानुसार उससे कर (मालगुजारी) ग्रहण करे और कभी–कभी योग्यतानुसार शत्रु के राज्य का आधा अश या सम्पूर्ण राज्य को ही अपहरण कर ले फिर शत्रु की प्रजा को हर प्रकार से प्रसन्न रखे। शुक्रनीति मे राजाओ से कर वसूल करने को शासक के आठ प्रकार के आचरणों मे माना है। शासक को अन्य अधर्मशील राजाओ से छल बल या अन्य वृत्ति से धन हरण करना चाहिये।[20]

(ब) ***अर्थदण्ड या जुर्माना–*** शुक्र ने अपराधियो के दण्ड से प्राप्त जुर्माना आदि से प्राप्त भाग को भी राज्य आय का साधन माना है। दण्ड के द्वारा बुरे आचरण से निवृत्ति और दमन होता है अत जिस उपाय से मनुष्य का भली–भाति दमन होता है उसे 'दण्ड' कहते हैं। यह दण्ड नामक उपाय राजा के अधीन रहता है क्योकि वही सबका स्वामी है। धन हर लेना झिड़कना अपमान उपवास कराना बॉधना मारना शहर या राज्य से निकाल देना दाग देना सिर मुडवा देना गदहे आदि पर चढा देना किसी का अग को कटवा देना प्राणदण्ड देना ये सभी उपाय दण्ड के ही भेद माने जाते हैं। दण्ड के भय से प्रजा अपने–अपने धर्मो मे रहती है और वह किसी दुर्बल पर आक्रमण तथा असत्य–भाषण नही करती है। क्रूर लोग कोमलता को धारण कर लेते है। दुष्ट लोग दुष्टता को छोड देते है डाकू लोग भाग जाते है चुगलखोर जवान बद कर लेते है आततायी लोग डर जाते है जो कोई कर नही देते हैं वे कर देने लग जाते है। अत राजा को नित्य धर्म रक्षार्थ दण्ड देने वाला होना चाहिये।

शुक्र के दण्ड सम्बन्धी विचारो को निम्नलिखित रूप मे व्यक्त किया जा सकता है–

(1) जो वर्णाश्रम तथा जाति के लोग अपने–अपने धर्म के विरूद्ध आचरण करते हैं वे राजा द्वारा दण्डनीय होते हैं।

(2) जिस स्थान पर धर्मशास्त्र के अनुसार अर्थशास्त्र की विवेचना अधिक रूप से की जाय उसे धर्माधिकरण (न्यायालय–कचहरी) कहते हैं।

(3) धर्मशास्त्र एवं सदाचार से विरूद्ध मार्ग का आश्रय लेकर दूसरों के द्वारा पीडित किये जाने पर यदि कोई राजा के पास न्यायालय में आवेदन पत्र देता है उसे 'व्यवहार पद' (मुकदमा दायर करना) कहते हैं।

(4) राजा या उससे अधिकारी स्वय किसी विवाद (मुकदमा) को न्यायालय मे न उपस्थित करे और राजा अनुराग, लोभ या क्रोध के वशीभूत होकर किसी को पीडित न करे। वादी–प्रतिवादी के बिना उपस्थित किये राजा अपनी बुद्धि से किसी मुकदमे को न्यायालय मे उपस्थित नही करे।

(5) जो वादी उद्धत स्वभाव वाला, निष्ठुर वचन बोलने वाला एव निष्ठुर कार्य करने योग्य वेशवाला गर्वी अत्यत क्रोधी, जज के साथ–साथ आसन पर बैठने वाला और अत्यत अभिमानी हो उसे शासक को दण्ड देना चाहिये।

(6) वादी द्वारा शासक के पास जो आवेदन पत्र दिया जाता है, उसे 'आवेदन' कहते हैं। जो जज के समक्ष कहा जाता है उसे 'बयान' कहते है। वादी के बयान को लिखवा कर उस पर उसके अगूठे का निशान लगवाये और अत मे राजा उस पर अपनी मुहर लगा दे। वादी का यह बयान भी एक प्रकार का गवाही या साक्ष्य होता है।

(7) राजा विवाद (मुकदमा) लेने योग्य है या नही इसका भली भाति विचार करे। यदि योग्य हो तो ले।

(8) व्यवहार (मुकदमा लडना) न जानता हो या किसी कार्य मे व्यस्त हो ऐसा वादी या प्रतिवादी मुकदमे के जानकार किसी भी व्यक्ति को अपना प्रतिनिधि बना सकता है।

(9) यदि कोई किसी को अपना प्रतिनिधि (वकील) बनाकर उससे जो कुछ कार्य कराले तो वह उसी का ही किया हुआ समझना चाहिए और उसे पलटा नही जा सकता है।

(10) वादी ने जो कुछ कहा है वह ठीक है, ऐसा प्रतिवादी के स्वीकार करने पर जो उत्तर है वह 'सत्य' उत्तर कहा जाता है उसको प्रतिपत्ति भी कहते हैं।

(11) वादी के प्रार्थना–पत्र को सुनकर यदि प्रतिवादी उसको स्वीकार नही करता है अर्थात निषेध करता है तो उसे 'मिथ्या' उत्तर कहते हैं।

(12) यह मिथ्या है इसे मैं नही जानता हूँ, उस समय मैं वहाँ उपस्थित नही था और मैं तो तब उत्पन्न भी नही हुआ था। इस प्रकार से 'मिथ्या उत्तर' चार प्रकार का होता है।

(13) परस्पर एवं दूसरे के समक्ष ही वादी प्रतिवादी के क्रमशः प्रश्न और उत्तर को जो सुनकर तदनुरूप नहीं लिख लेते हैं या नहीं स्वीकार करते हैं। वे चोर की भांति सदा दण्ड पाने योग्य होते हैं।

(14) जो अपना सम्बन्धी न हो एवं कार्य (विवाद विषय) को जानने वाला हो वह साक्षी (गवाह) मानने योग्य होता है। साक्षी अनेक प्रकार का होता है। कोई आँखो से प्रत्यक्ष देखने वाला और कोई केवल सुनने वाला होता है। कृत और अकृत भेद से साक्षी दो प्रकार के होते हैं अर्थात् वादी द्वारा उपस्थित किया हुआ अकृत होता है।

(15) बहुत समय व्यतीत होने पर भी जिसकी बुद्धि स्मरण शक्ति और श्रवण शक्ति क्षीण नही हुई हो वही सचमुच साक्षी (गवाह) देने योग्य होता है।

(16) जहा पर बहुत से गवाहो के वचनों में विभिन्नता होने से सत्य निर्णय मे संशय हो जाय वहाँ पर अधिक संख्यक वालो की बात माने। यदि समान संख्या वालो मे विभिन्नता हो तो उनमे से जिस तरफ गुणी पुरूष हो उनके वचन माने एवं यदि गुणियो के वचनो मे विभिन्नता जिस विषय मे हो तो जो अधिक गुणी हो उसकी ही बात माने।

(17) जो साक्षी गवाह देते समय सत्य बोलता है वह उत्तम लोको को प्राप्त करता है और संसार मे सर्वोत्तम कीर्ति को प्राप्त करता है। यह वेदो मे भी लिखा हुआ है।

(18) आत्मा ही अपना साक्षी है और आत्मा ही अपनी गति है। इसलिए मनुष्य को अपनी आत्मा का ही उत्तम साक्षी मानना चाहिये।

(19) यदि कोई समर्थ होकर भी धनिक से लिये हुये धन को नहीं देता है तो राजा समझा–बुझाकर या दण्ड का प्रयोग कर कर्जदार से महाजन को धन दिलाये।

(20) जो व्यक्ति खोटी वस्तु या धोखे से किसी वस्तु को बेचता है तो वह सदा राजा द्वारा चोर की भांति दण्डनीय होता है।

(21) शुक्रनीति मे पचास प्रकार के छलों दस अपराधो एवं बाइस विवाद के स्थानों का वर्णन किया है जो दण्डनीय माने गये है।

(22) शुक्र ने राजा को आपत्ति काल मे शत्रु के विनाश के लिए प्रजा पर विशेष प्रकार का अधिक जुर्माना या चुंगी लगाकर प्रजा से धन प्राप्त करने का अधिकार दिया है।

(23) शुक्र ने अधिक दण्ड को सामान्य परिस्थितियो मे अनुचित माना है उनके मत मे अधिक दण्ड को देने से सुरथ आदि राजा भी राज्य–च्युत हो गये थे।

(24) घमण्डी कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य कर्म को नहीं जाननेवाला और कुमार्ग पर चलने वाले गुरुजन को भी दण्ड देना राजा का कर्त्तव्य होता है।

(25) दण्ड सहित नीति का व्यवहार करने से राजा के सभी कार्य सिद्ध होते हैं क्योंकि धर्मो का परम स्तम्भ दण्ड ही माना गया है।

(26) नित्य दण्ड देने योग्य व्यक्ति को दण्ड न देने से, नहीं दण्ड देने योग्य को दण्ड देने से एवं अपराध से अधिक दण्ड देने से विद्वान लोग ऐसे अनुचित दण्ड देने वाले राजा का परित्याग कर देते है और वह राजा उक्त कर्म से पातकी होता है।

(27) राजा अत्यंत लोभ से प्रजा का धन तथा प्राणहर्त्ता होता है इसलिये काम क्रोध तथा लोभ इन तीनो को छोडकर राजा को दण्ड देने वाला होना चाहिये।

(28) जो धन के गर्व से अपराध करे उसे प्रथम बार उसके स्वामित्व के धन से चौथाई धन दण्ड रूप मे लेवे, उसके बाद यदि वह अपराध करे तो आधा, उसके बाद आजीवन जेल का दण्ड दे।

(29) शासक को अनुचित दण्ड नही देना चाहिये अर्थात जितना अपराध हो उतना ही विचार कर दण्ड देना चाहिये।

13. सार्वजनिक व्यय

शुक्र ने आय की भांति व्यय पर भी विचार किया है उन्होने व्यय की परिभाषा दी है, व्यय के विभिन्न प्रकार बतलाये हैं। शुक्र के अनुसार हृदय के अदर उदारता रखकर और ऊपर से कृपणता रखकर समय आने पर मनुष्य को उचित व्यय करना चाहिये। राज्य व्यय सम्बन्धी शुक्र के विचारो को निम्नलिखित रूप मे व्यक्त किया जा सकता है—

(1) जिस प्रकार बधु अपने बधु के शरीर स्त्री धन एव गुप्त रहस्य की रक्षा करने वाला मित्र के समान होता है, उसी प्रकार राजा को भी प्रजा के लिये होना चाहिये। राजा को आवश्यकता पडने पर कुबेर के समान धन देने वाला होना चाहिये।

(2) शासक को पाच मदो मे धन व्यय करना चाहिये। ये मद हैं—पुरस्कावर्तक, पारितोषिक, वेतन, उपभोग और भोग।

(3) शासक को दो ग्रामो के बीच मे एक धर्मशाला बनवानी चाहिये जिसकी नित्य सफाई और रक्षा का प्रबध ग्राम के जमीदार या मुखिया के द्वारा होना चाहिये।

(4) शासक को यात्रियो के सुख के लिए नये मार्गों का निर्माण एव पुराने मार्गों की मरम्मत करवानी चाहिये।

(5) शासन चलाने के लिए मत्री, पुरोहित, देवाध्यक्ष दानाध्यक्ष सभासद, परीक्षक, कराधिकारी, शास्त्रविज्ञ, जासूस कर्मचारियो आदि का वेतन, पेंशन पर राज्य द्वारा व्यय किये जाने का शुक्रनीति मे विस्तार से वर्णन है।

(6) राज्य की सुरक्षा के लिये सैनिको हाथी घोडो ऊँट अस्त्र–शस्त्रो, गोला बारूद आदि पर राज्य द्वारा उचित व्यय किया जाना चाहिये।

(7) शुक्र ने प्रासाद (देवमदिर–राजभवन) प्रतिमा उद्यान गृह, बावडी आदि का सुदर रीति से निर्माण कराने को भी राजा का कर्त्तव्य माना है।

(8) हीन धन तथा मध्यम धन वाली प्रजा की रक्षा, वेतन देकर राजा को स्वामी

की भाँति करनी चाहिये तथा अधिक धन वाली उत्तम प्रजा की रक्षा प्रतिभू (सुरक्षा की जमानत देने वाला) होकर करनी चाहिये।

(9) जिस कृषक से राजा को सौ रुपये भर चाँदी कर के रूप में मिलती हो उसके लिये राजा को अपने कर म से बीसवा भाग अपनी ओर से देना चाहिये।

(10) शुक्र ने नीति मे एक लाख रुपया वार्षिक आय वाले शासक के सदर्भ मे व्यय विवरण दिया हे। इस विवरण से पता चलता है कि शासक को स्वय अपने ऊपर तथा परिवार के ऊपर मात्र 3 8 प्रतिशत धन व्यय करने का अधिकार होना चाहिये शेष राशि प्रजा पालन सेना व अस्त्र–शस्त्रो पर शासन व्यवस्था पर व्यय की जानी चाहिये।

शुक्रनीति मे आय–व्यय क लेखन को आवश्यक बताया हे तथा राज्य के प्रतिवर्ष के आय–व्यय (बजट) का विवरण दिया हे। इस प्रकार राज्य की आय–व्यय के विवरण का शुक्रनीति के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रन्थ में स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नही होता । शुक्र का मत था कि राज्य कोष में इतनी मात्रा मे धन होना चाहिये कि सकटकाल का मुकाबला किया जा सके। शुक्र ने इस बात पर बल दिया कि राज्य के पास इतना धन होना चाहिये कि आगामी बीस वर्ष तक सेना तथा प्रजा–पालन का कार्य अच्छी तरह चल सके।

14 दान सम्बन्धी विचार

शुक्रनीति मे दान की महत्ता दान किन लोगो को देना चाहिये तथा दान मे नैतिकता को प्रमुख स्थान दिया है। शुक्र के दान सम्बन्धी विचार इस प्रकार है–

(1) दान तथा सरलता को छोडकर ससार मे मनुष्य को अन्य कोई वशीभूत करने का उपाय नही है अमृत दान करने से क्षीण हुआ किन्तु पुन वृद्धि की इच्छा रखने वाला शुक्लपक्ष की द्वितीया का चन्द्र वक्र होता हुआ भी शुभ होता है अर्थात उससे पुन अमृत दान मिलने की सभावना रहती है।

(2) विपुल धन से सम्पन्न होते हुए भी जो पालन करने के योग्य है उन्हीं का पालन करना चाहिये।

(3) दान स शत्रु लाग भी मित्र बन जाते हैं अत शत्रु को छोडकर अन्य व्यक्ति तो दान के कारण मित्र बने ही रहते है।

(4) देवता यज्ञ ब्राह्मण गौ आदि के लिये जो दान दिया जाता है वह परलोक सुख–साधन के लिये होता है और उसी को सविद् दान अर्थात अवश्य देना चाहिये इस बुद्धि से दिया हुआ कहते है।

(5) बदी मल्ल आर मागध आदि लागो को अपना–अपना कार्य दिखाने के लिये जो पुरस्कार रूप मे दिया जाता हे उसे पारितोष्य कहते है और जो यश के लिये दिया जाता हे उसे श्रियादत्त कहते हैं।

(6) विवाहादि कार्यो मे मित्र सम्बन्धी या बधुजनो को जो उपहार स्वरूप मे दिया जाता है उसे आचारदत्त व्यवहार से दिया हुआ कहते है तथा लज्जा स दिये हुये धन को हीदत्त कहते हैं।

(7) जो धन हिसको की वृद्धि के लिये दिया जाता है या जो द्यूत से नष्ट कर दिया गया था जिसे चोरो ने हर लिया, जो पाणियो को या परस्त्री–सगमार्थ दिये गये धन को 'नष्ट' कहते हैं।

15 पर्यटन

आचार्य शुक्र ने पर्यटको के सम्बन्ध मे कहा है कि यात्रा करते समय सदा एक साथी साथ रखना चाहिए। बिना साथी के कभी–भी यात्रा नही करनी चाहिए। यात्रा ऐसे मार्ग से करनी चाहिए जिसमें जल की सुविधा हो। रात्रि को भय से रहित ग्राम मे ठहरना चाहिए। भय रहित व जल रहित जो मार्ग न हो वहाँ पर एव जगल में विश्राम नही करना चाहिए। (3 300–301)

आचार्य ने बताया कि आलस्य रहित होकर देश भ्रमण करना चाहिए। इससे मनुष्यों तथा पर्वतो का अनुभव साक्षात प्राप्त होता है। (3 130–131)

परन्तु अति भ्रमण नहीं करना चाहिए क्योंकि इसनें अत्यन्त परिश्रम होता है जिससे वृद्धता आ जाती है। (3 302)

पर्यटन के सम्बन्ध में एक और सुझाव देते हुए आचार्य ने कहा कि प्रवास के समय मनुष्यो को अपने साथ बिना सन्तान की स्त्री, अच्छी सवारी, ढोने वाला कुली, रक्षा करने वाला सिपाही, दूसरो के दुःख को दूर करने वाली विद्या, आलस्य रहित (फुर्तीला) नौकर आदि रखना सदा सुखदायक होते हैं। (3.298)

16. भण्डारण

राजा को अपने कल्याण के लिये तथा राज्य की रक्षा के लिए समय–समय पर तीन वर्ष तक खाने के लिए पर्याप्त धान्यों (अनाज) का सग्रह करना चाहिए। तथा ऐश्वर्यशाली लोगो के लिये उससे भी अधिक काल तक कार्य चलने लायक अधिक धान्य का सग्रह करना उचित होता है।

आचार्य ने सग्रह योग्य धान्य (भण्डारण) की परीक्षा का निर्देश देते हुए लिखा है कि अच्छी तरह से पका हुआ, उज्ज्वल, अच्छी जाति का, सूखा हुआ नवीन, सुगन्ध, वर्ण तथा रस (स्वाद) से युक्त, सुन्दर व बहुत काल तक ठहरने वाला, ऐसे धान्य को अच्छी तरह से देखकर यदि अधिक मूल्य का भी हो तो लेकर रखना उचित हे। यदि इससे अन्यथा हो तो उस धान्य का सग्रह नही करना चाहिए।

जो विष अग्नि तथा पाला से खराब हो गया हो एव जिनमें कीडे पड गये हो ऐसे धान्यो का सग्रह नही करना चाहिए और जब तक नि सार नही हो तभी तक धान्यो का व्यय करना चाहिए अर्थात् नि सार होने पर उसे फेक देना चाहिए।

राजा प्रतिवर्ष जो धान्य व्यय करने से चूक जाय उनके स्थान पर उसी जाति के दूसरे नये धान्य यत्नपूर्वक लाकर रख दे।

धान्य के अतिरिक्त पृथक वस्तुओ के सग्रह के सम्बन्ध मे आचार्य ने कहा है कि औषधि (धन्यादि) धातु (खान से उत्पन्न पदार्थ) तृणकाष्ठ आदि यत्र अस्त्र शस्त्र बारुद बर्तन वस्त्र इन सभी के मध्य जिन–जिन कार्यों के लिए जो द्रव्य उपयोगी हो उनका सग्रह करना राजा के लिए उचित है क्योकि उनसे समय पर कार्य की सिद्धि होती है।

सग्रह किये हुए धान्यादि की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। क्योकि इनके सग्रह करने मे बहुत दु ख उठाना पडता है तथा उनसे चौगुना दु ख उनकी रक्षा करने मे उठाना पडता है। क्षण भर भी रक्षा करने मे जितनी उपेक्षा की जाती है वह शीघ्र नष्ट हो जाता है।

इस तरह शुक्र ने न केवल भण्डारण की आवश्यकता पर बल दिया बल्कि सग्रह किये गये धान्यादि की सुरक्षा पर बल देकर प्रजा की रक्षा करने तथा सभी तरह की आर्थिक क्रियाओ मे निरतरता बनाये रखने की दूर दृष्टि को भी उजागर किया ।

17 समाजवाद

शुक्र के अनुसार व्यक्ति उपभोग के साधनो पर ही अपना स्वामित्व मान सकता है उत्पादन के साधन–खेत खदान जगल आदि पर नही। उत्पादन के साधनो पर सबका स्वामित्व है अर्थात इन पर राज्य का अधिकार होता है। वही उनके हस्तातरण (क्रय–विक्रय) की व्यवस्था करता है क्योकि राजा को सम्पूर्ण भूमि का स्वामी का गया है।[21]

अकेला खाना शुक्र की दृष्टि मे पाप है जो अज्ञान से भी केवल अपने लिए पकाता है वह नरक के लिए जीता है। अर्थात शुक्र ने अकेले सुख उपभोग का निषेध किया है जो उनके समाजवादी विचारो का द्योतक है।[22]

सदर्भ

1 शुक्रनीति डॉ उमेशपुरी ज्ञानेश्वर रणधीर प्रकाशन हरिद्वार पृ 1–13
2 प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एव सस्थाएँ पृ 126
3 दशकुमार चरित्र उत्तरपीठ 8
4 शुक्रनीति पृ 12
5 कुमार सभव (कालिदास)
6 शुक्रनीति 4 1283–1284
7 शुक्रनीति 2 346
[redacted] शुक्रनीति 3 109 2 154 2 153 2 159 2 160 1 7 2 282 4 145
[redacted] शुक्रनीति 2 153–159 2 282
10 शुक्रनीति 2 151 4 821 4 584 4 843
11 शुक्रनीति डॉ उमेश पुरी ज्ञानेश्वर रणधीर प्रकाशन हरिद्वार पृ 146–148
12 शुक्रनीति 2 345

13 शुक्रनीति, 1 195, 4 113
14 शुक्रनीति, 2 344 2 378–79
15 शुक्रनीति डॉ उमेश पुरी 'ज्ञानेश्वर' रणधीर प्रकाशन हरिद्वार, पृ 78–79
16 शुक्रनीति, द्वितीय अध्याय, पृ 412
17 शुक्रनीति, द्वितीय अध्याय, पृ 415
18 शुक्रनीति, डॉ उमेश पुरी 'ज्ञानेश्वर,' रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, पृ 28,130,133 175
19 उपर्युक्त, पृ 84,69, 132,175
20 उपर्युक्त, पृ 123–130, 149, 158–165
21 शुक्रनीति, 1 174, 4 811–818
22 उपर्युक्त, 3 124, 4 806

प्रश्न

1 शुक्राचार्य का सक्षिप्त परिचय बताइये।
2 शुक्र द्वारा की गई अर्थशास्त्र की परिभाषा को स्पष्ट कीजिए।
3 अर्थ की महत्ता एव अर्थ के उपयोग पर आपके विचार लिखिए।
4 शुक्र के अनुसार द्रव्य एव धन मे क्या अन्तर है।
5 शुक्र के उपभोग सम्बन्धी विचारो की विवेचना कीजिए।
6 अतिउपभोगवाद की शुक्र ने आलोचना क्यो की है? कारण बताइये।
7 अकेले सुख उपभोग को शुक्र ने अनुचित क्यो माना है ?
7 मूल्य की शुक्र द्वारा दी गई परिभाषा को स्पष्ट कीजिए।
8 शुक्र के अनुसार मजदूरी ('भृत्ति') के तीन प्रकार बताइये।
9 पदोन्नति सम्बन्धी शुक्र के विचार लिखिये।
10 बोनस, ग्रेच्युटी, पेशन, अवकाश सम्बन्धी शुक्र के विचारो की विवेचना कीजिए।
11 शुक्रनीति मे वर्णित आर्थिक विचारो का सक्षेप मे वर्णन कीजिए।
12 शुक्र के उपभोग, उत्पादन, विनिमय तथा व्यापार सम्बन्धी विचारो की व्याख्या कीजिए।
13 शुक्रनीति मे वर्णित मजदूरो के वेतन अवकाश, पदोन्नति, पेशन आदि से सम्बन्धित नीतियो को स्पष्ट कीजिए।
14 शुक्र द्वारा प्रतिपादित कर व्यवस्था के सम्बन्ध में सकारात्मक एव निषेधात्मक नियमो की विवेचना कीजिए।
15 शुक्रनीति मे प्रतिपादित दण्ड व्यवस्था की आज के सदर्भ में विवेचना कीजिए।
16 पर्यटन, भण्डारण समाजवाद एव दान सम्बन्धी शुक्र के विचारो को लिखिए।



9

कौटिल्य का अर्थशास्त्र
(Kautilya's Arthshastra)

परिचय

आचार्य कौटिल्य अर्थशास्त्र के प्रणेता माने गये है। कौटिल्य को चाणक्य विष्णुगुप्त आदि नामो से जाना जाता है। चूकि कौटिल्य की विचारधारा परम्परागत आदर्शवाद के विरोध मे भौतिकवाद पर जोर देती हैं जो धर्माचार्यों को उचित प्रतीत नही हुई इसीलिए उन्होने कुटिलता का पुट देने के लिए उन्हे 'कौटिल्य नाम दे दिया। नदवश का उन्मूलन कर मौर्य राजवश की स्थापना करने वाले आचार्य कौटिल्य ने समकालीन आर्थिक समस्याओ और अर्थव्यवस्था पर जितना अधिक चितन–मनन किया, उतना किसी अन्य आचार्य ने नही किया। कौटिल्य ने आर्थिक नियमो के प्रतिपादन मे जिन तर्कों का प्रयोग और उल्लेख किया है ये आज की परिस्थितियो मे भी लागू किए जा सकते है। चाणक्य ने अर्थव्यवस्था के सबध मे कुछ आधारभूत सिद्धान्त प्रतिपादित कर इन्हे अर्थव्यवस्था पर लागू करके प्रतिफलित भी किया। इसी कारण कौटिल्य की व्यवस्था शासन एव समाज मे समान रूप से व्यवहृत हुई और समाज ने उनका पालन करके अपना हित साधन भी किया।

यूनानी लेखकों को छोडकर प्राय सभी ग्रन्थ नदवश का विनाशक चाणक्य को ही मानते हैं। परन्तु अभाग्य से इस युगपुरुष की भी प्रारभिक जीवनी का ज्ञान स्पष्ट नहीं है। उसके जीवनवृत्त का ब्राह्मण ग्रन्थो के अलावा कहीं भी वर्णन नहीं है। महावश टीका का कथन है कि चाणक्य तक्षशिला का निवासी था यह त्रिवेदज्ञ, शास्त्र–पारगत मत्र विद्या विशेषज्ञ तथा प्रख्यात नीतिज्ञ था। बौद्ध साहित्य भी उसे तक्षशिला निवासी मानते हैं। परन्तु जैन वृहत्कथाकोष पाटलिपुत्र को उसका पुरातन पैतृक स्थान मानते हैं। इसी ग्रन्थ मे चाणक्य के पिता का नाम कपिल दिया है जो जैन धर्म का अनुयायी था। जैन भिक्षुओ ने ही चाणक्य के मुख मे पूर्ण विकसित दतपक्ति को देखकर ही उसके राजत्वयोग की भविष्यवाणी की थी। नन्दराजा द्वारा अपमान करने पर ही चाणक्य ने नन्दवश का नाश करने की प्रतिज्ञा की थी और चन्द्रगुप्त को साथ लेकर नवे नन्द को पराजित किया जिसका उल्लेख भागवत पुराण मत्स्य पुराण वायु पुराण और ब्राह्मण पुराण में भी मिलता है। वायुपुराण का कथन है कि ब्राह्मण कौटिल्य नन्दवशो का नाश करेगा कौटिल्य ही चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक करेगा।

"नवैवतान नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मण समुद्धरिष्यति।
कौटिल्य एव चद्रगुप्तं राज्येभिषेक्ष्यति।"
कामदक ने कौटिल्य को अपना गुरू माना है।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र–अर्थशास्त्र प्राचीन चिंतन की नीति–शास्त्र परम्परा का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इतिहास एवं पुराणो द्वारा समर्पित मत के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि कौटिल्य ने अर्थशास्त्र की रचना 321 एवं 300 ई पू के बीच मे किया।

यदि कोई आधुनिक अर्थशास्त्र का विद्यार्थी कौटिल्य के इस ग्रन्थ को एक सरसरी निगाह से देखे तो वह यह सोचेगा कि इस ग्रन्थ को 'अर्थशास्त्र' की संज्ञा क्यों दी गयी? वास्तव में यदि कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' मे व्यक्ति आधुनिक (पाश्चात्य) अर्थशास्त्र (इकानॉमिक्स) की पाठ्य–सामग्री ढूँढने का प्रयास करे तो वह निःसदेह निराश ही होगा। इसके दो कारण हैं–सर्वप्रथम तो कौटिल्य मूलत अर्थशास्त्री (इकानॉमिस्ट) नहीं थे। वे मुख्यतया एक दार्शनिक, कूटनीतिज्ञ एव विचारक थे। यह बात उन सभी आधुनिक यूरोपीय अर्थशास्त्रियों के सबध में भी सत्य है जो दर्शनशास्त्र, राजनीतिशास्त्र या धर्मशास्त्र से अर्थशास्त्र में आये। इसीलिए एडम स्मिथ, मिल, माल्थस आदि की रचनाओ में भी हमें वह विषय सामग्री प्राप्त नहीं होती जिसे आज का अर्थशास्त्र का विद्यार्थी अपने अध्ययन की मुख्य सामग्री समझता है।

परन्तु कौटिल्य का अर्थशास्त्र एडम स्मिथ की वैल्थ आफ नेशन्स, मिल तथा माल्थस की रचनाओ की अपेक्षा आधुनिक अर्थशास्त्र से बहुत दूर है। यह दूरी, समय (यूरोपीय अर्थशास्त्रियों की ये पुस्तके 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध व 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में लिखी गयी थी, जबकि कौटिल्य का अर्थशास्त्र ईसा से भी 300 वर्ष पूर्व का है) एवं स्थान की दूरी का परिणाम भी बहुत सीमा तक हो सकता है। इसके अतिरिक्त दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह है कि प्राचीन भारतीय विद्याओं में 'अर्थशास्त्र' का क्षेत्र एव स्थान वह नहीं समझा जाता था जो कि इन लेखकों के समय यूरोप मे समझा जाता था।

परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि कौटिल्य की यह रचना अर्थशास्त्र के विद्यार्थी के लिए उपयोगी नहीं है। यह हमें तत्कालीन समय की उन आर्थिक अवधारणाओं के बारे मे वह जानकारी प्रदान करती है, जिन्हें हम वर्तमान में भी लागू कर सकते हैं। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र की रचना गद्य और पद्य दोनो में की है। संभवतः व्याख्या की अस्पष्टता के निराकरण के लिए कौटिल्य ने ग्रन्थ के अत में एक पारिभाषिक परिशिष्ट जोड़ा है तथा इसके साथ ही कतिपय सूत्रों को प्रस्तुत कर, ग्रन्थ में विवेचित सामग्री का सार पुनः प्रस्तुत कर दिया है। ग्रन्थ में कुल 15 अधिकरण, 150 अध्याय, 180 विषय एव 6000 श्लोक हैं।

अर्थशास्त्र में विभिन्न विषयों पर जो विचार वर्णित है, वे निम्नलिखित हैं–

अर्थशास्त्र का विभिन्न विद्याओं में स्थान–कौटिल्य के पूर्व ही विद्याओ

का विभाजन कर आर्थिक विकास के क्षेत्र को अलग बना दिया था। कौटिल्य ने ज्ञान की शाखाओ को विद्या का नाम दिया है तथा यह स्पष्ट किया है कि जिससे किसी विशेष सदर्भ मे उचित–अनुचित व कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य का ज्ञान होता हो उसे विद्या कहते हैं।

कौटिल्य ने ज्ञान की चार शाखाओ का चित्रण किया है– त्रयी वार्त्ता आन्वीक्षिकी व दण्ड–नीति। उन्होने चारो को ही समान महत्व दिया है तथा चारो मे परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध भी बताया है।

त्रयी मे कौटिल्य ने वेद व वेदागो के ज्ञान नैतिक और आध्यात्मिक विषयो को शामिल किया है। उन्होने त्रयी मे सामाजिक विषयो को भी शामिल किया है।

कौटिल्य ने वार्त्ताशास्त्र मे कृषि पशुपालन उद्योग और व्यापार को प्रधानता दी है जिससे भौतिक उपलब्धियो ओर सम्पत्ति आदि का अर्जन होता है। उन्होने वार्ता में धान्य पशु, हिरण्य ताबा आदि धातुओ तथा राज्यव्यवस्था का उल्लेख भी किया है।

त्रयी तथा वार्ता के प्रति किये जाने वाले प्रयत्नो मे तर्क विवेक और न्याय की प्रयुक्ति को कौटिल्य ने आन्वीक्षिकी की सज्ञा दी है। इस प्रकार आन्वीक्षिकी को वह मापदण्ड माना है जिसके द्वारा व्यक्ति के नैतिक एव भोतिक उद्देश्यो के लिए किए जाने वाले प्रयत्नो को सतुलित किया जा सके।

कौटिल्य ने दण्डनीति को त्रयी वार्त्ता और आन्वीक्षिकी के भली–भाति क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी माना है।

इस प्रकार कौटिल्य के अनुसार त्रयी और वार्ता मनुष्य के क्रमश नैतिक व भौतिक प्रयोजनो आनुवीक्षिकी इन प्रयोजनों मे तर्क विवेक व न्याय के प्रयोग तथा दण्डनीति मनुष्य के जीवन मे लौकिक तथा पार–लौकिक उद्देश्यों को प्रवर्तन की सस्थागत व्यवस्था को व्यक्त करती है।

अर्थशास्त्र–आचार्य कौटिल्य के समय मे अर्थशास्त्र वेद–वेदागो का एक महत्वपूर्ण अग था। धर्मशास्त्र की उपयोगिता को अभिव्यक्त करने की उसमे पूर्ण क्षमता थी। उस समय धर्मशास्त्र समाज का एक अभिन्न अग था। इसमे धार्मिक क्रियाओ के अतिरिक्त व्यापार उदरपूर्ति आदि के सबध मे काफी विवेचन किया गया है। इसीलिए उन्हे अर्थशास्त्र की परिधि से पृथक नही किया जा सकता।

कौटिल्य ने अर्थ धर्म और काम के आधार पर ही मानव जीवन को विभक्त किया है ओर इन तीनो में से उन्होने अर्थ को प्रधानता दी क्योंकि बिना अर्थ के किसी भी प्रकार की क्रिया सभव नही हो सकती थी। कौटिल्य अर्थशास्त्र 'इकॉनामिक्स' की अपेक्षा अधिक विस्तृत है जो इसकी विषय वस्तु पर एक दृष्टि डालने से ही स्पष्ट हो जाती हे।

अर्थ प्रधान भौतिकवाद–इहलौकिक पुरुषार्थो मे धर्म का स्थान सर्वोपरि माना गया है। परन्तु अर्थशास्त्र की प्रसिद्धि का मुख्य कारण यह है कि इस ग्रन्थ मे सर्वप्रथम सस्थापित तथा परम्परागत धर्मप्रधान विचारो के विरोध मे अर्थप्रधान विचारो का प्रतिपादन

किया। इस सबध मे हम अर्थशास्त्र को भारतीय आर्थिक विचारों के इतिहास मे लगभग वही स्थान दे सकते हैं, जो 16वीं एव 18वी शताब्दी के बीच यूरोप मे क्रेमरवाद को मिला था। कौटिल्य के लिए तीन इहलौकिक उद्देश्यो मे से 'अर्थ' ही प्रथम एव महत्वपूर्ण है।' ('अर्थ एव प्रधान इति कौटिल्य अर्थमूलो हि धर्म कामाविति।') इस प्रकार सदियो से स्थापित धर्मप्रधानता की भावना एव आदर्शवाद के विरुद्ध कौटिल्य की अर्थविचारधारा एव भौतिकवाद का प्रादुर्भाव हुआ।

अर्थ एवं अर्थशास्त्र की परिभाषा– कौटिल्य के अनुसार, **"मनुष्यों के व्यवहार या जीविका को अर्थ कहते हैं। मनुष्यों से युक्त भूमि का नाम ही अर्थ है। इस भमि को प्राप्त करने और रक्षा करने के उपायों को निरुपण करने वाला शास्त्र ही अर्थशास्त्र कहलाता है।"**[2]

[मनुष्याणा वृतिरर्थ मनुष्यवती भूमिरित्यर्थ । तस्या पृथिव्या लाभ पालनोपाय •शास्त्रमर्थ शास्त्र मिति।।]

कौटिल्य के इस कथन से भी धर्म पर अर्थ की प्रधानता सिद्ध हो जाती है[3] 'सुख का मूल धर्म है और धर्म का मूल अर्थ है और अर्थ का मूल राज्य है।" सुखस्य मूल धर्म धर्मस्य मूल अर्थ। अर्थस्य मूल राज्यम्।।

कौटिल्य का कहना है कि **"संसार में धन ही वस्तु है, धन के अधीन धर्म और काम है।"**

इन विचारो से यह सिद्ध हो जाता है कि मार्शल पीगू आदि अर्थशास्त्रियो की परिभ.षाएँ कौटिल्य के इन विचारो से मेल खाती है। केवल परिस्थितियो के अनुकूल ही इनका स्वरूप परिवर्तित है। पर इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात जो कौटिल्य के बारे मे क.) जा सकती हे, वह यह है कि उन्होंने अर्थशास्त्र को पुरातन नीति, धर्म एव परम्पराओं से मुक्त कर भौतिकवाद की वास्तविक इहलौकिक धरती पर लाकर रखा।

सामाजिक स्थिति–अर्थशास्त्र मे तत्कालीन समाज को विभिन्न वर्गों में विभक्त कर उनकी क्रियाओ पर अलग–अलग विचार किया गया है। समाज मे फैले अराजक तत्वो के दमन हेतु कठोर नियम बनाये गये थे। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे प्राचीन परम्परा के अनुसार शास्त्र के बताये गये नियमो पर चलने का आग्रह किया है। उन्होने भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आदि के लिए आर्थिक आधार पर प्रतिपादन कर सामाजिक व्यवस्था को सही मार्ग बताया है।[4]

जीवन स्तर–कौटिल्य के अर्थशास्त्र के वर्णन से पता चलता है कि तत्कालीन समाज एक उच्चकोटि का समाज था। विभिन्न वर्गों के लोग सामाजिक नियमो के अनुकूल ही कार्य करते थे, और आर्थिक नीति को सुदृढ बनाने के लिए सयमित रूप मे कार्यों का सम्पादन किया जाता था। सामाजिक नियमो का उल्लघन करने वालो के विरुद्ध कडे नियमो का प्रावधान था, जिनमे कठोर दण्ड देने का विधान था। उदाहरण

के लिए चाणक्य का कहना था कि घर के मालिक को चाहिए कि वह घर से जाने वाले तथा घर मे आने वाले पुरुष की सूचना गोप आदि को देवे। सूचना न देने पर यदि वे लोग रात्रि मे चोरी आदि का कोई अपराध न करे तो भी जाने–आने की सूचना न देने के कारण गृहस्वामी को प्रतिरात्रि तीन पण दण्ड दिया जावे।

कौटिल्य अर्थशास्त्र का राजनीतिक आधार कौटिल्य ने अर्थशास्त्र को राज्यशास्त्र से अलग नही किया। वास्तव मे देखा जाय तो अर्थशास्त्र मे एक विशेष राजव्यवस्था का ही वर्णन प्रधान है और आर्थिक विषयो का अध्ययन इसी व्यवस्था के अन्तर्गत तथा राज्य के उद्देश्यो की पूर्ति हेतु ही किया गया है। उन्होने सर्वप्रथम राजतत्र के एक विशेष ढाचे को प्रतिपादित किया और फिर व्यवस्थाए बनायी। इस प्रकार कौटिल्य का अर्थशास्त्र एक तरह से 'राजनीतिक अर्थशास्त्र' या 'पालिटिकल ईकानॉमी' कहा जा सकता है। पश्चिमी अर्थशास्त्री मिल से स्मिथ आदि के आर्थिक विचार भी इसी अनुरूप रहे हे।

राजा– कौटिल्य ने पूर्व की भाँति राजा को सर्वोच्च शक्तिमान का स्थान दिया है किन्तु *उन्होने राजा को कुछ विशेष नियमो के अन्तर्गत बाधा है।*

कौटिल्य ने राजा के अनेक कर्त्तव्य बताते हुए कहा है कि 'राजा का सबसे बडा कर्त्तव्य प्रजा का पालन करना है। उसकी सुख–सविधा की रक्षा पर ही उसका सारा गौरव निर्भर करता है।[5]

प्रजा सुखे सुख राज्ञ प्रजानाच हिते हितम्।
नात्म प्रिय सुख राज्ञ प्रजानाच सुखे सुखम।।

राजा को सर्वशास्त्र का ज्ञाता होना परमावश्यक था क्योकि उनके बिना शासन चलाना दुष्कर माना गया है। कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित कुछ नियमो का उल्लेख निम्न प्रकार से है

कोश सग्रह–राष्ट्र के सम्वर्द्धन हेतु राजा का यह कर्तव्य था कि वह समय–समय पर उत्पन्न होने वाली परिस्थितियो का सामना करने के लिए आय की अधिकाधिक वृद्धि करे। कौटिल्य ने किसानो से अन्न खरीदने श्रोत्रिय द्वारा खेती न करने पर जमीन को भूमिहीनो में वितरित कर देने के नियम बनाए हैं। कोश की कमी को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार के व्यवसायों पर अतिरिक्त कर बढाने को कहा गया है। अर्थशास्त्र में यह भी उल्लेख है कि राजा अतिरिक्त कर को एक ही बार ले दूसरी बार कभी न लेवे। इसके अतिरिक्त जिनसे कर नहीं लेना चाहिए उनका भी इस ग्रन्थ में विस्तृत विवेचन किया गया है। उनकी मान्यता है कि यदि राज्य के हित की दृष्टि से श्रोत्रिय से अन्न आदि का अधिग्रहण अनिवार्य हो तो उन्हे समुचित मूल्य देकर उसका अधिग्रहण करे।

शुल्क–शुल्क के सबध म जितना विस्तृत विवेचन कौटिल्य ने किया है उतना किसी अन्य प्राचीन अर्थशास्त्री ने नही किया। कर की परिभाषा बताते हुए उन्होने कहा

है कि राजा को दिए जाने वाले अंश का नाम शुल्क (चुंगी टैक्स) है, इस कार्य पर नियुक्त हुए प्रधान राज्याधिकारी को शुल्काध्यक्ष कहा गया है।

शुल्क लेने के नियम– कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार शुल्काध्यक्ष शुल्क शाला मे चार या पाँच पुरुषो की नियुक्ति करे, जो कि लोगो से शुल्क (चुंगी) ग्रहण करते रहे और जो व्यापारी आदि अपने माल को लेकर उधर से निकले उनकी पूरी जानकारी लेकर शुल्क वसूल करे। शुल्क न देने वाले के लिए दण्ड का विधान बताया गया है। "शुल्क अधिक देने के डर से, जो व्यापारी अपने माल के परिमाण को और मूल्य को कम करके बतावे, उसके बताये हुए परिमाण से अधिक माल को राजा ले लेवे। अथवा उस व्यापारी से इस अपराध मे 8 गुना शुल्क वसूल किया जाय।"

कौटिल्य ने उन नियमो का भी प्रतिपादन किया है, जिस माल या व्यापारी से चुगी नही लेनी है। उनके अनुसार जो माल विवाह सबधी हो, विवाह के बाद विवाहिता स्त्री अपने पतिगृह को ले जावे, यज्ञ कार्य तथा प्रसव आदि से संबंधित माल पर चुगी नही ली जानी चाहिए। कौटिल्य के अनुसार यदि कोई व्यक्ति चुगी योग्य पदार्थ बिना चुगी दिए ले जाने का प्रयत्न करे तो उस पर देय चुगी के समान भाग अर्थदण्ड देना चाहिए।

शुल्क के प्रकार–कौटिल्य ने शुल्क के तीन विभाग बताए है–(1)बाह्य (2) अभ्यन्तर और (3) आतिथ्य। अपने देश मे उत्पन्न हुई वस्तुओ पर जो चुगी ली जाय वह बाह्य कहलाती है। दुर्ग तथा राजधानी आदि के भीतर उत्पन्न हुई वस्तुओ के शुल्क को अभ्यान्तर कहते हैं। विदेश से आने वाले माल की चुँगी को –आतिथ्य' कहा जाता है। बाहर से आने वाले पदार्थों पर पाचवाँ हिस्सा चुँगी लेने का विधान अर्थशास्त्र मे बताया गया है। अर्थशास्त्र मे वस्तु विभाजन के आधार पर 1/5, 1/6, 1/10, 1/15, 1/20, 1/25 आदि के अनुपात मे चुगी वसूलने का नियम बताया गया है।

जहाँ तक करारोपण मे अपनाये गये सिद्धान्तो का प्रश्न है, हम आधुनिक अर्थशास्त्रियों की ही भाँति विभिन्न सिद्धान्तो का उल्लेख पाते हैं। वास्तव में ये करारोपण के सिद्धान्त (Principles) न होकर करों के नियम (Canons) थे। कौटिल्य राय देते हैं कि कृषि मे लगे करों को तभी लेना चाहिए जब फसल पकी हो। इस प्रकार हमे इसमे सुविधा का नियम (Canon of Convenience) मिलता है। निश्चितता का नियम (Canon of Certainty) पालन के लिए हर कर या देय कर की दर राज्य द्वारा निर्धारित है और हर अधिकारी के ऊपर कडी निगरानी रखी जाती है। कौटिल्य अपव्यय के सदा विरोध मे रहे हैं उनका कथन है कि जितना धन प्रजा से लिया जाय वह सम्पूर्ण धन राजकोष मे जमा हो। यह मितव्ययिता के सिद्धान्त के पालन का द्योतक है। उन्होने इस बात का भी ध्यान रखा कि कर उन्ही से लिया जाय जो कर देने मे समर्थ हो जो कि आधुनिक प्रगतिशील करारोपण के अनुकूल है।

कौटिल्य के अधिकाश कर उत्पादकता के सिद्धान्त पर आधारित थे। विशेषकर भूमिकर जो कि सबसे महत्त्वपूर्ण कर था भूमि की उपज के अनुपात मे लिया जाता था।

आयात–निर्यात कर भी मूल्यानुसार लिय जाते थे। इसी प्रकार क्रय–विक्रय कर भी वस्तुओ के मूल्य के ही अनुसार थे। तात्पय है कि कर व्यवस्था म पर्याप्त लोच थी और यह कर देय–क्षमता (Ability to Pay) के सिद्धान्त पर आधारित थी।

उत्पादन तथा उसके साधन

उत्पादन के अन्तर्गत कौटिल्य ने वस्तुत अनेक प्रकार की वस्तुओ के उत्पादन का जिक्र किया है कृषि मे विभिन्न प्रकार के अन्नो का उत्पादन करने की प्रक्रियाएँ बताइ हैं। इसके साथ ही खाद सिचाई आदि साधना द्वारा कैस उत्पत्ति मे वृद्धि की जा सकती है इसका भी उल्लेख प्राप्त होता है।

कृषि उत्पादन के साथ–साथ आभूषणो रत्नो शिल्प सामग्री और सूती–ऊनी कपडो का उत्पादन भी किया जाता था। परन्तु उत्पादन मात्र से ही लोग सतुष्ट नही होते थे उन्हे वास्तविक लागत पर माग और पूर्ति को ध्यान मे रखते हुए अपना मुनाफा जोडकर मूल्य निर्धारित करने और माल बेचने की व्यवस्था करनी पडती थी। व्यापारिक प्रक्रिया के अन्तर्गत कच्चा माल भी एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया जाता था। इन सबके सबध मे कौटिल्य ने अर्थशास्त्र मे विशद रूप से विचार किया है और अपनी व्यवस्था दी है।

कृषि–कौटिल्य ने अर्थशास्त्र मे कृषि को विशेष प्रधानता दी है। कृषि भूमि एव गैर कृषि भूमि का बटवारा कर अधिकाधिक उत्पादन के लिए उन्होने प्रोत्साहित किया है। जिस भूमि मे अन्न आदि उत्पन्न नही किया जा सकता उसका नाम भूमि छिद्र बताया है। इस प्रकार की भूमि को किस प्रकार कृषि योग्य बनाया जाय इसका भली–भाति निरुपण कौटिल्य ने अर्थशास्त्र मे किया है। उनका कहना है कि जिस भूमि मे कृषि न हो सके वहाँ पर पशुओ के लिए चरागाह आदि बनवा दिए जाने चाहिए। (अकृष्या भूमी पशुभ्यो विवीतानि प्रयच्छेत्)।*

कृषि नीति–कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार कृषि का अधिकाश भाग राजा के अधीन हुआ करता था। कृषि राज्य आय का प्रमुख स्रोत थी। राजा अनुपजाऊ तथा ऊसर भूमि पर गाँवो को बसाया करता था। समाज के लोग जितनी भूमि अपने अधिकार मे रखकर उत्पादन करते थे उसके बदले वे राजा को उत्पादन का 1/6 भाग कर के रूप मे देते थे।

कृषि करने हेतु कौटिल्य ने विभिन्न नियमो का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा है कि कृषि–विभाग के प्रबधकर्त्ता के लिए आवश्यक है कि वह कृषि अर्थशास्त्र शुल्क शास्त्र वृक्षायुर्वेद आदि के सबध मे पूरी जानकारी रखने वाला हो। अच्छे बीज तथा खाद्यान्नो के उत्पादन की विभिन्न विधियो का उसे पूरा–पूरा ज्ञान हो। उनका कहना है कि कृषि भूमि अधिक हो तो अन्य प्रकार के कर्मकरों से भी बीज बोने का काम ले। किन्तु इस स्थिति मे उन्हे पारिश्रमिक फल प्राप्त होने पर ही देवे। कौटिल्य ने

'अर्थशास्त्र मे ब्रिटिश सस्थापकवादी अर्थशास्त्रियो की भॉति उत्पादन अधिकतमकरण पर जोर दिया गया है परन्तु यह सब जनता के कल्याण हेतु ही किया गया है, क्योकि असतुष्ट प्रजा वाले राजा की स्थिति 'एक पहिये की गाडी' के समान होती है।

सिंचाई–सिचाई हेतु सामान्यत वर्षा पर ही निर्भर रहना बताया गया हे परन्तु इसके अतिरिक्त भी तालाब, कुआ तथा नहरो आदि के द्वारा भी खेत की सिचाई पर उत्पादन बढाने के नियम बताए गए है। कौटिल्य ने नदी, झील तालाब और कुओ से सिचाई करने पर उपज का चौथा हिस्सा राजा को देने का निर्देश दिया गया हे। अलग–अलग स्रोतो से सिचाई कर का निर्धारण भिन्न–भिन्न था। सिचाई हेतु कौटिल्य बॉध बनाने की व्यवस्था देते है ओर बॉध को हानि पहुँचाने वालो के लिए दण्ड की भी व्यवस्था का निर्देश देते हैं। कौटिल्य वास्तव में अन्न की महत्ता पर अधिक जोर देते हैं। (अन्नदान भ्रूणहत्यामति मार्ष्टि। कौ. सूत्र 413)

पशुपालन–पशुपालको को गोपालक कहा गया है। यह भारतीय प्राचीन व्यवसायो मे सर्वश्रेष्ठ व्यवसाय है। पशुओ के चरने के लिए गोचर भूमि का उल्लेख है। पशुओ के चराने वाले ग्वालो के लिए मजदूरी निर्धारित की गयी थी। प्रत्येक पशु के लिए एक–एक पण वार्षिक पारिश्रमिक बताया गया है। पशुधन की प्रधानता को देखते हुए कौटिल्य ने उनके खाने–पीने के प्रबध को लेकर क्षति पहुँचाने वालो के विरुद्ध कडी कार्यवाही के विधानो का उल्लेख किया है।

वाणिज्य–व्यापार

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र मे व्यापार और उसके नियमो का सम्यक् विवेचन किया है। उन्होने सोने के व्यापार को प्रमुखता दी है। जिस बाजार मे सोने का क्रय–विक्रय होता था उसका नाम 'विशिखा' बताया गया है। इसके साथ ही कौटिल्य ने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारो, व्यापारिक मार्गों तथा तत्सबधी नियमो का प्रतिपादन किया है। आयात–निर्यात दोनो ही प्रकार की सामग्री पर कर लगाये जाते थे। आयात कर को 'प्रवेश्य' और निर्यात कर को 'निष्क्राम्य' कहते थे। आयात कर 20 प्रतिशत होता था परन्तु निर्यात कर की दर निश्चित रूप से ज्ञात नहीं थी। विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए कौटिल्य ने कई सुविधाओ का उल्लेख किया है। अर्थशास्त्र कहता है कि विदेशी माल को अनुग्रह से देश मे प्रवेश कराया जाय। इसके लिए नाविको और विदेशी व्यापारियो को लाभ से अधिक लिए जाने वाले कर से मुक्त कर दिया जाय।

समुद्र से होने वाले जल मार्गों को कौटिल्य ने सयानपथ के नाम से पुकारा है। समुद्र मे आने–जाने वाले जहाज 'प्रवहण' कहलाते थे। बदरगाहो पर जहाजो के प्रवेश और निष्क्रमण का पूरा प्रबन्ध था। कौटिल्य का कथन है कि 'तूफान के कारण आहत हुआ जब कोई जहाज बदरगाह पर पहुँचे तो बदरगाह के अध्यक्ष को उस पर पिता की भाँति अनुग्रह करना चाहिए।' कौटिल्य अर्थशास्त्र ने राज्य व्यापार को प्रधानता दी गयी

है परन्तु राज्य व्यापार जनता के हित म ही व्यवस्थित किया गया था। उसके द्वारा जा व्यापारिक विधान था उसके मुख्यत दो उद्देश्य थे–राज्य की आय म वृद्धि और उपभोक्ता का सरक्षण। विदेशी व्यापार मे आयात को प्रोत्साहन देने के साथ ही उन्होने इस बात पर भी ध्यान रखा कि निर्यात की गयी वस्तुएँ सलाभ बिके। साथ ही यह भी व्यवस्था की कि जहा लाभ हो वहीं सामान बेचना चाहिए। लाभ रहित स्थान को दूर से ही त्याग देना उचित है। आयात–निर्यात को प्रोत्साहित करने की नीति के साथ ही साथ कौटिल्य कुछ वस्तुओ के निर्यात पर प्रतिबध आरोपित करते हैं तथा उनके आयात को विशेष रूप से प्रोत्साहित करते हैं। उनके अनुसार अस्त्र शस्त्र सैन्य–अश्व पशु एव अन्न इन सभी का निर्यात वर्जित है। इन वस्तुओं का आयात नि शुल्क एव करमुक्त था। विदेशी व्यापार को नियन्त्रित एव प्रशासित करने का सामान्य सिद्धान्त यह था कि जो वस्तुएँ राज्य एव जनता के लिए उपयोगी हो और जिनके निर्यात से हानि पहुँचती हो उनका निर्यात नहीं किया जावे। उन वस्तुओ को प्रोत्साहित किया जावे जो राज्य के लिए अत्यन्त उपयोगी है। दुर्लभ बीजो आदि का आयात कर से मुक्त होना चाहिए।

व्यवसाय–कौटिल्य उत्पादन को अर्थव्यवस्था मे प्रथम स्थान देते हैं। उनके विचार में आर्थिक प्रगति का मुख्य स्रोत उत्पादन वृद्धि ही है। व्यवसायों में कृषि का स्थान सर्वोपरि है और उसी की उन्नति से अर्थव्यवस्था की प्रगति सभव है।

अर्थशास्त्र में हमे वर्षा नदी नहर तालाब तथा यन्त्रो से सिचाई उर्वरको के उपयोग फसलो के हेरफेर भूमि के अनुसार फसल बोना और भूमि को फसल के उपयुक्त बनाना भूमि के टुकडे होने की हानिया कृषकों को ही भूमि का स्वामी बनाना आदि वातों का स्पष्ट रूप से वर्णन मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि कौटिल्य अर्थव्यवस्था में भूमि को प्रधानता देते थे।

कौटिल्य ने विभिन्न व्यवसायो पर लगे हुए श्रमिको की मजदूरी तथा उनके प्रतिबधात्मक नियमो का विवेचन किया है। विभिन्न व्यवसायों में कार्य करने वाले श्रमिकों को दो भागों म विभक्त कर दिया गया था–(1) कुशल श्रमिक तथा (2) अकुशल श्रमिक। ऊन तथा कपास आदि के व्यवसाय के सबध मे कहा गया है कि सूत्राध्यक्ष को चाहिए कि वह तत्सबधी व्यवसाय मे कुशल कारीगरो की ही नियुक्ति करे। कौटिल्य ने सोने चादी कुटीर उद्योग धधों आदि से सबधित अनेक व्यवसायो का विस्तृत विवेचन अर्थशास्त्र में किया है। कौटिल्य ने विभिन्न उद्योग धधो म सूती एव ऊनी कपडा कैसे और कहाँ बनता था इसका पूर्ण विवरण दिया है। उनके अनुसार देश म कपास की खेती प्रचुरता से होती थी। सूती कपडा के बनाने वाले ततुवाय (जुलाहे) काफी व्यस्त रहते थे। कपास के सूत के अलावा सन का भी कपड बनाने म प्रयोग होता था। कौटिल्य ने चीनपट्ट का भी नाम लिया है जिससे प्रगट होता है कि इस समय चीनी रेशमी वस्त्र भारत मे आता था।

काष्ठशिल्प चर्म सुरा व्यवसाय आदि की उन्नत अवस्था का भी अर्थशास्त्र में उल्लेख मिलता है।

व्यवसायियो को पूर्ण सरक्षण प्राप्त था। किसी कारीगर को हानि पहुँचाने पर कठोर दण्ड दिया जाता था। कौटिल्य के अनुसार यदि कार्य कराने वाले लोग श्रमिक को छोड दे या श्रमिक कार्य करना छोड दे तो दोनो को दण्ड दिया जाना चाहिए।

श्रमिक एवं मजदूरी—श्रमिको की मजदूरी के सबध में कौटिल्य ने कहा है कि किसान अनाज का; ग्वाला घी का और खरीद–फरोख्त करने वाला अपने द्वारा व्यवहृत हुई चीजों का दसवॉं हिस्सा लेवे, बशर्ते कि वेतन पहले से तय न हुआ हो। कौटिल्य का कहना है कि यदि एक धरण चाँदी की कोई वस्तु बनायी जाय तो श्रमिक को एक 'माषक' वेतन दिया जाना चाहिए। सोने की बनवाई के लिए 8वॉं हिस्सा वेतन दिया जाय तथा विशेष कारीगरी करने पर दुगनी मजदूरी दी जावे। इस प्रकार अधिक काम करने पर अधिक मजदूरी दी जाय।[10] राज्य कर्मचारियों के काम करते हुए मर जाने पर उनके वेतन आदि को उनके पुत्र या पत्नी को दे दिया जाना चाहिए। कौटिल्य का कहना है कि यदि खजाने मे कमी है, तो राजा सहायता देने योग्य पुरुषों को पशु तथा जमीन देवे। कौटिल्य के इन नियमो से आधुनिक श्रमिक कल्याण के नियम भी पीछे रह जाते हैं। जिसने उस समय भी श्रमिको के कल्याण एव शोषण के विरुद्ध नियमो का उल्लेख किया है।

स्त्री श्रमिक—कौटिल्य के अनुसार अपने जीविकोपार्जन के लिए स्त्रियाँ भी कार्य करती थी। उनके सम्बन्ध में कहा गया है कि जो स्त्रियाँ परदे में रहकर ही काम करना चाहे, जिनके पति परदेश मे गये हो तथा विकलाग और अविवाहित स्त्रियॉं, जो कि स्वय अपना पेट भरना चाहे, अध्यक्ष को चाहिए कि वह उनसे सूत कतवाने आदि का काम करावे और उनके साथ अच्छी तरह सत्कारपूर्वक व्यवहार करे। अर्थशास्त्र मे उन्हे उचित वेतन दिए जाने का भी उल्लेख है। परन्तु साथ ही वेतन लेकर काम न करने वाली स्त्री के लिए कठोर नियमो का भी प्रतिपादन किया गया है।

श्रमिक संघ—कौटिल्य ने विभिन्न श्रमिक सघो का उल्लेख किया है। सघों के लिए निर्देश था कि वे बताये गये नियमों पर ही कार्य करे। नियमो का पालन नही किये जाने पर दण्ड देने का भी विधान था। अर्थशास्त्र मे सघो के मुख्यत निम्न प्रकार बताये गये हैं—

(1) बढ़ईगीरी
(2) खान कार्यकर्ता सघ (सोना, चाँदी, लौहा आदि)
(3) बुनकर (सूती वस्त्र बुनकर, ऊनी वस्त्र बुनकर),
(4) पाषाण कलाकारी,
(5) पुरोहित
(6) गायक
(7) चिकित्सक कार्यकर्त्ता
(8) सेवा सघ,
(9) क्रय–विक्रय कर्त्ता

मुद्रा व्यवस्था

व्यापार की सुविधा के लिए उचित द्रव्य–व्यवस्था एव नाप–तौल की व्यवस्था की गयी थी। कौटिल्य ने द्रव्य के दो कार्य माने है–(1) विनियम का माध्यम एव (2) कोष मे धन जमा करने के लिए विधिग्राह्य माध्यम (कौटिल्य अर्थशास्त्र 2 12 29)। कौटिल्य के अनुसार उस समय प्रामाणिक सिक्का 'पण' था जिसको बनाने के लिए चारमाशा ताँबा एक माशा तीक्ष्ण त्रपु–शीशा या अजन और शेष ग्यारह माशा चाँदी का योग आवश्यक है। (कौटिल्य अर्थशास्त्र 2 12 27)। पर यह कहा जा सकता है कि मुद्रामान स्वर्ण विनिमय मान था क्योकि अन्य प्रकार के सिक्को–साकेतिक सिक्को–का मूल्य स्वर्ण के रूप मे निर्धारित था। साथ ही स्वर्ण एव चाँदी की विनिमय दरे भी निर्धारित थी। यदि कोई स्वर्णकार सोने की खान से एक माशा सोना चुरा ले तो उस पर 200 पण दण्ड होगा। यदि कोई इतनी चाँदी, चाँदी की खान से चुरा ले तो उस पर 12 पण दण्ड होगा। इससे स्पष्ट हुआ कि स्वर्ण एव चाँदी की विनिमय दर 12=200 या 1 = 16 67 हुई। विनिमय की सुविधा के लिए पण के अतिरिक्त छोटे सिक्के अर्धपण (अठन्नी), पादपण (चवन्नी) एव अष्ठभाग (दुअन्नी) पण के ही अनुपात मे धातु मिश्रण से बनाए जाने का विधान है। इसके अलावा कौटिल्य पण के चौथाई मूल्य के बराबर एक ताँबे के भी सिक्के की व्यवस्था करते हैं जिसे 'माषक' कहते है। इसका धातु मिश्रण 11 माशा ताँबा, चार माशा चाँदी एव एक माशा लोहे से बना होगा। इसी अनुपात मे अर्ध माषक (काकणी) एव अर्ध कारणी नाम के सिक्को का भी विधान था।

अत स्पष्ट है कि चाणक्य ने जिस मुद्रा व्यवस्था का विधान बनाया है वह मितव्ययी, सुविधाजनक, सरल एव लोचदार है। सिक्कों की ढलाई का कार्य सरकार द्वारा नियुक्त स्वर्णकार के हाथ मे है। अपने कर्त्तव्यो से च्युत होने पर उसके लिए भी कठोर दण्डो का विधान बनाया गया है।

बाजार संगठन–कौटिल्य अर्थशास्त्र मे वर्णित बाजार व्यवस्था से स्पष्ट होता है कि उस समय बाजार के सगठन का इतना अच्छा प्रबन्ध था कि थोडी–सी भी चोर बाजारी करने वाले दुकानदार को दण्ड का भागी होना पडता था। बाजारो की देखरेख के लिए एक निरीक्षक होता था। जिसे 'पण्याध्यक्ष' कहा गया है। उसका कर्तव्य तराजू, बट्टे नाप के बर्तनो तथा तौल आदि का निरीक्षण करना था । इस बाजार सगठन को प्रजा के कल्याण को दृष्टि मे रखकर बनाया गया था। क्योकि कौटिल्य का कहना है कि सम्पूर्ण वस्तुओ को दैनिक वेतन देकर इस प्रकार भी विक्रय करवाया जा सकता है कि जिससे प्रजा का कल्याण हो।

मापतौल–वस्तुओ के माप करने के लिए अनेक प्रकार की मापतौल प्रणालियों का विवरण भी अर्थशास्त्र मे प्राप्त होता है। माप तोल पर राज्य का अधिकार था। उनकी जाँच के लिए 'पटवाध्यक्ष' नाम के अधिकारी नियुक्त थे। बाटो पर चिन्ह लगे हुए होते

थे। कौटिल्य के अनुसार ये तौल मगध और मेकल से प्राप्त पाषाण और लौह के बने हुए होने चाहिए या किसी अन्य धातु के जो गीली होने पर सिकुडे नही और न ही गर्मी के प्रभाव से फैले। कौटिल्य ने सोना–चाँदी भारी वस्तुओ लम्बाई नापने वस्त्र नापने आदि का जो उल्लेख किया है उसका विवरण इस प्रकार से है–

स्वर्ण का तौल इस प्रकार दिया है–

10 धान्य माष = सुवर्ण माष

16 सुवर्ण माष = 1 सुवर्ण– 1 कर्ष

4 कर्ष व 4 स्वर्ण = 1 पल।

कौटिल्य ने चाँदी की तौल के लिए 1 रोप्यमाष = 88 गौर सर्षप और 16 रोप्यमाष = 1 धरण निश्चित किया था। हीरा की तौल के लिए सबसे निम्न इकाई था 'तण्डुल' और भारी वजन था 'धरण' जो वैदूर्यधरण के नाम से पुकारा जाता था।

भारी वस्तुओ के लिए भी तौल निर्धारित था। अन्न और गीली वस्तु बर्तन द्वारा माप कर दी जाती थी। भारी तौल का आधार द्रोण था। अर्थशास्त्र मे चार प्रकार के द्रोण का उल्लेख है (1) आयामी (2) व्यावहारिक (3) भाजनी और (4) अत पुरभाजनी। आयामी द्रोण 200 पल के बराबर होता था।

लम्बाई नापने के लिए प्राय अगुल का प्रयोग होता था। उसके ये माप इस प्रकार हैं– (1) परमाणु (2) रथरेणु (3) लिक्षा (4) यूक (5) यवमध्य इत्यादि।

इनका तौल अर्थशास्त्र मे (मो 2 20 1–7) इस प्रकार दिया गया है–

(1) 8 परमाणु = 1 रथरेणु

(2) 8 रथरेणु = 1 लिक्षा

(3) 8 लिक्षा = 1 यूक

(4) 8 यूक = 1 यव

(5) 8 यव = 1 अगुल

वस्त्र नापने के लिए भी नापो का उल्लेख है जैसे वितस्ति हस्त और किष्कु (कौट 2 20 10)। यह नाप इस प्रकार है –

(1) 12 अगुल = 1 वितस्ति

(2) 2 वितस्ति = 1 प्रजापत्य हस्त

(3) 32 अगुल = 1 किष्कु।

कौटिल्य ने 16 प्रकार के तराजुओ का भी उल्लेख किया है। पहले 10 तराजू हल्के थे जो अलग–अलग वस्तुओ को तौलने के काम मे आते थे। सबसे भारी तराजू लकडी का बना होता था जो 8 घन (Cubit) लम्बा होता था।

व्यक्तिगत सम्पत्ति

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र म व्यक्तिगत सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए अनेक नियम

बताये हैं। उनका कहना है कि जिस पुरुष की सम्पत्ति के लिए साक्षी नहीं मिलते, परन्तु वह उसे लगातार भोगता चला आ रहा है तो यही बात उस सम्पत्ति पर उसका स्वत्व बतलाने के लिए पर्याप्त प्रमाण है। जो पुरुष दूसरो से भोगी जाती हुई अपनी सम्पत्ति की दस वर्ष तक परवाह नही करता, फिर उस सम्पत्ति पर उसका अधिकार नही होता। कौटिल्य ने पूर्णतया अनियत्रित व्यक्तिगत अधिकार की व्याख्या न कर एक प्रकार से 'नियत्रित पूँजीवाद' की व्यवस्था की थी। सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार होते हुए भी उस पर अनेक नियत्रण लगे हुए थे। उदाहरणार्थ यदि कोर्ठ व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति पाने मे सार्वजनिक अहित करता है तो राज्य उसे सम्पत्ति के अधिकार से वंचित कर सकता है।

इसी प्रकार हर व्यक्ति को अपनी भूमि बेचने का या खरीदने का अधिकार नही है। केवल कर देने वाले कर देने वालों को ही अपनी भूमि बेच सकते हैं। जिनको भूमि ब्राह्मण की रीति पर दान मे मिली है, वह ब्राह्मण अपनी भूमि ऐसे ही ब्राह्मणो के पास गिरवी रख सकता है। इसी प्रकार के अन्य नियन्त्रण कौटिल्य द्वारा निर्धारित किये गये है, जो कि लगभग उसी प्रकार के हैं, जैसे कि आज पूँजीवाद के नियत्रण हेतु कई देशो की सरकारो द्वारा लगाये जाते हैं।

सम्पत्ति का बटवारा व्यक्तिगत सम्पत्ति के लिए कौन अधिकारी हो सकता है। इस बारे मे कौटिल्य का मत है कि माता–पिता दोनों या केवल पिता के जीवित रहते हुए पुत्र सम्पत्ति के अधिकारी नही होते।[12] पिता की मृत्यु के बाद पुत्र आपस में सम्पत्ति का बटवारा कर सकते हैं। जिसकी सम्पत्ति का कोई उत्तराधिकारी न हो उसकी सम्पत्ति को राज्य अपने अधिकार में कर सकता है। पिता की सम्पत्ति को छोटे बडे के क्रमानुसार विभाजित करने के लिए भी नियम बताये गये हैं।

लाभ के नियम

अर्थशास्त्र में बताये गये सिद्धान्तो से ऐसा प्रतीत होता है कि व्यापारी वर्ग नाम का उपयोग करके काम से लाभ की चोरी करते थे। कौटिल्य ने स्थानीय उत्पादित वस्तुओं मे 5 प्रतिशत तथा विदेशी वस्तुओ पर क्रय से 10 प्रतिशत लाभ लेने के नियम बताये हैं। इसके अतिरिक्त कोई भी वस्तु बाजार के अतिरिक्त किसी भी स्थान पर नहीं बेची जा सकती है और न ही उत्पादन के स्थान पर बेची जा सकती थी। कोई भी व्यक्ति निर्धारित लाभ से अधिक लाभ नही ले सकता था। इनके अलावा खाद्यान्न निरीक्षण, मिलावट करने वाले व्यापारियो के दण्ड सबधी नियम भी बताए गए हैं।

राजकीय आय

कौटिल्य ने समाहर्ता, गोप, स्थानिक आदि अधिकारियो के माध्यम से आय प्राप्ति बताया है। इन सभी का अपना–अपना क्षेत्र बटा हुआ था। वे आय तथा व्यय का पूरा विवरण रखते थे। उस समय कर तथा कृषि से प्राप्त उत्पादन का हिस्सा ही आय का

प्रमुख स्रोत था। कौटिल्य ने राजा को कोष मे वृद्धि का परामर्श दिया है। उनका कहना है कि अल्प कोषो हि राजा पौरजान पदानेव ग्रस्ते अर्थात अल्पकोष के कारण ही राजा तथा प्रजा को कष्ट प्राप्त होता था। कौटिल्य के द्वारा बताए गये आय के स्रोत निम्न प्रकार है

(1) *विभिन्न प्रकार के भूमि कर उत्पादक भूमि पर कर शहरो मे मकान कर* बलिकर आकस्मिक कर आदि।

(2) कलाकार कर (कारु शिल्पगण) मत्स्य कर।

(3) वैश्य तथा द्यूत कर नशीली वस्तुओ तथा कसाई–खानो पर कर।

(4) बाजार मे बेची जाने वाली वस्तुओ पर कर आयात–निर्यात पर कर।

(5) सम्पत्ति कर धनोत्पादन कर खान कर नमक तथा अन्य वस्तुओ का एकाधिकारिक कर आदि।

(6) श्रमिक कर।

(7) मार्गकर (वर्तनी) नहर कर (जलभाग तरदेय) सामान लादने वाली भारी गाडियो पर कर अन्य व्यावहारिक कर।

(8) ऋण पर ब्याज।

(9) उत्सग आदि पर आकस्मिक कर।

(10) खैराती कर।

(11) आकस्मिक आयकर।

(12) कानूनी न्यायालय कर।

कर अथवा चुँगी का भुगतान नकद (सिक्के) तथा वस्तुओ के रूप मे किया जाता था। कौटिल्य ने सेनभक्तम उत्सग पार्श्व परिहिनिका औपायनिका आदि कर के प्रारूप बताये है। सामान्यत भूमिकर के भी विभिन्न प्रकारो के बारे मे कौटिल्य ने अर्थशास्त्र मे विवरण प्रस्तुत किया है।

ऋण एव ब्याज–*कौटिल्य ने अर्थशास्त्र मे ऋण के महत्व तथा तत्सबधी नियमो* का उल्लेख किया है। उनके अनुसार 100 पण पर एक महीने मे 1¼ पण ब्याज लेना ही उचित बताया है। व्यापारियो से 5 पण जगल मे रहने वालो अथवा वहाँ व्यापार करने वालो से 10 पण ब्याज लेने का नियम है। समुद्र मे आने जाने वाले या वहाँ व्यापार करने वालो से 20 पण ब्याज लेने को कहा गया है।

परन्तु कौटिल्य ने गुरुकुल मे अध्ययन करने वाले व्यक्ति बालक या शक्तिहीन पुरुष पर जो ऋण हो उससे ब्याज लेना निषिद्ध बतलाया है।

द्यूत

भारत वर्ष मे द्यूत क्रीडा प्राचीन काल से धनोपार्जन तथा धन के विनाश का कारण रहा है। कौटिल्य ने जुआ खेलने वालो के प्रति जहाँ एक ओर कठोर दण्ड का विधान

बताया है वही पर राष्ट्रीय आय की वृद्धि हेतु कर की वसूली करने के भी नियम बताये है। उनके अनुसार जीतने वाले से अध्यक्ष 5 रूपया प्रति सैंकडा लेवे और साथ ही कर भी वसूल करे।

सार्वजनिक व्यय

एक ओर जहाँ अर्थशास्त्र मे राजकीय आय के स्रोतो का उल्लेख है वही दूसरी ओर सार्वजनिक व्यय का भी आचार्य कौटिल्य ने भली–भाँति विवेचन किया है। सार्वजनिक व्यय की मुख्यत निम्नलिखित मदे बताई गयी हैं

(1) धार्मिक कार्य
(2) राजकीय गृहकार्यों का प्रबन्ध
(3) अधिकारिक वेतन का भुगतान
(4) कारखानो का प्रबध
(5) श्रमिको का भुगतान
(6) कृषि उत्पादन पर व्यय
(7) सैन्य शक्ति का सगठन
(8) शिक्षण संस्थाओ की स्थापना
(9) वैधव्यपालन
(10) जनहित कार्य, सडकों, नहरो आदि का निर्माण
(11) बच्चो, अधिकारियो, सेना के लोगो को पेशन।

उपर्युक्त आर्थिक विषयों के अतिरिक्त जनसख्या का विश्लेषणात्मक अध्ययन तथा तत्सबधी आकडे एकत्रित किये जाने का उल्लेख भी अर्थशास्त्र मे मिलता है। प्रशासनिक गतिविधियों की देखरेख के लिए पृथक–पृथक अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। समाहर्ता की यह जिम्मेदारी होती थी वह लोगो के आंकडे, मकान, पशु, खेती की माप, बाग, भूमि आदि के बारे मे पूरा लेखा जोखा रखे।

इस प्रकार आचार्य कौटिल्य अर्थशास्त्र मे वर्णित प्रोढ आर्थिक विचारो के आधार पर प्रथम अर्थशास्त्री कहे जा सकते हैं क्योकि इनके विचार आधुनिक एव प्राचीन अर्थशास्त्रियो से काफी मेल खाते हैं और अधिकाश मत एव सिद्धान्त आज भी भारतीय अर्थव्यवस्था मे प्रचलित है। राज्य मे हस्तक्षेप राजकीय आर्थिक क्षेत्र, एवं उत्पादन के आयोजन आदि के साथ निजी सम्पत्ति के अधिकार एव आर्थिक स्वतत्रता के सिद्धान्त के योग से 'अर्थशास्त्र' मे जिस आर्थिक व्यवस्था का चित्रण मिलता है। वह वर्तमान भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था के अधिक समीप है, पूँजीवाद या समाजवाद की धारणा के नहीं।

संदर्भ

1 कौटलीय अर्थशास्त्रम् – अध्याय 1 अभिकरण 7, श्लोक 10–11
2 कौटलीय अर्थशास्त्रम 1 15 1–2

3 चाणक्य पुणीत सूत्र 123
4 कौटलीय अर्थशास्त्रम् 2 13
5 कौटलीय अर्थशास्त्रम् 1219—39
6 कौटलीय अर्थशास्त्रम् 2212
7 कौटलीय अर्थशास्त्रम् 21224
8 कौटलीय अर्थशास्त्रम् 5282
9 कौटलीय अर्थशास्त्रम् 21 10—15
10 कौटलीय अर्थशास्त्रम 1448—50
11 कौटलीय अर्थशास्त्रम् 411
12 कौटलीय अर्थशास्त्रम् 351—21

प्रश्न

1 कौटिल्य के कोश सग्रह सम्बन्धी विचारो का वर्णन कीजिए।

2 कौटिल्य के मजदूरी तथा श्रमिक सगठन सम्बधी विचारों को स्पष्ट कीजिए।

3 कौटिल्य के अनुसार बाजार सगठन तथा माप तौल की क्या व्यवस्था थी ?

4 कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे लाभ के सम्बन्ध मे क्या विचार थे ?

5 कौटिल्य के राजकीय आय–व्यय सम्बन्धी विचारो को स्पष्ट कीजिए।

6 कौटिल्य के अर्थशास्त्र पर सक्षेप में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

7 कौटिल्य ने अर्थ एव अर्थशास्त्र की क्या परिभाषा दी है। आचार्य कौटिल्य ने कर उत्पादन के साधन कृषि व पशुपालन श्रमिक व श्रम सगठन मुद्राव्यवस्था तथा राज्य की आय व व्यय के सम्बन्ध मे क्या विचार दिये हैं ?

8 निम्न पर सक्षेप में टिप्पणी लिखो।

(अ) कौटिल्य के मापतौल पर विचार

(ब) व्यक्तिगत सम्पत्ति व ¤ टिल्य

(स) कौटिल्य का जीवन परिचय

(द) कौटिल्य व कृषि व्यवस्था।



10

स्वामी दयानन्द सरस्वती
(Swami Dayanand Saraswati)
(1824-1883)

स्वामी दयानन्द सरस्वती : संक्षिप्त परिचय

स्वामी दयानन्द सरस्वती आधुनिक युग के सबसे बडे वेदो के विद्वान, सस्कृत के प्रकाण्ड पडित, समाज सुधारक, और शिक्षाविद ही नही थे अपितु वे एक अर्थशास्त्री भी थे। प्राय लोग उन्हें धर्माचार्य के रूप मे ही अधिक जानते हैं । बहुत कम लोगो को विदित है कि वे मात्र धर्म के ही नही अपितु पुरूषार्थ चतुष्ट्य (धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष) के अद्वितीय विद्वान और व्याख्याता थे। उनके मस्तिष्क मे एक स्वस्थ समाज का मानचित्र था जो धार्मिक दृष्टि के साथ–साथ आर्थिक दृष्टि से भी समृद्ध हो। उन्होने अर्थ का भी उतना ही अध्ययन किया था जितना कि धर्म का। वे भौतिकता के भी उतने ही समर्थक थे जितने कि आध्यात्मिकता के। अपने सम्पूर्ण जीवन काल मे वे मनुष्यों को जीवन जीने की उत्कृष्ट कला का व्यावहारिक उपदेश देते रहे, जीवन से पलायन करने का नहीं। उन्होने अपनी रचनाओ मे पुरूषार्थ करो और अपनी निर्धनता को दूर करो, तथा 'धन और ऐश्वर्यो के स्वामी बनो' का कई जगह उल्लेख किया है।[1]

भाद्रपद शुक्ल 9, गुरूवार सवत् 1881 वि (20 सितम्बर, 1824) को गुजरात के टकारा नगर में श्री कृष्णलालजी तिवाडी के घर बालक मूलशकर का जन्म हुआ। परिवार में शैव मत का प्रचलन था। घर मे सस्कृत और वेद शास्त्रो के पठन–पाठन की परम्परा होने के कारण 14 वर्ष की आयु मे ही मूलशकर ने कुछ वेदो तथा यजुर्वेद सहिता को कठस्थ कर ली थी। बचपन से ही वे जिज्ञासु वृति के थे। एक बार शिवरात्रि के अवसर पर उन्होने व्रत रखा और शिव मदिर मे रात्रि जागरण के लिए बैठे रहे । मूलशकर के पिता सहित सभी व्रतधारी धीरे–धीरे प्रगाढ निद्रा में सो गये पर जिज्ञासु मूलशकर अपने मुँह पर पानी के छीटे दे–देकर सारी रात्रि भर यह सोचकर जागते रहे कि सच्चे शिव के दर्शन होगे। तभी एक ऐसी घटना घटित हुई जिसने मूलशकर के मन मे मूर्ति–पूजा व परम्परागत धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति विरक्ति का भाव उत्पन्न हो गया। मूलशकर देखते हैं कि शिव मूर्ति पर एक चूहा चढ कर उछल–कूद कर रहा है तथा भक्तजनो द्वारा चढाये हुए फल फूलो आदि को खा रहा है। इस घटना को देखकर बालक के मन

मे जिज्ञासा उत्पन्न हुई क्या यही सच्चा शिव है ? यदि यह सच्चा शिव है तो अपने ऊपर से चूहे को क्यो नही हटा सका ? उनके मन मे यह भावना बैठ गयी कि सच्चा शिव कही ओर है और उसी दिन से सच्चे शिव के बारे मे सोचने लगे अत मे एक दिन 21 वर्ष की आयु मे शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी बनकर सच्चे शिव की खोज मे घर से निकल पडे। शिवरात्रि की घटना एव घर से निकलने के बीच की दो घटनाएँ ओर हुई जिनसे बालक के मन मे सासारिक बातो से विरक्ति उत्पन्न हुई। एक उनकी बहिन की मृत्यु तथा दूसरी उनके चाचा की मृत्यु। इससे उनका मन गहन सताप मे डूब गया। बालक का इस प्रकार की मन स्थिति देखकर उनके पिताजी ने उनको ग्रहस्थ मे बाधने का निश्चय किया, पर विवाह के लिए वे बिल्कुल भी तैयार नही हुए और वे साधु बन गये तथा अपनी योग एव ज्ञान पिपासा शात करने के लिए प्रसिद्ध धार्मिक व आध्यात्मिक स्थानो पर पहुँच कर अनेक सतो महात्माओ का सानिध्य प्राप्त किया। सवत 1904 वि मे सन्यास की दीक्षा लेकर उन्होने विश्व–विख्यात स्वामी दयानन्द सरस्वती नाम प्राप्त किया। सन्यास के बाद भी ज्ञान पिपासा शात न होते देख सवत 1917 वि (सन 1860 ई) मे वे मथुरा आये और मथुरा मे उन्होने दण्डी स्वामी विरजानद सरस्वती के चरणो मे बैठकर ढाई वर्षों तक वैदिक ग्रन्था एव आर्ष व्याकरण का गहनता से अध्ययन किया। जब विरजानद आश्वस्त हो गये कि उनका शिष्य वेदो के प्रचार–प्रसार के दायित्वो का निर्वाह करने मे समर्थ हो चुका है उन्होने दयानन्द को आदेश दिया देश मे वेदो का अध्ययन–अध्यापन बद हो चुका है तथा भारतवर्ष मे अज्ञान का अधकार विद्यमान है तुम वेदो के ज्ञान को पुन प्रतिष्ठित कर अज्ञान के अधकार का नाश करो। उन्होने गुरु–दक्षिणा के रूप मे दयानन्द से यह वचन प्राप्त किया कि वे अपना जीवन वेदो के प्रचार–प्रसार और भारत के धर्म के नाम पर प्रचलित हो रही रूढियो पाखण्डो एव अधविश्वासो के उन्मूलन के लिए अर्पित कर देगे।

गुरु के आदेश एव उपदेश को स्वीकार कर दयानन्द चार वर्ष तक उत्तर भारत के अनेक स्थानो– आगरा हरिद्वार काशी मे व्याख्यान दिए और अनेक स्थानो पर पौराणिक मान्यता पडितो से शास्त्रार्थ कर पराजित किया। स्वामी दयानद ने अपने भाषणो मे अवतारवाद का विरोध किया तथा ऐकेश्वरवाद का प्रवर्तन किया। उन्होने अपने भाषणों मे इस बात पर जोर दिया कि "वैदिक ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है।"

काशी से चलकर विहार का भ्रमण करते हुए स्वामीजी कलकत्ता पहुँचे। कलकत्ता मे उन्होने विशेष तौर पर केशवचन्द सेन से राष्ट्र एव समाज के नव–जागरण विषय मे चर्चा की। स्वामीजी की विद्वता ईश्वर विश्वास आत्मबल एव परोपकार की भावना से केशवचद बहुत प्रभावित हुए। केशवचद ने उन्हे परामर्श दिया के वे हिंदी भाषा मे प्रवचन करे तथा शरीर पर पूरे वस्त्र पहन कर रहे। उस समय तक स्वामीजी सस्कृत मे भाषण दिया करते थे और मात्र कोपीन पहन कर रहते थे जिससे सर्व साधारण को उनके प्रवचनो का लाभ नही मिल पाता था। कलकत्ता मे भ्रमण करके स्वामीजी हुगली

भागलपुर, पटना, डुमराव, मिर्जापुर, बम्बई प्रदेश मे आये। बम्बई से अपनी जन्मभूमि गुजरात आदि मे वैदिक धर्म का सदेश देकर पुन बम्बई पहुँचे। बम्बई मे चैत्र शुक्ला पचमी, 1932 वि. शनिवार, तदनुसार 10 अप्रेल 1875 को गिरगाव मौहल्ले मे प्रार्थना समाज के निकट एक पारसी डा माणेकजी अदेरजी की वाटिका मे 'आर्य समाज' की स्थापना की।

आर्य समाज की स्थापना के पश्चात स्वामीजी पश्चिमोत्तर प्रदेश (वर्तमान उत्तर प्रदेश) के अनेक नगरो मे आर्य समाज की विचारधारा फैलाते हुए 31 मार्च, 1877 को लुधियाना से पजाब का दौरा आरम किया। 24 जून, 1877 को डॉ रहीम खॉ की कोठी पर लाहौर मे आर्य समाज की स्थापना की । स्वामीजी के जीवन का तीन चौथाई हिस्सा मूर्तिपूजा के खण्डन मे अर्थात् धर्म, समाज मे फैल रही जड पूजा, व्यक्ति पूजा पाखण्ड, अज्ञान तथा अनार्ष ग्रन्थो के खण्डन तथा अध्यात्म धर्म के शास्वत सिद्धातो के मण्डन मे लग गया था।

महर्षि दयानद के जीवन मे उनके आर्थिक विचार अर्थशास्त्र के नियमानुसार कोई क्रमबद्ध रूप मे नही रहे न उनका मुख्य उद्देश्य ही केवल आर्थिक समस्याओ पर विचार कर उनका हल निकालना था , न दयानद स्वय अर्थ को ही सारी समस्याओं का मूल कारण मानते थे या उनकी दृष्टि मे अर्थ ही सब कुछ नही था। उनकी दृष्टि मे अर्थ मनुष्य ही नही प्राणी मात्र की मूल आवश्यकता तो थी किन्तु वे अर्थ को अकेला छोडना नही चाहते थे। अपितु उस पर धर्म का नियत्रण रखना चाहते थे। अत जीवन के अतिम काल के तीन चार वर्षों मे जब उन्होने लोगो मे धार्मिक अधविश्वास और पाखण्ड के विरोध ҕ प्रति चेतना देखी तो उन्हे सतोष हुआ और अपना शेष जीवन राजस्थान के राजा -महाराजाओ के सुधार और अग्रेजों द्वारा नष्ट की हुई देश की अर्थव्यवस्था को पुन. सुदृ‌ढ़ और उन्नत करने के चिंतन और उसकी क्रियान्विति मे लगाया।

स्वामी दयानद द्वारा अपनाये जाने वाले उपर्युक्त कार्यक्रम को कुछ मतान्ध लोगो ने तथा कुछ राजा--महाराजाओं के मुँह लगे लोगो ने अपने लिए खतरा महसूस किया और 29 सितम्बर 1883 ई की रात्रि को जोधपुर मे षडयत्र कर उन्हे दूध के साथ विष पिलवा दिया। कार्तिक अमावस्या, मगलवार सवत् 1940 वि तदनुसार 30 अक्टूबर, 1883 ई. को साय 6 बजे अजमेर की भिनाय कोठी मे स्वामीजी का देहान्त हो गया।

महर्षि दयानंद की प्रमुख कृतियाँ

महर्षि दयानद ने अनेक ग्रन्थो की रचना की। उनकी रचनाओ मे 'सत्यार्थ प्रकाश' तथा 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' प्रमुख हैं। उनकी रचनाएँ 'सस्कार विधि' 'व्यवहार भानु' 'अष्ठाध्यायी भाष्य अर्योद्देश्य--रत्नमाला' 'सत्यधर्म विचार' तथा ' वेदाग प्रकाश ' है। स्वामीजी की चारों वेदो का भाष्य करने की इच्छा थी, किन्तु वे अपने जीवन में ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के एक खण्ड का ही भाष्य सम्पूर्ण कर सके ।

महर्षि दयानद के आर्थिक विचारो की पृष्ठभूमि

यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि स्वामी दयानद के अर्थ पर कोई पृथक ग्रथ नही लिखा और न ही सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थो मे कोई स्वतत्र अध्याय ही लिखा है । प्राचीन काल मे अर्थशास्त्र केवल सम्पत्ति या भौतिक सम्पदा का अध्ययन करने वाला शास्त्र ही नही था अपितु इसका क्षेत्र व्यापक था अर्थशास्त्र मे भूमि भूमि पर रहने वाले तथा उनके व्यवहार और भूमि से प्राप्त खनिज पदार्थ आदि सम्पदा उनका सरक्षण एव नियन्त्रण आदि का कार्य प्रत्यक्ष रूप से राज्य का शासक करता था। अत अर्थशास्त्र एव राजशास्त्र एक दूसरे मे समाविष्ट और पर्यायवाची बन गये थे। यही कारण है कि महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश मे राजनीति पर छठा अध्याय लिख कर अर्थ पर स्वतत्र रूप से लिखना आवश्यक न समझा परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि दयानद की अपनी कोई आर्थिक विचारधारा नही थी। उन्होने सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय चतुर्थ छठे तथा दशम् अध्याय मे सस्कार विधि ऋग्वेद भाष्य भूमिका के गणितविद्या तार विद्या वर्णाश्रम विद्या नौविमानादि विद्या ऋग्वेद भाष्य के 4 494 5 476 4 532 7 541 4 57 1–8 1 188 10 38 11 3 53.20 5 5 10 1 106 2 180 8 519 3 7 6 5 7 8 6 6 68 5 6 64 4 1 4 4 इत्यादि यजुर्वेद भाष्य के 18 80 6 21 21 6 17 2 18 24 23 62 11 17 23 22 6 22 10 32 33 11 9 17 11.29 आदि तथा गोकरूणानिधि पशुपालन कृषि एव प्राथमिक आवश्यकताएँ व्यवहारभानु मे क्रय– विक्रय उद्योग आदि पर विवेचन किया गया है।

महर्षि दयानन्द की आर्थिक विचारधारा की पृष्ठभूमि मूलरूप से आर्ष ग्रन्थ यथा–वेद मनुस्मृति रामायण महाभारत शुक्रनीति एव कौटिल्य का अर्थशास्त्र आदि पर आधारित थी। सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थो में उन्होने वेद मनुस्मृति महाभारत और शुक्रनीति का तो स्पष्ट उल्लेख किया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र की उन्होने अपने ग्रन्थों मे कही भी चर्चा नही की है परन्तु कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे व्यक्त आर्थिक विचारों एव उनके आर्थिक विचारो मे साम्यता प्रकट होती है क्योकि कौटिल्य का अर्थशास्त्र महर्षि को उपलब्ध नही था।

दयानद के आर्थिक चितन मे राष्ट्रवादी तत्त्व

स्वामी दयानद का आर्थिक दर्शन उनकी राष्ट्रीय एव राजनीतिक विचारधारा से ही सम्बद्ध रहा था। दयानद ने अपने चितन मे भारतीय सस्कृति के गौरव और भारतीय अस्मिता का शखनाद करके भारतीय राष्ट्रवाद को वैचारिक सम्बल प्रदान किया । उन्होंने वेदो की ओर लौटने का आह्वान करके भारतीय जनमानस मे भारतीयता के प्रति गौरव के भाव का सचार किया।

प्राचीन भारत की आर्थिक समृद्धि की प्रशसा करते हुए महर्षि दयानद सत्यार्थ प्रकाश में लिखते ह। "यह आर्यावर्त्त देश ऐसा है कि जिसके सदृश भूगोल मे दूसरा कोई

देश नही है। इसलिए इस भूमि का नाम सुवर्ण भूमि है, क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नो को उत्पन्न करती है इसलिए सृष्टि की आदि मे आर्य लोग इसी देश मे आकर बसे। जितने विश्व मे देश हैं सब इसी देश की प्रशसा करते हुए आशा रखते हैं कि पारसमणि पत्थर सुना जाता है। वह बात तो झूठी है, परतु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि पत्थर है, जिसको लोहे रूप दरिद्र विदेशी छूने के साथ ही सुवर्ण अर्थात धनाढ्य हो जाते थे।'[2] परन्तु 1757 मे प्लासी की लडाई मे भारत की हार और ब्रिटिश शासन की स्थापना ने भारतीय कृषि, उद्योग, व्यापार आदि के लिए अवनति के बीज बो दिए।

महर्षि दयानद ने अपने व्याख्यानो मे स्पष्ट घोषणा की कि भारत की पराधीनता का मुख्य कारण यह रहा कि भारतीयो ने वेदो प्रतिपादित–जीवन मूल्यो और आचरण के नियमो की उपेक्षा करनी प्रारम्भ कर दी। उनके अनुसार वेदांत जीवन पद्धति से हटकर भारतीय लोग चारित्रिक पतन के मार्ग पर चल पडे, परिणामस्वरूप विदेशियो ने भारत पर अधिपत्य कर लिया।[3] वेदो के आधार पर, हिन्दू धार्मिक विश्वासो और जीवन पद्धति की विवेक–सम्मत व्याख्या कर दयानद ने न केवल वैदिक धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया, अपितु दृढतापूर्वक ईसाई मत और इस्लाम की अनेक दुर्बलताओ पर प्रहार किया था। आत्मविश्वास--पूर्वक यह उद्घोष किया कि वेदो पर आधारित हिन्दू जीवन पद्धति व धार्मिक विश्वास, ईसाई मत और इस्लाम की तुलना मे दीन नहीं है, अपितु श्रेष्ठतर है। उनके अनुसार भारतीय समाज को जागरूक एव सगठित बनाकर ही भारतीय समुदाय की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुन स्थापित किया जा सकता है। उन्होने स्वीकार किया कि पारस्परिक फूट, अज्ञान, चारित्रिक पतन और अनेक सामाजिक कुरीतियो के कारण ही भारत पर विदेशियो का आधिपत्य सम्भव हुआ है। उन्होने भारतीय इतिहास के उन पात्रो एव चरित्रो की भर्त्सना की जिनके कारण आर्य जाति में वेमनस्य बढा तथा आदर्श जीवन मूल्यो की अपेक्षा स्वार्थवृति एवं सयमहीनता का प्रचलन बढा। उन्होने दुर्योधन जैसे लोगो की निदा की, जिनके कारण आर्यों में पारस्परिक वैमनस्य हुआ और कौरवों, पाण्डव और यादवो का सत्यानाश हो गया, वह तो अतीत की घटना है परतु अब भी यही रोग भारतीयों को ग्रस्त किये हुए है जाने कब भारत इस भयकर राक्षस से मुक्त हो पायेगा या यह राक्षस, आर्यो को सब सुखो से वचित करके दु खो के महासागर मे डुबो देगा ? दुष्ट दुर्योधन जैसा स्वजाति–विनाशक स्वदेश– विनाशक, दुष्ट के कुमार्ग पर अभी तक आर्य लोग चल रहे हैं तथा हमारे दु खो मे वृद्धि कर रहे हैं । परमेश्वर कृपा करे कि यह राज–रोग हम आर्यों मे से नष्ट हो जाये।'[4]

उन्होने बाल–विवाह स्त्रियो की शिक्षा व उनकी स्वतत्रता का निषेध, विधवा विवाह का निषेध विदेश--यात्रा निषेध आदि का दृढता से विरोध किया तथा यह घोषणा की कि जब तक समाज मे से इन कुरीतियो का निवारण नही किया जायेगा तथा स्त्रियो व शूद्रो को शिक्षा के आत्मोन्नति के अवसर प्रदान नही किये जायेगे तब तक भारत का उत्थान सम्भव नही होगा।

उनका मत था कि भारत की अर्थव्यवस्था को बद से बदतर बनाने म ब्रिटिश सरकार पूर्ण उत्तरदायी है। वे राजा राममोहनराय के इस मत से सहमत नही थे कि ब्रिटिश सम्पर्क भारत के लिए वरदान सिद्ध हुआ है। उनके मत मे ब्रिटिश शासन भारत के लिए हर दृष्टि से अकल्याणकारी सिद्ध हुआ है। दयानद ने कहा कि यदि विदेशी शासन के अधीन तात्कालिक दृष्टि से लाभ भी प्रतीत हो तो भी विदेशी शासन को स्वाधीनता की तुलना मे श्रेयकर नहीं माना जा सकता। उन्ही के शब्दो म विदेशी शासन भले ही मत–मतान्तरो क पूर्वाग्रहो से मुक्त हो पक्षपात–शून्य दयालु कल्याणकारी और न्यायशील हो तब भी वह सुखमय नही माना जा सकता। [5] अग्रेजो ने घोर स्वार्थपरता की नीति अपना कर भारतीय कारखानो को हतोत्साहित किया और विकासोन्मुख अग्रेजी कारखानो को भरपूर सहयोग दिया। भारतीय रेशमी एव सूती कपडो पर इतना अधिक आयात कर लगा दिया कि वह इग्लैण्ड के बाजारो म प्रवेश न पा सके जबकि इग्लैण्ड का बना हुआ माल जो भारत वर्ष मे आता था उस पर शुल्क घटाकर कुल कीमत का अढाई प्रतिशत कर दिया गया और बहुत से माल पर से शुल्क बिल्कुल उठा लिया। उन्होने अनुभव किया कि देश का धन विदेशो मे जा रहा है तथा पाश्चात्य देशो की औद्योगिक उन्नति की तुलना में हमारे देश का व्यापार तथा व्यवसाय बहुत पिछडा हुआ है। उस समय हमारे देश मे निर्धनता चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। 1879 ई मे जब महर्षि दयानद फर्रुखाबाद मे विराज रहे थे तो उन्होने देखा कि एक वृद्धा अपने जवान पुत्र की मृत्यु पर दरिद्रता के घोर अभिशाप से ग्रस्त मृत पुत्र के लिए कफन भी नहीं जुटा पाई और न शव जलाने हेतु ईधन। फलत यह अभागिनी विधवा अपने लाल को गगा जल में प्रवाहित करने पर विवश हुई। विधवा के दु ख को देख कर महर्षि के मुख से यह करूणापूर्ण स्वर निकल पडे हाय! हमारे देश की निर्धनता किस सीमा तक पहुँच गयी है। देश के मृतको को कफन और ईधन भी उपलब्ध नही होता ।

महर्षि दयानद चाहते थे कि स्वदेशवासी स्वदेश मे उत्पादित वस्तुओं का प्रयोग करे। उनका मत था कि स्वदेशी मूल्यो स्वदेशी शिक्षा–पद्धति तथा स्वदेशी वस्तुओ को छोडकर विदेशी वस्तुओ के पीछे भागने की भारतीयो की प्रवृत्ति भारतीय जनता की मानसिक दासता को ही इगित करती है। महर्षि का स्वदेशी आदोलन केवल खान–पान वस्त्र निवास आदि तक ही सीमित नही था वरन् उनका आदोलन मनुष्य की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति तक फैला हुआ है।

भारतीयो की निर्भीकता और चारित्रिक दृढता के प्रति दयानद का आग्रह उनके उत्कट राष्ट्रवाद का ही एक पक्ष है। उनकी यह दृढ मान्यता थी कि चारित्रिक दुर्बलताओं से मुक्त निर्भीक भारतीय भारतीय जाति की अस्मिता की रक्षा और भारत के प्राचीन गौरव की पुन प्रतिष्ठा के लिए अविचल रह कर सघर्ष कर सकते हैं।

महर्षि दयानद सस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान होते हुए तथा मातृभाषा गुजराती होते हुए भी उन्होने अपने व्याख्यानो तथा सदेशों को जन–जन तक पहुँचाने का माध्यम हिन्दी

भाषा मे ही की तथा 'आर्यसमाज' जैसी संस्था की स्थापना के द्वारा देश मे सामाजिक धार्मिक, चारित्रिक व मानसिक सुधारो के माध्यम से राष्ट्रवाद के विकास का सूत्रपात किया।

महर्षि दयानंद का आर्थिक चिन्तन

महर्षि दयानंद की दृष्टि में अर्थ तथा अर्थशास्त्र

भारतीय आर्य सभ्यता की चार आधारशिलाओ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) मे अर्थ का अति महत्व है। अर्थ मानव–जीवन की मूल आवश्यकता है, उनके बिना मानव शरीर ही जीवित नहीं रह सकता। अर्थ धर्म की भाँति मोक्ष मार्ग में प्रधान सहायक है क्योकि यह स्थूल शरीर की आवश्यकता है। अर्थ के बिना धर्म और काम लगडा है। महर्षि दयानद की दृष्टि मे अर्थ का अभिप्राय जीवित रहने के धर्मपूर्वक प्राप्त किये गये साधनो से है। उन्ही के शब्दो मे, 'अर्थ जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करता है।[6] अर्थ अर्थात जो ऐश्वर्य बढाने वाला है।"[7]

अर्थ वह है जो धर्म से प्राप्त किया जाय। जो अधर्म से सिद्ध होता है उसे अनर्थ कहते है।[8]

धर्म युक्त पुरुषार्थ से जो अर्थ (धन) कमाया जाता है उसे वास्तविक धन कहते हैं। किन्तु अन्याय–अधर्म से उपार्जित धन महर्षि के मत मे धन नही है।[9]

'जिस धन से पुष्टि, विद्या, विद्वानो का सत्कार, वेद विद्या की प्रवृत्ति और सर्वोपकार हो वही धर्म सम्बन्धी धन है अन्य नही[10]

उपर्युक्त उद्धरणो से स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि मे अर्थ मे सम्पूर्ण आर्थिक वस्तुएँ, सुवर्णादि रत्न, राज्य–धन, ऐश्वर्य बढाने वाले साधन तथा मानव शरीर को सुविधापूर्ण जीवित रखने के धर्मयुक्त आदि साधन शामिल होते हैं उनके मत मे अधर्म से कमाया गया धन या अर्थ, धन या अर्थ नही है अपितु अनर्थ है।

महर्षि की दृष्टि मे शारीरिक उन्नति से तात्पर्य आर्थिक उन्नति से है क्योकि अर्थ (अन्नादि पदार्थ) के बिना शरीर का स्वस्थ रहना तो दूर जीवित रहना भी असम्भव है। यदि मानव का शरीर ही नही हो तो अकेली आत्मा क्या करेगी तथा स्वस्थ शरीर में ही स्वरूप मन स्वस्थ बुद्धि और स्वस्थ आत्मा का निवास होता है। परन्तु उनके अनुसार धर्म रहित अर्थ की प्राप्ति समाज मे अनेक आर्थिक समस्याएँ एवं विषमताएँ उत्पन्न कर देगी अत उन्होने धर्म पूर्वक अर्थ की प्राप्ति का जगह–जगह उल्लेख किया है।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश मे लिखा है कि जहाँ तक हो वहाँ तक अप्राप्त वस्तु की इच्छा, प्राप्त का रक्षण और रक्षित की वृद्धि, बढे हुए धन का व्यय देशोपकार करने मे किया करे।" इस प्रकार महर्षि के अर्थशास्त्र के आशय से आधुनिक आशय से साम्यता प्रकट होती है परन्तु महर्षि की दृष्टि मे अर्थ वह है जो धर्म से प्राप्त किया जाए और जो अधर्म से सिद्ध होता है उसे अनर्थ कहते हैं। अर्थात् धर्म पूर्वक जो अर्थ का अध्ययन करे वह अर्थशास्त्र है।[12]

उपभोग सम्बन्धी विचार

महर्षि दयानद के विचारो के अनुसार मानव जीवन की मुख्यत दो आवश्यकताएँ हैं।

(अ) प्राथमिक आवश्यकताएँ तथा (ब) गौण आवश्यकताएँ। महर्षि दयानद अपनी पुस्तक गोकरूणानिधि मे मानव की प्राथमिक आवश्यकताओ के बारे मे लिखते हैं–दो ही प्रकार से मनुष्य आदि की प्राण–रक्षा विद्या जीवन सुख बल और पुरुषार्थ आदि की वृद्धि होती है। एक अन्नपान और दूसरा आच्छादन। इनमे प्रथम के बिना सर्वथा प्रलय और दूसरे के बिना अनेक प्रकार की पीडा होती है।'[3] इसमे अन्न से आशय सभी प्रकार के खाद्य पदार्थ एव पान से सभी प्रकार के पेय पदार्थ हैं। सृष्टि में सबसे प्रमुख पेय पदार्थ जल है। दूसरा पेय पदार्थ दूध है जिसके लिए महर्षि ने गोरक्षा की चर्चा की है । तीसरा प्रमुख पेय पदार्थ सोम (औषध) है । आच्छादन से तात्पर्य ढँकना (आवरण) है। आच्छादन मे वस्त्र तथा मकान दोनो को शामिल किया जाता है। इस प्रकार गोकरूणानिधि के उपर्युक्त उद्धरण मे अन्न वस्त्र और मकान तीनो प्राथमिक आवश्यकताएँ सिद्ध हो जाती हैं।

महर्षि अन्न–पान के क्रम मे ही अपने वेद भाष्य मे पदे–पदे चिकित्साशास्त्र (आयुर्वेद) का भी विवेचन किया है। सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास में महर्षि ने प्रत्येक बालक के लिए शिक्षा अनिवार्य बताई है। महर्षि दयानद के अनुसार भोजन न मिलने से मनुष्य कीट पतग पेड–पौधे सबका जीवन नष्ट हो सकता है इसलिए उन्होंने भोजनादि को मानव जीवन का ही नही सबकी प्राथमिक आवश्यकता माना है। महर्षि द्वारा व्यक्त की गयी उपर्युक्त प्राथमिक आवश्यकताओ का हम निम्न रूप मे विवेचन कर सकते हैं।

(अ) प्राथमिक आवश्यकताएँ

(1) अन्न (भोजन)– *भोजन की आवश्यकता केवल मानव शरीर को ही नहीं* होती अपितु प्राणी मात्र के शरीर को होती है। महर्षि के अनुसार भोजन दो प्रकार का होता है (i) धर्मशास्त्रोक्त तथा (ii) वैद्यकशास्त्रोक्त भोजन । उनके अनुसार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य आदि को मलीन विष्ठा मूत्रादि के ससर्ग से उत्पन्न हुए फल मूल सब्जी आदि नही खाना चाहिए।[1]' जो बुद्धि का नाश करे ऐसे पदार्थों का भी सेवन नही करना चाहिए जैसे *मद्य गाजा भाग अफीम आदि। जिन पदार्थों से स्वास्थ्य बुद्धि बल पराक्रम बढे उन* फलो दूध घी मिष्ठान पदार्थों का समय पर भोजन करना भक्ष्य कहलाता है। महर्षि ने यजुर्वेद भाष्य मे चावल साठी के धान जौ अरहर उडद मटर तिल नारियल मूग चना राई मसूर अनेक प्रकार के फल रस कन्द अरवी आलू, शकरकद आदि अन्नो तथा सब्जियो को गिनाया है।[5] पशुओ से उत्पन्न दूध दही छाछ आदि को भी उन्होने खाद्य पदार्थों मे गिनाया हे।

(2) वस्त्र– जहाँ मनुष्य को अधिक दिन जीवित रहने के लिए भोजन की

आवश्यकता होती है, वहाँ अधिक दिन तक शरीर को सुरक्षित रखने के लिए वस्त्र की आवश्यकता होती है। महर्षि दयानद के अनुसार वस्त्र देश, काल एवं ऋतु के अनुकूल पहिने जाने चाहिए।[16] उन्होंने अपने ग्रन्थों मे वस्त्रों के कच्चे माल के रूप में कपास, ऊन, रेशम, चर्म, सण, जूट, मूँज आदि का वर्णन किया है जिनसे अनेक प्रकार के वस्त्र बुने जा सकते हैं। महर्षि परिवार स्तर पर ही कप्डे बुनने की चर्चा अपने वेद भाष्यों मे करते हैं।

(3) गृह (मकान)– *गृह, गृहाश्रम का मूलाधार होता है । महर्षि ने सस्कार विधि तथा वेद भाष्य मे घर बनाने की आवश्यकता, प्रकार तथा प्रक्रिया पर विस्तार से प्रकाश डाला है महर्षि दयानद के अनुसार गृह–निर्माण करते समय निम्न बातो को ध्यान मे रखना चाहिए।*[17]

(अ) घर दिखने में सुन्दर एवं सुदृढ हो,

(ब) घर उत्तम नक्शे पर बनाया गया हो,

(स) घर की चिनाई, लोहे और लकडी के बन्धन से सुदृढ हो,

(द) घर में सूर्य का प्रकाश पहुँचने मे रूकावट न हो,

(य) घर के आसपास वृक्ष, पुष्प, पौधे, एव दूब होनी चाहिए, तथा

(ड) घर में अन्य सुविधाओं के साथ–साथ यज्ञशाला एव ईश्वरोपासना का स्थान पृथक बनाया जाए।

महर्षि वेदभाष्यों में स्वर्ण से मण्डित दरवाजो तथा 1000 खम्भों वाले सभा भवनों का उल्लेख किया है।

(4) चिकित्सा (*स्वास्थ्य का साधन*) – *महर्षि दयानद के* अनुसार रोगो का निदान, चिकित्सा, औषध एव पथ्य सेवन, औषधियो का गुण– विज्ञान और उनका यथा योग्य उपयोग करना ही चिकित्सा कहलाती है।[18] उन्होंने चिकित्साशास्त्र (आयुर्वेद) को 21 प्रामाणिक ग्रन्थों में गिना है तथा आयुर्वेद को ऋग्वेद का उपवेद माना है। उनके अनुसार चिकित्सक दो प्रकार के होते हैं, प्रथम, शरीर के रोगों को हरण करने वाले तथा दूसरे, मन के अविद्यादि रोगों के विनाशक अध्यापक, उपदेशक, यज्ञ कराने वाले आचार्य पुरोहित आदि।

(5) शिक्षा – महर्षि दयानद के अनुसार शिक्षा सबसे बडा रत्न है। सोना–चादी को चोर चुरा कर ले जा सकता है, परतु शिक्षा को कोई भी नही चुरा सकता है। वे गुरूकुल शिक्षा प्रणाली के पक्ष मे थे। उनके अनुसार शिक्षा अनिवार्य हो, शिक्षा मे समानता हो गुरुकुल गाँव, शहर से दूर हो शिष्यो के प्रति आचार्यो का उत्तम व्यवहार हो अध्यापको के चरित्र पर विशेष ध्यान दिया जावे शिक्षा मे धर्म, नैतिकता को स्थान दिया जावे।

(ब) *गौण आवश्यकताएँ*

मनुष्य के जीवन मे सुख और हर्ष की मात्रा बढाने वाले सभी पदार्थ गौण

आवश्यकताओ मे गिने जाते है। गौण आवश्यकताओ मे उन्होने पशु, पेड–पौधे चित्रकला सगीतकला काव्यकला मनोरजन आदि की आवश्यकता घोडा साइकिल गाडी मोटर आदि परिवहन के साधनो की आवश्यकता आपसी विवादो को सुलझाने हेतु न्याय व्यवस्था की आवश्यकता धन की आवश्यकता आदि को लिया है।

उपभोग में स्वदेशी की भावना पर बल

महर्षि दयानद की विचारधारा मे स्वदेशी की भावना कूट–कूट कर भरी हुई थी। महर्षि दयानद के स्वदेशी आदोलन मे केवल स्वदेशी वस्तुओ का प्रयोग करना ही शामिल नही था अपितु उनका स्वदेशी का अर्थ बहुत व्यापक था। वे इससे स्वदेशी धर्म स्वदेशी *सस्कृति स्वदेशी भाषा स्वदेशी शिक्षा और स्वदेशी शासन आदि से अभिप्राय लेते थे।** उन्होने देशवासियो को आह्वान किया कि सब भारतीयो को स्वदेशी वस्तुओ का उपयोग *करना चाहिए। अपनी भाषा अपने धर्म तथा अपनी परम्पराओ अपनी कला का आदर* करना चाहिए और भारत का जो अपना है उसे अपनाये रहने मे गौरव अनुभव करना चाहिए। महर्षि के स्वदेशी के विचारो से प्रेरणा पाकर सन् 1879 मे आर्य समाज लाहौर के सदस्यो ने विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार तथा स्वदेशी वस्त्रो के उपयोग का निर्णय लिया। सम्पूर्ण पजाब मे स्वदेशी आदोलन चला।

इस प्रकार महर्षि दयानद के उपभोग सम्बन्धी विचारों का सार यह रहा कि समाज मे अपने राज्य के सहयोग और व्यवस्था से विपुल उत्पादन समुचित वितरण और सयमित उपभोग हो।

उत्पादन सम्बन्धी विचार

(1) उत्पादन के साधन

(i) **भूमि**– महर्षि दयानद के अनुसार पृथ्वी (भूमि) सबका आधार है। अन्न का उत्पादन इसी से होता है और रहने का घर भी यही है इसीलिए इसे माता के तुल्य माना जाता है। मनु कौटिल्य के अनुरूप ही दयानद का भी स्पष्ट मत था कि प्रकृति प्रदत्त सभी साधनो (भूमि जल अग्नि और पवन) पर राज्य का ही स्वामित्व होना चाहिए।[19] उत्पादन के लिए किसको कितनी और कब तक के लिए भूमि देना है या वापिस लेना है यह राज्य के नियमानुसार होना चाहिए। परतु भूमि आदि पर राजा का अधिकार या स्वामित्व का यह अर्थ नही है कि राजा की निजी सम्पत्ति हो गयी। उन्होंने राजा को केवल भूमि का नियत्रणकर्त्ता मात्र माना है। राजा का भूमि पर अधिकार होते हुए भी वैयक्तिक अधिकार नही है वह तो भूमि का सरक्षण मात्र है। महर्षि के शब्दों में हे राजन! आपको जितना राज्य का भाग लेना चाहिए उतना ही ग्रहण कर भोग करिये न अधिक न न्यून ऐसा करने से आपको हानि कभी नही होगी। [20] राजा का कर्त्तव्य है कि भूमि आदि जो मूल सम्पत्ति है उसका दुरूपयोग नही होने दे और जो भूमि पर खेती नहीं करे अथवा

* सत्यार्थ प्रकाश 11 वाँ समुल्लास पृ 359 8 वाँ समु पृ 213

उस पर दिए गये अधिकार के अनुसार उत्पादन नही करे तो वह भूमि छीन कर किसी दूसरे सत्पात्र को दे दे। इस प्रकार महर्षि ने भूमि आदि साधनो पर राज्य अथवा समाज का अधिकार माना है और किस को किस भूखण्ड पर कितना और कितने समय तक व्यक्तिगत स्वामित्व देना यह राज्य अथवा राजा के नियमानुसार होगा।

(ii) श्रम – महर्षि के अनुसार समाज मे भरपूर उत्पादन हो इसके लिए यह आवश्यक है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ श्रम अवश्य करे। राजा का यह कर्त्तव्य है कि वह किसी व्यक्ति को निकम्मा न बैठने दे और जो श्रम करने मे आलस्य करे उसको राजा दण्ड दे।[3] उन्होने समाज मे आश्रम व्यवस्था तथा वर्ण व्यवस्था को श्रम– विभाजन का आधार माना है । आश्रम चार है – ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रम। ब्रह्मचर्य सभी आश्रमो एव वर्णों का आधार है इसमे सद्‌विद्यादि शुभ गुणो का ग्रहण तथा जितेन्द्रियता से आत्मा और शरीर का बल बढाया जाता है। गृहस्थाश्रम भी सभी आश्रमो एव वर्ण व्यवस्था का आधार है। 100 वर्षों की मनुष्य की आयु से 75 वर्ष (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास) जीविकोपार्जन से मुक्त माना गया है, सिर्फ गृहस्थ ही धनोपार्जन से सम्बद्ध है। महर्षि ने दान को उत्तम कर्म माना है जबकि आज के समाज मे दान की उपेक्षा कर सचय को प्रश्रय दिया है। बुराइयाँ बढ रही हैं।

महर्षि दयानन्द ने वर्ण व्यवस्था को जन्म से नही मानकर गुणकर्म स्वभाव से माना है। वर्ण व्यवस्थाओ मे गुण का अर्थ है योग्यता कर्म का अर्थ है व्यवसाय और स्वभाव का अर्थ है आदत। इस प्रकार योग्यता, व्यवसाय ओर आदत वर्ण का निर्णय करते हैं। वर्ण व्यवस्था का सम्बन्ध सिर्फ ग्रहस्थ से है क्योकि यही आजीविका का आधार है। वर्ण व्यवस्था के सफल कार्यान्वयन के लिए नि शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था आवश्यक है जहाँ राजा और रक, गरीब ओर अमीर सबके लिए समान भोजन, वस्त्र एव आवास होना चाहिए। इससे लोगो मे किसी प्रकार का भेदभाव पैदा नही होगा।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र जाति विशेष नही बल्कि अपनी योग्यता एव व्यवसाय के अनुसार चुन सकने की व्यवस्था है जो सदा परिवर्तनशील होती है। उनके अनुसार गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था के लुप्त होने से जन्मना जाति ने मनुष्य जाति का महान् अपकार किया है। योग्यता विहीन जाति व्यवस्था हमारे लिए अभिशाप बन गयी है। समाज में धन को अनुचित प्रधानता मिल गयी है धनोपार्जन के लिए अधर्म, अन्याय और अत्याचार को सामाजिक मान्यता मिल चुकी है। महर्षि के अनुसार न्यायपूर्वक धन कमाना ही अच्छा है, दुष्ट प्रसग से द्रव्य सचय बुरा है।

(iii) पूँजी– महर्षि दयानद द्वारा प्रतिपादित समाज व्यवस्था एव वर्णाश्रम मे उत्पादन करने का कार्य केवल वैश्य का ही बताया गया है। अत अधिक उत्पादन करने हेतु वैश्य को ही अन्य वर्णो के सहयोग से पूँजी का सग्रह करना चाहिए।[4] महर्षि ने अपने वेदभाष्यो में अर्थ के लिए धन शब्द का ही प्रयोग किया है परतु उनके निम्न कथन पूँजी

के महत्व को दर्शाते है 'राजा ओर राजसभा अलब्ध की प्राप्ति की इच्छा प्राप्त उपलब्ध की प्रयत्न से रक्षा करे रक्षित को बढावे और बढे हुए धन को वेद विद्या में लगावे।[23] दण्ड से अप्राप्त की प्राप्ति की इच्छा नित्य देखने से प्राप्त की रक्षा रक्षित की वृद्धि (अर्थात ब्याजादि से बढावे) और बढे हुए धन को पूर्वोक्त मार्ग मे नित्य व्यय करे।

■ उत्पादन के क्षेत्र

महर्षि अपने आश्रमो एव वर्णव्यवस्था मे ग्रहस्थ को ही धन कमाने का अधिकार मानते हैं। वैश्य को ही पशुपालन खेती पूँजी और श्रम का समन्वय कर उद्योग आदि से उत्पादन करने का अधिकार है। वैश्य का उत्तरदायित्व है कि वह समाज की आवश्यकताओ की पूर्ति करे। उन्ही के शब्दो मे गाय आदि पशुओ का पालन करना वर्द्धन करना विद्या धर्म की वृद्धि करने कराने के लिए धनादि का व्यय करना सब प्रकार के व्यापार करना ब्याज लेना खेती करना ये वैश्य के गुण कर्म हैं।[24] महर्षि द्वारा वैश्य वर्ण के गुण–कर्मों के विवेचन के आधार पर उत्पादन के निम्न क्षेत्र निर्धारित किये जा सकते है।

(i) पशुपालन (ii) कृषि (iii) शिल्पकला उद्योग और व्यवसाय (iv) पर्वत सम्पदा अथवा खनिज (v)विनिमय क्रय–विक्रय और ब्याज आदि (vi)वन सम्पदा (vii) देशीय ओर विदेशीय व्यापार तथा यातायात व्यवस्था।

(ii) पशुपालन– महर्षि दयानद गाय आदि पशुओं का वध रूकवाना भारतीय अर्थ व्यवस्था के लिए अनिवार्य मानते थे। गो आदि पशुओं की सुरक्षा को वे विशुद्ध आर्थिक दृष्टि से देखते थे। उनका मत था कि जब तक पशुओ की सुरक्षा नहीं होगी तब तक न भारत की कृषि–व्यवस्था और न ही सम्पूर्ण अर्थ–व्यवस्था ही सुदृढ हो सकती है। ऋग्वेद भाष्य मे उन्होंने लिखा कि जो मनुष्य पशुओं की रक्षा और उन्हे बढाने आदि के लिए वनों को रख उनमें पशुओं को घारा दूध आदि का सेवन कर खेती आदि कामों को यथावत् करे वे राज्य के ऐश्वर्य मे सूर्य के समान प्रकाशमान होते हैं।[25] पशुओं के लाभ के गणित को दिखाते हुए स्वामीजी लिखते हैं कि पशुओं की सुरक्षा करने से अधिक लाभ है बजाय उनको मारकर चर्बी चमडा और हड्डी प्राप्त करने के। उन्होंने गौर करूणानिधि मे गौ आदि पशुओ के वध का विरोध और सरक्षण का समर्थन केवल धार्मिक दृष्टि से ही नही किया अपितु उसका आर्थिक आधार भी स्पष्ट किया है। उन्होंने पशुओ से होने वाले विस्तृत लाभो की विवेचना की है जो राष्ट्र के आर्थिक समृद्धि के लिए अति महत्वपूर्ण है।[26]

महर्षि दयानद ने पशुपालन पर केवल इसलिए बल दिया है कि इन पशुओ मे दूध आदि तथा खेती यातायात आदि मे मनुष्य को सहयोग मिलता है परतु मास की दृष्टि से पशुपालन को उन्होने घृणास्पद एव पापकर्म बताया है।

महर्षि ने पशुपालन का ही समर्थन नही किया वरन इसमें आने वाली समस्याओ एव उनके समाधानो का भी वर्णन किया है। महर्षि के अनुसार पशुपालन की सबसे बड़ी

समस्या है– चारागाह। उनके ही शब्दो मे "आर्यावर्तीय राजा–महाराजा, प्रधान और धनाढ्य लोग आधी–आधी पृथ्वी मे जंगल रखते थे जिससे पशु और पक्षियों की रक्षा होकर औषधियों के सार दूध आदि पवित्र पदार्थ उत्पन्न हो। जिनके खाने–पीने से आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम आदि सद्गुण बढे और वृक्षो के अधिक होने से वर्षा, जल और वायु मे आर्द्रता और शुद्धि अधिक होती है। पशु–पक्षी आदि के अधिक होने से खाद भी अधिक होती है। इसलिए पशुपालन के लिए जगलो की सुरक्षा होनी चाहिए।"[27] महर्षि ने पशुपालन पर केवल अपने विचार ही प्रकट नहीं किये वरन् अपने सार्वजनिक व्याख्यानो, गोष्ठियो तथा ब्रिटिश अधिकारियो से भेंट, पत्र– व्यवहार मे भी पशुओ की रक्षा पर जोर दिया। महारानी विक्टोरिया को दो करोड व्यक्तियो के हस्ताक्षरो से युक्त गोवध–पाबन्दी हेतु ज्ञापन दिया गया। 25 दिसम्बर से 6 जनवरी 1879 के बीच रेवाडी के पास गोकृष्यादिरक्षिजी सभा का गठन कर लोगो को स्थान–स्थान पर गो शालाओ की स्थापना के लिए प्रेरित किया।

पशुपालन एवं राज्य– महर्षि ने पशुओ के पालन पोषण की व्यवस्था करने–कराने तथा पशु–वध रुकवाने का दायित्व राज्य का बताया है। वे गोरक्षा कानून बनाने के भी पक्ष मे थे। पशुपालन के विषय मे राजा का कर्तव्य दर्शाते हुए वे लिखते हैं कि जिन भेड आदि के रोम और त्वचा मनुष्यों के सुख के लिए होती है और जो ऊँट भार उठाते हुए मनुष्यो को सुख देते हैं उनको जो दुष्टजन मारना चाहे, उनको ससार के दु खदायी समझे और उनको अच्छे प्रकार से दण्ड दे।[28]

प्रजा के गाय आदि पशुओं का राजा नाश न होने देवे। राजा को चाहिए कि गौ, घोडे आदि उपकारी जीवों की कभी हत्या न करे अपितु सदैव उनकी वृद्धि करे।[29] इस प्रकार महर्षि की दृष्टि में राजा का यह परम कर्तव्य है कि वह पशुओ की सुरक्षा मे महत्वपूर्ण सहयोग करे।

देश के पशुधन के सरक्षण के प्रति राज्य को अपने कर्त्तव्यो की ओर जागरूक करते हुए महर्षि ने जयपुर राज्य के तात्कालीन अधिकारी को यह परामर्श दिया कि मनुष्यों की गणना कि भाति पशुओ की गणना भी की जाये और उनके आंकडे रखे जाए ताकि उनकी घटत–बढत पर विचार कर उनकी वृद्धि का प्रयत्न किया जा सके।

गोमेध और अश्वमेध में छिपा अर्थशास्त्र–महर्षि दयानन्द के अनुसार वैदिक शास्त्रो एव उनमें आये शब्दो के अर्थ न समझने अथवा समझते हुए भी अपने स्वार्थ के कारण गोमेध का अर्थ गाय को यज्ञ मे बलि देकर उसके मास आदि को यज्ञ की अग्नि मे आहूत करना लगा लिया। उसी प्रकार अश्वमेध का अर्थ यज्ञ मे घोडे की बलि से लगाया। जबकि वेदादि शास्त्रो मे ऐसा अर्थ कहीं नही लिखा है।[30] यज्ञ शब्द यज धातु से बनता है जिसका अर्थ दान देवपूजा ओर सगति करण है। इन अर्थों मे बलि (हत्या) या हिसा लेशमात्र भी प्रकट नही होती।

महर्षि पशुओ के सरक्षण को आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त लाभकारी मानते थे। उन्होने गोकरुणानिधि मे स्पष्ट लिखा है कि एक गाय को मारकर खाने से अर्थात उसके मास

से अधिक से अधिक 80 व्यक्तियो की भूख मिट सकती है किन्तु उसको जीवित रख कर पालन–पोषण कर उसके दूध घी खाद एव बैल आदि से खेती मे सहयोग के लाभ को ध्यान मे रखे तो दूध और अन्न से चार लाख दस हजार चार सौ चालीस व्यक्तियो की भूख शात हो सकती है। इसी को उन्होने गोमेध कहा है।[31]

महर्षि के अनुसार प्राचीन काल मे घोडा राजा का सबसे अधिक सहयोगी पशु माना जाता था। इसलिए राष्ट्र की उन्नति के इस यज्ञ मे अश्व को एक प्रतीक रूप मे रखा जाता था। प्राचीन समय से वर्तमान तक गाय एव घोडे मानव जीवन की आर्थिक सफलता के लिए आधारभूत पशु माने जाते हैं। अत वैदिक राष्ट्रीय प्रार्थना मे इन पशुओ का स्थान निर्धारित कर यह दर्शाया है कि पशुपालन राष्ट्रीय अर्थ–व्यवस्था मे महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

(ii) कृषि– महर्षि दयानद के कृषि सम्बन्धी विचार प्रकार विधि–विधान एव निर्देशन वेद पर आधारित हैं। वेदो मे विवेचित कृषि–व्यवस्था का ही वे पुरजोर समर्थन करते है तथा अपने कृषि सम्बन्धी विचार वेदमत्रो के भाष्यादि के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। जो निम्न प्रकार से हैं–

(अ) कृषि के प्रमुख साधन महर्षि दयानद ने कृषि के निम्न प्रमुख साधन बतलाये हैं–

(i) उर्वरा भूमि खेती के औजार पशु, उत्तम बीज और उत्तम खाद आदि।

(ii) सिचाई के साधन।

(iii) प्रशिक्षित किसान

(iv) खेती को हानि पहुँचाने वालो पर नियत्रण।

भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए महर्षि भूमि को बार–बार जोतना आवश्यक बताते हैं तथा भूमि को सस्कारित करते हुए सुगन्ध आदि युक्त बीज बोने का समर्थन करते है।[32] खेतो मे गदी खाद (विष्टा आदि से मलीन पदार्थ) के बजाय उत्तम खाद डाले जिससे अन्न फल आदि रोग रहित पैदा हो।

महर्षि दयानद ने कृषि हेतु निम्न साधनो एव औजारो की अपने भाष्यों मे चर्चा की है -

(i) हल (ii) लोहे का फाल (सीता) (iii) बैल (iv) बीज (v) उर्वरा भूमि आदि।

(ब) सिचाई के साधन–महर्षि दयानद ऋग्वेद भाष्य मे कुएँ नहरो तालाबो एव बाधो द्वारा सिचाई की व्यवस्था के बारे मे लिखते हैं। उनके ही शब्दो में किसानो को चाहिए कि नदियों के मार्गो कूपो छोटे–छोटे तालाबो बाध बनाकर खेत आदि की सिचाई कर प्रचुर अन्न फल वृक्ष लता आदि को उत्पन्न कर बढावे।[33]

महर्षि दयानद भूमि खाद बीज सिचाई की उपलब्धि के साथ खेती करने के लिए किसान का प्रशिक्षित होना भी आवश्यक मानते हैं। उनके अनुसार जो लोग कृषि कर्म

करने वाले है वे अपने से अधिक अनुभवी किसान का अनुसरण करके खेती करे तो अधिक अच्छी तरह खेती की जा सकती है। उन्होने किसान को राजाओ का राजा माना है, इसलिए *किसानो को समय समय पर पुरस्कार आदि से सम्मानित करते रहना चाहिए जिससे वे उत्साहित होकर खेती करे। किसानो की अच्छे प्रकार से रक्षा करने से वे अन्न आदि अधिक अच्छी तरह से उत्पादन करते है।*

कृषि और राज्य–महर्षि दयानद अपने जीवन के अतिम वर्षों मे राजस्थान प्रवास मे यहाँ के राजाओ को प्रजा की आर्थिक समृद्धि के लिए अपने उपदेशो मे कृषि सम्बन्धी सुधारों के सुझाव दिए। महर्षि दयानद से प्रेरणा पाकर ही शाहपुरा नरेश ने सिचाई हेतु नहर की व्यवस्था की।

महर्षि दयानद ने फसल, अनाज आदि को हानि पहुँचाने वाले या नष्ट करने वाले चूहे टिड्डी, शूकर कौवे आदि जन्तुओ को मारने का राज्य का कर्त्तव्य बतलाया है।[34] उनके मत मे किसानो को खेती करने का प्रशिक्षण लेकर खेती विषयक निम्न बातो की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए– (अ) मिट्टी के किस्मो का पूर्ण ज्ञान तथा मिट्टी को खेती *योग्य बनाने की विद्या का ज्ञान* (ब) *खेती के औजारो के रख–रखाव एव उनके प्रयोग का ज्ञान* (स) गाय बैल आदि पशुओ के पालन एव उनके रोगो के इलाज का ज्ञान (द) फसलो मे लगे कीडो, तथा इनसे होने वाले रोगो को नष्ट करने या इलाज का ज्ञान (य) *उत्पन्न अनाज को सभाल कर रखने का ज्ञान अर्थात गोदाम व्यवस्था* (र) *सिचाई के साधनो का ज्ञान।*

(iii) वन सम्पदा– महर्षि दयानद के अनुसार प्राचीनकाल मे लोग आधी भूमि में जगल रखते थे परन्तु आज जगलों को कटवा रहे हैं जो सब विपरीत काम है। उन्होंने उन लोगो की प्रशसा की है जो वनादि की रक्षा से घास–फूस और औषधियो को बढाते हैं। *वनो की रक्षा करने वाला महान परोपकारी होता है क्योंकि वन हमें जीवन शक्ति प्रदान करते हैं।*

उपत्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्य सृज।
अग्निर्हव्यानि सिष्वदत।[1] (ऋग्वेदभाष्य 1 88 10)

दयानद ने वन सम्पदा के सरक्षण को राजा का कर्त्तव्य माना है,उनके शब्दो मे, *वनों की सुरक्षा करने कराने तथा वनस्पतियो के लाभ को प्राप्त करने–कराने का कर्त्तव्य* राजा का है, क्योकि वनो पर राज्य का अधिकार होता है। वन सामाजिक सम्पत्ति है, राजा इनका दुरूपयोग न होने दे।[35]

महर्षि ने वनो के सरक्षण करने वाले व्यक्तियो का सत्कार करने को निम्न शब्दो मे व्यक्त किया हे *मनुष्य वन आदि के पालको को अन्न आदि से सत्कार करे।*[36]

(iv) पर्वत सम्पदा (खनिज)– महर्षि दयानद पर्वतो से होने वाले लाभो को निम्न प्रकार से व्यक्त करते हैं– (अ) पर्वत हमे धन दे अथवा हमारे धन की सुरक्षा करे।

(ब) पर्वतो के पानी को जलाशय बनाकर उससे पीने एव खेती आदि मे काम लिया जाता है। (स) पर्वतो पर कई प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न होती है। (पर्वतेषु भेषजम्–ऋ. 8 20 25)। (द) पर्वतो से सोना चादी आदि धातु पत्थर खनिज एव रत्न प्राप्त होते हैं। (य) पर्वतो पर स्थित जगलो से लकडियॉं प्राप्त होती है। (र) पर्वतो से नदियॉं एव झरने निकलते है। (ल) पर्वत वर्षा मे सहायक होते है।[33]

महर्षि वनो की तरह पर्वतो की रक्षा एव दुरूपयोग को रोकने का कर्तव्य राजा का माना है क्योकि वे पर्वतो को भी राजकीय सम्पत्ति मानते हैं। इस विषय मे वे लिखते है कि राजा पर्वतो की सुरक्षा करे।

(५) उद्योग व्यवसाय– महर्षि दयानद कृषि एव पशुपालन को भारतीय अर्थ–व्यवस्था की धुरी मानते थे तथापि सुदृढ अर्थ व्यवस्था के लिए वे उद्योगो के महत्व को उजागर करते हैं। उनके अनुसार राष्ट्र को शिल्प विज्ञान एव औद्योगिक दृष्टि से उन्नतशील बनाने के लिए राष्ट्र की भावी पीढी के शेक्षणिक पाठ्यक्रम मे सैद्धातिक एव प्रायोगिक रूप मे कला उद्योग विज्ञान एव तकनीकी विषय की शिक्षा को शामिल करना चाहिए।

महर्षि के अनुसार मनुष्य किसी कुशल कारीगर के पास बैठकर ही कारीगरी में कुशल हो सकते है।* पुरुषो के साथ–साथ स्त्रियो को भी शिल्प–शिक्षा मिलनी चाहिए।** अध्यापक शिल्प–शिक्षा का सिद्धात एव प्रयोग दोनो सिखलावे।

महर्षि दयानद ने अपने द्वारा प्रतिपादित शिक्षा–पाठ्यक्रम में भूगर्भ–विद्या सीखने की चर्चा की है। वे लिखते है मनुष्यो को चाहिए कि भूगर्भ–विद्यानुसार बालू मिट्टी आदि से सुवर्णादि धातुओं को निकाल ऐश्वर्य को बढाकर अनाथों का पालन करे। महर्षि ने अपने ग्रन्थो मे उद्योग–व्यवसाय के लिए शिल्प शब्द का प्रयोग किया है। उन्हाने वेदो मे नौ विमानादि की शिल्प–विद्या अथवा तकनीकी ज्ञान एव गणित विद्या के ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका मे स्वतत्र अध्याय लिख कर हमारे प्राचीन तकनीकी ज्ञान से हमें अवगत करा पुन देश की अर्थव्यवस्था को समृद्धिशाली बनाने का आहान किया था।

महर्षि ने अपने ग्रन्थो मे प्राचीन भारतीय ज्ञान–विज्ञान को पाश्चात्य विज्ञान से श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए नौविमानादि यान–निर्माण एव अन्य अणु आदि वैज्ञानिक प्रयोगो के लिए जल अग्नि विद्युत वायु आदि भौतिक विज्ञान की आधारभूत शक्तियों के विधिवत् प्रयोग के सकेत देकर भारतीयो को पुन अपने विज्ञान पर गौरव करना सिखलाया।

दयानद जी ने अपने समकालीन धनाढ्य लोगो को कल–कारखाने स्थापित करने की प्रेरणा भी दी ताकि देश आर्थिक दृष्टि से पूर्ण समृद्धिशाली बन सके।[34]

* उत त्य चमस नव त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम।
अकर्त चतुर पुन। (ऋग्वेद भाष्य 1 20 4)

** विद्युदथा मरुत ऋष्टिमन्तोदिवो मर्या ऋतजाता अयास।
सरस्वती शृणवन्यज्ञियासोधाता रयि सहवीर तुरास ।। (ऋ भा 3 54 13)

अग्रेजो ने भारतीय कपडा–उद्योग पर काफी कुठाराघात किया। वस्त्रो का कच्चामाल–कपास आदि इग्लैण्ड ले जाकर वहाँ मिलो द्वारा निर्मित वस्त्र भारत मे बेचते थे। भारतीय माल पर ऊँचे तट कर लगाये जाते थे, जबकि इंग्लैण्ड निर्मित माल पर कम कर लगाने से वह भारत में सस्ता पडता था, जिससे भारतीय बुनकरो की आजीविका समाप्त हो रही थी। इस पर चिता प्रकट करते हुए स्वामी ने भारतवासियो को यह प्रेरणा दी कि हमे सदैव स्वदेशी वस्त्रो का प्रयोग करना चाहिए। 1■ फरवरी 1875 मे महर्षि ने बम्बई में भारतीय शिल्प विज्ञान विषय पर विमान निर्माण कला पर भाषण दिया।

महर्षि प्राचीन भारत के भौतिक विज्ञान और औद्योगिक समृद्धि की प्रशसा के साथ–साथ भारतीयो को यह भी प्रेरणा देते थे कि देश की उन्नति के लिए देशवासियो को पश्चिम के विज्ञान एवं कला–कौशल के नवीन ज्ञान को ग्रहण करना चाहिए। इस विषय में उन्होंने जर्मन निवासी डा जी वाईज से पत्र–व्यवहार के द्वारा यह प्रयास किया कि भारतीय युवक जर्मनी जाकर शिल्प–कौशल की शिक्षा ले तथा भारत मे आकर औद्योगिक प्रशिक्षण सस्थान स्थापित कर उन शिल्प कलाओ का देश मे विस्तार करे।

महर्षि दयानद ने अपने वेद भाष्य मे निम्न उद्योग व्यवसायो तथा शिल्पियो की चर्चा की है–[47]

(i) रथकार– रथ, यान आदि बनाने वाला,
(ii) तक्षक– बढाई,
(iii) कुम्हार, जुलाहा,
(iv) धनुषकार– धनुष बनाने वाला,
(v) इषुकार– बाण बनाने वाला,
(vi) ज्याकार–धनुष की प्रत्यचा बनाने वाला,
(vii) रज्जुसर्प– रस्सी बनाने वाला,
(viii) शैलूष– नाटक करने वाला,
(xi) मणिकार– मणियो की चीजें बनाने वाला (जौहरी)
(x) हिरण्यकार–स्वर्णकार,
(xi) वीणावादक–वीणा बजाने वाला,
(xii) तूणवध्म–तूण बजाने वाला
(xiii) शखध्म– शंख बजाने वाला,
(xiv) वशनर्ती– नट,
(xv) कर्मार– लोहार या बन्दूक , तोप आदि शस्त्र बनाने वाला
(xvi) वस्त्र उद्योग, तथा
(xvii) वायुयान, जहाज, नाव आदि उद्योग।

उद्योग व्यवसाय और राज्य– महर्षि दयानद अपने वेदभाष्यो मे राज्यो को यह निर्देश देते है कि वह उद्योग व्यवसायो को उन्नत बनाने मे अपना योगदान दे। जो शिल्पकला मे निपुर्ण होते है उनका राजा को सत्कार करना चाहिए।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि महर्षि दयानद के उत्पादन सम्बन्धी विचार प्राचीन अर्थशास्त्रीय सिद्धातो पर आधारित है। वैश्य वर्ण के गुण कर्म आदि मे उन्होने कृषि पशुपालन खनिज शिल्पकला विज्ञान उद्योग–व्यवसाय को शामिल किया है। प्राचीन वर्णाश्रम को आधार मानकर महर्षि दयानद वैश्य को ही उत्पादन करने का अधिकार देते है। अन्य वर्ण उत्पादन करने–कराने मे प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष सहयोग देगे। महर्षि लघु एव कुटीर उद्योगो के पक्ष मे थे तथा शैक्षणिक शिक्षा पाठयक्रम के साथ–साथ व्यवसायिक शिक्षा को भी अपनाने के लिए जोर दिया।

विनिमय सम्बन्धी विचार

महर्षि दयानद उत्पादन कार्य के साथ विनिमय–व्यापार का कार्य भी वैश्य वर्ण का कर्तव्य मानते है अर्थात जो उत्पादन विनिमय व्यापार का कार्य करते है वह महर्षि की दृष्टि मे वैश्य है।

महर्षि के विनिमय सम्बन्धी विचार वेद और मनुस्मृति पर आधारित है। उनके विनिमय सम्बन्धी विचारो को हम निम्न बिन्दुओ मे व्यक्त कर सकते है–

(i) वस्तु विनिमय को अधिक महत्व– महर्षि दयानद मुद्रा विनिमय के बजाय वस्तु–विनिमय को अधिक महत्व देते थे तथा राज्य को उत्पादित वस्तु पर कर मुद्रा के बजाय उत्पादित वस्तु के रूप मे ही वसूलने का निर्देश राज्य को देते हैं परतु उन्होने विनिमय मे मुद्रा के प्रयोग का भी उदाहरण दिया है।*

(ii) विनिमय के साधन– महर्षि अपने वेदभाष्य मे विनिमय के तीन साधनो का वर्णन करते है– (अ) विनिमय के व्यवहार शास्त्र का विधिवत् और यथेष्ट ज्ञान (ब) तोलने का परिमाण (स) तुला (तराजू) आदि।

(iii) वस्तुओ का क्रय–विक्रय, मुद्रा नाप तौल अर्थात् विनिमय के माध्यम और साधन–महर्षि दयानद ने अपने ग्रन्थो मे विनिमय के नाम तथा माप के रूप मे मापी मन परोसी सेर पाव छटाक और रत्ती के चलन का उल्लेख किया है। उन्होने प्राचीन भारत मे प्रचलित सोने के सिक्को की भी चर्चा की है। उनके अनुसार जल थल एव आकाश मे व्यापार किये बिना धन और राज्य का उपार्जन नही हो सकता।

(iv) ब्याज– सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास मे ब्याज के विषय मे महर्षि लिखते है कि –एक सैकडे रूपये मे चार छ आठ बारह सोलह या बीस आनो से अधिक ब्याज तथा मूलधन से दुगना अर्थात एक रुपया दिया हो तो दो रुपये से अधिक न लिया जाये और न दिया जाय।"

---

* वस्नेव विक्रीणावहा ऽ इषमूर्ज शतक्रतो। यजु भाष्य 3.49

(v) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार– महर्षि ने अर्थव्यवस्था की उन्नति के लिए विदेशी व्यापार को आवश्यक माना है। उनके ही शब्दों में, बिना देश–देशान्तर और दीप–द्वीपान्तर मे राज्य या व्यापार किये स्वदेश की उन्नति नहीं हो सकती है। जब स्वदेश मे ही देशीय लोग व्यापार नही करते तथा विदेशी लोग स्वदेश मे व्यापार या राज्य करे तो बिना दारिद्रय ओर दु:ख के दूसरा कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता।[2] इन पंक्तियो में भारत पर ब्रिटिश शासन द्वारा किये जा रहे शोषण का विरोध झलकता है। उन्होने उस समय प्रचलित इस मान्यता का भी तीव्र रूप से खण्डन किया कि समुद्र पार जाने से धर्म नष्ट होता है। विदेशी व्यापार से देश को धन एव प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

महर्षि के अनुसार, विदेशी व्यापार करने वाले व्यापारियों को विदेशी भाषा का ज्ञान होना चाहिए तभी वे समुचित ढंग से व्यापार कर सकते हैं।[3]

(vi) गणित का ज्ञान– महर्षि के विचार में बिना गणित–ज्ञान के न तो उत्पादन हो सकता है और न ही विनियम व्यापार आदि। अत उन्होंने अपने वेद भाष्यो के अकगणित एव रेखा गणित के ज्ञान को व्यापारियो के लिए आवश्यक माना है।

(vii) विदेशी व्यापार और राज्य– महर्षि दयानद मनु की भाति राज्य को यह निर्देश देते हैं कि वह प्रति छ माह मे तराजू–बाट आदि का निरीक्षण करता रहे और यदि व्यापारी अथवा अन्य व्यक्ति नाप–तौल में गडबडी करे तो उसे दण्ड दिया जाये।[4] व्यापारियो की सुरक्षा का पूर्ण प्रबध भी राजा को ही करना चाहिए। राजा को ऐसे मार्गों का निर्माण करवाना चाहिए जिनमे व्यापारियो को चोर, डाकूओ का कोई भय न हो।[5]

उपर्युक्त वर्णन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि महर्षि दयानद उत्पादन कर्म के साथ -साथ विनिमय व्यापार आदि कार्य भी वैश्य वर्ण का ही मानते हैं। उनके विनिमय सम्बन्धी विचारों का आधार वेद तथा मनुस्मृति है। राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, व्यापार के साधन नाप–तौल, मुद्रा, गोदाम व्यवस्था आदि को वेद–शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित करते हुये भारतीयो को यह प्रेरणा दी कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करना देश की सर्वांगीण आर्थिक समृद्धि के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

वितरण सम्बन्धी विचार

बडे पैमाने पर उत्पादन भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध और साहस के बिना समव नही है। वितरण पर ही देश की आर्थिक समृद्धि एवं उन्नति निर्भर है। उत्पादन के साधनों मे उत्पादन से प्राप्त आय अथवा धन का समुचित एव न्यायोचित वितरण महर्षि के विचारो में राज्य का कर्तव्य है महर्षि के लगान, मजदूरी, ब्याज तथा लाभ सम्बन्धी विचार इस प्रकार है।

(i) लगान– उनके अनुसार चावल आदि अन्नों मे उत्पादन का छटवा, आठवा भाग लिया जाए। उनके इस विचार में भाग शब्द लगान का ही द्योतक है। जबकि कौटिल्य उपज का चौथा भाग (लगान) राज्य को लेने का निर्देश देता है।

(ii) वेतन या मजदूरी– महर्षि दयानद के अनुसार काम के आधार पर भृत्यो को मासिक वेतन देना चाहिए।[56] मजदूरो को मजदूरी का नियमित भुगतान होता रहे मजदूरो का शोषण न हो इसके लिए उन्होने राज्य का उत्तरदायित्व माना है। अर्थात राजा का यह परम कर्त्तव्य है कि मजदूरो से जो श्रम करवाया जा रहा है उसका पूरा पारिश्रमिक उन्हे मिल रहा है या नही। इस विषय मे कानून और नियम बनावे और यदि कोई विवाद हो तो न्यायालया मे इनका निपटारा किया जावे।[57]

(iii) ब्याज या सूद– महर्षि उधार पर सूद लेना उचित मानते है। सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ सम्मुलास मे उन्होने लिखा है कि एक सैकडे रूपये मे चार, छ आठ बारह सोलह या बीस आनो से अधिक ब्याज तथा मूलधन से दूगना अर्थात एक रूपया दिया हो तो सौ वर्ष म भी दो रूपये से अधिक नही लिया जावे।

(iv) साहसी के लिए लाभ– महर्षि दयानद की दृष्टि मे लाभ लेना अनुचित नही है। परतु बेहिसाब लाभ के लिए श्रमिको के लाभ का हनन करना अनुचित है। महर्षि के विचार इस रूप मे क्रातिकारी हैं कि उन्होने व्यापारियों के लाभ पर कर लेना का राज्य को निर्देश दिया है। उन्ही के शब्दो मे राजा व्यापार करने वाले या शिल्पी (उद्योगपति) से सुवर्ण और चादी का जितना अधिक लाभ हो उसमें से पचासवाँ भाग लिया करे।[58]

वितरण (सविभाजन) और राज्य – महर्षि दयानद समुचित वितरण के लिए राज्य का कर्त्तव्य दर्शाते हैं। उन्ही के शब्दो मे 'हे राजा आदि मनुष्यो! जैसे सब जगत का पालन और उत्पन्न करने वाला परमात्मा अपनी दया से सब जीवों के सुख के लिए अनेक प्रकार के पदार्थों की रचना कर तथा वितरण करके अभिमान नहीं करता है वसे आप लोग भी होइये। ये ही जन प्रशसा योग्य होते हैं जो सब पदार्थों को बाट कर खाते है।[59] इस प्रकार उनके मत में राजा को परमात्मा की तरह पदार्थों का उत्पादन एव वितरण की व्यवस्था करनी चाहिए।

वितरण और दण्ड–व्यवस्था– कौटिल्य की भाति दयानद भी वितरण व्यवस्था की सरचना के लिए दण्ड–व्यवस्था को अनिवार्य मानते हैं। वेदादि शास्त्रों के प्रमाण से राज्य को यह निर्देश देते हैं कि समुचित न्याय–प्रणाली और दण्ड–व्यवस्था की स्थापना किये बिना सुव्यवस्थित वितरण व्यवस्था स्थापित नही की जा सकती।

राजस्व सम्बन्धी विचार

राजस्व मे राज्य के आय–व्यय योजना अथवा बजट का अध्ययन किया जाता है। भूमि जगल खदान आदि सम्पदा पर राज्य का अधिकार होता है। राज्य उत्पादन का अधिकार वैश्य वर्ण को देता है। पशुपालन खेती उद्योग आदि के उत्पादन मे राज्य का हिस्सा होता है। उद्योग व्यापार से राज्य को कर के रूप मे आय प्राप्त होती है। राज्य इस आय को राज्य की व्यवस्था और प्रजा की भलाई पर खर्च कर देता है। महर्षि दयानद के राजस्व सम्बन्धी विचारो को हम निम्न रूप में रखकर अध्ययन कर सकते है। (अ) राज्य की आय तथा (ब) राज्य का व्यय।

राज्य की आय

(1) *कर (टैक्स) से आय–*

(i) कर अनिवार्य अंशदान है– महर्षि कर को अनिवार्य मानते हैं, उन्हीं के शब्दो मे *"प्रजाजनो की योग्यता है कि राजा को अपने समस्त पदार्थों मे से यथायोग्य* भाग (कर) दे। जिस कारण राज प्रजापालन के लिए ससार में उत्पन्न हुआ है, इसी से राज्य करने वाला यह राजा संसार के पदार्थों का अंश लेने वाला होता है।"[80]

परन्तु महर्षि कर लगाने मे राजा को तानाशाही अधिकार प्रदान नहीं करते। उनके अनुसार, 'राजा कर लगाने से पूर्व विचार करे, जैसे राजा और कर्मो का कर्त्ता राजपुरुष व प्रजाजन सुखरूप फल से युक्त होवे वैसे विचार करके राजा तथा राज्य सभा राज्य पर कर स्थापन करे। उन्होने सत्यार्थ प्रकाश मे मनुस्मृति के इस कथन का उल्लेख किया है कि जैसे जौंक, बछडा और भवरा थोडे–थोडे योग्य पदार्थों को ग्रहण करते हैं वैसे राजा, प्रजा से थोडा–थोडा वार्षिक कर लेवे।[81] महर्षि दयानद मनु की भाति व्यापारियो से वस्तुओ की खरीद–बिक्री, उस पर लाभ और भरण–पोषण–व्यय को ध्यान में रखकर व्यापारियो पर कर लगाने का सुझाव देते हैं तथा छोटे व्यापारियों से भी राजा को थोडा बहुत वार्षिक कर लेने का सुझाव देते हैं।

स्वामी दयानद कर चुकाना प्रजा का कर्त्तव्य मानते हैं, उनके ही शब्दों मे, ' जिस प्रकार राजा, प्रजा की आय–व्यय की स्थिति देखकर कर लेता है और उसके बदले मे वह उसी धन को प्रजा के परोपकार मे लगा देता है, उसी प्रकार प्रजा का भी कर्त्तव्य हो जाता है कि वह बहुत ही ईमानदारी से अपना कर्त्तव्य समझ कर राजा को बिना कर की चोरी किये कर देवे।[82]

(ii) *करारोपण के मापदण्ड–* महर्षि दयानद के अनुसार कर निम्न प्रकार से लगाये जाने चाहिए – व्यापार करने वाले या शिल्पी को सुवर्ण और चादी का जितना लाभ हो उसमें से पचासवाँ भाग, चावल आदि अन्नो में छठा आठवाँ या बारहवाँ भाग लिया करे और जो धन लेवे तो भी उसी प्रकार से लेवे कि जिससे किसान आदि खाने–पीने और धन से रहित होकर दु ख न पावे।[83] महर्षि ने मनु स्मृति मे उल्लेखित करों के मापदण्डों के अनुसार राजा को कर लेने का सुझाव दिया है।

(iii) करारोपण के सिद्धांत– महर्षि दयानद ने अपने ग्रन्थो मे कर व्यवस्था के विषय मे जो लिखा है, उसके अनुसार करारोपण के निम्न सिद्धात स्पष्ट होते हैं–

(अ) प्रजारक्षण का सिद्धांत – महर्षि दयानद के अनुसार 'राजा को राजकीय कोष के लिए प्रजा से उतना ही धन लेना चाहिए जितना कि वह उनकी रक्षा करने की सामर्थ्य रखता है जो राजा प्रजा की बिना रक्षा किये उनसे छठा भाग अन्नादि कर, टेक्स महसूल चुगी जुर्माना ग्रहण करता है वह शीघ्र ही दु ख को प्राप्त होता है।

(ब) लाभ पर कर लगाने का सिद्धांत– महर्षि दयानद ने मनु के करारोपण के इस विचार का समर्थन किया कि किसी व्यवसाय अथवा आय प्राप्त करने के लिए अन्य कार्यो मे जो पूँजी लगायी जाती है उस पर कर नही लगाना चाहिए बल्कि मार्ग व्यय सुरक्षा व्यय भरण–पोषण व्यय अर्थात लाभ–हानि को देखकर कर लगाना चाहिए।

(स) वांछनीयता का सिद्धांत – महर्षि दयानद के अनुसार राजा को जनता *से उतना ही कर लेना चाहिए जितना उसके शासन को चलाने हेतु आवश्यक हो।*[84]

(द) भुगतान सामर्थ्य सिद्धांत या अधिक कर निषेध– महर्षि दयानद के विचार मे प्रजा पर उसकी सामर्थ्य से अधिक कर नही लगाना चाहिए। राजा को ऐसी कर–नीति का अनुसरण करना चाहिए जिससे राँजा तथा प्रजा का मूलोच्छेद न हो वरन् कल्याण हो।

(iv) ब्रिटिश सरकार द्वारा लगाये गये अनुचित करो का विरोध– स्वामी दयानद सत्यार्थ प्रकाश मे भारत मे अग्रेजी सरकार द्वारा लगाये गये नमक कर तथा गरीब मजदूरो द्वारा जगल मे लाने वाले ईंधन और घास आदि पर कर का विरोध किया है। उनके ही शब्दो मे एक तो यह बात है कि नोन और पौन रोटी (नमक और गरीब मजदूरों द्वारा जगल से लाने वाले ईंधन और घास) से जो कर लिया जाता है मुझको अच्छा मालूम नही देता क्योकि नोन विना दरिद्र का निर्वाह नहीं किन्तु सबको नोन आवश्यक होता है और वे मेहनत मजदूरी से जैसे–जैसे निर्वाह करते हैं उनके ऊपर भी यह नोन पर कर दण्ड तुल्य होता है। इससे दरिद्रो को क्लेश पहुँचता है। अत कर लवणादि के ऊपर नही होना चाहिए। पौन रोटी से भी गरीबो को बहुत क्लेश पहुँचता है अत गरीब लोग घास छेदन करके ले जाए या लकडी का भार ले जाए तो उनके ऊपर कौडियो के लगने से उनको अवश्य क्लेश होता होगा।[85]

(2) शुल्क से प्राप्त आय

महर्षि दयानद के अनुसार समुद्र खाडी और छोटी–बडी नदियो मे जहाज नाव आदि से यात्रा करने पर मार्ग की लम्बाई इत्यादि को ध्यान मे रखते हुए कर–शुल्क निर्धारित किया जाना चाहिए।[86] उन्होने मनु के इस विचार को उचित माना है कि चुगी के रास्ते को छोड़कर दूसरे रास्ते से सामान ले जाने वाले असमय मे अर्थात रात आदि मे गुप्त रूप से सामान खरीदने व बेचने वाले माप–तौल मे गडबडी करने वाले से मूल्य के आठ गुने के दण्ड से दण्डित किया जाये। राजा लाभ का बीसवा भाग कर (शुल्क) के रूप मे वसूल करे तथा जिन वस्तुओ का निर्यात राजा ने बद कर दिया है यदि उन वस्तुओ को चोरी छिपे व्यापारी देश से बाहर ले जाता है तो ऐसे व्यापारियो का राजा सर्वस्व हरण कर ले। राजा को प्रत्येक वस्तु के विक्रय की दर आने–जाने का व्यय स्थान आदि विषयो का विचार कर विक्रय की दर निश्चित करनी चाहिए।[87]

(3) आर्थिक दण्डों से प्राप्त आय

स्वामी दयानंद पद और हैसियत को देखकर दण्ड देने के समर्थक थे। उन्होने झूँठी साक्षी देने पर होने वाले दण्ड का विवेचन किया है। उन्ही के शब्दो मे "जिस अपराध मे साधारण मनुष्य पर एक पैसा दण्ड हो तो उसी अपराध मे राजा को सहस्त्र पैसा दण्ड होना चाहिए। जैसा अनपढ पर एक पैसा तो अति शिक्षित पर सौ या एक सौ अठ्ठाईस गुण अर्थात 128 पैसा दण्ड दिया जाना चाहिए।[57] महर्षि दयानद ने सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास मे 18 प्रकार के वाद (मुकदमे) बताये है। इन्ही मुकदमों पर न्यायालय में लगने वाले न्याय शुल्क एव निर्णयार्थ किये गये आर्थिक दण्डो से राज्य को जो आय प्राप्त होती है उसे 'दण्ड कर' या दण्डी से प्राप्त आय कहा जाता है। ये 18 वाद इस प्रकार से हैं– (1) ऋणदान– किसी के ऋण लेने से विवाद (2) धरोहर– अर्थात किसी ने किसी के पास पदार्थ रखा हो और मागने पर न देना। (3) अस्वामी विक्रय– दूसरे के पदार्थ को दूसरा बेच दे. (4) मिलकर किसी पर अत्याचार करना (5) दिए हुए पदार्थ को वापिस न देना (6) किसी के वेतन या नौकरी मे से लेना या कम देना (7) लेन–देन मे झगडा होना (8) प्रतिज्ञा के विरूद्ध वर्तना (9) पशु के स्वामी और पालने वाले का झगडा (10) सीमा विवाद (11) किसी को कठोर दण्ड देना (12) कठोर वाणी बोलना (13) चोरी–डाका डालना (14) किसी काम को बलात्कार से करना (15) किसी की स्त्री या पुरूष का व्यभिचारी होना (16) स्त्री–पुरूष के धर्म मे व्यतिक्रम होना (17) दायभाग मे विवाद उठाना (18) द्यूत या जुआ मे चेतन पदार्थ को दाँव पर लगा कर खेलना।[58]

(4) युद्ध से प्राप्त धन

महर्षि के अनुसार युद्ध मे जीते हुए सभी धन और पदार्थ के 16 वे भाग पर राजा का अधिकार है। शेष धन और सामान सैनिक एव अन्य युद्ध से सम्बन्धित लोगो मे वितरित कर देना चाहिए।

राज्य का व्यय

(1) शासन प्रबंध सम्बन्धी व्यय–

महर्षि दयानद राजपरिवार, राजकीय और प्रशासनिक अधिकारियो, कर्मचारियो तथा दासो के वेतन आदि पर निम्न व्यय का अपने ग्रन्थों में वर्णन करते है।[60]

(i) राज्य कर्मचारियो को उनके परिवार का भली–भाति जीवन–निर्वाह हेतु उतना वेतन नकद धन या भूमि के रूप मे मासिक या वार्षिक मिलना चाहिए।

(ii) सेवानिवृत्त के बाद पेंशन के रूप मे आधा वेतन मिलना चाहिए।

(iii) मरने के बाद उसकी पत्नी एव बच्चो को आधा वेतन मिलना चाहिए।

(iv) यदि उसके बच्चे समर्थ हो गये हो तो राज्य को उसके पिता के स्थान पर नौकरी देनी चाहिए।

(v) युद्ध मे मरने वाले सैनिको की विधवाओ को जीवन–भर पूरा वेतन पेशन के रूप मे मिलना चाहिए।

(vi) यदि उनके पुत्र समर्थ हो गये हो तो उन्हें भी राज्य की सेना मे नौकरी मिलनी चाहिए तथा मृत सैनिको की पत्नियो को जब आधा वेतन मिलना चाहिए।

(vii) यदि किसी नौकर ने 30 वर्ष तक नौकरी कर ली हो तो उसको जीवन–पर्यन्त आधा वेतन मिलना चाहिए।

(viii) मृतक कर्मचारी के यदि स्त्री–पुत्र कुकर्मी हो या धन का दुरुपयोग हो तो राजा को चाहिए कि वह उनको धन देना बद कर दे।

(ix) राजा सदैव यह ध्यान रखे कि जितना मासिक वेतन दिया जाता है उतना मृत्यु (नौकर) ने कार्य किया है या नही।

इस प्रकार दयानन्द के उपर्युक्त विचार आज की सरकारों के लिए कल्याणकारी कार्य करने के लिए मार्ग–दर्शन है।

(2) राज्य के मुखिया या राजा के वेतन पर व्यय

स्वामी दयानद के अनुसार राज अपना एव अपने कुटुम्ब का नित्य नैमित्तिक व्यय नियम पूर्वक करे। महर्षि राज्य को राजा की निजी सम्पति नहीं मानते थे वरन् वेतन लेकर राजा राज्य के सर्वोच्च पद पर रह सकता है। उनका स्पष्ट मत था कि राज के वेतन आदि पर राजय की कुल आय का 20% तक धन व्यय किया जाये।[61]

(3) सैनिक व्यवस्था पर व्यय

महर्षि दयानद ने उदयपुर के महाराजा सज्जनसिह को पत्र लिखा था कि आपको सेना अर्थात राज्य की सुरक्षा पर पर्याप्त खर्च की व्यवस्था करना चाहिए। आप राज्य का जो बजट बनाये तो उसमे दो लाख रूपये वहाँ के क्षेत्रीय सरदारो से तथा एक लाख पच्चीस हजार रूपये राज्य के कोष से लेकर क्षत्रिशाला की स्थापना शीघ्र कीजिए। युद्ध मे मरे सैनिको को पेशन देवे।[62]

(4) प्रजा की भलाई पर व्यय

स्वामी दयानद के अनुसार राज्य प्रजा की भलाई के लिए राजा निम्नलिखित मदो मे कुल आय का 10% धन व्यय करे।

(i) वेद–विद्या धर्म प्रचार विद्यार्थी असमर्थ ओर अनाथो के पालन में राज्य धन व्यय करे।

(ii) विद्वान अनुसधानकर्त्ता लेखक कवि आचार्य एव विद्यावान् होनहार छात्रों के सहयोग एव सत्कार पर राजा धन लगावे।

(iii) प्रजा को पुत्र मानकर अपने राज्य के कोष की एक अच्छी राशि उनके पालन–पोषण एव शिक्षा–प्रसार पर व्यय करे।

(5) राज्य के बजट में धर्मप्रचार की व्यवस्था

प्राचीन काल मे राज्य धर्मनिरपेक्ष न होकर धर्मसापेक्ष हुआ करते थे। स्वामी दयानद ने उदयपुर के महाराज सज्जनसिह को पत्र लिखा कि 'राज्य की आय मे से दशाश (कुल आय का 10%) धर्मादि के लिए नियत रखे। उससे धर्म एवं सुशिक्षा के प्रचार के लिए उपदेशक और अध्यापक नियुक्त करे। आपत्तिकाल मे अनाथो का भरण–पोषण करे।' इस विषय मे झालावाड के महाराजा को उन्होने जो पत्र लिखा उसके अश इस प्रकार हैं–धर्म प्रचार, गाय, आदि पशुओ की रक्षा, शास्त्रीय तथा पठनीय ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए छापाखाना आदि की स्थापना तथा क्षात्रशाला (शस्त्र विद्या सिखाने के लिए) आदि के निर्माण के लिए राज्य धन व्यय किया जाए।[63]

राजा कर लेने के बदले प्रजा का पालन करे–महर्षि लिखते है कि 'यदि राजा न्याय से प्रजा की रक्षा न करे और प्रजा से कर लेवें तो जैसे–जैसे प्रजा नष्ट हो वैसे–वैसे राजा नष्ट होता है।' अत डाकू, चोर, कपटी अन्यायी एव हानिकारक और हिसक पशुओ से राजा प्रजा की रक्षा करे। प्रजा की भलाई और भरण–पोषण के लिए कर लिया जाय – महर्षि दयानद ने ऋग्वेदभाष्यम् भूमिका मे लिखा है कि प्रजा की भलाई करके ही राजा को कर लेना चाहिए। जैसे अग्नि में होम किया द्रव्य तेज के साथ ही सूर्य को प्राप्त होता है और सूर्य जलादि को आकर्षित कर वर्षा करके सबकी रक्षा करता है, वैसे ही राजा, प्रजा से कर ले और दुर्भिक्ष व अन्य आपत्तिकाल में प्रजा के पालन–पोषण के लिए व्यय कर दे।[64] उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि,'राजपुरूष हम से जो कर लेते हैं, वे हमारी निरतर रक्षा करे अन्यथा कर नही लेवे। अत प्रजा की रक्षा और शत्रु से युद्ध (देश की रक्षा) करने के लिए कर दिया जाता है राजा के भोग विलास के लिए नही।[65] प्रजा की भलाई के लिए किये जाने वाले व्ययो मे सबसे अधिक महत्व महर्षि ने प्रजा की स्वास्थ्य रक्षा, अनाथ, वृद्धो ओर रोगियो के पालन करने एव किसान मजदूरो की उन्नति करने पर दिया है । उन्होने किसानों को राजाओ का राजा तक कहा है।[66]

महर्षि दयानद के उपर्युक्त विचारो के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वे व्यक्ति की वैयक्तिक एव सामाजिक आर्थिक उन्नति करने का मूल दायित्व राज्य का मानते हैं। यदि कोई राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न नहीं है तो महर्षि की दृष्टि में यह राज्य–व्यवस्था का दोष है। इसलिए उन्होने राज्य का आय–व्यय (बजट) इस दृष्टि से निर्मित करने का सुझाव दिया जिससे राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न तो हो ही, साथ ही प्रजा भी खुशहाल हो। प्रजा जिस सीमा तक सम्पन्न होगी, राष्ट्र की अर्थव्यवस्था भी उतनी ही सम्पन्न होगी।

महर्षि दयानद ने अपने राजस्व सम्बन्धी विचारो की क्रियान्विति के लिए राष्ट्र के देशी राजाओ के राज्य को अग्रेजो के राज्य के मुकाबले पर धर्मराज्य अर्थात कल्याणकारी राज्य बनाने का भी पूरा प्रयास किया था।

आर्थिक संगठन या अर्थव्यवस्था की संरचना सम्बन्धी विचार

1 **वर्ण व्यवस्था द्वारा अर्थव्यवस्था की संरचना–** महर्षि दयानंद द्वारा प्रतिपादित समाज की वर्ण–व्यवस्था एक मूल आधार व्यवस्था है। उनके अनुसार जहाँ वर्ण–व्यवस्था समाज को सामाजिक दृष्टिकोण से संगठित करती है वहां यह व्यवस्था आर्थिक दृष्टिकोण से भी संगठित करती है। इसलिए आदर्श अर्थव्यवस्था की संरचना वर्ण–व्यवस्था की स्थापना के बिना नहीं हो सकती। उनके विचार में समाज में रहने वाले लोगो को चाहिए कि वे उन कार्यों को आपस मे बॉट ले अर्थात सब अपने–अपने गुण कर्म और स्वभाव के अनुसार अलग–अलग काम चुन ले तो समाज मे संगठित रूप से प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहेगी अर्थात वर्ण–व्यवस्था से प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति भली प्रकार हो सकती है।"

2 **प्राथमिक एव गौण आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था करना राज्य का कर्तव्य–** महर्षि के अनुसार वर्णों को अपने–अपने अधिकार एव कर्तव्यो में प्रवृत्त करना राजा आदि सभ्यजनों का काम है । राजा का यह दायित्व है कि वह उत्पादन विनिमय और वितरण की ऐसी संरचना करे कि बिना किसी असुविधा के सभी व्यक्तियो को उनकी आवश्यकतानुसार वस्तुएँ प्राप्त होती रहे। अर्थव्यवस्था मे सबको उपभोग के पूरे साधन मिले कोई भूखा नहीं रहे। उपभोग में अधिक असमानता नहीं रहे जो उपभोग हो वह स्वदेशी हो अर्थात सभी उपभोग्य पदार्थ स्वदेश में उत्पन्न किये गये हो। महर्षि व्यक्ति को उपभोग के बारे में पूरी स्वतत्रता देते हैं परन्तु धर्म मर्यादाओं और आचरण–संहिता का अकुश सदैव साथ रखते हैं। इस प्रकार महर्षि दयानद की दृष्टि म राज्य का यह उत्तरदायित्व बनता है कि वह यह देखे और व्यवस्था करे कि उसकी प्रजा को आवश्यकता और योग्यतानुसार उपभोग्य पदार्थ प्राप्त हो रहे हैं या नही।"

स्वामी दयानद की अर्थव्यवस्था की संरचना में उत्पादन करने का हर किसी को अधिकार नहीं है। यद्यपि उत्पादन मे सहभागी सभी रहेंगे परन्तु उत्पादन करने का अधिकार वैश्य वर्ण को ही है। उत्पादन व्यवस्था पर राज्य का पूर्ण नियत्रण होता है।

स्वामी जी औद्योगीकरण के विरोधी नहीं थे। उन्हीं से प्रेरणा पाकर उनके प्रियशिष्य एव क्रातिकारियो के पितामह श्यामजीकृष्ण वर्मा सन् 1889 मे राजस्थान मे ब्यावर मे सबसे पहली कपड़ा मिल के प्रबधक बने थे। परन्तु वे बड़े–बड़े उद्योग लगाने के पक्षधर उतने अधिक नहीं थे जितने कुटीर उद्योग लगाने के पक्ष मे थे।

देश की अर्थव्यवस्था मे किन–किन वस्तुओं का उत्पादन होना चाहिए किन–किन वस्तुओ का उत्पादन नही होना चाहिए यह सब राज्य की व्यवस्था से नियोजित होना चाहिए। कोई भी उत्पादन अनियत्रित एव अनियोजित नही होना चाहिए। किसानो एव मजदूरो का शोषण नहीं होना चाहिए।

व्यापार–विनिमय पर भी वे राज्य का नियत्रण मानते थे। विनिमय साधना एव

माध्यमो की जॉच समय–समय पर राजा को करते रहना चाहिए। उत्पादित वस्तुओ के मूल्य निश्चित करने का दायित्व भी राजा का होता है अर्थात राज्य का सम्पूर्ण बाजार व्यवस्था पर पूर्ण नियन्त्रण होना चाहिए। यातायात साधनो की व्यवस्था भी राज्य ही करता है। वितरण–व्यवस्था की संरचना का दायित्व भी उन्होने राज्य का ही माना है। वितरण–व्यवस्था की सफलता दण्ड–व्यवस्था पर आधारित है। उनके मत मे सबसे बडी पवित्रता अर्थ की पवित्रता है और अर्थ की पवित्रता को उत्पन्न करने का साधन समुचित दण्ड–व्यवस्था है ।

महर्षि द्वारा प्रतिपादित राज्य और अर्थव्यवस्था मे आज की तरह फिजूलखर्ची तथा भ्रष्टाचार को कोई स्थान नही है। अत उन्होने राजा का सबसे बडा गुण धन के कोषो को पूर्ण करने वाला बताया है। राज अपने और अपने कर्मचारियो के भरण–पोषण के आवश्यक धन मे से आवश्यक भाग लेकर सम्पूर्ण धन को प्रजा की भलाई पर लगाना चाहिए।[6]

(3) मनुष्य के आर्थिक कल्याण के बाधक तत्त्व– महर्षि मानव कल्याण मे तीन तत्त्वो – अज्ञान अभाव तथा अन्याय को प्रमुख बाधक तत्त्व माना है। साधारण प्रजा को आवश्यक पदार्थ इसलिए नही मिल सकता कि उन्हे वस्तुओ के उत्पादन, विनिमय एव वितरण का ज्ञान नही होता (अज्ञानता)। दूसरा यह हो कि इन पदार्थों को उत्पादित करने का ज्ञान तो है परतु कोई उत्पादन नहीं करता (अभाव)। तीसरा कारण यह है कि उत्पादन करने का ज्ञान है उत्पादन भी पूरा होता है परन्तु कोई अन्याय एव जोर जबरदस्ती से वस्तुएँ छीन ले जाता है अथवा सारे पदार्थों का स्वामी स्वय ही बन जाता है। इसलिए सुव्यवस्थित अर्थ–व्यवस्था की सरचना के लिए एक अच्छे राज्य को सदैव इन शत्रुओ पर नियत्रण करते रहना चाहिए।

(4) वर्णों के व्रत– स्वामी दयानद के अनुसार वर्ण–व्यवस्था की स्थापना ही इस उद्देश्य को लेकर हुई है कि वह अज्ञान अभाव और अन्याय को नही रहने दे। अज्ञान को मिटाने का व्रत ब्राह्मण (ज्ञान का आदान प्रदान करने वाला व्यक्ति) का है। अभाव को मिटाने का व्रत वैश्य (पशुपालन खेती उद्योग और व्यापार से उत्पादन करने वाला व्यक्ति) का है। अन्याय को मिटाने का व्रत क्षत्रिय (सुरक्षा करने वाला व्यक्ति) का है और इन तीनो वर्णों को सहयोग करने का व्रत शूद्र (शारीरिक श्रम करने वाले) का है।[7]

(5) वर्णाश्रम–व्यवस्था के आर्थिक पक्ष के मौलिक तत्त्व– वर्णाश्रम–व्यवस्था के तीन मौलिक तत्त्व हैं– (i) कौशल (ii) शक्ति–प्रतिमान तथा (iii) यथायोग्य दक्षिणा।

(i) कौशल–कोई भी व्यक्ति सब प्रकार के कार्यों मे दक्ष नही हो सकता क्योकि उसकी बुद्धि और शक्ति सीमित होती है। अत व्यक्ति को किसी एक काम मे ही दक्षता या पारगतता प्राप्त करना चाहिए। आश्रम व्यवस्था इस दक्षता या कोशलता को प्राप्त करवाती है। आश्रम–व्यवस्था 25 वर्ष तक अज्ञान अन्याय ओर अभाव ये किसी एक धारा

को पृथक–पृथक गुरूकुल मे अध्ययन कराकर पूर्ण कौशल प्राप्त करवाती है। समाज के सभी ब्राह्मण मिलकर सम्पूर्ण प्रकार के अज्ञान को क्षत्रिय मिलकर सम्पूर्ण अन्याय को और सभी वैश्य मिलकर सम्पूर्ण प्रगकार के अभाव को मिटा देगे । इस प्रकार वर्णों के अलग–अलग कौशल मिलकर समाज अथवा राष्ट्र का सम्पूर्ण अज्ञान अन्याय एव अभाव को मिटाने मे सफल होगे।

(ii) शक्ति– प्रतिमान– समाज के वर्ण–व्यवस्था के अनुसार गठित होने से सब वर्ण अपने–अपने निर्धारित गुण कर्मादि के अनुसार शक्ति प्राप्त करते है। महर्षि के अनुसार ब्राह्मण को अधिक सम्मान मिलना चाहिए क्योकि वह अज्ञान मिटाता है और अज्ञान सब समस्याओ का मूल है। क्षत्रिय को राज्य–शक्ति प्राप्त होगी क्योकि अन्याय बिना दण्ड–व्यवस्था के नहीं मिट सकता। वैश्य के पास धन–सम्पत्ति रखने का अधिकार अन्य वर्णो से अधिक होगा क्योकि उसका कार्य ही धन सम्पत्ति का उत्पादन करना और विनिमय–व्यापार के द्वारा उसे वितरित करना होगा। शेष वर्णो के पास भी धन होगा किन्तु भरण–पोषण के लिए। वे उससे आपत्तिकाल के अलावा उत्पादन कार्य नही कर सकेंगे।

संक्षेप मे वर्णाश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत सब वर्णाश्रमियो की अपनी–अपनी सतुलित शक्ति की सीमा होगी। सब अपने–अपने निर्धारित कार्य करेगे और राजा इनको अपने–अपने क्षेत्रो के कार्यों मे प्रवृत्त रखेगे।

(iii) यथायोग्य दक्षिणा– महर्षि के अनुसार सभी वर्णों के लोगो को वेतन या पारिश्रमिक से इतना धन तो मिलेगा ही कि उससे उपभोग्य वस्तुए खरीद सके। परन्तु सभी वर्गों के लोगो को अपने काम की यथा–योग्य दक्षिणा भी मिलनी चाहिए। ब्राह्मण की दक्षिणा है – उपभोग्य साधनो के अलावा समाज मे पद एव प्रतिष्ठा मिलना। क्षत्रिय की दक्षिणा है उसे उपभोग साधनो के अलावा शासन सत्ता का अधिकार मिलना। वैश्य की दक्षिणा है उसे उसकी सेवा के बदले और वर्णो से धन सम्पत्ति अधिक मिलनी चाहिए। शूद्र की दक्षिणा है भरपूर उपभोग के साधन मिलना तथा यथायोग्य सम्मान प्राप्त होना। इस प्रकार सभी वर्ण सतुष्ट रहेगे और उत्साहपूर्वक अपनी सेवाओ से समाज को ज्ञान सुरक्षा धन और श्रम की प्राप्ति कराते रहेगे।

(6) आश्रम–व्यवस्था का आर्थिक पक्ष– आश्रम–व्यवस्था मे सब वर्णों के लोगो का व्यक्तिगत जीवन 25–25 वर्षो मे विभाजित रहता है। ब्रह्मचारी 25 वर्ष की आयु तक गुरूकुल मे रहकर किसी वर्ण के कार्य में कौशल प्राप्त करेगा। उसके भरण–पोषण की व्यवस्था करना राज्य का दायित्व होगा। ब्रह्मचारी जब गृहस्थ बनेगा तभी उसे धन–सम्पत्ति कमाने अथवा वेतन दक्षिणा लेकर अपने वर्णानुसार कार्य करने का अधिकार होगा। वानप्रस्थ मे धन कमाना छोडकर तप का जीवन व्यतीत करना पडेगा समाज की निःशुल्क सेवा करेगा। इसमे आर्थिक लाभ यह होगा कि प्रत्येक क्षेत्र मे

वानप्रस्थी जो रिक्त स्थान छोडेगे उन पर युवाओ को कार्य करने का अवसर मिलेगा और बेरोजगारी का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। सन्यास मे तो व्यक्ति मे धन, स्थान या व्यक्ति विशेष से कोई मोह–ममता ही पैदा नही होगी।"

(7) सम्पत्ति का स्वामित्व -- सम्पत्ति का स्वामित्व समयानुसार बदलता रहता है। वैदिक काल मे सम्पत्ति पर सम्पूर्ण समाज का स्वामित्व रहा है और राजा उसका सरक्षक तथा व्यवस्थापक मात्र होता था। परन्तु धीरे–धीरे समाज में परिवर्तन के साथ–साथ इस मान्यता मे भी परिवर्तन हुआ और मध्यकाल मे राजा अथवा शासक ही अपने को राज्य की सम्पूर्ण सम्पत्ति का स्वामी मानने लग गये। इसके बाद सम्पत्ति के दो भाग हो गये। बहुश भाग का स्वामी राज्य और कुछ भाग के स्वामी वैयक्तिक रूप से पृथक–पृथक किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार नही मानते थे अपितु उनकी दृष्टि मे सम्पत्ति सबके साझे की अर्थात सम्पत्ति अथवा उत्पादन के साधनो पर सामूहिक रूप से सबका अधिकार है। वर्ण– व्यवस्था में सम्पत्ति का वैयक्तिक स्वामित्व किसी भी स्थिति मे सिद्ध नही हो सकता। महर्षि व्यक्तिगत सम्पत्ति पर जन्म के अनुसार अधिकार के घोर विरोधी थे। फिर भी उनकी व्यवस्था मे राज्य को यह अधिकार दिया गया है कि वह देश, काल और परिस्थिति को देखकर सम्पत्ति में स्वामित्व मे परिवर्तन कर सकता है। उनके अनुसार सम्पत्ति पर जन्म से अधिकार (स्वामित्व) न होकर गुण, कर्म आदि के अनुसार होता है सम्पत्ति पर अधिकार दिया जाता है, जबरन किया नहीं जाता। अधिकार देता है समाज। अत सम्पत्ति पर मूलत अधिकार समाज का होता है। सम्पत्ति पर किसी एक के अधिकार को वे नहीं मानते। महर्षि जन्म के अनुसार सम्पत्ति पर अधिकार नही मानते। सम्पत्ति अथवा उत्पादन पर राज्य का भाग नियत होता है। उसका अनुपात भी राजा ही निर्धारित करता है। महर्षि दयानद ने मनु के इन विचारो का समर्थन किया है कि सोना, चादी, पशु, पक्षी, लघु धन–उपज तथा कुटीर उद्योगों पर भी राज्य का भाग लेने का विधान है। यही नही गोद, पत्ते, शाक, घास, चमडा, पत्थर, बास, मिट्टी के बर्तन, वस्त्र, इत्र, तेल, फूल, फल, दूध, घी आदि पर षड् (छठा) भाग कर ग्रहण करने का भी विधान है। चाहे राज्य कितना ही सम्पन्न हो उसे व्यापारियो से थोडा बहुत कर लेना चाहिए।" परतु महर्षि के मत मे राजा भी वेतन भोगी व्यक्ति है। वह राज्य का सर्वोच्च अधिकारी होता है वह वेतन के रूप मे एक निश्चित राशि का ही अधिकारी होता है। परिवार मे एकत्रित सामूहिक सम्पत्ति का स्वामी एक व्यक्ति न होकर पूरा परिवार होता है।

(8) उत्पादन के साधनो पर राज्य का स्वामित्व– महर्षि दयानद के अनुसार हर व्यक्ति को उत्पादन करने अथवा व्यापार कर लाभ कमाने का अधिकार नही है। जीविकोपार्जन के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के श्रम का विधान किया गया है। उन्होने समाज के चारो वर्णो मे से अर्थोत्पादन का दायित्व वैश्य वर्ग को दिया है। राज्य की ओर से उत्पादन के साधन वैश्य वर्ण को उपलब्ध करवाये जाते है, वह उनको प्रयोग में ले

सकता है बेच नही सकता है। वैश्य के उत्पादन से पूँजी और पारिवारिक खर्च निकाल कर शेष भाग पर से राज्य का भाग निकाला जायेगा। शेष का स्वामित्व वैश्य का होगा। वैश्य अपने धन से उत्पादन के साधन खरीद सकता है और उत्पादन पर सरकार को कर देकर उत्पादन के साधनो का स्वामी बना रह सकता है और उस साधन को अपने पुत्रो के दायभाग मे दे सकता है। परन्तु वह अपने धन को अपने योग्य पुत्रो को ही दे। यदि पुत्र अयोग्य हुए तो उन्हे केवल भोजन वस्त्र आदि सामान्य उपभोग के साधन ही प्राप्त हो सकेगे।

(9) अर्थ पर धर्म का नियत्रण– महर्षि द्वारा प्रतिपादित अर्थव्यवस्था मे अर्थ पर धर्म का नियत्रण होता है। अर्थात इसे हम धर्म सापेक्ष अर्थव्यवस्था कह सकते हैं। महर्षि के शब्दो मे अर्थ वह है जो धर्म से प्राप्त किया जाए।[73] धर्म से ही पदार्थों का सचय करना चाहिए। धर्मयुक्त पुरूषार्थ से उत्पन्न धन को ही वास्तविक धन माना जाए।[74]

(10) विकेन्द्रीकरण– महर्षि दयानद ने सत्ता और सम्पति अर्थात राज्य–व्यवस्था और *अर्थव्यवस्था की सफलता के लिए विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था अपनाने पर जोर दिया* है। ग्राम से लगाकर सम्पूर्ण विश्व तक की विकेन्द्रित व्यवस्था का विधान महर्षि ने किया है। *समाज अथवा राष्ट्र की छोटी इकाई गाव होती है जो अपना जनपद बनाएगी।* जनपद के सचालन के लिए सभी मिलकर कुछ विशिष्ट व्यक्तियो का चुनाव करेगें। यही जनपद अपने सम्पूर्ण क्षेत्र की अर्थव्यवस्था को चलायेगे और सारे जनपद मिलकर राष्ट्र कहलायेगे।[75]

(11) समुचित शिक्षा–व्यवस्था– महर्षि दयानद द्वारा प्रतिपादित अर्थव्यवस्था की सफलता का मूल शिक्षण–व्यवस्था है। समानता का वातावरण समान शिक्षा से ही निर्माण होगा। इसलिए उन्होने पाठशालाओ मे सब छात्रो के लिए खान–पान वस्त्र आदि की समान व्यवस्था की है। अमीर–गरीब ऊँच–नीच का भेदभाव नहीं होना चाहिए।

महर्षि ने अर्थव्यवस्था की सफलता के लिए धार्मिक और चारित्रिक शिक्षा के साथ–साथ व्यावसायिक शिक्षा अर्थात आर्थिक शिक्षा को भी पाठयक्रम में शामिल किया है। तथा शिक्षा को अनिवार्य करने पर जोर दिया है।[76]

(12) आधारभूत असमानता– महर्षि दयानद के अनुसार सभी मनुष्य गुण योग्यता श्रम बुद्धि स्वभाव एव रूचि आदि मे समान नही हो सकते। अत धन अथवा साधनो के वितरण मे भी समानता नही हो सकती। पर प्राथमिक आवश्यकताएँ (अन्न जल मकान आदि) सबकी पूर्ण होनी चाहिए। वे साम्यवाद की तरह सबका बराबर अधिकार नही मानते।

(13) भाग्यवाद के स्थान पर पुरूषार्थ को महत्व–महर्षि दयानद इस मान्यता का स्पष्ट शब्दो मे *खण्डन करते हैं कि सम्पत्ति भाग्य (अथवा पूर्व जन्मो मे सचित कर्मो) के फलस्वरूप मिलती है इसलिए सम्पत्ति पर जन्म से वैयक्तिक स्वामित्व होना चाहिए। इस विचार का दयानद द्वारा प्रतिपादित अर्थव्यवस्था मे कोई स्थान नही*

है। वे भाग्य पर विश्वास न कर पुरूषार्थ को मानते हैं, क्योंकि सचित कर्म (भाग्य) भी पुरूषार्थ से ही एकत्र होते है। अत सम्पत्ति प्राप्त करने मे मुख्य भूमिका पुरूषार्थ की रहती है, भाग्य की नही।

महर्षि दयानंद की अर्थव्यवस्था अथवा वर्णाश्रम–व्यवस्था सम्बन्धी प्रमुख बातें

(1) मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति– दयानद द्वारा *प्रतिपादित अर्थव्यवस्था मे कोई व्यक्ति भूखा नही रहेगा। राजा का यह कर्तव्य है कि वह* सबकी मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति करे।[77]

(2) पशुधन को उचित महत्त्व– महर्षि दयानद ने गो आदि पशुओ को बहुत महत्व दिया है। मनुष्यो का खान–पान, खेती आदि पशुओ पर निर्भर है अत राजा का यह दायित्व होगा कि वह राज्य मे पशुओ की वृद्धि करने के लिए स्वय पशुपालन करे एव प्रजा से भी पशुपालन करवाये।[78]

(3) मानव की तीन मुख्य प्रवृत्तियों का विकास– महर्षि की अर्थव्यवस्था में मनुष्य की तीन प्रवृत्तियो का विकास होता है जिससे अर्थव्यवस्था सतुलित होती है। (i) परस्पर प्रेम करना–शरीर के अगो की भाति सब वर्णो मे छोटे–बडे की कोई भावना नहीं होती । सबका अपने–अपने स्थान पर महत्व होता है। सबको मित्र की दृष्टि से देखा जाता है।* सब साथ–साथ चले, साथ–साथ बोले। सबका खानपान एक हो। सब एक दूसरे के हितैषी और रक्षक हो, प्रेमपूर्वक रहा करे। (ii) दान करने की भावना को जाग्रत करना–दान की प्रवृत्ति विकसित होने का एक बडा लाभ यह होगा कि आवश्यकता से अधिक धन सग्रह नही होगा, जिससे शोषण एव आर्थिक विषमता नही पनपेगी। (iii) धन को अधिक महत्व न देने की प्रवृति का उत्पन्न होना– वर्णाश्रम व्यवस्था गुण तथा कर्म के अनुसार होने से धन को एकत्र करने की प्रवृति नियन्त्रित होकर त्याग की प्रवृति विकसित होनी है, क्योकि वर्ण बदलते रहते हैं।

(4) भौतिकवाद और आध्यात्मिकवाद में समन्वय–पूँजीवादी, समाजवादी एव साम्यवादी आदि सभी अर्थव्यवस्थाएँ केवल भौतिकवाद पर आधारित है। इन सभी अर्थव्यवस्थाओ का उद्देश्य मानव की भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति करना है। परन्तु दयानद की व्यवस्था मे भौतिकता एव आध्यात्मिकता का समन्वय कर सब मनुष्यो की शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति पर बल देती है।

(5) भोग और त्याग में समन्वय– दयानद के *अर्थव्यवस्था सम्बन्धी विचारो* मे त्यागपूर्वक भोगने का प्रमुख सिद्धात है।**

* दृतेहहमा मित्रस्य मा चक्षुसा सर्वाणि भूतानि सीमीक्षन्ताम।
मित्रस्याऽह चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे। यजुर्वेद भाष्य 36 18

** त्येन व्यक्तेन भुजीथा– यजु भाष्य 40 1

सम्पत्ति पर सभी का अधिकार होने से सभी उसके भोग (उपभोग)के अधिकारी है। तथा जीवन का तीन चौथाई हिस्सा (ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ तथा सन्यास) तप त्याग पर ही व्यतीत होते है।

(6) पूँजीवाद एव समाजवाद के दोषो की समाप्ति– पूँजीवाद मे उत्पादन के साधनो पर व्यक्ति का अनियत्रित अधिकार अनियत्रित आर्थिक स्वतत्रता असमानता विषमता व्यक्ति प्रमुख तथा समाज का गौण होना विलासी वस्तुओ का अधिक उत्पादन करना परोपजीविका आदि दोष पाये जाते है। समाजवाद मे राज्य का सर्वेसर्वा होना व्यक्ति को केवल श्रम करने वाली मशीन बना देना मनुष्य के जीवन को भौतिकवादी बनाना धर्म को न मानना योग्यता–अयोग्यता का मापदण्ड समाप्त होना नौकरशाही हावी होना इत्यादि दोष पाये जाते है।

महर्षि दयानद द्वारा प्रतिपादित समाज राज्य और उसके आर्थिक सगठन मे व्यक्ति समाज एव राष्ट्र मे पूर्णत समन्वय होता है। उन्होने जन्म के अधिकार को न मानकर गुण एव कर्म के अधिकार को प्रमुखता दी है। महर्षि का मानना है कि सभी मनुष्य गुण योग्यता श्रम स्वभाव एव रूचि मे समान नही हो सकते अत धन और साधनो का वितरण भी समान नही हो सकता अर्थात् समाजवाद की तरह सबका सम्पत्ति पर समान अधिकार नही हो सकता। फिर भी समानता महर्षि की व्यवस्था का एक प्रमुख गुण है। समानता का तात्पर्य है–सब मनुष्यो को बिना किसी अमीर–गरीब छोटे–बडे ऊँच–नीच के भेदभाव के समान शिक्षा देना समान अवसर देना अर्थात सबके लिए समान रूप से उन्नति के द्वार खोलना।

इस प्रकार दयानद के अर्थव्यवस्था के विचारों मे सभी मनुष्यो को एक कुटुम्ब माना गया है और उनकी शारीरिक आत्मिक आर्थिक धार्मिक और सामाजिक उन्नति करना प्रमुख लक्ष्य है। इनके विचारो मे यद्यपि व्यक्ति को समाज की एक इकाई माना गया है और व्यक्ति को सब प्रकार की स्वतत्रता दी गयी है परन्तु समाज के महत्व को भी प्रमुखता दी गयी है।

आर्थिक समस्याएँ एव महर्षि के विचारों से उनका निदान

समाज एव राष्ट्र के आर्थिक विकास मे जब उत्पन्न होने वाली बाधाएँ स्थायी हो जाती है तो वे आर्थिक समस्याओं का रूप ले लेती है। महर्षि के समय आर्थिक समस्याओं के प्रमुख कारण निम्न प्रकार थे–

(i) राजनीतिक कारण – उस समय भारत पर अग्रेजों का आधिपत्य था और ब्रिटिश सरकार की नीति भारत का आर्थिक शोषण करने वाली थी।

(ii) आर्थिक कारण – देश मे उत्पादन की कमी उत्पादन तथा रोजगार का स्तर नीचा होने के कारण बचते कम होती हैं तथा उपभोग का स्तर भी नीचा है। बेकारी का स्तर बढ रहा है। अकाल सूखा यातायात के साधनो का अभाव आर्थिक पिछड़ापन आदि आर्थिक कारणो से आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

(iii) सामाजिक एवं धार्मिक कारण–भाग्यवाद, धर्मभीरुता, मूर्तिपूजा, मोक्ष और परलोक की चिंता, जातिवाद, मृत्युभोज, बालविवाह, दहेज आदि ऐसे धार्मिक एव सामाजिक कारण हैं जो आर्थिक समस्याओं को उत्पन्न करते हैं साक्षरता का स्तर भी देश मे बहुत निम्न है।

देश की प्रमुख आर्थिक समस्याएँ एवं उनका समाधान

(1) उत्पादन सम्बन्धी समस्याएँ– किसानो और खेतीहर मजदूरो का शोषण प्राय व्यवस्था दोष से उत्पन्न होता है। महर्षि दयानद ने इस विषय मे लिखा है कि किसान खाने–पीने और धन से रहित होकर दुख न पावे। उदयपुर के महाराणा सज्जनसिह को महर्षि यह उपदेश देते हैं कि किसानो एव मजदूरो को शोषण न होने पावे और उनकी सुविधा का सदा ध्यान रखा जावे। उनकी यह स्पष्ट धारणा थी कि कृषक वर्ग की उन्नति के बिना देश की आर्थिक स्थिति ठीक होना कठिन है। उन्होंने देश के सभी बैरागी, गोसाई, बाबाजी और भिक्षुओं को राजा द्वारा कृषक बनाने की सलाह दी। कृषको के प्रति सम्मान उनके इस कथन से स्पष्ट होता है कि मेरे मरने के बाद मेरी राख और भस्म को खेतों मे डाल दिया जावे जिससे खाद बनकर किसी किसान की फसल को सुधारे।[9]

स्वामी जी के अनुसार राजा का यह कर्त्तव्य है कि वह भूमि के कटाव आदि की समस्या का हल ढूँढे। जो कृषि योग्य नही हो उसे कृषि योग्य बनावे।[10] राजा किसानों को खेती करने के साधनों का अभाव न होने दे। उन्नत खेती के लिए उन्होने उत्तम खाद को आवश्यक बताया है। इसीलिए पशुपालन को वे खेती का आधार मानते थे। महर्षि फसल सुरक्षा के विषय मे राजा का कर्त्तव्य दर्शाते हुए लिखते है कि हानिकारक पशुओ को मारने में कुछ अपराध नहीं हो सकता यदि ये न मारे जाएँ तो इनके द्वारा खेती को बडी हानि होती है।[11] महर्षि जंगलों की सुरक्षा का दायित्व भी राजा का ही मानते हैं। महर्षि दयानद पूँजीपतियों एवं मजदूरों में आपसी प्रेम पैदा कर एक समुचित व्यवस्था के निर्माण से उनके आपसी सघर्ष को समाप्त करने का सुझाव दिया है। इस विषय में राजा का कर्त्तव्य दर्शाते हुए उन्होने लिखा है कि राजा को अपने मन मे श्रमिको के प्रति आदर भाव रखना चाहिए उस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि कोई उनका शोषण न कर सके।[12] आलस्य, प्रमाद, अकर्मण्यता को वे औद्योगिक उत्पादन मे बाधक मानते थे।

(2) वितरण की अव्यवस्था– महर्षि के अनुसार वितरण आवश्यकता एव योग्यतानुसार होना चाहिए अर्थात धर्मानुसार प्रेमपूर्वक यथायोग्य वस्तुएँ प्राप्त होनी चाहिए।

(3) उपभोग की विषमता– वितरण की अव्यवस्था से विषमता उत्पन्न होती है। राजा का कर्त्तव्य है कि वह मनुष्यों के उपभोग को सतुलित रखे और उपभोग के क्षेत्र में भारी असमानता उत्पन्न नही होने दे। सब मनुष्यों का खानपान आदि समान हो।

(4) जनसख्या का आधिक्य— जनसख्या का आधिक्य भारत की एक बडी आर्थिक समस्या है। वेदो के अनुसार बहुत सतान वालो को दु ख उठाना पडता है। इसलिए वेद यह आज्ञा देता है कि सप्तपदी (विवाह) की हुई युवती स्त्री एक ही गर्भ धारण करे।*

महर्षि वेद का प्रमाण देते हुए लिखते हैं कि सृष्टि मे जनसख्या की न्यूनतम या युद्ध होने के बाद भी स्थिति में एक दम्पति दस सन्तान तक उत्पन्न करे परन्तु सुख–शाति के समय एक ही सतान उत्पन्न करे।

(5) बेरोजगारी— बेरोजगारी वर्तमान मे विश्व की एक गभीर आर्थिक समस्या है। महर्षि दयानद के अनुसार समाज–व्यवस्था को इस प्रकार निर्मित किया जाना चाहिये जिससे बेरोजगारी उत्पन्न ही नहीं हो सके। उन्होंने शिक्षा पाठयक्रम मे औद्योगिक शिक्षा को स्थान देने पर बल दिया।[63]

आर्थिक विकास के बाधक तत्व या प्रबल शत्रु

महर्षि दयानद ने देश की आर्थिक प्रगति मे निम्न सामाजिक धार्मिक एव आर्थिक कारणों को बाधक तत्व या रूकावटे माना है–

(1) भाग्यवाद— भाग्यवाद भारत की आर्थिक प्रगति का प्रबल शत्रु है। महर्षि भाग्यवाद से उत्पन्न होने वाले आलस्य एव अकर्मण्यता को मनुष्य की प्रगति में बाधक मानते थे। उन्हीं के श्ब्दो मे – पुरूषार्थ (परिश्रम करना) प्रारब्ध (भाग्य) से बडा है। पुरूषार्थ से ही कर्मफल सचित होता है जो भाग्य को बनाते हैं अत भाग्य भरोसे न बैठकर सदैव पुरुषार्थ करना चाहिए।[64]

(2) धर्मभीरूता— जब धर्म का अर्थ बदल कर अज्ञान के कारण पाखण्ड अधविश्वास मत मजहब आडम्बर और सम्प्रदाय मान लिया जाता है और पग–पग पर वास्तविक धर्म मानकर उससे डरा जाता है तो उसे प्रचलित अर्थ में धर्मभीरूता कहा जाता है। महर्षि की दृष्टि में धर्म वह है जो मनुष्य की लौकिक और पारलौकिक उन्नति करे। अत धर्म वास्तविक अर्थ में न तो शोषण का कारण होना चाहिए और न ही प्रगति में बाधक।

(3) साम्प्रदायिकता— धर्म को स्वार्थ एव सकुचित रूप में प्रयोग करना ही साम्प्रदायिकता है। जब धर्म को न समझ कर वैयक्तिक या समूह विशेष के स्वार्थ को लेकर धर्म के नाम पर उन्माद मे लोग एक दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं तब धर्म टुकडे–टुकडे होकर अनेक धर्म अथवा विभिन्न सम्प्रदाय के रूप में जाना जाने लगता है। साम्प्रदायिक दगों से प्रतिवर्ष करोडों रूपयों की सम्पत्ति नष्ट होने से सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पडता है। महर्षि के अनुसार वेद धर्म का मूल है। धर्म क्षमा अस्तेय विद्या सत्य आदि धर्म के दस लक्षण है जो मानव–मात्र की उन्नति के कारण हैं।

* सनाअत्र युवतय सयोवीरेक गर्भन्धिरे सप्त वाणी । उद्धृत वै स पृ 600

(4) फलितज्योतिष– फलित ज्योतिष से आलस्य, प्रसाद, धर्मभीरुता, भाग्यवाद और पराश्रितता उत्पन्न होती है जो आर्थिक प्रगति में बाधा उपस्थित करती है। महर्षि गणित–ज्योतिष (ग्रह, नक्षत्र की गणना और ऋतुओं का ज्ञान आदि) को सत्य मानते थे परतु फलित ज्योतिष की परिभाषा मे जो फल है उसको झूठा मानते थे। जो धनाढ्य, दरिद्र, प्रजा राजा होते है, वे अपने कर्मो से होते हैं ग्रहो से नहीं। वेद कहता है कि मेरे दायें में कर्म है ओर बाये हाथ मे विजय है। मैं स्वर्ण का विजेता बनूँ।[85]

(5) भिक्षावृत्ति– महर्षि के अनुसार आलसी एवं निकम्मे लोग गेरूआं वस्त्र पहन कर भारत की अर्थ–व्यवस्था को कमजोर करते हैं। अत राजा को भिक्षा से जीविका चलाने वाले को दण्ड देना चाहिए या जबरदस्ती इनसे खेती आदि का काम लेना चाहिए।[86]

(6) मोक्ष की प्रबल इच्छा– प्राय लोग सतुलित धर्म को भूल कर इतना आगे बढ जाते हैं कि लौकिक उन्नति को छोडकर पारलौकिक उन्नति की चिंता करने लग जाते हैं। इस अनावश्यक और असतुलित मोक्ष इच्छा से व्यक्ति आलसी प्रमादी बन कर श्रम से जी चुराने लग जाता है जिससे आर्थिक प्रगति प्रभावित होती है। महर्षि के दृष्टिकोण में वस्तुत मोक्षकामी व्यक्ति के लिए भी सासारिक इति कर्त्तव्यों से विमुख होने की कोई आवश्यकता नहीं होती। वह पारलौकिक उन्नति को अपना प्रमुख लक्ष्य बनाकर भी अभ्युदय और आर्थिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहता है।

(7) अशिक्षा एवं शिक्षा में असमानता– महर्षि के ग्रन्थों में सबको शिक्षा प्राप्त करने और उन्नति करने के समान अवसरों पर विस्तार से वर्णन मिलता है।[87]

(8) बाल विवाह– बाल विवाह एक सामाजिक कुरीति है। बाल विवाह से कम आयु में ही नव दम्पत्ति का माता–पिता बन कर पारिवारिक जिम्मेदारी पडने से आर्थिक प्रगति पर विपरीत प्रभाव पडता है। महर्षि बाल–विवाह के प्रबल विरोधी थे। वे इस पर पूर्ण पाबंदी चाहते थे।

(9) दहेज– दहेज भी एक सामाजिक कुरीति है। दहेज के कारण भारतीय परिवारों में ऋणग्रस्तता बढ रही है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव पूरे राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। महर्षि दयानंद के विचार से दहेज प्रथा स्वयंम्बर विवाह अर्थात युवती कन्या को वर चुनने की स्वतन्त्रता देने से समाप्त हो सकती है।[88]

(10) जातीय संकीर्णता (जातिवाद)– गुण, योग्यता का विचार किये बिना केवल जन्म के आधार पर लोगों को विभिन्न वर्गों में बाट देने से राष्ट्र उन लोगों से वचित रहता है जो अतिरिक्त राष्ट्रीय सम्पत्ति तथा जनकल्याण में वृद्धि करते हैं। मानव की सहज प्रवृत्ति और उसके व्यवसाय में जो सामजस्य होना चाहिए उसमें जातिप्रथा बाधक होती है। जाति–प्रथा में व्यवसाय का कोई आपसी सामजस्य नहीं है। महर्षि दयानंद के विचार में गुण एव कर्मानुसार वर्ण–व्यवस्था अथवा गुण योग्यतानुसार श्रम–विभाजन की स्थापना करना ही है।

(11) भ्रष्टाचार– भ्रष्टाचार आज की एक प्रमुख समस्या है और यह केवल कड़ी दण्ड–व्यवस्था से ही मिट सकती है। महर्षि ने इस विषय मे राजा से लगाकर मंत्री पुरोहित माता–पिता प्रजा तक की कड़ी दण्ड–व्यवस्था अपने ग्रन्थो मे दी है।[49]

(12) विवाह मृत्युभोज आदि पर अपव्यय– धन का अपव्यय भी आर्थिक प्रगति म रुकावट है। जिसके पास धन नही है वे भी ऋण लेकर विवाहो मृत्यु भोजो पर व्यय करता है। महर्षि दयानद धन के ऐसे अपव्यय का अनुचित मानते थे। दाह–संस्कार के बाद मृतक के प्रति कोई कर्तव्य कर्म शेष नही रहता। उन्होने धनी व्यक्तियो को यह सलाह दी है कि व्यर्थ के धार्मिक कर्मकाण्डो और रूढि–रिवाजो पर धन का अपव्यय न करे अपितु उस धन स उद्योग कला– कौशल का विस्तार करे ताकि देश आर्थिक समृद्धि प्राप्त कर सके।[50]

(13) आर्थिक विषमता–आर्थिक विषमता से तात्पर्य आय मे असमानता से है। इसके कारण आवश्यकता एव गुण–योग्यता के अनुसार उत्पादित वस्तुओ और धन का वितरण ठीक नहीं हो पाता। महर्षि ने आर्थिक विषमता को नियन्त्रित करने के लिए निम्न उपाय अपने ग्रंथों मे बतलाये हैं– (i)आलस्य प्रमाद धर्मभीरुता और भाग्यवादिता आदि को समाप्त किया जावे। (ii) पूँजीवादी समाज–व्यवस्था का अत और वर्णाश्रम–समाज तथा अर्थव्यवस्था की पुनर्स्थापना करना। (iii) आय और व्यय मे एक और दस (1 10) का अनुपात निर्धारित करना।

महर्षि दयानद के आर्थिक विचारो की प्रासगिकता

आज सम्पूर्ण विश्व में सर्वत्र धर्म विहीन अर्थव्यवस्था दृष्टिगोचर हो रही है जिसमें अर्थ प्राप्ति के साधनो की पवित्रता का कोई स्थान नही है। व्यक्ति अत्यधिक सुविधा भोगी और स्वार्थी होने के कारण अपनी ही आर्थिक उन्नति के बीच एक बड़ा अतर आ गया है। संसार के अनेक देशों म इसका उपचार रक्तक्रांतियों से हुआ और हो रहा है तथा भविष्य में कभी भी हो सकता है। यदि हम महर्षि दयानद द्वारा विवेचित वर्णाश्रम पर आधारित धर्मयुक्त अर्थव्यवस्था और उसका आर्थिक नियोजन देशकाल की अवस्था के अनुसार क्रियान्वित करे तो रक्तपात रक्तक्रांतियो और केवल भौतिकवाद आधारित अनेक राजनीतिक अर्थशास्त्रीय वादो का आश्रय लिए बिना ही देश में न्यायपूर्ण आर्थिक समानता स्थापित कर सकते हैं और राष्ट्र समृद्ध हो सकता है।

स्वामी दयानद की आर्थिक दर्शन उनकी राष्ट्रीय एव राजनीतिक विचारधारा से ही सम्बद्ध रहा था। उनकी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि यूरोप मे जिस विज्ञान और तकनीक का प्रचलन हो रहा है उसे स्वदेशवासी भी सीखे उसका प्रशिक्षण प्राप्त करे तत्पश्चात स्वदेश लौटकर उस ज्ञान के द्वारा देश को आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बनाये। उन्होने किसान वर्ग को बहुत ऊँचा स्थान एव सम्मान दिया था। कुटीर एव ग्रामीण अर्थतंत्र के विकास के भी वे प्रबल पक्षधर थे। गोवध विरोध का जो महा अभियान उन्होने चलाया

था उसके पीछे मात्र धार्मिक भावावेश ही नहीं था बल्कि गो रक्षा के प्रश्न को वे विशुद्ध आर्थिक दृष्टि से देखते थे। वर्णाश्रम–व्यवस्था स्वीकार कर लेने से बेरोजगारी नाम की कोई समस्या नही होती क्योंकि सभी वर्णो और आश्रमी अपने–अपने नियत कार्यो मे लगे होने से बेरोजगारी की समस्या ही उत्पन्न नही होगी।

महर्षि दयानद ने भारतीयो को यह समझाने का प्रयत्न किया कि विदेशी साम्राज्य के अधीन उनका कोई गौरवमय अतीत नही है। ऐसे समय में दयानद ने वेदो मे सचित ज्ञान और दर्शन की सर्वोच्चता का उद्घोष करके भारतीयो मे विद्यमान आत्महीनता का प्रतिकार किया तथा भारतीय अस्मिता को पुनर्प्रतिष्ठित किया। आधुनिक भारत मे स्वामी दयानद का सामाजिक, राजनीतिक एव आर्थिक चितन मे योगदान का महत्व असदिग्ध है। उनके आर्थिक विचार मनुष्य, समाज और राष्ट्र की आर्थिक उन्नति के परिचायक है जो किसी राष्ट्र विशेष की आर्थिक उन्नति के परिचायक है जो किसी राष्ट्र विशेष (भारत) समाज विशेष और मनुष्य समुदाय विशेष से सम्बधित होते हुए भी सम्पूर्ण विश्व के साथ उनका तारतम्य दिखता है क्योकि वे वेदों के प्रकाण्ड विद्वान थे। वेद उनकी दृष्टि मे स्वत प्रमाण और समस्त मानव जाति के लिए ईश्वर प्रदत्त ज्ञान है। इसलिए उनका चितन समस्त मानव जाति और सम्पूर्ण विश्व के लिए था। प्रचलित अर्थ मे कोई उन्हे अर्थशास्त्री कहे या न कहे पर राष्ट्रोन्नति के प्रसग मे उन्होने अर्थव्यवस्था के विषय मे जितना कहा, किया और लिखा वह उनको महान् आर्थिक चितक कहलाने मे पर्याप्त है।

संदर्भ

1 ऋग्वेद भाष्य 1 9 5 तथा यजुर्वेद भाष्य (हिन्दी) महर्षि दयानन्द आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली, 23 65
2 सत्यार्थ प्रकाश, एका सम पृ 259
3 सत्यार्थ प्रकाश, दशम समुल्लास पृ 166–167
4 सत्यार्थ प्रकाश,, दशम समु 167
5 सत्यार्थ प्रकाश दशम समु 141
6 सध्या– समर्पणम्
7 सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समु पृ 65
8 स्वमन्तव्या सत्यार्थ प्रकाश पृ 564
9 ऋग्वेदभाष्य सप्तम समु पृ 7 4 7
10 ऋग्वेदभाष्य 1 142 12
11 सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समु पृ 112
12 स्वमन्तव्या– सत्यार्थ प्रकाश पृ 564
13 गोकरुणानिधि पृ 404 (दयानद लघु–ग्रन्थ सग्रह)

14 सत्यार्थ प्रकाश दशम समु पृ 251
15 यजुर्वेद भाष्य 18 12 2 34 18 14 18 9 22 23 3 20
16 ऋग्वेद भाष्य 1 15 9
17 सस्कार विधि पृ 245–246 ऋग्वेद भाष्य 7 55 5–6
18 यजुर्वेद भाष्य 12 81 20 59
19 ऋग्वेद भाष्य 5 37 4
20 ऋग्वेद भाष्य 3 40 4
21 ऋग्वेद भाष्य 1 176 4
22 सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समु पृ 84 103
23 सत्यार्थ प्रकाश षष्ट समु पृ 142
24 सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समु पृ 84
25 ऋग्वेद भाष्य 1 121 7
26 गौकरुणानिधि पृ 404–406
27 गौकरुणानिधि पृ 413
28 यजुर्वेद भाष्य 13 47–52
29 यजुर्वेद भाष्य 13 47
30 सत्यार्थ प्रकाश एका समु पृ 269
31 गोकरुणानिधि पृ 402 सत्यार्थ प्रकाश एका समु पृ 269
32 यजु भाष्य 12 71 12 70 अथर्वेद 3 17 8
33 यजुर्वेद भाष्य 16 37 38
34 यजुर्वेद भाष्य 13 51
35 यजुर्वेद भाष्य 16 20 ऋग्वेद भाष्य 3 53 20 5 5 10 3 34 10
36 *अरण्याना पतये नम ।* ऋग्वेद भाष्य 16 20
37 ऋग्वेद भाष्य 3 54 20 3 57 6
38 यजु भाष्य 18 71
39 नय के पु द स पृ 127
40 यजु भाष्य 30 6 30 7 30 17 30 19 30 21 16 27 4 9
41 सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समु पृ 84
42 सत्यार्थ प्रकाश दशम समु पृ 249
43 ऋग्वेद भाष्य 1 122 14
44 ऋग्वेद भाष्य पृ 236
45 ऋग्वेद भाष्य 6 51 16
46 यजु द भा 17 52 16 26 34
47 स प्र षष्ठ समु पृ 154 163

48 स प्र पृ 153
49 ऋ द भा 4 1 10 4 54 1, 3 36 10
50 यजु द भा 6 30
51 स प्र पृष्ठ समु पृ 115
52 ऋग्वेद भाष्य 7 8 6
53 स प्र पृष्ठ समु पृ 153
54 ऋ द भा 3 37 10
55 सत्यार्थ प्रकाश, प्रथम सस्करण पृ 384–385
56 स प्र पृष्ठ समु पृ 162
57 मनुस्मृति 398–401
58 स प्र पृष्ठ समु पृ 159–160
59 स प्र पृष्ठ समु पृ 50 154–155
60 सत्यार्थ प्रकाश, पृष्ठ समु पृ 144 ऋ द भा 6 685, यजु द भा 17 51
61 ऋ. द स के प और वि. पृ. 632,
62. ऋ. पृ 719, तथा सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ समु, पृ 152
63 ऋ द स के प और वि., पृ. 638 797–798
64 यजुर्वेद भाष्य, 33 11
65 यजुर्वेद भाष्य, 9 17
66 सत्यार्थ प्रकाश, पृष्ठ समु पृ 153
67. सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्थ समु पृ 85
68 सत्यार्थ प्रकाश, षष्ठ समु पृ 153
69 सत्यार्थ प्रकाश, पृष्ठ समु पृ 129–130, 142,145
70 सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्थ समु पृ 85
71 सत्यार्थ प्रकाश, पचम समु पृ 115–122
72 मनु स्मृति 7 130–137
73 सत्यार्थ प्रकाश, स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश, पृ. 564
74 ऋग्वेद भाष्यम्, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, 7 4 7
75 सत्यार्थ प्रकाश, षृष्ठ समु पृ 143–144
76 सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समु पृ 37,71
77 सत्यार्थ प्रकाश, पृष्ठ समु पृ 153 ऋग्वेद भाष्य, 1 140 7 10 117 1, यजु माष्य 16 17
78 सत्यार्थ प्रकाश दशम समु पृ 252, यजु भाष्य 13 49, 16 47, 22.5, 25 26
79 नवजागरण के पुरोधा–दयानद सरस्वती डॉ भवानी लाल भारतीय, वैदिक पुस्तकालय परोपकारिणी सभा, अजमेर पृ 486

80 ऋ द भाष्य1 1605 यजु द भा 1271
81 यजु द भा 1351 सत्यार्थ प्रकाश दशम समु पृ 253
82 यजु द भा 196
83 सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समु पृ 65–66
84 सत्यार्थ प्रकाश स्वमन्तव्या पृ 565 ऋ द भा 5345 54114 11104 यजु द भा 2072 2318
85 सत्यार्थ प्रकाश द्वितीय समु पृ 31 ग्यारहवा समु पृ 321–323
86 पूना प्रवचन (चौथ प्रवचन) पृ 23 तथा यजु द भा 3018
87 सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समु पृ 37 65 71
88 सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समु पृ 77 यजु द भा 1864
89 सत्यार्थ प्रकाश षष्ठ समु पृ 157–162
90 सत्यार्थ प्रकाश प्रथम सस्करण चतुर्थ समु पृ 110

प्रश्न

1 स्वामी दयानद सरस्वती की प्रमुख कृतियो के नाम लिखिए।

2 स्वामी दयानद के अनुसार स्वदेशी का अभिप्राय बताइये।

3 स्वामी दयानद के अनुसार पशुपालन का महत्व बताइये।

4 स्वामी दयानद के आर्थिक चितन पर एक लेख लिखिए।

5 दयानद के चितन मे राष्ट्रवादी तत्वो का विवेचन कीजिए।

6 स्वामी दयानद के उत्पादन उपभोग विनिमय एव वितरण सम्बन्धी विचारों की विवेचना कीजिए।

7 राजस्व के सम्बन्ध मे दयानद के विचारो का मूल्याकन कीजिए।

8 दयानद के अर्थव्यवस्था अथवा वर्णाश्रम व्यवस्था सम्बधी विचारो पर एक लेख लिखिए।

9 देश की वर्तमान आर्थिक समस्याओ के समाधान मे दयानद के विचार किस प्रकार सहायक हो सकते है ? विवेचना कीजिए।

10 महर्षि दयानद के विचार मे भारत के आर्थिक उन्नति मे कौन–कौन से बाधक तत्व है ? उन बाधक तत्वो को दूर करने के लिए उन्होने क्या उपाय सुझाए हैं ?



11

दादा भाई नौरोजी
(Dada Bhai Naoroji 1825-1917)

परिचय

भारत के महान बुजुर्ग (Grand old man of India) के नाम से विख्यात दादा भाई नौरोजी का जन्म 4 सितम्बर, 1825 को बम्बई के एक निर्धन परिवार में हुआ। उनके पिता नौरोजी पालन जी दार्दी (Naoroji Palanji Dardi) एक गरीब पारसी पडित थे। पिताजी के स्वर्गवास के कारण उनके लालन-पालन व शिक्षा के दायित्व का निर्वाह उनकी माताजी ने किया। प्रारम्भिक शिक्षा नेटिव एजूकेशन सोसायटी (Native Education Society) द्वारा बम्बई मे स्थापित एक ऐसे विद्यालय मे हुई जहाँ नि शुल्क शिक्षा प्रदान की जाती थी। इसने नौरोजी के हृदय मे नि शुल्क शिक्षा पद्धति को स्थान प्रदान किया।

कुशाग्र बुद्धि के धनी नौरोजी की उच्च शिक्षा बबई के एलफिन्सटन कॉलेज में हुई। बाद में ये एलफिन्सटन कॉलेज में ही प्रोफेसर नियुक्त हुए। इस स्थान को प्राप्त करने वाले वे प्रथम भारतीय थे। इतना ही नहीं ब्रिटिश ससद हेतु चुने गये (1893) प्रथम भारतीय थे। नौरोजी शाही आयोग (Royal commission) के भी प्रथम भारतीय सदस्य थे। वे तीन बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष भी रहे।

नौरोजी का जीवन व क्रियाकलाप अपने आप मे ही भारतीय राष्ट्रवाद का इतिहास है। नौरोजी देश की तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक स्थिति को देखकर अत्यधिक दुःखी हुए व अपना समस्त जीवन देश सेवा को अर्पित कर दिया। नौरोजी ने कई महत्वपूर्ण ग्रन्थो की रचना की। उनकी रचनाओ मे प्रमुख Poverty and un-British Rule in India (1901) है। इस पुस्तक मे नौरोजी ने भारतीय अर्थव्यवस्था पर ब्रिटिश शासन के प्रभाव का विश्लेषण किया व तत्कालीन दयनीय आर्थिक स्थिति हेतु उसे उत्तरदायी ठहराया।

नौरोजी ने निम्न आर्थिक विषयो पर अपने विचार व्यक्त किये

1. निर्धनता एवं उसका मापन (Poverty and its Measurement)

जहाँ अर्थशास्त्र के जनक एडम स्मिथ ने धन के सम्बन्ध मे An Enquiry into the Nature and Causes of the Wealth of Nations पुस्तक लिखी ठीक उसके विपरीत नौरोजी ने धन के स्थान पर भारतीय निर्धनता के कारण व प्रकृति को जानना

चाहा। नौरोजी ने अपनी पुस्तक Poverty and Un British Rule in India मे ब्रिटिश शासन काल मे भारत मे व्याप्त गरीबी का बहुत ही अच्छे ढग से विश्लेषण किया है। दादा भाई नौरोजी भारत मे व्याप्त भयकर निर्धनता के अस्तित्व का उद्घोष करने वाले प्रथम भारतीय चितक थे। उन्होने बताया कि भारत की निर्धनता के कारण ही भारतीयो का जीवन स्तर निम्न है। उन्होने यह पाया कि अपनी मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए भी उनके पास साधन नही है। प्रारम्भ मे नौरोजी ने एक निबन्ध Poverty in India मे यह व्यक्त किया था कि भारत गभीर रूप से गरीब है व दरिद्रता मे दबा हुआ है।[1] दादा भाई नौरोजी ने आजीवन भारत की दरिद्रता पर अपने विचार व्यक्त किये। आयु मे वृद्धि के साथ–साथ नोरोजी के आर्थिक विचारो मे उदारता के स्थान पर उग्रता ही देखने को मिलती है। 1881 मे भारत की आर्थिक स्थिति को दुर्भाग्य पूर्ण हृदय विदारक व खून खौलाने वाली बताया। उन्होने दु खी मन से कहा 'इस समय जहाँ तक अग्रेजी भारत का सबध है उसमे आज प्राच्य वैभव की बात आलकारिक वर्णन अथवा एक स्वप्न के अतिरिक्त कुछ भी नही है।[2]

दादा भाई नौरोजी ने भारतीय गुलामी की तुलना अमेरिका की दास प्रथा से की। उन्होने बताया की भारतीयो की तुलना मे अमेरिकी दास कही अधिक बेहतर स्थिति मे है। नौरोजी के शब्दो मे 'सत्य यह है कि भारतवासी एक प्रकार के दास हैं। उनकी दशा अमेरिकी दासो से भी बुरी है क्योकि अमरीकी दासो के स्वामी अपनी सपत्ति के रूप मे अपने दासो की देखभाल तो करते है।[3] नौरोजी प्रथम भारतीय थे जिन्होने आय के आधार पर निर्धनता का स्तर ज्ञात किया। उन्होने 1867–68 में ब्रिटिश भारत की 19 करोड जनसख्या की आय 3 4 अरब रु निकाली।[4] जिसके आधार पर प्रति व्यक्ति आया मात्र 20 रु आती है। इस ओसत प्रति व्यक्ति आय की गणना सयुक्त रूप से धनी और निर्धन भारत दोनो के लिए की गयी। धनी भारत से उनका तात्पर्य उन ब्रिटिश लोगो से था जो भारत मे उस काल मे निवास कर रहे थे तथा गरीब भारत से मतलब उन लोगो से था जो भारतीय मूल के थे। इसके अतिरिक्त प्रति व्यक्ति आय की तुलना उन्होने जेल मे रहे केदियो पर होने वाले व्यय से भी की। उनके विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि प्रति जेल कैदी पर होने वाला व्यय औसत आय की तुलना मे बहुत अधिक है। सारणी–1 मे दिया गया प्रति जेल कैदी भोजन वस्त्र व्यय विभिन्न प्रान्तो के 1867–68 के सरकारी प्रतिवेदनो पर आधारित है।

सारणी–1

1867–68 मे जेल केदिया के भोजन व वस्त्र पर होने वाला औसत व्यय

प्रान्त	प्रति जेल कैदी व्यय
सेट्रल प्रोविसेज	31 रु
——	27 रु 3 आने

नार्थ–वेस्ट प्रोविसेज	21 रु. 13 आने
बगाल	31 रु 11 आने
मद्रास	53 रु [redacted] आने
बम्बई	47 रु 7 आने

उपर्युक्त तालिका के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि एक जेल कैदी का जीवन स्तर औसत भारतीय के जीवन स्तर से श्रेष्ठ है।

2. राष्ट्रीय आय (National Income)

दादा भाई नौरोजी प्रथम भारतीय आर्थिक विचारक थे जिन्होने भारत मे निर्धनता का मात्रात्मक मापन हेतु राष्ट्रीय आय की गणना की। दादा भाई नौरोजी द्वारा प्रस्तुत राष्ट्रीय आय की सगणना केवल अनुमान मात्र नहीं है बल्कि उनकी सगणना एक निश्चित वैज्ञानिक विधि पर आधारित है। उन्होंने वस्तुत उत्पादन सगणना विधि का प्रयोग किया।[6] *उन्होने कुल वार्षिक कृषि उत्पादन मे खानो, कारखानो, मछली उद्योग के अनुमानित उत्पादन के साथ–साथ अल्प मात्रा मे विदेशी व्यापार के लाभ तथा दैनिक उत्पादो को शामिल करते हुए 1867–68 की राष्ट्रीय आय की गणना की।* कुल कृषि उत्पादन उन्होने प्रत्येक जिले के जोते गये क्षेत्र को प्रति हैक्टेयर उत्पादन से गुणा करके ज्ञात किया। कुल औद्योगिक उत्पादन को प्रत्येक प्रान्त से प्रतिदर्श (Sample) लेकर ज्ञात किया यद्यपि ब्रिटिश सरकार समर्थक पाश्चात्य विवेचको ने नौरोजी द्वारा प्रयुक्त विधि की आलोचना की लेकिन प्रो वी के आर वी राव ने उनका समर्थन किया।

दादा भाई नौरोजी ने बताया कि 1867–68 मे 17 करोड भारतीयो की कुल आय मात्र 3.4 अरब रु थी। इस आधार पर प्रति व्यक्ति आय मात्र 20 रु वार्षिक निकलती है जो कि भारत की निर्धनता का प्रतीक है। इनता ही नही उन्होने यह भी गणना की कि औसत भारतीय को अपने जीवन निर्वाह हेतु न्यूनतम 34 रु वार्षिक आवश्यक, है। उन्होने बताया कि 20 रु तो औसत आय है। सामान्य भारतीय की आय तो इसकी तुलना मे बहुत कम है अत भारत की निर्धनता की व्यापकता व भयकरता दोनों का अनुमान इन समको से लगाया जा सकता है। उनके द्वारा प्रदत्त 20 रु का समक तो भारतीय *स्वाधीनता आदोलन का एक सगठन मत्र सिद्ध हुआ।*

3. निकासी सिद्धान्त (Drain theory)

दादा भाई नौरोजी ने भारत मे व्याप्त निर्धनता के कारणो की जब परीक्षा की तो पाया कि निर्धनता का मुख्य कारण आर्थिक निकासी है। निकासी सिद्धान्त नौरोजी की सबसे महत्वपूर्ण देन है। *निकासी सिद्धान्त का तात्पर्य भारत की राष्ट्रीय सपत्ति अथवा कुल वार्षिक उत्पादन का एक भाग ब्रिटेन को भेजा जाना है जिसके बदले मे भारत को कोई समुचित आर्थिक अथवा भौतिक लाभ नहीं मिलता।* निकासी सिद्धान्त वस्तुत उन तरीको

की व्याख्या करता है जिनके फलस्वरूप भारतीय संसाधनों का उपयोग ब्रिटिश हितों की पूर्ति हेतु किया गया। यह उन शर्तों की विवेचना करता है जिनसे कि भारतीय संसाधन स्थायी रूप से ब्रिटेन को हस्तांतरित किये गये। **दादा भाई नौरोजी प्रथम भारतीय राष्ट्रवादी आर्थिक विचारक थे जिन्होंने निकासी के प्रति भारतीयों को सचेत किया।** उन्होंने बताया कि ब्रिटिश शासन की लोकोपकारी प्रवृत्ति की बात करना कल्पित कहानी के सिवाय कुछ नही है। इस शासन की सही प्रवृत्ति तो देशवासियों का रक्त चूसना है।

निकासी की मात्रा (Quantum of Drain)

दादा भाई नौरोजी ने सर्वप्रथम निकासी सम्बंधी गणना प्रस्तुत की। अपने समालोचकों को संतुष्ट करने हेतु उन्होंने गणना थोड़े जटिल रूप में प्रस्तुत की। 1835 से लेकर 1872 तक की निकासी की मात्रा रेलवे के प्रदत्त ब्याज को निकालकर सारणी 2 से स्पष्ट है–[7]

सारणी – 2

भारत से आर्थिक निकासी

वर्ष	वार्षिक औसत (लाख पौंड में)
1835–39	53 47
1840–44	59 30
1845–49	77 60
1850–54	74 58
1855–59	77 30
1860–64	173 00
1865–69	246 00
1870–72	274 00

1883 से 92 तक की अवधि मे निकासी की कुल मात्रा उन्होने कुल 359 करोड रु बतायी। उन्होने बताया कि सरकारी ऋण पर वसूल की गयी 71 करोड रु की ब्याज राशि को यदि हम निकाल भी दें तो 288 करोड रु की निकासी तो निश्चित ही है।[8] 1905 मे उन्होने घोषणा की कि लगभग 3 करोड 40 लाख पौंड का अथवा 515 करोड रु के मूल्य के सामान की प्रतिवर्ष देश से निकासी हो रही है।[9]

निकासी के तरीके (Methods of Drain)

1857 मे भारत का शासन सीधे ब्रिटिश नियंत्रण मे आ गया। इस शासन को बनाए रखने के लिए भारी नागरिक प्रशासन की व्यवस्था की गयी साथ ही सेना को भी मजबूत बनाया गया। सभी प्रकार के प्रभावी नियंत्रण हेतु आधारभूत ढाचे का विशेष रूप से रेलवे का विकास किया गया। इस सब सुविधाओं के ब्रिटिश अधिकार मे होने के कारण भारत

से निकासी सभव हो सकी। 2 मई 1867 को लदन मे हुई ईस्ट इडिया एसोसियेशन (East India Association) की एक बैठक के समक्ष पढे गये अपने लेख – England's that to India – मे इस धारणा को प्रस्तुत किया कि ब्रिटेन भारत मे अपने शासन की कीमत के रूप मे उस देश की संपदा को उस देश से छीन रहा है। भारत मे वसूल किये गये कुल राजस्व का लगभग चौथाई भाग देश से बाहर चला जाता है व ब्रिटिश ससाधनों मे जुड़ जाता है। ब्रिटिश सरकार ने भारत के आर्थिक शोषण हेतु प्रत्यक्ष व परोक्ष सभी विधियो को काम मे लिया। निकासी के प्रमुख तरीके निम्न प्रकार हैं–

(i) हानिप्रद निर्यात (Unequited Exports)

संपूर्ण ब्रिटिश काल मे भारत के निर्यात आयातो की तुलना में बहुत अधिक रहे। विदेशी व्यापार सतुलन सदैव भारत के पक्ष मे रहा। लेकिन फिर भी भारत मे निर्यात के सदर्भ मे नौरोजी ने जो निष्कर्ष प्रस्तुत किये वे चौकाने वाले थे। उन्होने अपनी गणनाओ द्वारा बताया कि 1883 से 1892 के मध्य कुल शुद्ध निकासी की मात्रा 288 करोड थी जिसमें से 118 करोड रु की राशि विदेशी व्यापार के लाभो से अर्जित आय थी। यह अपने आप में एक मौलिक उदाहरण है कि जिस देश के निर्यात आयातो की तुलना में अधिक हो और उसके बदले देश को हानि वहन करनी पडे। इसलिए हानिप्रद निर्यात शब्द का यहाँ प्रयोग किया गया है। यह हानिप्रद निर्यात जैसे कि ऊपर दिये गये तथ्यो से स्पष्ट है भारत से आर्थिक निकासी का मुख्य स्रोत था।

(ii) ब्रिटिश पूँजी का भारत में निवेश (Investment of British Capital in India)–ब्रिटेन प्रतिवर्ष बडी मात्रा में भारत में पूँजी का निवेश करता था और उस निवेश पर प्राप्त होने वाले लाभ भारत मे विनियोजित नहीं किये जाते थे भारत में इस निवेश का प्रारभ ईस्ट इडिया कपनी से हुआ। निवेश हेतु पूँजी मूलत भारतीय माल के लूट खसोट से ही प्राप्त की गयी। इस निवेश से प्राप्त होने वाले लाभ विनियोजित पूँजी पर ऊँची दर से ब्याज आदि सभी प्रतिवर्ष नियमित रूप से ब्रिटेन को भेजे जाते थे। ये निवेश मुख्यत उन क्षेत्रो में किये गये जिनसे प्रत्यक्षत या परोक्षत ब्रिटिश हितो की पूर्ति की जा सके। ये क्षेत्र हैं–

(अ) आधारभूत सरचना मुख्यत रेले, सचार साधन, बदरगाह, जहाजरानी आदि।
(ब) निर्यात हेतु प्राथमिक उत्पाद जैसे चाय, कॉफी, रबड, बागान आदि।
(स) खनन मुख्यत कोयले व सोने का खनन व पैट्रोल उत्पादन।
(द) सेवा क्षेत्र मुख्यत बैकिंग, वित्त, बीमा आदि।

(iii) ब्रिटेन को निजी प्रेषण (Private Remittances)

ब्रिटेन को धन का निजी प्रेषण भी आर्थिक निकासी का मुख्य स्रोत था। दादा भाई नौरोजी ने इस प्रेषण को एक करोड पौंड प्रतिवर्ष ज्ञात किया लेकिन उन्ही के अनुसार

की व्याख्या करता है जिनके फलस्वरूप भारतीय ससाधनों का उपयोग ब्रिटिश हितों की पूर्ति हेतु किया गया। यह उन स्रातो की विवेचना करता है जिनसे कि भारतीय ससाधन स्थायी रूप से ब्रिटेन को हस्तातरित किये गये। **दादा भाई नौरोजी प्रथम भारतीय राष्ट्रवादी आर्थिक विचारक थे जिन्होंने निकासी के प्रति भारतीयों को सचेत किया।** *उन्होंने बताया कि ब्रिटिश शासन की लोकोपकारी प्रवृत्ति की बात करना कल्पित कहानी* के सिवाय कुछ नही है। इस शासन की सही प्रवृत्ति तो देशवासियों का रक्त चूसना है।

निकासी की मात्रा (Quantum of Drain)

दादा भाई नोरोजी ने सर्वप्रथम निकासी सबधी गणना प्रस्तुत की। अपने समालोचकों को सतुष्ट करने हेतु उन्होंने गणना थोडे जटिल रूप में प्रस्तुत की। 1835 से लेकर 1872 *तक की निकासी की मात्रा रेलवे के प्रदत्त ब्याज को निकालकर सारणी 2 से स्पष्ट है–'*

सारणी – 2

भारत से आर्थिक निकासी

वर्ष	वार्षिक औसत (लाख पौंड मे)
1835–39	53 47
1840–44	59 30
1845–49	77 60
1850–54	74 58
1855–59	77 30
1860–64	173 00
1865–69	246 00
1870–72	274 00

1883 से [illegible] तक की अवधि मे निकासी की कुल मात्रा उन्होने कुल 359 करोड रु वतायी। उन्होने बताया कि सरकारी ऋण पर वसूल की गयी 71 करोड रु की ब्याज राशि को यदि हम निकाल भी दें तो 288 करोड रु की निकासी तो निश्चित ही है।[8] 1905 *मे उन्होने घोषणा की कि लगभग 3 करोड 40 लाख पौंड का अथवा 515 करोड रु के* मूल्य के सामान की प्रतिवर्ष देश से निकासी हो रही है।[9]

निकासी के तरीके (Methods of Drain)

1857 म भारत का शासन सीधे ब्रिटिश नियत्रण मे आ गया। इस शासन को बनाए रखने क लिए भारी नागरिक प्रशासन की व्यवस्था की गयी साथ ही सेना को भी मजबूत बनाया गया। सभी प्रकार के प्रभावी नियत्रण हेतु आधारभूत ढाचे का विशेष रूप से रेलवे का विकास किया गया। इन सब सुविधाआ के ब्रिटिश अधिकार मे होने के कारण भारत

से निकासी सभव हो सकी। 2 मई 1867 को लदन मे हुई ईस्ट इडिया एसोसियेशन (East India Association) की एक बैठक के समक्ष पढे गये अपने लेख – England's that to India – मे इस धारणा को प्रस्तुत किया कि ब्रिटेन भारत मे अपने शासन की कीमत के रूप मे उस देश की संपदा को उस देश से छीन रहा है। भारत मे वसूल किये गये कुल राजस्व का लगभग चौथाई भाग देश से बाहर चला जाता है व ब्रिटिश ससाधनो मे जुड जाता है। ब्रिटिश सरकार ने भारत के आर्थिक शोषण हेतु प्रत्यक्ष व परोक्ष सभी विधियो को काम में लिया। निकासी के प्रमुख तरीके निम्न प्रकार हैं–

(i) हानिप्रद निर्यात (Unequited Exports)

सपूर्ण ब्रिटिश काल में भारत के निर्यात आयातो की तुलना मे बहुत अधिक रहे। विदेशी व्यापार सतुलन सदैव भारत के पक्ष में रहा। लेकिन फिर भी भारत मे निर्यात के सदर्भ मे नौरोजी ने जो निष्कर्ष प्रस्तुत किये वे चौंकाने वाले थे। उन्होने अपनी गणनाओ द्वारा बताया कि 1883 से 1892 के मध्य कुल शुद्ध निकासी की मात्रा 288 करोड थी *जिसमें से 118 करोड रु की राशि विदेशी व्यापार के लाभो से अर्जित आय थी। यह अपने* आप में एक मौलिक उदाहरण है कि जिस देश के निर्यात आयातों की तुलना मे अधिक हों और उसके बदले देश को हानि वहन करनी पडे। इसलिए हानिप्रद निर्यात *शब्द का यहाँ प्रयोग किया गया है। यह हानिप्रद निर्यात जैसे कि ऊपर दिये गये तथ्यो से स्पष्ट है भारत से आर्थिक निकासी का मुख्य स्रोत था।*

(ii) ब्रिटिश पूँजी का भारत में निवेश (Investment of British Capital in India)–*ब्रिटेन प्रतिवर्ष बडी मात्रा मे भारत में पूँजी का निवेश करता था और उस निवेश पर प्राप्त होने वाले लाभ भारत मे विनियोजित नहीं किये जाते थे भारत में इस निवेश* का प्रारभ ईस्ट इडिया कपनी से हुआ। निवेश हेतु पूँजी मूलत भारतीय माल के लूट खसोट से ही प्राप्त की गयी। इस निवेश से प्राप्त होने वाले लाभ विनियोजित पूँजी पर ऊँची दर से ब्याज आदि सभी प्रतिवर्ष नियमित रूप से ब्रिटेन को भेजे जाते थे। ये निवेश *मुख्यत उन क्षेत्रो मे किये गये जिनसे प्रत्यक्षत या परोक्षत ब्रिटिश हितो की पूर्ति की* जा सके। ये क्षेत्र हैं–

(अ) आधारभूत सरचना मुख्यत रेले, सचार साधन, बदरगाह, जहाजरानी आदि।
(ब) निर्यात हेतु प्राथमिक उत्पाद जैसे चाय, कॉफी, रबड, बागान आदि।
(स) खनन मुख्यत कोयले व सोने का खनन व पैट्रोल उत्पादन।
(द) सेवा क्षेत्र मुख्यत बैंकिग, वित्त, बीमा आदि।

(iii) ब्रिटेन को निजी प्रेषण (Private Remittances)

ब्रिटेन को धन का निजी प्रेषण भी आर्थिक निकासी का मुख्य स्रोत था। दादा भाई नौरोजी ने इस प्रेषण को एक करोड पौंड प्रतिवर्ष ज्ञात किया लेकिन उन्ही के अनुसार

यह मात्रा और अधिक होनी चाहिए। ब्रिटिश नागरिको द्वारा यह निजी प्रेषण निम्न प्रकार किया जाता था–

(अ) तैयार वस्तुएँ जैसे बिस्कुट बीयर आदि के क्रय हेतु।

(ब) ब्रिटिश निर्मित वस्तुओ व भारत मे ही क्रय हेतु।

(स) स्वय के बाहर रह रहे परिवारो के भरण–पोषण हेतु।

(द) विदेशो मे निवेश के लिए व्यक्तिगत बचतो का उपयोग।

(य) प्रारम्भ मे ईस्ट इण्डिया कपनी व 1857 के बाद मे ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्मित भडारो की खरीद हेतु।

4 ब्रिटिश शासन की कीमत के रूप मे प्रत्यक्ष नागरिक व सैन्य व्यय (Direct Civil and Military Expenditure as a Price of British Rule)

भारत पर आधिपत्य बनाए रखने के लिए ब्रिटेन ने विशाल सेना की स्थापना की जिसमे सभी कमीशन प्राप्त अधिकारी ब्रिटिश नागरिक होते थे। 1930 में पहली बार सीमित सख्या मे भारतीय कमीशन प्राप्त अधिकारी बने। नागरिक प्रशासन में उच्चाधिकारी ब्रिटिश नागरिक ही होते थे। भारतीयो की तुलना मे ब्रिटिश नागरिको का वेतन व सुविधाएँ बहुत अधिक थी। ब्रिटिश नागरिको पर सेवाकाल मे होने वाला व्यय व सेवानिवृत्ति के बाद होने वाला व्यय दोनो ही भारतीय कोष से प्रदान किये जाते थे। भारत को गुलाम रखने के लिए ही भारत मे होने वाला सैन्य व नागरिक प्रशासन व्यय औसतन 65 प्रतिशत होता था जिसमे सैन्य व्यय 40 प्रतिशत है। नौरोजी ने इस मद को निकासी का एक प्रमुख स्रोत माना है। इस मद को क्रमबद्ध रूप मे निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–

(अ) अग्रेज सैन्य प्रशिक्षणार्थियो पर होने वाला व्यय जो बाद मे भारत मे नियुक्त किये जाते थे।

(ब) भारत मे अग्रेज सैनिक व असैनिक कर्मचारियो के वेतन व अन्य भत्ते।

(स) भारत मे नियुक्त अग्रेज कर्मचारियो के विदेश अवकाश भत्ते व यात्रा किराया आदि।

(द) भारत मे औपनिवेशिक शासन के भूतपूर्व सैनिक व असैनिक कर्मचारियो की पेशन राशि जो कि ब्रिटेन मे निवास करते थे।

(य) सेवा निवृत ब्रिटिश कर्मचारियो की पेशन जो भारत मे रहते थे।

(र) इगलैड स्थित भारतीय कार्यालय पर होने वाला व्यय।

5 सार्वजनिक ऋण व उस पर ब्याज व लाभाश (Public Debt and its Interest and Devidend)

ब्रिटिश हितो को दृष्टिगत रख पहले ईस्ट इडिया कम्पनी व 1857 के बाद ब्रिटिश सरकार सार्वजनिक ऋण लेती थी। ये ऋण ऊँची ब्याज दर पर लिये जाते थे। इन सार्वजनिक ऋणो पर प्राप्त होने वाला ब्याज व लाभाश निकासी के एक स्रोत के रूप मे ब्रिटेन पहुँचते थे।

आर्थिक निकासी को रोकने का स्व-शासन ही एक उपाय
(Political Independence is only Method of Regulating Economic Drain)

नौरोजी ने आर्थिक निकासी को भारतीय निर्धनता का मूल माना। प्रारभ में नौरोजी ने भारत के आर्थिक उत्थान व निर्धनता निवारण हेतु अंग्रेजों को यह समझाने का प्रयास किया कि निकासी में कुछ कमी करके उस धन राशि को भारत मे ही विनियोजित किया जाय। पुन उन्होंने कुछ ब्रिटिश हित मे होने वाले व्यय का भार भारत पर नही डाले जाने की बात रखी और अतत 20वी सदी का प्रारभ होते ही उन्होने निकासी रोकने का एक मात्र उपाय स्वशासन बताया। उन्होने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बनारस अधिवेशन को भेजे गये संदेश में स्पष्ट शब्दो मे कहा है "स्वशासन के बिना भारतीय चालू निकासी और उसके फलस्वरूप प्राप्त होने वाली घोर दरिद्रता, दुर्भाग्य से कभी छुटकारा नही पा सकते। किसी प्रकार से कैसे भी तसल्ली देने वाले उपाय क्यो न किए जाए , प्रशासन तंत्र मे किसी प्रकार की कैसी भी रद्दोबदल अथवा अधर इधर की हेरा फेरी क्यों न की जाय, इनसे न तो कोई लाभ हो सकता है और न ही सर्वथा कोई लाभ होगा। स्वय सरकार और स्वय प्रजा ही निकासी बद कर सकती है। भारत के दुर्भाग्य व व्यथाओ की निवृत्ति के लिए स्वशासन ही एकमात्र उपचार है।"[10]

नौरोजी के कीमत व मजदूरी संबंधी विचार (Ideas on Prices and Wages)

नौरोजी ने कीमत व मजदूरी को निकासी सिद्धान्त के सदर्भ मे ही अध्ययन किया व उसी सदर्भ मे इनकी विवेचना की। कीमतो से उनका आशय उन कीमतों से था जो कि कृषक अपनी उपज के बदले मे प्राप्त करता है। इसी प्रकार मजदूरी से उनका आशय छोटे कारीगर व कृषक मजदूर की दैनिक आय से है। नौरोजी ने बताया कि कृषि उत्पादों के निर्यात के कारण कृषि उत्पादकों को कृषि उपज का अधिक मूल्य प्राप्त होता है, परन्तु इसका भारतीय संदर्भ में कोई मतलब नहीं है। क्योकि यह निर्यात तो हानिप्रद निर्यात है जिसके कारण आर्थिक निकासी सभव होती है। नौरोजी ने बताया कि पर्याप्त जानकारी के अभाव के कारण बदरगाह क्षेत्र मे होने वाली उपज देश के भीतरी भागो में जहाँ कि इनका अभाव है, नहीं पहुँच पाती। इसीलिए इस उपज का विदेशो को निर्यात किया जाता है न कि इसलिए कि विदेशी इन्हे ऊँची कीमत प्रदान करते हैं। यदि ये कृषि उत्पादक इनका निर्यात नहीं करते हैं तो इनकी उपज नष्ट हो जाएगी। नौरोजी ने 1876 के अकाल की व्याख्या भी इसी संदर्भ मे की।

मजदूरी के सदर्भ मे भी स्थिति अच्छी नहीं थी। जहाँ मजदूरों को भुगतान वस्तु के रूप में होता था वहाँ मजदूरी स्थिर थी। जहाँ मजदूरी नकद रूप में प्रदान की जाती थी वहाँ खाद्य पदार्थों की कीमतों मे वृद्धि के कारण वास्तविक मजदूरी गिरती हुई थी। नौरोजी ने यह भी ज्ञात किया कि मजदूरी दरें असमान हैं, ये दो आने प्रतिदिन से लेकर 5 आने प्रतिदिन है। ये अन्तर नौरोजी के अनुसार निम्न कारणो से थे– (i) सार्वजनिक

कार्य परियोजनाओ का असमान वितरण (ii) पजाब की अनुकूल स्थिति (iii) अकाल व सूखा (iv) व्यावसायिक फसलो का असमान क्षेत्रीय वितरण।

6. नौरोजी के करारोपण सबधी विचार (Taxation)

ब्रिटिश सरकार की कर नीति भारतीय ससाधनो के शोषण का एक मुख्य साधन व भारतीय नागरिको से भेदभाव का एक प्रतीक थी। नौरोजी ने सिद्ध किया कि भारत एक ऐसा देश है जहा कर भार दुनियॉ मे सर्वाधिक है। भारतीय नागरिकों पर कर भार ब्रिटिश नागरिको पर कर भार की तुलना मे ढाई गुना है। इगलेड मे कर आय राष्ट्रीय आय का 8 5 प्रतिशत है जबकि भारत मे यह 22 प्रतिशत हे। इससे भी अधिक पीड़ादायक यह है कि इगलेड मे करा से जो आय प्राप्त होती है वह ब्रिटिश नागरिकों के कल्याण पर उपयोग मे लायी जाती है जबकि भारत मे समस्त कर आय या तो देश से बाहर चली जाती है या उसका उपयोग देश मे ही विदेशियो द्वारा किया जाता है।

दादा भाई नौरोजी ने करारोपण व आर्थिक निकासी के मध्य कार्यात्मक सबध स्थापित किया। उन्होने 19 वी सदी के अत मे आये दुर्भिक्ष व अकाल के लिए करारोपण को उत्तरदायी ठहराया। उन्होने बताया कि भयकर दुर्भिक्ष व भुखमरी की स्थिति में भी भारत मे बलपूर्वक कर वसूली की जाती थी। इस प्रकार के शोषण का अन्यत्र ऐसा उदाहरण नही मिलता।

7 रेलवे (Railway)

भारत मे आधारभूत ढाचा तेयार करने हेतु ब्रिटिश सरकार ने भारत मे रेलवे का एक विशाल जाल फैलाया। भारत म रेलवे के प्रारभ के साथ ही यह प्रश्न उत्पन्न हो गया कि क्या यह दश की प्रगति का प्रतीक हे या फिर भारत के आर्थिक शोषण का माध्यम। नौरोजी ने भी इस प्रश्न का मथन किया। उन्होंने रेलवे के अच्छे व बुरे दोनों पक्षों पर ध्यान दिया। लेकिन उनका निष्कर्ष रेलवे विस्तार कार्यक्रम के विपरीत ही रहा।

दादा भाई नारोजी रेलवे के लाभ जैसे सस्ती व द्रुत परिवहन व्यवस्था रोजगार के नये साधनो का विकास आर्त... व विदेशी व्यापार में वृद्धि औद्योगीकरण को प्रोत्साहन कृषि के लिए विस्तृत बाजार देश के आर्थिक विकास को नई दिशा आदि को स्वीकार किया। साथ ही नौरोजी ने कहा कि ये उपर्युक्त सभी लाभ भारत के सदर्भ में आशिक रूप से दिखायी देते हैं। धीरे–धीरे नोरोजी के विचार कठोर होते गये और उन्होंने रेलवे को भारतीय सदर्भ म लाभप्रद होने के स्थान पर हानिप्रद बताया। उन्होने बताया कि रेलवे स्वय तो आर्थिक निकासी का एक स्रोत हे ही साथ में उसने आर्थिक निकासी को तीव्रता भी प्रदान की है

दादा भाई नौरोजी ने बताया कि भारत में रेलवे का विकास विदेशी पूँजी से प्रारभ हुआ है जिस पर ऊँची दर ब्याज प्रदान करना हाता हे जो कि विदेशो को चला जाता है। इसके अतिरिक्त रलवे पर प्राप्त हाने वाला लाभाश भी चला जाता है।

रेलवे से भारतीय उद्योगो को लाभ प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि पूँजी का अभाव है। विदेशी पूँजी उन्हीं उद्योगो मे लगेगी जहाँ लाभ की मात्रा ऊँची हो व प्राप्त लाभ सरलता पूर्वक बाहर भेजे जा सकें जैसे बागान उद्योग। इन्ही सब तथ्यो को दृष्टिगत रखते हुए नौरोजी ने 1876 में सत्य ही कहा कि यहाँ रेल तथा दूसरे लोक कार्यों की व्यवस्था तो होनी चाहिए परन्तु उनका स्वाभाविक लाभ हमे पहुँचना चाहिए, अन्यथा एक भूखे व्यक्ति के समक्ष बढिया खाने के आनद की चर्चा करना व्यर्थ है।

E. अन्य आर्थिक विचार (Other Economic Ideas)

(i) नौरोजी ने अहस्तक्षेप नीति (Laissez Faire) की प्रतिष्ठित विचारधारा का प्रबल विरोध किया व भारत के विशेष सदर्भ में इसे अनुपयुक्त बताया। उन्होंने भारतीय परिस्थिति मे स्वदेशी की अवधारणा पर बल दिया।

(ii) नौरोजी ने भारत मे *मिश्रित अर्थव्यवस्था* की वकालत की उन्होने इसके अतर्गत जहाँ एक ओर आर्थिक विकास में सरकार के योगदान को स्वीकार किया वहीं दूसरी ओर निजी पूँजी व निजी उद्यमता पर भी बल दिया।

(iii) नौरोजी ने भारत से *स्वर्ण निर्यात का विरोध* किया। उन्होंने कहा कि यह स्वर्ण निर्यात व्यावसायिक स्तर पर नही किया जा रहा है इस गैर व्यावसायिक स्वर्ण निर्यात से आर्थिक निकासी हो रही है। इसी के कारण भारत मे कीमते ऊँची हैं न कि कृषि उत्पाद के अभाव के कारण इस स्वर्ण निर्यात को रोकना परम आवश्यक है।

(iv) नौरोजी ने भारत में माल्थस के जनसख्या के नियम के लागू होने का प्रबल विरोध किया। उनहोने बताया कि दुर्भिक्ष, अकाल, महामारी आदि अति जनसख्या के कारण माल्थस के नियमानुसार भारत में देखने को नही मिलते। ये तो ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत के आर्थिक शोषण के प्रतीक हैं।

(v) नौरोजी ने भारत में व्याप्त आर्थिक असमानता की ओर देशवासियों का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने इस असमानता को दो रुप में देखा–

(अ) भारतीयों व गैर भारतीयो के मध्य व्याप्त असमानता।

(ब) क्षेत्रानुसार या प्रान्तानुसार व्याप्त असमानता।

दादा भाई नौरोजी ने बताया कि भारत में दो प्रकार का भारत रहता है। एक समृद्धशाली भारत व दूसरा गरीबी का मारा भारत। समृद्धशाली भारत ब्रिटिश नागरिक व अन्य विदेशी नागरिको से है जिन्होने भारत का हर प्रकार से शोषण किया है चाहे वह शोषण सरकारी स्तर पर हो या गैर सरकारी स्तर पर। दूसरा भारत है भारतीयों का भारत जिनका रक्त चूसा जा चुका है, जिनका हर प्रकार से शोषण किया जा चुका है व शोषण किया जा रहा है। यह दूसरे प्रकार का भारत दरिद्रता से व्याप्त है व दुनिया का निर्धनतम राष्ट्र है।

क्षत्रानुसार यदि देखे तो पाएगे कि पजाब केन्द्रीय प्रात व राजपूताना आदि अन्य क्षेत्रो की तुलना म अधिक समृद्धिशाली है। पजाब की समृद्धि का कारण जहाँ एक ओर उपजाऊ भूमि है लेकिन इससे भी अधिक महत्वपूण है वहा के नागरिको का दूसरे देशों में नौकरी करना व अपनी बचता को परिवार जनो को भेजना। केन्द्र प्रान्त व राजपूताना क्षेत्र मे समृद्धि अफीम की खेती के कारण है जा कि भारत के लिए तो अभिशाप है ही साथ मे चीन के लिए भी जहा कि अफीम का निर्यात किया जाता है। इस निर्यात से होने वाली आय निकासी क रूप मे देश से बाहर चली जाती है।

(vi) नौरोजी ने शिक्षा को मानव पूजी निर्माण के रूप मे लिया और भारत मे शिक्षा के विस्तार पर बल दिया स्वय की परिस्थितियो के कारण जैसे कि प्रारभ मे ही स्पष्ट कर दिया गया है उन्होने नि शुल्क शिक्षा पर बल दिया।

(vii) नौरोजी व आर्थिक सुधार (Economic Reforms)– दादा भाई नौरोजी ने आर्थिक सुधार हेतु जा कार्यक्रम सुझाये वे मात्र आर्थिक निकासी को रोकने के उपाय ही नही थे अपितु वे ससाधनो का भारत की समृद्धि हेतु उपयोग के तरीके भी हैं। डा बी एन गागुली ने अपनी पुस्तक Dada Bhai Naoroji and the Drain Theory में इस प्रकार व्यक्त किया है।

(अ) भारत को इस बात का अधिकार दिया जाना चाहिए कि वह अपने उत्पादन का उपयाग स्वय के उपभोग व विनियोग हेतु कर सके।

(ब) सार्वजनिक ऋण पर ब्याज के भार मे कटौती की जानी चाहिए।

(स) ब्रिटिश शासन को स्वीकार करते हुए प्रशासनिक व्यय को कम करते हुए न्यूनतम स्तर पर ले जाना चाहिए।

(द) सभी यूरोपीय अधिकारियो चाहे वह इगलैंड मे कार्यरत हो या भारत में उनके वेतन पशन अन्य भत्ते आदि पर होने वाले सभी प्रकार के व्यय की एक सीमा निर्धारित की जानी चाहिए।

(य) भारत मे किये जाने वाले विनियोग हेतु प्राप्त सार्वजनिक उधार पर ब्रिटिश सरकार गारटी प्रदान कर

(र) सभी प्रकार के रोजगारो का तेजी स भारतीयकरण किया जाये। यूरोपीय नागरिको को उन्हीं सेवाओं मे नियुक्त किया जाये जहा उनकी निरपेक्ष रूप म आवश्यकता हो।

(ल) इगलैंड व भारत के मध्य वित्तीय सबध न्यायपूर्ण तरीके से परस्पर समायोजित किये जाने चाहिए जिससे राजनीतिक तनाव मे कमी की जा सके।

(व) सार्वजनिक कार्यों के लिए आवश्यक पूँजी की व्यवस्था की जाय ताकि उत्पादन वृद्धि व वितरण का मार्ग प्रशस्त हो सके।

(श) भारत की विशाल अनुपजाऊ व उपयोग मे लायी जा सकने वाली भूमि के उपयोग हेतु पूँजी व उद्यमिता को आकर्षित किया जाय।

(स) प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा हेतु एक विस्तृत राष्ट्रीय शिक्षा योजना तैयार की जाय।

दादा भाई नौरोजी के विचार समय के साथ–साथ स्वशासन की ओर बलवती होते चले गये और भारत की न केवल आर्थिक अपितु राजनीतिक समस्याओ का हल स्वशासन मे देखना प्रारभ कर दिया। ब्रिटिश सरकार के आर्थिक सुधारो की माँग की तुलना मे स्वशासन की माँग को उन्होने श्रेयस्कर समझा। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन (1906) मे उन्होने स्वशासन की स्पष्ट माग की। उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कहा कि इगलैंड की जनता को प्राप्त स्वशासन के अधिकार की भाति भारतीय जनता को स्वशासन का अधिकार प्रदान करके ही भारत की आर्थिक समस्याओ का समाधान सभव है।

योगदान—दादा भाई नौरोजी भारत मे *आर्थिक राष्ट्रवाद के जनक थे।* उन्होने भारत मे व्याप्त निर्धनता हेतु ब्रिटिश शासन को दोषी सिद्ध किया । उन्होने निकासी को दरिद्रता का मूल कारण बताया। राष्ट्रीय आय की सर्वप्रथम गणना व विवेचना की। भारत के सर्वाङ्गीण विकास हेतु मार्ग प्रशस्त किया। लेकिन फिर भी हम दादा भाई नौरोजी को राजनेता के रूप मे अधिक जानते है न कि अर्थशास्त्री के रूप मे, जिसका मूल कारण है भारतीय विश्वविद्यालयो मे भारतीय आर्थिक विचार के अध्ययन को उपेक्षित दृष्टि से देखा गया है।

संदर्भ

1 पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इडिया, पृष्ठ 1

2 उपर्युक्त, पृष्ठ 89

3 उपर्युक्त, पृष्ठ 652

4 उपर्युक्त, पृष्ठ 4–25

5 उपर्युक्त, पृष्ठ 30

6 उपर्युक्त, पृष्ठ 180–185

7 उपर्युक्त पृष्ठ 34

8 नौरोजी स्पीचेज पृष्ठ 318–21

9 उपर्युक्त, पृष्ठ 667

10 उपर्युक्त, पृष्ठ 671

11 दादाभाई नौरोजी एण्ड द ड्रेन थ्योरी, बी एन गागुली, पृष्ठ 142

प्रश्न

1 दादाभाई नौरोजी को भारत के आर्थिक राष्ट्रवाद का जनक क्यो कहाँ जाता है ?

2 नौरोजी द्वारा सुझाये गये आर्थिक सुधारो को लिखिए।

3 निकासी सिद्धात का अभिप्राय लिखिए।

4 दादा भाई नौरोजी के आर्थिक विचारो की व्याख्या कीजिए।

5 नौरोजी द्वारा प्रतिपादित आर्थिक निकासी से क्या तात्पर्य है ? उनके द्वारा आर्थिक निकासी के लिए उत्तरदायी कारणो की विवेचना कीजिए तथा सुझाये गये आर्थिक सुधारो को बताइये।

6 निर्धनता राष्ट्रीय आय कीमतो एव मजदूरी पर नौरोजी के विचारो को स्पष्ट कीजिए।

7 रेलवे एव करारोपण पर नौरोजी के विचार बताइये।



12

महादेव गोविन्द रानाडे
(Mahadev Govind Ranade 1842-1901)

परिचय

महादेव गोविन्द रानाडे का जन्म 18 जनवरी, 1842 को एक मध्यम वर्गीय परिवार मे नासिक मे हुआ। 1864 में मात्र 22 वर्ष की आयु मे बम्बई विश्वविद्यालय मे अर्थशास्त्र के प्रवक्ता नियुक्त हुए। 1867 मे कोल्हापुर राज्य मे न्यायाधीश नियुक्त हुए। रानाडे 1885 मे बम्बई विधान परिषद मे विधि सदस्य नियुक्त किये गये। 1893 मे रानाडे बम्बई उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बने।

रानाडे विभिन्न सामाजिक सुधार कार्यक्रमो से जुडे हुए थे। विधवा विवाह, प्लेग सहायता आदि मे उन्होंने उल्लेखनीय भूमिका निभायी। वे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के सस्थापक सदस्य थे। उन्होने ही गोपाल कृष्ण गोखले को सार्वजनिक जीवन मे प्रवेश हेतु प्रेरित किया। राष्ट्रपति महात्मा गाँधी पर भी रानाडे के आर्थिक विचारों का स्पष्ट प्रभाव था। भारतीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था पर अपना विचार प्रस्तुत कर भारतीय अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। रानाडे जर्मन आर्थिक विचारक फ्रेडरिक लिस्ट के आर्थिक विचारो से अत्यधिक प्रभावित थे। रानाडे का स्पष्ट मत था कि भारत की विशेष परिस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए यहाँ हमारे अनुकूल ही आर्थिक सिद्धान्त व नियम होने चाहिए। ब्रिटिश सदर्भ मे उल्लेखनीय भूमिका निभाने वाले आर्थिक नियम हम पर लागू नही किये जा सकते। महान राष्ट्रवादी रानाडे की प्रसिद्ध पुस्तक 'ऐसेज आन इडियन पालिटिकल इकानोमी' *(Essays on Indian Political Economy)* 1898 में प्रकाशित हुई। रानाडे द्वारा प्रस्तुत आर्थिक विचार निम्न प्रकार हे–

भारतीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था

रानाडे ने अर्थशास्त्र के विद्यार्थी के रूप मे आर्थिक नियमों का अध्ययन किया। अर्थशास्त्र के प्रवक्ता के रूप में अध्यापन किया व भारतीय सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवेश मे उनकी व्यावहारिकता की समीक्षा भी की। उन्होने स्पष्ट विवेचना की कि अर्थशास्त्र के नियम एक मशीन की तरह भारतीय दशा मे लागू नही किये जा सकते। प्रतिष्ठित आर्थिक नियम ब्रिटिश परिस्थितियो के अनुकूल हो सकते हैं। भारतीय सदर्भ मे तो हमे हमारी सस्थाओ व परिस्थितियो के अनुसार ही आर्थिक सिद्धान्त लागू करने होगे।

रानाडे ने वस्तुत आर्थिक सिद्धान्तो के व्यावहारिकता के पक्ष पर अधिक बल दिया।

1892 मे रानाडे ने दक्कन कॉलेज पूना मे भारतीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था पर भाषण दिया। इस भाषण के अन्तर्गत उन्होने विषय का पूर्ण रूपेण वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया। उन्होने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो–जैसे एडम स्मिथ रिकार्डो जे एस मिल जे बी से आदि द्वारा प्रस्तुत आर्थिक विचारो की व्यावहारिकता की समीक्षा की। रानाडे ने बताया कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो ने जिन आर्थिक सिद्धान्तो को सर्वव्यापक तथा सत्य मान लिया था वे स्थिर परिस्थितियो के पर्याय हैं। परन्तु देखा जाय तो समाज व अर्थव्यवस्था स्थिर नही रह सकती वह तो परिवर्तनशील है। अत परिवर्तित परिस्थिति मे उनके सिद्धान्तो की कोई उपयोगिता नही रह जाती। उनका स्पष्ट कहना था कि प्रतिष्ठित आर्थिक विचार तो वर्तमान परिस्थितियो मे इगलैड तक मे लागू नहीं हो सकते भारत मे लागू होने का प्रश्न ही नही उठता।

रानाडे ने बताया कि आर्थिक विज्ञान की सत्यता निरपेक्ष आकी गयी है। आर्थिक विकास का कोई भी स्तर क्यो न हो इसे सत्य ही माना गया है। सामाजिक आर्थिक नैतिक न्यायिक स्तर मे अतरो की अवहेलना की गयी हे। जबकि वस्तुत ये सभी अतर नियमो की व्यावहारिक अनुपालना पर अपना प्रभाव डालते हैं। यदि ब्रिटेन जैसे विकसित देश के लिए मुक्त व्यापार अच्छा है तो दुनिया के समस्त देशो के लिए भी अच्छा होना ही चाहिए और इस प्रकार सरक्षण की नीति एक अभिशाप होनी चाहिए लेकिन ऐसा नहीं' है। यदि इगलैंड की परिस्थिति मे प्रत्यक्ष कर अनुकूल हैं तो भारत मे भी ये अपनाये जाने चाहिए व स्थानीय निकायो की आय का मुख्य स्रोत चुगीकर बद कर देना चाहिए। लेकिन ऐसा करना उपयुक्त नही है।'

रानाडे ने प्रतिष्ठित आर्थिक सिद्धान्तो की व्यावहारिकता पर प्रश्न चिन्ह लगाया है। भारतीय परिस्थिति मे तो प्रतिष्ठित सिद्धान्त व्यावहारिक हो ही नही सकते। इस सदर्भ मे रानाडे ने निम्न तर्क प्रस्तुत किए हैं।

(1) प्रतिष्ठित विचारधारा पर आधारित अर्थव्यवस्था का आधार वे मान्यताएँ थीं जिन्हे सर्वव्यापक रूप से प्रयोग मे नही लाया जा सकता। वस्तुत इगलैंड की विशेष परिस्थितियाँ ही उनके जन्म के लिए उत्तरदायी थी अन्यथा ये किसी भी समाज के अनुरूप कभी भी नही थी। हमारे जैसे आर्थिक दृष्टि से पिछडे हुए देश के सदर्भ मे तो बिलकुल भी नही। हमारे देश मे प्रतियोगिता को कोई स्थान नही है। हमारा देश परपरागत रूढिवादी है।

(2) ब्रिटेन तथा अन्य देशो मे समकालीन आर्थिक व्यवहार प्रतिष्ठित विचारधारा की पुष्टि नहीं करता है।

(3) प्रतिष्ठित विचारधारा स्थैतिक आर्थिक परिस्थितियों का ही विश्लेषण करने में सक्षम थी वे गतिशील आर्थिक विकास की व्याख्या करने मे असमर्थ थी।

(4) हमारे देश मे एक औसत व्यक्तिगत व्यक्ति, प्रतिष्ठित विचारधारा के अतर्गत वर्णित आर्थिक व्यक्ति की तुलना मे एक दम विपरीत हे। व्यक्ति की तुलना मे परिवार व जाति का अधिक महत्व है। परिवार व जाति ही व्यक्ति की प्रतिष्ठा को निर्धारित करती है।

(5) हमारे यहाँ धन प्राप्ति ही एक मात्र आदर्श व लक्ष्य नही है और न ही धन लक्ष्य प्राप्ति का माध्यम। अत प्रतिष्ठित विचारधारा की व्यावहारिक महत्ता यहाँ नही रह जाती है।

(6) हमारे देश मे आर्थिक जीवन मे प्रतियोगिता का कोई महत्व नही है यहाँ तो रीति–रिवाज व सरकारी नियमो की ही प्रतिष्ठा हे।

(7) हमारे देश मे श्रम व पूँजी की गतिशीलता का अभाव है। मजदूरी व लाभ भी स्थिर हैं न कि परिवर्तनशील।

(8) हमारे देश मे जनसख्या के भी अपने नियम हैं जहाँ एक ओर बीमारी एव अकाल के कारण जनसख्या कम हो जाती है। वही दूसरी ओर राष्ट्रीय उत्पादन भी लगभग स्थिर ही है।

(9) प्रतिष्ठित विचारधारा की व्यावहारिकता पर तो अन्य यूरोपीय व अमेरिकी अर्थशास्त्रियो ने ही प्रश्नचिन्ह लगा दिये। ब्रिटिश अर्थशास्त्री भी इसकी आलोचना करने लगे हैं।

रानाडे ने आर्थिक सिद्धान्तो की उपयोगिता व वैज्ञानिकता को सर्वदा स्वीकार किया है। वे तो केवल इसे व्यावहारिकता का सुदृढ आधार प्रदान कर और अधिक तर्कपूर्ण व वैज्ञानिक बनाना चाहते थे। उन्होने अर्थशास्त्र को सदा विज्ञान ही माना न कि कला। रानाडे के अनुसार अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है तथा उसके सिद्धान्त ऐसे होने चाहिए कि उन्हें ऐतिहासिक दृष्टि से अनुभव किया जा सके व्यावहारिक धरातल पर सत्य सिद्ध हो तथा सामाजिक यथार्थ के निकट हो। और इसी आधार पर उन्होने भारत के लिए अलग आर्थिक सिद्धान्त की बात कही। उन्होने कहा कि ब्रिटेन की परिस्थितियाँ भारत के एकदम विपरीत है। जो आर्थिक सिद्धान्त ब्रिटेन मे लागू हो सकते है भारत मे कभी भी व्यावहारिक नहीं हो सकते। हमारे लिए अलग आर्थिक सिद्धान्तो की आवश्यकता है जो कि हमारी परिस्थितियो के सर्वथा अनुकूल हो।

रानाडे ने भारत के लिए अलग आर्थिक सिद्धान्तो की आलोचना करने वालो को स्पष्ट शब्दो मे कहा कि प्रतिष्ठित विचारधारा का जन्म वणिकवादियो की आलोचना के रूप मे हुआ है।[2]

वणिकवादी विचारधारा जब ब्रिटेन के हितो के अनुकूल नही रही तो उन्होने प्रतिष्ठित सिद्धान्तो को उपजाया। इससे भी अधिक उल्लेखनीय यह है कि जब सरक्षण की नीति ब्रिटिश हितो की अधिक पोषक है तो वे अपने देश मे सरक्षण नीति अपनाते

हैं व भारत के लिए प्रतिष्ठित सिद्धान्तानुसार मुक्त व्यापार नीति को श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं। अत भारत के लिए अलग आर्थिक सिद्धान्त सर्वथा अपरिहार्य है।

अर्थशास्त्र के अध्ययन की आगमन प्रणाली पर बल

अर्थशास्त्र के अध्ययन की दो विधियाँ हैं–

(अ) निगमन प्रणाली (Deductive method)

(ब) आगमन प्रणाली (Inductive Method)

निगमन प्रणाली

परपरावादी प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो ने इस प्रणाली को अपनाया है। यह निगमन प्रणाली कुछ आधारभूत मान्यताओ अथवा स्वय सिद्ध तथ्यो से जो सत्यापन की तार्किक प्रविधियो द्वारा अन्य रीतियो द्वारा प्राप्त हुए हैं निष्कर्षो को निगमन करती है। इस प्रणाली *मे हम सामान्य तर्क के आधार पर किसी तथ्य विशेष का अध्ययन करते है।*

आगमन प्रणाली

आगमन प्रणाली का विकास जर्मन इतिहासवादी सप्रदाय के अर्थशास्त्रियो द्वारा निगमन प्रणाली के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था। आगमन रीति या प्रणाली जिसे ऐतिहासिक रीति भी कहते है के अतर्गत निष्कर्ष प्राप्त करने के पूर्व तथ्यो की जाच की *जाती है। यह प्रणाली वास्तविक ठोस ऐतिहासिक अथवा सकलित सामग्री के अध्ययन* से प्रारभ होती है और इन तथ्यो तथा सामग्री के अध्ययन के आधार पर सामान्यीकरण प्राप्त करती है।

महादेव गोविन्द रानाडे ने अर्थशास्त्र के अध्ययन की निगमन प्रणाली की आलोचना की है। उन्होने कहा कि अर्थशास्त्र के नियम स्वयसिद्ध तथ्यो पर आधारित नहीं होने चाहिए। रानाडे अर्थशास्त्र के अध्ययन की आगमन प्रणाली के पक्ष मे थे। उनके अनुसार अतीत काल को दृष्टिगत रखकर ही भविष्य के लिए निष्कर्ष निकाले जाने *चाहिए। इस ऐतिहासिक विधि द्वारा ही भारतीय अर्थशास्त्र का समुचित अध्ययन किया जा* सकता है।

आर्थिक राष्ट्रवाद (Economic Nationalism)

रानाडे के आर्थिक विचारो को उनकी आर्थिक राष्ट्रवाद की अवधारणा के अतर्गत समझा जा सकता है। रानाडे का आर्थिक राष्ट्रवाद से आशय राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के *विकास से ही नही था। उन्होने आर्थिक राष्ट्रवाद को विस्तृत अर्थ मे काम मे लिया।* एक राष्ट्र तब तक सामाजिक रूप से प्रगतिशील नही हो सकता जब तक कि वह राजनीतिक *दृष्टि स प्रगतिशील न हो। एक राजनीतिक दृष्टि से प्रगतिशील राष्ट्र यदि सामाजिक–आर्थिक* दृष्टि से पिछडा हुआ है तो उसका अस्तित्व ही नही रह सकता। यदि कोई राष्ट्र धार्मिक *दृष्टि से पिछडा हुआ है तो उसका सामाजिक राजनीतिक व आर्थिक विकास नही किया*

जा सकता। इस प्रकार रानाडे ने राष्ट्रवाद को व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया। उनके अनुसार एक राष्ट्र तभी शक्तिशाली होता है जबकि वह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व धार्मिक दृष्टि से शक्तिशाली हो। इस प्रकार रानाडे का राष्ट्रीयता से आशय है **राष्ट्र का समग्र विकास।**

भारतीय निर्धनता के कारण

रानाडे ने भारत की निर्धनता की विवेचना अवश्य की है लेकिन ब्रिटिश शासन को इसके लिए उत्तरदायी नही ठहराया है। उन्होने भारत की निर्धनता के लिए भारत की परंपरागत सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक स्थिति को दोषी ठहराया है। रानाडे ने आर्थिक निकासी को कोई महत्व नहीं दिया और उन्होने न ही आर्थिक निकासी को गरीबी का कारण बताया। रानाडे ने भारत की निर्धनता के कारणो को दो भागो में रखा है

(अ) तात्कालिक सामाजिक–धार्मिक विचार–

(i) अलगाववादी जातिगत विचार।

(ii) विचारो की स्वतंत्रता का अभाव व पवित्र धार्मिक पुस्तकों की सत्ता पर अविवेकशील समर्पण।

(iii) विपरीत अर्थ मे प्रयुक्त किया गया कर्म का सिद्धान्त। सामान्य जन भाषा में सभी प्राप्तियों या घटनाओ के लिए यह कहना कि यह तो कर्मों का फल है। चाहे वे कर्म इस जन्म के हो या पूर्व जन्म के हो।

(iv) माया के सिद्धान्त मे आस्था व सासारिक अस्तित्व से मुक्ति के निराशावादी विचार तथा आर्थिक प्रगति को लेकर निराशावादी दर्शन।

(ब) आर्थिक कारण

(i) भारत का कृषि प्रधान देश होना व कृषि का परपरागत तरीके से किया जाना,

(ii) भूमि सुधार कार्यक्रमो का अभाव व दोषपूर्ण भू–व्यवस्था,

(iii) औद्योगिक पिछडापन,

(iv) पूँजी सचय के लिए प्रेरणा का अभाव,

(v) देश मे जोखिम झेलने वाले साहसियो का अभाव, तथा

(vi) साख सुविधाओ का अभाव।

औद्योगिक विकास

पूना में आयोजित भारत के प्रथम औद्योगिक सम्मेलन में रानाडे ने अपने उदघाटन भाषण मे कहा कि "हमे अव्यावहारिक उद्देश्यो के अनुसरण को मुख्य रूप से त्यागना होगा। हमे अपने अल्प ससाधनो का हमारी शक्ति के अनुसार कुशलतम उपयोग करना होगा न कि हमे उन्हें भारतीय मुद्रा की निकासी की झूँठी शिकायते व मुक्त व्यापार के विरुद्ध बाते करते रहने मे ऐसे ही व्यर्थ मे गवाना होगा।"[3]

रानाडे ने तात्कालिक भारत की यथार्थ स्थिति के सदर्भ मे दो यथार्थ तथ्य रखे–

(अ) अद्भुत गरीबी तथा

(ब) एकमात्र व अनिश्चित ससाधन कृषि पर बढती हुई निर्भरता।

रानाडे ने कहा कि इस यथार्थ स्थिति को समझकर हमे उसे दूर करने की प्रबल इच्छा व भावना विकसित करनी होगी। इस प्रबल इच्छा के आधार पर हमे सार्थक प्रयास करने होगे

रानाडे के अनुसार कच्चे कृषि उत्पादो के समग्र उत्पादन तथा तैयार माल के उत्पादन व वितरण दोनो मे कही कोई समानता नही है। तैयार माल के उत्पादन व वितरण मे हम पिछडे हुए है सर्वप्रथम हमे कृषि व उद्योग की इस असमानता को दूर करना होगा।[4]

रानाडे ने बताया कि भारत के सदर्भ मे कुछ परम्परागत लाभ तथा अलाभ (Advantages and Disadvantages) परम्परागत रूप मे प्राप्त हो रहे हैं। लेकिन हमे हमारे लाभो का उपयोग करते हुए ईमानदारी से काम करना होगा। हमारे ससाधनो जो कि हमारी दृष्टि मे तो पर्याप्त है लेकिन अन्य देशो से तुलना करने पर अल्प है को काम मे लेना होगा। प्राकृतिक ससाधनो व पूँजी पर असीमित श्रम को प्रयुक्त करना होगा। हमे व्यावसायिक कुशलता उत्तराधिकार मे प्राप्त हुई है आवश्यकता है उसके उपयोग व विकास की।

रानाडे ने कहा कि हमे उद्योगो का विकास इस प्रकार करना चाहिए कि हम कृषि उत्पादन को कच्चे माल के रूप मे काम मे ले सके कि [illegible] कि हम निर्यात करते है। जिस तैयार माल का हम आयात करते है उसका उत्पादन देश मे ही किया जाय। यह उत्पादन ग्रामीण उद्योगो के माध्यम से नही हो सकता क्योकि वे विदेशी तैयार माल की तुलना मे नही टिक सकते। हमे यह उत्पादन बडे पैमाने व उद्योगो के माध्यम से ही करना होगा।[5]

इस सदर्भ मे उन्होने निम्न सुझाव दिये–

(अ) हमे पूँजी के अभाव की समस्या को हल करने के लिए सामूहिक आधार पर सयुक्त पूँजी कपनियाँ स्थापित करनी होगी।

(ब) हमे अन्य देशो से तकनीकी कुशलता का आयात करना होगा।

(स) भारतीयो के औद्योगिक प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी होगी चाहे यह व्यवस्था देश मे हो या अन्य देशो मे।

(द) हमे श्रम और पूँजी को सहकारिता के आधार पर उत्पादन हेतु प्रयुक्त करना चाहिए।

(य) इस औद्योगिक विकास की प्रक्रिया मे हमे राज्य का योगदान भी लेना चाहिए। *सरकार निम्न प्रकार से औद्योगिक विकास मे योगदान कर सकती है–*

(1) सरकार बैको के माध्यम से साख सुविधा प्रदान कर सकती है।

(ii) नये उद्योगो को वित्तीय गारटी प्रदान करके प्रोत्साहित कर सकती है।

(iii) सरकार उद्योगो को अनुदान प्रदान कर सकती है।

(iv) सरकार कम ब्याज की दर पर ऋण प्रदान कर सकती है।

(v) सरकार आवास और प्रवास (Migration and Emigration) हेतु सुविधा प्रदान कर सकती है।

(vi) सरकार तकनीकी प्रशिक्षण हेतु सुविधा प्रदान कर सकती है।

(vii) सरकार भडार (Stores) स्वय बनवाने की अपेक्षा खरीद सकती है।

भारत को अपने कच्चे माल के स्तर को सुधारना होगा। जिस कच्चे माल का स्तरीय उत्पादन हमारी मिट्टी मे सभव नही है उसे हमे आयात कर लेना चाहिए।

रानाडे ने उपर्युक्त औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को अपनाते हुए वस्तुओ की एक सूची दी जिसमे कि ऐसे कच्चे माल, जिसका हम निर्यात करते है, एक तरफ है व दूसरी ओर उनका औद्योगिक उत्पाद जिसका कि हम उत्पादन व निर्यात कर सकते है।

कच्चे माल के निर्यात का विकल्प व औद्योगिक विकास

	निर्यात होने वाला कच्चा माल	सबद्ध तैयार माल–उत्पादन व निर्यात
i	तिलहन (Oil Seeds)	तेल (Oils)
ii	रगने का मसाला (Dye Stuffs)	मसाले व रग (Dyes and Pigments)
iii	गेहूँ (Wheat)	आटा (Flour)
iv	बिना भूसा हटाया हुआ चावल (Un husked Rice)	भूसा हटाया हुआ चावल (Husked Rice)
v	ईख (Jaggery)	चीनी (Suggar)
vi	कच्चा कपास (Raw Cotton)	कपास की वस्तुएँ (Cotton Goods)
vii	कच्चा ऊन (Raw Wool)	ऊनी वस्तुएँ व शाल (Woolen Goods and Shawls)

viii	कच्चा रेशम (Raw Silk)	रेशमी वस्तुएँ (Silk Goods)
ix	जूट व सन (Jute and Flax)	बोरी रस्सी (Gunny Bags, Ropes)
x	चमडा व खाल (Hides and Skins)	चमडे की वस्तुए (Prepared and Tanned Leather)
xi	कच्चा तबाकू (Raw Tobacco)	साफ किया हुआ तबाकू व सिगार (Tobacco Cured and Cigars)
xii	मछली (Fish)	तैयार नमकीन मछली (Cured and Salted Fish)
xiii	कागज का कच्चा माल (Rags)	कागज (Paper)
xiv	लकडी व लकडी का लट्ठा (Wood and Timber)	साफ लकडी व फर्नीचर (Carved Wood and Furniture)

(Source- M G Ranade His life and career G A Natsan and Company- page-49 From the paper on "The present state of Indian manufacturers and out look of the same" read at the industrial conference, Poona 1893)

कृषि सुधार कार्यक्रम

रानाडे ने भारत की अर्थव्यवस्था मे कृषि की प्रधानता को स्वीकार किया। अधिकाश जनसख्या ग्रामीण है व भारत से निर्धनता को दूर करने का तरीका है कृषि विकास। वर्तमान मे भारतीय कृषि अत्यन्त पिछडी हुई है वर्षा पर आश्रित है व सूखा बाढ व अकाल इसके सामान्य लक्षण है। रानाडे ने भारत मे कृषि विकास के सदर्भ मे निम्न दो मौलिक सुझाव दिये जिनमे से एक कृषि साख से सबधित है व दूसरा भू–धारण व्यवस्था से।

(अ) सरकार को चाहिए कि वह कृषि विकास हेतु व्यापक सहायता कार्यक्रम जारी करे। प्रारम्भिक प्रायोगिक वर्षो मे सरकार कृषि क्षेत्र को दिये जाने वाले ऋण की एवज मे गारटी प्रदान कर सकती है। सरकार प्रत्यक्ष अनुदान भी कृषि क्षेत्र को प्रदान कर सकती है। सरकार को कृषि विकास हेतु कृषि बैको की स्थापना भी करनी चाहिए। परपरागत कृषि ऋणो को माफ करने का अभियान भी सरकार चला सकती है। रानाडे

ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि सिर से पैर तक कर्ज मे डूबे किसानो के पुराने ऋणो को एकत्र करके माफ कर दिये जाने पर ही किसान कृषि बैंको की सहायता से अपने पैरो पर खडा हो सकता है व कृषि विकास को एक दिशा प्रदान की जा सकती है।

(ब) रानाडे का भू–धारण व्यवस्था के सदर्भ मे स्पष्ट मत था कि किसान को यह आभास होना आवश्यक है कि जमीन उसकी ही है। उसका इस जमीन के ऊपर उतना ही अधिकार है जितना कि उसका अपने कपडो व मकान पर है। भूमि को जो जोतता है, भूमि पर उसी किसान का अधिकार होना आवश्यक है। रानाडे ने रैयतवाडी प्रथा की स्थायी बदोबस्त प्रणाली पर बल दिया। रानाडे ने व्यवस्था दी कि लगान की मात्रा उत्पादन के आधार पर स्थायी रूप से 20–30 वर्ष के लिए निर्धारित कर देनी चाहिए। तदुपरान्त उसे मौद्रिक रूप में वसूल किया जाना चाहिए। रानाडे ने कहा कि लगान उचित समय पर वसूल किया जाना चाहिए। और यह उचित समय भारतीय किसान के लिए फसल उत्पादन का समय होता है। उल्लेखनीय है कि रानाडे ने प्रशिया, (Prussia), रूस (Russia) फ्रास व जर्मनी के अतर्गत भू–सुधारो का गहन अध्ययन किया था। इन देशो के सदर्भ मे राज्य द्वारा किये गये भू–सुधारो के रानाडे प्रशसक थे। हमारे देश के संदर्भ मे उन्होने जमीदार व साहूकार को किसानो के शोषण के लिए अधिक उत्तरदायी ठहराया, ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था में उनकी आस्था थी अत उन्होंने भारतीय परिस्थिति मे रैयतवाडी प्रथा को अधिक उपयुक्त एव उसी के अतर्गत स्थायी बदोबस्त को सर्वश्रेष्ठ माना। रानाडे ने इस सदर्भ मे दक्षिणी भारत मे खेतिहर किसानो की सहायतार्थ बनाए गए 'दक्कन एग्रीकल्चरिस्ट रिलीफ एक्ट 1879' (Duccon Agriculturist Relief Act 1879) का समर्थन किया।

प्रवास (Emigration) संबंधी विचार

रानाडे के अनुसार भारत की व्यापक निर्धनता, बार–बार पडने वाले अकाल व भुखमरी की स्थिति ने भारतवासियों को दूसरे अविकसित देशो मे चले जाने के लिए विवश किया। हमारे देश से श्रम विदेशो मे भेजने के लिए कई निजी कम्पनियाँ स्वत ही गठित हो गयीं। उन्हें यह भी लाभ का व्यवसाय नजर आया। भारत से ये श्रमिक वस्तुत विपरीत जलवायु व परिस्थिति मे आबद्ध श्रम (Indentured Labour) के रूप मे ले जाये जाते थे लेकिन इस अतिरिक्त श्रम (Surplus Labour) ने वहाँ जाकर अतत आराम ही पाया। इन्होने अपने परिश्रम व लगन से उन देशों की अर्थव्यवस्था को आधार प्रदान किया।

ये श्रमिक दक्षिणी अमेरिकी देशो, दक्षिणी अफ्रिका, पश्चिमी द्वीप समूह व मारीशस श्रीलका आदि देशो को भेजे जाते थे। इन प्रवासी श्रमिको की संख्या इतनी अधिक बढ गयी थी कि सरकार को एक विशेष अधिकारी इस श्रम प्रवास पर रिपोर्ट देने के लिए नियुक्त करना पडा। रानाडे ने इस रिपोर्ट का विस्तृत अध्ययन कर प्रवास (Emigration) सबधी निम्न निष्कर्ष प्रस्तुत किये–

(अ) प्रवासियो की सख्या दिन–प्रतिदिन बढ रही है।

(ब) जितने प्रवासी भारतीय श्रमिक भारत लौटते थे उसकी तुलना मे कही अधिक भारत से चले जाते थे।

(स) जितने प्रवासी श्रमिक भारत लौटते थे उनमे से अधिकाश पुन वापस चले जात थे।

(द) प्रवासी भारतीय श्रम मे स्त्रिया का अनुपात बढ रहा था।

(य) जितने भी श्रमिक आवद्ध श्रम (Indentured Labour) के रूप मे ले जाये जाते थे उनमे से आधे से अधिक श्रमिक स्वतत्र श्रमिको के रूप मे वहाँ रह रहे हैं।

(र) जो श्रमिक उन उपनिवेशा मे रहने लगे उनमे से कुछ ने यहाँ अपनी जमीन ले ली मकान बना लिया व निजी व्यवसाय भी करने लगे।

(ल) इन देशो के अतर्गत मजदूरी की दरे भारत की तुलना मे 3–4 गुना अधिक थीं।

(व) इन प्रवासियो ने स्वय मे बचत की आदत डाली व अपने परिवारो को भारत में धन भेजने लगे जिससे हमारे देश मे इन परिवारो के जीवन स्तर मे परिवर्तन आया।

(श) इन प्रवासी श्रमिको की उन्नति का एक कारण यह भी है कि वहाँ इन्होने अपनी सामाजिक व धार्मिक रूढिवादिता का एक बडी सीमा तक परित्याग कर दिया था।

रानाडे ने भारत के श्रम प्रवास को एक उपयोगी साधन के रूप में लिया। उन्होने इसे भारतीय बाजार के विस्तार के रूप मे वर्णित किया है। उन्होने भारतीय श्रमिको के प्रवास को प्रोत्साहित करने पर बल दिया।

शिक्षा व तकनीक

रानाडे ने शिक्षा व तकनीक पर विशेष बल दिया है। उन्होने शिक्षा व तकनीक को औद्योगिक विकास की प्रक्रिया हेतु अत्यावश्यक बताया है। रानाडे ने शिक्षा व तकनीक को राष्ट्रीय सपन्नता का एक अग बताया है क्योकि यह उत्पादन प्रक्रिया को एक गति प्रदान करती है व उसे बढाती है।

रानाडे ने शिक्षा सुविधाओ के विस्तार पर अत्यधिक बल दिया। उन्होने सरकार से भी कहा कि भारत मे शिक्षा सस्थान व औद्योगिक प्रशिक्षण सस्थान पर्याप्त मात्रा में होने चाहिए। एतदर्थ सरकार स्वय भी शिक्षण सस्थान प्रारभ कर सकती है व निजी क्षेत्र मे शिक्षण सस्थान खोलने को प्रोत्साहित कर सकती है। रानाडे का मत तो यहाँ तक था कि जब तक भारत मे शिक्षण व प्रशिक्षण की व्यवस्था न हो तब तक भारतीयो की उच्च शिक्षा हेतु विदेशो म व्यवस्था होनी चाहिए। यहाँ उल्लेखनीय है कि रानाडे का पाश्चात्य शिक्षा पद्धति मे गहरी आस्था थी।

रानाडे ने जहाँ एक ओर भारत मे आर्थिक राष्ट्रवाद की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया वहीं दूसरी ओर सामाजिक व धार्मिक पुनर्जागरण पर बल दिया। रानाडे ने भारत

के इतिहास व अर्थशास्त्र के मध्य एक विशिष्ट सबध स्थापित किया। इस परिप्रेक्ष्य मे उन्होने ब्रिटिश अर्थशास्त्रियो द्वारा प्रस्तुत अर्थशास्त्र की प्रतिष्ठित विचारधारा व उसके भारत पर प्रत्यारोपण का प्रबल विरोध किया। उन्होने इस सदर्भ मे अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो की व्यावहारिकता पर बल दिया। रानाडे भारत के प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होने देश के लिए एक अलग आर्थिक सिद्धान्त पर बल दिया।

रानाडे ने भारत की आर्थिक प्रगति के लिए ओद्योगिक विकास व कृषि सुधार का एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। रानाडे की ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था में गहन आस्था थी अत' उन्होने यह विकास कार्यक्रम सरकारी परिप्रेक्ष्य मे अधिक प्रस्तुत किया। एतदर्थ सरकारी नीतियो मे प्रभावी परिवर्तन पर बल दिया। रानाडे द्वारा प्रस्तुत विचार भारतीयो के लिए सदैव मार्ग दर्शक रहेगे। रानाडे ही थे जिन्होने गोपाल कृष्ण गोखले को सार्वजनिक जीवन में प्रवेश हेतु मार्ग प्रशस्त किया। रानाडे के विचारो ने गॉधीजी के दर्शन पर विशेष रूप से अपना प्रभाव डाला।

संदर्भ

1 एम जी रानाडे एसेज ऑन इडियन इकॉनामिक्स पृष्ठ 3
2 उपर्युक्त, पृष्ठ, 13
3 जी ए नेटसन एण्ड कम्पनी एम जी रानाडे – हिज लाइफ एण्ड कैरियर, पृष्ठ 44
4 उपर्युक्त, पृष्ठ, 45
5 उपर्युक्त, पृष्ठ, 47

प्रश्न

1 रानाडे के अनुसार भारत मे निर्धनता के कारणो को स्पष्ट कीजिए।
2 रानाडे के अनुसार भारत का ओद्योगिक विकास कैसे सभव है ?
3 रानाडे ने अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए किस प्रणाली पर जोर दिया ?
4 रानाडे के आर्थिक राष्ट्रवाद पर दिए गये विचारो को लिखिए।
5 रानाडे के अनुसार भारतीय कृषि का विकास कैसे हो सकता है ?
6 "महादेव गोविद रानाडे वास्तव मे राष्ट्रवादी आर्थिक विचारक थे" सिद्ध कीजिए।
7 रानाडे के आर्थिक राष्ट्रवाद औद्योगिक विकास, कृषि विकास एव प्रवास सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट कीजिए।
8 निर्धनता पर रानाडे द्वारा प्रतिपादित विचारो को लिखिए।
9 रानाडे के अनुसार प्रतिष्ठित आर्थिक सिद्धात भारत के लिए अनुपयुक्त क्यों है? उनके द्वारा प्रस्तुत किए गये तर्को को प्रस्तुत कीजिए।

13

गोपाल कृष्ण गोखले
(Gopal Krishna Gokhle)

गोखले एक संक्षिप्त परिचय

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के राजनीतिक गुरु गोपाल कृष्ण गोखले का जन्म 9 मई 1866 को महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिले के एक छोटे से गाँव कोटलक मे हुआ था। गोपाल मराठो के राष्ट्रीय इतिहास मे उल्लेखनीय भूमिका निभाने वाले चितपावन ब्राह्मण परिवार से सबद्ध थे। जब वे मात्र 13 वर्ष के थे उनके पिता की मृत्यु हो गई थी। यद्यपि उनकी माता ने औपचारिक शिक्षा ग्रहण नही की थी तथापि रामायण व महाभारत का उन्होंने गहन अध्ययन किया था। उनके इस अध्ययन का स्पष्ट प्रभाव गोपाल के सस्कारो पर पडा।

1881 मे मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात गोपाल उच्च शिक्षा प्राप्ति हेतु कोल्हापुर चले गए। यहाँ उनकी शिक्षा हेतु वित्त व्यवस्था उनके बडे भाई गोविन्द ने की। बडे भाई गोविन्द तब मात्र 18 वर्ष के थे और अपने 15 रु मासिक वेतन में से 8 रु मासिक गोपाल को अध्ययन हेतु कोल्हापुर भेजते थे। 1882 मे राजा राम कॉलेज से प्रथम वर्ष करने के उपरान्त 1883 मे दक्खन कॉलेज पूना मे प्रवेश लिया व 1884 मे मात्र 18 वर्ष की आयु मे एलफिन्सटन कॉलेज बम्बई से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की।

1885 मे गोखले ने न्यू इगलिश स्कूल मे अध्यापन से अपना कार्यक्षेत्र प्रारभ किया। शीघ्र ही वे दक्खन एजूकेशन सोसायटी से जुड गये व उसके कार्य मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। 1887 मे गोखले जस्टिस नाडे के सपर्क मे आये जिन्होंने उनकी क्षमता को पहचाना व सार्वजनिक जीवन मे योगदान हेतु मार्ग प्रशस्त किया। गोखले जस्टिस रानाडे को अपना गुरु मानते थे। 1896 से 1902 तक उन्होने फर्गुसन कॉलेज पूना में इतिहास व राजनीतिक अर्थशास्त्र का अध्यापन किया। 1902 से 1912 तक वायसराय की कार्यकारिणी परिषद के वे सदस्य रहे।

गोखले 1889 में भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के सदस्य बने। 1895 मे गाँधीजी के सपर्क मे आये। गाँधीजी ने गोखले को अपना राजनीतिक गुरु स्वीकार किया है। 1905 मे वे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के अध्यक्ष बने। 1905 मे ही उन्होने एक अति महत्त्वपूर्ण सस्था 'भारत सेवक समाज' की स्थापना की जो आज भी जीवित है। 1897 में गोखले वेलबी आयोग के समक्ष दक्खन सभा के प्रतिनिधि के रूप मे भारत में सार्वजनिक व्यय

पर अपने साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु इंगलैंड गये। एक भारतीय राष्ट्रीय आर्थिक विचारक के रूप मे यहीं से उन्हें एक सम्माननीय स्थान प्राप्त हुआ।

गोखले के आर्थिक विचार निम्न शीर्षकों में व्यक्त किये गये है।

1. निर्धनता (Poverty)

गोखले ने भारत की निर्धनता को अति निकटता के साथ देखा। उन्होने निर्धनता की समस्या पर प्रावैगिक विचार प्रस्तुत किये। उन्होने कहा कि इस बात का कोई मतलब नहीं कि भारत की प्रतिव्यक्ति आय 20 रु है या 30 रु। महत्वपूर्ण यह है कि यह प्रति व्यक्ति आय बढ रही है या घट रही है। उन्होने कहा कि भारत की गरीबी दिन प्रतिदिन बढती जा रही है व इसकी जडे उत्तरोत्तर गहरी होती जा रही हैं।

1902 के अपने प्रसिद्ध बजट भाषण में गोखले ने भारत की निर्धनता को केन्द्र बिन्दु बनाया तथा स्पष्ट किया कि भारत के जन समुदाय की भौतिक स्थिति निरन्तर बद से बदतर होती जा रही है तथा यह दृष्टिगोचर है कि यह स्थिति विश्व के आर्थिक इतिहास के क्षेत्र विस्तार के अंतर्गत सबसे अधिक दु खद स्थिति है।

गोपाल कृष्ण गोखले ने बहुत से प्रावैगिक चर अपने अध्ययन में लिए हैं जिन पर भारत का आर्थिक विकास निर्भर करता है। उन्होने इन चरो के आधार पर भारत की निर्धनता का विश्लेषण किया है। ये आर्थिक प्रावैगिक चर भारत के आर्थिक विकास के निर्धारक हैं। ये चर निम्न हैं।

(i) भारत की जनसख्या

(ii) प्रतिव्यक्ति नमक का उपभोग

(iii) कृषि उत्पादन की प्रवृत्ति

(iv) व्यावसायिक फसलों के अंतर्गत कृषि क्षेत्र

(v) गैर व्यावसायिक फसलों के अतर्गत कृषि क्षेत्र

(vi) वस्तुओं के आयात व निर्यात की मात्रा।

उपर्युक्त आर्थिक चरों के आधार पर गोखले ने देश के आर्थिक विकास की दिशा ज्ञात की तथा निष्कर्ष निकाला कि भारत की दरिद्रता निरन्तर गहरी व और अधिक गहरी होती जा रही है।

2. आर्थिक निकासी (Economic Drain)

गोपाल कृष्ण गोखले एक उदारवादी विचारक थे। निकासी सबधी उनके विचार नौरोजी की भाति उग्र नहीं थे। उन्होंने कहा कि निकासी इसलिए सम्भव हो रही है कि भारत आर्थिक व राजनीतिक दोनों ही दृष्टि से ब्रिटेन का उपनिवेश है। उन्होने निकासी का ऐतिहासिक विवेचन कर यह स्पष्ट किया कि मुगल काल मे निकासी का प्रश्न ही नही उठता क्योकि वे भारत में ही स्थायी रूप से रहने लग गये। निकासी का प्रारभ हुआ

भारत मे ब्रिटिश आगमन के साथ। ईस्ट इडिया कम्पनी ने भारतीय उद्योगो को नष्ट किया ताकि ब्रिटिश आयात का मार्ग प्रशस्त हो सक। 1857 के बाद ब्रिटिश सरकार के शासन काल की अवधि मे भारत के ऊपर मुक्त व्यापार की नीति बलपूर्वक लागू की गई जबकि ब्रिटेन ने स्वय के देश मे सरक्षण नीति को अपनाया ताकि देश के कृषि व उद्योग निर्विघ्न रूप से पल्लवित हो सके।

गोखले ने अपने उदार दृष्टिकोण के कारण बहुत–सी मदो को निकासी मे शामिल नही किया। उन्होने उन खर्चों को जो कि भारत मे विकास हेतु किये जा रहे है निकासी के रूप मे शामिल करने पर गहरी आपत्ति की है। उनके अनुसार कुछ विकास कार्य जैसे भारत मे रल विकास कुछ उद्योगो मे प्रत्यक्ष पूँजी निवेश आदि पर लगी पूँजी पर ब्याज व लाभाश कदापि निकासी मे शामिल नही किये जा सकते। गोखले के अनुसार भारत मे ब्रिटिश सरकार की नीति जहॉ एक ओर स्वय के राजनीतिक हितों की पूर्ति करती है वहीं दूसरी ओर भारत का र्थिक शोषण करती है। इस आधार पर गोखले ने दो प्रकार की निकासी बतायी है–

(i) राजनीतिक निकासी (Political Drain)

(ii) औद्योगिक निकासी (Industrial Drain)

राजनीतिक निकासी म उन्होने अपने साम्राज्य के विस्तार हेतु अनावश्यक रूप से किय जा रह भारत के सैन्य व्यय को शामिल किया। इस निकासी को उन्होने लगभग 20 करोड रू प्रतिवर्ष पाया।

औद्योगिक निकासी मे उन्होने शामिल किया हमारे निर्माताओं की विदेशी निर्भरता को और उसे माना मात्र 10 करोड रु प्रतिवर्ष। गोखले के अनुसार कुल निकासी की मात्रा 30 करोड रु प्रतिवर्ष ज्ञात होती है।

3 स्वदेशी (Swadeshi)

गोखले के अनुसार ब्रिटिश सरकार की व्यापार नीति दोहरी है। भारत के सदर्भ में जहॉ वह मुक्त व्यापार की है वही ब्रिटेन क सदर्भ म वह सरक्षण नीति है। ब्रिटिश शासक अपने स्वय के उद्योगो के विकास म रुचि रखते है न कि भारत के उद्यागो के विकास में। ब्रिटिश शासक भारतीय उद्योगो के विकास हेतु न सरक्षण की नीति अपनाना चाहते हैं न भारत को प्रभावी आर्थिक सहायता प्रदान करना चाहते है। भारत के औद्योगिक विकास का एक मात्र तरीका है 'स्वदेशी'। स्वदेशी के अभाव मे भारत के औद्योगि व आर्थिक विकास की कल्पना असभव है।

1905 म भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के अधिवेशन की अध्यक्षता के समय भी गोखल ने स्वदेशी पर बल दिया। उन्होने कहा कि भारत मे पूँजी का अभाव है कुशल तकनीक का अभाव है उद्यमी प्रवृत्ति का अभाव है लेकिन श्रम पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध है व इसक प्रयोग स्वदेशी की भावना के अनुरूप किया जाना चाहिए। उन्होंने स्वदेशी के क्षेत्र में स्व

ने भी प्रत्यक्ष रूप से योगदान किया। पूना और उसके आसपास भारतीय उद्योगो की स्थापना मे उनका महत्वपूर्ण योगदान है।

1907 मे लखनऊ मे एक सार्वजनिक सभी मे स्वदेशी की महत्ता स्वीकार करते हुए कहा कि *"स्वदेशी अपने उच्चतम स्तर पर मात्र एक औद्योगिक आदोलन नही है अपितु यह राष्ट्र के सपूर्ण जीवन को प्रभावित करता है। स्वदेशी अपने उच्चतम स्तर पर मातृभूमि के प्रति एक गहरा, उमग भरा उत्साह से परिपूर्ण प्यार किसी एक क्षेत्र विशेष मे प्रकट नही होता है, वरन, सभी क्षेत्रो मे प्रकट होता है। यह सपूर्ण मानव पर आक्रमण करता हे और तब तक शात नहीं बैठता जब तक कि यह उसे संपूर्ण मानव में परिवर्द्धित न कर दे।"*

गोखले एक उदारवादी विचारक थे, अत उन्होने स्वदेशी के दूसरे पक्ष बहिष्कार का विरोध किया। इस बहिष्कार के अतर्गत विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार व सरकारी सेवाओ का बहिष्कार दोनो ही सम्मिलित है। उन्होने स्पष्ट शब्दो में अपना मत व्यक्त किया हे कि स्वदेशी का आशय अपने देश मे वस्तुओ के उत्पादन को प्रोत्साहन देना हे न कि विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार।

4. सार्वजनिक वित्त (Public Finance)

गोखले ने भारत की तत्कालीन वित्तीय स्थिति का गहन अध्ययन किया। यह अध्ययन उन्होंने वेल्बी आयोग के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करने की दृष्टि से भी किया। उन्होंने सार्वजनिक वित्त के सभी क्षेत्रो पर अपना निम्न मत व्यक्त किया।

(अ) सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure)

सरकार भारी मात्रा मे देशवासियो से कर वसूल करती है यह शोषण नही है, शोषण तो यह है कि सरकार प्राप्त आय का उपयोग देशवासियो के लिए नही करती। यह अपने आप में एक विरोधाभासपूर्ण उदाहरण है कि सरकार कर किसी देश के नागरिकों से वसूल करती है व उस कर का उपयोग दूसरे देश के नागरिकों के कल्याण के लिए होता है।

ब्रिटिश साम्राज्य की अक्षुण्णता व उसके विस्तार हेतु एक विशाल सेना का भार भारतीय करदाताओं के ऊपर है। चाहे बर्मा का युद्ध हो या मिश्र का, युद्ध भारत के लिए नही लडा जाता है लेकिन उसका भार भारतीय नागरिको को वहन करना पडा। इतना ही नही प्रशासन पर होने वाला व्यय भी कम नही है। बडी भारी सख्या मे जो ब्रिटिश अधिकारी भारत मे हैं वह व्यय भी भारत के करदाता वहन करते हैं।

गोखले ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बनारस अधिवेशन मे अध्यक्षता करते हुए बताया कि भारत की शुद्ध सार्वजनिक आय मे से 50 प्रतिशत व्यय सेना पर हो जाता है। गृह प्रभार पर होने वाला व्यय 35 प्रतिशत है और इस प्रकार मात्र 15 प्रतिशत आय

शेष रहती है उसे चाहे हम शिक्षा पर व्यय करे या सिचाई पर चाहे स्वास्थ्य सुविधाओ के विस्तार पर करे या अन्य विकास कार्यों पर। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार का सार्वजनिक व्यय दोषपूर्ण व विकृत है। गोखले ने सार्वजनिक व्यय पद्धति मे सुधार हेतु निम्न सुझाव दिये हैं –

(i) व्यय की भावना के स्थान पर मितव्ययता की भावना

(ii) सैन्य व्यय मे प्रभावी कमी

(iii) सार्वजनिक सेवाओ मे भारतीयो को अधिक रोजगार

(iv) स्वतन्त्र अकेक्षण की व्यवस्था।

(ब) करारोपण (Taxation)

ब्रिटिश काल म करारोपण करदाताओं के कल्याण के लिए न होकर निकासी हेतु था। भारत में प्रति व्यक्ति कर भार ससार मे सर्वाधिक था। भारत दिन–प्रतिदिन निर्धनता को प्राप्त हो रहा था तथा दूसरी ओर कर की दरें भी दिन–प्रतिदिन बढ रही थी। कर की दर ही अधिक नहीं थी बल्कि कर प्रणाली प्रतिगामी थी जो कि भारत की निधनता वृद्धि मे ओर सहायक हो रही थी। भारत जैसे निर्धन देश मे नम्क पर कर की दर बहुत ऊची थी। केरोसिन जैसी घरेलू उपयोग की वस्तु पर 45 प्रतिशत तक कर था। अफीम जेसी वस्तु भी सार्वजनिक आय का स्रोत थी जिसके उत्पादन को चीन के नैतिक पतन हतु प्रोत्साहित किया गया व भारत के पतन मे भी कारण बन रही थी। गोखले ने इस पर प्रतिबध की बात की। गोखले ने करारोपण के सदर्भ मे दोहरे सुझाव प्रस्तुत किये पहला कर की दरो मे कमी व दूसरा कर आय का उत्पादक कार्यों मे उपयोग।

(स) बजट अतिरेक (Surplus Budget)

गोपाल कृष्ण गोखले प्रारम से लेकर अत तक अपने प्रत्येक भाषण में यही जोर देते रहे कि बजट आर्थिक निकासी का एक माध्यम है। 20वी सदी के प्रारभ मे भारत सरकार द्वारा प्रस्तुत बजट अतिरेक के होते थे। इन अतिरेक बजट के माध्यम से ब्रिटिश समीक्षक यह समझाते थे कि भारत की आर्थिक स्थिति सुधर रही है लेकिन यह मात्र भ्रम ही था। वस्तुत यह अतिरेक बजट दोहरे शोषण का प्रतीक था।

यह बचत अतिरेक भारत की समृद्धि के कारण उत्पन्न नही हुआ बल्कि यह उत्पन्न हुए रूपये के अधिमूल्यन द्वारा 1 रूपये का मूल्य 13 1d * से बढकर 16d हो गया जिसस रूपये के सदर्भ में व्यय मे स्वत कमी हो गयी तथा कर वृद्धि के फलस्वरुप सार्वजनिक आय का स्तर और बढ गया। यह अतिरेक बजट गलत था क्योकि–

(i) जब भारत दुर्भिक्ष व अकाल आदि की भीषण त्रासदी से गुजर रहा था तब उसके ऊपर कर भार और बढ गया।

* 1 शिलिंग (sh) – 12 पेन्स (d)

2 शिलिंग (sh) 1 पाउड (£)

(ii) यह वित्तीय सतुलन स्वैच्छिक रूप से उत्पन्न किया गया क्योकि यह रूपये की 1894–95 की विनिमय मूल्य पर आधारित था जो कि न्यूनतम था।

(द) संघीय वित्त (Federal Finance)

भारत के सघीय ढाचे को दृष्टिगत रखकर गोखले ने वित्तीय ससाधनो को भी तदनुरूप विभाजित करने की बात रखी। प्रान्तीय सरकार केवल केन्द्रीय अनुदानो पर ही आश्रित न रहे, उनके स्वयं के वित्तीय स्रोत भी होने चाहिए। इतना ही नही गोखले का तो यह भी मत था कि केन्द्र सरकार अपनी आय की कमी को पूरा करने के लिए प्रान्तीय सरकारों से वार्षिक अशदान प्राप्त करे। गोखले के अनुसार स्थानीय निकायो की वित्तीय स्थिति चिन्ताजनक है। स्थानीय निकाय लोक कल्याणकारी कार्यक्रमो को क्रियान्वित करते हैं अत उनके अपने वित्तीय स्रोत अति आवश्यक हैं।

5. औद्योगिक विकास (Industrial Development)

गोखले ने भारत के औद्योगिक विकास पर विशेष बल दिया। उन्होने पूँजी, कुशल श्रम व उद्यमिता को औद्योगीकरण हेतु आवश्यक कारक माना व इनका भारत मे अभाव स्वीकार किया। लेकिन उन्होंने देश मे ही उपलब्ध ससाधनो को ओद्योगीकरण हेतु उपयोग में लेने पर बल दिया। वे जापान के औद्योगिक विकास से बहुत अधिक प्रभावित थे। उन्होने जापान के औद्योगिक विकास मे एक और उत्तरदायी कारक **तीव्र राष्ट्रीयता की भावना बताया** जिसे हमें अंगीकार करना होगा।

गोखले ने औद्योगिक विकास हेतु मुक्त व्यापार की नीति न अपना कर सरक्षण की नीति पर बल दिया। उनके अनुसार हमे ऐसी सरक्षण नीति अपनानी चाहिए जो हमारे औद्योगिक विकास के लक्ष्य की पूर्ति मे सहायक हो सके। गोखले सरक्षण नीति के दूसरे पक्ष से भी सतर्क थे व उन्होने कहा कि सरक्षण नीति अपनाते समय हमें उसके दुरुपयोग के प्रति भी सावधान रहना होगा। गोखले ने औद्योगिक विकास हेतु 'स्वदेशी' की अवधारणा पर बल दिया है जिसका कि हम पूर्व मे अध्ययन कर चुके हैं।

6. भारतीय रेलवे (Indian Railway)

गोपाल कृष्ण गोखले ने भारत की रेलवे विस्तार को जहाँ एक ओर उपयोगी बताया वहीं दूसरी ओर उन्होने इसे आर्थिक शोषण का माध्यम भी बताया। उन्होने कहा कि रेलो के कारण सचार व्यवस्था मे सुधार हुआ है। अकालग्रस्त क्षेत्रो मे अन्न पहुँचाने में भी रेले उपयोगी सिद्ध हुई हैं। कुछ उद्योगो विशेषत बागान उद्योगो को रेलवे से संपन्नता अधिक मिली हे लेकिन उसके भी अधिकाश लाभ विदेशियो ने ही डकार लिये। यह विदेशी शोषण का दूसरा रूप है। यह सत्य है कि रेलवे ने भारत को आधारभूत ढाचा प्रदान किया है लेकिन यह निर्माण कार्य वस्तुत ब्रिटिश व्यापारी वर्ग व धनिक समुदाय के हितो के लिये है तथा हमारे ससाधनो के और अधिक शोषण मे सहायक है।

गोपाल कष्ण गोखले ने स्पष्ट किया कि भारत विकट गरीबी से त्रस्त है। गरीब जनता पर पहले ही कर भार अधिक है ओर रेलवे के विस्तार से आर्थिक दबाव और बढ रहा है जो कि असहनीय हे। गोखले ने कहा कि रेलवे का निर्माण कभी भी अनुचित नही होता लेकिन हमारे समक्ष रेलवे निर्माण को सीमित करने हेतु दोहरे कारण है। प्रथम साधनो का अत्यधिक अभाव व द्वितीय रेल निर्माण का वास्तविक उद्देश्य क्या देश की वास्तविक प्रगति है? वस्तुत भारत मे रेल निर्माण का मूल उद्देश्य ब्रिटिश हितो की रक्षा है।

गोखले ने 1897 मे वेलबी आयोग के समक्ष भी रेल निर्माण कार्य रोकने की बात कही तथा रेलवे के व्यय को उस दिशा मे मोडने की बात कही जो कि भारतीयो के लिए अधिक उपयोगी है। उन्होने साक्ष्य प्रस्तुत करते समय कहा कि हमे उनके और रेल पथो की आवश्यकता नही। हम तो इस समय पहले शिक्षा पर व्यय करना चाहते हैं और तदुपरान्त रेलो पर। आप एक ही दिशा मे बढ रहे हे और इससे अन्य दिशाए उपेक्षित हो रही है। ..." ठीक है कि सभी रेले अनुपयोगी नही है परन्तु प्रश्न यह है कि हमारे लिए कौनसी उपयोगिता अपेक्षाकृत अधिक महत्व की है।

7 विदेशी विनिमय (Foreign Exchange)

गोखले ने भारत की विदेशी विनिमय दर की समीक्षा की। सपूर्ण ब्रिटिश काल मे भारतीय रूपये का अतर्राष्ट्रीय मूल्य अर्थात विदेशी विनिमय दर सर्वदा ब्रिटिश पौड स्टर्लिंग के साथ जुडी रही। विदेशी विनिमय दर का निर्धारण स्वैच्छिक रूप से ब्रिटिश हितो को दृष्टिगत रखते हुए किया जाता था। यह दर न तो रूपये के आतरिक मूल्य पर निर्भर थी और न ही रूपये की विदेशी मुद्रा बाजार मे माँग और पूर्ति से प्रभावित थी।

ब्रिटिश पौड व भारतीय रूपये के मध्य विनिमय दर इस प्रकार निर्धारित की जाती थी कि भारतीय धन सपदा का अधिकाधिक शोषण किया जा सके व ब्रिटिश हितो की पूर्ति की जा सके। इतना ही नही ब्रिटिश कर्मचारियो के लिए विनिमय क्षतिपूरक भत्ते की भी व्यवस्था थी जो कि उनके लिए दोहरा लाभ था। एक तो ब्रिटिश कर्मचारी बहुत अधिक वेतन पाते थे व दूसरी ओर उन्हे वेतन के 50 प्रतिशत भाग (अधिकतम 1000 पौंड) तक को निश्चत विनिमय दर 1s6d* पर स्टर्लिंग मे बदलने का अधिकार था जिसे ये चालू विनिमय दर पर पुन परिवर्तित करा सकते थे। इस प्रकार यह ब्रिटिश कर्मचारियो की आय का एक और माध्यम था।

ब्रिटिश सरकार ने विनिमय दर को इस प्रकार निर्धारित किया कि एक ओर तो यह ब्रिटेन के विदेशी व्यापार मे लाभप्रद हुई व दूसरी ओर सार्वजनिक ऋण जो ब्रिटिश

*	4 Farthings (f)	1 Penny (d)
	12 Pence	1 Shilling (Sh)
	20 Shillings	1 Pound (£)

सरकार ने लिए वे पोंड के रूप मे बढ गये। गोखले ने विदेशी विनिमय दर न्यायपूर्ण रखने पर बल दिया जिससे भारत के हितो पर कुठाराघात न हो।

8. विदेशी व्यापार नीति (Foreign Trade Policy)

गोखले ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो द्वारा प्रस्तुत मुक्त व्यापर नीति का प्रबल विरोध किया। वे मुक्त व्यापार के लाभो से अनभिज्ञ नही थे लेकिन भारत की विशेष परिस्थिति के सदर्भ मे उन्होने इसे उपयुक्त नही समझा। भारत एक उपनिवेश है जहाँ ब्रिटिश सरकार हमारी व्यापार नीति की निर्धारक है। ब्रिटिश सरकार भारत के लिए इस प्रकार की मुक्त व्यापार नीति की पक्षधर है जिससे ब्रिटेन का तैयार माल तो भारत मे सरलतापूर्वक बेचा जा सके तथा ब्रिटिश उद्योगो को कच्चे माल की आपूर्ति हो सके। उन्होने भारत के सूती कपडे पर ब्रिटेन मे आयात पर भारी शुल्क लगाया जिसका स्पष्ट उद्देश्य लकाशायर के सूती वस्त्र उद्योग की रक्षा करना था। इस प्रकार प्रतिष्ठित विचारधारा के अनुयायी व मुक्त व्यापार के समर्थक ब्रिटेन ने स्वय के देश मे तो सरक्षण की नीति अपनायी व भारत के लिए मुक्त व्यापार की। यह दोहरी विदेश व्यापार नीति भारत के आर्थिक शोषण का माध्यम बनी।

गोखले ने बताया कि सपूर्ण ब्रिटिश काल मे भारत के निर्यात आयातो की अपेक्षा बहुत अधिक रहे। उन्होने भारत के वार्षिक आयात 100 करोड रु बताये व निर्यात 180 करोड रु. वार्षिक बताये व इस अतर को भारत के लिए आर्थिक दृष्टि से महान हानिप्रद बताया।

9. भारतीय श्रम (Indian Labour)

गोखले ने श्रम की महत्ता पर बहुत अधिक बल दिया है। वे जापान के श्रमिकों से बहुत अधिक प्रभावित थे। *वहाँ के श्रमिक* राष्ट्र प्रेम की भावना से परिपूर्ण व अनुशासित थे। उन्होने भारत मे भी श्रम की बहुलता के आधार पर औद्योगिकरण की प्रक्रिया प्रारभ करने पर बल दिया। उन्होने दो प्रकार के श्रमिकों की समस्या पर ब्रिटिश सरकार का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट किया –

(अ) बाल श्रमिक (Child Labour)

बाल श्रमिक कारखानों मे प्रचुर मात्रा मे कार्य करते हैं। शिक्षा के अवसर न होने के कारण वे प्राथमिक शिक्षा से भी वचित हैं। उनसे कार्य भी अधिक समय तक लिया जाता है। गोखले ने कारखाना आयोग 1908 की रिपोर्ट के आधार पर जो बिल परिषद में मार्च 1911 मे प्रस्तुत किया गया, उसमे सशोधन प्रस्तुत किये। हालाकि उनके सशोधन स्वीकार नही हुए लेकिन इससे यह तो स्पष्ट होता है कि गोखले बाल श्रमिको की शिक्षा को लेकर कितने सवेदनशील थे। उनके द्वारा प्रस्तुत सशोधन थे–

(i) प्रत्ये कारखाने मे जहाँ 9–12 वर्ष के 20 से अधिक बालक कार्य करते हैं वहाँ प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए।

(ii) इस प्रकार की शिक्षा नि शुल्क होनी चाहिए।

(ब) अनुबन्धित श्रम (Indentured Labour)

गोखले ने उन श्रमिको के प्रति गहरी सहानुभूति व्यक्त की जिनको भर्ती के समय न कार्य बताया जाता है और न ही कार्य क्षेत्र। वस्तुत उन्हे भर्ती करके अफ्रीका के सुदूर जगलो मे या अन्य दूरस्थ क्षेत्रो मे काम पर भेजा जाता है। उसे अज्ञात व दूरस्थ क्षेत्र मे जाकर उनसे इच्छानुसार काम लिया जाता है। उनकी स्थिति दासो से भी बदतर है। गोखले ने इस प्रणाली को तुरन्त समाप्त करने पर बल दिया।

(10) आर्थिक सुधार (Economic Reforms)

आर्थिक सुधार हेतु कल्याणकारी योजनाएँ

गोपाल कृष्ण गोखले ने आर्थिक विकास को व्यापक रूप मे सोचा व समझा। उन्होने आर्थिक विकास को आर्थिक कल्याण के परिप्रेक्ष्य मे देखा। उन्होंने भारत मे इसकी प्राप्ति हेतु जो सुझाव समय–समय पर दिये उन्हे निम्न बिन्दुओ के अन्तर्गत रखा जा सकता है

(i) भारत के सैन्य व्यय मे व्यापक कटौती की जाय तथा अवशिष्ट भाग को जनकल्याणकारी योजनाओ पर व्यय किया जाय।

(ii) सार्वजनिक आय मे विशेष रूप से लगान के रूप मे प्राप्त आय मे कमी की जाय क्योकि गरीब किसान इस अत्यधिक भार को वहन करने में अक्षम है।

(iii) किसानो को भारी ऋण भार से मुक्ति दिलायी जाय।

(iv) एक ओर तो किसानो मे मितव्ययता की आदत का प्रसार किया जाय व दूसरी ओर उचित ब्याज की दर पर ऋण उपलब्ध करवाने हेतु सहकारी समितियो का विस्तार किया जाय।

(v) सिचाई की सुविधाओ का व्यापक स्तर पर विस्तार किया जाय तथा वैज्ञानिक खेती पर बल दिया जाय।

(vi) तकनीकी व औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय। इसके लिए कुछ भारतीयो का चयन कर उन्हे विदेश भेजा जा सकता है।

(vii) देश में प्राथमिक शिक्षा को विस्तृत आधार प्रदान किया जाना चाहिए क्योकि इसके अभाव मे अज्ञानता को दूर नही किया जा सकता।

(viii) स्वास्थ्य सबधी दशाओ का भी विस्तार किया जाय। इसके लिए जहाँ एक ओर स्वच्छ जल पीने के लिए आवश्यक है तो दूसरी ओर पानी का उचित निकास व सफाई।

(ix) सघीय प्रणाली के अतर्गत आर्थिक विकेन्द्रण हो। स्थानीय निकायो को और अधिक वित्तीय स्रोत हो ताकि उचित भागीदारी के रूप मे वे जन कल्याण कार्यक्रम लागू कर सके।

(x) अनुबन्धित श्रम (Indentured Labour) प्रणाली समाप्त कर दी जानी चाहिए जहाँ भारतीय श्रमिको की स्थिति दासो से भी बदतर है।

गोखले ने उपर्युक्त सुझावो का क्रियान्वयन होने के पश्चात भारत के सुखद भविष्य की संकल्पना की।

गोखले एक उदारवादी विचारक थे। प्रारम्भ मे वे ब्रिटिश शासन की न्यायप्रियता व प्रशासनिक व्यवस्था के पक्षधर थे। गोखले का प्रारंभिक मत था कि ब्रिटिश पद्धति के अतर्गत देश के आर्थिक विकास को एक नयी दिशा प्रदान की जा सकती है लेकिन शीघ्र ही वे वस्तु स्थिति को समझ गये। गोखले ने भारत की तात्कालिक सामाजिक–आर्थिक स्थिति को तर्कपूर्ण विचारों के माध्यम से सरकार के समक्ष रखने का सार्थक प्रयास किया। गोखले ने ब्रिटिश सरकार की शोषणकारी आर्थिक नीतियाँ भारतीय जनता के समक्ष प्रभावी तरीके से प्रस्तुत की। यह गोपाल कृष्ण गोखले का ही व्यक्तित्व ही था जिसने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का मार्ग प्रशस्त किया।

संदर्भ

1. डी जी. कार्वे, डी वी आबेकर,, 'स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स ऑफ गोपाल कृष्ण गोखले'
2. आर. पी पटवर्द्धन, दी सलेक्ट गोखले
3. टी वी पार्वते, गोपाल कृष्ण गोखले
4. डी बी माथुर, गोखले, ए पॉलिटिकल बायोग्राफी

प्रश्न

1. गोपल कृष्ण गोखले के अनुसार देश के आर्थिक विकास के निर्धारक चर कौन–कौन से हैं?
2. गोखले ने भारत से आर्थिक निकासी मे किन–किन मदो को शामिल किया है ?
3. 'स्वदेशी' पर व्यक्त किये गये गोखले के विचारो को लिखिए।
4. गोखले ने देश के औद्योगिक विकास हेतु मुक्त व्यापार के स्थान पर सरक्षण की नीति पर क्यो बल दिया?
5. सार्वजनिक वित्त पर गोखले के विचार स्पष्ट करते हुए उद्योग व रेलवे पर भी उनके विचारो की समीक्षा कीजिए।
6. गोपाल कृष्ण गोखले के विदेशी विनिमय व्यापार तथा श्रम के सम्बन्ध में विचार स्पष्ट करते हुए उनके आर्थिक सुधार के कार्यक्रमो की व्याख्या कीजिए।
7. गोखले के आर्थिक विचारो पर सक्षिप्त निबध लिखिए।



14

रोमेश चन्द्र दत्त
(R. C. Dutt)

परिचय

भारतीय आर्थिक इतिहास के लेखक समीक्षक श्री रोमेश चन्द्र दत्त का जन्म 1848 मे कलकत्ता मे एक शिक्षित व सपन्न परिवार मे हुआ। उनके पिता बगाल मे ही डिप्टी कलक्टर थ। कलकत्ता मे ही उन्होने अपनी शिक्षा ग्रहण की व कक्षा मे वे सदैव प्रथम आते थे। 1869 मे उनका चयन सबसे महत्वपूर्ण नागरिक सेवा इडियन सिविल सर्विस मे हुआ। 1871 मे उनकी प्रथम नियुक्ति अलीपुर मे सहायक मजिस्ट्रेट के रूप मे हुई। दत्त ने आई सी एस अधिकारी के रूप मे कार्य करते हुए भारत की आर्थिक स्थिति को अत्यन्त निकटता से देखा। इतना ही नही ब्रिटिश सरकार की नीतियो को क्रियान्वित करने के कारण अच्छी तरह से समझा। 1894 मे दत्त बर्दवान के कमिश्नर बन गये। कमिश्नर का पद ग्रहण करने वाले वे प्रथम भारतीय थे।

रोमेश चन्द्र दत्त के अत्यधिक कर्मठ ईमानदार अधिकारी होने के उपरान्त भी उन्हे सचिवालय मे नियुक्त नही किया गया जबकि उनसे कनिष्ठ अधिकारी वहाँ पहुँच गये। फलस्वरूप विरोध प्रकट करते हुए उन्होने 1897 मे समय से पूर्व ही सेवा निवृत्ति ग्रहण कर ली व सार्वजनिक जीवन मे प्रवेश कर लिया। 1899 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस मे शामिल हुए व अध्यक्ष चुने गये। इसके उपरान्त दत्त इगलैड चले गये जहाँ लदन विश्वविद्यालय मे इतिहास के प्रवक्ता बन गये। लदन मे वे 1904 तक रहे।

रोमेश चन्द्र दत्त अग्रेजी व बगला भाषा के मूर्धन्य विद्वान थे। उन्होने ऋग्वेद महाभारत व रामायण जैसे ग्रन्थो पर बगला मे भाष्य लिखे वही बगला भाषा के उपन्यासो का अग्रेजी मे अनुवाद किया। उन्होने भारत की आर्थिक स्थिति का यथार्थ स्वरूप प्रस्तुत किया जो अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे उनकी बहुत बडी मौलिक देन है। उनकी अर्थशास्त्र पर प्रमुख पुस्तके है–फैमिन्स इन इडिया (Famines in India), इकोनोमिक हिस्ट्री आफ इडिया (Economic History of India) तथा इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इडिया इन द विक्टोरियन एज (Economic History of India in the Victorian Age)।

रोमेश चन्द्र दत्त की लेखनी एक ओर उनकी साहित्यिक अभिरूचि का प्रमाण है तो दूसरी ओर मातृभूमि से प्रेम का। दत्त के कृतित्व जहाँ एक ओर भारत के गौरवशाली

अतीत को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते है वही दूसरी ओर ब्रिटिश शासन के अतराल भारत की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करते है।

दत्त द्वारा विभिन्न आर्थिक विषयो पर रखे गये विचार इस प्रकार हैं

(1) निर्धनता (Poverty)

प्रो दत्त ने भारत की निर्धनता को एक प्रशासनिक अधिकारी के रूप मे जनता के मध्य रहते हुए अति निकटता से देखा। उन्होने भारतीय दरिद्रता का विश्लेषण करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझा। उन्होंने बताया कि भारत दुनिया का निर्धनतम राष्ट्र है। उनके अनुसार प्रति व्यक्ति आय के वे समक जो ब्रिटिश समीक्षको ने बताये है। यदि हम उन्हे सत्य भी मान ले तो भी प्रतिव्यक्ति आय की दृष्टि भारत निर्धनतम है। सन 1882 मे लार्ड क्रोमर व सर डेविड बारबर ने भारत की प्रतिव्यक्ति आय 27 रू बतायी। 1900 मे लार्ड कर्जन ने यह 30 रू बतायी। जबकि यह वास्तविकता से कही अधिक है।[1] यदि इसे पौंड मे व्यक्त करे तो यह आय मात्र 2 पौड है। जबकि ब्रटेन की प्रति व्यक्ति आय 42 पौंड है। दत्त ने बताया कि 2 पौड प्रति व्यक्ति आय से इस औसत रूप में दो समय का सामान्य भोजन, सिर ढकने के लिए झौपडी व पहनने के लिए सामान्य वस्त्र ही प्राप्त कर सकते है लेकिन खेदजनक तो यह है कि इस 2 पौंड मे से भी प्रतिव्यक्ति 45 8 पैनी कर देना पडता है। अब खर्च योग्य आय का अनुमान स्वत ही लगाया जा सकता है। उन्होने बताया कि भारत पर प्रतिव्यक्ति प्रति पौंड कराधान ब्रिटेन की तुलना में 40 प्रतिशत अधिक है।

दत्त ने विभिन्न प्रतिवेदनो व स्वय द्वारा देखी गयी व विश्लेषित स्थिति के आधार पर भारत की दरिद्रता का दर्दनाक चित्रण प्रस्तुत किया।[2] उन्होने बताया कि बम्बई प्रान्त मे अधिकाश जनता को अपर्याप्त भोजन ही मिल पाता है। फिरोजपुर (पजाब) के सहायक आयुक्त की रिपोर्ट कहती है कि वहाँ अधिकाश गावो मे जनता को 24 घटे में 2 बार खाना नसीब नही है तो इटावा के जिलाधीश की रिपोर्ट कहती है कि प्रति परिवार जो मासिक आय है वह परिवार का तन ढक सकती है, सिर ढक सकती है व एक समय भोजन प्रदान कर सकती है। सम्पूर्ण देश की यही स्थिति है कहीं कम बदतर है तो कही अधिक बदतर। भारतीय भूख व दरिद्रता के आदी हो चुके है।

दत्त ने कहा कि भारत की धरती उपजाऊ है, व्यक्ति शात प्रकृति के हैं, कुशल व साहसी है और यदि एक सभ्य सरकार उनको समृद्धशाली बनाना चाहती है तो क्या कारण है कि गरीबी को दूर नही किया जा सकता। निश्चित रूप से इसको दूर करने का उपाय होना चाहिए। उन्होने दो शब्दो मे यह उपाय बताया।[3]

प्रथम कटौती (Retrenchment) एव द्वितीय प्रतिनिधित्व (Representation)।

(i) कटौती (Retrenchment)

कटौती से आशय दत्त का वित्तीय कटौतियो से था। ये वित्तीय कटौतियाँ एक ओर

कर कटौती है तो दूसरी ओर अनुत्पादक व्यय मे कटौती है। सक्षेप मे उन्होने निम्न कटौतियो का सुझाव दिया।

(अ) भूमि पर लगान मे कटौती

(ब) भूमि पर उपकर मे कटौती

(स) भारतीय कारखानों के उत्पादन पर उत्पाद शुल्क मे कटौती

(द) सैनिक व्यय मे कटौती

(य) घरेलू प्रशासनिक व्यय मे कटौती (Home Charges)

(र) भारत मे यूरोपीय व्यक्तियो को रोजगार में कटौती

(ii) प्रतिनिधित्व (Representation)

प्रतिनिधित्व से आशय भारतीयो को प्रशासन व सरकार में प्रतिनिधित्व दिया जाय यह प्रतिनिधित्व कुछ अश तक प्रशासन व विधान परिषद दोनो मे आवश्यक है। इससे ब्रिटिश भारतीय समस्या को समझने व हल करने मे सफल होगे।

2 भारत मे अकाल (Famine in India)

दत्त के अनुसार यह एक ऐसा तथ्य है जिसने जनता के मन मस्तिष्क को उद्वेलित कर दिया है। ब्रिटिश साम्राज्य के प्रत्येक भाग मे प्रगति व समृद्धि हो रही है वहीं अकेले भारत मे गरीबी व त्रासदी की स्थिति है। अकाल यहाँ बारबार आते हैं। 19 वीं सदी के अतिम भाग मे यहाँ बराबर अकाल आये। ये भीषण अकाल अत्यधिक जनहानि का कारण बने यह निम्न तालिका से स्पष्ट है।

वर्ष	भारत मे भीषण अकाल प्रभावित क्षेत्र	मृत्यु
1876–78	बम्बई हैदराबाद मद्रास उत्तरप्रदेश व मैसूर	1 करोड़ से अधिक
1891–92	मद्रास बम्बई दक्षिण प्रान्त बगाल अजमेर मारवाड़	16 लाख
1899–1900	समस्त उत्तरी–पश्चिमी भारत मद्रास व उड़ीसा	1 25 करोड

उपर्युक्त तालिका से 19वी सदी के अत मे अकाल की भीषणता का अनुमान लगाया जा सकता है। दत्त ने बताया कि अकाल भारत की स्थायी गरीबी का परिणाम है। दत्त ने बताया कि भारत का कुल खाद्यान्न उत्पादन इन अकाल के वर्षों मे बहुत अधिक प्रभावित हुआ हो ऐसा नही है। वस्तुत जिस क्षेत्र की आय समाप्त हो गयी है व

साधन के अभाव मे दूसरे पडौस के क्षेत्र से अन्न खरीदने मे असमर्थ रहे है जो कि उनकी गरीबी का परिणाम है। वर्षा की विफलता तो किसी एक क्षेत्र की फसल को नष्ट करती है, यह तो गरीबी है जिसके कारण बार–बार अकाल आते है।

दत्त ने स्पष्ट शब्दो मे कहा कि भारत के अकाल न तो माल्थस के जनसख्या के नियम का परिणाम हे और न ही भारतीयो के आलसी होने का। यह तो परिणाम हे भारत की दयनीय आर्थिक स्थिति का दुनिया का कोई भी देश जिसकी कि स्थिति भारत जैसी हे चाहे वहाँ के नागरिक साहसी हो या भुमि उपजाऊ हो, बार–बार अकाल व भुखमरी से त्रस्त होगा ही। जिस देश के उद्योग नष्ट कर दिये गये हो, कृषि के ऊपर भारी कर हो, देश की आय का एक तिहाई भाग बाहर चला जाय वह निश्चित रूप से स्थायी दरिद्रता व अकाल से ग्रसित ही रहेगा। आर्थिक नियम तो एशिया व यूरोप दोनो के लिए समान है। यदि भारत गरीब है तो स्वय के आर्थिक कारणों से। इन परिस्थितियो में भारत के समृद्धशाली होने की बात करना, एक आर्थिक आश्चर्य होगा और विज्ञान आश्चर्य को नही मानता हे।

(3) निकासी (Drain)

दत्त ने बताया कि भारत की भीषण निर्धनता व बार–बार पडने वाले अकालो के लिए बहुत बडी सीमा तक भारत से आर्थिक निकासी उत्तरदायी है। दत्त ने बडे स्पष्ट शब्दो मे कहा कि भारत की शुद्ध सार्वजनिक आय का आधा भाग ब्रिटेन चला जाता है जिसके कभी भी किसी भी रूप में लोटने की कोई उम्मीद नही है। भारत के प्रचुर प्राकृतिक ससाधन किसी दूसरे देश के लिए ही है ओर उसे सपन्न बना रहे हैं।

दत्त ने अपनी पुस्तक 'इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इडिया' मे बडे स्पष्ट शब्दों मे कहा कि दुनिया का समृद्धतम देश नीचतापूर्ण तरीके से वसूली कर रहा है। उन्होने कहा कि देश के साधनो की सीमा से बढकर इतनी बडी आर्थिक निकासी दुनिया के किसी भी समृद्धशाली देश को गरीब बना सकती है। इसने भारत को विश्व–इतिहास मे अभूतपूर्व व निन्दनीय रूप मे निरन्तर व व्यापक रूप से पडने वाले भीषण अकालो का देश बना दिया है।

रोमेश चन्द्र दत ने अति स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि निकासी का सबसे प्रमुख स्त्रोत सार्वजनिक आय का मुख्य भाग लगान के रूप मे वसूल किया जाता है। लगान उस जनसमूह से सबद्ध है जो कि स्वय दरिद्रता व बार–बार आने वाले अकाल से त्रस्त है। एक गरीब किसान जिसकी फसल अकाल ने नष्ट प्राय हो चुकी हे। लगान अनिवार्य रूप से चुकायेगा, ऐसी परिस्थिति मे उसकी भूख से मौत नही होगी तो क्या होगी। दत्त ने स्पष्ट किया कि लगान से प्राप्त होने वाली आय भीषण अकाल की स्थिति मे भी कम नही हुई। यह लगान से प्राप्त आय गृह प्रभार पर होने वाले व्यय के बराबर हे जो कि निकासी का स्पष्ट स्रोत है।

दत्त ने सैन्य व्यय सार्वजनिक ऋण गृह प्रभार विदेशी व्यापार पौड–रुपया विनिमय दर ब्रिटिश नागरिकों को भारत म रोजगार भूमि पर कर भार आदि को निकासी का स्रोत माना। उन्हाने बताया कि जब इगलैंड मे सार्वजनिक ऋण भार कम हो रहा हो तो यह कैसे सभव हे कि भारत सरकार के ऋण भार मे वृद्धि हो। दत्त ने भी निकासी की गणना की। उन्होन भारत से निकासी की मात्रा 2 करोड पौड प्रतिवर्ष बतायी। यह गणना नौरोजी की अपक्षा काफी कम हे।

(4) कृषि सबधी विचार (Thoughts on Agriculture)

दत्त एक प्रशासनिक अधिकारी हाने के कारण कृषि भू धारण व्यवस्था लगान व कृषकों की यथार्थ स्थिति से निकट रूप से जुड हुए थे। भारतीय अर्थव्यवस्था की दयनीय स्थिति का विवेचन करते समय सर्वाधिक ध्यान उन्होने कृषि पर दिया। दत्त ने बताया कि भारत सरकार की आय का मुख्य स्रोत लगान है। लगान का सार्वजनिक आय मे अश एक तिहाई है। यद्यपि लगान प्रारम्भ से ही सरकार की आय का मुख्य स्रोत रही है लेकिन ब्रिटिश काल से पूर्व लगान से प्राप्त होने वाली आय राष्ट्रहित मे ही प्रयुक्त होती थी तथा भारतीय कृषक प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से इससे लाभान्वित होते थे । लेकिन ब्रिटिश काल मे तो यह निकासी का मुख्य स्रात था।

ब्रिटिश काल मे भू लगान की दो प्रकार की व्यवस्थाओं की दत्त ने विस्तृत विवेचना की। प्रथम जमीदारी प्रथा तथा द्वितीय रैयतवाड़ी प्रथा।

ये दो प्रथाएँ पुन दो प्रकार की हो सकती हैं। प्रथम स्थायी बदोबस्त एव द्वितीय अस्थायी बदोबस्त।

भारत म जमीदारी प्रथा के तो दोनो रूप देखने को मिलते थे लेकिन रेयतवाडी स्थायी बन्दोबस्त के रूप मे नही थी। सर टॉमस मुनरो ने रैयतवाडी का स्थायी बन्दोबस्त का स्वरूप भी प्रस्तुत किया था लेकिन उसे लागू नहीं किया गया।

आर सी दत्त ने एक युवा अधिकारी के रूप मे 1874 मे बगाल के स्थायी बदोबस्त पर सशक्त प्रहार किया और इसे कार्नवालिस की जबर्दस्त गलती बतायी। उल्लेखनीय है कि एक अधिकारी के रूप मे जमीदारी प्रथा पर अपने विचारो के कारण वे सदैव जमीदारो के कोपभाजन का शिकार ही रहे।

समय व्यतीत होने के साथ–साथ उनके विचार भी बदल गये। उन्होंने जब देश मे पडे अकालो की विवेचना की तो पाया कि इन अकालो का दुष्प्रभाव तुलनात्मक रूप से बगाल मे कम हे। बगाल के किसान की स्थिति अन्य भागो से अच्छी है और इसका कारण बताते समय उन्होने स्पष्ट किया कि यहाँ स्थायी बदोबस्त प्रणाली हैं। इस सदर्भ म उन्होने रेयतवाडी प्रथा की कटु आलोचना की। उन्होने इस सबध मे चार विशेषताए बतायी।

(i) रैयतवाडी मे लगान की मात्रा स्थिर न होकर बदलती रहती है व दर ऊँची होती है।

(ii) रैयतवाडी किसानो को धन सचय हेतु प्रेरित नही करती फलत वे दयनीय स्थिति मे रहते हैं।

(iii) रैयतवाडी राजस्व अधिकारियो के मध्य व्याप्त व्यापक भ्रष्टाचार और अनैतिक दुराचार का कारण है।

(iv) यह श्रम के शोषण को प्रोत्साहित करती है। श्रमिको से कम मजदूरी दर पर अधिक काम लिया जात है।

इस प्रकार उन्होने रैयतवाडी के अस्थायी बदोबस्त स्वरूप को बदलने की माग की। उन्होने अत मे सर टॉमस मुनरो द्वारा प्रस्तुत रैयतवाडी के स्थायी बदोबस्त को सर्वश्रेष्ठ बताया। इसके अभाव मे बगाल के स्थायी बदोबस्त का अनुकरण करने का सुझाव दिया।

वस्तुत दत्त भातीय कृषक की दुर्दशा व बार–बार आने वाले भीषण अकाल से चिंतित थे और उन्होने इस परिप्रेक्ष्य मे लगान की भारी मात्रा को समझाने का प्रयास किया। उन्होने लगान वसूलने की प्रक्रिया को भारतीय किसान के पक्ष मे सुधारने पर बल दिया। लार्ड कर्जन को लिखे चतुर्थ खुले पत्र मे उन्होने स्पष्ट कहा है कि न तो मै यह माग करता हूँ कि बगाल के स्थायी बदोबस्त का समस्त भारत मे प्रसार किया जाय न मैने ऐसी कोई मॉग पहले की। मै तो यह चाहता हूँ कि भारत मे प्रत्येक प्रात की अपनी भूमि पद्धति है, जिसके अतर्गत वहाँ के लोग पीढियो से रहते आ रहे हैं। मैंने तो यह माग की है कि जिस पद्धति के अतर्गत किसान रहता आ रहा है। उसे सरक्षण प्रदान किया जाय।

(5) उद्योग (Industry)

19वी सदी के प्रारभ तक भारतीय अर्थव्यवस्था पूर्णतया कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था नही थी। भार मे लघु व कुटीर उद्योग उन्नत अवस्था में थे। वास्तव में भारत के आर्थिक शोषण का प्रारभ औद्योगिक शोषण से ही हुआ। दत्त के अनुसार यह शोषण इतना व्यापक था कि लघु व कुटीर उद्योग ही नष्ट प्राय हो गये।

दत्त ने अपनी पुस्तक The Economic History of India-The Victorian Age के प्रस्तावना में ही लिखा है कि ब्रिटिश सरकार ने ऐसी नीति अपनायी कि भारतीय उद्योग सामप्त हो जाये व ब्रिटिश उद्योगो का विस्तार हो। भारतीय वस्तुओ के इगलैंड में आयात को भारी शुल्क लगाकर हतोत्साहित किया गया। भारत मे ब्रिटिश वस्तुओ के निर्यात को नाम मात्र का शुल्क लगाकर प्रोत्साहित किया गया। ब्रिटिश नीति के दोहरे पहलू थे–भारत में ब्रिटिश उद्योगो के लिए कच्चे माल का उत्पादन व ब्रिटिश तैयार माल का भारत मे उपभोग। उन्होने प्रसिद्ध इतिहासकार एच एच विल्सन को उद्धृत करते हुए लिखा है राजनीतिक अन्याय को एक हथियार के रूप में सहारा लेते हुए ब्रिटेन ने अपने मुख्य प्रतिद्वन्द्वी को प्रतियोगिता से बाहर कर दिया जिससे वह बराबर की शर्तों पर कभी सामना नही कर सकता था।

(6) सार्वजनिक वित्त (Public Finance)

प्रो रोमेश चन्द्र दत्त ने सार्वजनिक वित्त के तीनो पक्षो–सार्वजनिक आय सार्वजनिक व्यय व सार्वजनिक ऋण पर प्रकाश डाला।

(i) सार्वजनिक आय (Public Revenue)

सार्वजनिक आय का मुख्य स्रोत करारोपण था। यह करारोपण भारत मे बहुत अधिक था। भारत मे प्रति व्यक्ति प्रति पौंड वसूल किये जाने वाला कर बहुत अधिक था। उन्होने बताया कि भारत की प्रतिव्यक्ति आय सरकारी अनुमान के अनुसार 2 पौंड या 40 s है। 40s पर कर की मात्रा 4s 8d है अर्थात् प्रतिव्यक्ति प्रति पौड कर तो दर 2s 4d है। यदि हम ब्रिटेन मे यह दर देखे तो ज्ञात होता है कि वहाँ यह प्रतिव्यक्ति प्रतिपौंड कर की मात्रा 1s 8d है। स्पष्ट है कि भारत मे कर की मात्रा ब्रिटेन से 40 प्रतिशत अधिक है।

भारत मे सार्वजनिक आय का मुख्य स्रोत भूमि पर लगान रहा है। यह भारत की कुल आय का एक चौथाई से अधिक भाग है। दत्त के अनुसार भारत पर पडने वाले भीषण अकाल व कृषक की दयनीय स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए यह कर भार बहुत अधिक है। उन्होने बताया–नमक जैसी वस्तु पर भी कर है व कर की दर भी बहुत ऊँची निर्धारित की गयी है।

रोमेश चन्द्र दत्त ने बताया कि जब किसी देश मे कर लगाया जाता है और उसी देश मे खर्च किया जाता है तो वह उसी देश की जनता के मध्य चलायमान होता है। उस देश के व्यापार, उद्योग व कृषि को समृद्ध करता है तथा उसका फल पुन जनता तक किसी न किसी रूप मे पहुँचता है। लेकिन जब जिस देश मे कर लगाया जाता और उस देश में उसे खर्च नहीं किया जाता वह बाहर भेज दिया जाता है तो यह कभी भी किसी भी रूप मे वापस लौट कर नहीं आता और न ही व्यापार उद्योग व कृषि का विकास कर पाता है।

(ii) सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure)

दत्त के अनुसार भारत मे सार्वजनिक व्यय की सरचना ब्रिटिश हितों की पूरक है। रेलवे व सिचाई पर होने वाले व्यय को निकाल दें तो अधिकाश व्यय नागरिक व सैन्य प्रशासन पर किया जाता है। दत्त द्वारा प्रस्तुत समकों को निम्न तालिका के अतर्गत प्रस्तुत किया जा रहा है जो कि भारत मे सार्वजनिक व्यय की सरचना को बता रही है।

भारत मे सार्वजनिक व्यय (1901–02)

मद	व्यय (पौड मे)
i रेलवे व सिचाई	2 17 44 053
ii गृह प्रभार	1 73 68 655
iii सैन्य व्यय	1 57 63 931

iv. नागरिक प्रशासन व्यय	1,52,86,181
v. अन्य	12,31,462
कुल	7,13,94,282

स्रोत– द इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया– द विक्टोरिया एज,पृष्ठ 604

दत्त ने उपर्युक्त सार्वजनिक व्यय की सरचना के सदर्भ मे दो उल्लेखनीय तथ्य और बताये–

(अ) रेलवे व सिंचाई पर होने वाले व्यय मे अधिकाश भाग रेलवे का है।

(ब) गृह प्रभार के अंतर्गत भी अधिकाश भाग सार्वजनिक ऋण व रेलवे पर ब्याज तथा सैन्य प्रभार का है।

(iii) सार्वजनिक ऋण (Public Debt)

दत्त ने बताया कि ब्रिटिश हितो की परिपूर्ति के कारण भारत प्रारभ से ही सार्वजनिक ऋण से ग्रस्त है। उल्लेखनीय है कि जब इगलैंड मे सार्वजनिक ऋण कम हो रहे हैं तो फिर भारत में क्यों बढ रहे हैं। जब 1858 में ईस्ट इंडिया ने भारत का शासन ब्रिटिश सरकार को सौंपा था उस समय भारत पर ऋण की मात्रा 70 मिलियन पौंड थी। कंपनी ने भारत को दी गई सेवाओ के बदले में 150 मिलियन पौंड वसूल किये जो कि वित्तीय दृष्टि से पूर्णतया गलत व अन्यायपूर्ण थे। इतना ही नहीं उन्होने अफगान युद्ध, चीन व भारत से बाहर लडे गये युद्धों की भी कीमत वसूल की।

ब्रिटिश साम्राज्य के प्रारम्भिक 18 वर्ष में यह सार्वजनिक ऋण दुगना होकर 1877 में 140 मिलियन पौंड हो गया। 1900 तक यह तेजी से बढकर 224 मिलियन पौंड हो गया। इस ऋण पर भारी मात्रा में ब्याज चुकाना होता है। दत्त ने बताया कि महत्वपूर्ण तो यह है कि ब्रिटिश काल में 1878 व 1897 के अफगान युद्ध का व्यय भी भारत के खजाने से चुकाया गया जबकि उस समय हमें अकाल सहायता की आवश्यकता थी।

(7) रेलवे व सिंचाई (Railway & Irrigation)

प्रो. रोमेश चन्द्र दत्त ने बताया कि भारतीय प्रशासन इगलैंड की जनता की विचारधारा से प्रभावित था न कि भारत की जनता के विचारों से। अंग्रेजों ने रेलों के महत्व को समझा, भारत में सिचाई के महत्व को नहीं। ब्रिटिश उद्योगपतियों ने रेलवे के विस्तार के द्वारा भारत में विस्तृत बाजार क्षेत्र की सकल्पना की। ब्रिटिश व्यापारियों ने रेलवे के और विस्तार के माध्यम से नयी व्यापारिक सुविधाओं की माग की। उद्योगपतियों के समूह ने इसके लिए एक ओर तो ससद में माग की व दूसरी ओर भारत सरकार से सीधा सबध स्थापित किया। किसी ने भी सिचाई की परवाह नही की क्योंकि इगलैंड में किसी ने भी भारत के लिए सिचाई का महत्व नहीं समझा। दत्त ने बताया कि अब तक का व्यय इस बात का साक्षी है कि रेलवे की तुलना में सिंचाई पर किया गया व्यय बहुत कम है उन्होने बताया कि मार्च 1902 तक रेलवे पर 226 मिलियन पौंड व्यय किये जा चुके हैं जबकि सिचाई पर मात्र 24 मिलियन पौंड व्यय किया गया है।

दत्त ने एक और रोचक तथ्य बताया कि सिंचाई पर हम जो विनियोग करते हैं उसका 6–9 प्रतिशत वार्षिक लाभ के रूप मे प्राप्त होता है जबकि रेलवे तो निरन्तर घाटे मे है। रेलवे के लगातार घाटे मे होने के बावजूद हम रेलवे कपनियो को ब्याज के अतिरिक्त 4–5 प्रतिशत लाभांश गारटी के रूप मे प्रदान करते हैं तब भी सरकार रेलवे के विस्तार पर बल देती है न सिंचाई सुविधाओ के विस्तार पर। उन्होने कहा कि रेलें भारत की अन्न आपूर्ति मे एक भी दाने की वृद्धि नही करती जबकि सिंचाई से अन्न दुगना पैदा होता है। देश के अकालो मे कमी आती है। फिर भी सरकार सिंचाई विकास पर पर्याप्त ध्यान नही देती।

(8) कीमत व मजदूरी (Price and Wages)

ब्रिटिश काल मे भारत मे मजदूरी का स्तर काफी नीचा था। भारतीय कृषि श्रमिकों की औसत मजदूरी 5–6 s प्रति माह थी। यदि हम गणना करे तो पायेगे कि कृषि क्षेत्र मे प्रतिव्यक्ति आय वार्षिक 1 पोंड से भी कम बैठती है। एक पौंड की प्रतिव्यक्ति आय निध निता के न्यूनतम स्तर से भी कम है। कृषि क्षेत्र मे व्याप्त निर्धनता का अनुमान इन समकों से लगाया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि भारत की 80 प्रतिशत जनसख्या कृषि क्षेत्र मे ही सलग्न है। गेहूँ व चावल की कीमते मजदूरी की तुलना मे बहुत अधिक है। मोटे अनाज जैसे ज्वार बाजरा आदि ही मुख्य खाद्य पदार्थ थे ।

दत्त ने सरकारी समको की सहायता लेकर बताया कि मजदूरी दर मे असमानता भी बहुत अधिक है। बगाल के बेकरगज जिले मे जहाँ मजदूरी 10s 8d प्रतिमाह है वही फैजाबाद जिले मे यह बहुत कम है।

भारत मे मजदूरी दर

प्रान्त	जिला	मासिक मजदूरी s
बगाल	पटना	6s 8d to 8s
	बेकरगज	10s 8d
आगरा व अवध	कानपुर	5s to 6s 8d
	फैजाबाद	2s 6d to 5s 4d
पजाब	देहली	10s 8d
बॉम्बे	अहमदाबाद	9s 4d
मद्रास	बेलरी	6s 4d
	सेलम	4s 8d
मध्य प्रान्त	जबलपुर	5s 4d
	रायपुर	5s 4d

स्रोत– द इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इडिया– द विक्टोरियन एज पृष्ठ 606

अत मे, निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि आर सी दत्त ने एक प्रशासक के रूप में भारत की तात्कालिक दयनीय आर्थिक स्थिति को निकट से देखा व समझा । एक अध्यापक के रूप में चिन्तन व समीक्षा की और एक लेखक के रूप मे उस विचित्र तस्वीर को शब्दो मे प्रस्तुत किया। उनका भारत मे बार--बार पडने वाले भीषण अकालो का मर्मस्पर्शी चित्रण कभी नही भुलाया जा सकता। दत्त द्वारा लिखित आर्थिक इतिहास एक अमूल्य निधि है। उन्होने न केवल देश की आर्थिक स्थिति को यथार्थ रूप मे प्रस्तुत किया अपितु उसमे सुधार हेतु मार्ग भी प्रशस्त किया।

संदर्भ

1. इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इडिया इन विक्टोरियन एज, पृष्ठ 603
2 उपर्युक्त, पृष्ठ 609
3 उपर्यूक्त, पृष्ठ 612
4 इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इडिया खण्ड II, पृष्ठ XI

प्रश्न

1 रोमेश चन्द्र दत्त ने तत्कालीन समय मे गरीबी को दूर करने के लिए कौन–कौन से उपायो का उल्लेख किया है ?
2 रोमेश चन्द्र दत्त ने देश मे बार--बार अकाल पढने के क्या कारण बताए हैं ?
3 दत्त ने आर्थिक स्थिति के कौन–कौन से स्रोतो का उल्लेख किया है ? बताइये।
4 रोमेश दत्त के निर्धनता पर व्यक्त किये गये विचारो को लिखिए।
5 अकाल एव कृषि पर दत्त के विचारो पर टिप्पणी लिखिए।
6 प्रो रोमेश दत्त के निर्धनता, अकाल एव आर्थिक स्थिति पर किये गये विचारों का विश्लेषण किजिए।
7 प्रो आर सी दत्त द्वारा प्रतिपादित कृषि, उद्योग एव सार्वजनिक व्यय, रेलवे व सिचाई सम्बन्धी आर्थिक विचारो को स्पष्ट किजिए।
8 प्रो आर सी दत्त के कीम्त ? मजदूरी सम्बन्धी विचारों पर सक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।



15

एम. एन. रॉय
(M. N. Roy 1887-1954)

मानवेन्द्र नाथ रॉय संक्षिप्त परिचय

नरेन्द्र नाथ भट्टाचार्य जो कि बाद मे मानवेन्द्र नाथ रॉय के नाम से प्रसिद्ध हुए का जन्म 21 मार्च 1887 को प बगाल के चौबीस परगना जिले मे हुआ। नरेन्द्र की प्रारंभिक शिक्षा चिगरीपोटा मे हुई। नरेन्द्र ने उच्च शिक्षा प्राप्ति हेतु अरविन्द घोष के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय कलकत्ता मे प्रवेश ले लिया। बाद मे उन्होने बगाल टैक्निकल इस्टिट्यूट कलकत्ता मे प्रवेश लिया किन्तु अपनी शिक्षा जारी नही रख सके।

नरेन्द्र ने स्वय को विद्यार्थी जीवन मे ही क्रान्तिकारी गतिविधियो में शामिल कर लिया। क्रातिकारी गतिविधियो हेतु धन जुटाने के उद्देश्य से चिगरीपोटा रेलवे स्टेशन पर 20 वर्ष की अल्पायु मे डकैती डाली। पुन उन्होने डायमड हार्बर मे हुई डकैती मे भाग लिया। 1910 मे अन्य क्रान्तिकारियो के साथ–साथ नरेन्द्र पर भी हावडा–षडयत्र मे मुकदमा चला तथा एक वर्ष की सजा हुई।

जेल से निकलने के पश्चात उन्होने क्रातिकारी सगठनो मे एकता व तालमेल स्थापित करने के प्रयास प्रारभ कर दिये। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उन्होने उत्तरी भारत का व्यापक रूप से भ्रमण किया। इसी भ्रमण के अतराल वे जतीन्द्र नाथ मुकर्जी के सपर्क मे आये। मुकर्जी क्रान्तिकारियों के युगान्तर ग्रुप के नेता थे। प्रथम विश्व युद्ध के प्रारंभ होते ही उन्होने विदेश चले जाना उचित समझा क्योकि भारत मे ब्रिटिश पुलिस का उन पर भारी दबाव था। नरेन्द्र 1915 में डच इडीज पहुँचे व क्रान्तिकारी गतिविधियो हेतु जर्मनी से हथियार प्राप्ति के असफल प्रयास किये। उन्होंने दक्षिण पूर्व एशिया चीन जापान फिलीपीन्स आदि का एक वर्ष तक भ्रमण किया। अत मे ये सैन फ्रासिस्कों पहुँचे। इस समय तक वे क्रान्तिकारी गतिविधियों की निरर्थकता समझ चुके थे व अपने जीवन को नया मोड देना चाहते थे। नरेन्द्र स्टैन फोर्ट विश्वविद्यालय परिसर मे वे एक भारतीय मित्र के साथ रहे थे। उस मित्र की सलाह पर उन्होने अपना नाम बदलकर मानवेन्द्र नाथ रॉय रख लिया। इस नाम परिवर्तन को रॉय ने अपने पुनर्जन्म की सज्ञा दी।

अमेरिका व मैक्सिको मे अपने प्रवास के अतराल उनके विचारो म मौलिक परिवर्तन आया। वे अब एक उग्र राष्ट्रवादी नही रह गये अपितु वे एक क्रान्तिकारी समाजवादी हो गये। उन्होने अमेरिका में जहाँ एक आर लाला लाजपत राय के साथ काम

किया वही दूसरी ओर उन्होने कार्ल मार्क्स का गहन अध्ययन किया। मेक्सिको में उन्होने हीगल के द्वन्द्ववाद का विवेचन किया। रॉय जब 1917 में मैक्सिको मे थे तब ही रूस में बोल्शेविक क्रान्ति हुई। क्रांति की सफलता ने उन्हें प्रभावित किया व सोवियत रूस के बाहर प्रथम कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की। इसके बाद रॉय अतर्राष्ट्रीय साम्यवादी आदोलन से जुड गये। एम.एन. रॉय ने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस मे सम्मिलित होकर भी राष्ट्र सेवा की तो काग्रेस से वैचारिक मतभेद के कारण अलग होकर राष्ट्र सेवा की।

रॉय के विचारों पर प्रभाव

मानवेन्द्र नाथ राय बचपन से ही विचारों का मौलिक चिन्तन करते थे तथा चिन्तन से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर स्वय का मत प्रस्तुत करते थे। रॉय प्रकृति से विद्रोही थे। उनकी विचारधारा पर जिन विचारकों व अध्ययन का प्रभाव पडा, उन्हें निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

(i) प्रसिद्ध राष्ट्रवादी नेता सुरेन्द्र नाथ बनर्जी के विचारों का प्रभाव,
(ii) स्कूली शिक्षा के अतराल ही भगवद् गीता, बकिम चन्द्र चटर्जी के आनन्द मठ, अरविन्द घोष की रचना भवानी मदिर व विवेकानन्द की पुस्तकों का अध्ययन,
(iii) क्रान्तिकारियो के युगान्तर समूह के नेता जतीन्द्र नाथ के साथ सपर्क,
(iv) अमेरिका मे लाला लाजपत राय के साथ गहन सपर्क,
(v) अमेरिका मे कार्ल मार्क्स का गहन अध्ययन,
(vi) मैक्सिको मे बोरोडिन की प्रेरणा पर हीगल की द्वन्द्वात्मक विचारों का विशुद्ध अध्ययन,
(vii) पश्चिमी विचारको जैसे हॉब्स, प्रोटागोरस, दिदरों आदि के विचारों का प्रभाव,
(viii) ऋषि कपिल व कणाद के भौतिकवादी विचारो का प्रभाव,
(ix) भारत मे पल्लवित हो रहे आर्थिक राष्ट्रवाद का प्रभाव,
(x) भारत की तात्कालिक दयनीय आर्थिक व सामाजिक स्थिति का प्रभाव,
(xi) रूस की बोल्शेविक क्रान्ति व लेनिन–स्टॉलिन का प्रभाव, और
(xii) महात्मा गाँधी व नेहरू की आर्थिक नीतियो का प्रभाव।

राय : एक मौलिक विचारक

लेनिन ने एक बार रॉय को 'पूर्व मे क्रान्ति का दीपक' कहा था। वे रूस के बाहर साम्यवादी दल की स्थापना करने वाले पहले व्यक्ति थे। रूस के बोल्शेविक क्रान्ति से बहुत अधिक प्रभावित थे लेकिन भारतीय सदर्भ मे रूस जैसे साम्यवाद की उपयोगिता पर उन्हें सदेह था। वे भारत मे चीन जैसे साम्यवाद की भी स्थापना के पक्षधर नहीं थे। उनका अपना समाजवादी विश्लेषण था। उनके क्रान्तिकारी समाजवाद में स्वतत्रता व प्रजातत्र दोनो ही समाहित थे। यह उनके अपने मौलिक चिन्तन का प्रतीक है।

यद्यपि रॉय पाश्चात्य सामाजिक व राजनीतिक संस्थाओं से अत्यधिक प्रभावित थे। वहाँ की स्वतत्रता व प्रजातत्र की अवधारणा ने ही रॉय की विचारधारा को एक दिशा प्रदान की। तथापि रॉय की **भारतीय राष्ट्रीयता** मे गहन आस्था थी। उन्होने कहा कि *भारतीय नारी को यूरोप व अमेरिका की भाँति सवतत्रता प्रदान करो लेकिन उसे भारतीय नारी* के आदर्श से दूर मत ले जाओ। उसे स्वतत्रता के नाम पर अभिशाप के रूप मे अपवित्र न करो जैसा कि नारी के साथ पाश्चात्य जगत मे होता है। भारत से जाति व्यवस्था को दूर करो लेकिन पाश्चात्य जगत की दुराचार वृत्ति को रोको । पूँजीवाद को बढावा दो लेकिन पाश्चात्य जगत की भौतिकवादी भूख से बचो। धार्मिक अधविश्वास से मुक्ति पाओ व जीवन के प्रति एक विवेकशील मत अपनाओ लेकिन यह कभी स्वीकार न करो कि प्रायोगिक विज्ञान ही मानव ज्ञान का मात्र स्रोत है।

रॉय का मतव्य था कि विश्व मे प्रजातत्र का भविष्य भारत की स्वतत्रता के साथ जुड़ा हुआ है। उन्होने कहा कि विश्व मे प्रजातत्र की स्थापना हेतु भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के लिए समर्थन व सहानुभूति परम आवश्यक है अन्यत्र विश्व मे फासीवाद अपना स्थान ग्रहण कर लेगा। रॉय का विचार आज भी एक बहुत बडी सीमा तक सार्थकता लिए हुए है कि भारत का आर्थिक विकास व समृद्धि विश्व मे प्रजातत्र को गारटी प्रदान करता है। रॉय ने अपने आर्थिक विचार भारतीय सदर्भ मे ही प्रस्तुत किया। वे जहाँ रूस की क्रान्ति के प्रबल समर्थक थे वहीं दूसरी ओर भारत मे मिश्रित अर्थव्यवस्था पर बल दिया। राय ने गरीबी बेरोजगारी कृषि व उद्योग आदि पर जो विचार प्रस्तुत किये वे मौलिकता लिए हुए हैं।

राय ने अपना जीवन एक उग्र राष्ट्रवादी के रूप मे प्रारभ किया तथा साम्यवाद के विभिन्न चरणो से यात्रा कर अतत नव मानवतावाद पर पहुँचे जिसमें मौलिकता कूट–कूट कर भरी हुई है जिसका कि अध्ययन आगे किया जाएगा। राय ने निम्न आर्थिक विषयो पर अपने विचार प्रस्तुत किये।

(1) निर्धनता (Poverty)

एम एन रॉय के विद्रोही विचारो की प्रकृति मे तत्कालीन भारत की निर्धनता का स्पष्ट प्रभाव है। *रॉय ने भारत की निर्धनता का गहन अध्ययन किया तथा निष्कर्ष रूप मे बताया कि विदेशी शासन ही हमारी निर्धनता के लिए दोषी नही है* अपितु सदियों से चली आ रही सामती व्यवस्था भी इसके लिए दोषी है। इस प्रकार उन्होने भारत की निर्धनता के दो मुख्य उत्तरादायी कारण बताये है

(i) ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत का आर्थिक शोषण और

(ii) परपरागत सामती व्यवस्था।

रॉय ने बताया कि सदियो से चली आ रही सामती व्यवस्था न केवल स्वय भारत की निर्धनता के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी है अपितु यह ब्रिटिश आर्थिक शोषण का माध्यम भी बन गयी।

रॉय ने भारत से निर्धनता दूर करने हेतु ब्रिटिश शासन की समाप्ति को अपर्याप्त बताया। रॉय के अनुसार हमें ब्रिटिश शासन को समाप्त करने के साथ–साथ ही देश की सामंती व्यवस्था से भी छुटकारा पाना होगा अन्यथा भारत से गरीबी का निवारण असंभव है। इसके लिए सामाजिक क्रान्ति की महती आवश्यकता है।

एम.एन. रॉय ने भारत के औद्योगिक पिछड़ेपन पर भी दृष्टिपात किया तथा भारत की निर्धनता के लिए इसे उत्तदायी बताया। उन्होने ओद्योगिक पिछडेपन के निवारण हेतु तीव्र औद्योगीकरण की सलाह दी। रॉय के अनुसार भारत मे आधुनिक विज्ञान व तकनीक का प्रयोग करते हुए आद्योगीकरण किया जाना चाहिए। उनका यह मत नेहरू से अधिक मिलता है। गॉधीजी के विचार रॉय से विपरीत हैं। गॉधीजी ने निर्धनता निवारण हेतु ग्राम विकास पर बल दिया क्योकि भारत की अधिकाश जनसख्या गावो में रहती है। राय ने स्वयं समाजवादी होते हुए भी तीव्र औद्योगीकरण हेतु पूँजीवादी ढाँचे को स्वीकार किया।

रायें ने धन के असमान वितरण पर भी ध्यान आकृष्ट किया। आर्थिक व सामाजिक असमानता के लिए उन्होने असमान अवसर को उत्तरदायी बताया। उनकी विकास अवधारणा सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास की है। रॉय के अनुसार आय व धन का न्यायोचित वितरण स्वत ही भारत की निर्धन्ता दूर करने मे सहायक होगा।

2. बेरेजगारी (Un-employment)

एम.एन राय ने भारत में व्याप्त बेरोजगारी को एक प्रमुख समस्या के रूप मे लिया। उन्होंने भारत की बेरोजगारी को यूरोपीय बेरोजगारी से अलग बताया। उन्होने स्पष्ट किया कि यूरोप में बेरोजगारी परिणाम है औद्योगीकरण का। यह एक सक्राति काल है। भारत में बैरोजगारी परिणाम है परंपरागत कुटीर व लघु उद्योगों के विनाश का। परपरागत लघु व कुटीर उद्योगो का विनाश ब्रिटिश सरकार की नीति का परिणाम है। भारत की बेरोजगारी ग्रामीण बेरोजगारी है जबकि यूरोपीय राष्ट्रों की बेरोजगारी औद्योगिक बेरोजगारी। उन्होने बताया कि कृषि क्षेत्र मे यहाँ छिपी हुई बेरोजगारी के स्पष्ट सकेत है वहीं दूसरी ओर कृषि के भी पिछडेपन के कारण अधिकाश व्यक्तियो को पूर्ण–कालिक रोजगार प्राप्त नही है।

रॉय ने बताया कि भारत की बेरोजगारी न तो आधुनिक शिक्षा का परिणाम है और न ही शिक्षित बेरोजगारी ही यहाँ है। यह शिक्षित बेरोजगारी तो यूरोप में ही देखने को मिलेगी भारत मे नही। भारत मे तो आधुनिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था ही नही है। भारतीयो को आधुनिक शिक्षा प्राप्ति के अवसर ही नही है। यहाँ तो बेरोजगारी की जो समस्या है वह ग्रामीण बेरोजगारी की है।

एम.एन रॉय ने भारत में बेरोजगारी की समस्या के निवारण हेतु कुछ उपाय बताये हैं, जो निम्न प्रकार है—

(i) तीव्र औद्योगीकरण,

(ii) कृषि का आधुनिकीकरण,

(iii) राज्य के स्वामित्व मे विशाल कृषि फार्मो की स्थापना और

(iv) व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा को प्रोत्साहन।

3 कृषि (Agriculture)

रायँ ने भारत की निर्धनता के मूल मे सदियो से चली आ रही परम्परागत सामंती व्यवस्था को उत्तरदायी ठहराया। इस सामंती व्यवस्था के कारण ही भारतीय कृषि पिछड़ी हुई है और इस पिछडी हुई कृषि के कारण ही बेरोजगारी व्याप्त है। रॉय के अनुसार मात्र तीव्र औद्योगीकरण से गरीबी व बेरोजगारी का हल नहीं निकल सकता। तीव्र औद्योगीकरण जहाँ एक ओर अल्प मात्रा मे ही बेरोजगारी को कम कर सकेगा वहीं दूसरी ओर थोड़े समय बाद औद्योगिक उत्पादन अतिरेक की स्थिति आ जायेगी जिससे औद्योगीकरण भी रूक जायगा। भारत की विशेष परिस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए कृषि का आधुनिकीकरण परम आवश्यक है। इसीलिए रॉय ने कहा कि औद्योगिक विकास कृषि विकास व कृषि आधारित उद्योग के विकास के साथ जुड़ा होना चाहिए। ये दोनों एक दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि पूरक है।

रॉय विचारधारा से समाजवादी अवश्य थे परन्तु उन्होने रूस जैसा समाजवादी विकास भारत के लिए उपयुक्त नही माना और कृषि विकास को तो कदापि नहीं। उन्होंने वर्तमान भू-स्वामित्व व्यवस्था पर प्रहार किया तथा भूमि सुधारो पर बल दिया। उन्हीं के शब्दो मे 'यदि हम भारतीय अर्थव्यवस्था को आधुनिकीकृत व पुनर्गठित करना चाहते हैं और भारतीय संपदा में वृद्धि करना चाहते हैं तो हमें भारतीय अर्थव्यवस्था के मुख्य क्षेत्र कृषि से ही निश्चितरूपेण प्रारंभ करना होगा। पुन कृषि के पुनर्गठन का प्रकार जो कि हमारे देश के लिए अनिवार्य व सम्भव है। समाजवाद जैसा समान होना आवश्यक नहीं है। भू स्वामित्व व्यवस्था का समापन तो पूर्व क्रान्तियो की ऐतिहासिक विशिष्टता है और यह देखा जाना शेष है कि क्या जमींदारी व्यवस्था का अंत स्वय ही हमारी आशाओ के अनुरूप चमत्कारी प्रभाव डालेगा।[2]

रॉय ने स्पष्ट शब्दो मे जमींदारी व्यवस्था के अंत पर बल दिया। उन्होंने कहा कि भूमि पर अधिकार उसी व्यक्ति का होना चाहिए जो कि भूमि को जोतता है। जहाँ एक ओर जमीदारी व्यवस्था मे जमीदार खेतिहर मजदूर का हर प्रकार से शोषण करता है वही दूसरी ओर वास्तविक कृषक स्वाभाविक रूप से खेत से नही जुड सकता। रॉय के विचार वर्तमान भू स्वामित्व व्यवस्था को लेकर कल्पनातीत उग्र थे। उन्हीं के शब्दो मे हमारा कार्यक्रम है बिना शर्त भू स्वामित्व व्यवस्था का समापन भूमि पर राष्ट्रीय स्वामित्व तथा गरीब किसानो के मध्य इसका वितरण। हमारा नारा है बिना क्षतिपूर्ति के अधिग्रहण।[3]

एम.एन.रॉय ने बताया कि हमारे देश मे भूमि पर दबाव अत्यधिक है। यह दबाव भूमि के उपविभाजन व अपखण्डन के कारण भी है। छोटी–छोटी भू जोतों के कारण कृषि के आधुनिकीकरण मे बाधा आयेगी। अत उन्होंने **सामूहिक व सहकारी** कृषि पर बल दिया। सामूहिक व सहकारी कृषि के फलस्वरूप भू–जोत का आकार बढ जाने के कारण जहाँ एक ओर कृषि का आधुनिकीकरण संभव होगा वही दूसरी ओर साहूकारों के शोषण से भी मुक्ति मिल जाएगी जिनसे कि गरीब किसान ऋण लेता है व उन्हीं को सस्ती कीमत पर अपना उत्पादन बेच देने को विवश होता है।

4. उद्योग (Industry)

भारत को एक समृद्धिशाली राष्ट्र बनाने हेतु एम.एन. रॉय ने भारत के **तीव्र औद्योगीकरण** पर बल दिया। यह तीव्र औद्योगीकरण आधुनिकीकरण के साथ जुडा हुआ है। उनके अनुसार भारत मे तेजी से ऐसे बडे पैमाने के उद्योगों का विकास होना चाहिए जो आधुनिक तकनीक पर आधरित हों । यह औद्योगीकरण भारत के पुनर्निर्माण हेतु अनिवार्य है चाहे वह पूँजीवादी पद चिन्हों पर हो या समाजवादी पद चिन्हो पर ।

राय यह जानते थे कि बडे पैमाने के उद्योग पूँजी गहन हैं इनके विकास से पूँजी कुछ हाथों मे सकेन्द्रित हो जाएगी लेकिन रॉय ने कहा कि सरकारी नीति के अतर्गत इस संकेन्द्रण को रोका जा सकता है। बडे पैमाने के उद्योग पूँजी गहन होते हैं। इसके लिए एम.एन. रॉय का उत्तर था भारत मे प्रचुर व पर्याप्त मात्रा मे प्राकृतिक व मानव संसाधन हैं जिनका कि उपयोग बडे पैमाने के उद्योगों के विकास में किया जा सकता है।

रॉय लघु व कुटीर उद्योगों पर आधारित भारत के गौरवपूर्ण अतीत से अनभिज्ञ नहीं थे। लेकिन वर्तमान औद्योगिक सरचना को देखकर उन्होंने बडे पैमाने के आधुनिक उद्योगों पर ही अधिक बल दिया। उनका मतव्य था कि बडे पैमाने के उद्योगों के विकास से देश में औद्योगिक वातावरण शीघ्र तैयार होगा व देश के तीव्र आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होगा। लेकिन राय ने लघु व कुटीर उद्योगों की उपेक्षा की हो, ऐसा नहीं है। रॉय के अनुसार लघु व कुटीर उद्योगो मे भारत की बेरोजगारी समस्या हल करने की अधिक क्षमता है क्योंकि ये श्रम गहन पद्धति पर आधारित हैं। रॉय का मत था कि बडे पैमाने के उद्योगों के साथ–साथ **लघु व कुटीर उद्योगों की स्थापना स्थानीय स्तर पर** की जा सकती है। उनका विकास सरलता पूर्वक सभव है क्योंकि उनको कम पूँजी की आवश्यकता है। लघु व कुटीर उद्योगो मे कार्यरत श्रमिको की आय को बडे पैमाने के उद्योगों के श्रमिकों के बराबर बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि वे अधिक समय कार्य करे। उदाहरण के लिए बडे पैमाने के उद्योगों मे 8 घटे में जो मजदूरी मिलती है यदि वह कुटीर उद्योग मे 12 घटे मे प्राप्त हो तो कुटीर उद्योग वाले श्रमिक को 12 घटे कार्य करना चाहिए।

एम एन राय ने दोनो ही प्रकार के उद्योगो के सतुलित विकास हेतु जो विचार प्रस्तुत किये उन्हे उन्ही के शब्दो मे प्रस्तुत किया जा रहा है– यह सत्य है कि भारत एक गरीब राष्ट्र है। लेकिन यह सत्य नही है कि एक उपयोगी पैमाने पर औद्योगीकरण हेतु पर्याप्त मात्रा मे साधन नही है। जो ससाधन उसके पास है उनकी सहायता से उचित मात्रा मे प्रारभ किया जा सकता है। और यह किसी भी प्रकार से निश्चित नही है कि अति उच्च स्तर का औद्योगीकरण भारत के लिए अच्छा ही होगा। दूसरी ओर बडे पूँजीपतियो का छोटे उद्योगो के प्रति आकर्षण बहुत कम होता है लेकिन जनता द्वारा उनका प्रारम्भ स्वय ही स्थानीय स्तर पर किया जा सकता है। '

5 सहकारी समाजवाद (Cooperative socialism)

रॉय को भारत मे समाजवादी विचारधारा के प्रवर्तक के रूप मे जाना जाता है। लेकिन उनका समाजवाद रूस व चीन के साम्यवाद से भिन्न है। वे व्यक्तिगत स्वतत्रता व प्रजातत्र के कट्टर समर्थक थे अत रूस व चीन के साम्यवाद से बहुत दूर थे। दूसरी ओर पूँजीवाद के अतर्गत होने वाले पूँजी सकेन्द्रण व आर्थिक शोषण से वे व्यथित थे। रॉय के मतानुसार समाजवाद मे मानव का नैतिक शोषण होता है व पूँजीवाद मे मानव का शोषण होता है। दोनो ही प्रकार के शोषण से दूर रहने के लिए उन्होंने तीसरा मार्ग चुना। यह मार्ग वस्तुत पूँजीवाद व समाजवाद दोनो को मिलाकर व दोनों के शोषण की मूल प्रकृति को छोड़कर बनाया गया है। इसे समाजवादी मिश्रित अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है।

एम एन रॉय ने पूँजीवाद के गुणो पर अवलम्बित आर्थिक प्रणाली को सहकारी समाजवाद की सज्ञा दी है। रॉय के सहकारी समाजवाद मे व्यक्ति समुदाय की स्वतत्र इकाई होगा और उसकी स्वतत्रता पर कोई बाध्यकारी नियत्रण नही होगे। सहकारी समाजवाद की धारणा राय की इस धारणा पर आधारित है कि मानव मे स्वाभाविक रूप मे पारस्परिक सहयोग की भावना रहती है।

'सहकारी समाजवाद' के सिद्धान्त मे राय ने सहयोग एव विकेन्द्रीकरण पर बल दिया तथा इस अर्थव्यवस्था के लिए दो प्रेरक तत्वो को स्पष्ट किया–

(क) प्रत्येक अर्थव्यवस्था का मूल उद्देश्य उसकी जनता के लिए रोटी कपड़ा व मकान की न्यूनतम सुविधा सुनिश्चित करना है।

(ख) इसे प्राप्त करने के लिए आर्थिक नियोजन देश मे उपलब्ध आर्थिक साधनो की सीमा मे ही किया जाना चाहिए।

रॉय ने अपना इस सम्बन्ध मे विचार व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को उपभोक्ताओ व उत्पादको के सहकारी सघ के रूप मे सगठित किया जाना चाहिए इस प्रकार के सगठनो के विकास से राज्य को न्यूनतम हस्तक्षेप करने का ही

अवसर मिल सकेगा तथा जनता देश में सहकारी सस्थाओं के माध्यम से आर्थिक क्रियाओ का सचालन व नियत्रण कर सकेगी। राय के इस सबध मे निम्न सुझाव महत्वपूर्ण है–

(क) विकेन्द्रीकरण को आर्थिक विकास की प्रथम शर्त मानते हुए 'ग्राम' को विकास की प्रारम्भिक इकाई मानी जाय तथा ग्रामीण जनता अपने स्तर पर एक सहकारी संघ की स्थापना कर भू–सपदा के प्रबन्ध, कृषि ओर ग्रामीण कुटीर व लघु उद्योगों का सचालन एक साथ सम्पन्न किया जाय।

(ख) राय ने सहकारी संगठन को एक पिरामिडीय प्रकार का बनाने का सुझाव दिया जिसके निचले स्तर पर स्थानीय सहकारी समितियाँ तथा उसके ऊपर क्रमश जिला स्तरीय, क्षेत्रीय, प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय सहकारी सस्थाएँ होगी।

(ग) राय ने बडे उद्योगो को भी सहकारी क्षेत्र मे सगठित करने का सुझाव दिया इससे धीरे–धीरे निजी उद्योग सहकारी उद्योगो से प्रतियोगिता करते करते समाप्त हो जायेगे। क्योकि राय की मान्यता थी कि सहकारी प्रयत्नो से निजी लाभ की भावना सामुदायिक हित से प्रेरित भावना के आगे नही टिक सकेगा तथा निजी उद्योग असगत हो जायेगे।

एम एन रॉय का स्पष्ट मत था कि प्रारभिक स्तर पर निजी पूँजी की महती आवश्यकता है। जब तक निजी पूँजी आर्थिक शोषण का साधन नहीं बने तब तक तो उसे नियन्त्रित स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए। जब यह आर्थिक शोषण का माध्यम बन जाय तो इसे नष्ट कर देना चाहिए।

6. आर्थिक नियोजन (Economic planning)

एम एन रॉय भारतीय अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण हेतु आर्थिक नियोजन को एक प्रभावी माध्यम बताया। 1943 में प्रस्तुत प्रमुख उद्योगपतियो के 1943 के बाम्बे प्लान के उपरान्त एम एन रॉय व उनके साथी जी डी पारीख, वी एम तारकुण्डे व बी. एन. बनर्जी ने 15000 करोड रू. की एक 10 वर्षीय योजना प्रस्तुत की जो कि पीपुल्स प्लान के रूप में प्रसिद्ध है।

पीपुल्स प्लान (People's Plan) एक प्रकार का केन्द्रीय विचार है। भविष्य मे भारत प्रजातात्रिक राज्य होगा जहाँ स्वतत्र गणराज्य भूमि व खनिज ससाधन पर स्वामित्व लिए हुए होगे। भारी उद्योग व बैंको का नियत्रण भी उन्ही के अधीन् होगा। भूमि का राष्ट्रीयकरण किया जाएगा तथा ग्रामीण ऋण ग्रस्तता समाप्त कर दी जाएगी। शिक्षा नि शुल्क व अनिवार्य होगी। कृषि का स्वरूप सहकारी होगा। सरकार न्यूनतम मजदूरी की गारटी देगी, सरकार मानव की अनिवार्य आवश्यकताएँ जैस भोजन, वस्त्र, आवास व स्वास्थ्य की व्यवस्था करेगी। उत्पादन सगठन इस प्रकार का होगा कि लाभ उद्देश्य न्यूनतम हो। अतिरिक्त उत्पादन को निजी व्यक्तियो के हाथ में जाने से रोका जाएगा व

उसे इस प्रकार विनियोजित किया जाएगा कि उत्पादन मे और वृद्धि हो व रोजगार भी बढ़े। ग्रामीण ऋण का 75 प्रतिशत समाप्त कर दिया जाएगा व 25 प्रतिशत सरकार स्वय वहन करेगी। राज्य फार्म के रूप मे धीरे-धीरे कृषि का समूहीकरण किया जाएगा। आधुनिक तकनीक अपनाते हुए कृषि उत्पादन मे वृद्धि की जाएगी । लघु उद्योगो की अपेक्षा बडे पैमाने के उद्योगो पर बल दिया जाएगा। कुछ बड़े उद्योग केवल सार्वजनिक क्षेत्र मे स्थापित होंगे। इन सब विकास कार्यक्रमो के लिए वित व्यवस्था करारोपण अतिरेक उत्पादन अतिरिक्त कृषि उत्पाद के निर्यात आदि द्वारा की जाएगी।

रॉय द्वारा प्रस्तुत पीपुल्स प्लान (Peoples Plan) वस्तुत सोवियत रूस की योजनाओ पर आधारित है। योजना का क्रियान्वयन तब तक असभव है जब तक कि वर्तमान सामाजिक व आर्थिक जीवन मे क्रान्तिकारी परिवर्तन न किये जाये।

7 नव मानववाद (New Humanism)

राय विद्यार्थी जीवन मे उग्र राष्ट्रवादी से लेकर जीवन मे अतिम चरण मे अतत नव मानववाद के प्रवर्तक बने। मध्य मे साम्यवाद के विभिन स्वरूपो के समर्थक रॉय क्रान्तिकारी समाजवादी के रूप मे जाने जाते थे। एम एन राय आजीवन साम्यवाद से जुडे रहे लेकिन अत में उसके आलोचक हो गये। नव मानवतावाद रॉय की एक महत्वपूर्ण मौलिक देन है। यह नव मानववाद मानव को व्यवस्था का केन्द्रीय तत्व व अतिम साध्य मानता है। राय का नव मानववाद व्यक्ति की स्वतत्रता व स्वायत्तता में विश्वास करता है और उसे ही व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु बनाना चाहता है।

एम एन रॉय ने जब नव मानव का विचार प्रस्तुत किया था तो उनका सोचना था कि उनसे पूर्व जिन-जिन विचारको ने मानव को महत्व दिया है। उन्होने मानव को न्याय सम्मत सर्वोच्च स्थान प्रदान नही किया है। रॉय का मत था कि पश्चिमी व्यक्तिवाद गाधी के आध्यात्म आधारित आदर्शवाद तथा मार्क्सवादी साम्यवाद आदि लगभग सभी विचारधाराओ मे व्यक्ति की प्रतिष्ठा की किसी न किसी सीमा तक उपेक्षा की गई है। रॉय ने पाश्चात्य जीवन पथ व प्राचीन जीवन पथ के स्थान पर नव मानववाद को प्रतिष्ठित करने हेतु अपना मतव्य निम्न शब्दो मे व्यक्त किया- यह पाश्चात्य या भारतीय जीवन पद्धति का प्रश्न नही है। प्राचीन भारतीय जीवन पद्धति भी इतनी अच्छी नहीं कि उसको अक्षुण्ण बनाए रखे। पाश्चात्य जीवन पद्धति भी इसलिए नही क्योकि वह पाश्चात्य है अपितु इसलिए कि यह एक अधी गली मे ले जाती है और उसके प्रति कोई आकर्षण नही है। हमे आवश्यकता है एक नई जीवन पद्धति की जो कि एक मानवतावादी पथ है जहा व्यक्ति की योग्यताएँ ही निर्णायक होती हैं और उन्हे प्रणाली निश्चित करने की अनुमति होती है जिसमे वे कार्य कर सकते है व जीवनयापन कर सकते है।

चीन मे साम्यवादी विचारधारा के प्रवर्तक माओ ने भी नव मानव (New Man) की अवधारणा प्रस्तुत की लेकिन उनका नव मानव सर्वाधिकारी राज्य (Totalitarian

State) के अतर्गत थी जबकि रॉय ने नव मानववाद की सकल्पना प्रजातत्र के अंतर्गत की जो कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

आज हम जिस नव अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (New international Economic order) की सकल्पना कर रहे हैं उससे भी विस्तृत सकल्पना नव मानववाद के अंतर्गत रॉय ने एक विश्व राज्य की प्रस्तुत की । रॉय के अनुसार राष्ट्रवाद एक सकीर्ण विचारधारा है जो मानव मात्र की विश्वव्यापी एकता मे बाधा है। उन्होने राष्ट्रीय राज्यो की सीमाओं से परे, स्वतत्र स्त्रियो व पुरुषो के सार्वभौम समुदाय की कल्पना की। यही रॉय के नव मानववाद की आदर्श है। उन्ही के शब्दो मे–" नव मानववाद सार्वभौम है। नैतिक दृष्टि से स्वतत्र व्यक्तियो का सार्वभौम समुदाय राष्ट्रीय राज्यो की सीमाओ से प्रतिबधित नहीं होगा। पूँजीवादी, फासीवादी समाजवादी साम्यवादी अथवा अन्य किसी प्रकार के वर्गीकरण, 20 वी शताब्दी मे हुए मनुष्य के पुनर्जागरण के प्रभाव से धीरे–धीरे विलुप्त हो जाएगे।"

मूल्यांकन

एम एन. रॉय एक विचारक की तुलना मे आलोचक अधिक रहे । उनकी यह मौलिकता थी कि जिस रूप मे कोई विचारधारा है उसको उन्होने उसी रूप में कभी स्वीकार नही किया चाहे साम्यवाद हो या मार्क्सवाद चाहे उदारवाद हो या समाजवाद वे आजीवन समय के साथ–साथ सभी से जुडे रहे लेकिन उन्होने उन विचारधाराओ के साथ स्वय को एक अलग मौलिक प्रस्तुति के साथ जोडा। लेकिन जीवन के अतिम चरण में उन्होंने उन सभी की आलोचना करते हुए स्वय को दार्शनिक मनन, चिन्तन मे लगा दिया और नव मानववाद की सकल्पना प्रस्तुत की।

संदर्भ

1 इडियन सोसियलिस्ट थिकर्स, पृष्ठ 12
2 पोलिटिक्स, पावर्स एण्ड पार्टीज, पृष्ठ 160
3 उपर्युक्त, पृष्ठ 30
4 उपर्युक्त, पृष्ठ 159
5 उपर्युक्त, पृष्ठ 167
6 रीजन रोमाटीसिज्म एण्ड रिवोल्यूशन खण्ड II, पृष्ठ 310

प्रश्न

1 एम एन रॉय के विचारो पर किन विचारको व अध्ययन का प्रभाव पडा ?
2 रॉय ने भारत से निर्धनता के निवारण हेतु कौन–कौन से उपायों का उल्लेख किया ?

3 एम एन रॉय के बेरोजगारी सबधी विचारो पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए।

4 रॉय ने भारत मे बेरोजगारी की समस्या के निवारण हेतु कौन–2 से उपाय बताए हैं ? नाम लिखिए।

5 रॉय के कृषि सम्बन्धी विचारो का विवेचन कीजिए।

6 रॉय के अनुसार भूमि पर स्वामित्व किसका होना चाहिए ?

7 एम एन रॉय के नव मानववाद सम्बधी विचारो का विश्लेषण कीजीए।

8 'समाजवाद मे मानव का नैतिक शोषण व पूँजीवाद मे आर्थिक शोषण होता है। एम एन रॉय के इस सम्बध मे विचार स्पष्ट करते हुए उनके सहकारी समाजवाद को समझाइये।

9 एम एन रॉय द्वारा निर्धनता बेरोजगारी तथा कृषि पर व्यक्त किये गये विचारों को स्पष्ट कीजिए।

10 उद्योग आर्थिक नियोजन तथा नवमानववाद से सम्बन्धित रॉय के विचारो को स्पष्ट कीजिए तथा यह बताइये कि वे पूरे जीवन साम्यवाद से जुडे रहकर जीवन के अन्त मे उसके आलोचक कैसे बन गये ?



16

महात्मा गाँधी
(Mahatma Gandhi : 1869-1948)

परिचय

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का जन्म काठियावाड प्रान्त मे पोरबन्दर नामक स्थान पर ■ अक्टूबर 1869 ई. को हुआ। उनके पिता राजकोट के दीवान थे और अपनी निष्पक्षता और न्यायप्रियता के लिए विख्यात थे। गाँधीजी की माता धर्मपरायण भारतीय नारी थी, ईश्वर में उनका अटल विश्वास था पूजा–पाठ किये बिना वे भोजन नहीं करती थी, नियमपूर्वक व्रत व उपवास किया करती थी।

गाँधीजी की शिक्षा पोरबदर मे प्रारम हुई, किन्तु शीघ्र ही उनके पिता पोरबदर से राजकोट चले गये। राजकोट से ही उन्होने मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की।

गाँधीजी का विवाह अल्पायु मे ही कस्तूरबाई के साथ कर दिया गया। इस समय वे हाई स्कूल के विद्यार्थी थे। कस्तूरबाई को वे सदा "बा" कहकर सबोधित करते थे।

सन् 1887 मे मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करके जब गाँधीजी इग्लैण्ड जाने लगे तो उन्होंने अपनी माता की इच्छा को दृष्टिगत रखते हुए, उनके सामने शपथ लेकर कहा कि मैं वहाँ मद्य, माँस और परस्त्रीगमन–इन तीनों बुराइयों से दूर रहूँगा। इग्लैण्ड से "बैरिस्टर" होकर स्वदेश लौटे तो उनकी माता का देहान्त हो चुका था।

हिन्दुस्तान में गाँधीजी ने वकालत का काम शुरु किया किन्तु इसमे उन्हे सफलता नहीं मिली। सयोगवश उन्हीं दिनो पोरबदर की एक धनी कम्पनी ने उन्हें दक्षिणी अफ्रीका मे काम करने के लिए कहा जिसे उन्होने सहर्ष स्वीकार कर लिया। दक्षिणी अफ्रीका पहुँचकर जब उन्होंने वहाँ रह रहे भारतीयों के अपमानपूर्ण जीवन को देखा, जिससे उन्हें अत्यधिक पीड़ा हुई। गाँधीजी को स्वय भी रेल मे, गाडी मे, होटल में, अदालत मे तरह–तरह के अपमान सहन करने पडे। दक्षिणी अफ्रीका के भारतीयो को नागरिकता के समान अधिकार दिलाने के लिए उन्होने सुप्रसिद्ध सत्याग्रह आदोलन को जन्म दिया और समय–समय पर बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त की। अपने आदर्शो को कार्यरूप देने के लिए गाँधीजी ने फीनिक्स आश्रम खोला, सत्याग्रह के सिद्धातो का प्रचार करने के लिए इडियन ओपिनियन (Indian Opinion) नामक पत्र निकाला तथा जनमत को सगठित करने के लिए नेटाल इडियन काग्रेस (Netal Indian Congress) की स्थापना की। गाँधीजी वहाँ कर्मवीर गाँधी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

गाँधीजी कहते है कि यह एक सामान्य स्वीकृत तथ्य है कि समाज के सदस्य के रूप मे मनुष्य का अध्ययन अर्थशास्त्र मे किया जाता है तथा यह अन्य सामाजिक विज्ञान जैसे समाज शास्त्र राजनीति शास्त्र न्याय शास्त्र नीति शास्त्र आदि से घनिष्ठतापूर्वक जुड़ा हुआ हे। जब अर्थशास्त्र व नीति शास्त्र दोनो ही समाज विज्ञान हैं तथा दोनों ही समाज के कल्याण मे रुचि रखते है। दोनो को एक दूसरे से अलग नही किया जा सकता। अत आर्थिक अवधारणाओ मे नीतिगत विचार स्वत ही समाहित है।

गाँधीजी ने जीवन को पूर्ण रूप मे देखा न कि टुकडों मे। इसलिए जीवन के किसी एक भाग की उपेक्षा करके दूसरे भाग की प्रगति करने का प्रश्न ही नहीं उठता। वास्तविक व सच्चे अर्थशास्त्र का अर्थ है समाज की भौतिक व नैतिक दोनो प्रगति। अर्थशास्त्र को धनोत्पादन व धन वृद्धि मे सहयोग करना चाहिए लेकिन साथ ही सामाजिक न्याय व नैतिक प्रगति भी होनी चाहिए।

गाँधीजी ने अर्थशास्त्र विषयक विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि ***"सच्चा अर्थशास्त्र कभी भी सर्वोच्च नैतिक स्तर का विरोध नहीं करता—ठीक वैसे ही, जैसे सभी सच्चे नीति शास्त्र अपने नामानुकूल अवश्य ही अच्छे अर्थशास्त्र भी होने चाहिए। वह अर्थशास्त्र, जो कुबेर की पूजा करता है और उन लोगों को जो शक्तिशाली हैं, दुर्बल लोगों के विनाश द्वारा धन संग्रह करने का अवसर देता है, वह शास्त्र सर्वथा झूठा और भयानक है। सच्चा अर्थशास्त्र तो सामाजिक न्याय का प्रतीक है। यह सभी लोगों का समान रूप से कल्याण चाहता है, जिनमें कमजोर भी शामिल हैं, और सुन्दर जीवन के लिए ऐसा शास्त्र अत्यावश्यक है।"***[1]

वस्तुत गाँधीजी मानववादी थे तथा जीवन मे आध्यात्मिक व नैतिक पक्ष पर अत्यधिक बल देते थे। सत्य और अहिंसा उनके अस्त्र थे और मानव मात्र का कल्याण ध्येय। ईश्वर की सर्वोच्च सत्ता मे उनकी प्रबल आस्था थी। उन्होने स्पष्ट कहा है जो अर्थशास्त्र नैतिकता का ह्रास करता है वह पाप है उनके शब्दो मे **"वह अर्थशास्त्र जो व्यक्ति या राष्ट्र के नैतिक कल्याण पर प्रहार करता है, अनैतिक है और इसलिए पापमय है।"**[2]

गाँधीजी की नैतिक मूल्यों मे आस्था का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि उन्होने नैतिक मूल्यो की उपेक्षा करने वाले अर्थशास्त्र को झूठा अर्थशास्त्र कहा है। उन्ही के शब्दो मे 'वह अर्थशास्त्र झूठा है जो नैतिक मूल्यो की उपेक्षा और अवहेलना करता है।'[3]

आर्थिक नियम

अर्थशास्त्र के नियम जीवन के उच्च मूल्यो के अनुसार होने चाहिए। जीवन के उच्च नियम व अर्थशास्त्र के नियम समान होने चाहिए। गाँधीजी के अनुसार यदि उच्च नियमो व वास्तविक नियमो के मध्य अतर रहेगा तो निश्चय ही असमज पूर्ण व सदेहास्पद स्थिति उत्पन्न हो जायगी। आर्थिक नियम जिनका कि उद्देश्य भौतिक प्रगति सामाजिक

समता व नैतिक स्तर की उच्चता हो, प्रकृति के नियमो के अनुसार होने चाहिए। प्रकृति के नियम व अर्थशास्त्र के नियमो के मध्य कोई विरोध या विवाद नहीं है। प्रकृति के नियम व्यापक व सत्य है। हमे नियम बनाते समय देश की विशिष्ट स्थिति को ध्यान मे रखना होगा। क्योकि अर्थशास्त्र के नियमों का हमे व्यावहारिक प्रयोग करना है। नियमो की व्यावहारिकता देश की परिस्थिति, जलवायु, भौगोलिक स्थिति आदि पर निर्भर करती हे। गाँधीजी का आर्थिक नियम सबधी विचार रानाडे के विचारो के अधिक नजदीक है। गाँधीजी ने देश की विशिष्ट परिस्थितियों के लिए अलग आर्थिक नियम की बात कही। आर्थिक नियम के अतर्गत गाँधीजी ने नैतिक नियम भी समाविष्ट कर दिये हैं व उनकी सत्यता व व्यापकता हेतु उन्हें प्राकृतिक नियमो से सबद्ध कर दिया है। गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत खादी अर्थशास्त्र व सर्वोदय संकल्पना उपर्युक्त नियमों के अनुसार ही है।

व्यक्तिवाद

व्यक्ति गाँधीजी के दर्शन का केन्द्र बिन्दु है। व्यक्ति सर्वोच्च है। गाँधीजी के अनुसार व्यक्ति परम साध्य है। यह गाँधीजी के दर्शन का एक अद्भुत पक्ष है जिसमे व्यक्ति और समाज के मध्य किसी भी प्रकार का कोई टकराव नहीं है। गाँधीजी के अनुसार व्यक्ति की चेतना, उसमे सभी को अपने समान, ओर सभी के हित मे अपना हित समझने की सहज प्रवृत्ति ही उत्पन्न करेगी और इस प्रकार व्यक्ति व समाज के मध्य किसी टकराव की कोई सम्भावना नहीं होगी। गाँधीजी के अनुसार सामाजिकता व्यक्ति की चेतना का अनिवार्य लक्षण है। गाँधीजी ने बताया कि जिस प्रकार समुद्र पानी की बूँदो से बना है, ठीक इसी प्रकार समाज भी व्यक्तियो के समूह से बना है। जिस प्रकार पानी की बूँद की पृथक सत्ता है उसी प्रकार व्यक्ति की भी पृथक सत्ता है परन्तु दोनो अपनी समग्र के अनिवार्य हिस्से हैं।

गाँधीजी ने मानवीय व्यक्तित्व के सपूर्ण विकास पर बल दिया। मानव जीवन स्वय मे पूर्ण एवं अविभाज्य है। इसका खण्डो मे विभाजन असभव है। जिस व्यवस्था मे सपूर्ण मानव विकास पर बल न हो उसका बहिष्कार किया जाना चाहिए। वे उन्ही सुधारो को वाछनीय मानते थे जो मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा करें। कोई भी सस्था चाहे वह राजनीतिक हो या सामाजिक या आर्थिक, मानव के पूर्ण विकास हेतु ही होनी चाहिए।

गाँधीजी का विश्लेषण था कि यदि व्यक्ति का नैतिक विकास होगा तो समाज का भी नैतिक विकास होगा लेकिन यह जरुरी नही है कि समाज का नैतिक विकास होने पर ही व्यक्ति का नैतिक विकास हो। गाँधीजी ने सर्वदा व्यक्तिगत विश्लेषण पर बल दिया न कि समग्र पर। यदि व्यक्तिगत आय बढती है तो राष्ट्रीय आय निश्चित रूप से बढेगी। लेकिन इसके विपरीत राष्ट्रीय आय के बढने पर व्यक्तिगत आय का बढना आवश्यक नहीं है। इसका कारण कुछ हाथों में राष्ट्रीय आय का केन्द्रित हो जाना है। व्यक्तिगत

कल्याण को मापने के लिए राष्ट्रीय उत्पादन का सांख्यिकीय औसत व्यक्ति की उपेक्षा करता है।

मानव और आर्थिक मानव (The Man and The Economic Man)

पूँजीवादी आंदोलन ने मानव के अंतर्गत निहित नैतिक मूल्यों का परित्याग कर आर्थिक मानव की कल्पना की है। अर्थशास्त्र के अंतर्गत सभी प्रकार की धन प्राप्ति व व्यय का यह आर्थिक मानव केन्द्र बिन्दु है। मानव जीवन की अन्य विधाओं से अलग यह आर्थिक मानव विशिष्ट रूप से स्वतंत्रतापूर्वक अपना कार्य कर रहा है। प्रतिष्ठित आर्थिक विचारधारा की संकल्पना अहस्तक्षेप नीति के अंतर्गत यह **"न्यूनतम प्रयास के साथ** अधिकतम संतुष्टि" में लगा हुआ है। अमेरिका यूरोप आदि देशों में तो साधनों की बहुलता व श्रम शक्ति का अभाव है वहाँ तो यह सिद्धान्त आज के भौतिकवादी लक्ष्य को प्रदान कर सकता है। लेकिन यह भौतिकवादी प्रगति कुछ के लिए कुछ समय को आएगी क्योंकि यह समाज का संतुलित व समान विकास प्रदान नहीं कर सकती। यह समस्त नैतिकता व आदर्शों का परित्याग कर सामान्य मानव को गुलाम बनाकर व आर्थिक मानव को अग्रदूत बनाकर प्राप्त होती है।

इस विशिष्ट परिस्थिति में मानव दो भागों में बट जाएगा एक मानव वास्तविक मानव व दूसरा आर्थिक मानव। इस विभाजन का विशिष्ट लक्षण होगा जो लोग नैतिकता के दायरे में आते हैं जैसे संत मानवतावादी आध्यात्मवादी सांस्कृतिक मानव आदि का कोई न तो अस्तित्व रहेगा और न ही उनका अध्ययन अर्थशास्त्र में होगा क्योंकि ये आर्थिक मानव के दायरे में नहीं आते।

इस भौतिकतावादी दौड़ का लक्ष्य है–धन की अधिकतम प्राप्ति व संचय। उपयोगितावादियों (Utilitarian) ने आर्थिक मानव की अवधारणा के अंतर्गत नारा दिया **अधिकांश व्यक्तियों के लिए अधिकांश वस्तुएँ" (Greatest Goods to the Greatest Number)**। इस समाज के कृत्रिम विभाजन पर अलग–अलग देश में अलग–अलग प्रतिक्रिया हुई। पश्चिमी देशों में यह प्रतिक्रिया अच्छी रही परन्तु पूर्व के औपनिवेशिक देशों में इसका बुरा परिणाम निकला। भारत जैसे देश जो कि आध्यात्मिकता नैतिकता व आदर्शों के लिए संसार में प्रसिद्ध हैं इस विभाजन से बुरी तरह प्रभावित हुआ है। इससे व्यापक बुराइयों ने जन्म लिया है।

भारत इन विकट परिस्थितियों के चलते स्वतंत्र प्रजातान्त्रिक राष्ट्र हो गया। गाँधीजी ने भारत के लिए नया समाधान पुराने आदर्शों व वर्तमान परिस्थितियों में विज्ञान के सम्मिश्रण के रूप में प्रस्तुत किया। गाँधीजी का आदर्श बना–सर्वोदय जहाँ व्यवस्था थी 'सभी के लिए अधिकांश वस्तुएँ **(Greatest Goods to All)** गाँधीजी का सर्वोदय "मानव" पर आधारित है न कि 'आर्थिक मानव" पर।

सादगी तथा आवश्यकताओं संबंधी विचार

(Ideas Relating to Simplicity and Wants)

"सादा जीवन उच्च विचार" गाँधीजी का जीवन दर्शन है जिसका स्वय उन्होंने पूर्णरूपेण परिपालन किया। गाँधीजी का कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन सादगी से जीना चाहिए व उसके विचार उच्च स्तरीय होने चाहिए। गाँधीजी का कहना था कि हमे आवश्यकताओ को कम से कम करना चाहिए। हमारी आवश्यकताएँ बुनियादी आवश्यकताएँ ही होनी चाहिए। आवश्यकताएँ तो अनन्त हैं। हम उन्हे जितना बढाएंगे उतनी ही बढती चली जाएगी। गाँधीजी के अनुसार "यह मन उस चचल पक्षी के समान है, जिसे जितना ज्यादा मिलता है, उतनी ही ज्यादा उसकी भूख बढती है और अत मे फिर भूखा का भूखा रहता है। इसलिए इच्छाओं की सीमा का अत्यन्त विस्तार करना और फिर उनकी पूर्ति के लिए हाय–हाय करना मात्र भ्रम और जाल प्रतीत होता है। सभ्यता का सच्चा अर्थ अपनी इच्छाओं को बढाने नहीं बल्कि सप्रयास कम करना है।"*

गाँधीजी का स्पष्ट मत था कि भौतिक कल्याण ही जीवन मे सुख प्राप्ति का साधन नहीं है। सत्य और अहिंसा पर आधारित गाँधीजी के जीवन दर्शन में भौतिक कल्याण के अतिरिक्त बहुत कुछ कल्याणकारी तथ्य अवशिष्ट है। मानव का मुख्य ध्येय ईश्वर प्राप्ति है जो कि भौतिक कल्याण के मार्ग से कदापि सभव नहीं। गाँधीजी प्रश्न करते हैं। कि क्या आवश्यकताओ के बढने से मानव जीवन मे प्रसन्नता बढी है ? क्या मनुष्य को दासता से मुक्ति मिली है ? उत्तर है, "नहीं"। गाँधीजी आवश्यकताओ के बढाने के इसलिए भी विरुद्ध थे क्योकि वे भारत के गाँवो को और वहाँ के रहन–सहन के पुराने तौर तरीकों को बहुत चाहते थे और उन्हे ऐसा लगता था कि अहिसावादी समाज के अस्तित्व के लिए इतिहास मे इस जीवन से निकटतम कोई पद्धति नहीं है। गाँधीजी का कहना था कि आवश्यकताओ की वृद्धि मानव का व्यक्तित्व कलकित कर रही है और राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बलवान द्वारा निर्बल के शोषण का मार्ग प्रशस्त कर रही है।

आवश्यकताओ के सबध मे गाँधीजी का दृष्टिकोण, पाश्चात्य अर्थशास्त्रियो के विचार के एक दम विपरीत था परन्तु भारतीय परिस्थितियों में उचित व सही था। भारतीय अर्थशास्त्री जे. के. मेहता ने आवश्यकताओ के सदर्भ मे गाँधीजी के विचारो का अनुसरण किया।

वर्णाश्रम धर्म

प्राचीन भारत में वर्णाश्रम धर्म पूर्ण व समन्वयात्मक सहकारी जीवन का आदर्श था। समस्स्त समाज 4 कार्यात्मक समूहो मे विभाजित था–

(i) ब्राह्मण

(ii) क्षत्रिय

(iii) वैश्य

(iv) शूद्र

गाँधीजी का कहना था कि इस वर्ण व्यवस्था मे कतिपय बुराइयाँ प्रविष्ट कर गयी थी लेकिन प्राचीन काल मे इस व्यवस्था ने महती उद्देश्यो को प्रदान किया व आधुनिक तकनीकी रूप मे कहलाने वाले श्रम विभाजन का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप था। गाँधीजी के अनुसार ईश्वर सर्वोच्च सत्ता है। समस्त समाज एक ही शरीर के विभिन्न अग हैं। इस सदर्भ मे वेदोक्त वर्ण व्यवस्था मे गाँधीजी की गहरी आस्था थी। इस व्यवस्था मे सभी वर्णो का जन्म विराट पुरुष (ईश्वर) से हुआ है–

ब्राह्मणो स्य मुख मासीद बाहू राजन्य कृत ।

उरुतदस्य यद्वैश्य पदभ्या शूद्रो जायत।।[6]

उस विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण भुजाओ से क्षत्रिय जघाओ से वैश्य और पैरो से शूद्र का जन्म हुआ है। जिस प्रकार मुख भुजाएँ जघा एव पैर एक ही शरीर के अग है और इनके सुसचालन से ही मनुष्य कुछ करने मे सक्षम होता है, इसी प्रकार चारो वर्णों के सहयोग से ही समाज सुव्यवस्थित ढग से चलता है गाँधीजी की वर्ण व्यवस्था का आधार जन्म न होकर "कर्म" था। यहाँ उल्लेखनीय है कि गाँधीजी ने गीता का गहन अध्ययन किया था। गीता के अतर्गत श्री कृष्ण ने अति स्पष्ट शब्दो में बताया है कि चार वर्ण गुण कर्म विभागानुसार ही मेरे द्वारा बनाए गये हैं –

'चातुर्वर्ण्य मया सृष्ट गुण कर्म विभागश '[6]

गीता के अतर्गत विभिन्न वर्णो के जो गुण व कर्म बताए गये हैं गाँधीजी के विचारो पर उनकी गहरी छाप है। उनके अनुसार वर्ण व्यवस्था का प्रारभिक आधार अवश्य जन्म है किन्तु वर्ण निर्धारण कर्म द्वारा ही होता है। गाँधीजी के शब्दो मे 'वर्ण जन्म द्वारा निर्धारित होता है लेकिन उसे उसके दायित्व निर्वाह के द्वारा ही बनाए रखा जा सकता है। यदि किसी का जन्म ब्राह्मण परिवार मे होता है तो वह ब्राह्मण कहलायेगा लेकिन जब वह अपने जीवन मे आयु के अनुसार कार्य क्षेत्र में आता है और ब्राह्मण के कार्य करने मे सक्षम नही है तो वह ब्राह्मण नही कहलायेगा। यदि किसी का जन्म ब्राह्मण परिवार मे हुआ है व जीवन में ब्राह्मणत्व का निर्वाह भी करता है और अपने आप को ब्राह्मण नही कहलाना चाहता तो भी वह ब्राह्मण है।'

व्यक्तिगत जीवन के निर्वाह क्रम मे 4 अवस्थाएँ हैं–जो कि चार आश्रम कहलाती हैं –

1 *ब्रह्मचर्य आश्रम*
2 *गृहस्थ आश्रम*
3 *वानप्रस्थ आश्रम*
4 *सन्यास आश्रम*

गाँधीजी ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि यह आश्रम व्यवस्था व्यक्तिगत जीवन की सफलता की कुजी है। वर्ण व्यवस्था समाज की सफलता की कुजी है और वर्णाश्रम ही हिन्दुत्व की सफलता का रहस्य है। इस वर्णाश्रम व्यवस्था से पुरुषार्थ चतुष्टय–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सुलभ होता है और अतत आत्म तत्त्व की प्राप्ति व सर्वोच्च सत्ता ईश्वर से साक्षात्कार। गाँधीजी के अनुसार वर्णाश्रम धर्म पृथ्वी पर मानव के लक्ष्य को परिभाषित करता है। वह दिन प्रतिदिन इसलिए जन्म नही लेता कि वह धनी होने के स्रोत तलाशे ओर जीवन–यापन के विभिन्न माध्यम खोजे बल्कि उसका जन्म इसलिए हुआ कि वह अपनी शक्ति के प्रत्येक अणु का उपयोग निर्माता (ईश्वर) को जानने के उद्देश्य से करे। इस प्रकार वर्णाश्रम धर्म गाँधीजी की तत्वमीमासा का अग है।

गाँधीजी की पूर्वी सभ्यता में दृढ आस्था व प्रेम था जो कि आत्म त्याग व सतोष की भावना पर आधारित थी। इसके विपरीत पश्चिमी सभ्यता के निर्देशक तत्वो मे सग्रह व कमी न मिटने वाली भूख प्रमुख थे। प्रथम, कर्त्तव्यो की बात करती है तो दूसरी अधिकारो पर बल देती है। एक परमार्थवादी है तो दूसरी स्वार्थी। गाँधीजी ने पूर्वी सभ्यता के साध्यों (ends) की प्राप्ति हेतु वर्णाश्रम व्यवस्था के पुनरुत्थान पर बल दिया तथा कहा कि इसके पुनरुत्थान से ही सच्चे प्रजातत्र की प्राप्ति होगी। गाँधीजी ने इस वर्णाश्रम धर्म मे अनेक सभावनाएँ व्यक्त की। उन्ही के शब्दो मे 'वर्णाश्रम इस प्रकार कोई मानव निर्मित सस्था नहीं है बल्कि मानव परिवार को निर्देशित करने वाला सर्वव्यापी जीवन का नियम है। इस नियम के परिपालन से जीवन जीने योग्य बनेगा, शान्ति व प्रेम का विस्तार होगा, सभी प्रकार के झगड़े व विवाद दूर होगे भुखमरी व दरिद्रता मिटेगी, जनसख्या की समस्या दूर होगी व बीमारियो व महामारियो का अन्त होगा।'[4]

प्रन्यास सिद्धान्त (Trusteeship)

प्रन्यास सिद्धान्त गाँधी जी की मौलिक देन है। यह समाजवाद की प्राप्ति का अहिसक मार्ग है। अहिसा व त्याग की भावना पर आधारित इस सिद्धान्त का आधार ईशोपनिषद् है। ईशोपनिषद् के प्रथम सूत्र की विस्तृत व्याख्या गाँधीजी ने प्रस्तुत कर प्रन्यास सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

ईशावास्यमिद सर्व यत्किच जगत्या जगत।

तेन त्यक्तेन भुजुया मा गृध कस्यस्विद् धनम्।।[5]

'अखिल ब्रह्माड मे जो कुछ भी जड चेतन स्वरूप है वह समस्त ईश्वर मे व्याप्त है। इस ईश्वर को साक्षी रखते हुए त्यागपूर्वक इसे भोगते रहो, इसमें आसक्त मत होओ, क्योकि धन भोग्य पदार्थ किसका है अर्थात् किसी का भी नही है।"

गाँधीजी ने इस श्लोक पर जो भाष्य प्रस्तुत किया वह अपरिग्रह मे उनकी आस्था को दर्शाता है। ईश्वर सर्वव्यापी है अत तुम्हारा कुछ भी नही। तुम्हारा जो कुछ भी है, उसका ईश्वर निर्विवाद रूप से स्वामी है और उस पर कोई आपत्ति भी नहीं उठा सकता।

जो वस्तु व्यक्ति के जीवन के लिए आवश्यक है उन पर व्यक्ति का स्वामित्व है। किन्तु इस दशा मे भी इसका उपभोग या प्रभाव उत्सर्ग की भावना से होना चाहिए और यह उत्सर्ग या परिहार अपने दैनिक जीवन मे करना चाहिए क्योंकि ऐसा न हो कि इस व्यस्त जगत मे जीवन के केन्द्रभूत तथ्य को हम भूल जाएँ। [10]

गाँधीजी ने अपने लिए किसी प्रकार की निजी सपत्ति पर अधिकार रखने से इकार किया। उन्होने किसी ऐसे विश्व की कल्पना नही की जहाँ निजी सपत्ति होगी ही नहीं। किन्तु उनके विचार मे उतनी ही निजी सपत्ति का होना उचित था जितनी सम्मानित जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक हो और उससे अधिक के लिए उन्होंने न्यास का सिद्धात प्रतिपादित किया। उन्होने पूँजीपतियों से कहा कि वे अपने को उन लोगो का न्यासी (Trustee) माने जिन पर वे अपनी पूँजी बनाने धारण करने और बढाने पर निर्भर करते हैं। जिनके पास धन है वे अब अपने धन पर गरीबो की ओर से या समाज की ओर से न्यासी के रूप में अधिकार रखे। न्यासी के रूप मे उसे स्वामित्व धारण करने का अधिकार होगा और धन बढाने के लिए वे अपने बुद्धि वैभव का उपयोग कर सकते है किन्तु अपने लिए नहीं राष्ट्र के लिए बिना शोषण के ऐसा करने दिया जायगा। उनकी सेवा और समाज के लिए उसका क्या महत्त्व है इसे ध्यान मे रखकर राज्य कमीशन की दर तय करेगा जो उसे मिलेगा। उत्तराधिकार के सबध में, हालाकि प्रथम न्यासी अपने उत्तराधिकारी का नाम बताएगा फिर भी राज्य को ही इसे अतिम रूप देने का अधिकार होगा।

गाँधीजी के प्रन्यास सिद्धान्त की पृष्ठभूमि मे केवल दृढ धार्मिक विश्वास ही नहीं था अपितु व्यावहारिकता भी थी। गाँधीजी यह जानते थे कि बलपूर्वक मनुष्यों को उनकी सपत्ति का बुद्धि वैभव से अलग करने का परिणाम होगा– वर्ग सघर्ष घृणा सर्वहारा अधिनायक तत्र सर्वशक्तिमान एव निग्रह। राज्य तथा इसके परिणामस्वरूप अहिसात्मक समाज का निर्माण करने की सभी आशाओ का धूल मे मिल जाना। जिन व्यक्तियों ने अपनी विशिष्ट योग्यता के बल पर सपत्ति अर्जित की है यदि बल द्वारा उन्हें नष्ट कर दिया जाय तो उत्पादन काफी घट सकता है। इसका परिणाम होगा तात्कालिक लाभ के लिए भविष्य मे होने वाले लाभ को बिल्कुल समाप्त कर देना। अत उन्होने बल प्रयोग द्वारा उनकी आय या धन से वचित करने की अपेक्षा उन्हे इस बात के लिए पेरित करने पर बल दिया कि वे न्यासी के रूप मे काम करें। मा व प्रकृति से परिचित होने के कारण गाँधीजी न बताया कि धनी व्यक्तियो को यह भी समझ लेना चाहिए कि यदि उन्होने न्यासिता को स्वीकार नहीं किया तो अतत उन्हे हिसा का शिकार होना पडेगा। उन्हीं के शब्दो मे सपत्ति के वर्तमान स्वामियो को यह अवसर होगा कि वे दो विकल्पो मे से एक का चयन कर लें या तो स्वेच्छा से स्वय को सपत्ति का न्यासी बना लें या फिर वर्ग सघर्ष का सामना करे। '

गाँधीजी ने स्पष्ट किया कि " यदि सपत्तिधारी लोग और पूँजीपति आवश्यकता से अधिक पूँजी या सपत्ति का समुदाय के हित मे समर्पण करने के लिए स्वेच्छा से तैयार नही हो, तो वे यह सुझाव देगे कि राज्य ऐसे लोगो की संपत्ति का बलपूर्वक हरण कर ले। किन्तु ऐसा तभी किया जाना चाहिए जबकि हृदय परिवर्तन के सभी अहिंसक साधन विफल हो गये हों।"[12]

गाँधीजी ने अपने प्रन्यास सिद्धात को संक्षेप मे निम्न प्रकार समझाया है–[13]

(अ) न्यासिता वर्तमान पूँजीवादी समाजतंत्र को समतावादी समाज तत्र परिणत करने का एक माध्यम है, इसमें पूँजीवाद के लिए कोई स्थान नहीं है किन्तु यह वर्तमान पूँजीपति वर्ग को अपने आपको सुधारने का एक अवसर अवश्य प्रदान करता है। न्यासिता का आधार यह विश्वास है कि मानव प्रकृति निश्चय ही सुधारी जा सकती है।

(ब) न्यासिता का सिद्धांत सपत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व को स्वीकार नहीं करता। अगर करता भी है तो सिर्फ उस सीमा तक, जिसकी स्वीकृति समाज स्वयं अपने कल्याण के लिए दे।

(स) स्वामित्व और संपत्ति के प्रयोग का वैधानिक नियम भी न्यासिता के सिद्धांत की परिधि मे आता है।

(द) इस प्रकार शासन नियमित न्यासिता के अतर्गत किसी व्यक्ति को समाज के हितों की अवहेलना करके अपनी ही संतुष्टि के लिए सपत्ति पर नियत्रण रखने और उसका प्रयोग करने की स्वतत्रता नही होगी।

(य) एक न्यूनतम समुचित जीवनयापन आय का जैसे प्रस्ताव है वैसे ही समाज में किसी व्यक्ति विशेष की अधिकतम आय की सीमा भी निर्धारित होनी चाहिए। इस न्यूनतम और अधिकतम आय का अतर तर्क सगत और न्यायोचित होना चाहिए और समय–समय पर बदलता भी रहना चाहिए और हर परिवर्तन के समय यह प्रवृत्ति होनी चाहिए कि यह अतर किसी प्रकार कम हो।

(र) उत्पादन के स्वरूप का निश्चय सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप किया जाय, न कि किसी व्यक्ति विशेष की सनक अथवा लालच के आधार पर।

गाँधीजी के प्रन्यासिता सिद्धात के औचित्य व व्यावहारिकता पर, आलोचको ने प्रहार किया तथा इसे गाँधीजी की पूँजीपतियों को प्रच्छन्न समर्थन बताया। गाँधीजी ने ऐसे आरोपो का दृढता से प्रतिवाद किया और बताया कि उनका सिद्धांत किसी भी रूप में पूँजीपतियो को प्रश्रय नहीं देता, यह तो वस्तुत पूँजीवाद के दोषों के निराकरण का समुन्नत, नैतिक और विश्वसनीय विकल्प प्रस्तुत करता है। उन्होंने कहा "मेरा ट्रस्टीशिप का सिद्धात कोई ऐसी चीज नही है जिसे काम निकालने के लिए आज गढ लिया गया हो। अपने मतव्य को छिपाने के लिए खडा किया गया आवरण तो यह हरगिज नहीं है। मेरा विश्वास है कि दूसरे सिद्धात जब नहीं रहेगे तब भी वह रहेगा। उसके पीछे तत्त्व ज्ञान व धर्म के समर्थन का बल है।"[14]

विकेन्द्रीकरण (Decentralisation)

विकेन्द्रीकरण गाँधीजी का आधारभूत सिद्धांत है। यह समाज के आर्थिक व राजनीतिक दोनों ही सरचनाओं मे प्रयुक्त होता है। इसकी विशिष्ट सामाजशास्त्रीय महत्ता है। यह उत्पादकों को प्रबध मे प्रभावी भूमिका सभव कराता है तथा मशीन का मालिक बनाता है न कि सेवक। यह व्यक्तित्व के पूर्ण विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान करता है। विकेन्द्रीकरण गाँधीजी के सामाजिक सगठन का आधार है। यह पृथ्वी पर शांति की स्थापना की कुजी तथा अहिंसक समाज की नीव है।

गाँधीजी केन्द्रीयकण (Centralisation) को हिंसा का प्रतीक मानते हैं। उनके अनुसार आर्थिक क्षेत्र मे केन्द्रीयकरण ही शोषण और असमानता का मुख्य कारण है। उनकी मान्यता है कि आर्थिक शक्ति के कुछ हाथो मे केन्द्रित हो जाने के फलस्वरूप पूँजीपति वर्ग समाज मे उपलब्ध योग्यताओ और साधनो का शोषण कर लेने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। उनके अनुसार समाज मे धनी व निर्धन वर्ग के मध्य खाई का कारण भी केन्द्रीयकरण ही है। गाँधीजी का स्पष्ट मत है कि विकेन्द्रीकरण के माध्यम से आर्थिक प्रणाली मे अहिंसा की प्रतिष्ठा हो सकती है।

गाँधीजी ने बड़े पैमाने के उद्योगो के कुछ स्थानो पर केन्द्रित हो जाने की अपेक्षा छोटे पैमाने के उद्योगो के विकेन्द्रीकरण पर बल दिया। गाँधीजी चाहते थे कि उत्पादन इकाइयाँ आम जनता के घरो तक विशेष रूप से गाँवो तक पहुँचें। ग्रामीण व कुटीर उद्योगों का सबसे महत्त्वपूर्ण लाभ है रोजगार मे वृद्धि। लघु व कुटीर उद्योगों के अतर्गत कुशलता अधिक पायी जाती है व उत्पादन लागत कम आती है। लघु व कुटीर उद्योगो के अतर्गत उत्पादित वस्तु निम्न कारणो से सस्ती होती है–

(अ) कोई अतिरिक्त स्थापना लागत (estblishment charges) नहीं होती।

(ब) बहुत कम औजारो (Tools) की आवश्यकता होती है।

(स) भडारण की कोई समस्या नहीं होती।

(द) उपभोक्ताओ तक वस्तु पहुँचाने के लिए कोई परिवहन लागत नहीं होती।

(य) उत्पादन की मात्रा जनता की आवश्यकताओं को ध्यान मे रखकर निर्धारित की जाती है। अत उत्पादन अतिरेक की समस्या कभी उत्पन्न नही होती।

(र) इन उद्योगों के अतर्गत प्रतियोगिता मे होने वाले अपव्यय भी नहीं होते।

कृषि के साथ–साथ कुटीर उद्योगो की स्थापना होने पर किसान अपने बेकार समय का सही उपयोग कर सकेगा। वस्तुत ग्रामीण जीवन के साथ–साथ इनका विशिष्ट तारतम्य है।

ये उद्योग ग्रामीणो की आय मे वृद्धि करेंगे व उनकी मूलभूत आवश्यकताओं को सतुष्ट करेगे। इन उद्योगों की स्थापना के माध्यम से जहाँ एक ओर गाँवो की गरीबी व

बेरोजगारी की समस्या दूर होगी वहीं दूसरी ओर गाँव आत्म निर्भर आर्थिक इकाई के रूप में उभरेंगे।

गाँधी जी ने विकेन्द्रीकरण की अवधारणा की राजनीतिक जीवन में भी व्याख्या की। राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की दृष्टि से गाँधीजी ने ग्राम स्वराज्य की अभिकल्पना की। **ग्राम स्वराज्य "राम राज्य" की प्राप्ति का मार्ग है।** गाँव आर्थिक व राजनीतिक दृष्टि से एक पूर्ण इकाई होनी चाहिए। इस ग्राम स्वराज्य मे श्रम और पूँजी के बीच विवादो, साम्प्रदायिक दुर्भावनाओ और वर्ग भेद के लिए कोई स्थान नही होगा। क्योकि विकेन्द्रीकरण द्वारा उत्पादन की प्रक्रिया को श्रम आधारित बनाकर, आर्थिक असमानता को समाप्त कर दिया जायगा, अहिसा और प्रेम के आदर्श, व्यक्तियो के मन मे साम्प्रदायिक वैमनस्य के लिए कोई स्थान नही छोड़ेगे।

खादी अर्थशास्त्र

खादी का गाँधी जी के आर्थिक विचारों मे विशिष्ट स्थान है। खादी के लिए प्रयुक्त होने वाला माध्यम "चर्खा" इसके साथ अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। भारतीय स्वाधीनता आदोलन का तो यह प्रतीक बन गया था। खादी व चरखा गाँधीजी के विकेन्द्रीकरण का रचनात्मक स्वरूप है, स्वदेशी आदोलन का आधार है व ग्राम स्वराज्य का प्राण है। गाँधी जी के खादी के सदर्भ मे विचार इतने व्यापक व रचनात्मक हैं कि समग्र रूप मे इसे **"खादी अर्थशास्त्र"** कहा जाता है।

गाँधी ने खादी को स्वराज्य का रहस्य, व अकाल व सूखे के निराकरण का एकमात्र मार्ग बताया है। गाँधी जी ने जीवन प्रदाता बताया है, उन्ही के शब्दो मे "यह ग्रामीणो का नया जीवन व नयी आशा प्रदान करती है। यह लाखो भूखे मुँह भर सकती है। यह अकेले ही हमे ग्रामीणो के करीब ला सकती है। यह लाखो लोगों के लिए सर्वाधिक चर्चित शिक्षा है जिसकी कि आवश्यकता है। यह जीवन प्रदाता है।"[15]

गाँधी जी ने आत्म निर्भर गाँव की प्रथम जो दो आत्म निर्भरताएँ बतायी है, वे हैं– खाद्यान्न के क्षेत्र मे आत्म निर्भरता वस्त्र के क्षेत्र मे आत्मनिर्भरता, कपडे के क्षेत्र मे आत्म–निर्भर होने के लिए प्रत्येक गाँव मे जहाँ सभव है, कपास बोयी जानी चाहिए व हर घर मे चरखा होना चाहिए व खादी का उत्पादन किया जाना चाहिए।

गाँधीजी ने खादी उद्योग को सर्वाधिक प्राथमिकता प्रदान की है। खादी को ग्रामीण प्रणाली का सूरज (Sun) बताया है। उन्ही के शब्दो मे, "चरखा तो ग्राम उद्योग का मध्य बिन्दु है। अगर सात लाख गाँवो मे चरखा नहीं चले तो अन्य गृह उद्योग भी नही चल सकते। चरखा तो सूरज है और दूसरे जो उद्योग हें वे ग्रह हैं, जो सूरज के इर्द–गिर्द घूमते रहते हैं। अगर सूरज डूब जाए तो दूसरे ग्रह चल नहीं सकते, क्योकि वे सब सूरज पर ही आश्रित है।"[16]

गाँधीजी ने चरखे की महत्ता को एक आधारभूत उद्योग के रूप मे समझा।

'चरखा' को उन्होने बुनाई छपाई व रगाई उद्योग मे लगे हुए श्रमिकों के जीवन–यापन का साधन बताया। लुहार व खाती के व्यवसाय का आधार बताया। गाँधी जी ने 'चरखा' को धार्मिक व नैतिक मूल्य प्रदान किया। उन्ही के शब्दो मे 'चरखे मे नीतिशास्त्र भरा है अर्थशास्त्र भरा है और अहिसा भरी है। " गाँधीजी ने खादी उद्योग के विकास पर बल दिया व एतदर्थ निम्न उपाय बताये –

(अ) प्राथमिक व माध्यमिक विद्यालयो में कताई (सूत कातना) विषय अनिवार्य रूप से प्रारम्भ किया जाय।

(ब) उन क्षेत्रों मे भी कपास बोयी जाए जहाँ बोया जाना सभव है और अब तक नही बोयी जाती है।

(स) बहुउद्देशीय सहकारी समितियो द्वारा बुनाई की व्यवस्था की जाय।

(द) ग्राम पचायतों नगर परिषदो जिला परिषदो सहकारी विभागों व शिक्षा विभाग मे कार्यरत सभी कर्मचारियो के लिए कताई का प्रशिक्षण अनिवार्य होना चाहिए। अन्यथा उन्हें अयोग्य घोषित कर दिया जाय।

(य) कारखाने के सूत से हथकरघा उद्योग मे बने कपड़े की कीमतो पर नियत्रण हो।

(र) जिन क्षेत्रो मे हाथ से बुना हुआ कपड़ा पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हो वहाँ कारखाने के कपडे के उपयोग पर प्रतिबध हो।

(ल) सभी सरकारी विभागो मे हाथ से बने कपड़े का उपयोग हो।

(व) पुरानी कपड़ा मिलो को विस्तार की अनुमति प्रदान नही की जाय।

(श) नयी कपड़ा मिल खोलने की अनुमति भी प्रदान नही की जाय।

(ठ) विदेशी धागे व कपडे के आयात पर पूर्ण प्रतिबध लगा दिया जाय।

स्वदेशी

'स्वदेशी' गाँधीजी के सत्याग्रह की उपज है। स्वदेशी एक रचनात्मक कार्य है। गाँधी जी ने स्वदेशी को 'कामधेनु' बताया है जो हमारी समस्त इच्छाओं की पूर्ति करती है तथा हमारी कठिन समस्याओ को दूर करती है। गाँधीजी ने स्वदेशी आदोलन के माध्यम से जन जागृति पैदा की व भारतीय स्वाधीनता आदोलन का इसे एक अग बनाया। इस आदोलन के अतर्गत बहिष्कार बायकॉट व विदेशी वस्त्रो की होली तक शामिल है। आर्थिक दृष्टि से गाँधी जी ने इसे वार्षिक निकासी को रोकने का माध्यम तो बताया ही लेकिन उससे बहुत अधिक उपयोगी बताया। स्वदेशी हमारे सम्मान की रक्षा करता है प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता है ग्राम स्वराज्य की स्थापना करता है सत्य अहिसा व समता पर आधारित समाज की स्थापना करता है।

गाँधीजी के अनुसार स्वदेशी एक सार्वभौम धर्म है जिसका अर्थ है निकटमत उपलब्ध सदर्भों के प्रति कर्त्तव्यो का पालन प्रारभ करके धीरे–धीरे कर्त्तव्यो को व्यापक

बनाए जाने की भावना। इस प्रकार स्वदेशी में दूसरो के प्रति द्वेष का भाव नहीं है। यह तो केवल इस बात की विनम्र स्वीकृति है कि व्यक्ति की कर्त्तव्य पालन की क्षमताएँ सीमित हैं। स्वदेशी के माध्यम से व्यक्ति अपने समर्पण को अपनी सामर्थ्य के अनुसार सीमित करके अपने आस पड़ौस व गाँव की सेवा का व्रत लेता है। इस प्रकार यह स्वदेशी की भावना अतत सारे ससार मे फैल जाती है।

गाँधी जी ने बताया कि स्वदेशी धर्म विदेशी के विरुद्ध नहीं है, लेकिन यह सर्व देशी भी नहीं है। स्वदेशी का पालन करने में विदेशी के प्रति घृणा या द्वेष का महत्व नहीं है। उनके अनुसार जो चीज देश में नहीं बन सकती उसे विदेश से मगाने में कोई बुराई नहीं है ? ऐसा करने पर स्वदेशी के विचार का विरोध भी नहीं होता।

गाँधी जी ने बताया कि प्रत्येक देश की प्रगति के नियमो का तकाजा है कि वहाँ के रहने वाले अपने यहाँ की ही पैदावार और माल को अधिक अपनाएँ। भारतीय संदर्भ मे उन्होंने चरखा और खादी को स्वदेशी पर आधारित अर्थशास्त्र के दो प्रभावशाली प्रतीक बताया। स्वदेशी जैसी महान अवधारणा को प्रोन्नत करने हेतु गाँधी जी ने कुछ निर्देश दिये ओर कहा कि जो भी स्वदेशी के महत्त्व को समझता है वह इनमे से एक या अधिक या सभी को अपना सकता है :–[16]

(i) आप चाहे स्त्री हो या पुरुष कताई सीखिये। यदि मुद्रा की आवश्यकता है तो श्रम का मूल्य प्राप्त कीजिए अन्यथा इसे यह मानकर चलिए कि एक घटे का श्रम आपने राष्ट्र को उपहार स्वरूप प्रदान किया है।

(ii) स्वयं बुनाई सीखिए चाहे उसका उद्देश्य मनोरजन हो या वस्तु की देखभाल करना ही क्यो न हो।

(iii) वर्तमान हस्त करघे में सुधार कीजिए। चरखे मे भी सुधार कीजिए। यदि आप धनी हैं तो उन लोगो के लिए धन की व्यवस्था कीजिए जो कि ऐसा कर सकते हैं।

(iv) स्वदेशी की प्रतिज्ञा लीजिए तथा हाथ से ही काते हुए व हाथ से ही बुने हुए कपडे को सरक्षण प्रदान कीजिए।

(v) इस प्रकार के कपडे से अपने मित्रो को अवगत कराइये तथा उन्हे यह विश्वास दिलाइये कि तुम्हारी बहिनो द्वारा बुनी हुई खादी मे अधिक कला व मानवीयता है।

(vi) यदि आप एक माता हैं तो अपने बच्चे को अधिक स्वच्छ व राष्ट्रीय संस्कार प्रदान कीजिए तथा उन्हें खादी के सुन्दर कपडे पहनाइये जो कि लाखो भारतीयों को उपलब्ध हैं तथा जिनका कि आसानी से उत्पादन किया जा सकता है।

औद्योगीकरण का विरोध

18वीं सदी के उत्तरार्द्ध मे इगलैण्ड में हुई औद्योगिक क्राति ने समस्त ससार को

एक विशिष्ट युग मे धकेल दिया है जिसके लक्षण है औद्योगिकरण व मशीनीकरण। बडे पैमाने पर उत्पादन होने की स्थिति मे मशीनरी का प्रयोग बहुत बढ जाता है।

बडे पैमाने के उद्योगो की स्थापना या औद्योगिकरण उत्पादन के साधनों का कुछ हाथो मे केन्द्रीकरण को प्रोत्साहित करते हैं। इस प्रकार की पूँजीवादी स्थिति मे आय व धन की असमानता अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। इसके बुरे प्रभाव कल्पनातीत होते हैं। वैज्ञानिक खोज अणु शक्ति के विकास के रूप मे अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। जीवन स्तर मे सुधार लाने के लिए पैमाने का विस्तार बढता ही चला जाता है और बढती हुई बेरोजगारी से हम त्रस्त हो जाते हैं। बेरोजगारी की स्थिति की विस्फोटकता इगलैण्ड व अमेरिका जैसे औद्योगिक राष्ट्रो मे देखी जा सकती है। इसके स्पष्ट प्रभाव भारत जैसे देश मे भी देखे जा सकते है जहाँ कि आर्थिक दशाएँ एकदम विपरीत हैं। औद्योगिकरण के अतर्गत जीवन स्तर मे सुधार व बेरोजगारी मे वृद्धि की प्रक्रिया एक साथ सपन्न होती है जिससे विकट समस्याएँ पैदा हो जाती हैं।

गाँधीजी का इस बात म विश्वास नही था कि कुछ व्यक्तियो के जीवन–स्तर मे सुधार हेतु अधिकाश श्रम को बेकार ही पडे रहने दिया जाय। इससे तो कुछ व्यक्तियो के जीवन–स्तर मे सुधार तो क्या जीवन स्तर ही समाप्त हो जायगा। बडे पैमाने पर उत्पादन व औद्योगिकरण के पक्ष मे अर्थशास्त्री कहते हैं कि इससे जनता को सस्ती वस्तुएँ उपलब्ध हो पाती हैं। गाँधीजी ने इस गुमराह करने वाली अवधारणा का प्रबल विरोध किया था। गाँधीजी ने कहा कि कारखाने के अतर्गत उत्पादित होने वाली वस्तु सस्ती नहीं बल्कि महगी होती है क्योकि यह कुछ श्रमिको को ऊँची मजदूरी के बदले मे अधिकश श्रमिको को रोजगार से बाहर कर देती है। उन बेरोजगार श्रमिको के लिए वस्तु बहुत महगी पडती है क्योकि वह उनकी पहुँच के बाहर हो जाती है। गाँधीजी ने गणना करके बताया कि एक मिल मजदूर 10 मजदूरो को नौकरी से बाहर कर देता है। ग्रामीण उद्योगो के अतर्गत उत्पादन होने की स्थिति मे वहाँ एक के स्थान पर 10 मजदूरो को रोजगार मिलता जीवन यापन का साधन मिलता व स्वय के श्रम द्वारा ही उत्पादित वस्तु उसे अधिक सस्ती मिलती।

गाँधीजी ने औद्योगिकरण के कई गभीर परिणाम गिनाये है जिनमे प्रमुख है

(i) कुछ हाथो मे पूँजी व शक्ति का केन्द्रीकरण।

(ii) परजीविता (Parasitism) में वृद्धि–धनी व मध्यम वर्ग की कार्यकारी या सेवा वर्ग पर आश्रितता शहरो की गाँवो पर आश्रितता औद्योगिक राष्ट्रो की कृषि राष्ट्रो पर निर्भरता।

(iii) श्रम और पूँजी के मध्य सघर्ष।

(iv) धनी व निर्धनो के मध्य बढता हुआ अतराल व चकाचौंध कर देने वाली असमानताए।

(v) वाणिज्यीकरण का घातक विस्तार जहाँ एक ओर तो भौतिकवादी चाह है दूसरी ओर युद्ध की विभीषिका।

प्रो. ग्रेग ने भारतीय आर्थिक दर्शन पर लिखित अपनी पुस्तक मे औद्योगिकरण की बुराई को समझाया है. उन्हीं के शब्दो में "*यह एकदम स्पष्ट हो जाना चाहिए कि पाश्चात्य* आर्थिक विचार व विधियॉं जो कि बडे पैमाने, श्रम की बचत, श्रम के विशिष्टीकरण व विकास की तीव्रता के रूप मे स्वीकार की जाती हैं वस्तुत: व्यक्तिगत व सामाजिक मूल्यो को हानि पहुँचा रही है। यह व्यक्तिगत व सामाजिक मूल्यो का ह्रास श्रमिको की गदी बस्तियॉं (Slums), बुरा स्वास्थ्य, काम के अधिक घटे, सामान्य ग्रामीण जीवन से बिछुडना, बेरोजगारी, हडताल, वर्ग शत्रुता, राष्ट्रीय व्यावसायिक शत्रुता, आतकवाद व युद्ध आदि के रूप में परिलक्षित होता है। आर्थिक कुशलता का एक सही अनुमान करते समय लाभ के साथ–साथ इन प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष आर्थिक हानियो को भी शामिल किया जाना चाहिए।"[19]

गाँधीजी का कहना था कि आवश्यकताओ की वृद्धि मशीनो के व्यापक प्रयोग, नगरीकरण और औद्योगिकरण सभी एक दूसरे से जुडे हैं और इन्हीं की वजह से गॉव उजडते जा रहे है, वहाँ गरीबी बढती जा रही है, मानव का व्यक्तित्व कलकित हो रहा है, बेरोजगारी बढी है और बढती जा रही है ओर राष्ट्रीय व अतर्राष्ट्रीय स्तर पर बलवान द्वारा निर्बल का शोषण हो रहा है।

मशीनीकरण का विरोध

मशीनीकरण व औद्योगिकरण दोनो एक सिक्के के दो पहलू हैं। औद्योगिकरण मशीनो के अभाव में हो नहीं सकता तथा औद्योगिकरण के बिना मशीनों का कोई मतलब नही रह जाता। मशीनों के प्रति गाँधीजी का दृष्टिकोण एक मौलिक दृष्टिकोण है जिसमे गॉधीजी के यथार्थवादी होने के कारण समयानुसार परिवर्तन भी स्पष्ट दिखाई पडता है। मशीनो के प्रति दृष्टिकोण गाँधीजी के आर्थिक चिन्तन का सर्वाधिक विवादास्पद पक्ष रहा है।

गाँधीजी ने मशीन को बहुत बडी बुराई बताते हुए दृढता के साथ कहा है कि वह मशीन के पक्ष मे कोई भी अच्छी बात नही जानते। उन्ही के शब्दो मे "इसकी बुराइयो का निर्देशन करने के लिए पुस्तके लिखी जा सकती हैं। . यह समझ लेना चाहिए कि मशीन एक बुरी चीज है। मशीन को "वरदान" मानकर उसका स्वागत करने के बजाय अगर हम शाप माने तो अन्तत इसका नाश हो जायगा।"[20]

1908 मे प्रस्तुत मशीनो के प्रति दृष्टिकोण पर गाँधी जी दृढ न रहे यद्यपि गॉधीजी दृढ इच्छा शक्ति के लिए जाने जाते हैं। लेकिन यह भी याद रखना चाहिए कि गॉधीजी यथार्थवादी व व्यावहारिक भी थे। मशीन के प्रति उनके दृष्टिकोण मे जो प्रगतिशील परिवर्तन हुआ वह इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने अपने चारों ओर के यथार्थ

को पहचान उसे अंगीकार किया। 1924 मे उन्होने सिंगर सिलाई मशीन के उपयोग की बात कही। इतना ही नही उन्होने इस बात की घोषणा की कि वह एक ऐसे दिन का स्वागत करने के लिए तैयार है जिस दिन कोई मशीन तकुओ को ठीक करेगी और इस प्रकार तकुए खराब हो जाने पर कातने वालो को सहायता पहुँचायेगी। इस सदर्भ मे गाँधीजी की कसौटी यह थी कि मशीन व्यक्ति की सहायक होनी चाहिए न कि उसकी वैयक्तिकता पर अतिक्रमण करने वाली उन्ही के शब्दो मे "मैं समस्त विनाशकारी मशीन का कट्टर विरोधी हूँ। किन्तु मै साधारण औजार एव उपकरणो तथा ऐसे उपकरणो और मशीनो का स्वागत करता हूँ जिनसे व्यक्ति का श्रम बचता हो और लाखो झोपडीवासियो का भार हल्का होता हो।

गाँधीजी ने मशीनो के प्रति अपने दृष्टिकोण मे फिर परिवर्तन किया और अपने आलोचको को एक अर्थशास्त्री के रूप में प्रत्युत्तर दिया कि जब तक बेरोजगार लोग रहेगे जिन्हे अपने हाथ से करने के लिए काम न मिले मशीन का कोई स्थान नही है। अपने दृष्टिकोण को और अधिक स्पष्ट करते हुए गाँधीजी ने 1934 मे लिखा "यत्रीकरण उस समय तो ठीक है जब काम करने के लिए हाथ थोडे हो किन्तु यह उस स्थिति मे ठीक नही है जब काम करने के लिए आवश्यकता से अधिक हाथ हो, जैसा कि भारत मे देखने को मिलता है। हमारी समस्या यह नही है कि करोडो ग्रामवासियो के लिए अवकाश कैसे ढूढा जाय। समस्या यह है कि उनके खाली समय का उपयोग कैसे किया जाय जो वर्ष मे छ माह के करीब होता है।

गाधीजी ने मशीन के प्रति अपने दृष्टिकोण को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा कि वे यत्रो के ऐसे उपयोग के समर्थक है जिससे सबका भला हो तथा जिसमें कुछ लोगो को अन्य लोगो का शोषण करने का अवसर प्राप्त न हो। उन्होने कहा कि मैं गृह उद्योग के काम मे आने वाली मशीनो के सुधार का स्वागत करूँगा किन्तु विद्युत शक्ति से चलने वाले तकुए जारी करके हाथ से सूत कातने वालो को हटा देना मैं एक निर्दयता मानूँगा जब तक कि इसके साथ ही करोडो किसानो को उनके घरो मे ही व्यवसाय देने के लिए पर्याप्त व्यवस्था न हो।[3]

इस प्रकार गाँधीजी के मशीनीकरण के विरोध के मूल में श्रम की प्रतिष्ठा पूर्ण रोजगार की भावना व मानव मात्र का कल्याण निहित है।

श्रम अर्थशास्त्र

गाँधीजी ने श्रम अर्थशास्त्र से सबद्ध सभी पक्षो पर अपने सारगर्भित विचार व्यक्त किये है श्रम अर्थशास्त्र से सबद्ध गाधीजी के प्रमुख विचारो को निम्न शीर्षकों के अतर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है

(1) **श्रम की प्रतिष्ठा** गाँधीजी के अनुसार श्रम उत्पादन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन है श्रम साधन व साध्य दोनो है। गाधीजी ने अपने आर्थिक विचारो मे

श्रम को उच्च स्थान प्रदान किया है। उनके लिए श्रम की महत्ता आर्थिक व्यवस्था का मूलभूत तत्व है। गाँधीजी के अनुसार जिसे अहिंसा का पालन करना है, सत्य की आराधना करनी है, ब्रह्मचर्य को स्वाभाविक बनाना है, उसके लिए तो श्रम रामबाण का काम देता है। काम करना हमारी अभिरुचि का विषय है। गाँधी जी का कथन था कि हम अपने शरीर रूपी अमूल्य जीवित मशीन को तो नष्ट कर रहे हैं व उसके स्थान पर निर्जीव मशीनों के प्रयोग को प्राथमिकता दे रहे हैं। इस प्रकार हम प्राकृतिक नियम–श्रम की अवहेलना कर रहे है। श्रम न केवल शरीर को स्वस्थ रखता है वरन् मस्तिष्क को भी प्रेरित करता है।

गाँधीजी ने श्रम के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए **रोटी का श्रम सिद्धांत (Bread Labour Theory)** प्रस्तुत किया जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं के परिश्रम द्वारा ईमानदारी से अपनी जीविका का उपार्जन करना चाहिए। रोटी के लिए प्रत्येक मनुष्य को मजदूरी करनी चाहिए। उनका विश्वास था कि इस सिद्धांत से समानता स्थापित हो जायगी। धनी व निर्धन के मध्य अन्तराल कम हो जायगा। वर्ग भेद दूर हो जायेगा। भुखमरी शेष नहीं रह जाएगी।

गाँधीजी ने श्रम ओर पूँजी के मध्य मधुर संबंध की स्थापना पर बल दिया। इस सबध में गाँधीजी ने कहा ***"श्रम पूँजी से कहीं श्रेष्ठ है। मैं श्रम और पूँजी का विवाह कर देना चाहता हूँ। वे दोनों मिलकर आश्चर्यजनक काम कर सकते हैं।"***[24] पूँजी को श्रम का सेवक होना चाहिए न कि स्वामी। मजदूरों को अपने कर्तव्यों का ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि उनका पालन करने से अधिकार अपने आप मिल जाते हैं।

(ii) श्रम संघ– गाँधी जी के अनुसार श्रमिक जो पैदा करता है, उसका वही मालिक है। अगर मेहनत या श्रम करने वाले बुद्धिपूर्वक एक हो जाये तो उनकी ताकत का कोई मुकाबला नहीं कर सकता।[25] इस प्रकार श्रम संघ एक बहुत बड़ी शक्ति है। गाँधी जी के अनुसार श्रम संघों को अति महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है। उन्होंने श्रम सघों के निम्न कार्य बताएं हैं :–

(i) अपने सदस्यों के अधिकारों व हितों की रक्षा करना।

(ii) सदस्यो को जिम्मेदार नागरिक के रूप में तैयार करना।

(iii) औद्योगिक विवादों को आपसी वार्ता, समझौतों व पंच फैसले के आधार पर निबटाना।

(iv) यदि मालिक पंच फैसले का क्रियान्वयन नहीं करते तो मजदूर को हड़ताल के लिए तैयार करना।

(v) मजदूरों का समग्र विकास–शारीरिक, मानसिक, नैतिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व शैक्षिक विकास हेतु कार्यक्रम निर्धारित करना।

(vi) यह तय करना कि उद्योग समुदाय की आवश्यकताओं को संतुष्ट करते हुए संचालित हो रहे हैं।

(vii) श्रम के नैतिक व बुद्धिमत्तापूर्ण अधिकारो मे वृद्धि करना तथा श्रम को उत्पादन के साधनो के स्वामी के रूप मे प्रतिष्ठित करना न कि एक दास के रूप मे।

(viii) *श्रमिकों को मुख्य व्यवसाय के अतिरिक्त पूरक व्यवसाय में प्रशिक्षित करना* ताकि हडताल तालाबंदी व नौकरी से निकाले जाने की स्थिति में भूखा न मरे।

गाधीजी ने श्रम सघ के उपर्युक्त कार्यों के आधार पर एक आदर्श श्रम सघ की कल्पना की। गाँधी जी के सिद्धातो पर आधारित श्रम सघ का उदाहरण अहमदाबाद श्रम सघ (Ahemadabad Labour Union) थी। गाँधी जी के शब्दों मे 'अहमदाबाद श्रम सघ समस्त भारत में अपनाने के लिए एक आदर्श है। इसका आधार अहिंसा सत्यता व सादगी है। इसके कार्य मे कभी बाधा नही आई। बिना हगामे व दिखावे के यह शक्तिशाली होती चली गयी। इसका अपना अस्पताल है मिल मजदूरो के बच्चो के लिए स्कूल है बुजुर्गों के लिए कक्षा की व्यवस्था है अपना मुद्रणालय व खादी डिपो है तथा स्वय के आवासीय भवन है। सभी को वोट देने का अधिकार है व चुनाव का भविष्य निर्धारित करते हैं। मतदाता सूची मे प्रान्तीय काग्रेस कमेटी के सुझाव पर सम्मिलित हुए परन्तु काग्रेस की राजनीति म कभी भाग न लिया। यह शहर की नगर परिषद की नीति को प्रभावित करती है। इसने पूर्णतया अहिंसात्मक आदोलन सफलता पूर्वक किये हैं। मिल मालिक व मजदूर स्वैच्छिक पच फैसला से शासित होते हैं। इस मजदूर सघ का अनुकरण किया जाना चाहिए।"

(iii) *श्रम कल्याण* – *गाँधी जी के अनुसार श्रम उत्पादन का साधन और* साध्य दोनों है। श्रम के अतर्गत मानवीय मूल्य भी समाहित हैं। श्रम कल्याण आर्थिक स्थायित्व व सामाजिक समता की स्थापना की पूर्व शर्त है। एक आदर्श समाज में प्रत्येक श्रमिक को पूर्ण रोजगार प्राप्त हो जाना ही पर्याप्त नही है वरन् कार्य व जीवन की बेहतर दशाएँ भी आवश्यक हैं। श्रम कल्याण कि दिशा मे पहला कदम रोजगार की गारटी व मजदूरी का स्थायित्व हैं। जब भी इन मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति नही हो पाती है तथा अन्य समस्याएँ भी होती हैं तब श्रमिको की हड़ताल न्यायोचित होगी। गाँधी जी ने सफल हडताल हेतु निम्न शर्तें प्रस्तुत की हैं –

(i) हड़ताल का कारण न्यायोचित होना चाहिए।

(ii) सभी हडतालियो के मध्य व्यावहारिक एकता होनी चाहिए।

(iii) हड़ताल न करने वालों के विरुद्ध किसी प्रकार की हिंसा काम में न ली जाये।

(iv) हडताली हडताल का भार स्वय वहन करे इसके लिए ये अन्यत्र अस्थायी व्यवसाय मे सलग्न हो सकते है।

(v) जब हडताल करने वालो के स्थान पर प्रतिस्थापन हेतु पर्याप्त मात्रा में अन्य

श्रमिक हों तो हड़ताल का कोई मतलब नहीं रह जाता। यदि इस अन्याय से मुक्ति पानी है तो एकमात्र उपाय "त्याग पत्र" शेष रह जाता है।

(vi) यदि उपर्युक्त दशाओं के पूरा हुए बिना भी कोई हड़ताल सफल हो जाती है तो इसका स्पष्ट मतलब है मालिक कमजोर हैं।

व्यावसायिक शिक्षा पर जोर

शिक्षा के संबंध में भी महात्मा गाँधी की महत्त्वपूर्ण देन है। बुनियादी शिक्षा की पद्धति उन्हीं की चलाई हुई है। इस प्रणाली के अनुसार–शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क होगी। कताई–बुनाई, कृषि आदि में से किसी एक शिल्प के माध्यम द्वारा 14 वर्ष तक के छात्र और छात्राओं को यह शिक्षा दी जायगी। इस पद्धति द्वारा जो विद्यार्थी शिक्षित होंगे, उन्हें अच्छा ज्ञान हो जायेगा। शिक्षा पर जो व्यय किया जायगा, उसका भी थोड़ा–बहुत अंश निकल जायेगा और आगे चल कर विद्यार्थी व्यवसाय के लिए किसी के मोहताज नहीं रहेंगे इस प्रकार की शिक्षण–संस्थाओं में किसी प्रकार का शारीरिक दण्ड नहीं दिया जायेगा।

यह पद्धति वर्धा शिक्षा–योजना के नाम से प्रसिद्ध है। इस पद्धति द्वारा शिक्षा प्राप्त कर लेने पर छात्र श्रम के महत्त्व को समझेंगे और सहकारिता, सत्य और अहिंसा पर आश्रित समाज के सच्चे सदस्य बन सकेंगे। आजकल शिक्षितों में इस बात की होड़ लगी रहती है कि वे जनता से अधिक से अधिक प्राप्त करें और उसे कम से कम दें। इससे शोषण और स्वार्थ का पोषण होता है। जिससे सामाजिकता और आर्थिक विषमता उत्पन्न होती है। नई तालीम के शिक्षकों से आशा की जाती है कि वे सेवा, त्याग तथा आत्म- संयम के आदर्शों को अपनायेंगे, अपनी आवश्यकताओं को कम करेंगे, जनता तथा राष्ट्र के सच्चे सेवक बनेंगे और सर्वोदय की विचारधारा को कार्य का रूप देकर उसे आगे बढ़ायेंगे।

गाँधीजी ने स्पष्ट किया कि उनके द्वारा वर्णित यह बुनियादी शिक्षा पद्धति और पाठ्यक्रम को इस प्रकार निर्धारित व संचालित किया जायगा कि यह शिक्षा विद्यार्थियों के हृदय, बुद्धि और शरीर तीनों के समग्र विकास का माध्यम बने। गाँधीजी के अनुसार "मनुष्य न केवल बुद्धि है, न केवल शरीर है, और न केवल हृदय और आत्मा है। तीनों के समान विकास से ही मनुष्य का मनुष्यत्व सिद्ध होगा। इसी में सच्चा ज्ञान है।"

गाँधीजी के अनुसार बुनियादी शिक्षा की उनकी योजना व्यक्ति और समाज दोनों के विकास का माध्यम व आत्मनिर्भरता की प्राप्ति का मार्ग है। उन्हीं के शब्दों में "मेरी शिक्षा योजना, एक शांत सामाजिक क्रांति का माध्यम बनेगी, यह गाँवों और शहरों के मध्य संबंधों को एक स्वस्थ और नैतिक आधार प्रदान करेगी, और एक अधिक न्यायनिष्ठ सामाजिक व्यवस्था की नींव डालेगी, जिसमें कि सम्पन्नों और विपन्नों के रूप में समाज का विभाजन नहीं होगा। प्रत्येक व्यक्ति को अपने निर्वाह के लिए न्यूनतम साधन

उपलब्ध हाग और स्वतत्रता प्राप्त हागी। सबस महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस क्राति को रचनात्मक माध्यम से पूरा किया जायगा इसम न तो रक्तपात की आवश्यकता हागी और न ही भारी भरकम साधना व विनियोग की। इसके लिए भारत जैस बडे दश का मशीनीकरण नही करना पडगा और न ही तकनीकी कौशल और मशीन के लिए विदेशी आयात पर निर्भर होना पड़ेगा। इसका सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि यह भारत की जनता म उस आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता को सुनिश्चित करेगी जिसक द्वारा उसका भविष्य स्वय उनके हाथा म रहेगा। [28]

भारत क विश्वविद्यालयों में अग्रेजी भाषा के माध्यम द्वारा जो उच्च शिक्षा दी जाती है गाँधीजी उसके बहुत खिलाफ थे। उन्होंने स्पष्ट लिखा था कि इस विदेशी भाषा के माध्यम ने हमारे बच्चा के दिमागों को शिथिल कर दिया है उनके स्नायुआ पर अनावश्यक जोर डाला है उन्हे रट्टू और नकलची बना दिया है मौलिक विचारा और कार्यों के लिये सर्वथा अयोग्य कर दिया है और अपनी विद्या को अपने परिवार के लोगों और आम जनता तक पहुँचाने म उन्हें असमर्थ बना दिया है। इस विदेशी माध्यम ने हमारे बच्चा को अपने ही घरा मे पूरा विदेशी बना डाला है। वर्तमान शिक्षा–प्रणाली के विषय म यह सबसे बड़े दुःख की बात है। अग्रजी भाषा के माध्यम ने हमारे देशी भाषा की बढती को रोक दिया है। अगर मेरे हाथ में एक तानाशाह की सत्ता होती तो मैं आज ही विदेशी माध्यम द्वारा दी जाने वाली हमारे लडके और लडकियों की शिक्षा बद कर देता और सारे शिक्षकों और प्रोफेसरों से यह माध्यम तुरन्त बदलवाता तथा नहीं बदलते तो उन्हें बरखास्त कर देता। मैं पाठय पुस्तको की तैयारी का इतजार न करता। वे तो इस परिवर्तन के पीछे–पीछे चली आवेंगी। इस बुराई का तो तुरत इलाज होना चाहिए।

'विदेशी शासन के अनेक दोषों में देश के बच्चों पर विदेशी माध्यम लादने के हानिकारक बात इतिहास म एक सबसे बडा दोष गिनी जायगी। इसने राष्ट्र की शक्ति क्षीण कर दी है विद्यार्थिया की आयु घटा दी है उन्ह आम जनता से दूर कर दिया हैं और बिना कारण ही शिक्षा को खर्चीली बना दिया है। अगर यह प्रक्रिया अब भी जारी रही तो यह राष्ट्र की आत्मा को नष्ट कर देगी।[29]

शिक्षा का माध्यम तो एकदम और हर हालत म बदला जाना चाहिय और प्रातीय भाषाओं का उनका वाजिब स्थान मिलना चाहिए। यह जो भयकर बरबादी रोज ब रोज हो रही है इसके बजाय तो मैं उच्च शिक्षा में अस्थायी रूप से अव्यवस्था को भी पसद कर लूँगा।[30]

गाँधी जी की राम राज्य सकल्पना

राम–नाम की शक्ति में उनका बड़ा विश्वास था। गाँधीजी स बहुत से लाग जब स्वराज्य का अर्थ पूछते थे तो वे कह दिया करत थे स्वराज्य का अर्थ होगा 'रामराज्य'।

सामान्य जनता को गाँधीजी की यह बात बडी पसंद आई क्योकि तुलसीदास सैंकडो वर्ष पहले रामराज्य का चित्र खीचते हुए बतला चुके थे–

दैहिक दैविक भौतिक तापा, राम राज्य काहू नहि व्यापा
बैंर न करहि काहु सन कोई, राम–प्रताप विषमता खोई
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना, नहि कोउ अबुध् न लच्छन हीना।।

तुलसी के राम राज्य का आदर्श गाँधीजी को बहुत अच्छा लगा होगा। किन्तु कुछ लोग ऐसे थे जो राम राज्य को स्वराज्य अथवा आदर्श राज्य के अर्थ मे मानने के लिए तैयार न थे। राम राज्य उनकी दृष्टि में एक राजा का राज्य था जो प्रजातंत्र पद्धति के विरुद्ध पडता था। कुछ ऐसे भी थे जो "रामराज्य" में हिन्दू राज्य की सकीर्णता का अनुभव करते थे। "रामराज्य" शब्द को लेकर जब इस प्रकार के आक्षेप उठाये जाने लगे तो गाँधीजी को अक्टूबर 1945 के "हरिजन" मे "रामराज्य" सबंधी अपने स्वप्न का निम्नलिखित स्पष्टीकरण करना पडा :–

"राम राज्य का धर्म की परिभाषा मे अर्थ होगा–पृथ्वी पर ईश्वर का राज्य। राजनीतिक भाषा मे अनुवाद किया जाय तो इसकी व्याख्या होगी–एक लोकतंत्र, जिसमे गरीब और अमीर, स्त्री और पुरुष, गोरे और काले, जाति या मजहब के कारण असमानता नहीं रहेगी, ऐसे राज्य मे सब जमीन और सत्ता जनता के हाथ में होगी न्याय शीघ्र शुद्ध और सस्ता होगा, उपासन वाणी और लेखनी की स्वतंत्रता होगी। और इन सबका आधार होगा–स्वेच्छा से संयम, धर्म का शासन। ऐसे राज्य–तंत्र की रचना सत्य और अहिंसा पर ही हो सकती है। सुखी, समृद्ध तथा स्वावलम्बी देहात और देहाती प्रजा उसके मुख्य लक्षण होंगे। हो सकता है कि यह स्वप्न कभी कार्य का रूप धारण न कर सके परन्तु इस स्वप्न जगत मे रहने और इसको शीघ्र से शीघ्र निर्मित करने के प्रयत्न में ही मेरे जीवन का आनन्द है।"

सर्वोदय
(Sarvodaya)

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत्।।

सभी के कल्याण का द्योतक उपर्युक्त वैदिक मंत्र प्राचीन भारतीय संस्कृति के विशिष्ट स्वरूप का परिचायक है तथा गाँधीजी ने इसी परिप्रेक्ष्य मे भारत के सामाजिक आर्थिक पुनरुत्थान हेतु प्रस्तुत किया है "सर्वोदय" का विचार।

सर्वोदय सामाजिक शब्द का शाब्दिक अर्थ है–'सबका उदय', 'सब प्रकार से उदय' और 'सबके द्वारा उदय'। यों गहराई में प्रवेश करने पर और भी अर्थ बन सकते हैं परन्तु ऊपर के तीनों अर्थ सब प्रकार से ग्राह्य और युक्ति सगत हैं। सबका उदय

सर्वोदय का लक्ष्य है "सब प्रकार से उदय" इसकी विशेषता है और " सब के द्वारा उदय" इसका साधन है। जब सब प्रकार से उदय की बात की जाती है तो वह धर्म की दृष्टि से की जाती है जिसमें लौकिक और पारलौकिक उत्थान शास्त्रीय भाषा में अभ्युदय और निश्रेयस सिद्धि दोनों का समावेश है। अतः सर्वोदय में लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के लक्ष्यों की सिद्धि का आदर्श है।

रस्किन की पुस्तक अन टू दिस लास्ट ने गाँधीजी को अत्यधिक प्रभावित किया। अन टू दिस लास्ट के सदेश ने गाँधीजी के जीवन में रचनात्मक परिवर्तन कर दिया। बाद मे उन्होंने इसका गुजराती में सर्वोदय के नाम से अनुवाद किया।' अन टू दिस लास्ट के आधार पर वे सर्वोदय के तीन मूलभूत सिद्धान्तो को ग्रहण कर सके–

1 सब की भलाई मे हमारी भलाई है,

2 वकील और नाई दोनो के काम की कीमत एक सी होनी चाहिये क्योकि आजीविका का अधिकार सब को एक समान है

3 सादा मेहनत मजदूरी का किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।

गाँधीजी ने स्वीकार किया की ' सर्वोदय के उपर्युक्त तीन सिद्धान्तो मे प्रथम से तो वे रस्किन की पुस्तक के अध्ययन से पूर्व ही परिचित थे। दूसरे सिद्धान्त के प्रति उनका दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं था। किन्तु तीसरे का उन्होंने कभी विचार ही नही किया था। रस्किन की पुस्तक ने उन्हे यह प्रकाश प्रदान किया कि पहले सिद्धान्त मे ही दूसरे दोनो सिद्धात समाविष्ट है। उन्होने स्वय को इन सिद्धातों पर अमल करने के प्रयत्नो के प्रति समर्पित कर दिया। जैनेन्द्र कुमार ने ठीक ही लिखा है– गाँधीजी ने सर्वोदय मे बदल कर रस्किन की आशा को अधिक व्यापक बना दिया तब वह सज्ञा प्रवृत्ति सूचक मात्र न रह कर अधिक भाव वाचक एव साकेतिक हो गई। [30]

यह सर्वोदय शब्द की जन्म–कहानी है। किन्तु भावार्थ मे सर्वोदय शब्द बहुत व्यापक है। यह एक नया जीवन दर्शन है। एक नई जीवन पद्धति है। एक नई समाज रचना है। दादा धर्माधिकारी ने कहा है– 'सर्वोदय से तात्पर्य है सबका उदय सबका उत्कर्ष सबका विकास। सर्वोदय शब्द भले ही नया हो किन्तु उसका अर्थ सबका जीवन साथ–साथ सम्पन्न हो सकता ही है। जीवन का अर्थ है विकास अभ्युदय या उन्नति। सबका सर्वविकास हो इसलिए सर्वोदय। परन्तु प्राचीन समय मे अभ्युदय शब्द का प्रयोग ऐतिहासिक वैभव के अर्थ तक ही सीमित था। इसलिए गाँधीजी ने केवल उदय शब्द का प्रयोग किया–एक साथ समान रूप से सबका उदय हो यही सर्वोदय का उद्देश्य है। [31]

सर्वोदय की मूल भावना व आशय को और अधिक स्पष्ट करते हुए भारतन कुमारप्पा ने लिखा है सर्वोदय से आशय है सबका भला। इस आधार पर सभी व्यक्ति प्रेम से बधे होंगे जिनमें कोई भेद भाव नही होगा। राजा तथा किसान हिन्दू एव मुसलमान छूत एव अछूत गोरे तथा काले अपराधी एव सन्त सभी बराबर होगे। कोई भी दल अथवा व्यक्ति किसी भी दल अथवा व्यक्ति का दमन अथवा शोषण नही करेगा। सर्वोदय समाज

मे सभी सदस्य समान होगे, प्रत्येक को उसके परिश्रम का उचित प्रतिफल मिलेगा। सबल व्यक्ति समाज के निर्बल व्यक्तियो की रक्षा तथा उनकी सरक्षता का कार्य करेगे। इस प्रकार सभी व्यक्ति सबका भला करने मे सहायक होगे।"[32]

गाँधीजी ने उपयोगितावादियो द्वारा दिये गये नारे–जिस पर भौतिकवादी समाज आधारित है– "अधिकांश व्यक्तियों के लिए अधिकाश वस्तुएँ (Greatest Good to the Greatest Number) की कटु आलोचना की है। भारतीय संदर्भ मे तो इसे पूर्णतया अनुपयुक्त बताया है, गाँधी जी ने भारत के लिए नया समाधन पुराने आदर्शों व वर्तमान परिस्थितियो मे विज्ञान के सम्मिश्रण के रूप मे प्रस्तुत किया। गाँधीजी का आदर्श बना सर्वोदय जहाँ व्यवस्था है 'सभी के लिए अधिकाश वस्तुएँ' (Greatest Goods to All)। श्री मन्नारायण जो कि गाँधीजी के प्रमुख अनुयायी हैं, उनके सर्वोदय के विचारों की व्याख्या निम्न प्रकार करते हैं "गाँधीजी अन्त मे सर्वोदय अर्थात् बिना किसी भेदभाव के सभी के विकास की कामना करते थे। वे अधिक से अधिक का भलाई के सिद्धान्त पर विश्वास नही करते थे क्योकि इस सिद्धान्त के अन्तर्गत बहुसख्यक जनता के हित के लिए अल्पसख्यकों के हितों की उपेक्षा की जाती है। गाँधीजी इस सिद्धान्त को एक निर्जीव सिद्धान्त मानते थे जिसने मानवता का काफी अहित किया है। उनके अनुसार केवल एकमात्र प्रतिष्ठित मानवीय सिद्धान्त है कि सबका अधिक से अधिक भला हो।"[33]

गाँधीजी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी व उनके सर्वोदय कार्यक्रम को रचनात्मक स्वरूप प्रदान करने वाले राष्ट्र सन्त विनाबा भावे ने सर्वोदय की व्याख्या निम्न प्रकार की है–"सर्वोदय की बुनियाद है सत्य निष्ठा। परन्तु इसके साथ ही यह अपने आप मे एक क्रान्तिकारी शब्द है। गाँधीजी के निर्वाण के पश्चात सर्वोदय समाज की कल्पना लोगो मे फैल गई है परन्तु प्रश्न यह उठता है कि यह सर्वोदय समाज है क्या एव उसका सगठन किस प्रकार का होगा। परन्तु यह किसी प्रकार का सगठन नहीं है, यह तो एक महान क्रान्तिकारी शब्द है। महान शब्दो में जो शब्द भरा रहता है वह किसी सगठन मे नही होता। शब्द तारक होते हैं तथा मारक भी। शब्दो से उत्थान भी होता है एव पतन भी। ऐसे ही एक महान शब्द का उपयोग सर्वोदय मे किया गया है। यह शब्द कहता है कि हमे चन्द लोगों का उदय नही करना है, अधिक लोगो को उदय नही करना है, अधिक से अधिक लोगो के उदय से भी हमे सन्तोष नहीं है वरन सब के उदय से ही समाधान होगा। छोटे–बडे दुर्बल सबल, जड, बुद्धिमान, सब का उदय होगा तभी हम चैन लेगे। ऐसा विशाल भाव यह शब्द हमे दे रहा है।"[34]

गाँधी जन्म–शताब्दी वर्ष में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने तत्कालीन शिक्षा मन्त्री तथा प्रमुख अर्थशस्त्री प्रो.वी.के.आर.वी.राव को "पश्चिमी समाजवाद का गाँधीवादी विकल्प" विषय पर भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया। 24 अक्टूबर, 1969 को अपने व्याख्यान मे प्रो राव ने सर्वोदय को पश्चिमी समाजवाद के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया।

प्रो रव के शब्दों म सर्वोदय अर्थात सबका उदय। यह एक प्रकार का वर्ग–विहीन समाज है जो वर्ग–विनाश पर तो आधारित है किन्तु उन व्यक्तियों के विनाश पर नहीं जिनसे वर्गों का निर्माण हुआ है। यह एक उत्पादन प्रणाली है जो समृद्ध अर्थव्यवस्था की सृष्टि करने के लिए विज्ञान और शिल्प–विज्ञान का प्रयोग करने से नहीं चूकती किन्तु इस प्रक्रिया में वह न तो विकास के लिए वैयक्तिक अभिक्रम या स्वतन्त्रता का हनन करती है न अधिक से अधिक भौतिक वस्तुओ के लिए निरतर प्रयास करने के मनोविज्ञान को उत्पन्न करती है। यह एक वितरण–प्रणाली है जो सबके लिए उचित एव न्यूनतम आय का सुनिश्चय करेगी जबकि इसका लक्ष्य यह नहीं होगा कि हिसाबी ढग की सार्वभौमिक समानता हो फिर भी यह इस बात का सुनिश्चय करेगी कि ऐसी समस्त निजी सपत्ति का या बुद्धि–वैभव का प्रयोग जो न्यूनतम से अधिक होगी न्यास के रूप में जनसामान्य के हित के लिए किया जायगा वैयक्तिक विवर्धन के लिए नहीं। यह एक सामाजिक व्यवस्था है जहाँ लोग काम करेंगे किन्तु किसी भी व्यक्ति के लिए स्तर या अवसर के मामले में असमानता नहीं होगी जिसमें विश्वास द्वारा परिवर्तन लाया जायेगा और विचार–विमर्श द्वारा मतभेद तथा प्रेम एव पारस्परिक हित को ध्यान में रखकर सघर्ष दूर किये जायेंगे। इस सबध में गाँधीजी इतना और कहते थे कि 'यह एक प्रकार का जीवन है जो ईश्वर के प्रति समर्पित है और आत्मा के सवर्धन में लगा है जबकि छोटे या बुद्धिमानी लोग उस धर्म के लिए अपने प्रतिस्थापन को सूत्रबद्ध करना अधिक अच्छा समझते थे जो गाँधीजी के जीवन और उपदेश का मूल था।

सर्वोदय की पृष्ठभूमि –

सर्वोदय कार्यक्रम जो कि वस्तुत गाँधीजी के आर्थिक सामाजिक व राजनीतिक दर्शन का सार है वस्तुत दो समय अवधियों में विभक्त है–

(i) स्वतत्रता प्राप्ति से पूर्व

(ii) स्वतत्रता प्राप्ति के उपरान्त

(i) स्वतत्रता प्राप्ति से पूर्व–गाँधीजी ने पूर्ण स्वतत्रता प्राप्ति की व्यूह रचना के एक अग के रूप में सर्वोदय का वर्णन किया। इस सदर्भ मे उन्होने 13 नवम्बर 1945 को भारतीय सामाजिक–आर्थिक पुनर्निर्माण हेतु एक रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। The Constructive programme Its Meaning and Place की भूमिका मे स्पष्ट किया है यह रचनात्मक कार्यक्रम एक लबी सूची मात्र ही नहीं है अपितु अपनाये जाने वाला कार्यक्रम है। यह रचनात्मक कार्यक्रम पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति का मार्ग भी है जिसके साधन हैं सत्य और अहिसा। इस रचनात्मक कार्यक्रम के अतर्गत 18 कार्य या मद शामिल हैं –

1 सामुदायिक एकता
2 अस्पृश्यता का निवारण

3. मद्य निषेध
4. खादी का प्रयोग
5 अन्य ग्रामीण उद्योगो का विकास
6 ग्रामीण स्वच्छता
7 बुनियादी शिक्षा
8 प्रौढ शिक्षा
9 महिला–उत्थान
10. स्वास्थ्य शिक्षा
11 प्रान्तीय भाषाओं का विकास
12. राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी का विकास
13 आर्थिक समानता
14. किसान का उद्धार
15. श्रम सगठन
16 आदिवासियो की सेवा
17 कुष्ठ रोगियो की सेवा
18. विद्यार्थी सगठन

महात्मा गाँधी ने उपर्युक्त सभी 18 कारको को आर्थिक विकास के कारक के रूप में प्रस्तुत किया। इनमे से कुछ प्रत्यक्ष रूप में आर्थिक कारक हैं तो कुछ मनोवैज्ञानिक रूप मे आर्थिक विकास हेतु प्रेरणादायक हैं। इन "आर्थिक विकास के कारकों" को निम्न समूह या वर्गों मे प्रस्तुत किया जा सकता है।

(अ) सामाजिक गतिशीलता

1. सामुदायिक एकता
2 अस्पृश्यता का निवारण
3 महिला–उत्थान
4 आदिवासियों की सेवा

(ब) बचत की आदत व सामान्य इच्छा

1 मद्य निषेध
2 खादी का प्रयोग

(स) मानव पूँजी निर्माण

1 ग्रामीण स्वच्छता
2 बुनियादी शिक्षा
3 प्रौढ शिक्षा
4 स्वास्थ्य शिक्षा

(द) मनोवैज्ञानिक कारक

1 प्रान्तीय भाषाओ का विकास

2 राष्ट्रीय भाषा के रूप मे हिन्दी का विकास

(य) सत्याग्रह के माध्यम से सामाजिक शक्ति का निर्माण

1 महिला–उत्थान

2 किसान का उद्धार

3 श्रम सगठन

4 आदिवासियो की सेवा

5 विद्यार्थी सगठन

(र) परार्थ सेवा की आदत

1 महिला उत्थान

2 किसान का उद्धार

3 श्रम सगठन

4 आदिवासियो की सेवा

5 कुष्ठ रोगियो की सेवा

6 विद्यार्थी सगठन

(ल) रोजगार निर्माण व बिना लाभ के मजदूरी की प्राप्ति

1 खादी का प्रयोग

2 अन्य ग्रामीण उद्योगों का विकास

स्वतत्रता प्राप्ति से पूव गाँधीजी का रचनात्मक कार्यक्रम लागू नही हो पाया। यह सर्वोदय कार्यक्रम स्वाधीनता प्राप्ति के अग क रूप मे अवश्य सफल रहा।

(II) स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त सर्वोदय— 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतत्र हो गया। स्वतत्रता प्राप्ति के उपरान्त गाँधीजी के समर्थकों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को नई दिशा प्रदान करने के लिए मानस बनाया। एतदर्थ उन्होने फरवरी 1948 मे वर्धा में एक सम्मेलन आयोजित करन का निर्णय लिया लेकिन दुर्भाग्य–वश 30 जनवरी 1948 को ही गाँधीजी की हत्या हो गयी। उसके फलस्वरूप सर्वोदय आदोलन को अपूरणीय क्षति हुई। रचनात्मक कार्यकर्ताओ ने स्थिति को ओर बहतर समझा। भारत की प्रमुख समस्याओ के स्थायी समाधान व भारत मे सामाजिक आर्थिक ढाँचे के नव निर्माण हेतु एकजुट होने का निर्णय लिया। एतदर्थ नवम्बर 1949 मे वर्धा मे काका साहेब कालेलकर की अध्यक्षता मे एक सम्मेलन सपन्न हुआ। सम्मेलन मे सर्वोदय योजना को स्वीकार किया गया तथा क्रियान्वयन हेतु सर्वोदय नियोजन समिति गठित की गई। यह भी निर्णय किया गया कि सर्वोदय योजना को भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस से अनुमोदित करा लिया जाय। सर्वोदय योजना के प्रति देश म जनमत तैयार करने पर बल दिया गया।

सर्वोदय नियोजन समिति के अंतर्गत काका साहेब कालेलकर, जे.सी. कुमारप्पा शंकर राव देव, गुलजारी लाल नंदा, आर. एस. घोते, झावेर भाई पटेल आदि गाँधीवादी सदस्य सम्मिलित थे। इस समिति ने 30 जनवरी 1950 को " सर्वोदय योजना" प्रकाशनार्थ स्वीकार की ।

सर्वोदय–योजना

"सर्वोदय योजना" के प्रारम्भ मे तात्त्विक आधार का वर्णन किया गया है।

तात्त्विक आधार[35]

प्राचीन काल की प्रथाएँ, धर्म–निषेध तथा वर्णव्यवस्था के कारण समाज पर बन्धन क्रमश: शिथिल होने लगे। राजाओ, सरदारो तथा धर्मोपदेशको के अत्याचारो से मानव–समाज क्रमश: शिथिल होने लगा। व्यक्ति–स्वातन्त्र्य तथा कर्म–स्वातन्त्र्य की विजय हुई और सच्चे प्रजातन्त्रात्मक शासन का सूत्रपात हुआ।

दुर्भाग्यवश समाज मे सुव्यवस्था होने के समय समाज नये–नये बधनो से फिर जकड गया। औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revoloution) हुई और उत्पादन बढा परन्तु उत्पादन के साधन अगुलियो पर गिने जाने वाले लोगो के हाथो मे चले गये। धनी स्वामीवर्ग तथा गरीब मजदूरवर्ग, इन दोनो वर्गो का समाज मे निर्माण हुआ। धनलिप्सा और व्यक्तिगत स्वार्थ, इनका साम्राज्य फैल गया । साम्यवाद, पूँजीवाद तथा तानाशाही का आविर्भाव हुआ और व्यक्तिगत–स्वतंत्रता समूल नष्ट कर दी गई।

गाँधीजी ने ऐसी दशा मे उचित मार्ग निकलने का विचार किया और राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक तथा सामाजिक पहलुओ का परस्पर सतुलन कर उनमे एकसूत्रता का निर्माण करना चाहा।

सर्वोदय–योजना

उन्होने जीवन के आर्थिक पहलू की महत्ता को जान किया। उन्हे अवगत था कि उत्पादन और वितरण से समाज के नैतिक, राजनीतिक तथा सामाजिक सस्कारो पर खूब प्रभाव पडता है।

उन्हे समाज मे आर्थिक जीवन के असत्य और हिसा तथा शोषण पर आधारित समाजव्यवस्था के स्थान में नवीन व्यवस्था चाहिए थी जो सत्य और अहिसा पर आधारित हो। इसलिए उनकी यह उत्कट इच्छा थी कि सहकारिता के सिद्धान्तो पर स्थापित विकेन्द्रित उद्योग–धधो और कृषि का उत्कर्ष हो।

वे रूस के मार्क्सवाद के विरूद्ध थे जिसके अनुसार मजदूरों के हाथों मे उत्पादन केन्द्रित हो जाता है। साम्यवाद मे व्यक्तिगत स्वतत्रता का लोप हो जाता है, जिसके अभाव मे नैतिक, राजनीतिक तथा सास्कृतिक दृष्टियों से मानव–समाज की उन्नति नहीं होती।

पूँजीवाद मे मनुष्य की अपेक्षा यत्रो के अधिक महत्व दिया जाता है। यत्रों से काम लेने के कारण मजदूर बेकार कर दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त आर्थिक और राजनीतिक विषमता का निर्माण तो हो ही जाता है।

उनकी यह धारणा थी कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रो में पूर्ण विकेन्द्रीकरण करके प्रत्येक छोटे–छोटे प्रदेशो को स्वावलम्बी बनाकर ऐसे स्वावलम्बी प्रदेशो का सघ बनाया जाना चाहिये।

सर्वोदय के ध्येय

सामाजिक नैतिक तथा सास्कृतिक दृष्टि से मानव–जाति का पूर्ण विकास कर तथा प्रत्येक प्रदेश को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाकर अहिसात्मक समाजरचना की स्थापना करना ही सर्वोदय का ध्येय है।*

सत्ता सपत्ति तथा जनसख्यादि विषयो ■ विकेन्द्रीकरण को पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता होनी चाहिए। इस प्रकार से विकेन्द्रीकरण पर आधारित स्वावलम्बन ही किसी व्यक्ति के जीवन की पूर्णोन्नति कर सकता है। वर्गभेद वर्णभेद तथा स्पर्धा पर आधारित वर्तमान समाज–व्यवस्था के स्थान मे नई समाज रचना की स्थापना होनी चाहिए जो सहकारिता और विकेन्द्रीयकरण पर आधारित हो। ऐसा होने पर समाज के मुनाफाखोर तथा शोषक वर्ग के लोगो की सख्या कम हो जाएगी। फलस्वरूप सामान्य व्यक्तियो के जीवन–स्तर को ऊँचा करने मे सहायता मिलेगी।

किसी सामान्य कुटुम्ब के लिए पर्याप्त अन्न वस्त्र तथा निवासस्थान की प्राप्ति के लिए मासिक आय कम से कम सौ रुपये होनी चाहिए। इससे बीस गुनी आय महत्तम आय समझी जानी चाहिए। यह महत्तम आय क्रमश कम होती जाकर लघुतम आय के दसगुने के बारबर हो जानी चाहिए।

कृषि का नियोजन

प्रत्येक किसान को आर्थिक भूमिखड' (Economic Holding) मिलना चाहिए। ऐसे आर्थिक भूमिखड पर उसे उचित जीवनस्तर के अनुसार निर्वाह करते आना चाहिए तथा दो एक जोडी बैल ओर साधारण कुटुम्ब को वर्ष भर तक काम मिलना चाहिए। वर्तमान समय में किसी किसान को आर्थिक भूमिखड' का मिलना कठिन होने के कारण प्राथमिक भूमिखड (Basic holding) की कल्पना की गई है। यह प्राथमिक भूमिखड आर्थिक भूमिखड से छोटा होकर भी खेती के योग्य होगा। आर्थिक भूमिखड से तिगुने क्षेत्रफल का जमीन का टुकडा महत्ता भूमिखड कहलावेगा।"

जमीन जोतने वाला ही जमीन का मालिक होना चाहिए। वह किसी दूसरे को जमीन के हक न बेच सके और उचित रीति से जमीन को जोते ऐसा उस पर प्रतिबध होना चाहिए।

प्राथमिक भूमिखंड से भी छोटे–छोटे खेत सहकारिता के सिद्धान्तो पर जोते जाने चाहिये। सरकार यथाशक्ति उत्तेजना देकर ऐसे कामो मे अग्रसर होवे।

मालगुजारी नष्ट करके खेती के सब दलालो का निर्मूलन होना चाहिये। दूसरो के खेत पट्टे पर जोतने वाले किसान सस्ते भावों पर खेत खरीद सके। सरकार ऐसे समय उन्हे आवश्यक सहायता देवे। जिनके पास खेत नही है ऐसे मजदूरो की खेती की इच्छा पूर्ण करने की दृष्टि से "सामूहिक खेती" **(Collective Farming)** का प्रयोग किये जाना चाहिये।

खेती के इन सब सुधारो पर देख–रेख करने के लिये एक भारत वर्षव्यापी 'केन्द्रीय भूमिसभा" **(Central Land Council)** की स्थापना की जानी चाहिये। यह भूमिसभा भारतवर्ष की फसलों पर नियोजन करे अर्थात् इस बात का आदेश देवे कि किस जमीन में क्या फसले पैदा की जावे। प्रत्येक प्रदेश के लिए एक "प्रादेशिक भूमिसभा" **(Regional Land Council)** होनी चाहिये जो प्राय. पूर्ण स्वतत्र हो। सतुलित आहार और जीवनमान की दृष्टि से फसलो का नियोजन किया जाना चाहिये।

किसानों की कर्ज चुकाने की शक्ति के अनुसार उनके ऊपर का कर्ज अनिवार्य रूप से कम कर दिया जाना चाहिए। उसी प्रकार साहूकार और कर्ज देने वाली सस्थाओ पर उचित नियत्रण होना चाहिए।

बहु–प्रयोजन समितियो की सहायता से खेती का माल बेचा जाना चाहिये। दासता **(Serfdom)** का मूलोच्छेदन करके खेतो पर काम करने वाले मजदूरो का जीवनस्तर सुधारना चाहिये। उनमे सगठन उत्पन्न करना चाहिये।

खेती के ढोरो तथा फसलो का बीमा करवाने का प्रबन्ध होना चाहिए। इस बात की सावधानी रखी जावे कि पक्के माल और खेती के माल की कीमते एकसी रहे।

उद्योग–धन्धों में होने वाले सुधार

बडे–बडे व्यवसायो का स्थान छोटे–छोटे विकेन्द्रीय उद्योग–धन्धे लें। देश की रक्षा के लिए आवश्यक कारखाने, गोता–बारूद के कारखानों, विद्युत–उत्पादन, खदानो, धातुओ की खोज, यंत्रो और रासायनिक पदार्थो के कारखानो को ही तथा केन्द्रित उद्योग–धन्धो को पूर्ण स्वतत्रता होनी चहिये। इस बात की सावधानी रखी जावे कि बडे ओर छोटे व्यवसायो मे कुछ भी स्पर्धा न हो पावे। विदेशी स्वामित्व के उद्योग–धधे या तो नष्ट कर दिये जाये या सरकार उनकी मालिक हो जावे। किसी भी परिस्थिति मे उन पर दया न करनी चाहिये।[35]

अभी तक बडे–बडे उधोग–धंधो के विषय मे प्रयोग और सशोधन किये गये हैं। इनका लाभ छोटे उद्योग–धधों को भी मिलना चाहिए।

एक ऐसी "औद्योगिक सहकारी समिति" की स्थापना की जानी चाहिए जो विकेन्द्रित ग्रामोद्योगो को कच्चे माल की पूर्ति करे और उनके पक्के माल को अच्छी कीमतो पर बेच सके। ऐसे गृह–उद्योगों को बिजली दी जानी चाहिए। गृह–उद्योगो द्वारा

उत्पन्न आवश्यक माल पर कर रद्द होना चाहिए। सरकार उनके द्वारा बनाए गये पक्के माल को खरीद कर उन्हें उत्तेजना देवे। मजदूरो की शिकायतों को दूर करने के लिए "कार्यसमितियॉ" (Works Committees) की स्थापना होनी चाहिए। हर परिस्थिति में मध्यस्थों एव शांतिपूर्ण तरीको से मजदूरो की समस्यायें सुलझाई जावे।

सहकारी–समितियों तथा बीमा–कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण होना चाहिये। बहुप्रयोजन (Multi-purpose) सहकारी सस्थाओं का जाल फैलाकर उनके द्वारा गृह–उद्योगों को कर्ज मिलना चाहिए। पैसे की महत्ता को कम कर वस्तु–विनिमय (Barter) को उत्तेजना दी जाये। अनाज के रूप में मजदूरी कर तथा लगान देने को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

व्यापार, यातायात तथा शासन

योजना के अतर्गत व्यापार मे किसी भी प्रदेश से केवल उसकी आवश्यकता से अधिक पदार्थ ही दूसरे प्रदेश मे भेजे जाने चाहिए। बहुप्रयोजन समितियाँ ही निर्यात का काम करें। किसी विशेष निर्मित प्रमडल को विदेशी व्यापार की जिम्मेदारी दी जाये, रेलों, हवाई जहाजों और तार की नीति में परिवर्तन करके ग्रामों को प्रधानता दी जानी चाहिए। आवागमन के सभी साधनों का राष्ट्रीयकरण होना चाहिये। टिकट की दर लोगों की सुविधानुसार निश्चित की जानी चाहिए।

शिक्षा में सेवावृति की भावना को स्थान मिलना चाहिए। अनेक प्रकार के हस्तकौशलों के द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए। शिक्षा में औद्योगिक शिक्षा, सास्कृतिक शिक्षा तथा सहकारिता के सिद्धान्तों का भी समावेश होना चाहिये। प्रारम्भ में मातृभाषा और फिर राष्ट्रभाषा में शिक्षा देनी चाहिए।[39]

शरीर और गृह को स्वच्छता रखना गदले पानी और कचरेकूड़े की कैसी व्यवस्था करना तथा उससे खाद कैसे बनाना इत्यादि बातों का देहातों में प्रचार होना चाहिए।

स्त्रियो और पुरुषो को इस बात की शिक्षा दी जानी चाहिए कि अन्नों के पोषक–तत्वों का नाश न करते हुए भोजन कैसे पकाया जाय। जीवन–सत्त्व–रहित अन्न खाने से शरीर की सहिष्णुता नष्ट हो जाती है और मनुष्य रोगों का घर बन जाता है इसलिए रोगों का प्रतिकार करके शरीर सुदृढ बनाने के लिए सात्विक, पुष्ट और सतुलित आहार की आवश्यकता होती है। प्रत्येक देहात में सुरक्षित और स्वच्छ स्थान पर पीने के पानी की सुविधा होनी चाहिये। उसी प्रकार प्रसूतिगृहों और अस्पतालों की भी सुविधा होनी चाहिए।

शासन म अधिकतर सत्ता सबसे नीचे की सस्थाओं को होना चाहिए और ऊपर की सस्थाओं के अधिकार क्रमानुसार कम होते जाना चाहिये। शासन–प्रणाली की मूलभूत सस्था की दृष्टि से ग्रामपचायतों की स्थापना की जानी चाहिये जिनका अधिकार शिक्षा आरोग्य सार्वजनिक स्वच्छता जमीन तथा विकेन्द्रित उद्योग–धधो पर होना चाहिए। प्रत्येक प्रदेश के लिए एक प्रादेशिक पचायत–सभा होना चाहिये।

इसके पंच ग्रामपंचायतों के पंचों द्वारा चुने जाने चाहिये। इस "प्रादेशिक पंचायत–सभा" के पंचों को एक "प्रांतीय पंचायत–सभा" का निर्वाचन करना चाहिए। इस प्रकार की प्रांतीय पंचायत–सभायें एक "अखिल भारतीय पंचायत–सभा" का निर्वाचन करें जो जमीन संबंधी–कानून उद्योग–धंधे, सार्वजनिक संस्थाएँ, बिजली की पूर्ति इत्यादि विषयों मे सारे देश मे एकसूत्रता का निर्माण करे।"

उपर्युक्त सब नियोजनों को व्यावहारिक रूप देने के लिए एक "नियोजन–मंडल" नियुक्त होना चाहिए।

देश की रक्षा के लिए अहिंसात्मक प्रतिकार की शिक्षा दी जानी चाहिए। उसी प्रकार सेना का खर्च क्रमशः कम किया जाना चाहिए। "शांति सेना की स्थापना कर अहिंसात्मक प्रतिकार के तत्त्वों को व्यवहार में लाना चाहिए। सर्वोदय योजना में गाँधीजी के दर्शन के पूर्ण अनुकरण कर निःशस्त्रीकरण का विचार प्रस्तुत किया।

विदेशी स्वामित्त्व के व्यवसायों पर कड़े नियंत्रण रखने की नीति को इस योजना में स्वीकार किया गया है।

सर्वोदय योजना : क्रियान्वयन

गाँधीजी की विचारधारा पर आधारित सर्वोदय योजना देश में क्रियान्वित न की जा सकी जहाँ एक ओर सर्वोदय योजना तैयार करने वालों में उत्साह का अभाव था वहीं दूसरी ओर सरकार का इसे लागू करने का मन भी न था। गाँधीजी की मृत्यु के उपरान्त योजना के क्रियान्वयन हेतु सर्वमान्य नेतृत्व भी शेष नहीं रह गया था। गाँधी जी के प्रमुख अनुयायी विनोबा भावे ने गाँधी जी के सर्वोदय दर्शन को भूदान व ग्रामदान आंदोलन के माध्यम से कार्य रूप प्रदान किया। विनोबा भावे के भूदान व ग्राम दान आंदोलन का विवेचन आगामी अध्याय में किया जाएगा।

सर्वोदय योजना एक पूर्ण योजना है जिसमें वास्तविक समाजवाद की प्राप्ति व मानव कल्याण पर विशेष बल दिया गया है लेकिन देश का दुर्भाग्य है कि हम सर्वोदय योजना को क्रियान्वित कर सके।

मूल्यांकन

गाँधीजी यद्यपि स्वयं अर्थशास्त्र के विद्यार्थी नहीं रहे न ही उन्होंने अर्थशास्त्र का कोई सिद्धांत प्रतिपादित किया लेकिन उनके द्वारा प्रस्तुत आर्थिक विचार अर्थशास्त्र की अमूल्य निधि है जिसका प्रयोग शाश्वत रूप से होता आया है और होता रहेगा। गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत आर्थिक विचारों में मानव मूल्य समाहित हैं। उनके आर्थिक चिन्तन को किसी भी परम्परागत वर्गीकरण–व्यक्तिवाद या समष्टिवाद, उदारवाद या समाजवाद, पूँजीवाद या साम्यवाद की परिधि में बाँधना सम्भव नहीं है। लेकिन इसका आशय यह नहीं है कि उनके विचार पूर्ण नहीं हैं। गाँधी जी द्वारा प्रस्तुत ग्राम–स्वराज्य पर आधारित राम–राज्य की संकल्पना अपने आप में पूर्ण है तथा मानव के नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक,

आध्यात्मिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त करती है। लेकिन दुर्भाग्य स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त गाँधीजी द्वारा प्रशस्त मार्ग का हम अनुसरण नही कर पाये।

सदर्भ

1 हरिजन 9–10 1937
2 गाँधी आत्मकथा पृष्ठ 220
3 यग इडिया 13–10–21
4 गाँधी हिन्द स्वराज पृष्ठ 44–45
5 ऋग्वेद पुरुष सूक्त 10/90
6 गीता 4/12
7 हरिजन 28 सितम्बर 1934
8 गाँधी हिन्दू धर्म पृष्ठ 379
9 हरिजन सेवक 17 अप्रेल 1937
10 हरिजन 9 अक्टूबर 1937
11 ईशोपनिषद श्लोक–प्रथम
12 हरिजन 30–1–1937
13 हरिजन 16–12–1937
14 हरिजन 31–3–1946
15 गाँधी सर्वोदय पृष्ठ 51–52
16 हरिजन 12–4–82
17 यग इडिया 26–6–1924
18 गाधी विचार रत्न गाधी साहित्य 10 सकलनकर्त्ता–माई दयाल जैन पृष्ठ 228
19 गाँधी विचार रत्न गाँधी साहित्य 10 सकलनकर्त्ता– माई दयाल जैन पृष्ठ 228
20 यग इडिया 26–4–1920
21 आर बी ग्रेग ए फिलासाफी ऑफ इडियन इकॉनामिक डवलपमेंट पृष्ठ 92
22 हिन्द स्वराज पाठ 19
23 यग इडिया 17–6–1926
24 हरिजन 16–11–1934
25 यग इडिया 5–11–1925
26 गाधी सर्वोदय पृष्ठ 114
27 गाँधी सर्वोदय पृष्ठ 111
28 सलेक्शन फ्रार्म गाँधी Scc 775
29 हरिजन 17 अप्रेल 1937
30 हरिजन 9 अक्टूबर 1937

31 हिन्दी नवजीवन, 9–7–1928–30 हरिजन, 9–7–193
32. जैनेन्द्र कुमार–सर्वोदय अर्थशास्त्र पृष्ठ–58
33 दादा धर्माधिकारी– सर्वोदय दर्शन (सर्व सेवा सघ) पृष्ठ–16
34. भारत कुमारप्पा–सर्वोदय पृष्ठ–3
35. जैनेन्द्र कुमार–सर्वोदय अर्थशास्त्र पृष्ठ–357
36. विनोबा भावे–सर्वोदय विचार व समाजशास्त्र पृष्ठ–57
37 मधुकर शेटे–आर्थिक नियोजन पृष्ठ–100
38 मधुकर शेटे–आर्थिक नियोजन पृष्ठ–101
39 मधुकर शेटे–आर्थिक नियोजन पृष्ठ–102
40 मधुकर शेटे–आर्थिक नियोजन पृष्ठ–104
41 मधुकर शेटे–आर्थिक नियोजन पृष्ठ–105
42. मधुकर शेटे–आर्थिक नियोजन पृष्ठ–106

प्रश्न

1 गाँधीजी के व्यक्तित्व एव विचारो पर सर्वाधिक किन लोगों एव ग्रन्थो का प्रभाव पड़ा ? बताइये।
2 गाँधीजी द्वारा लिखित प्रमुख पुस्तकों के नाम बताइये।
3 गाँधी जी के अर्थशास्त्र सम्बन्धी विचारो पर टिप्पणि कीजिए।
4 आर्थिक नियमों के सम्बन्ध मे गाँधीजी के विचारो पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए।
5 आवश्यकताओ के सम्बन्ध में गाँधीजी के दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।
6 गाँधी जी के ट्रस्टीशिप सिद्धांत का विस्तार से विवेचना कीजिए।
7 सर्वोदय के उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।
8 "स्वदेशी वह कामधेनु है जो हमारी समस्त इच्छाओ की पूर्ति करती है।" गाँधीजी के इस कथन के सदर्भ मे भारत की वर्तमान समस्याओ के लिए स्वदेशी की सार्थकता पर अपने विचार स्पष्ट कीजिए।
9 गाँधी जी के राम राज्य की संकल्पना पर एक टिप्पणी लिखिए।
10 गाँधीजी द्वारा प्रतिपादित औद्योगिकरण व मशीनीकरण तथा व्यावसायिक शिक्षा सम्बन्धी विचारो को स्पष्ट कीजिए।
11 गाँधीजी द्वारा प्रतिपादित अर्थशास्त्र के उद्देश्यो व आर्थिक नियमो की चर्चा करते हुए इसके "मानव व आर्थिक मानव" की सकल्पना को स्पष्ट कीजिए।
12 गाँधी के सर्वोदय का अर्थ बताते हुए उसकी पृष्ठभूमि तथा तात्विक आधारो की चर्चा कीजिए।



17

विनोबा भावे
(Vinoba Bhave)

राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी के वास्तविक उत्तराधिकारी व उनकी विचारधारा को कार्यरूप प्रदान करने वाले राष्ट्र संत विनोबा भावे का जन्म महाराष्ट्र के कोलाबा जिले के गागोदा नामक ग्राम मे 11 सितम्बर 1895 को हुआ। उनके पितामह शम्भू राव भावे अत्यन्त धार्मिक व्यक्ति थे। ईश्वर भजन व पूजा पाठ मे उनकी गहरी निष्ठा थी। छूआछूत की भावना उनको छू तक नही पायी थी। विनोबा के पिता नरहरि भावे आधुनिक विचारो के व्यक्ति थे तथा औद्योगिक शिक्षा मे उनकी गहरी रूचि थी। विनोबा पर सर्वाधिक प्रभाव उनकी माता का पडा जो कि धर्मपरायण भारतीय नारी थी। इस प्रकार विनोबा को पिता से वैज्ञानिक संस्कारो की तथा माता से भक्ति संस्कारो की प्राप्ति हुई।

सन 1903 मे विनोबा बडौदा आये व उन्होने तीसरी कक्षा मे प्रवेश लिया। पाठशाला से छठी कक्षा उत्तीर्ण करके 1906 मे हाई स्कूल मे पढने लगे। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण वे अपनी कक्षा म सर्वप्रथम रहते थे। अपने विद्यार्थी जीवन मे वे चटाई पर सोते थे कभी तकिया न लगाते थे तथा नगे पेर रहते थे। 1907 मे मात्र 12 वर्ष की आयु मे ही उन्होने आजन्म ब्रह्मचारी रहने का व्रत ले किया था। 1913 में उन्होने हाई–स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की इस परीक्षा मे विनोबा ने गणित मे 100 मे से 99 अक प्राप्त किये। 24 मार्च 1916 को इटर की परीक्षा देने बम्बई जाने से एक दिन पूर्व उनकी आध्यात्मिक रूचि ने उन्ह पूर्णतया आध्यात्म के मार्ग पर ला दिया। इसलिए विनोबा ने मैट्रिक के व अन्य सभी प्रमाण पत्र जला दिये। 25 मार्च 1916 को बम्बई मे परीक्षा के स्थान पर वे काशी मे गगा किनारे घाट पर चले गये।

4 फरवरी 1916 को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्घाटन के अवसर के समय गाँधी के भाषण स विनोबा बहुत अधिक प्रभावित हुए। विनोबा ने गाँधीजी से पत्र व्यवहार किया व 7 जून 1916 को गाँधीजी के निमत्रण पर साबरमती आश्रम मे प्रवेश किया। विनोबा ने कुछ समय बाद गाँधी से निवदन कर आश्रम से एक वर्ष का अवकाश लिया व गीता उपनिषद ब्रह्मसूत्र योग दर्शन आदि का विशद अध्ययन किया एक वर्ष बाद पुन 10 फरवरी 1918 को साबरमती आश्रम लौट आये व पूर्णरूपेण गाँधीजी से जुड गये। विभिन्न स्वाधीनता आदालनो म भाग लिया व जेल गये। गाँधी जी विनोबा जी की समर्पण

भावना तथा कार्य के प्रति उत्साह से अत्यधिक प्रभावित थे। विनोबा जी के प्रति यह गाँधीजी का अटूट विश्वास ही था कि 1940 में गाँधीजी ने उन्हें प्रथम सत्याग्रही बनाया।

विनोबा जी पूर्णरूपेण गाँधीजी के प्रति समर्पित थे। 30 जनवरी, 1948 को गाँधीजी के शहीद होने के उपरान्त उनके कार्यों को आगे बढाने के लिए विनोबा जी की पहल पर गाँधीजी के सभी अनुयायी सेवाग्राम मे एकत्र हुए। 13–15 मार्च, 1930 को हुए इन सम्मेलन मे "सर्व सेवा संघ" का गठन हुआ तथा गाँधीजी के सर्वोदय कार्यक्रम को रचनात्मक व कार्यात्मक स्वरूप प्रदान करने का निर्णय लिया गया। गाँधीजी द्वारा 1940 के सत्याग्रह आदोलन के प्रथम सत्याग्रही विनोबा भावे ने इस सत्याग्रह को धरातल पर उतारने के लिए तथा गाँधीजी के सर्वोदय व ट्रस्टीशिप (**Trustee ship**) दर्शन को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए निम्न 5 अवधारणाओ पर बल दिया–

(अ) भूमिदान

(ब) ग्रामदान

(स) सपत्ति दान

(द) बुद्धि दान

(ई) जीवन दान

भू–दान विनोबाजी की मौलिक देन है। भू–दान के माध्यम से राष्ट्र के उत्थान का मार्ग उन्होने प्रस्तुत किया व उसे व्यावहारिक स्वरूप भी प्रदान किया। भू–दान की परिणति हुई ग्राम दान के रूप मे और दोनो ने मिलकर भारत के लिए मार्ग दिखाया। राम राज्य का जहाँ सभी व्यक्ति परस्पर प्रेम सौहार्द्र भाईचारे की भावना के साथ एकता पूर्वक हैं। भू पर सभी के अधिकार की सकल्पना भू–दान व ग्रामदान की अवधारणा के अतर्गत है। विनोबा जी के शब्दो मे "भू–दान आदोलन की यह एक विशेष बात है कि इस न से ग्रामदान आरम्भ हुआ है भू–दान आदोलन का पहला कदम था" गाँव मे कोई भी भूमिहीन न रहें और अतिम चरण 'गाँव में कोई भी भूमि मालिक न रहे।'। हमें स्वामित्व छोडकर सेवकत्व स्वीकार करना चाहिए। हर एक को उसके पेट के लिए जरूरी अन्न मिलना ही चाहिए यह उसका अधिकार है। स्वामित्व का अधिकार किसी को नही है।'

भू–दान

भू–दान का अर्थ

भू–दान दो शब्दों से मिलकर बना है। भू–अर्थात् भूमि। भूमि से यहाँ आशय वस्तुतः कृषि भूमि से है। दान का शाब्दिक अर्थ है स्वेच्छा से आपने अधिकार को किसी वस्तु या सेवा को दूसरे को सौंप देना। दान एक स्वैच्छिक प्रक्रिया है जो कि किसी दबाव या कानूनी व्यवस्था के अतर्गत नहीं किया जाता। इस प्रकार भू–दान का आशय है स्वेच्छा से भूमि का दान। जब कोई व्यक्ति स्वेच्छा से अपनी आवश्यकता के अतिरिक्त भूमि का

दान करे या कोई भूमिपति अपनी अल्प भूमि मे से भी एक हिस्सा भूमिहीनो को दान करे तो वह विनोबा जी के अनुसार भू–दान है। यहाँ उल्लेखनीय है कि विनोबा जी ने पहले भू–दान यज्ञ का प्रारभ नही किया अपितु पहले उन्हे भूमि दान मे प्राप्त हुई और फिर उन्होने इस भू–दान यज्ञ का प्रारम्भ किया।

भू–दान का प्रारभ

7 मार्च 1951 को विनोबा जी ने शिवरामपल्ली (आध्र प्रदेश) सर्वोदय सम्मेलन हेतु सेवा ग्राम से पदयात्रा आरम्भ की। 7 14 अप्रैल 1951 तक आयोजित इस सर्वोदय सम्मेलन के अतिम दिन विनोबा जी ने तैलगाना जाने का अपना इरादा प्रकट किया। तैलगाना की स्थिति उस समय अति विकट थी। यहाँ एक ओर साम्यवादियों ने और दूसरी तरफ सेना ने असुरक्षा की जटिल स्थिति पैदा कर दी। वे वापस वर्धा लौटने से पहले स्वय वस्तु स्थिति को समझना चाहते थे।

राम नवमी के शुभ मुहूर्त और तदनुसार 15 अप्रैल 1951 को विनोबा जी ने इस शान्ति यात्रा पर पैदल ही प्रस्थान किया। अपनी इस पद यात्रा मे सुरक्षा की दृष्टि से पुलिस या सेना की मदद लेने से इकार कर दिया। स्वतत्र भारत के सर्वोदय आदोलन के इतिहास मे यह यात्रा अति महत्वपूर्ण व अविस्मरणीय सिद्ध हुई।

विनोबा जी 18 अप्रैल 1951 को पदयात्रा के तीसरे दिन नलगोडा जिले के गाँव पोचमपल्ली पहुचे जो कि साम्यवादी गतिविधियो का प्रमुख केन्द्र था। पोचमपल्ली की जनसख्या 3000 थी यह पोचमपल्ली गाँव ही है जहाँ से विनोबा जी का भू–दान यज्ञ प्रारभ हुआ। विनोबा जी के साथ श्री मन्नारायण की पत्नी भी साथ थी उन्होने जो मर्मस्पर्शी विवरण पोचमपल्ली के घटना क्रम का दिया है उसे श्री मन्नारायण ने अपनी पुस्तक ऋषि विनोबा मे निम्नरूपेण प्रस्तुत किया है।[2]

जैसे ही विनोबा गाव मे पहुचे वैदिक मत्रो के साथ उनका स्वागत किया गया कुछ देर बाद यात्रा के सदस्य स्नान वगैरह के लिए गाँव मे चले गये। स्वय विनोबा ने स्थानीय शाला मे कुछ देर आराम किया फिर एकदम उठे व लोगो की आर्थिक स्थिति को स्वय समझने के लिए गाव मे चले गये। प्रारम्भ उन्होने हरिजन बस्ती से किया। उनकी हालत को अपनी आँखो से देखने के लिए मकान के अदर भी गये। जब वे अपने स्थान–शाला पर वापस लोटने लगे तब कुछ हरिजनो ने उन्हे घेर लिया और कहा हम बहुत गरीब है बेकार भी है इसलिए और भी दुखी हैं। कृपया हमारी कुछ मदद कीजिए।

मै किस प्रकार आपकी मदद कर सकता हूँ ? विनोबा ने पूछा।

हमे तो सिर्फ काम चाहिए और कुछ नही। मेहरबानी करके कुछ जमीन दिला दीजिए तो उस पर मेहनत करके हम अपनी गुजर कर लेगे। इस दया के लिए हम सदा आपके एहसानमन्द रहेगे।

विनोबा को कुछ सूझ नही रहा था कि क्या करे। उन्होने कहा आपके गाँव मे

आये मुझे अभी कोई एक घटा हुआ है। नहाने और कुछ आराम के बाद हम सब कताई करेंगे। तब आप शाला मे आ जाये तो हम बैठकर विचार करेगे । मैं यह भी सोचूँगा कि आपको जमीन कैसे मिले।

तदनुसार हरिजनो के 40 परिवार विनोबा के पास आये। कताई समाप्त होने पर विनोबा ग्रामीणों के सामने एक खटिया पर बैठे। हरिजनों का एक प्रतिनिधि हाथ जोड़कर खडा हुआ और उसने जमीन की माँग वाली वही प्रार्थना फिर दोहरायी और कहा " हम धरती माता की सेवा करेगें ओर वह जो देगी उससे बच्चो का पेट भरेगे।"

आपको कितनी जमीन की सही–सही जरूरत है ? विनोबा ने पूछा।

कुछ देर आपस में विचार करने के बाद हरिजनों के अगुआ (प्रतिनिधि) ने कहा "80 एकड काफी होगी। हम 40 घर के आदमी हैं। हर परिवार के लिए 2 एकड काफी होगी।"

विनोबा गहरे विचार मे पड गये। परन्तु कोई हल सूझ नही रहा था इसलिए धीरे से उन्होने कहा " में सरकार से बातचीत करूँगा और देखूँगा कि आपको कुछ जमीन मिल सकती है या नही। समस्या कठिन है फिर भी कोशिश करूँगा कि क्या हो सकता हैं।

और तब उन्हे एकाएक ख्याल आया कि शायद सामने बैठे गाँव के लोगो मे से ही इन गरीबों की जरूरत को पूरी करने के लिए कोई तैयार हो जाय। उन्होंने आँखें ऊपर उठायीं, श्रोताओं की तरफ देखकर कुछ मुस्कराये और बिना किसी आशा–अपेक्षा से कहा, भाइयो आप मे कोई इन हरिजनो की मदद कर सकता है? वे जमीन पर अपनी गुजर के लिए कडी मेहनत करने को तैयार हैं।

और कैसा आश्चर्य ! स्थानीय कार्यकर्ताओ मे से एक रामचन्द्र रेड्डी खडे हुए और विनोबा के सामने हाथ जोडकर बोले "महाराज, मेरे पास कुछ जमीन है और मैं उसे देने के लिए किसी सद्पात्र की तलाश मे हूँ। मेरे पिता की इच्छा थी कि 200 एकड जमीन मे से आधी जमीन कुछ योग्य पात्रो मे बाट दी जाय। मै कई वर्षों से सोच रहा था कि क्या करूँ। परन्तु कुछ सूझ नही पा रहा था। आज का दिन मेरे लिए सोने का बनकर आया है। कृपा करके 100 एकड का यह दान आप जरूर स्वीकार कर ले। इस कृपा के लिए मुझ पर बडा उपकार होगा।

न तो विनोबा को और न उनके साथियो को विश्वास हो रहा था। परन्तु रामचन्द्र रेड्डी तो हाथ जोडकर खडे थे और विनोबा की मजूरी की राह देख रहे थे।

विनोबा भावे विभोर हो गये। यह तो सचमुच चत्कार ही था। हरिजनो ने तो केवल 80 एकड जमीन माँगी थी ओर दाता अपने मन से 100 एकड जमीन दे रहा था। विनोबा ने फिर हरिजनो की तरफ देखा। 100 एकड के दान की बात तो उन्होने भी सुन ली थी। परन्तु फिर भी वे तो अपनी 80 एकड की बात पर ही दृढ रहे। उन्होने अपने वचन को फिर दोहराया कि पूरे दिल से धरती माता की सेवा करेगे। लोभ लालच का वहाँ नामोनिशान नही था।

अगोछे से अपने आँसुओ को पोछकर विनोबा बोले मैं यहाँ खाली हाथों आया था ओर कल सुबह भी यहाँ से अगले गॉव खाली हाथो ही जाऊँगा। दान देने वाले और दान लेने वाले दोनो यहाँ हमारे बीच बैठे हैं। वे हमारे सामने ही जमीन दे दे ओर ले ले। दाता हरिजन भाइयो को कुछ पैसा और खेती के ओजार भी दे ताकि वे सहकारिता की पद्धति से खेती कर सके।

रामचन्द्र रेड्डी ने विनोबा के सामने नम्रता पूर्वक सर झुका कर इस जिम्मेदारी को स्वीकार किया। हरिजनो ने आनद ओर सतोष के साथ विनोबा के चरण छुए और इस प्रकार भू–दान की गगोत्री का प्रवाह प्रारम्भ हुआ।

विनोबा जी के लिए यह घटना कल्पनातीत थी। इसमें उन्हे भगवान का हाथ नजर आया व गॉव–गॉव जाकर भू–दान यज्ञ का विस्तार करने का सकल्प लिया। उन्हीं के शब्दो में[3]

आदमी जो कुछ करता हे सदा अपने सोचे अनुसार ही नहीं करता। ऐसी उदात क्रियाओ के पीछे सदा कोई देवी शक्ति होती हे। मे तो एक श्रद्धाशील आदमी हूँ और भगवान के नाम पर काम करता रहा हूँ। अगर भगवान की इच्छा होगी तो मैं गरीबों के लिए इस प्रकार जमीन की माँग करने के लिए गॉव–गाँव घूमूँगा।

भू–दान यज्ञ का लक्ष्य

पोचम पल्ली गाँव से 18 अप्रैल 1951 को प्रारभ हुआ भू–दान यज्ञ शीघ्र ही बगाल विहार उडीसा उत्तर प्रदेश आदि अधिकाश प्रान्तो मे तेजी से फलने लगा। विनोबा जी कितनी भूमि भू–दान के अन्तर्गत चाहते हे ? इस प्रश्न का उत्तर विनोबा जी निम्न शब्दो मे देते है–[4]

'यद्यपि मेरी भूख बहुत कम है फिर भी दरिद्र नारायण की भूख बहुत ज्यादा है। इसलिए जब मुझसे लोग पूछते हैं कि आपका अक क्या है कितनी जमीन आपको चाहिए, तो मैं जवाब देता हूँ' 5 करोड़ एकड'। अगर परिवार में 5 भाई हैं तो छठा मुझे मान लीजिए और चार हों तो 5 वाँ। इस तरह यह कुल जेरकाश्त जमीन का 5वाँ या छठा हिस्सा होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विनोबा जी का भूदान का लक्ष्य 5 करोड़ एकड था। अप्रैल 1951 से सितम्बर 1951 तक मात्र 6 माह में 30 000(तीस हजार) एकड जमीन भू–दान के अतर्गत आ चुकी थी।

भू–दान यज्ञ से सबद्ध विनोबा जी के विचार

(अ) **भू–दान सत्याग्रह का रचनात्मक प्रयोग है–** सत्याग्रह केवल अन्याय के प्रतिकार का एक नैतिक और आध्यात्मिक उपकरण ही नही अपितु नवीन समाज रचना का एक समर्थ साधन भी है। भू–दान आदालन वस्तुत जमीन की भिक्षा का आदोलन नही वल्कि यह तो अन्यायपूर्ण भू–व्यवस्था के विरुद्ध अहिंसक सत्याग्रह है।

(ब) **भूमि पर सबका समान अधिकार**— विनोबा जी के अनुसार ईश्वर ने पृथ्वी जल, तेज, वायु आकाश, इन पच महाभूतो का निर्माण सभी प्राणियो के लिए किया है। अत प्रकृति की चीजो पर सभी का समान अधिकार है। जब जल तेज वायु तथा आकाश का उपभोग सभी जीव समान रूप से करते हैं तो पृथ्वी के उपभोग का भी सभी को समान अधिकार दिया जाना चाहिए। जब चार महाभूतो का वितरण ईश्वर ने समान रूप से किया है तो मानव को क्या अधिकार है कि वह भूमि का वितरण स्वय करे। विनोबा के अनुसार भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व के आधार पर कुछ लोगो को भूमिहीन रखना एक प्रकार का अन्याय है और इन अन्याय को दूर करने का मार्ग है भू–दान यज्ञ।

(स) **भू–दान सर्वोत्तम दान**— हिन्दुस्तान की सस्कृति का सर्वोत्तम अश भगवान की मूर्ति सजाने मे है। जो भी भोग हम चाहते हैं, प्रकृति के अनुसार वह हम भगवान को अर्पित करके ही सेवन करेगे। हम जो भोग भोगेगे वह भगवान के लिए भोगेगे, जो काम करेगे वह भगवान के लिए करेगे। भगवान दीन, दु खी गरीब व्यक्ति मे भी निवास करता है, उनकी सेवा भगवत् सेवा है। एतदर्थ हम उन्हे भोजन वस्त्र आदि दान देते हैं लेकिन वह दान उनकी भूख को स्थायी रूप से नही मिटा सकता। यदि हम उसे उत्पादन का साधन देते हैं, तो उसे फिर माँगना नही पडेगा। उसे हम यदि अच्छी जमीन देते है तो वह उस पर काश्त करके अपने बाल बच्चो का पालन–पोषण करेगा और फिर माँगने न आयेगा । इसीलिए भू–दान सर्वोत्तम दान है।

(द) **भू–दान · साम्य योग की स्थापना**—विनोबा जी के अनुसार "स्वराज्य की प्राप्ति के बाद हमें ' साम्य योग " की स्थापना का आदर्श रखना होगा, इसी को हमने सर्वोदय कहा है। इस साम्य योग की स्थापना करने के लिए ही तो मैं गाँव मे घूम रहा हूँ। आजकल मैं भू–दान माँगता हूँ। जिनके पास जमीने नहीं है, उन्हे भूमि देना चाहता हूँ। आखिर यह सारा गोरख–धधा क्यो कर रहा हूँ ? इसीलिए कि आज समाज मे ऊँच–नीच माने जाने वाले सभी दर्जे मिटने चाहिए यह कैसे हो सकता है कि जो खुद खेती नही करते, उनके हाथ मे खेती हो ? ओर जो खुद खेती नही जानते, वे उस पर दूसरो के हाथ से काम करवाते हैं और जो जानते है वे मजदूर के तौर पर काम करते हैं।[5]

विनोबा जी के अनुसार हमारी सस्कृति पृथ्वी को माता मानती है और स्वय को उसका पुत्र।

' माता भूमि पुत्रोऽ ह पृथीव्या ,"

माता पर तो सभी पुत्रो का अधिकार समान रूप से होता है अत हम सभी का पृथ्वी पर समान अधिकार है।

(य) **भू–दान राम राज्य की स्थापना का मार्ग**— विनोबा जी के अनुसार भू–दान दिलो को जोडता है फिर जमीन जुडती है और सहकारिता का विकास होता है। भू–दान अतत समस्त ग्राम को एक परिवार मे परिवर्तित कर राम राज्य की स्थापना का

मार्ग प्रशस्त करता है। विनोबा जी ने भू–दान की 5 भूमिका निर्धारित कर राम राज्य की स्थापना समझायी है विनोबा जी द्वारा निर्धारित 5 भूमिकाये निम्नलिखित हैं–[1]

(I) **अशांति शमन**– पहली भूमिका केवल स्थानिक दुख निवारण की थी।

(II) **ध्यानाकर्षण** – दूसरी भूमिका व्यापक सद्भावना जगाने की थी और सारे देश का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने की थी।

(III) **निष्ठा निर्माण** – तीसरी भूमिका कार्यकर्ताओ में आत्म विश्वास पैदा करने की थी।

(IV) **व्यापक भूमिदान**– चोथी भूमिका एक प्रदेश मे छठे हिस्से भूमि की माँग किस तरह पूरी हो सकती है यह देखने की थी।

(V) **भूमि क्राति** – पाँचवी भूमिका ग्राम को एक परिवार बनाने की है।

5वी भूमिका के बाद ग्राम राज्य ओर राम राज्य प्रारभ हो जायेगा।

ग्राम–दान

ग्राम–दान वस्तुत रामराज्य या ग्राम राज्य की प्राप्ति का मार्ग है। ग्राम–दान का प्रथम चरण है भू–दान जिसके अतर्गत समाज मे कोई भूमिहीन न रहे। ग्राम–दान भूमि के सपूर्ण मालकियत को गाव पर सोप सेवावृति अपनाने का विचार है विनोबा जी के शब्दो मे जमीन ओर सपत्ति शक्ति और बुद्धि का मालिक परमेश्वर है उनकी वृद्धि का कारण समाज है हम सब तो उसके सेवक हें। हर एक को उसके पेट के लिए जितना जरूरी है उतना ही मिलना चाहिए। मालकियत का अधिकार किसी को नही भू–दान यज्ञ की यह अतिम बात है।

विनोबा जी ने ग्राम–दान को वरदान बताते हुए स्पष्ट शब्दो मे कहा है ग्राम–दान की घटना दुनियॉ के इतिहास मे अद्भुत मानी जायेगी। इसमे किसी प्रकार का दबाव नही है। इससे दुनियॉ मे शाति की स्थापना हो जायेगी। यह विश्व शाति के लिए वोट है। विश्व शाति स्थापित करने मे वह मददगार होता है। एटम–हाइड्रोजन बम से भी ज्यादा शक्ति ग्राम–दान मे है ग्राम–दान वरदान है।

ग्राम–दान का प्रारभ तो वस्तुत भू–दान से होता है। विनोबा जी ने स्वय यह स्वीकार किया है कि यदि मे सीधे ही ग्राम–दान की बात करता तो वह बनने वाली नही थी। भू–दान मे करूणा समाविष्ट है जबकि ग्राम–दान मे सहयोग एव समता की एक कल्पना है। समता यदि करूणा पूर्वक आती है तो ही वह कल्याणकारी होती है अन्यथा नहीं।

ग्राम–दान हेतु प्रक्रिया – प्रारम्भ मे जो ग्राम–दान हुए उनमे सभी भूमिपतिया ने अपनी जमीने ग्राम समाज को सौप दी। उसके बाद प्रत्येक परिवार की सदस्य सख्या के आधार पर इन जमीनो को नए सिरे से बॉट दिया गया। इन ग्रामदानी गॉवो की जमीन में से 10 प्रतिशत भाग सहकारी कृषि के लिए सुरक्षित कर दिया जाता तथा शेष जमीन को काश्तकार जीवन भर जोतता। अगर उन जमीनो की काश्त ग्राम सभा की योजना के अनुसार होती रहे तथा उसका लगान भी ग्राम सभा को समय पर

दिया जात रहे तो यह अगली पीढी के पास रह सकती थी। इस जमीन को ग्रामसभा की अनुमति के बिना न तो बेचा जा सकता था न गिरवी रखा जा सकता था। 10 प्रतिशत सहकारी शामलाती भूमि की उपज का उपयोग सार्वजनिक कार्यों के लिए किये जाने की व्यवस्था थी। ग्रामदान की यह योजना कम व्यावहारिक रही। तब विनोबा जी ने साथियो से विचार–विमर्श कर इसे अधिक लचीला बना कर दूसरी सुलभ ग्रामदान योजना बनायी।[9]

योजनानुसार ग्राम के 75 प्रतिशत भूस्वामी मिलकर 5 प्रतिशत जमीन तो भूमि हीनों को दे दें शेष 95 प्रतिशत स्वय की काश्त के लिए रख लें। समस्त भूमि पर स्वामित्व तो ग्राम सभा का ही रहेगा। ग्राम सभा की अनुमति के बिना न तो जमीन बेची जा सकती है और न ही गिरवी रखी जा सकती है। गाँव के सभी बालिग ग्राम सभा के सदस्य होगे। प्रत्येक ग्राम मे ग्राम विकास कोष होगा जिसमें प्रत्येक काश्तकार को अपनी उपज का 30 प्रतिशत या आय का 40 प्रतिशत देना होगा। जिनके पास जमीन नहीं हैं उन्हें इतना ही प्रतिशत शरीर श्रम के रुप मे देना होगा। गॉव का प्रबन्ध सर्वानुमति से होता है न कि बहुमत से। ग्रामदान के लिए यह आवश्यक है कि गाँव की कुल जनसख्या का 75 प्रतिशत भाग उपर्युक्त सिद्धान्तो को स्वीकार करे और उसमे कम से कम इतने भूमिपति शामिल हो कि गाँव कि कुल जमीन का 51 प्रतिशत इसमें शामिल हो जाय।

ग्राम–दान के उद्देश्य :– विनोबा जी ने ग्राम–दान की सकल्पना का प्रचार स्वय ने गाँव–गाँव मे जाकर किया । बगाल, बिहार, उडीसा की एतदर्थ अत्यधिक पदयात्रा की।

ग्राम–दान के विनोबा जी ने 7 बुनियादी उद्देश्य गिनाये–[10]

1. गरीबी को मिटाना।

2 जमीन के मालिको में प्रेम और स्नेह की भावना को जागृत करना और इस प्रकार देश के नैतिक वातावरण को सुधारना।

3 देश में जहाँ जगह–जगह आमतौर पर एक तरफ बडे जमीदारो और दूसरी और बेदखल किये गये भूमिहीनो के मध्य वर्गविद्वेष का वातावरण फैल रहा है, उसे दूर करके उसके स्थान पर समाज मे बन्धु भाव और परस्पर सहायक बनने का भाव पैदा करना ।

4 यज्ञ दान और तप के हमारे अनोखे तत्व ज्ञान पर आधारित हमारी भारतीय सस्कृति को पुनर्जीवित करके उसे बलवान बनाना। इस प्रकार सच्चे धर्म मे मनुष्य की श्रद्धा को बढाना।

5 श्रम धर्म, अपरिग्रह सहकारिता और स्वावलंबन पर आधारित नयी समाज रचना का निर्माण।

6 देश के समस्त राजनीतिक दलो को एक मच पर मिल जुलकर काम करने का अवसर प्रदान करना और इस प्रकार स्वार्थ और कटुता को निर्मूल करना।

7 विश्व शाति मे मदद पहुँचाना।

ग्राम–दान, कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य –ग्राम–दान की अवधारणा उसकी *व्यापकता व महत्ता को निम्न प्रकार समझा जा सकता है–*

1 भारत की एक आध्यात्मिक परम्परा है जिसमे मानव त्याग प्रेम करुणा और अद्वेत भावना को महत्त्व दिया जाता है। भारतीय यह जानता है कि जगत मे जो कुछ है वह सब ईश्वर का है। अपना कुछ भी नही न धरती न सपत्ति न शक्ति न बुद्धि। अत विश्व पुरुष को अर्पण करके ही उससे जो मिले उसे भोगता है।"

2 परिवार मे एक दूसरे की चिन्ता और ख्याल किया जाता है इसीलिए उसमे आनन्द की अनुभूति होती है। परन्तु आज वह सीमित है मै ओर मेरे तक। उसे वसुधैव कुटुम्ब तक ले जाना है और उसका मुख्य कदम ग्राम–दान है।[2]

3 विनोवा कहते हैं कि लोगों ने कल्पना कर रखी हैं कि समाज में कुछ आस्तिमान (Haves) हैं और कुछ नास्तिमान (Have Nots) हैं। परन्तु एक दिन मेरे ध्यान मे आया कि इस दुनियॉ मे कुल के कुल लोग आस्तिमान है। परमेश्वर की कृपा से दुनियॉ मे नास्तिमान कोई नही है। किसी के पास भूमि है किसी के पास सपत्ति है किसी के पास प्रेम। हर किसी के पास कोई न कोई चीज पडी हे लेकिन उस चीज का उपयोग वह सीमित रूप मे करता है। उन्होने आगे कहा कि ग्राम–दान का विकसित अर्थ है कि जिसके पास जो हो वह उसे ग्राम को समर्पित करे। नही तो यह होगा कि कुछ लोगो का धर्म देने का है और कुछ का धर्म लेने का। ऐसा नही हो सकता। धर्म वही है जो सब पर लागू होता है जैसे सत्य धर्म है तो वह सब पर लागू होता है करुणा धर्म है तो सब पर लागू होता है।

4 ग्राम–दान एक पूर्ण विचार है। यह एक जटिल प्रत्यय है जिसमें कई प्रकार की प्रतिमाओ का एक साथ अनुपम सगठन हुआ हे। धर्म की दृष्टि से यह करुणा और सेवा का विज्ञान की दृष्टि से सहयोग का समाज की दृष्टि से टूटे हुए हृदय को जोडने का आर्थिक दृष्टि से स्वावलबी ग्रामीण कुटीर उद्योग व खादी का राजनीतिक दृष्टि से शासन मुक्त समाज वास्तविक लोक शक्ति और लोकनीति का प्रतिरक्षा की दृष्टि से शाति सेना का और अहिसक क्राति के मार्ग के रूप मे यह नयी तालीम हृदय परिवर्तन तथा विचार परिवर्तन के आधार पर शातिमय क्राति का सूचक है।[3]

5 ग्राम–दान मे विज्ञान का कल्याणकारी रूप ही समाहित है। यदि वह शोषण का माध्यम होता है तो उसका ग्राम–दान मे कोई स्थान नही है विज्ञान को समस्त जनता की भलाई का पहले ध्यान रखना चाहिए। विज्ञान मानव के लिए है न कि मानव विज्ञान के लिए मानवता विज्ञान से श्रेष्ठ है।

6 ग्राम–दान धर्म अर्थ विज्ञान आदि से भी अधिक व प्रभावी सकल्पना है। ग्राम एक पूर्ण आत्मनिर्भर इकाई है। यह आत्मनिर्भरता समानता व सहअस्तित्त्व के साथ मिश्रित है। यह एक विशिष्ट साम्य योग हे जहा सभी सेवक हे कोई मालिक नही है।

7 यह दुनियॉ से भय व हिसा को समाप्त कर विश्व शाति का मार्ग प्रशस्त करने वाली सकल्पना है।

ग्रामोदय–ग्राम स्वराज्य–राम राज्य

विनोबा भावे द्वारा प्रस्तुत ग्राम–दान की सकल्पना राम राज्य की प्राप्ति का साधन है। राम राज्य वस्तुत एक ऐसी शासन कल्पना है जिसमे सभी सुखी हो, प्रेम सौहार्द व भाईचारे के साथ सभी मिल–जुल कर रहे, व जहाँ किसी भी प्रकार शोषण न हो। राम राज्य स्वराज्य से ही प्राप्त किया जा सकता है। ग्राम स्वराज्य ग्रामोदय का परिवर्तित स्वरूप है, ग्रामोदय के अतर्गत ग्राम–दान व ग्राम सकल्प दोनो ही समाहित हैं। इस प्रकार –ग्रामोदय = ग्राम दान + ग्राम सकल्प।

ग्राम दान हेतु समस्त ग्रामवासियो या ग्राम दाताओ को ग्राम दान पत्र भरना होता है साथ ही उन्हे ग्राम सकल्प, पर भी हस्ताक्षर करने होते हैं। ग्राम सकल्प वस्तुत किये जाने वाले कार्यों का प्रतिज्ञा पत्र है। यहाँ ग्राम दान पत्र व ग्राम सकल्प दोनो ही दिये जा रहे हैं।

ग्राम–संकल्प

यह ग्राम . न बदोबस्त

तहसील . . . . जिला . प्रदेश ... ..

सत्य–अहिसा की बुनियाद पर ऐसा समाज कायम करना, जिसमें किसी का शोषण न हो और नागरिको को ग्रामपरिवार के अभिमुख बनाकर ग्राम–जीवन के सब अंगों का विधायक कार्य द्वारा विकास करना, जिससे ग्रामीणो को दारिद्रय, बीमारी, अज्ञान, कर्ज और आपसी फूट ऊँच–नीच का भेदभाव छुआछूत दूर होकर उन्हे आत्मशक्ति का भान हो और ग्राम–सकल्प एव ग्राम–दान द्वारा ग्राम–स्वराज्य निर्माण हो।

हम नीचे हस्ताक्षर करने वाले उक्त दृष्टि से सकल्प करते है कि हम :–

1 जमीन की मालकियत का विसर्जन कर ग्राम–परिवार मे दाखिल होगे।

2 किसी प्रकार का भेद–भाव नही मानेंगे और अपने झगडे आपस मे गाँव के बुजुर्गों की सलाह से तय करेगे।

3 नियमित रूप से सूत कातेंगे।

4 हाथ–कुटा चावल, हाथ पिसा आटा घानी का तेल गुड या ग्रामोद्योगी चीनी, ग्रामोद्योगी चमडे की चीजे और चिकित्सा या मजबूरी हालत को छोडकर घर मे या गाँव मे गाय का दूध, दही, घी और उनसे बने पदार्थ इस्तेमाल करेगे।

5 घर अहाता और गाँव साफ रखेगे और मल–मूत्र को गाडकर उसकी खाद बनायेगे।

6 सामूहिक प्रार्थना और एक घटे का पाठशाला द्वारा बुनियादी तालीम पायेगे।

7 अपने श्रम बुद्धि, सम्पत्ति का उपयोग गाँव की सेवा मे करेगे।

हस्ताक्षर

ग्रामदान–पत्र
सर्वोदय–मण्डल

गाँव का नाम मौजा न तहसील जिला

गाँव का कुल क्षेत्र कुल कुटुम्ब की सख्या जनसख्या

डाकखाना रेल्वे स्टेशन स्टेशन से दूरी

विनोबा जी कहते है कि हवा पानी और सूरज के प्रकाश की तरह जमीन भी भगवान की देन है। उस पर सबका हक होना चाहिए किसी का व्यक्तिगत नही। उसी प्रकार श्रम और बुद्धि भी। हम इस मान्यता को स्वीकार करते हैं और उसी आधार पर हम अपनी निम्नलिखित तफसील की जमीन का अपना हक पूज्य विनोबा जी द्वारा आरब्ध भू–दान (ग्रामदान) यज्ञ मे अपने इस लेख द्वारा अर्पण कर रहे है। अब उस पर हमारा कोई निजी हक नही रहेगा। हमारे गॉव मे जिनके पास जमीन है और जिनके पास जमीन नही है वे सब मिलकर एक परिवार की भाँति रहेगे। सारे गाँव का एक परिवार होगा। जमीन की मालकियत सारे गाँव की होगी। श्रम और बुद्धि का भी उपयोग सारे गाँव की भलाई के लिए हम करेगे। गाँव को सुखी तथा सम्पन्न बनाने मे हम अपनी शक्ति लगायेगे तथा जमीन और गॉव की अन्य व्यवस्था के लिए गाँवभर का निर्णय जो होगा वह हमे सहर्ष मान्य होगा। हमारे इस सकल्प के लिए भगवान साक्षी हैं।

ता	दाता का नाम	खसरा न	रकबा	हक या प्रकार	लगान	श्रम शक्ति	हस्ताक्षर दाता

संदर्भ

1 विनोबा भावे. ग्रामदान अखिल भारतीय सर्व सेवा सघ प्रकाशन, पृ 7
2 ऋषि विनोबा–श्री मन्नारायण पृष्ठ 85–88
3 ऋषि विनोबा–श्री मन्नारायण पृष्ठ 88
4 विनोबा, व्यक्तित्व एवं विचार–सस्ता साहित्य प्रकाशन मडल (1971) पृष्ठ 428
5 विनोबा, व्यक्तित्व एव विचार–सस्ता साहित्य प्रकाशन मडल (1971) पृष्ठ 429
6 विनोबा, व्यक्तित्व एवं विचार–सस्ता साहित्य प्रकाशन मडल (1971) पृष्ठ 447
7 विनोबा, ग्रामदान पृष्ठ 11
8 विनोबा, ग्रामदान पृष्ठ 12
9 ऋषि विनोबा–श्री मन्नारायण पृष्ठ 356
10 ऋषि विनोबा–श्री मन्नारायण पृष्ठ 237
11 विनोबा, ग्रामदान पृष्ठ 13
12 विनोबा, ग्रामदान पृष्ठ 13
13. डॉ दशरथ सिह, गाँधीवाद को विनोबा की देन, पृष्ठ 545

प्रश्न

1 विनोबा भावे के अनुसार भू–दान का क्या तात्पर्य है ?
2 विनोबा जी का भूदान का यज्ञ कहा से प्रारभ हुआ ? नाम बताइये।
3 विनोबा जी ने ग्राम–दान के कौन–कौन से बुनियादी उद्देश्य बतलाए हैं ? लिखिए।
4 विनोबाजी की ग्रामदान की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
5 विनोबाजी के भू–दान की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
6 'ग्राम दान वस्तुत रामराज्य प्राप्ति का मार्ग है।' विनोबा जी के उक्त कथन के सदर्भ मे ग्रामदान के सिद्धात को स्पष्ट कीजिए।



18

डॉ भीमराव अम्बेडकर

(Dr Bhimrao Ambedkar 1891-1956)

जीवन प्ररिचय

आधुनिक भारत मे सामाजिक न्याय की स्थापना व दलित वर्गों के उत्थान के प्रतीक डॉ भीमराव रामजी अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रेल 1891 मे महू छावनी में हुआ था। इनके पिता का नाम रामजी सकपाल एव माँ का नाम भीमा बाई था। उनका परिवार *महाराष्ट्र के रत्नगिरी जिले के खेडा तालुके के एक छोटे से गाँव अम्बवडे का रहने वाला* था। गाँव के नाम पर आधारित कुलनाम –अम्बवडेकर को बाद मे स्कूल शिक्षा के दिनो मे उनके एक प्रिय ब्राह्मण शिक्षक ने अपना उपनाम अम्बेडकर प्रदान किया। अम्बेडकर अपने पिता की 14वी सतान थे। इनके पिता ब्रिटिश ईस्ट इडिया कम्पनी की सेना से सेवानिवृत्त होने के पश्चात महू से महाराष्ट्र के कोकण जिले के ग्राम दापोली मे आकर बस गये। यहीं अम्बेडकर की प्रारभिक शिक्षा हुई। बाद मे उनके पिताजी रोजगार की तलाश मे बम्बई आकर बस गये। उनके पिताजी ने भीमराव को ऐलफिस्टन हाइस्कूल मे भर्ती करा अपने पुत्रो को अच्छी शिक्षा दिलाने की कटिबद्ध इच्छा का परिचय दिया। 1907 मे उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की। उन्हे 750 अको मे से 282 अक प्राप्त हुए। *निश्चय ही एक अछूत व्यक्ति के लिए यह बहुत बडी उपलब्धि थी।* समस्त महार समाज ने इस बात पर हर्ष मनाया और भीम का अभिनन्दन करने के लिए प्रसिद्ध समाज सुधारक श्री एस के बोले की अध्यक्षता मे एक सभा का आयोजन किया। 1913 मे उनके *पिताजी का देहात होने के कारण उनकी उच्च शिक्षा की इच्छा अधूरी दिखाई देने लगी।* परन्तु बडौदा महाराजा ने उन्हे छात्रवृत्ति देना स्वीकार किया। इसके लिए उन्हे बडौदा राज्य से एक अनुबन्ध करना पड़ा जिसके अनुसार उन्हे उच्च शिक्षा पूरी कर लेने के पश्चात 10 वर्ष तक बडौदा राज्य की सेवा करना आवश्यक था। जून 1913 मे वे उच्चतर अध्ययन के लिए अमेरिका चले गये। वहाँ उन्होने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से 1915 मे 'मास्टर ऑफ आटर्स' की उपाधि प्राप्त की। 1917 मे ही उन्होने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से ही *'नेशनल डिविडेण्ड आर्फ इंडिया–एन हिस्टोरिक एण्ड एनेलिटिक स्टेडी'* शीर्षक शोध प्रबध पर डॉक्टर ऑफ फिलासिफी (पी एच डी) की उपाधि प्राप्त की। उसके बाद बाबासाहब लदन आ गये और विधि के अध्ययन के लिए 'ग्रेज इन' में तथा अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए 'लन्दन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स एण्ड पॉलिटिकल साइन्स' मे प्रवेश

लिया। परन्तु इसी बीच उनकी छात्रवृत्ति समाप्त होने पर बीच मे ही अगस्त 1917 मे वापस भारत लौटना पडा और अनुबन्ध के अनुसार 10 वर्ष तक बडौदा राज्य की सेवा करनी थी। एक वर्ष तक बडौदा राज्य की सेवा छोड कर वापस बम्बई आ गये।

नवम्बर 1918 मे उन्हे बम्बई के सिडनहॅम कालेज मे राजनीति अर्थशास्त्र का प्रोफेसर नियुक्त किया गया। अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा और श्रेष्ठ वक्तता के कारण उन्होने विद्यार्थियो के एक अच्छे शिक्षक की ख्याति प्राप्त करली थी। परन्तु उच्च शिक्षा की ललक पुन उन्हे लन्दन खींच ले गयी और उन्हे **"प्रोविन्शियल डिसेन्ट्रलाइजेशन ऑफ इम्पिरियल फाइनेन्स इन ब्रिटिश इडिया"** शीर्षक शोध प्रबध पर 1921 में मास्टर ऑफ साइन्स की उपाधि प्राप्त हुई। 1922 मे उन्होने लन्दन विश्वविद्यालय मे **'दी प्रॉब्लम ऑफ दी रूपी'** शीर्षक पर एक अन्य शोध प्रबंध प्रस्तुत किया। 1923 में उन्हे डी एस सी की उपाधि प्रदान की गयी।

अप्रेल 1923 मे वापस बम्बई लौटकर अम्बेडकर ने वकालत आरभ की। इसी वर्ष से उन्होने बम्बई से एक पाक्षिक समाचार पत्र 'बहिष्कृत भारत' का भी प्रकाशन आरभ किया। दलितो को सगठित करने के लिए 20 जुलाई 1924 को 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना की। 1926 मे अम्बेडकर को बम्बई लेजिस्लेटिव कौंसिल का सदस्य मनोनीत किया गया। कौंसिल के सदस्य के रूप मे उन्होने दलितो के उद्धार और सामाजिक व्यवस्था में सुधार के लिए अपने प्रयत्नो को जारी रखा। 1928 में भारत दोरे पर आये साइमन कमीशन का काग्रेस ने बहिष्कार का आहान किया था किन्तु अम्बेडकर ने, इस कमीशन से सहयोग करने के लिए बम्बई लेजिस्लेटिव कौंसिल द्वारा गठित समिति के सदस्य के रूप मे इसकी कार्यवाहियो मे भाग लिया और इसके समक्ष साक्ष्य भी प्रस्तुत किया। अम्बेडकर के इस कदम की काफी आलोचना भी हुई और उन्हे 'विश्वासघाती' कहा गया। अम्बेडकर ने सामइन कमीशन के समक्ष अपने ज्ञापन मे बम्बई प्रेसिडेन्सी मे दलित वर्गों के सरक्षण के लिए विशेष प्रावधान की माग की।

1930 से 1933 के मध्य ब्रिटिश सरकार द्वारा आयोजित तीन गोलमेज सम्मेलनो मे अम्बेडकर ने दलित वर्गों के प्रतिनिधि के रूप मे भाग लिया। इन गोलमेज सम्मेलनो मे अम्बेडकर ने दलित वर्गों के लिए पृथक निर्वाचक मण्डल सहित उनके लिए स्थानो के आरक्षण की माग की।

अगस्त, 1932 मे ब्रिटिश सरकार ने 'साम्प्रदायिक पचाट' की घोषणा की, जिसमे अस्पृश्यों के लिए पृथक निर्वाचन–मण्डल को स्वीकार किया गया। महात्मा गाँधी ने 'साप्रदायिक पचाट' के विरुद्ध आमरण अनशन प्रारभ किया अतत अम्बेडकर को गाँधी के आग्रह के आगे झुकना पडा और सितम्बर 1932 मे यरवदा जेल मे **'पूना पैक्ट'** पर हस्ताक्षर किए। अक्टूबर, 1936 मे अम्बेडकर ने 'इनडिपेण्डेन्ट लेबर पार्टी ऑफ इडिया' की स्थापना की परन्तु 1942 मे एक अखिल भारतीय राजनीतिक दल के रूप में

अनुसूचित जाति फैडरेशन का गठन किया गया और इनडिपेंडेंट लेबर पार्टी आफ इंडिया का भी इसी मे विलय कर दिया गया।

बम्बई विधानसभा मे काग्रेस द्वारा 25 अक्टूबर 1939 को एक प्रस्ताव पेश किया गया जिसमें दूसरे विश्वयुद्ध मे हिन्दुस्तानियो की स्वीकृति के बिना भारत को शामिल करने की निदा की गयी थी। अम्बेडकर ने इस प्रस्ताव में सशोधन पेश किया जिसमे कहा गया था कि भारत का सहयोग प्राप्त करने के लिए यह जरुरी है कि देश मे जनतान्त्रिक सिद्धान्त लागू किए जाए। भारत को एक स्वतत्र जाति माना जाए जिसे अपना ऐसा सविधान बनाने का अधिकार हो जिसमें अल्पसख्यकों के अधिकारो के मुद्दे भी शामिल हों। इस सविधान को लागू करते समय अल्पसख्यकों के प्रमाणित प्रतिनिधियो के दृष्टिकोण को सुना जाए। बर्तानिया सरकार ऐसे सविधान को लागू करने के लिए बाध्य हो।'

द्वितीय विश्वयुद्ध में भारत को जबरन धकेलने पर काग्रेसी मन्त्रिमण्डल ने त्यागपत्र दिया परन्तु गाँधी एव काग्रेस के रवैये के विरुद्ध अम्बेडकर का कहना था कि 'देशभक्ति काग्रेसियों की पैतृक सम्पत्ति नहीं है। अत जो लोग काग्रेस के विरुद्ध विचार रखते हैं उनको भी जीने और सम्मान प्राप्ति का पूरा अधिकार है।[२]

1940 में अम्बेडकर की जगत प्रसिद्ध पुस्तक 'थॉटस ऑन पाकिस्तान' (पाकिस्तान पर विचार) प्रकाशित हुई। पुस्तक में बाबा साहेब ने हिन्दुओं को सलाह दी कि वह भारत का विभाजन–हिन्दुस्तान और पाकिस्तान–को स्वीकार कर ले। पुस्तक मे यह दलील दी गयी थी कि यह बात किसी भी मीन मेख को निकाले बिना मान ली जानी चाहिए कि मुसलमान एक कौम है हिन्दुओ को यह समझाया गया है कि वह पाकिस्तान बन जाने से कौमी शात सीमाओ की नियुक्ति से न घबराये क्योकि आधुनिक ससार नवीन खोजों के सामने भौगोलिक निर्णयात्मक नही है। पुस्तक मे यह भी सुझाव दिया गया था कि हिन्दुओ की आबादी पाकिस्तान से और मुसलमानो की आबादी का यहाँ से अवश्य सम्पूर्ण विभाजन किया जाना चाहिए। पुस्तक मे अम्बेडकर ने लिखा है कि अखण्ड भारत एक ऐसा आदर्श है जिसके लिए सघर्ष करना चाहिए। जबरदस्ती कोई हल नहीं है। उन्होंने आगे लिखा है कि 'सागर मे जहाज को नष्ट होने से बचाने के लिए अधिक सामान को उतारकर उसे हल्का कर देना चाहिए। यदि केन्द्र मे शक्तिशाली सरकार की आवश्यकता है तो भारत भी विभाजन स्वीकार करले नहीं तो परिणाम भयानक होंगे। थोपी गयी एकता उन्नति मे रुकावट सिद्ध होगी। उनकी स्वतत्रता की सारी आशाएँ मिट्टी मे मिल जाएगी। यदि अखण्डता पर जोर दिया गया तो देश के कई–कई भागो मे अधिक बेचैनी व्याप्त होगी और कुछ नही। अखण्ड भारत कभी भी आगे नही बढेगा ।' अम्बेडकर के इन विचारो से मुसलमाना विशेषकर जिन्ना के तर्कों को बल मिला परन्तु इससे हिन्दुस्तानी बाबा साहब से नाराज हो गये।

काग्रस से अम्बेडकर के तीव्र विरोध रहे फिर भी काग्रेसी नेताओ विशेषकर

नेहरूजी के मन मे अम्बेडकर की प्रतिभा, सामाजिक आर्थिक एव राजनीतिक न्याय के लक्ष्य के प्रति उनके समर्पण के लिए गहरी प्रशसा का भाव था। 1946 मे काग्रेस ने उन्हे सविधान सभा का सदस्य मनोनीत किया। और नेहरू के नेतृत्व मे बने भारत के प्रथम मन्त्रिमण्डल में विधिमत्री के रूप मे शामिल किए गए। सविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप मे उन्होने सविधान के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1952 मे अम्बेडकर ने लोकसभा का चुनाव लड़ा किन्तु वे निर्वाचित नहीं हो सके। 1952 मे बम्बई विधानमण्डल द्वारा वे राज्यसभा के लिए मनोनीत हुए। 1955 मे उन्होंने भारतीय बुद्ध महासभा की स्थापना की और 14 अक्टूबर 1956 को नागपुर मे अपने लाखो अनुयायियो के साथ बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया।

6 दिसम्बर, 1956 को दिल्ली मे उनका देहात हो गया। सामाजिक न्याय व सम्मानपूर्ण जीवन के लिए शताब्दियो से पीडित, शोषित और दलित वर्गों के सघर्ष का प्रेरणा स्रोत और महान योद्धा नही रहा।

अम्बेडकर की कृतियाँ

अम्बेडकर ने भारतीय ग्रन्थों, भारतीय सामाजिक व्यवस्था के स्रोतों तथा अर्थशास्त्र, विधि व न्यायशास्त्र का गभीर अनुशीलन किया था। उन्होने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख है—

1 कास्ट्स इन इंडिया (1917)
2 स्माल होल्डिग्स इन इडिया एण्ड देअर रेमेडीज (1918)
3 द प्रॉब्लम ऑफ द रूपी (1923)
4 द इवॅल्यूशन ऑफ प्राविसियल फाइनेस इन ब्रिटिश इडिया (1925)
5 एनिहिलेशन ऑफ कास्ट (1937)
6 फैडरेशन वर्सज फ्रीडम (1939)
7 मि गाँधी एण्ड द इमैन्सीपेशन ऑफ द अन्टचेबल्स (1943)
8 रानाडे, गाँधी एण्ड जिन्ना (1943)
9 थॉट्स ऑन पाकिस्तान (1940)
10 व्हॉट काग्रेस एण्ड गाँधी हैव डन टू द अन्टचेबल्स (1945)
11 हू वर द शूद्राज? (1946)
12 स्टेट्स एण्ड माइनॉरिटिज (1947)
13 द अण्टचेबल्स (1948)
14 थाटस ऑन लिग्विस्टिक स्टेट्स (1955) और
15 द बुद्ध एण्ड हिज धम्म (1957)

आर्थिक विचार

अम्बेडकर अर्थशास्त्र के एक अच्छे विद्यार्थी थे। उन्होने अपनी एम ए का शोधपत्र प्राचीन भारतीय वाणिज्य (Ancient Indian Commerce) और एम एस सी (लन्दन) से ब्रिटिश भारत मे साम्राज्य पूँजी का प्रादेशिक विकेन्द्रीकरण (Provincial Decentralization of Imperial Finance in British India) तथा डी एस सी (D Sc) का शोध पत्र रूपये की समस्या (The Problems of the Rupee) प्राप्त की। उनका हिल्टन–यग आयोग क सम्मुख गवाही मे करैसी समस्या पर महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होने अपने विचार तत्कालीन समस्याओ जैसे भूमिहीन मजदूरो छोटी जोतो महार वतन (Mahar Watan) सामूहिक कृषि भूमिकर और जमीदारी प्रथा के उन्मूलन आदि पर व्यक्त किए। 1917 से 1956 तक लगभग चार दशको तक सभी राजनीतिक एव आर्थिक घटनाओ पर विचार व्यक्त किया।

परन्तु उनकी महत्वपूर्ण पुस्तको (The Evolution of Provincial Finance in *British India, and The Problem of the Rupee*') मे ही उनके *आर्थिक विचार* समाहित नही है इनके अतिरिक्त स्वतत्र श्रमिक पार्टी व अनुसूचित जाति परिसघ के घोषणापत्रो तथा उनके द्वारा भारतीय सविधान एव बजट भाषणो में भी व्यक्त किये गये है।

कई बार अनेक अवसरो पर अम्बेडकर ने भूमि सुधार खेती के प्रकार तथा औद्योगिकरण पर विचार व्यक्त किये है। उनका लक्ष्य अछूत भूमिहीन या छोटे किसानों को ऊपर उठाना था। वे यह महसूस करते थे कि अछूत भूमिहीन श्रमिको की समस्या का समाधान भारतीय कृषि समस्या या अधिक विस्तार मे भारतीय आर्थिक समस्या के निदान पर निर्भर है। उनके द्वारा व्यक्त किये गये आर्थिक विचारो का अध्ययन हम निम्नलिखित रूप मे कर सकते है –

कृषि व्यवस्था

भारत मे कृषि व्यवस्था की एक विलक्षण विशेषता है। यहाँ भू–स्वामित्व सम्पन्नता का ही मामला नहीं है बल्कि यह सामाजिक स्थिति का भी सूचक है। अम्बेडकर के अनुसार *भारतीय अर्थव्यवस्था के पिछडेपन का मूलभूत कारण भूमिव्यवस्था मे परिवर्तन में देरी है। उच्च जातियाँ ही सामान्यत कृषि भूमि के स्वामी रहे हैं* जो जमीदारो के नाम से जाने जाते हैं। मध्यम जातियाँ परम्परागत रूप से बटाई पर खेती करते हैं और निम्न जातियाँ भूमिहीन श्रमिक है। देश मे कृषि व्यवस्था बडे भू–स्वामियो के हाथ मे सामाजिक एव *आर्थिक लाभ प्राप्त करने का* एक मजबूत उपकरण है। गरीब ग्रामीणो एव भूमिहीन श्रमिकों का एक बडा भाग कृषि दासो जैसा जीवन जीने हेतु बाध्य है क्योकि कृषि जोतो का लोगो मे असमान वितरण व्याप्त है। परम्परागत ग्रामीण अर्थव्यवस्था जो कि कृषि पर निर्भर है ग्रामीण क्षेत्रो मे सामाजिक–आर्थिक समस्याओं का मूलभूत कारण है। आज भी बडे भूस्वामी अशिक्षितो और बेरोजगार लोगो का शोषण करते है।

अम्बेडकर भारतीय कृषि व्यवस्था से भलीभाँति परिचित थे जो कि वास्तव मे सामाजिक प्रतिबन्ध और आर्थिक शोषण का उपकरण है। अत इसके लिए उन्होंने भारतीय कृषि का राष्ट्रीयकरण सामूहिक खेती के साथ अपनाने का सुझाव दिया। वे चाहते थे कि ऐसी व्यवस्था हो जहॉ न भूस्वामी हो, न किरायेदार और न ही भूमिहीन श्रमिक हो। वे सभी की स्वतत्रता एव कल्याण चाहते थे। उनका विचार था कि भारत मे चकबदी या मुजारा कानून व्यर्थ हे। उससे कृषि मे समृद्धि नहीं आ सकती. केवल सामूहिक खेती बाडी ही अछूतो की सहायक हो सकती है। वे यह महसूस करते थे कि भूमिहीन श्रमिको का सहकारी खेती मे कोई उचित स्थान नही है।[8] अम्बेडकर चाहते थे कि कृषि का राज्य उद्योग के रूप मे निम्न प्रकार से सगठन बनाया जाय।[9]

(i) राज्य को भूमि प्राप्त कर उसे उचित आकार के खेतो मे विभाजित किया जाय और निम्न शर्तों पर खेती हेतु गॉवों को भूमि उपलब्ध करायी जाए (अ) फार्मो में 'सामूहिक कृषि' के रूप मे कृषि की जाय (ब) खेत सरकारी कानूनो एव दिशा–निर्देशो से जोते जाय और (स) काश्तकार आपस मे मिलकर हिस्सा बाटले, उससे पहले खेत पर हुए व्यय का भुगतान कर दिया जाय।

(ii) भूमि ग्रामीणो को बिना जातिगत भेदभाव के बाट दी जाय, जिसमे कोई भूस्वामी नही होगा, कोई बटाईदार नही होगा और न ही भूमिहीन श्रमिक होगा।

(iii) राज्य को सामूहिक फार्मों पर खेती करने के लिए पानी की पूर्ति, पशुपालन, बीज, खाद आदि हेतु वित्त उपलब्ध करवाये।

(iv) राज्य ऐसे फार्मों पर निम्नाकित कार्यों के लिए अधिकृत होगा–(अ) फार्म उत्पादन पर राज्य निम्न चार्ज ले सकता है। प्रथम भू लगान के एक अनुपात मे, द्वितीय, ऋणग्रधारी काश्तकारो से एक निश्चित अनुपात मे प्राप्ति ओर तृतीय पूँजीगत वस्तुओ का एक निश्चित अनुपात जिनकी पूर्ति फार्म पर राज्य ने की है। (ब) जो किसान खेती करने की शर्तों के विरुद्ध कार्य करे या राज्य द्वारा प्रदत्त खेती के साधनो के सर्वश्रेष्ठ उपयोग की जानबूझ कर अवहेलना करे या जो सामूहिक खेती की योजना के साथ विद्वेषपूर्ण व्यवहार करे उनके विरुद्ध दण्ड का प्रावधान होना चाहिए।[10]

डॉ अम्बेडकर भारत के औद्योगीकरण के पक्ष मे भी तर्क देते थे क्योकि यह देश की कृषि समस्याओं का सबसे बढिया उपचार है। वे चाहते थे कि कृषि का पुन सगठन हो। उनके विचार मे भारत मे छोटी एव अनार्थिक जातो से भारतीय कृषि बडी मात्रा मे पीडित हैं। वास्तव मे, उनके विचार मे कृषि औद्योगीकरण के लिए उपयोगी क्षेत्र हे और यह वास्तविक रूप मे सत्य सिद्ध भी हुआ है क्योंकि भारत की पचवर्षीय योजनाओ के योजना निर्माताओ ने अपनाया है। अम्बेडकर के अनुसार अमेरिका जैसे देशों मे भी कृषि से ही विकास कर औद्योगीकरण का मार्ग अपनाया है। अम्बेडकर की सन् 1918 मे प्रकाशित पुस्तक 'स्मॉल होल्डिग्स इन इण्डिया एण्ड देअर रेमेडीज' मे यह मत व्यक्त

किया था कि जब तक छोटी और बिखरी हुई जातने योग्य भूमि का विस्तार एव चकबन्दी नहीं होगी तब तक भारत के कृषि सुधार में प्रगति नहीं होगी। लेकिन उन्होंने यह भी लिखा है कि यह किसी चुनौती के भय के बिना कहा जा सकता है कि औद्योगीकरण छोटी–छोटी जातो के विस्तार का बढावा देगा और उनके विस्तार को भी सभव बनायेगा। हालाकि यह हो सकता है कि उससे चकबदी न आ पाये । यह एक विवादहीन तथ्य है कि जब तक भूमि पर अधिशुल्क लगा रहेगा तब तक चकबदी आसान नही हो पायेगी। अत चकबदी करने से पूर्व समस्त भारत मे औद्योगीकरण होना चाहिए।"

इस प्रकार अम्बेडकर ने कृषि सुधार को औद्योगीकरण के साथ जोडा ताकि ग्रामीण एव शहरी प्रगति मे एक प्रकार का सम्पर्क बना रहे। वास्तव में उन्होने कृषि एव उद्योग दोनो को एक दूसरे का पूरक क्षेत्र माना है। यही कारण है कि जो बात अम्बेडकर ने 1918 में कही उसे ही हमारे विशेषज्ञो ने 1950 के पश्चात स्वीकार कर यह महसूस किया कि भारत की आर्थिक प्रगति के लिए न केवल कृषि सुधार बल्कि साथ ही समूचे भारत मे औद्योगीकरण की भी परम आवश्यकता है।

अम्बेडकर ने 1928 मे बम्बई विधान परिषद मे प्रस्तुत बिल में यह भी माग की कि जो भूमि बटाईदारो के पास है वे उन्हे पूरे मालिये पर दी जाए और उनसे बेगार लेनी बद की जाये। उनका विचार था कि बटाईदारो को उजरत (मेहनताना) देने का काम इस प्रकार लापरवाही और निर्दयता के साथ भारतीय किसानो को न सौपा जाये क्योकि यह एक निर्दयी प्रथा है। उन्होने बटाई प्रथा की यह कहकर भी आलोचना की कि बटाई के बाद मे महार जैसे भूमिहीन काश्तकारो को इतनी कम आय प्राप्त होती है जिससे वे अपना पेट भी नही भर सकते हैं।

अम्बेडकर के किसानो के हित सम्बन्धी विचार उनके नेतृत्व में 15 जनवरी 1938 में मुख्यमत्री को दिए ज्ञापन मे निहित हैं जिसमे प्रमुख मागें निम्न प्रकार से थीं —

(1) खेत में काम करने वाले मजदूरो का न्यूनतम वेतन निश्चित किया जाय।

(2) चूँकि किसान का लगान माफ कर दिया गया है इसलिए ठेके की राशि भी माफ की जाय। खेती प्रणाली या ईमानदार सिस्टम मुआवजे के बिना समाप्त किया जाए। चूँकि रजवाडाशाही आर्थिक रूप से हानिकारक है अत शीघ्रातिशीघ्र इसे समाप्त कर देना चाहिए।

(3) छोटे किसानो को सिचाई आदि की वसूली मे आधी रकम की छूट दे दी जाए।

कृषि श्रमिक–अम्बेडकर के अनुसार जो सुविधाएँ औद्योगिक श्रमिक को दी जाती है। वही सुविधाएँ कृषि श्रमिक को दी जानी चाहिए। क्योकि कृषि श्रम भी इससे अलग नहीं है। उनके अनुसार कार्य की दशाएँ प्रावधायी निधि नियोक्ता के दायित्व कार्य की क्षतिपूर्ति स्वास्थ्य बीमा पेशन आदि के लाभ सभी प्रकार के श्रम को प्राप्त होने चाहिए। चाहे वह औद्योगिक श्रमिक हो या कृषि श्रमिक।"

भूमि का स्वामित्व–अम्बेडकर ने 17 मार्च 1928 को बम्बई विधान परिषद मे एक बिल पेश किया जिसका मुख्य उद्देश्य 1874 के बम्बई मौरुली कानून मे सशोधन करना था, यह कानून महारो से बेगार लेने की आज्ञा देता था। अम्बेडकर ने उनकी बेकारी समाप्त करने और उनके स्वामित्व की भूमि उन्हे दिलवाने हेतु इस बिल को पेश किया। उनकी माग थी कि जो भूमि बटाईदारो के पास है वे उन्हे पूरे मालिये पर दी जाय और उनसे बेगार लेनी बद की जाये। परन्तु उनका यह बिल पास नही हो सका और 24 जुलाई 1929 को अम्बेडकर को यह बिल वापस लेना पडा।

कृषि कर एव सम्पत्ति कर–अम्बेडकर के अनुसार मालिया और आयकर लगाते समय सरकार यह भूल जाती है कि आयकर केवल उसी समय देना पडता है, जब आय हो परन्तु भूमि का मालिया हर किसी को देना पडता है, चाहे वह छोटा किसान हो अथवा जागीरदार। चाहे वह एक एकड का ही स्वामी हो तो भी उसे जागीरदार के बराबर मालिया देना पडता है, फसल हो या न हो परन्तु निर्धन को तो मालिया देना ही पडता है जिसे अन्होने अन्यायपूर्ण बताया।[9]

राज्यसभा मे 1[illegible] सितम्बर 1953 को सम्पत्ति कर पर बोलते हुए अम्बेडकर ने कहा कि 'सम्पत्ति कर लेने पर जितना खर्च आयेगा उतनी इससे आय नही हो सकेगी। इसलिए भारत को यूरोप की अन्धी नकल नहीं करनी चाहिए। इससे पहले कि भारत यह कानून लागू करे, भारत को यूरोपीय लोगो के सिद्धान्तो पर तो आ जाने दो।' उन्होने आगे कहा कि यदि हिन्दुस्तान एक कम्यूनिस्ट देश होता तो बात अलग थी। उनको इस बात मे कोई सदेह नहीं कि भारत शीघ्र ही एक कम्यूनिस्ट देश हो जायेगा। परन्तु जब तक भारत रूसी प्रणाली नही अपना लेता उस समय तक उसको इस तरह के काम नहीं करने चाहिए जिसके साथ धन की वृद्धि मे विघ्न पैदा हो। उन्होने कहा कि 'वह सम्पत्ति कर बिल के विरोधी नही हैं, परन्तु वह यह अवश्य चाहते हैं कि धनिको जिनसे भारत मे लोग घृणा करते है तथा धन के बीच अतर देखना चाहते हैं। इसलिए वह पूँजीपतियो की वकालत नही कर रहे।'[10]

औद्योगीकरण

अम्बेडकर सभी उद्योगो के राष्ट्रीयकरण के पक्ष मे नही थे वे केवल महत्वपूर्ण उद्योगो का ही स्वामित्व ओर कार्य प्रणाली राज्य के अधीन करने के पक्ष मे थे। वे यह भी सुझाव देते थे कि जो उद्योग महत्त्वपूर्ण उद्योग नही हैं परन्तु मूल उद्योग हैं उन्हे या तो राज्य चलाये या राज्य द्वारा स्थापित निगम सचालित करे।[11] उनका विचार था कि वास्तव मे मूलभूत उद्योगो का राष्ट्रीयकरण भारतीय समाज के गरीबों ओर कमजोर वर्गो के हितो के सवर्द्धन व सुरक्षा के लिए सहायक है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि डॉ अम्बेडकर ने कभी भी निजी क्षेत्र का विरोध नही किया। उनका यह निश्चित मत था कि मूलभूत उद्योगो के अतिरिक्त उत्पादन के कुछ क्षेत्र निजी उद्यमियो के स्वामित्व मे

होने चाहिए परन्तु साथ ही साथ उन्होने इस बात पर भी जोर दिया कि निजी उद्यमियो को समाज के वृहत्त हितो का ध्यान रखना होगा। सरकार को स्वय यह निश्चित करना होगा कि कौन से उद्योग राज्य के द्वारा चलाये जाय या निजी क्षेत्र के द्वारा या निजी क्षेत्र तथा राज्य दोनो के नियत्रण मे हो। डॉ अम्बेडकर ने यह महसूस किया कि निजी क्षेत्र अकेला लाभ अधिकतम करण के उद्देश्य पर सचालित होने के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था मे तीव्र औद्योगीकरण की गति प्रदान करने मे सहायक सिद्ध नही हो सकता। डॉ अम्बेडकर का यह मानना था कि देश की भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था गरीबों का हित नही कर सकती क्योकि पूँजीपति तथा जमीदार पिछडो का शोषण करते हैं। उन्होंने यह भी माना कि यदि निजी उद्योगपति राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का औद्योगीकरण का प्रयत्न करते हैं तो इससे सम्पत्ति वितरण की असमानताएं बढेगी मजदूरो का शोषण बढेगा तथा इसके साथ–साथ पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की अन्य बुराईया जन्म लेगी। इसलिए डॉ अम्बेडकर ने निजी क्षेत्र के लाभ पर नियत्रण तथा बड़े औद्योगिक घराना के एकाधिकार को तोड़ने के लिए उद्योगो के आशिक राष्ट्रीयकरण की वकालत की। ऐसा सोचते समय उनके मस्तिष्क म श्रमिको की दयनीय स्थिति सामने थी तथा वे औद्योगीकरण एव खेती का पुनर्गठन कर श्रमिकों के जीवन स्तर मे सुधार व गरीब तथा अल्पसख्यको की सहायतार्थ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को तीव्र गति से आगे बढना चाहते थे।

अनुसूचित जाति परिसघ के 1952 के घोषणापत्र मे अम्बेडकर का सुझाव था कि उद्योगो मे राज्य का ही स्वामित्व हो और राज्य को ही उन्हे सचालित करना चाहिए। अम्बेडकर का विचार था कि जमीन के टुकडे–टुकडे होना और उन पर जनसख्या के दबाव के कारण ही कृषक आज गरीब है। इसका समाधान यह है कि **पुराने उद्योगों को बहाल किया जाए तथा नये उद्योग चालू किए जाए।** लोगो की योग्यता एव उत्पादन बढाने के लिए उन्हे **तकनीकी शिक्षा** दी जाये। जहॉ आवश्यकता हो वहाँ उद्योग सरकार की मलकीयत हो या सरकार के प्रबध अधीन चलाए जाए। अम्बेडकर द्वारा गठित पार्टी आजाद मजदूर पार्टी (1939) का विचार था कि मजदूरो की भर्ती नियुक्ति और तरक्की तथा उनका कार्य समय निश्चित करने उचित पारिश्रमिक सवैतनिक अवकाश एव साफ सुथरे निवास का प्रबध हो।

15 सितम्बर 1938 को बम्बई सरकार द्वारा प्रस्तुत औद्योगिक बिल को अम्बेडकर ने मजदूरों के अधिकारो पर कुठाराघात करने वाला बताया जिसमे हडताल को दण्डित करना तथा औद्योगिक विवादो मे समझौते को बाध्यकारी बनाना था। अम्बेडकर का कहना थ कि दस बीस या दो सौ जितने भी लोग चाहे एक साथ मिलकर हडताल करें कानूनी तौर पर कोई अन्तर नही पडता। सत्ताधारी टोले की ओर से यह कहना कि मजदूरो द्वारा सामूहिक हडताल षडयत्र है गलत और निराधर है। मालिक मजदूर सबधो के बारे मे अम्बेडकर के निम्न विचार रहे–[12]

(i) हडताल को दण्डित करना मजदूरो को गुलामी की अवस्था की ओर धकेलना है।

(ii) समझौते की बातचीत हडताल रोकने का बहाना नही होना चाहिए। उनकी मान्यता थी कि जो सरकार मजदूरो के मतो से निर्वाचित होती है, उसे मजदूरो की भलाई एव हितो का कार्य ही करना चाहिए हानि पहुँचाने का नही।

(iii) उद्योगो मे शाति के लिए मजदूर को मालिक की जजीर से नही बाधा जाना चाहिए। उनके शब्दो में "मैं ऐसी शाति नही चाहता, यह तो उन लोगों की शाति है, जिनके पेट भरे हुए हैं, और जिनके बटन उनकी तोदो को छूते हैं हमे ऐसी शाति नही चाहिए।"

अम्बेडकर ने भारत के तेजी के साथ औद्योगीकरण के लिए राज–समाजवाद को अत्यावश्यक माना है। उनके मत मे वैयक्तिक व्यापार और उद्योग ऐसा नही कर सकते। अम्बेडकर के औद्योगीकरण सम्बन्धी विचार उनकी पुस्तक 'स्टेट्स एण्ड मिनारिटीज' मे इस प्रकार से दिए हैं–

(i) जो उद्योग साधन उद्योग हैं अथवा जो साधन उद्योग घोषित कर दिए जाए वे राज्य की सम्पत्ति होगे और सरकार की ओर से चलाये जायेगे।

(ii) जो उद्योग साधन उद्योग नही हैं परन्तु मूल उद्योग हैं वे राज्य की सम्पत्ति होगे और उन्हें सरकार चलायेगी।

(iii) बीमा राज्य के एकाधिकार मे होगा और प्रत्येक नागरिक को विवश किया जायेगा कि वह अपने पारिश्रमिक के अनुसार, जैसे कि कानून द्वारा निश्चित किया जाये, जीवन बीमा करवायेगा।

(iv) कृषि राज्य उद्योग होगा।

(v) सरकार वैयक्तिक पुरुषों से ऐसे उद्योग बीमे और कृषि भूमियो के समूचे अधिकार प्राप्त कर लेगी।

उन्होने आगे लिखा है कि वैयक्तिक स्वतत्रता और समाज के ढाचे की रूपरेखा के मध्य कइयो को कोई सबध दृष्टिगोचर नही होता, परन्तु इन दोनो मे घनिष्ट सबध हैं। यदि निम्नलिखित विचारों को समक्ष रखा जाये तो यह भली भाँति दृष्टिगत हो जाता है–

(i) व्यक्ति स्वय मे एक अत है।

(ii) व्यक्ति के कुछ ऐसे उससे पृथक न किए जाने वाले अधिकार हैं, जिन्हे विधान को अनिवार्यत गारटी करना चाहिए।

(iii) व्यक्ति को किसी सुविधा की प्राप्ति के कारण अपने किसी मौलिक अधिकार को छोडने के लिए विवश नही किया जाना चाहिए।

(iv) राज्य वैयक्तिक पुरुषो को ऐसी शक्ति प्रदान नहीं करेगा, जिससे वह दूसरो पर शासन करे।

अम्बेडकर के उपर्युक्त विचारो से यह मत व्यक्त होता है कि वे उद्योगों के निजी हाथो मे सौपे जाने के विरुद्ध थे क्योकि इससे ऐसी ही असमानताएँ उत्पन्न होगी जैसे निजी पूँजीवाद ने यूरोप मे उत्पन्न की है।

अम्बेडकर ने मजदूरो के सगठन और उनकी भलाई को एक निश्चित और ऐतिहासिक दिशा दी। इस सबध मे उनके विचार उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए बिलो एव प्रयासो से प्रगट होते हैं।

(i) सामाजिक सुरक्षा—अम्बेडकर के अनुसार मजदूरो को अतिनिर्दयी शर्तों और परिस्थितिया मे काम करने को विवश हाना पडता है। न तो उद्योगो म उनका कोई निश्चित वेतन था और न ही कोई सेवा शर्तें निर्धारित थी। उन्होने सेट्रल असैम्बली मे 1946 को एक बिल पेश किया जो 1948 मे **न्यूनतम मजदूरी अधिनियम** बना जिससे मजदूरो की सामाजिक सुरक्षा बढी।

(ii) मजदूर सगठन—अम्बेडकर ने ट्रेड यूनियन कानून मे सशोधन करके उन सभी यूनियनो को मान्यता देना लाजमी ठहराया जो बतौर एक पजीकृत यूनियन के रूप मे एक वर्ष की अवधि से काम कर रही हो और अपनी मान्यता के लिए लिखित प्रार्थनापत्र पेश करे। अम्बेडकर के लेबर मेम्बर बनने से पूर्व यूनियनो को यह अधिकार नही था। इन्हीं के प्रयत्नो से 1946 मे 'लेबर ब्यूरो' अर्थात मजदूर कार्यालय स्थापित किया। अम्बेडकर के प्रयासो का मुख्य उद्देश्य मजदूरो की दशा उनकी समस्याओ और माँगो की जानकारी प्राप्त करना था जिससे समाज एव सरकार मजदूरो के प्रति अपनी जिम्मेदारी को निभा सके एव अपने कर्त्तव्य का पालन करने हेतु विवश किया जा सके।

(iii) बीमा योजना—अम्बेडकर का विचार था कि बीमा का राष्ट्रीयकरण केवल लोगो की भलाई ही नही करता अपितु राज्य की अर्थव्यवस्था के लिए भी लाभदायक है। अम्बेडकर दो कारणो से बीमा को राज्य के एकाधिकार मे सोपना चाहते थे— (i) राष्ट्रीयकृत बीमा निजी बीमा से अधिक सुरक्षा प्रदान करता है। क्योकि सरकार को ही बीमा राशि का अतिम भुगतान करना पडेगा (ii) इससे राज्य को आर्थिक नियोजन के वित्त पोषण के लिए आवश्यक साधनो की प्राप्ति होगी जिसकी अनुपस्थिति मे वित्त मुद्रा बाजार से ऊँची ब्याज दर पर उधार लेना पडेगा डॉ अम्बेडकर ने राज्य बीमा को व्यक्ति एव राज्य दोना के हित मे माना है। उनका यह निश्चित मत है कि बीमा पर राज्य का एकाधिकार होना चाहिए तथा राज्य का प्रत्येक प्रोढ नागरिक को जीवन बीमा पालिसी लेने के लिए बाध्य करना चाहिए।

अम्बेडकर ने मार्च 1943 मे औद्योगिक मजदूरा के लिए **बीमारी बीमा योजना** तैयार करने के उद्देश्य से एक तीन सदस्यीय समिति नियुक्त थी। प्रो बी पी अदरकर इसमे विशेष अधिकारी थे। अम्बेडकर की इस बीमा याजना पर टिप्पणी करते हुए तत्कालीन वायसराय लार्ड ववल ने सेक्रट्री आफ स्टट को निम्न शब्दो म लिखा था

"डॉ. अम्बेडकर की मजदूरो के लिए सामाजिक सुरक्षा की योजना से मैं पूर्ण रूप से सहमत हूँ। किन्तु उसने विभिन्न विभागो की अनुमति प्राप्त नही की है और यह भी स्पष्ट नहीं है कि क्या प्रादेशिक सरकारे अम्बेडकर की योजना को विशेषकर इसके चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान करने वाले भाग को लागू करने के लिए प्रशासनिक प्रबध कर सकेगी ? तो भी हम आगामी बजट अधिवेशन मे बिल पेश करके शुरुआत कर सकते हैं, और इसे लोकमत के लिए परिचलित कर सकते हैं।[17]

(iv) खानों में सुधार–अम्बेडकर इस बात से दुखी थे कि कोयला खानो मे मजदूरों की दशा पशुओं से भी बुरी थी। उनसे जानवरो की भाति काम लिया जाता था किन्तु उनको वेतन नाम मात्र का ही मिलता था, उनकी सुरक्षा का कोई सतोषजनक प्रबध नहीं था। यहाँ तक कि छोटे–छोटे औजार भी इगलैंड से मगवाये जाते थे। अम्बेडकर ने खान मजदूरो की भलाई, उनकी सुरक्षा ओर उन्हे उचित वेतन देने सम्बन्धी कई मौलिक और प्रभावशाली कदम उठाये। अम्बेडकर ने खान मजदूरो के भूमिगत काम पर लगे प्रतिबध पर कठोरता से अमल करने पर जोर दिया।

स्त्री मजदूरो को वेतन के साथ प्रसूति छुट्टियो की सुविधा भी बाबा साहब ने ही दिलाई।

(v) सफाई मजदूर–अम्बेडकर सफाई मज़दूरो की हालत से परिचित थे। उन्हें हडताल करना तो दूर यदि एक सप्ताह तक काम पर नहीं आये तो उन्हें 15 दिनो तक जेल भेजा जा सकता था। दिल्ली नगरपालिका मे भी ऐसा ही नियम प्रचलित था। अम्बेडकर ने इन्हे समाप्त करवाया और दिल्ली की सर्वप्रथम सफाई मजदूर संगठन म्यून्सिपल कामगार यूनियन भी अम्बेडकर के नेतृत्व में स्थापित हुए। सक्षेप मे इन मजदूरों को जो राहत एव सुविधाएँ मिली हैं ये अम्बेडकर के प्रयासो से ही प्राप्त हुई हैं।

नशाबंदी–नशाबदी की समस्या पर अम्बेडकर के विचार है कि "नशाबदी की समस्या की सफलता या विफलता इस बात पर निर्भर है कि आप इस समस्या का आर्थिक समाधान निकाल सकते हो कि नही? अम्बेडकर ने कहा कि राष्ट्र की उन्नति आत्मकेन्द्रित और राष्ट्र को तबाह करने वाले प्रभावो को नष्ट करके अधिक प्राप्त की जा सकती है। 1927 मे अम्बेडकर ने बम्बई असेम्बली मे सरकार की मद्यनिषेध नीति पर बोलते हुए यह तर्क दिया कि नशाबदी की समस्या राज्य की वित्तीय स्थिति का प्रश्न था और यदि मद्य निषेध पूर्णत ईमानदारी से लागू किया जाय तो यह एक भारी लागत का मामला हो सकता है। फिर भी लोग सस्ती दरो पर उपलब्ध अवैध शराब पीना बद नहीं करेगे। डॉ. अम्बेडकर का मत था कि यदि सरकार वास्तव मे नशाबदी को लागू करना चाहती है तो इसे टैरिफ दरों को नियत्रित करना चाहिए। उन्होने यह भी बताया कि यद्यपि सरकार वैध शराब के उपभोग को नियत्रित करने मे सफल हो सकती है परन्तु इससे अवैध शराब के उपभोग वृद्धि मे प्रत्यक्ष प्रोत्साहन मिलेगा। उनका विचार था कि किसी

भी सरकार को नशाबदी नीति के क्रियान्वयन का तब तक वायदा नहीं करना चाहिए जब तक कि वह होने वाली आय की सभावित हानि की व्यवस्था नही कर ले। इसलिए डॉ अम्बेडकर का मत था कि सरकार को इस सम्बन्ध मे उदार नीति अपनानी चाहिए तथा इसे जनता की इच्छा पर छोड देना चाहिए कि वह अवैध शराब का सेवन नहीं करे। यदि सरकार स्वय शराब का उत्पादन हैल्थ टॉनिक के रूप मे करती है तथा इसकी आपूर्ति सस्ती दरो पर करती है तो जनता अवैध शराब के लिए नही जायेगी तथा सरकार का नशाबदी नीति के क्रियान्वयन पर होने वाला लाखो रूपये का व्यय भी बच जायेगा।

बेगार—अम्बेडकर ने 19 मार्च 1928 से बेगार के विरुद्ध सघर्ष आरभ किया। उन्होने उस दिन बम्बई विधान परिषद में एक बिल पेश किया जिसका भाव 1874 के बम्बई मौरुली जमीदारी कानून मे सशोधन करना था। यह कानून महारो से सरकारी कामो के लिए बेगार लेने की आज्ञा देता था। अम्बेडकर ने बेगार रूपी दासता की जजीरे तोड़ने के लिए यह बिल पेश किया। उन्होने बम्बई असेम्बली मे कहा कि यह एक निर्दयी प्रथा है यह एक ऐसी प्रणाली है जिसमे कोई न्याय नही। यदि सरकार इन लोगो से काम करवाना चाहती है तो सरकार इन्हे पूरी उजरत देने का प्रबन्ध भी करे। अम्बेडकर ने माग की कि जो भूमिया बटाईदारो के पास है। वे उन्हे पूरे मालिये पर दी जाये और उनसे बेगार लेनी बद की जाय। उनकी मान्यता थी कि बेगार महारो की उन्नति मे जबरदस्त रुकावट है अत इसे समाप्त किया जाना चाहिए।

गरीबी एव बेरोजगारी—अम्बेडकर का कहना था कि कानून सभी सासारिक प्रसन्नताओं का घर है आप कानून गठन की शक्ति पर अधिकार करो। इसलिए आपका कर्त्तव्य है कि पूजापाठ तप व्रतो पर समय नष्ट करने की अपेक्षा कानून गठन की शक्ति प्राप्त करने का उद्यम करो। इसी से आपकी भुखमरी समाप्त होगी।

उन्होने आगे लिखा है कि विधानमण्डल का कर्त्तव्य है कि वह कपडा मकान शिक्षा औषधि और आजीविका के साधन प्रदान करे।

उन्होने यह स्वीकार किया कि जमीन के टुकडे–टुकडे होना और उन पर जनसख्या के दबाव के कारण ही कृषक गरीब है। इसका समाधान यह है कि पुराने उद्योगो को बहाल किया जाय और नये उद्योग चालू किये जाये। उन्हे तकनीकी शिक्षा प्रदान की जाय।

स्पष्ट है कि अम्बेडकर गरीबी एव बेरोजगारी समाप्त करने के लिए कृषि क्षत्र मे सामूहिक कृषि को अपनाने तथा उद्योग क्षेत्र मे नये उद्योग लगाने एव पुराने उद्योगो को बहाल करना मुख्य उपचार मानते थे।

उन्होने बताया कि किसानो और मजदूरो को बिना किसी जाति पाति के भेद के एक मजदूर सगठन कायम करना चाहिए और विधानसभाओ मे योग्य वक्ता चुनकर भेजना चाहिए। यदि वह ऐसा करेगे तो वह देश के लिए लाखो मन अनाज पैदा करेगे और करोडो गज कपडा बुन सकेगे। आप न नगे रहेग और न ही भूखे।

आर्थिक समानता एव रहन–सहन का स्तर–अम्बेडकर ने कहा है कि 'पूँजीपति जो निर्धन जनता को कुचल रहे हैं उनके विरुद्ध साझा मोर्चा तैयार करने की आवश्यकता है। आर्थिक स्वतत्रता प्राप्त करने का समय आ गया है।' हमे एक बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि इससे कुछ न कुछ प्राप्त ही होगा। इसके लिए हमें प्रत्येक बलिदान के लिए तैयार रहना होगा और शेरो की भांति गर्ज कर आगे बढना होगा।

आर्थिक असमानता के बारे मे उन्होने लिखा है कि यह ठीक है कि दुनिया मे हर जगह असमानता है, परन्तु यह परिस्थितियो का कारण है। इसे कही भी धार्मिक अवलम्ब नही है। परन्तु भारत मे न सिर्फ असमानता ही है वरन यहाँ के लोग समानता को नापसद भी करते है। अत जब तक समाज मे आर्थिक समानता के साथ सामाजिक समानता स्थापित नही हो जाती देश का सम्पूर्ण विकास नही हो सकता।

अम्बेडकर के इस सबध मे यह भी विचार था कि बम्बई और मद्रास मे गैर ब्राह्मण पार्टियो का पतन इसलिए हुआ कि उन्होने अपने आदमियो को सरकारी नौकरी देने के अतिरिक्त कुछ नही किया। उनकी न तो कोई उदार नीति थी और न ही उन्होने मजदूरो और किसानो की स्थिति सुधारने का प्रयत्न किया। जिन लोगो को गैर ब्राह्मण पार्टियो ने सरकारी नौकरी दी वे भी गद्दी पर बैठते ही अपने वर्ग को भूल गये और दूसरो की तरह उद्दण्ड बन गये तथा उनके बीच सुस्ती आ गयी।"

मार्क्सवाद से असहमति

अम्बेडकर ने 15 जनवरी, 1938 मे एक किसानो की जनसभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि "जिन कम्यूनिस्ट नेताओं ने कम्यूनिज्म संबंधी पुस्तकें पढीं हैं, उससे भी कहीं अधिक पुस्तके मैंने पढीं हैं। उनका मत है कि कम्यूनिस्ट स्थिति की वास्तविकता को नही पहचानते।" उन्होंने कहा कि "ससार में दो ही वर्ग हैं, एक वर्ग वह है–जिनके पास सब कुछ है, और दूसरा वर्ग वह है जिसके पास कुछ नहीं। एक धनी वर्ग है तो दूसरा निर्धन। एक लुटेरा वर्ग है तो दूसरा लूटा जाने वाला। तीसरा मध्यम वर्ग बहुत कम है।" उन्होंने किसानों और मजदूरों को सम्बोधित करते हुए कहा कि 'यदि वह अपनी निर्धनता के कारणों पर विचार करे तो उनको पता चल जायेगा कि उनकी बरबादी का कारण केवल इस लुटेरे वर्ग की खुशहाली और अमीरी ही है।"

मार्क्सवाद समाज मे समता लाने की एक विधि अथवा वैज्ञानिक विचारधारा है। यह गरीबो के हित मे एक ऐसा आदोलन है जिसमे पूँजीवादी व्यवस्था का विनाश निहित है। फिर भी अम्बेडकर और मार्क्सवाद के बीच कुछ मौलिक मतभेद हैं इसलिए उन्होने मार्क्सवादी जीव पद्धति के प्रति अपनी स्पष्ट असहमति प्रगट की। उनका विचार था कि चितन की स्वतत्रता के अधिकार के लिए किसी भी 'वाद' मे आदमी को जकडा न जाए। उनकी जीवन दृष्टि मे यह मान्यता है कि परिस्थितियो और सामयिक आवश्यकताओ के अनुसार स्वतत्र चिन्तन की प्रेरणा पर रोक लगाना आदमी के व्यक्तित्व की हत्या करने

के समान है। इस प्रकार वैयक्तिक स्वतत्रता की दृष्टि से अम्बेडकर ने मार्क्सवादी जीवन पद्धति को स्वीकार नही किया। उनकी राय मे किसी भी समझदार व्यक्ति या निष्पक्ष बुद्धिजीवी को चाहिए कि वह मार्क्सवाद गाँधीवाद या किसी अन्य सिद्धान्त के महत्व को मानवहित उपयोगिता और विकास की दृष्टि से परखे। किसी भी विचारधारा का पूर्व मूल्याकन करना अनिवार्य है।

अम्बेडकर यह मानते थे कि भारत मे गरीबी है। पर उसका एक मात्र उपचार मार्क्सवाद नही है भारत जैसे देश मे जहाँ की समाज व्यवस्था रूस तथा चीन से भिन्न है। भारत मे मार्क्सवादी नेता लगभग ऊँची या ब्राह्मण जाति से है जिन्होने यहाँ की सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप मार्क्सवाद की कभी भी व्याख्या नही की। अम्बेडकर ने कहा है कि *यदि कार्लमार्क्स भारत मे बैठ कर दास केपिटल की रचना करता तो वह* उसे दूसरे ढग से लिखता।[15] यहाँ के मार्क्सवादी भारतीय समाज व्यवस्था पर विचार किए बिना ही साम्यवादी समाज की स्थापना करना चाहते हैं जो उनकी विचार प्रणाली का गभीर दोष है।

अम्बेडकर का एक और मौलिक मतभेद मार्क्सवादियो के साथ था। उन्हे तानाशाही कतई पसद नहीं थी क्योकि तानाशाही मे सामान्य जनता का विकास रूक जाता है। उन्हे खाने के लिए रोटी और रहने के लिए मकान तो मिल सकता है पर जनसाधारण के स्वतत्र सोचने समझने और उसकी अभिव्यक्ति पर कडा प्रतिबध लग जाता है। पिजरे मे बद होने के बजाय धन के अभाव मे स्वतत्रतापूर्वक रहना डॉ अम्बेडकर को कही *अधिक पसद था। मार्क्सवादी व्यवस्था मे कोई भी व्यक्ति ऐसा स्वतत्र चितन नही कर* सकता जो साम्यवादी नीति के विरुद्ध अथवा उसकी आलोचना करने वाला हो। उन्ही के शब्दो मे मैं ऐसी व्यवस्था मे नहीं जी सकता। रोटी खाकर जीना ही मनुष्य का चरम *लक्ष्य नही है। मै पिगफिलॉसफी मे विश्वास नही रखता कि खाओ पीओ और पशुओ* की भाति इन्द्रिय तृप्ति करके मर जाओ। मै मानव प्राणी को मननशील अर्थात सोचने ओर समझने वाला प्राणी समझता हूँ। गरीबी और अमीरी के भेद को मै प्रजातात्रिक ढग से दूर करना चाहता हूँ। *ससार की सबसे बेहतर राज पद्धति प्रजातात्रिक प्रणाली है।* मेरा इसलिए ही कम्यूनिस्टो से यह बडा भारी मतभेद है।[16]

स्पष्टत अम्बेडकर का राजनीतिक खूनी क्राति या विप्लव मे विश्वास नही था। वह प्रजातात्रिक राज प्रणाली से ही राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक सुधार के पक्षपाती थे जबकि मार्क्सवादी लोग मूलत राजनीतिक क्राति को ही लेकर चलते है। डॉ साहब की मान्यता थी कि यदि भारत मे कभी कम्यूनिस्ट लोग क्राति द्वारा सत्ता हथियाने मे सफल हो गये तो दलितो को क्या मिलेगा? उन्हे तो जहाँ वे हैं वही रहना पडेगा। क्योकि क्राति के बाद भी प्रशासनिक मशीनरी सना एव श्रमिको की शक्ति मे कोई परिवर्तन नही होने से दलितो की स्थिति मे कोई भी परिवर्तन नही होगा। दलित जो सडके साफ करते है गदगी उठाते हे खेतो मे मजदूरी का काम करते हे छोटी मोटी दस्तकारी का कार्य

करते हैं, वे वही उलझे रहेंगे। उन्हें रोटी, कपड़ा और मकान जरूर मिल जायेगा परन्तु प्रशासन एव सेना मे स्थान नहीं मिल सकेगा। अम्बेडकर के शब्दो मे "कम्युनिस्ट शासन मे आज का अछूत और पिछड़ा वर्ग समाज मे तीसरे दर्जे पर ही रहेगा और वर्ण व्यवस्था के अनुयायी सवर्ण लोगो के हाथो मे ही शासनाधिकार सत्ता बनी रहेगी। भले ही कम्यूनिस्ट राज में इस तीसरी श्रेणी वालो से छुआछूत न रहे, किन्तु इन्हें समाज की सीढ़ी के सबसे निचले डण्डे पर ही रहना पड़ेगा और ऊपर वाले डण्डे पुराने सवर्णो के कदमो से नीचे रहेगे।"[17]

अम्बेडकर की मान्यता थी कि भारत मे साम्यवाद वर्तमान परिस्थितियो मे पूर्णत स्थापित करना असम्भव होगा क्योंकि भारतीय साम्यवादी नेता अपने पितरों का तर्पण करते हैं। श्राद्ध मे विश्वास करते हैं, माथे पर धार्मिक तिलक या चिन्ह लगाते हैं और उपनामो के रूप मे जातिगत पदो का प्रयोग करते हैं। ये सभी बाते मूल मार्क्सवाद के विरुद्ध हैं।

उनका विचार है कि भारत मे साम्यवादी नेता आर्थिक–राजनीतिक सत्ता हथियाने का आह्वान तो कर सकते हैं और इसमे उन्हे सफलता भी मिल सकती है, परन्तु वे जातिभेद समाप्त नही कर सकते। अम्बेडकर ने सामाजिक समीक्षा के आधार पर मार्क्सवाद का खण्डन किया और कहा कि मार्क्सवाद देशकाल के अनुसार ही उपयोगी हो सकता है। वह कोई सार्वभौमिक उपाय नहीं है जो सब परिस्थितियों में अपने आप लागू हो जाये। धर्म के उपयोग को लेकर भी डॉ अम्बेडकर का मार्क्सवाद के साथ गहरा मतभेद था। मार्क्सवादी जीवन पद्धति मे धर्म को कोई स्थान नहीं है वे धर्म को एक अफीम की सज्ञा देते हैं। जो मनुष्य को वास्तविकता से पृथक कर देती है। धर्म जीवन में अनावश्यक है, क्योंकि वह शोषणवादी प्रवृत्तियों को जन्म देता है।

परन्तु अम्बेडकर ने इस मत को कभी भी स्वीकार नहीं किया उनके अनुसार धर्म मानव जीवन का एक अंग है। वह सामाजिक प्रतिष्ठा तथा वैयक्तिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त करता है। धर्म मानव व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। मनुष्य केवल रोटी खाकर ही नहीं जीता उसके बुद्धि भी है जिसे आध्यात्मिक खुराक की आवश्यकता पड़ती है, जिसकी पूर्ति धर्म द्वारा ही होती है। परन्तु वे धर्म के नाम पर पाखण्ड तथा अधविश्वास कतई पसद नही करते थे। उनके धर्म की धारणा मानवतावादी थी। जिसकी प्रमुख भूमिका सामाजिक स्तर पर ही सभय है।

अम्बेडकर के मत मे दुनिया मे गरीबी है और सदैव रहेगी। रूस मे भी गरीबी है लेकिन गरीबी मिटाने के लिए मानव की स्वतत्रता का बलिदान करना उचित नहीं है। जहाँ तक सम्पत्ति के अधिकार का प्रश्न है, मार्क्सवाद उसे राज्य के कानून द्वारा समाप्त करना चाहता है, क्योकि निजी सम्पत्ति सामाजिक और आर्थिक शोषण का कारण है। परन्तु अम्बेडकर के अनुसार बौद्ध धर्म मे भी निजी सम्पत्ति को सामाजिक बुराई माना है पर बुद्ध ने निजी सम्पत्ति न रखने के अधिकार को केवल भिक्षु सघ तक ही सीमित रखा है। इस प्रकार अम्बेडकर ने मार्क्सवाद की तुलना में बुद्धवादी जीवन पद्धति को दलितो

के लिए कही अधिक अच्छा समझा। बुद्ध मार्ग मे न केवल समता तथा बधुत्व है बल्कि स्वतत्रता भी है जो मार्क्सवादी जीवनपद्धति मे नही मिलती।

निष्कर्ष रूप मे अम्बेडकर ने मार्क्सवाद के आर्थिक सामाजिक एव राजनीतिक विचारो को पूर्णत स्वीकार नही किया वे श्रमिको की सशस्त्र क्रान्ति से क्रान्ति लाना कतई पसद नही करते थे। अम्बेडकर ने यह स्पष्ट कहा था कि रूस में साम्यवाद दबाव एव डण्डे के सहारे टिका हुआ है और जब तानाशाही का जाल वहाँ ढीला होगा तब साम्यवादी व्यवस्था बदल जायेगी। उनकी भविष्यवाणी सही सिद्ध हुई। आज साम्यवाद को रूसी लोगों एव नेताओं ने दफनाकर पँजीवादी व्यवस्था को अपना लिया है। वहाँ की जनता ने उसे मन से कभी भी स्वीकार नहीं किया। जैसे ही वहाँ स्वतत्रता और जनतत्र का वातावरण उद्भूत हुआ। जनता ने साम्यवादी जामा उतार फेंका।[1]

राज्य समाजवाद–अम्बेडकर यह चाहते थे कि भारत मे राज्य गरीबो एव कमजोर वर्गों के आर्थिक हितो का सरक्षक हो। अम्बेडकर का इस आर्थिक दर्शन के पीछे मुख्य उद्देश्य यह था कि लोगो के आर्थिक जीवन मे उच्च उत्पादन स्तर से वृद्धि होगी तथा निजी उद्योगो को बद भी नही करना पडेगा। उन्ही के शब्दो मे 'वास्तव मे राज्य स्वामित्व का उद्देश्य कृषि मे सामूहिक पद्धति तथा उद्योग के क्षेत्र में राज्य समाजवाद का विशुद्ध रूप अपनाना है। उन्होने यह तर्क दिया कि राज्य द्वारा पूँजी की आपूर्ति के बिना न तो भूमि से ही और न उद्योगों से ही बेहतर परिणाम प्राप्त हो सकते है। इसका दूसरा कारण अम्बेडकर के अनुसार भारत का तीव्र औद्योगीकरण राज्य समाजवाद से ही सभव है। निजी उद्यम देश का तीव्र औद्योगीकरण नही कर सकते है और यदि ऐसा होता है तो इससे देश मे यूरोप की तरह आय ओर धन की असमानता बढेगी और यह भारत के लिए एक चेतावनी होगी।

उनके अनुसार चकबन्दी तथा खेतिहर कानूनो का निर्माण भी लाभकर सिद्ध नहीं होगा। केवल सामूहिक फार्म ही देश के लिए लाभकर सिद्ध हो सकते हैं।

यह मानते हुए कि आधारभूत उद्योगो का स्वामित्व राज्य के हाथ मे हो अम्बेडकर ने लिखा है कि 'बीमा भी राज्य के हाथ मे होना चाहिए। कृषि को राज्य उद्योग बनाया जाए। सारी कृषि भूमि राज्य के हाथो मे हो और उसे जाति या धर्म के भेदभाव के बिना गॉव वालो को सौंपा जाय जिसमे न कोई जमीदार रहे न किरायेदार और न ही कोई भूमिहीन मजदूर। अम्बेडकर ने 'स्टेटस एण्ड माइनॉरिटिज पुस्तक मे समाज की समाजवादी रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए आग्रह किया है कि राज्य समाजवाद को सविधान की धाराओ द्वारा ही स्थापित किया जाय ताकि विधायिका और कार्यपालिका के सामान्य कार्य उन्हे परिवर्तित न कर सके। राज्य समाजवाद का व्यावहारिक रूप ससदीय जनतत्र द्वारा लाया जाना चाहिए। क्योकि ससदीय जनतत्र समाज के लिए सरकार की न्यायोचित व्यवस्था है। सविधान के कानूनो द्वारा समाज के आर्थिक ढाचे के स्वरूप एव सरचना का निर्धारण होना चाहिए।

अम्बेडकर की राज्य समाजवाद की धारणा मानवजीवन की तीन आर्थिक प्रक्रियाओ पर अधिक बल देती है

(i) समाज के निर्धन वर्गों की मागो तथा आवश्यकताओ की पूर्ति करने के लिए आधारभूत उद्योगो का राष्ट्रीयकरण किया जाए और समस्त कृषि योग्य भूमि को राज्य के अधिकार मे लाया जाये।

(ii) समस्त उत्पादक स्रोतो का स्वामित्व राज्य के हाथो मे हो, तथा

(iii) जाति एव धर्म के भेदभाव के बिना उत्पादित वस्तुओ का वितरण सभी वर्गों के लोगो मे न्यायोचित ढंग से हो।

आर्थिक कल्याण व संसदीय प्रजातंत्र– अम्बेडकर का विचार था कि भारत मे लोगो का आर्थिक कल्याण ससदीय प्रजातत्र के साथ राज्य समाजवाद से ही सभव है। उनके मस्तिष्क मे समाजवाद और प्रजातत्र की महत्वपूर्ण उपयोगिता थी। ये इस अवधारणा को सम्पत्ति के समान वितरण और प्रजातात्रिक स्वतत्रता का प्रतीक मानते थे।

डॉ अम्बेडकर नियोजित अर्थव्यवस्था के पक्ष मे थे। वे नियोजित अर्थव्यवस्था को सफलता के लिए एक आवश्यक शर्त मानते थे। उन्होने ससदीय प्रजातत्र मे तानाशाही को कोई महत्व नही दिया। उन्होने ससदीय प्रजातत्र मे तानाशाही को रोकने के लिए सविधान के कानून की जरुरत पर बल दिया है, जिससे बहुमत के बल पर कोई भी दल उसमे अपनी इच्छा या नीति के अनुसार परिवर्तन नही कर सके।

मौद्रिक विचार–डॉ अम्बेडकर के मौद्रिक विचार उनकी पुस्तक '**रुपये की समस्या**' मे सग्रहित है। अम्बेडकर ने रुपये की समस्या मे बताया है कि 'मुद्रा समस्या को हल करते समय रुपये और पौण्ड के सम्बन्ध को अग्रेजो ने ब्रिटिश लोगो को मुनाफेबाजी के लिए किस प्रकार तोडमरोडा और किस प्रकार भारतवासियो पर असख्य सकट ढाए। अग्रेजो की इस हेराफेरी ने ही सभी भारतीय लोगो को गम्भीर आर्थिक कठिनाइयों मे ढकेल दिया, क्योकि भारतीय धन का ब्रिटिश खजाने की ओर निरन्तर बहाव हो गया। बाद में उन्हे अपने शोध प्रबन्ध मे कुछ परिवर्तन करने पडे और 'द प्राब्लम ऑ द रुपी' सन् 1947 मे पुन हिस्टी ऑफ इन्डियन करैंसी एण्ड बैकिग भाग 1 के नाम से प्रकाशित हुई।

इससे पूर्व 25 दिसम्बर 1925 मे अम्बेडकर ने **भारतीय मुद्रा और वित्त के लिए रायल कमीशन** के सामने शहादत दी, उन्होने जोरदार शब्दो मे कहा कि 'विदेशी मुद्रा के विनिमय का भारत को कोई लाभ नहीं पहुँच सकता। इसलिए इसे जारी नहीं रखा जाना चाहिए, क्योकि उसे सोने के स्तर की देशीय स्थिरता प्राप्त नही।'

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि अम्बेडकर का आर्थिक दर्शन सिद्धान्त ही महत्वपूर्ण नही रहा अपितु इन्हे व्यवहार मे भी लागू किया। उनका दर्शन मानवतावादी था, जो सीधा मनुष्य के कल्याण से जुडा हुआ था। उनके महत्वपूर्ण विचारो का स्वतन्त्रता, समानता प्रजातन्त्र, समाजवाद आदि मे महत्वपूर्ण योगदान रहा।

सन्दर्भ

1 एल आर बाली डॉ अम्बेडकर जीवन और मिशन पृष्ठ 167
2 एल आर बाली डॉ अम्बेडकर जीवन और मिशन पृष्ठ 178
3 एल आर बाली डॉ अम्बेडकर जीवन और मिशन पृष्ठ 181–82
4 डब्ल्यू एन कुबेर बी आर अम्बेडकर पृष्ठ 100
5 डॉ डी आर जाटव दी इकॉनामिक फिलॉसफी ऑफ डॉ अम्बेडकर पेपर पृष्ठ (11)
6 बी आर अम्बेडकर स्टेट एण्ड माइनोरिटिज 1947 पृष्ठ 15–16
7 डी आर जाटव डॉ अम्बेडकर पृष्ठ 237
8 डब्ल्यू एन कुबेर बी आर अम्बेडकर पृष्ठ 130
9 एल आर बाली डॉ अम्बेडकर जीवन और मिशन पृष्ठ [illegible]
10 एल आर बाली डॉ अम्बेडकर जीवन और मिशन पृष्ठ 288–89
11 अम्बेडकर स्टेट एण्ड माइनोरिटिज 1947 पृष्ठ 15
12 एल आर बाली डॉ अम्बेडकर जीवन और मिशन पृष्ठ 166–167
13 एल आर बाली दी ट्रांस्फर ऑफ दी पावर वोल्यूम VI, डॉक्यूमेंट न 269
14 एल आर बाली डॉ अम्बेडकर जीवन और मिशन पृष्ठ 211–213
15 डी आर जाटव डॉ अम्बेडकर पृष्ठ 195
16 डी आर जाटव डॉ अम्बेडकर पृष्ठ 196
17 डी आर जाटव डॉ अम्बेडकर पृष्ठ 197
18 डी आर जाटव डॉ अम्बेडकर पृष्ठ 199

प्रश्न

1 अम्बेडकर द्वारा लिखित महत्वपूर्ण ग्रन्थों के नाम लिखिए।
2 अम्बेडकर के भू–स्वामित्व सम्बन्धी विचारो पर सक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3 अम्बेडकर ने देश के तीव्र औद्योगीकरण के लिए राज्य समाजवाद को अत्यावश्यक क्यो माना है ? कारण बताइये।
4 अम्बेडकर किन कारणो से बीमा को राज्य के अधिकार मे देने के पक्ष मे थे। स्पष्ट कीजिए।
5 *अम्बेडकर के प्रमुख आर्थिक विचारो पर सक्षिप्त रूप से प्रकाश डॉलिए।*
6 अम्बेडकर के कृषि सम्बन्धी विचारो को लिखिए।
7 अम्बेडकर के औद्योगीकरण सम्बन्धी विचारो को स्पष्ट कीजिए।
8 अम्बेडकर के औद्योगीकरण तथा मार्क्सवाद सम्बन्धी विचारो की व्याख्या कीजिए।
9 भारतीय कृषि सामाजिक प्रतिबंध एव आर्थिक शोषण का एक उपकरण है अत इसका राष्ट्रीयकरण कर सामूहिक खेती को अपनाना होगा अम्बेडकर के इस कथन को स्पष्ट कीजीए।
10 अम्बेडकर की समाजवाद की अवधारणा मानव जीवन की आर्थिक प्रक्रियाओ पर बल देते है ? स्पष्ट कीजिए।



19

जवाहर लाल नेहरु
(Jawaher Lal Nehru)

जवाहर लाल नेहरु का जन्म 14 नवम्बर,1889 मे इलाहाबाद के एक सपन्न कश्मीरी परिवार मे हुआ था। उनके पिता भारत के जाने–माने बैरिस्टर पण्डित मोतीलाल नेहरु व माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरु थीं। नेहरु की शिक्षा का प्रारभ किसी विद्यालय में नही हुआ, क्योकि उनके पिता अपने पुत्र को किसी स्थानीय शिक्षा–सस्था के उन प्रभावों से बचाना चाहते थे, जिनकी वाछनीयता के प्रति वे शकालु थे। अत थ्योसोफीकल सोसाइटी (Theosophical Sociaty) से सबधित श्रीमती एनीबेसेन्ट के सुझाव पर एक आयिरश शिक्षक टी. ब्रुक्स (T.Brooks) को उन्हे घर पर ही पढाने के लिए रखा गया। ब्रुक्स के अध्यापन के प्रभाव के कारण बालक जवाहर लाल मे स्कॉट, चार्ल्स डिकिन्स, थैक्रे, शरलक होम्स, मार्कट बेन आदि अग्रेजी साहित्यकारो के साहित्य मे रूचि उत्पन्न हुई। किशोरावस्था तक उन पर जिन व्यक्तियों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडा उनमे उनकी माता श्रीमती स्वरूप रानी, उनके पिता मोतीलाल नेहरु व भारत मे थ्योसोफीकल समाज की प्रचारक ऐनीबेसेन्ट प्रमुख थी। अपनी माता से जवाहर लाल नेहरु को स्वाभावगत कोमलता, पिता से व्यवहार की शालीनता तथा श्रीमती ऐनीबेसेन्ट से उन्हें वैचारिक भव्यता, वाक्–पटुता व भाषण कला की निपुणता प्राप्त हुई।

1905 में 15 वर्ष की अवस्था में उन्हें स्कूल शिक्षा के लिए इंगलैंड भेज दिया गया। वहाँ वे हैरो के प्रसिद्ध पब्लिक स्कूल में अध्ययन हेतु प्रविष्ट हुये। इस स्कूल में वे दो सत्रो तक पढे। स्कूल में उनकी शैक्षणिक गतिविधियों से अनेक शिक्षक काफी प्रभावित हुये, तथा उन्हें इसके लिए पुरस्कृत भी किया गया।

अक्टूबर, 1907 में जवाहर लाल ने कैम्ब्रिज के प्रसिद्द ट्रिनीटि कॉलेज मे प्रवेश ले लिया। ब्रिटेन के कई प्रधानमत्रियों ने इस कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की थी। जवाहर लाल ने अध्ययन के लिये विज्ञान के विषयों–रसायन शास्त्र भौतिक–विज्ञान और वनस्पति विज्ञान का चयन किया। किन्तु उनकी रूचि इन विषयों तक ही सीमित नहीं थी। कैम्ब्रिज मे या छुट्टियो के दिन लन्दन में वे ऐसे बहुत से लोगो से मिलते थे, जिनसे वे साहित्य, इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र आदि विषयों पर बातचीत किया करते थे। जवाहर लाल ने इन सभी विषयों पर पुस्तकें पढकर व्यापक जानकारी अर्जित की । इसी दौरान

वे समाजवादी विचारो तथा अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध नाटककार जार्ज बर्नाड शॉ और दार्शनिक बर्टेड रसेल जैसे व्यक्तियो के सम्पर्क मे आये और उनके व्यक्तित्व से प्रभावित भी हुये।

1909 मे जवाहर लाल ने अपने पिता के साथ यूरोप के कई देशो की यात्रा की। 1910 मे उन्होने द्वितीय श्रेणी मे ऑनर्स के साथ स्नातक की उपाधि प्राप्त की । उसके पश्चात उन्होंने बैरिस्टरी की शिक्षा के लिये लदन के इनर टैम्पिल मे प्रवेश ले लिया। बैरिस्टरी की पढाई के दौरान वे राजनीति दर्शन और इतिहास से सबधित अनेक पुस्तको का अध्ययन करते रहे। इस दौरान उन्होने समाजवादी विचारो और आयरलैण्ड के स्वतत्रता आदोलन मे भी रुचि ली। 1912 मे वे बैरिस्टर हो गये और सात वर्ष इगलैड मे रहने के पश्चात भारत लौट आये।

भारत लौटने पर जवाहर लाल नेहरु सार्वजनिक गतिविधियो की ओर आकृष्ट हुये। 1912 मे वे पहली बार काग्रेस के बॉकीपुर अधिवेशन मे प्रतिनिधि के रूप मे सम्मिलित हुये। 1916 में वे महात्मा गाधी के सम्पर्क मे आये। कई सैद्धातिक प्रश्नो पर वे गॉधीजी के विचारो को स्वीकार नही कर सके तथापि राजनीति मे नैतिक तत्त्व को सर्वोपरि मानने की गॉधी जी की प्रवृत्ति ने उनको अभिभूत कर लिया। गॉधी जी से उनका सम्पर्क दिन–प्रतिदिन प्रगाढ होता गया और उन्होने राजनीति मे स्वय को गॉधी जी का अनुयायी बना लिया। 1916 मे उनका विवाह कमला कौल से हुआ। वे दृढ इच्छा शक्ति की साहसी महिला थी और परिवार के अन्य सदस्यो के साथ वे भी स्वतत्रता के सघर्ष में सम्मिलित हो गई। वे कई बार जेल भी गई।

1920 मे गॉधी जी के नेतृत्त्व मे काग्रेस ने असहयोग के कारण देश की जनता में उत्कट उत्साह व्याप्त हो रहा था। चौरी–चौरा नामक स्थान पर हुई हिसक घटना के कारण गॉधी जी ने आदोलन को स्थगित कर दिया। जवाहर लाल ने आदोलन के स्थगन के गॉधी जी के निर्णय की कडी आलोचना की।

1926 में जवाहर लाल ने यूरोप की यात्रा की । इस यात्रा के दौरान उन्होने यूरोप में हो रहे आर्थिक राजनीतिक व वैचारिक परिवर्तनों को निकट से देखा। 1927 मे ब्रूसेल्स में पीडित देशों की काग्रेस मे वे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के प्रतिनिधि के रूप मे सम्मिलित हुये। इस यात्रा के दौरान वे सावियत रुस भी गये। रूस मे अपनाये गये योजनाबद्ध विकास ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया व भारत के लिये भी उन्होंने योजनाबद्ध विकास की कल्पना की।

जवाहर लाल ने अपने जीवन मे अनेक बार लम्बी–लम्बी जेल यात्राऐ कीं। इन जेल यात्राओं का सार्थक उपयोग उन्होने लेखन मे किया। उन्होने अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ जेल मे ही लिखी। इन रचनाओ मे विश्व इतिहास की झलक आत्मकथा (My Story) तथा डिस्कवरी ऑफ इण्डिया नामक पुस्तकों ने विश्व भर म प्रसिद्धि प्राप्त की।

1942 के भारत छोडो आदोलन मे नेहरु की उल्लेखनीय भूमिका रही। उन्हें भी अन्य नेताओं के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। 1946 मे अतरिम सरकार के प्रधानमंत्री

का दायित्व संभाला तथा 15 अगस्त 1947 को वे स्वाधीन भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने व 27 मई 1964 तक मृत्यु पर्यन्त इस पद पर बने रहे। इस प्रधानमंत्रित्व काल मे नेहरु ने भारत के आधुनिकीकरण के स्वप्न को साकार करने का अथक प्रयास किया। नेहरु के आर्थिक विचारो को निम्न शीर्षकों मे रखा जा सकता है–

1. लोकतांत्रिक समाजवाद

भारत मे व्याप्त सामाजिक–आर्थिक असमानता के समापन व पूँजीवादी दोषो के निराकरण हेतु नेहरु ने भारत में समाजवादी समाज की स्थापना पर बल दिया। नेहरु जी ने प्रारम्भ मे ही यह समझ लिया था कि बिना समाजवाद लाये भारतीय अर्थव्यवस्था मैं निहित दोषों को दूर नहीं किया जा सकता। नेहरु जी के समाजवादी विचार उनकी पुस्तक "विदर इंडिया" (Wither India) में मिलते हैं। सन् 1927 की रूस यात्रा ने नेहरु की समाजवादी विचारधारा को अत्यधिक प्रभावित किया। उनके लिए समाजवाद का अर्थ समानता से था। लेकिन नेहरु अच्छी तरह जानते थे कि एकदम से पूँजीवाद को नष्ट कर समाजवाद नहीं लाया जा सकता । अत इसके लिए कठोर उपायों का सहारा न अपनाकर उदार तरीके अपनाने पर बल दिया।

15 दिसम्बर 1952 को लोकसभा मे भाषण करते हुए नेहरु जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा "हमे अपने देश को सघर्ष और जोरजबर्दस्ती से अपने लक्ष्यों की ओर बढाने का विचार नही करना चाहिए। हमारी बहुत–सी चीजे शातिपूर्ण तरीके से ही हासिल हुई हैं और मुझे ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई देता है कि हम इस तरीके को छोडकर हिंसा का तरीका अपना लें। मुझे पूरा यकीन है कि अगर हमने हिंसात्मक तरीके से अपने उद्देश्यो और लक्ष्यों को, जो भले ही कितने भी ऊँचे हो, प्राप्त करने की कोशिश की तो हमें बहुत देर लगेगी और उल्टा हम उन्हीं बुराइयों को बढावा देंगे जिनसे कि हम लड़ रहे है। हिन्दुस्तान एक बडा देश ही नहीं है बल्कि यहाँ बहुत–सी विविधता और अनेकता भी हैं। अगर यहाँ किसी ने तलवार उठाई तो यह लाजमी है कि कोई दूसरा तलवार लेकर उसका मुकाबला करने उठ खडा होगा। तलवार का इस तरह का टकराव नीचे गिरकर एक निरूद्देश्य हिंसा मे बदल जायेगा। इससे राष्ट्र की जो सीमित शक्तियाँ हैं, वे या तो बहुत बट जाएगी या फिर बहुत दुर्बल तो हो ही जाएगी।"

नेहरु जी ने लोकतत्री मार्ग को इस सदर्भ मे प्रतिष्ठित करते हुए कहा कि "शातिपूर्ण तरक्की ही अंतत लोकतंत्री तरक्की का रास्ता हैं। लोकतत्री चिन्तन के अतिम साध्य को अगर हम ध्यान मे रखें, तो सिर्फ वोट दे देना ओर बाकी सब काम दूसरो पर छोड देना ही काफी नहीं होगा। अतिम लक्ष्य आर्थिक लोकतन्त्र है; अतिम लक्ष्य यह है कि गरीब और अमीर के भेद और उन लोगो का अतर खत्म हो जिनमे से कुछ के पास अवसर हैं ओर दूसरे जिनके पास किसी तरह के अवसर नहीं हैं या बहुत थोडे हैं। इस लक्ष्य के रास्ते की हर रूकावट को हटा देना होगा, भले ही यह काम दोस्ती और सहकार के जरिए हो और चाहे कानून ओर सरकार के जोर से हो।"

नेहरु ने समाजवाद को भारतीय सामाजिक–आर्थिक समस्याओ का एकमात्र उपाय बताया। समाजवाद सभी प्रकार के शोषण से मुक्ति का मार्ग है। नेहरु ने कहा कि मुझे विश्वास है कि भारत की समस्याओ का समाधान समाजवाद मे है और जब मै इस शब्द को प्रयोग करता हूँ तो मै इसे केवल अस्पष्ट और मानववादी के रूप मे नही अपितु वैज्ञानिक और आर्थिक दृष्टि से देखता हूँ। समाजवाद एक आर्थिक सिद्वात के अतिरिक्त भी और कुछ है। यह एक जीवन दर्शन है ओर इसी कारण मुझे प्रिय है। मुझे गरीबी बेरोजगारी और भारतीय लोगो की दुर्दशा को समाप्त करने के लिए समाजवाद के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग दिखाई नही पडता।

नेहरु ने समाजवाद की व्याख्या भारतीय सदर्भ मे विशिष्ट प्रकार से की। उन्होने समाजवाद का अन्धानुकरण नही किया अपितु देश मे परिस्थितियो के अनुसार ही समाजवाद के स्वरूप की बात कही। 1929 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के अधिवेशन मे अध्यक्षीय भाषण मे नेहरु ने स्पष्ट शब्दो मे कहा कि हम यह महसूस करना चाहिए कि समाजवाद का दर्शन सारी दुनिया के समाज की सरचना मे धीरे–धीरे व्याप्त हो गया है विवाद के केवल दो ही बिन्दु हैं एक शान्ति ओर दूसरा इसे पूर्ण प्रभावी बनाये जाने हेतु अपनाए जाने वाली विधि। भारत को भी गरीबी और असमानता को समाप्त करने के लिए समाजवाद को अपनाना होगा। हम भारतीय सदर्भ मे इसे अपने तरीके से बुद्धिमत्तापूर्ण रूप मे अपना सकते हैं। हमारा आर्थिक कार्यक्रम मानवीय दृष्टिकोण पर आधारित होना चाहिए तथा धनी की कीमत पर व्यक्ति का बलिदान नहीं करना चाहिए। यदि एक उद्योग श्रमिको की भूख मिटाए बिना नही चल सकता तो उसे बद कर देना चाहिए। यदि भूमि पर काम करने वाले श्रमिक को खाने के लिए पर्याप्त नही मिल पाता तो मध्यवर्तियो को व्यवस्था से बाहर कर देना चाहिए जो कि उपज को बीच में ही हड़प जाते हैं।

इस प्रकार जवाहर लाल नेहरु जहाँ एक ओर लोकतत्र के प्रबल समर्थक थे वही दूसरी ओर समाजवाद की स्थापना पर बल दिया। इस प्रकार लोकतत्र व समाजवाद दोनों के सम्मिश्रण से बना है लोकतान्त्रिक समाजवाद। इस लोकतान्त्रिक समाजवाद के प्रति नेहरु आजीवन पूर्ण समर्पित रहे। लोकतत्र ओर समाजवाद के प्रति उनकी पूर्वाग्रह–मुक्त अन्तदृष्टि ने उन्हे यह समझने व प्रतिपादित करने के लिए प्रेरित किया कि लोकतत्र और समाजवाद परस्पर विरोधी विचारधाराए नहीं है, परन्तु अनिवार्यत परस्पर पूरक हैं उनका विचार था कि बिना समाजवादी आग्रहों के लोकतान्त्रिक भावना वास्तविक रूप नही ले सकती। नेहरु के अनुसार समाजवाद लोकतत्र का अनिवार्य परिणाम है। आर्थिक लोकतत्र के बिना राजनीतिक लोकतत्र निरर्थक है और राजनीतिक लोकतत्र ही समाजवाद का माध्यम बन सकता है। सच्चे समाजवाद की स्थापना लोकतान्त्रिक साधनो के माध्यम से ही की जा सकती है।

इस लोकतान्त्रिक समाजवाद जो कि लोकतत्र व समाजवाद का सम्मिश्रण है के अन्तर्गत निम्न तथ्य देखने को मिलते हैं –

(i) आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्र में प्रजातात्रिक रूप में कार्य कर रहा सरकारी तंत्र।

(ii) अवसर की समानता तथा सामाजिक–आर्थिक पिछडेपन के कारण उत्पन्न अयोग्यताओ का निराकरण।

(iii) आय की समानताएँ और एतदर्थ एकाधिकार औद्योगिक तथा भू–स्वामित्व सबधी असमानताओ को कम करना।

(iv) आर्थिक विकास का उच्च स्तर।

(v) आधारभूत उद्योगो का सार्वजनिक स्वामित्व।

(vi) सामाजिक सुरक्षा की व्यापक योजना।

(vii) न्याय पर आधारित आर्थिक जीवन का सगठन तथा सभी को न्यूनतम जीवन स्तर की गारटी।

(viii) नियोजित केन्द्रीय निर्देशन व साथ ही साथ राजनीतिक व आर्थिक शक्तियों का विकेन्द्रीयकरण।

(ix) प्रबध में श्रमिको की अधिकाधिक सहभागिता।

लोकतात्रिक समाजवाद की धारणा को स्पष्ट करते हुए कहा कि इस व्यवस्था में पूँजी और अन्य आर्थिक ससाधनो को पूँजीपति वर्ग के हाथो मे केन्द्रित नही होने दिया जायगा बल्कि यह व्यवस्था की जायेगी कि देश की वास्तविक पूँजी और साधनों पर जनता का प्रभावी नियत्रण हो। नेहरु के अनुसार लोकतात्रिक समाजवाद राजनीतिक लोकतत्र के द्वारा आर्थिक लेकतत्र के मार्ग की ओर प्रगति करने का माध्यम है। लोकतात्रिक समाजवाद की उनकी धारणा में जनता के राजनीतिक अधिकारों की मान्यता, आर्थिक और सामाजिक न्याय ससाधनो के केन्द्रीकरण का निषेध, तथा उत्पादन व वितरण की न्याय सम्मत प्रणाली को सुनिश्चित किये जाने पर एक साथ बल दिया है। नेहरु ने लोकतात्रिक समाजवाद को भारत के स्वर्णिम भविष्य की आधारशिला माना है।

2. अर्थशास्त्र के उद्देश्य

नेहरु एक व्यावहारिक अर्थशास्त्री थे। भारत की आर्थिक समस्याओ के निराकरण हेतु नेहरु ने समय–समय पर अपने आर्थिक विचार व्यक्त किये। नेहरु जी को अपने आर्थिक विचारों को क्रियान्वित करने का प्रधानमत्री के रूप में पर्याप्त अवसर मिला। नेहरु ने इस अवधि मे राष्ट्र की आर्थिक समस्याओ के निराकरण हेतु प्रमुख भारतीय अर्थशास्त्रियो से परामर्श किया। उनका विश्वास था कि भारत जैसे विकासशील देश की उन्नति तब तक नही की जा सकती जब तक सभी भारतवासियो को उनके जीवन यापन के लिए भोजन वस्त्र मकान व अन्य न्यूनतम आवश्यकताओ की पूर्ति नहीं हो पाती है और जब तक इन न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति नही हो जाती है आदर्श की बात करना व्यर्थ है। इस प्रकार नेहरु के अनुसार अर्थशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति होना चाहिए।

नेहरु ने यद्यपि स्वय तो अर्थशास्त्र के किसी सिद्धात का निर्माण नही किया लेकिन उनका स्पष्ट मत था कि अर्थशास्त्र के सिद्धात निरपेक्ष नही अपितु सापेक्ष होने चाहिए। प्रत्येक देश को इन सापेक्ष नियमो को अपने देश मे अपनी सामाजिक–आर्थिक दशा के अनुरुप अपनाना चाहिए ओर इस सदर्भ मे नेहरु ने महादेव गोविन्द रानाडे का अनुसरण करते हुए भारत के अलग अर्थशास्त्र के नियमो पर बल दिया तथा यह तथ्य भारतीय अर्थव्यवस्था के सदर्भ मे उनकी नीतियो मे स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इस सदर्भ मे उन्होने अर्थशास्त्र के अध्ययन की आगमन प्रणाली पर बल दिया जिसके अतर्गत आर्थिक नियम देश काल व परिस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए बनाए जाते हैं।

3 आर्थिक नियोजन

नेहरु भारत मे आर्थिक नियोजन के जनक हैं। नेहरु ने भारत के तीव्र आर्थिक विकास हेतु आर्थिक नियोजन का मार्ग प्रस्तुत किया 1927 मे नेहरु जब रूस गये और वहाँ नियोजनबद्ध विकास पर दृष्टिपात किया तो वे उससे बहुत अधिक प्रभावित हुए तथा उन्होने भारत मे भी आर्थिक नियोजन का सपना सजोया। नेहरु इस सदर्भ मे बहुत अधिक भाग्यशाली भी रहे क्योकि देश मे जब पहली बार राष्ट्र के पुनरुत्थान हेतु नियोजनबद्ध विकास की बात भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस मे आई और तदनुसार राष्ट्रीय नियोजन समिति का गठन 1938 में हुआ तो नेहरु को उस समिति का अध्यक्ष बनाया गया। नेहरु 1938 से पूर्व ही आर्थिक नियोजन की बात कह चुके थे।

राष्ट्रीय नियोजन समिति (National Planning Committee) के अध्यक्ष के रूप मे नेहरु की भूमिका को कभी नही भुलाया जा सकता । राष्ट्रीय नियोजन समिति की रिपोर्ट भारत में आर्थिक नियोजन का आधार सिद्ध हुई। राष्ट्रीय नियोजन समिति ने भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र मे विशद जानकारी एकत्र की तथा प्रत्येक क्षेत्र के विकास हेतु सुझाव प्रस्तुत किये। इस प्रकार स्वाधीनता प्राप्ति के पूर्व नेहरु ने प्राप्त अवसर का पूर्ण सदुपयोग किया इस अवसर के साथ न्याय किया तथा इसे भारत मे आर्थिक नियोजन की मजबूत आधारशिला के रूप मे प्रस्तुत किया।

15 अगस्त 1947 को भारत स्वतत्र हुआ ओर स्वाधीन भारत के प्रथम प्रधानमत्री बने जवाहर लाल नेहरु। नेहरु ने प्रधानमत्री के रूप मे भारत मे आर्थिक नियोजन के अपने सपने को मार्च 1950 मे योजना आयोग की स्थापना के रूप में कदम उठाकर साकार रूप मे परिणत किया। यह ज्ञातव्य है कि योजना आयोग का अध्यक्ष प्रधानमत्री होता है। नेहरु आजीवन योजना आयोग के अध्यक्ष रहे।

भारत मे आर्थिक नियोजन विभिन्न प्रतियोगी उद्देश्यो के मध्य सतुलन स्थापित करता है। ये उद्देश्य सिचाई व विद्युत परियोजनाओ खाद्यान्न व उपभोग वस्तुओ के उत्पादन परिवहन आधारभूत उद्योग–जेसे–लोहा इस्पात उद्योग भारी रसायन उद्योग भारी विद्युत सबधी उद्योग व रक्षा उद्योग आदि के विकास के रूप मे परिलक्षित होते हैं।

समग्र रूप में, आर्थिक नियोजन दोहरे उद्देश्यो–राष्ट्रीय आय मे पर्याप्त वृद्धि व आय व धन की असमानता मे कमी–की प्राप्ति के रूप मे व्यक्त किया जा सकता हैं यदि एक वाक्य में आर्थिक नियोजन के उद्देश्य को प्रस्तुत करना चाहे तो वह है– **"सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास"** (Economic Growth Wuth Social Justice)।

नेहरु की राज्य नियोजन मे दृढ आस्था थी। नेहरु ने यह भलीभाति समझ लिया कि राष्ट्र की स्वतत्रता किस प्रकार भारी उद्योगो व शक्ति ससाधनों पर आधारित है, स्वतत्र भारत किस प्रकार विश्व की तकनीकी दौड मे शामिल हो सकता है। यह नियोजित विकास न केवल भारत की आर्थिक स्वतत्रता के लिए वरन् भारतीय सस्कृति के आधुनिक विश्व के साथ जो अतराल है, उसे दूर करने के लिए भी आवश्यक है। नेहरु का यह सोचना था कि नियोजित औद्योगिक विकास के क्रियात्मक स्वरूप तथा समाजवादी नियत्रण के अभाव में लक्ष्य की प्राप्ति असभव है। इस शताब्दी मे पिछली शताब्दी की तरह यह पर्याप्त नहीं है कि राज्य सहायता व प्रेरणा पर आधारित निजी क्षेत्र का विकास किया जाय। नेहरु ने उपर्युक्त दृष्टिकोण को राज्य नियत्रण के रूप मे लागू भी किया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राज्य नियत्रण के पक्ष मे जितने दृढ विचार राष्ट्रीय नियोजन समिति के अध्यक्ष के रूप मे नेहरु ने व्यक्त किये वो अब कुछ उदार हो चुके थे। उनका समाजवादी दृष्टिकोण भी उतना उग्र नही रह गया तथा उन्होने देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था का स्वरुप प्रस्तुत किया।

जनवरी 1955 मे अवादी प्रस्ताव (Avadi Resolution) के अतर्गत नेहरु ने नियोजन का ध्येय भारत मे समाजवादी समाज की स्थापना बताया है। इस समाजवादी समाज के अतर्गत उत्पादन के प्रमुख साधन सामाजिक स्वामित्व या नियत्रण में रहेंगे, उत्पादन मे तेजी से वृद्धि की जायेगी, राष्ट्रीय सपत्ति के समान वितरण की व्यवस्था की जाएगी। नेहरु ने अपने भाषण में इस बात पर बल दिया कि प्रगतिशील समाज मे धन को समान रूप मे बाटना इतना अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि धन का और अधिक उत्पादन। योजना मे जनता की आवश्यकताएँ मौद्रिक रूप मे नहीं मापी जानी चाहिए अपितु वास्तविक भौतिक आवश्यकताओं जैसे भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य सुविधाएँ, रोजगार आदि पर बल दिया जाना चाहिए और इनकी प्राप्ति उत्पादन वृद्धि द्वारा ही हो सकती है। समाजवादी पद्धति पर कुछ लोगों को संदेह हो सकता है कुछ इसे सच्चे मार्ग के रूप मे ले सकते हैं तो कुछ इसे सुविधा के लिए दिए हुए मौखिक आश्वासन के रूप में समझ सकते हैं।

जवाहर लाल नेहरु ने आर्थिक नियोजन को राष्ट्र के आर्थिक विकास की रीढ की हड्डी बताया है। उन्होने कहा कि योजना आवश्यक है अन्यथा हम उत्पादन के साधनो का जो कि सीमित मात्रा मे है, बेकार ही पडे रहने देगे। योजना का अर्थ केवल परियोजनाओं का एकत्रीकरण नही होता, अपितु परियोजनाओ का आधार तय करना तथा

उन्हे इस प्रकार प्रगति के मार्ग पर अग्रसर करना है ताकि समाज सभी दृष्टि से प्रगति कर सके। हमारे देश मे गरीबी की भयावह समस्या हैं। हमारे समक्ष सर्वदा एक कठिन विकल्प है–या तो हम कुछ चुने हुए क्षेत्रों में जो कि अनुकूल भी है उत्पादन केन्द्रित करें और पिछडे हुए क्षेत्रो को कुछ समय के लिए छोड दे या क्षेत्रीय आर्थिक असमानता को कम करने के लिए पिछडे हुए क्षेत्रो का विकास भी साथ–साथ करे। एक सतुलन का मार्ग अपनाया गया है तथा समेकित राष्ट्रीय योजना प्रस्तुत की गयी है। एक राष्ट्रीय योजना में किसी भी प्रकार की कठोरताएँ नहीं होनी चाहिए। ये किसी भी हठधर्मिता पर आधारित नही होने चाहिए अपितु वर्तमान तथ्यो को ध्यान मे रखकर होने चाहिए। यह हो सकता है और आज के दिन जैसा में सोचता हूँ, बहुत से क्षेत्रो मे निजी क्षेत्रों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इन निजी उपक्रमो को राष्ट्रीय योजना मे सम्मिलित करते हुए इन पर आवश्यक नियत्रण भी लगाए जाने चाहिए।

नेहरु ने एक सामान्य आदमी को सामाजिक न्याय प्रदान करने की दृष्टि से नियोजन को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। अपनी पुस्तक डिस्कवरी ऑफ इण्डिया (Discovery of India) म कहा है कि सामाजिक सरचना को समाज में सग्रह करने की प्रवृति को सीमित करना होगा तथा विकास मे बाधाओं को दूर करना होगा। सामान्य आदमी के लाभ के लिए यह नियोजन पर आधारित होगा। यह लाभ जीवन स्तर मे सुधार प्रगति के अवसरो मे वृद्धि तथा मानव में अन्तर्निहित गुणो के विकास के रूप मे प्राप्त हो सकते है। लेकिन ये सभी प्रयास लोकतान्त्रिक परिप्रेक्ष्य मे होने चाहिए।[3]

नेहरु आर्थिक नियोजन के माध्यम से भारत को एक औद्योगिक राष्ट्र के रूप मे परिणत करना चाहते थे। नियोजन के पीछे मूल विचार ही औद्योगिकरण रहा जिसके बिना गरीबी बेरोजगारी राष्ट्रीय सुरक्षा तथा आर्थिक पुनर्निर्माण सभव नही था। इस प्रकार एक राष्ट्रीय ओद्योगिकरण योजना के अतर्गत बडे पैमाने के आधारभूत उद्योग छोटे पैमाने के उद्योग व कुटीर उद्योग सम्मिलित होते है। ऐसा करते समय योजना के अतर्गत कृषि को नही भुलाया जा सकता। नियोजन का क्षेत्र विस्तत और अधिक विस्तृत होता चला जाता है जब इसके अतर्गत सामाजिक सेवाओं को भी शामिल कर लिया जाता हे।

नेहरु जी ने योजना निर्माण करते समय योजना आयोग को स्वच्छन्द नहीं छोडा है। उनके अनुसार योजना आयोग को सविधान की सीमाओ के अतर्गत ही योजना बनानी चाहिए। यद्यपि नेहरु जी स्वय योजना आयोग के अध्यक्ष थे परन्तु लोकसभा मे 15 दिसम्बर 1952 को दिये गय वक्तव्य से नेहरु जी के विचार स्पष्ट है। उनके अनुसार 'हम लोग एक लोकतत्री ढाचे मे काम कर रहे हे जिसे हमने खुद चुना है और जो हमारे सविधान मे और ससद मे निहित है। यह स्वाभाविक है कि हमारा आयोजन देश की व्यवस्था के अनुकूल होना चाहिए। लेकिन योजना आयोग को यह हक नही है कि वह कोई ऐसा कार्यक्रम बनाये जिसका हमारे सविधान या व्यवस्था से जिसके अधीन हम काम कर रहे है कोई वास्ता ही नही हो।[4]

नेहरु जी ने भारत मे नियोजन की बात जनतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत प्रस्तुत की अत नेहरु द्वारा पल्लवित यह आर्थिक नियोजन "जनतांत्रिक नियोजन" कहलाता है। हमारे देश मे योजना आयोग कोई सर्व शक्ति सपन्न सस्था नहीं है। यद्यपि योजना आयोग का अध्यक्ष पद प्रधानमंत्री होता हैं तथापि योजना आयोग योजना का निर्माण करता हैं तथा अत मे योजना के क्रियान्वयन हेतु ससद के पटल पर रखा जाता है। योजना का क्रियान्वयन केन्द्र व राज्य सरकारे द्वारा किया जाता है। यहॉ यह उल्लेखनीय है कि योजना आयोग का गठन ससद के एक प्रस्ताव द्वारा हुआ है तथा सविधान में इसकी कोई व्यवस्था नही है।

नेहरु ने योजना की समय अवधि को लेकर यह मत व्यक्त किया कि योजना दीर्घकालिक व अल्पकालिक दोनो ही प्रकार की होनी चाहिए। दीर्घकालिक लक्ष्य अल्पकालिक योजनाओ से प्राप्त किए जाए। पचवर्षीय योजनाओ को मध्यवर्ती कडी के रूप में प्रभावी भूमिका निभानी चाहिए। नेहरु जी के शब्दो मे " यह सबसे जरूरी है कि हम 15 वर्ष की अवधि मे क्या हासिल करना चाहते हैं, इसका हमे सही और साफ विचार हो। फिर हम इस बडी और सामान्य योजना में समायोजित हो सकने वाली छोटी–छोटी योजनाओ पर आ सकते हैं। ओर फिर सबसे छोटी, यानि एक साल की या वार्षिक योजना भी बडी योजना में समायोजित होनी चाहिए।"

पचवर्षीय योजना एक बडा ढाचा होना चाहिए जिसमे उपर्युक्त परिवर्तन हो सके जो सिर्फ हमारे साधनो की दृष्टि से न हो बल्कि उस लबी ओर दूर की तस्वीर को ध्यान मे रखते हुए भी हो जो वक्त के साथ–साथ हम विकसित करते हुए जाएगे। जब हम अपने सामने 15 वर्ष का लक्ष्य रखेगे तो छोटी–छोटी योजनाओ को स्वीकार करना हमारे लिए आसान हो जाएगा।[6]

4. औद्योगिकरण

नेहरु ने तीव्र औद्योगिकरण के माध्यम से आधुनिक भारत की आधार शिला रखी। नेहरु का स्पष्ट दृष्टिकोण था कि बिना औद्योगिकरण के भारत का आर्थिक विकास सभव नही है। यदि भारत को आर्थिक रूप मे स्वतत्रता प्राप्त करनी है तो तीव्र औद्योगिकरण एक अनिवार्यता है तथा बिना आर्थिक स्वतत्रता के राजनीतिक स्वतत्रता का कोई मतलब नही रह जाता है। नेहरु जी ने तीव्र ओद्योगिकरण पर बल देते हुए अपनी पुस्तक **"दी डिस्कवरी ऑफ इंडिया"** में लिखा है "आधुनिक विश्व के सदर्भ मे कोई शायद ही इस यथार्थ को चुनौती दे सकता है कि जब तक एक राष्ट्र उच्च स्तर पर औद्योगिकृत नही हैं तथा उसने अपनी शक्ति ससाधनो का विकास नही कर लिया है, वह परस्पर अतर्राष्ट्रीय निर्भरता की स्थिति में अपना अस्तित्व नही बनाए रख सकता । औद्योगिकरण के अभाव मे न तो उच्च जीवन स्तर प्राप्त किया जा सकता है और न ही गरीबी की समस्या को कम किया जा सकता है।औद्योगिक दृष्टि से पिछडा हुआ राष्ट्र विश्व सतुलन

के साथ समायोजित नही हो सकता तथा अधिक विकसित राष्ट्रो की उग्र प्रवृत्तियो का भी सामना नही कर सकता। यदि उसे राजनीति स्वतत्रता भी बनाए रखनी है तो राष्ट्र का आर्थिक नियत्रण दूसरे राष्ट्रो को सौंपना पडेगा ओर राजनीतिक स्वतत्रता का कोई आशय नही रह जाएगा। यह नियत्रण छोटे पैमाने पर आधारित हमारी अर्थव्यवस्था को अनिवार्य रूप से अस्त–व्यस्त कर देगा। इसलिए लघु व कुटीर उद्योगो पर आधारित राष्ट्र की अर्थव्यवस्था का निर्माण पूर्णतया निष्फल हो जाएगा। न तो यह दश की आधारभूत समस्याओ को दूर कर पाएगा और न ही आधुनिक विश्व के ढाचे मे समायोजित हो सकेगा। यह केवल उपनिवेशीय भाग रह जाएगा। आधुनिकतम तकनीकी उपलब्धियो पर आधारित अर्थव्यवस्था निश्चित रूप से प्रभावी होगी यदि तकनीक बडी मशीनो की माग करती है जैसा कि वर्तमान मे है तो बडी मशीनो की पूर्ण व्यवस्था की जानी चाहिए तथा इसके प्रभाव स्वीकार करने चाहिए।

नेहरु जी आधुनिक तकनीक व तदनुसार मशीनो पर बल देते हुए उन उद्योगो की स्थापना का पक्ष लेते हैं जो मशीनो का निर्माण कर सके । उन्होने कहा कि यदि हमे औद्योगिकरण करना है तो सबसे अधिक महत्त्व की बात यह है कि हम भारी उद्योग कायम करे जो मशीनो का निर्माण करते है। एतदर्थ भारी उद्योगो की स्थापना पर बल देते हैं तथा उनकी दृष्टि मे भारी उद्योगो का विकास ही ओद्योगिकरण है। नेहरु के शब्दो मे अहमदाबाद बम्बई या कानपुर मे लगे हुए बहुत से सूती वस्त्र के कारखाने औद्योगिकरण नही है यह तो इसके साथ खिलवाड है। मै सूती वस्त्र के कारखानो पर आपत्ति नही उठाना चाहता हमे उनकी जरूरत है– परन्तु इस प्रकार हमारा औद्योगिकरण का विचार इन साधारण सूती वस्त्र के कारखानो तक ही सीमित एव सकुचित हो जाता है और हम इसे ही औद्योगिकरण कहने लगते हैं। औद्योगिकरण से इस्पात उत्पन्न होता है इससे सचालन शक्ति पैदा की जाती है वे ही इसका आधार है। यदि आप एक बार आधार कायम कर ले तो फिर निर्माण करना आसान हो जाता है। भारत मे आयोजन को प्रशस्त करने वाली विधि मे औद्योगिकरण को बढावा देना होगा और इसका अर्थ यह है कि आधारभूत उद्योगो (Basic Industries) को प्रथम स्थान दिया जाये।

स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व ब्रिटिश शासन ने भारत के औद्योगिक विकास पर कोई ध्यान नही दिया। देश मे जितना भी औद्योगिक विकास हुआ वह औपनिवेशिक दृष्टि से था। स्वाधीनता प्राप्ति के उपरात नेहरु के समक्ष औद्योगिक विकास को लेकर दो विकल्प थे और उन्होने एक विकल्प को चुनना था।

प्रथम विकल्प— उपभोक्ता वस्तु के उद्योगो के विकास पर अधिक बल दिया जाय जिससे जनता को विशेष रूप से गरीबी से त्रस्त लोगो को बुनियादी आवश्यकताओ की पूर्ति की जा सके।

द्वितीय विकल्प — दीर्घकालीन वृद्धि हेतु एक मजबूत नीव रखी जाये जिसके लिए भारी उद्योग जैसे इस्पात भारी मशीन भारी विद्युत सामान भारी मशीनरी उद्योग

तथा आधारभूत ढाचे के लिए विद्युत उत्पादन, परिवहन, संचार, सिचाई आदि का विकास किया जाय।

नेहरु जी ने प्रथम विकल्प के स्थान पर द्वितीय विकल्प को चुना। नेहरु का दृढ विश्वास था कि भारत मे प्रचुर प्राकृतिक ससाधन हैं तथा पर्याप्त मात्रा मे श्रम शक्ति उपलब्ध है। उनका मत था कि भारत का आर्थिक विकास आधुनिक औद्योगिकरण द्वारा ही संभव है। उसी के द्वारा ही आत्मनिर्भरता की प्राप्ति तथा वास्तविक आर्थिक स्वतत्रता सभव है। अन्य आर्थिक उद्देश्य जैसे गरीबी का उन्मूलन, रोजगार, उच्चतम जीवन स्तर भी इस प्रकार की व्यूह रचना द्वारा प्राप्त हो सकेगे।

इस विकास व्यूह रचना हेतु विशाल पूँजीगत विनियोग व विदेशी तकनीक के आयात की आवश्यकता है। प्रारम्भिक अवधि मे लाभ का अनुपात भी कम रहेगा। अत्यधिक पूँजी गहन उद्योगो की स्थापना के कारण रोजगार में भी पर्याप्त वृद्धि नहीं हो पायगी। रोजगार की दृष्टि से तो श्रम गहन पद्धति पर आधारित ग्रामीण उद्योग अधिक श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार आत्मनिर्भर ग्राम विकास की सकल्पना अधिक श्रेष्ठ है, लेकिन फिर भी नेहरु का कहना था कि अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों का आर्थिक विकास आधुनिक विज्ञान व तकनीक पर आधारित भारी उद्योगो के विकास से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है।

नेहरु आधुनिक औद्योगिकरण मे प्रारभिक अवस्था में आने वाली कठिनाइयो से अनभिज्ञ नहीं थे। इस अवस्था मे, जिसे दात निकलने की अवस्था भी कह सकते हैं, विदेशी विनिमय व सशर्त विदेशी सहायता की कठिनाई सामने आती हैं। आतरिक राजनीतिक व सामाजिक शक्तियाँ आर्थिक असमानता को तेजी से बढा सकती हैं, क्षेत्रीय असतुलन भी उत्पन्न हो सकते हैं। लेकिन नेहरु का विश्वास था कि दीर्घकाल मे ये सब बुराइया स्वत ही दूर हो जाएगी।

नेहरु का दृढ विश्वास था कि प्रारभिक अवस्था में पूँजीगत वस्तुओं व उपभोक्ता वस्तुओं के मध्य असतुलन हो सकता है, जिसका परिणाम उपभोक्ता वस्तुओं का अभाव भी हो सकता है लेकिन दीर्घकाल मे पूँजीगत वस्तुओ की सहायता से उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन तेजी से बढेगा और जीवन–स्तर मे स्वत ही सुधार होगा।

नेहरु ने राष्ट्र की आधारभूत सरचना के विकास पर भी विशेष बल दिया। उनके अनुसार परिवहन के साधनो का व्यापक मात्रा मे सुलभ होने पर न केवल छोटे पैमाने के उद्योगो का अपितु बडे पैमाने के उद्योगो का भी विकेन्द्रित विकास सभव हो सकेगा। इस विकेन्द्रित विकास के फलस्वरूप क्षेत्रीय असतुलन दूर किये जा सकते हैं तथा सतुलित विकास की कल्पना को साकार रूप प्रदान किया जा सकता है।

नेहरु पर कुछ आलोचक यह आरोप लगाते हैं कि उन्होंने लघु व कुटीर उद्योगो की उपेक्षा की, लेकिन वस्तुत ऐसा नहीं है। नेहरु ने लघु व कुटीर उद्योगो का कभी विरोध नही किया। उनके अनुसार लघु व कुटीर उद्योगो के विकास से बेरोजगारी की

समस्या हल होती है तथा उपभोक्ता वस्तुओ की व्यापक आपूर्ति सभव है। लेकिन इन उद्योगो के लिए आवश्यक मशीनरी का उत्पादन तो बडे पैमाने के आधारभूत उद्योगो के विकास द्वारा ही सुलभ होता है। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि नेहरु के आधुनिकीकरण या तीव्र औद्योगिकरण का केन्द्र बिन्दु यह नही है कि बडे पैमने के उद्योगो की स्थापना हो अपितु यह है कि आधारभूत उद्योगो का विकास हो ताकि राष्ट्र के समग्र विकास हेतु एक आधार तैयार किया जा सके। इन आधारभूत उद्योगो की सहायता से जहाँ एक ओर लघु व कुटीर उद्योगो की स्थापना को भी बल मिलेगा वही दूसरी ओर कृषि का आधुनिकीकरण भी सभव हो सकेगा। इससे दीर्घकालीन आर्थिक वृद्धि व आत्मनिर्भरता का दोहरा लक्ष्य प्राप्त हो सकेगा।

नेहरु ने इन आधारभूत उद्योगो की स्थापना सार्वजनिक क्षेत्र मे ही किये जाने पर बल दिया। इसके पीछे नेहरु के कई तर्क थे। एक तो सामान्य तर्क था कि इनमें विनियेग की मात्रा बहुत अधिक लगती है तथा परिपक्वता अवधि (Gestation Period) भी बहुत लम्बी होती है। चूकि इन आधारभूत उद्योगो का लक्ष्य लाभ कमाना नही है अपितु राष्ट्र के दीर्घकालीन आर्थिक वृद्धि के लिए एक आधार तैयार करना है जो कि सार्वजनिक क्षेत्र मे ही इनके विकास के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

नेहरु की यद्यपि उद्योगो के सामाजिकरण मे दृढ आस्था थी लेकिन उन्होने राष्ट्रीयकरण को अन्धानुकरण के रूप मे नही अपनाया। राष्ट्रीयकरण सभी बीमारियो का कोई जादुई (Magic) इलाज नही हैं। जो लोग सभी उद्योगो के राष्ट्रीयकरण का तर्क दे रहे हो उनके लिए नेहरु का उत्तर था कि राष्ट्रीयकरण समाजवाद का पर्याय नही है। उन्होंने सदस्यो को सलाह दी कि यह कल्पना मत करो कि समाजवाद मे राष्ट्रीयकृत उद्योग समाहित है अत सभी उद्योगो का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय।

उपर्युक्त सदर्भ मे उल्लेखनीय है कि नेहरु ने सार्वजनिक व निजी क्षेत्र दोनो के सहअस्तित्व पर बल दिया। उनके इस मिश्रित अर्थव्यवस्था के स्वरूप की विस्तृत विवेचना आगे दी गयी है।

नेहरु का सौभाग्य था कि उन्हे भारत के आधुनिकीकरण के स्वप्न को साकार रूप प्रदान करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ। उनके द्वारा तीव्र औद्योगिकरण पर दिया गया बल प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओ व 1948 तथा 1956 की औद्योगिक नीतियो मे परिलक्षित होता है।

उल्लेखनीय है कि प्रथम पचवर्षीय योजना वस्तुत परियोजनाओ का एकत्रीकरण व योजनावधि मे अनुपालन मात्र थी यह द्वितीय पचवर्षीय योजना ही थी जो आधुनिकीकरण व विकास की व्यूह रचना को व्यक्त करती है। तीसरी पचवर्षीय योजना द्वितीय पचवर्षीय योजना के विस्तार पथ को दर्शाती है। इसी प्रकार 1948 की औद्योगिक नीति भारत मे मिश्रित अर्थव्यवस्था का परिचय उद्योगो के वर्गीकरण व उन पर नियत्रण

के माध्यम से कराती हैं। वस्तुतः 1956 की औद्योगिक नीति नेहरु की संकल्पना की द्योतक है। यह द्वितीय पचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास की रुपरेखा का आधार भी है। दोनों का सक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है –

(अ) 1956 की औद्योगिक नीति :–नेहरु जी के प्रधानमंत्रित्व में ससद दिसम्बर 1954 मे समाजवादी पद्धति पर आधारित समाज (Socialist Pattern of Society) को आधारभूत सामाजिक और आर्थिक नीतियो के रूप मे स्वीकार कर चुकी थी। 1956 मे दूसरी पचवर्षीय योजना भी प्रारम्भ हो चुकी थी। उपर्युक्त दोनो तथ्यो को दृष्टिगत रखते हुए व भारत को सुदृढ औद्योगिक आधार प्रदान करने के लिए 1956 की औद्योगिक नीति प्रस्तुत की गई जिसके निम्न तथ्य उल्लेखनीय हैं।

1. उद्योगों का वर्गीकरण :–प्रस्ताव मे उद्योगो को तीन वर्गों में विभाजित किया गया जो 1948 की औद्योगिक नीति के वर्गीकरण की तुलना मे अधिक स्पष्ट व प्रभावी है। राज्य ने किसी भी प्रकार के औद्योगिक उत्पादन को अपने हाथ मे लेने का सहज अधिकार सुरक्षित रख लिया। उद्योगो के तीन वर्ग हैं –

(i) वे जिनका पूर्ण दायित्व राज्य पर हो।

(ii) वे जिन पर राज्य का अधिकार बढता जाएगा और जिनमें साधारणत राज्य नये उद्यमों की स्थापना करेगा किन्तु निजी क्षेत्र से यह आशा की जाएगी कि वह उनके सचालन में राज्य की सहायता करेगा।

(iii) शेष सभी उद्योगों व उनके भावी विकास को सामान्यत निजी क्षेत्र पर छोड दिया जायगा।

प्रथम वर्ग मे 17 उद्योग शामिल किये गये जो इस प्रकार हैं– अस्त्र–शस्त्र, अणु शक्ति, लोहा व इस्पात, लोहा व इस्पात की भारी ढलाई व तैयारी, भारी सयत्र व मशीनरी, भारी बिजली के सयत्र, कोयला व लिग्नाइट, खनिज तेल, कच्चा लोहा, अलौह धातुएँ, अणु शक्ति के उत्पादन से सबधित खनिज, हवाई जहाज बनाना, हवाई यातायात, रेल यातायात, समुद्री जहाज बनाना, टेलीफोन व सबद्ध सामान का उत्पादन तथा विद्युत उत्पादन व वितरण।

द्वितीय वर्ग में 12 उद्योग शामिल किये गये जो इस प्रकार हैं–अन्य खनिज उद्योग, अल्यूमिनियम तथा अन्य अलौह धातुएँ जिन्हें प्रथम वर्ग में नहीं रखा गया, मशीनी औजार, लौह मिश्रित धातुए तथा औजारी इस्पात, रसायन उद्योग व एण्टीबायटिक्स और अन्य आवश्यक औषधियाँ, उर्वरक, संश्लिष्ट रबर, कोयले का कार्बनीकरण, रासायनिक घोल, सडक परिवहन व समुद्री परिवहन।

उल्लेखनीय है कि औद्योगिक नीति के अतर्गत तीनों वर्गों में प्रतिद्वन्द्विता के स्थान पर परस्पर सहयोग की भावना पर बल दिया गया है।

■ औद्योगिक नीति के अतर्गत उपर्युक्त वर्ग विभाजन से स्पष्ट है कि सभी

आधारभूत उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र के अतर्गत ही रखे गये।

3 क्षेत्रीय असतुलन को दूर करने पर भी बल दिया गया है।

4 लघु व कुटीर उद्योगो पर भी बल दिया गया हैं एतदर्थ विभेदक कर (Differential Tax) तथा प्रत्यक्ष अनुदान (Direct Subsidies) का प्रस्ताव रखा गया है।

इस प्रकार 1956 की औद्योगिक नीति नेहरू की तीव्र औद्योगिकरण की सकल्पना का प्रतीक है।

(ब) द्वितीय पचवर्षीय योजना—द्वितीय पचवर्षीय योजना के निर्माण हेतु नेहरु ने प्रसिद्ध अर्थशास्त्री महालनोबिस को आमन्त्रित किया। महालनोबिस ने अपने चार क्षेत्रीय विकास मॉडल (Four Sector Growth Model) के अतर्गत द्वितीय पचवर्षीय योजना तैयार की। यह मॉडल भारी उद्योगो के विकास पर आधारित है तथा यह रूस की नियोजन पद्धति का अनुसरण करता हुआ है। मॉडल के अतर्गत राष्ट्र के आर्थिक विकास का आधार तैयार करने के लिए प्रारभ मे बडे पैमाने के आधारभूत उद्योगों के विकास पर बल दिया गया है। द्वितीय पचवर्षीय योजना इस प्रकार नेहरु की आर्थिक विचारधारा के अनुरुप ही है।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र को लघु व कुटीर उद्योगों पर छोडा गया है। यद्यपि योजना मे खाद्यान्न आपूर्ति को पूर्णतया लोचदार माना गया है तथापि सिचाई परियोजनाओ पर विशेष ध्यान देकर भावी कृषि विकास की कल्पना की गयी है।

5 कृषि विकास

नेहरु ने राष्ट्र की दीर्घकालीन आर्थिक वृद्वि पर बल दिया। एतदर्थ उन्होने केवल औद्योगिकरण पर ही ध्यान नही दिया अपितु भारत के कृषि विकास पर भी ध्यान दिया। कृषि को भी नेहरु आधुनिक कृषि के रूप में परिवर्तित करना चाहते थे। स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व ही नेहरु ने जमीदारी प्रथा का प्रबल विरोध किया था। अनुपस्थित भू–स्वामी अर्थात ऐसे भू–स्वामी जो स्वय खेती नही करते नेहरु की दृष्टि में शोषण के प्रतीक हैं। उनका स्पष्ट मत था कि वर्तमान भू–धारण व्यवस्था समाप्त कर दी जानी चाहिए तथा किसान व सरकार के मध्य सीधा सम्बन्ध होना चाहिए। नेहरु ने जमींदार प्रथा का विरोध केवल शोषण व असमानता को लेकर ही नही अपितु उनका स्पष्ट मत था जमीदारी प्रथा अधिक उत्पादकता व अधिक उत्पादन के लिए व्यावहारिक बाधा भी है। उत्पादन मे तीव्र वृद्धि व उसका अधिक समान वितरण भारतीय समाज की दो मूलभूत आवश्यकताएँ हैं।

नेहरु का स्पष्ट मत था कि भारत मे भूमि की समस्या एक गभीर समस्या है तथा इसका कोई भी समाधान हमारी कृषि व भू–साधारण व्यवस्था मे क्रातिकारी परिवर्तन के बिना नही खोजा जा सकता । नेहरु ने भारत मे भूमि समस्या को ऐतिहासिक दृष्टि से

देखा, समझा व प्रस्तुत किया। इस सदर्भ मे उनके द्वारा प्रस्तुत निम्न विचार उल्लेखनीय हैं ⁷ –

(i) भू–स्वामित्व, उत्पादकता वृद्धि मे प्रमुख बाधा है। देश मे जनसख्या बहुत अधिक है व उसके अनुपात मे भूमि बहुत कम है। यह भारत की भू–नीति का केन्द्र बिन्दु होना चाहिए। नेहरु ने जमींदार व जागीरदारो को बिगडे हुए बच्चे कहा जिन्होने अपने आप को बौद्धिक दृष्टि से पूर्ण नपुसक बना लिया है। उन्होने अपने क्षेत्र के लिए कुछ भी नही किया है तथा लोगो की जमीन पर अपने को परजीवी बना लिया है। भू–धारण व्यवस्था महान ऐतिहासिक अपराध है। इसका उन्मूलन न केवल स्थिर समाज की पुरानी सस्थागत सरचना को समाप्त करेगा बल्कि उत्पादकता मे वृद्धि करेगा।

(ii) पूँजी की कमी व कृषि तकनीक के समुचित प्रयोग के प्रोत्साहन हेतु कृषि अधिकाधिक रूप मे सहकारिता के आधार पर की जानी चाहिए। यह सहकारी कृषि व्यक्ति मिलकर भी कर सकते हैं जिसमे भू–स्वामित्व अलग–अलग बना रहेगा तथा सयुक्त स्वामित्व मे भी कर सकते हैं। यहाँ ज्ञातव्य है कि नेहरु ने सामूहिक कृषि केवल बेकार भूमि पर कृषि करने की स्थिति मे कही हो अन्यथा उन्होने भारत के लिए सहकारी कृषि ही उपर्युक्त बतायी हैं। उन्होने लिखा हैं कि वर्तमान परिस्थिति में " मै नही समझता कि *भारत मे सामूहिक कृषि उचित है।" नेहरु ने बिना किसी मध्यवर्ती के छोटी–छोटी जोतो* पर आधारित कृषि को प्राथमिकता प्रदान की। नेहरु की यह विचारधारा वस्तुत व्यक्तिवाद व समाजवाद के मध्य एक समझौता है। राज्य को किसानों की आवश्यकता की स्थिति मे ही सहायता करनी चाहिए।

(iii) श्रम शक्ति व मशीन को एक दूसरे के पूरक के रूप में काम करना है न कि एक दूसरे के प्रतिस्थापक के रूप मे। राष्ट्रीय दृष्टि से उत्पादन मे श्रम शक्ति के प्रयोग को महत्ता दी जानी चाहिए। नेहरु के अनुसार अन्य देशो में अपनाए गये कृषि *विकास के "मॉडल" भारतीय परिस्थितियों में उपर्युक्त नहीं हैं। साधनो की उपलब्धता को* दृष्टिगत रखते हुए हमे कृषि विकास की अपनी व्यूह रचना विकसित करनी होगी। नेहरु के अनुसार श्रम शक्ति तथा मशीन के मध्य मूर्खतापूर्ण तुलना की जाती है। यदि एक मशीन वास्तव मे हजार या दस हजार श्रमिकों के बराबर काम कर सकती है तथा ऐसा करने पर दस हजार आदमी बेकार हो जाते हैं या भूखे मरते हैं तो मशीन का प्रयोग सामाजिक लाभ नहीं होगा। यदि भारत की तुलना अन्य छोटे पश्चिमी औद्योगिक राष्ट्र या कम जनसख्या घनत्व वाले विकसित राष्ट्र जैसे रूस व अमेरिका से की जाती है तो इसका कोई औचित्य नही है। वर्तमान स्थिति मे प्रत्येक देश में जो कि विकास करना चाहता है, नियोजन आवश्यक है।

(iv) कृषि पर बढते हुए जनसख्या दबाव से नेहरु अनभिज्ञ नहीं थे। उन्होने बताया कि 19वीं शताब्दी के मध्य मे केवल 55 प्रतिशत जनसख्या कृषि में सलग्न थी।

ब्रिटिश सरकार की गलत आर्थिक नीतियो का परिणाम है कि कृषि पर जनसख्या का दबाव बढता चला गया। उनका मत था कि उचित आर्थिक प्रणाली द्वारा समस्त जनसख्या को उत्पादक बनाने मे कोई कठिनाई नही हो सकती। उनके अनुसार भूमि के सदर्भ मे प्रमुख बाधा भूमि व जनसख्या का अनुपात नही है बल्कि 'भूमि का प्रबध है।'

(v) नेहरु का विश्वास था कि खाद्य अर्थव्यवस्था को स्थिरता प्रदान करने व किसान को उचित प्रतिफल दिलाने के लिए समस्त खाद्य व्यापार को धीरे–धीरे सस्थागत करने की आवश्यकता है।

उपर्युक्त अवधारणात्मक पृष्ठ भूमि के अनुसार नेहरु ने अपने प्रधानमत्रित्व काल मे कुछ प्रभावी कदम भी उठाये है । 1951 मे भूमि सुधार के अतर्गत समस्त मध्यवर्ती वर्ग को हटा दिया और इस प्रकार किसान व सरकार का सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया। चकबदी व सहकारी कृषि के क्षेत्र मे भी सराहनीय कार्य किया। नेहरु द्वारा जमींदारी प्रथा का उन्मूलन जिस शाति और बिना वर्ग सघर्ष के हुआ कभी नही भुलाया जा सकने वाला योगदान है।

दीर्घकालीन कृषि विकास को दृष्टिगत रखते हुए नेहरु ने सिचाई परियोजनाओं, बहु–उद्देशीय योजनाओ रासायनिक खाद के कारखानों कीटनाशक दवाओ का उत्पादन, कृषि मे यत्रीकरण आदि पर विशेष बल दिया। उन्होने भाखडा नागल परियोजना का शिलान्यास करते समय इसे आधुनिक युग का मदिर कहा।

6 मिश्रित अर्थव्यवस्था

नेहरु ने आर्थिक विचार व्यक्त करते हुए भारत मे भारत की परिस्थितियो के अनुकूल सिद्धात अपनाने व अपनाए जाने पर बल दिया है औरर इस सदर्भ में नेहरु की विचारधारा परस्पर विरोधी ध्रुवो का अनूठा मिलन हैं। यह मिलन या सम्मिश्रण अपना विशिष्ट रूप लिए हुए है। नेहरु एक और लोकतत्र के पक्षधर थे तो दूसरी ओर समाजवाद के पक्षधर थे। वह व्यक्तिवादी भी थे और समाजवादी भी। इस वैचारिक सम्मिश्रण ने उन्हें सार्वजनिक व निजी क्षेत्र दोनो का ही पक्षधर बनाया और उन्होने दोनो के सह–अस्तित्व के आधार पर भारत मे मिश्रित अर्थव्यवस्था का स्वरूप प्रतिपादित किया।

मिश्रित अर्थव्यवस्था का आशय है सार्वजनिक व निजी क्षेत्र दोनो का सहअस्तित्व। नेहरु के अनुसार दोनों ही क्षेत्र एक दूसरे के परस्पर पूरक होने चाहिए न कि प्रतिद्वन्दी। ऐसा होने पर राष्ट्र के ससाधनो का अनुकूलतम उपयोग राष्ट्र के आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करेगा। जैसाकि पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है नेहरु ने आधारभूत उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र मे ही स्थापित करने पर बल दिया व दूसरी ओर लघु व कुटीर उद्योगों का विकास निजी क्षेत्र पर छोडने की बात कही। लेकिन उन्होने निजी क्षेत्र को पूर्ण स्वतत्रता प्रदान नहीं की अपितु न्यायोचित सरकारी नियत्रण का पक्ष लिया।

नेहरु उत्पादन वृद्धि के प्रबल पक्षधर थे और उनका स्पष्ट मत था कि उत्पादन

वृद्धि के लिए यदि राष्ट्रीयकरण आवश्यक हैं तो प्रत्येक कदम पर राष्ट्रीयकरण कर दिया जाने चाहिए। यदि यह उत्पादन वृद्धि में बाधा है तो राष्ट्रीयकरण का कोई औचित्य नहीं है।

नेहरु जी का मत था कि यदि हम भारतीय अर्थव्यवस्था पर दृष्टिपात करें तो पाएगे हमारी अर्थव्यवस्था का बहुत बडा भाग कृषि निजी क्षेत्र के अतर्गत ही है। ग्रामीण व कुटीर उद्योग भी निजी क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं लेकिन दीर्घकालीन आर्थिक वृद्धि को दृष्टिगत रखते हुए बडे पैमाने के आधारभूत उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में ही स्थापित किये जाने चाहिए।

नेहरू जी ने अपने मिश्रित अर्थव्यवस्था के स्वरुप को वास्तविक रुप प्रदान किया। स्वाधीनता प्राप्ति के उपरात 6 अप्रेल, 1948 को राष्ट्रीय सरकार ने प्रथम औद्योगिक नीति की घोषणा में मिश्रित अर्थव्यवस्था कायम करने का सुझाव दिया। सरकार ने स्पष्ट किया कि आगामी कुछ वर्षों मे राज्य विद्यमान उत्पादन इकाइयों का राष्ट्रीयकरण करने के स्थान पर अपने कार्यक्षेत्रों में नई उत्पादन इकाइयाँ स्थापित करेगा। इस प्रकार औद्योगिक नीति के अनुसार निजी क्षेत्र तथा सरकारी क्षेत्र साथ–साथ कार्य करेंगे। उल्लेखनीय बात यह है कि निजी क्षेत्र को देश की सामान्य औद्योगिक नीति के अधीन कार्य करना होगा। मिश्रित अर्थव्यवस्था संबधी इन मूल विचारो के अनुसार सरकार ने उद्योगों को मोटे तौर पर चार वर्गों में विभाजित किया :–

(i) प्रथम वर्ग मे अस्त्र–शस्त्र और युद्ध सामग्री के निर्माण, परमाणु शक्ति के उत्पादन और नियत्रण तथा रेल परिवहन के स्वामित्व और प्रबंध पर केन्द्रीय सरकार का पूर्ण एकाधिकार रहेगा।

(ii) दूसरे वर्ग में जिन उद्योगों को शामिल किया गया, वे थे, कोयला, लोहा और इस्पात, वायुयान निर्माण, पोत निर्माण, टैलीफोन निर्माण, तार और बेतार यत्र और खनिज तेल। भविष्य में इन उद्योगों के अतर्गत विद्यमान निजी उद्यम का प्रश्न है, राज्य सरकार, किसी भी औद्योगिक इकाई को अपने स्वामित्वाधीन कर सकेगी।

(iii) तीसरे वर्ग मे उन मूलभूत महत्त्व के उद्योगों को सम्मिलित किया गया जिनका आयोजन और नियमन केन्द्रीय सरकार स्वयं करना आवश्यक समझती थी। इस वर्ग में कुछ महत्त्वपूर्ण आधारभूत उद्योगो को शामिल किया गया। इन उद्योगों मे नमक, मोटर गाडियाँ, ट्रेक्टर, बिजली, इंजीनियरी की भारी मशीनरी, मशीनी औजार, भारी रासायनिक सामान, उर्वरक, अलौह धातुएँ, रबड, सचालन शक्ति और औद्योगिक अल्कोहल, सूती और ऊनी कपडा, सीमेंट, चीनी, कागज और अखबारी कागज, वायु और नौ–परिवहन, खनिज और प्रतिरक्षा से सबधित उद्योग शामिल किए गए। अन्त में यह सकेत किया गया कि उक्त सूची अतिम नही है। यदि आवश्यकता हुई तो और उद्योग भी इस वर्ग मे शामिल किये जा सकते हैं।

(iv) चौथे वर्ग में औद्योगिक क्षेत्र के शेष उद्योगो को शामिल किया गया। इन उद्योगों मे निजी एव सहकारी उद्यम स्वतत्र रूप से कार्य कर सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वतंत्र भारत मे मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया। 1956 की औद्योगिक नीति मे भी अर्थव्यवस्था का स्वरुप मिश्रित ही था।

7 सामुदायिक विकास कार्यक्रम

ग्रामीण भारत के पुनर्निर्माण हेतु सामुदायिक विकास कार्यक्रम नेहरु की एक प्रमुख देन है। उन्होने इसे राष्ट्रीय नियोजन के अग के रूप मे अपनाया। इसके अतर्गत सामुदायिक परियोजनाएँ व राष्ट्रीय विस्तार सेवा इसके अतर्गत समाहित है जो कि मूलत भारत की ग्रामीण जनसख्या के समग्र कल्याण के लिए एक प्रयास है। इस कार्यक्रम के मुख्य पहलू के अतर्गत सभी कार्य कर रही विकास सस्थाओ को एकीकृत करना व सामाजिक परिवर्तन लाने हेतु नियोजित प्रयास करना है। यह सामाजिक परिवर्तन स्वय की सहायता व सहकारिता के द्वारा ग्रामीण परिवारो मे विशेष रूप से उन ग्रामीण परिवारों मे जो सदियो से शोषण के शिकार रहे हैं पर लागू होगा।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम को यद्यपि प्रथम योजना मे ही शामिल कर लिया गया था तथापि द्वितीय पचवर्षीय योजना के अतर्गत इसका स्वरूप अधिक स्पष्ट था। प्रशासनिक दृष्टि से खण्ड स्तर (Block Level) पर खण्ड विकास अधिकारी की नियुक्ति हुई। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे निम्न क्षेत्रो मे सराहनीय प्रगति हुई।

(i) सहकारी कार्यक्रमो का विकास विशेष रूप से सहकारी कृषि का विकास।

(ii) पचायतो का एक सस्था के रूप मे विकास ताकि वे ग्रामीण विकास में एक प्रभावी भूमिका अदा कर सके।

(iii) कृषि जोतो की चकबदी।

(iv) ग्रामीण व कुटीर उद्योगो का विकास।

(v) ग्राम समुदाय के कमजोर वर्ग विशेष रूप से छोटे किसान भूमिहीन कृषक कृषि श्रमिक व छोटे कारीगरो की सहायता के लिए कार्यक्रम निर्धारित करना।

(vi) महिलाओ व ग्रामीण युवाओ हेतु गहन कार्य।

(vii) आदिवासियो के लिए गहन कार्य।

वस्तुत नेहरु द्वारा प्रस्तुत सामुदायिक विकास कार्यक्रम के पीछे मूल भावना तो गाँधीजी के ग्राम स्वराज्य की थी लेकिन मार्ग इस सदर्भ मे नेहरु के स्वय का था।

8. भारत मे विदेशी पूँजी

प्रत्येक अल्प विकसित राष्ट्र को राष्ट्र के तीव्र विकास म पूँजी की समस्या का सामना करना पडता है। देश के अतर्गत पूँजी का अभाव होता है। यदि हमे तीव्र गति से विकास करना है तो पूँजी की आवश्यकता की परिपूर्ति हेतु विदेशी पूँजी पर निर्भरता वैज्ञानिक तकनीकी तथा औद्योगिक ज्ञान की आवश्यकता की स्थिति में और भी बढ़ जाती है। नेहरु ने विदेशी पूँजी की आवश्यकता की तीव्रता को समझा व विदेशी पूँजी को आमन्त्रित किया। इस विदेशी पूँजी के आमत्रण म नेहरु ने विदेशी विनियोजको को निम्न तीन आश्वासन दिये —[8]

(i) विदेशी उपक्रमों पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नही लगाया जाएगा जो कि भारतीय उपक्रमो पर सामान्यतया लागू नही होता है।

(ii) विदेशी निवेशकर्ताओं को नकद लाभ की अनुमति प्रदान की गयी तथा विदेशी विनियम को ध्यान मे रख कर अपने पूँजी विनियोग के पुन प्राप्ति का आश्वासन दिया गया।

(iii) सरकार ने अपरिहार्य परिस्थितियों मे समान क्षतिपूर्ति की गारटी भी विदेशी निवेशकर्ताओं को प्रदान की।

नेहरु के आश्वासनो को दृष्टिगत रखते हुए विदेशी निवेशकर्त्ता भारत मे पर्याप्त मात्रा मे आये। भारत मे उनके प्रवेश के पीछे मूल कारण यह था कि भारत मे निवेशित पूँजी पर लाभ की दर अधिक थी। उनके स्वय के देशो मे प्रतियोगिता के कारण लाभ की दर कम थी।

नेहरु ने तीव्र औद्योगिक विकास हेतु अतर्राष्ट्रीय वित्त सस्थाओं व अन्य स्रोतो से केवल भारत मे पूँजी प्राप्त की। उनका यह स्पष्ट मत था कि इस पूँजी आगमन के दुष्परिणाम केवल भारत मे स्थापित उपक्रमो मे उत्पादन आरभ होने तक ही रहेगे तथा बाद मे स्वत समाप्त हो जाएगे। लेकिन नेहरु जी स्वय तो सार्वजनिक उपक्रमो में पर्याप्त मात्रा मे उत्पादन प्रारभ होने तक हमारे मध्य नही रहे। आगामी पचवर्षीय योजनाओ मे भी नियोजित विकास हेतु विदेशी पूँजी की आवश्यकता बढती चली गयी ओर आज हम विदेशी ऋण के जाल मे फस चुके है. व विदेशी ऋण भुगतान एक प्रमुख समस्या हो गयी है।

9. ने रु और गाँधी : तुलनात्मक विवेचन

आधुनिक भारतीय आर्थिक विचारों के अतर्गत सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है गाँधी व नेहरु के आर्थिक विचार। नेहरु के व्यक्तित्व व विचारो पर गाँधीजी के सान्निध्य का व्यापक प्र ाव पडा। गाँधीवाद के अनेक तत्त्वों से मौलिक असहमति रखते हुए भी नेहरु गाँधी के अनन्य अनुयायी थे। गाँधीजी के प्रति नेहरु के मन मे श्रद्धा का भाव था तथा उनसे वैचारिक असहमति के पश्चात भी उनके नेतृत्व मे नेहरु की गहरी आस्था थी। सार्वधिक वैचारिक असहमति आर्थिक विचारधारा के सदर्भ मे थी।

गाँधीजी के आर्थिक विचार मूलतः जीवन मूल्यो पर आधारित थे जिनमे नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, न्यायिक मूल्य समाहित थे। आर्थिक दर्शन का आधार सत्य और अहिसा जैसे तत्त्व थे। मानव मात्र के कल्याण की भावना से गाँधीजी परिपूर्ण थे। दूसरी ओर नेहरु की आर्थिक विचारधारा मे भारतीय मूल्यो के साथ–साथ पाश्चात्य जगत की आर्थिक व भौतिक प्रगति स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। गाधी व नेहरु दोनों के आर्थिक विचारो का विस्तृत अध्ययन करने के पश्चात दोनो की तुलना करने पर निम्न तथ्य उल्लेखनीय है –

(i) नेहरु ने जीवन–स्तर (Standard of Living) में सुधार पर बल दिया जबकि गाँधीजी ने जीवन के स्तर (Standard of Life) में सुधार पर बल दिया। गाँधीजी के जीवन के स्तर मे आध्यात्मिक व सामाजिक मूल्य समाविष्ट हैं।

(ii) नेहरु जी का मत था कि हमें पूर्व और पश्चिम के मध्य किसी प्रकार का भेद करने की कोई आवश्यकता नहीं है जबकि गाँधीजी पाश्चात्य भौतिकवादी प्रगति के प्रबल विरोधी थे।

(iii) नेहरु जी का दृष्टिकोण अधिकतम उत्पादन की प्राप्ति पर आधारित था और उन्होंने उत्पादन व रोजगार दोनो मे से उत्पादन को प्राथमिकता प्रदान की जबकि गाँधी जी की दृष्टि मे रोजगार की प्राप्ति सर्वोपरि हैं।

(iv) नेहरु श्रम की प्रतिष्ठा उस रूप में स्थापित नहीं कर पाये जिस रूप में गाँधीजी का मतव्य था। नेहरु की विचारधारा मे श्रम की तुलना म मशीन को अधिक महत्त्व था यद्यपि श्रम कानूनों के माध्यम से उन्होने श्रम को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया।

(v) नेहरु जी आधुनिकतम तकनीक व मशीनो के प्रबल समर्थक थे तथा आधुनिक भारत का निर्माण व दीर्घकालीन आर्थिक वृद्धि का आधार इस मशीनीकरण के रूप में ही देखते थे। इस मशीनीकरण के अभाव म वे आर्थिक विकास की कोई कल्पना नहीं करते थे जबकि दूसरी ओर गाँधीजी मशीनीकरण के प्रबल विरोधी थे तथा मशीन को सबसे बडा शत्रु समझते थे।

(vi) नेहरु बडे पैमाने के उद्योगों की स्थापना पर आधारित औद्योगिकरण के पक्षधर थे तथा इसी के माध्यम से भारत का आधुनिकीकरण चाहते थे। दूसरी ओर गाँधीजी का स्पष्ट मतव्य था भारत की आर्थिक प्रगति ग्रामीण व कुटीर उद्योगो के द्वारा ही सम्भव है।

(vii) गाँधीजी समता पर आधारित समाज की कल्पना करते थे। सत्य ओर अहिंसा उनके विचारों का मूल था। धन की असमानता को समाप्त करने के लिए उन्होने एतदर्थ 'ट्रस्टीशिप' का विचार प्रस्तुत किया जबकि नेहरु ने उनके ट्रस्टीशिप की कटु आलोचना की। उन्हीं के शब्दों में 'यदि ट्रस्टीशिप के विचारों में कुछ है तो हम ब्रिटिश सरकार के इस दावे का क्यों विरोध करते हैं कि ब्रिटेन भारत का ट्रस्टी है।'

(viii) गाँधी जी ने उत्पत्ति के साधनो पर सरकारी नियत्रण को उचित नहीं माना किन्तु नेहरु की विचारधारा समाजवाद से प्रभावित थी ओर वे उत्पत्ति के साधनो पर सरकारी नियत्रण के पक्ष में थे और धीरे–धीरे सार्वजनिक क्षेत्र को बढाना चाहते थे।

(ix) गाँधीजी प्रत्येक दृष्टि से भारत को आत्म निर्भर बनाना चाहते थे लेकिन नेहरु जी का विचार था कि विश्व में कोई भी राष्ट्र अपने आपको आत्म निर्भर बनाने का दावा नही कर सकता है क्योकि वर्तमान युग परस्पर अतर्राष्ट्रीय निर्भरता का युग है।

(x) गाँधी जी ने ग्राम को एक पूर्ण आत्म निर्भर इकाई बनाकर ग्राम स्वराज्य का मत व्यक्त किया। नेहरु जी आत्म निर्भरता को इस ग्राम स्वराज्य के रूप मे प्राप्त करने के तो विरोधी थे परन्तु उन्होंने ग्राम स्वराज्य की मूल भावना को दृष्टिगत रखकर सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

(xi) नेहरु जी समाजवादी पद्धति पर आधारित समाज की रचना के पक्षधर थे तो दूसरी ओर गांधी जी सर्वोदय पर आधारित समाज रचना पर जोर दे रहे थे।

10. नेहरु : एक मूल्यांकन

नेहरु एक युग दृष्टा थे। भारत के स्वाधीन होने से पूर्व ही वे आधुनिक भारत की कल्पना कर चुके थे ओर एतदर्थ प्रधानमत्री के रुप मे यथा संभव योगदान भी किया। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत भारत ही नव स्वतन्त्र राष्ट्रों में एक ऐसा राष्ट्र है जो नेहरु के प्रधानमत्रित्व मे शीघ्र ही विश्व मे अपना एक विशिष्ट स्थान बना पाया। नेहरु अतर्राष्ट्रीय स्तर पर महान व्यक्ति थे।

नेहरु के आर्थिक विचारो पर दो महान आर्थिक विचारकों का स्पष्ट प्रभाव हैं। गाधीजी के साथ नेहरु निकटस्थ रुप मे जुडे रहे अत गाँधीजी के चिन्तन की उन पर अमिट छाप हैं यद्यपि नेहरु के विकास का मार्ग गाँधीजी के मार्ग से भिन्न है। कार्ल मार्क्स के साम्यवादी व प्रगतिशील विचारो से नेहरु अभिभूत थे और उन्होने राष्ट्र के आर्थिक विकास हेतु तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए अपनाने का प्रयास भी किया। गाँधी व मार्क्स के सयुक्त प्रभाव के कारण नेहरु के विचारो को गांधीवादी मार्क्सवाद के रूप मे समझा जाता है।

नेहरु के आर्थिक चिन्तन में पूर्व और पश्चिम, पुरातन और नवीन, अध्यात्मिक और भौतिक, व्यक्ति वादी और समाजवादी, पूँजीवादी और साम्यवादी तत्त्वों के सहज समावेश ने उनके चिन्तन को एक विलक्षण स्तर प्रदान किया।

नेहरु के आर्थिक चिन्तन का विलक्षण स्वरूप नेहरु की भारत के आधुनिकीकरण हेतु अपनायी गयी नीति के अतर्गत स्पष्ट परिलक्षित होता है। उन्होने अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में परस्पर पूरकता की कल्पना की है। सार्वजनिक व निजी क्षेत्र को परस्पर पूरक मानकर मिश्रित अर्थव्यवस्था का सिद्धात विकसित किया है। बडे पैमाने के आधारभूत उद्योग तथा लघु व कुटीर उद्योगो में परस्पर आश्रितता की अभिकल्पना कर औद्योगिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया। कृषि व उद्योग दोनो को एक दूसरे की आवश्यकता है यह तथ्य स्थापित कर राष्ट्र के तीव्र आर्थिक विकास की कल्पना की है। राष्ट्र के समग्र विकास पर बल देते हुए तीव्र औद्योगिकरण के मार्ग द्वारा दीर्घकालीन आर्थिक वृद्धि उनका मुख्य ध्येय है। नेहरु समस्त विश्व में भारत की पुन प्रतिष्ठा करना चाहते थे।

इस प्रकार नेहरु को आधुनिक भारत के निर्माता के रूप मे सदैव याद किया जाता रहेगा।

संदर्भ

1 *प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार–जवाहर लाल नेहरु के भाषण पृष्ठ 108*

2 प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार–जवाहर लाल नेहरु के भाषण पृष्ठ 108

3 जवाहर लाल नेहरु डिस्कवरी ऑफ इंडिया पृष्ठ 406

4 प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार–जवाहर लाल नेहरु के भाषण पृष्ठ 105

5 *प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार–जवाहर लाल नेहरु के भाषण पृष्ठ 149*

6 *भारत सरकार प्रॉब्लम्स इन दी थर्डप्लान पृष्ठ 35*

7 आर पी दुबे जवाहर लाल नेहरु–पृष्ठ 176 (ए स्टडी इन आइडियोलोजी एण्ड सोसियल चेंज)

8 आर पी दुबे–जवाहर लाल नेहरु पृष्ठ 192 (ए स्टडी इन आइडियोलोजी एण्ड सोसियल चेंज)

9 जवाहर लाल नेहरु एन ऑटोबायोग्राफी पृष्ठ 553

प्रश्न

1 नेहरुजी के अनुसार अर्थशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य क्या होना चाहिए ?

2 नेहरुजी ने आर्थिक नियोजन का उद्देश्य किसे माना है ? बताइये।

3 नेहरुजी के कृषि विकास सम्बन्धी विचारो को स्पष्ट कीजिए।

4 *जवाहर लाल नेहरु के प्रमुख आर्थिक विचारो को संक्षेप में लिखिए।*

5 नेहरु तीव्र औद्योगिकरण के साथ–साथ कृषि को भी आधुनिक स्वरूप प्रदान करना चाहते थे। क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? यदि हाँ तो कारण बताइये।

6 नेहरु को गाँधी का अनुयायी तो माना जा सकता है परन्तु गाँधीवादी आर्थिक विचारो का नही स्पष्ट कीजिए।

7 *औद्योगिकरण के बिना भारत का आर्थिक विकास सभव नहीं है। नेहरु के इस कथन को स्पष्ट करते हुए उनकी आर्थिक विकास की इस नीति की भारतीय* संदर्भ मे आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

8 मिश्रित अर्थव्यवस्था तथा सामुदायिक विकास पर नेहरु के विचारो पर टिप्पणी लिखिए।

9 नैहरु भारत मे आर्थिक नियोजन के जनक हैं। इस कथन को स्पष्ट करते हुए नेहरु के आर्थिक नियोजन सम्बन्धी विचारो की विवेचना कीजिए।



20

राम मनोहर लोहिया
(Ram Manohar Lohia : 1910-1967)

राम मनोहर लोहिया का जन्म 23 मार्च, 1910 को अयोध्या के निकट अकबरपुर गाँव मे हुआ। उनके पिता श्री हीरालाल भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता थे। लोहिया मात्र 2 वर्ष 6 माह के ही हुए थे कि उनकी माता का देहान्त हो गया। माँ के अभाव मे दादी ने पालन–पोषण का भार सँभाला। लोहिया की प्रारभिक शिक्षा घर के निकट स्थित टडन पाठशाला मे हुई।

लोहिया को 5 वी कक्षा मे विश्वेश्वर नामक हाई स्कूल मे प्रवेश दिलाया गया। लेकिन उनके पिता इस अतराल मे बम्बई आ गये और लोहिया ने बम्बई के मारवाडी विद्यालय से 1925 मे मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की। 1927 मे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से इन्टर परीक्षा उत्तीर्ण की। 1929 मे कलकत्ता के विद्यासागर कॉलेज से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की तथा उच्च शिक्षा हेतु लोहिया ने भारत से लदन के लिए प्रस्थान किया। लदन में मात्र एक सप्ताह रूके और बर्लिन पहुँच गये। बर्लिन विश्वविद्यालय में लोहिया ने प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो बर्नर जेम्बार्ट को अपना शिक्षक चुना। विश्वविद्यालय के नियमानुसार साक्षात्कार हेतु लोहिया प्रो जेम्बार्ट के समक्ष उपस्थित हुए। उनके कुछ प्रश्नो का लोहिया ने जर्मन भाषा की अनभिज्ञता के कारण अंग्रेजी मे उत्तर दिया। प्रो जेम्बार्ट ने मुस्कराकर कहा "मैं अग्रेजी जानता ही नहीं।" यह सुनकर लोहिया बहुत दुखी हुए और कहा कि मैं आपसे तीन माह बाद मिलूँगा। तीन माह तक जर्मन भाषा का गहन अभ्यास कर प्रो जेम्बार्ट के पास पहुँचे। प्रो जेम्बार्ट उनकी निष्ठा से अत्यन्त प्रसन्न हुए व लोहिया को अध्ययन की अनुमति सहर्ष प्रदान की। 1932 में लोहिया ने नमक सत्याग्रह विषय पर अपना शोधप्रबध पूरा किया व बर्लिन विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट (पी एच डी) की उपाधि प्राप्त की।

राम मनोहर लोहिया मात्र 14 वर्ष की आयु मे एक प्रतिनिधि के रूप मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के "गया" में आयोजित अधिवेशन (1924) मे सम्मिलित हुए। यह एक अनहोनी घटना थी। उस समय लोहिया हाई स्कूल मे ही पढते थे।

1927 मे कलकत्ता में अखिल–बग विद्यार्थी परिषद का सम्मेलन हुआ। सम्मेलन की अध्यक्षता हेतु सुभाष चन्द्र बोस आमत्रित थे किन्तु वे न आ सके। उनकी अनुपस्थिति

मे राम मनोहर लोहिया को ही सर्व सम्मति से अध्यक्ष बनाया गया। लोहिया ही पहले गैर बगाली युवक थे जिन्होने बगाल की सक्रिय राजनीति मे इस अल्पायु मे ही विशिष्ट स्थान बना लिया था।

1932 मे बर्लिन विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् लोहिया 1933 मे भारत लौटे। उन्होने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय मे अर्थशास्त्र–प्रवक्ता हेतु मालवीय जी से सपर्क किया लेकिन अन्य किसी की नियुक्ति पूर्व में ही हो जाने के कारण यह सभव न हो सका। लोहिया ने 1934 मे आजीवन राष्ट्र सेवा का निर्णय ले लिया। इसी वर्ष यह काग्रेस के अतर्गत गठित काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी मे जुड गये व मुख पत्र 'दी काग्रेस सोशलिस्ट (The Congress Socialist) का उन्होने सपादन भी प्रारभ कर दिया। 1942 में भारत छोडो आदोलन मे सक्रिय भाग लेने के कारण गिरफ्तार कर लिये गये। 1946 मे ही वे जेल से रिहा हो सके। फरवरी 1947 मे काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को काग्रेस से अलग कर दिया। लोहिया का अन्य समाजवादियो के साथ नेहरू को समर्थन को लेकर विवाद बना रहा अतत 1964 मे उन्होने सयुक्त समाजवादी दल की स्थापना की जिससे वे मृत्यु पर्यन्त जुडे रहे।

लोहिया विचारो की दृष्टि से मार्क्स की तुलना में गाँधी के अधिक नजदीक थे। स्वतत्रता प्राप्ति के उपरान्त उन्होने नेहरू की नीतियो व काग्रेस की प्रखर आलोचना की है।

लोहिया का नेहरू जी से प्रथम सपर्क 1928 के कलकत्ता मे आयोजित युवक सम्मेलन मे हुआ। दोनो परस्पर एक दूसरे से अत्यधिक प्रभावित हुए। 1935 मे आयोजित भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के लखनऊ सम्मेलन मे नेहरु जी ने लोहिया को पर–राष्ट्र विभाग का दायित्व सौंपा। 1946 मे काग्रेस अधिवेशन मे लोहिया ने नेहरू जी के समक्ष काग्रेस मे एक व्यक्ति एक पद का प्रस्ताव रखा जिसे नेहरू ने अस्वीकार कर दिया। लोहिया ने स्वतत्र भारत मे नेहरू द्वारा अपनायी गयी आधुनिकीकरण नीति की प्रबल आलोचना की।

लोहिया के विचार उनके द्वारा लिखित निम्न प्रमुख पुस्तको मे व्याप्त हैं–

(i) आसपेक्टस ऑफ सोशलिस्ट पॉलिसी

(ii) व्हील्स ऑफ हिस्ट्री

(iii) मार्क्स गाँधी एण्ड सोसलिज्म

(iv) इडिया चायना एण्ड नर्दर्न फ्रण्टीयर्स

(v) दी कास्ट सिस्टम

लोहिया एक समाजवादी विचारक

लोहिया ने समाजवाद को समानता एव सपन्नता का प्रतीक बताया। समाजवाद

के अतर्गत जो प्रमुख तत्व उभरकर सामने आये थे जैसे सम–सामयिक राजनीतिक एव सामाजिक व्यवस्था से इंकार होना, वर्तमान अव्यवस्था को वर्तमान राजनीति एव सामाजिक भ्रष्ट सस्थाओं की देन मानना, नैतिक एवं मानवीय गुणों पर आधारित नवीन व्यवस्था की शुरूआत करना, नवीन जीवन मूल्यों के लिए क्रातिकारी मार्ग अपनाना आदि को लोहिया ने आत्मसात किया और उसे अधिक सशक्त व प्रभावी रूप में प्रस्तुत किया। *लोहिया का समाजवाद शोषण मुक्त समाज की ऐसी संकल्पना है जिसमे दासता,* अमानवीयता, असहिष्णुता, चरित्र हीनता, भेदात्मकता आदि अमांगलिक दोषो से मानव जीवन को बचाया जा सकता है, इसमे वर्ग विहीन समाज की स्थापना के लिए राज्य या समाज को अधिक महत्व देने की योजना है। साथ ही व्यक्तिगत जोखिम एवं प्रतिस्पर्द्धा का अंत करना भी इसके मूल मे है। इसमे उन्नति के समान अवसरो की प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया गया है। लोहिया ने इसे मानवतावाद का पोषक और विश्व की स्वतन्त्रता के लिए सशक्त विचार बताया है। लोहिया ने भारत मे समाजवाद का प्रारंभ गाँधी जी के विचार व कार्यो से माना है तथा उसी परिप्रेक्ष्य मे स्वयं के विचार प्रस्तुत किये हैं। उन्हीं के शब्दों में "भारत में समाजवाद या समाजवादी आंदोलन कब प्रांरभ हुआ, इस बात को लेकर विवाद हो सकता है, विवाद इस बात को लेकर भी हो सकता है कि समाजवाद का अर्थ क्या है? एक मेरा जैसा व्यक्ति गाँधी जी के विचार व कार्यों को भारत में समाजवाद का प्रांरभ मानता है क्योंकि समाजवाद को एक विशेष प्रकार का सामाजिक परिवर्तन मानना गलत होगा। यदि हम हमारा ध्यान गरीबी व असमानता दूर करने के लिए संपत्ति के राष्ट्रीयकरण पर केन्द्रित करें, जैसा कि समाजवाद में सुझाया गया है, और अन्य पक्षों की उपेक्षा करें तो इसका आशय होगा गाँधीजी के विचारों को समाजवाद की परिधि से बाहर करना होगा। लेकिन यदि हम केवल चरित्र निर्माण, व्यक्तिगत सुधार और दरिद्र नारायण की अवधारणा को ही सब कुछ मानें और "दया" का मार्ग स्वीकार करें तो भी उचित नहीं होगा क्योंकि धनी इस बात को दयनीय रूप में ही लेंगे वे न तो स्वयं को निर्धन मानेंगे और न ही निर्धनों के साथ समायोजित हो पाएँगे। मेरे विचार में समाजवाद इससे (गाँधीजी के विचारों से) अधिक कुछ और भी है। आप इसे धर्म या आध्यात्मवाद कह सकते है। यदि हम किसी एक पक्ष को ही समाजवाद मानें तो अनुचित होगा।"

लोहिया ने जीवन पथ के ध्रुवो के मध्य अपने समाजवाद को समाहित किया है और "गरीब आदमी के रोटी में भगवान" को भारत में सच्चा समाजवाद बताया है। उन्होंने बताया कि "आध्यात्मवाद और भौतिकवाद, व्यक्तिगत सुधार और सामाजिक सुधार, आदर्श और सपत्ति का राष्ट्रीयकरण वर्तमान समय में दो अतिम छोर है और इन दोनों के मध्य किसी न किसी प्रकार सवाद या समायोजन स्थापित करना है जिससे ये दोनों मानव हृदय की प्रभावी सहज प्रवृत्ति विश्व को परिवर्तित कर सके। प्रयास पहले भी हुए लेकिन

परिणाम भयानक रहे। चाहे भौतिक वाद हो या पूँजीवाद दोनो ही परस्पर एक दूसरे के सहायक हो सकते हैं।"

डॉ राम मनोहर लोहिया ने नेहरु के समाजवाद की कटु आलोचना की। नेहरू के समाजवाद के प्रति लोहिया ने कहा कि "मैं उस समाजवाद की बात कर रहा हूँ जिसे आज अधिकाश जनता समाजवाद कहती है और वर्तमान मे प्रभावी है। यह नेहरू का समाजवाद है जो आज दिखायी दे रहा है। इसका जन्म 1927–28 मे हुआ था। जब जनता नेहरू को भारत मे समाजवाद का जनक कहती है तब 1928 की बात करती है। नेहरू ने उस समय जो बात कही वह वस्तुत स्वाधीनता प्राप्ति हेतु प्रभावी आदोलन चलाने के लिए एक प्रकार का वामपथी राष्ट्रवाद था। आर्थिक पक्ष की दृष्टि से भारतीय समाजवाद मे औद्योगिकरण व्यावसायिक सहकारिता राष्ट्रीयकरण आर्थिक नियोजन आदि नीतियाँ समाहित थी। इसका सबसे बडा दोष यह है कि इसका प्रारभ वामपथी राष्ट्रवाद के रूप मे हुआ जो कि आज भी जारी है। सामाजिक सुधार या धन के सामाजिकरण के माध्यम से गरीबी व असमानता दूर करना इसके प्रेरणा स्रोत नही हैं।"

राम मनोहर लोहिया का दृढ विश्वास था कि भारत की सामाजिक सास्कृतिक पृष्ठभूमि सोवियत रूस तथा अन्य समाजवादी राष्ट्रो से भिन्न है। अत **कार्ल मार्क्स की यह विचारधारा कि "राष्ट्रीयकरण सभी समस्याओ का हल है", भारत में लागू नही हो सकती।** यद्यपि नेहरू ने भारत मे समाजवाद राष्ट्रीयकरण के माध्यम से ही थौपा है। लोहिया के अनुसार भारत पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पडा है। भारत मे भाषा जाति धर्म क्षेत्र या प्रान्त प्रभावी कारक है। ये सवेदनशील मूल प्रवृत्तियाँ हैं और जब तक इन बाधाओ का निराकरण नही किया जायगा अर्थिक समानता की कल्पना भी सभव नही है।

कोई समाजशास्त्री जो यह कहता है कि इस दिल या दिमाग की इन सहज प्रवृत्तियो मे परिवर्तन के बिना रोटी की समस्या दूर कर सकता है तो निश्चय ही यह मूर्ख है और कुछ नही जानता। वह जो यह कहता है कि औद्योगिकरण के माध्यम से कारखानो की सख्या गुणक रूप मे बढाकर अन्य समस्याएँ जैसे जाति भाषा धर्म आदि स्वत ही हल हो जाएँगी वस्तुत दुनियाँ आदमी या भारत को वह समझता ही नही है।"

इस प्रकार लोहिया के समाजवाद मे जीवन के सभी पहलू समाहित है। उनके अनुसार एक ओर सामूहिक सपदा मे वृद्धि करनी होगी व दूसरी ओर निजी सपदा से जनता का लगाव दूर करना होगा। ये दोनो कार्य मिलकर ही भारत मे नया समाजवाद स्थापित कर सकते है।

भारत मे राष्ट्रीय आय का असमान वितरण

डॉ राम मनोहर लोहिया की अवधारणा है कि समस्त ससार मे राष्ट्रीय आय का असमान वितरण देखने को मिलता है। सारे ससार में छोटे ओर बडे आदमी के बीच अतर

है, लेकिन भारत मे यह अतर मारक है। गोरे देशो मे चाहे पूँजीवादी अथवा साम्यवादी हो—लोगो की आय मे दो, पाँच, सात गुने का अतर होता है। यह अतर भारत मे 50,100 और 300 गुने का साधारण तौर पर होता है। इसका परिणाम है कि एक तरफ भोजन ओर कपडा नही है और दूसरी तरफ आधुनिकता और शौकीनी का सदा बढता परिहास है। यह अतर तब और मुखर होता है जब उसके साथ जातीय, धार्मिक व राजनीतिक शक्तियाँ और आ मिलती है। लोहिया ने ससद मे इस असमानता व गरीबी के आकडे अति प्रभावी रूप से प्रस्तुत किये तथा तत्कालीन प्रधानमत्री द्वारा प्रस्तुत राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि के समको पर गहरा प्रहार था।

लोहिया ने सरकार द्वारा प्रस्तुत समकों के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि भारत की 27 करोड जनता मात्र 3 आने प्रतिदिन पर जीवन निर्वाह कर रही है। इस निष्कर्ष को उन्होने विभिन्न आधारों पर गणना करके देश के समक्ष प्रस्तुत किया। ये निष्कर्ष इस तथ्य पर आधारित थे कि देश की 10 प्रतिशत जनसख्या के पास राष्ट्रीय आय का 50–60 प्रतिशत भाग निहित है। यह तथ्य भी सरकारी समको से स्पष्ट है।

तत्कालीन प्रधानमत्री पडित जवाहर लाल नेहरू ने 22 अगस्त 1960 को ससद मे वक्तव्य दिया कि राष्ट्रीय आय मे 42 प्रतिशत व प्रति व्यक्ति आय मे 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। जब लोहिया ने यह प्रश्न किया कि यह वृद्धि कहाँ चली गयी है? तब सरकार ने 14 अक्टूबर 1960 को राष्ट्रीय आय वितरण समिति गठित की। लेकिन इस समिति की कार्य प्रणाली को देखकर लोहिया को उसी प्रकार का एक प्रश्न फिर करना पडा कि यह समिति कहाँ चली गयी? ससद के माध्यम से लोहिया ने समस्त देश का ध्यान आकृष्ट किया व आर्थिक असमानता व गरीबी के सदर्भ में ससमक निम्न वक्तव्य दिया "हिन्दुस्तान में एक एकड से कम भूमि पर खेती करने वाले 34 प्रतिशत परिवार हैं व 14 प्रतिशत जमीन एक प्रतिशत परिवार के पास चली जाती है। इस आकडे से कुछ खतरनाक नतीजा निकलता है। मैंने तो 27 करोड के लिए तीन आने वाली बात कहीं थी। अब मैं यह कहना चाहता हूँ कि 10–15 करोड हिन्दुस्तानी सिर्फ दो आने की आय पर रहते हैं।"

डॉ. लोहिया ने तीन आने से कम के समकों को प्रामाणिक समकों के आधार पर सिद्ध करते हुए आगे कहा कि "ये खुद सरकार के ही आकडे हैं, इन सरकारी अक शास्त्रियो मे कुछ होड भी चला करती है। एक सस्था यहाँ दिल्ली में ही काम करती है जिसको कहते हैं व्यावहारिक आर्थिक अनुसधान की राष्ट्रीय परिषद (National Council of Applied Economic Research-NCAER)। उसने 29 जिलों के नाम दिये हैं जिनकी प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 100 रु के नीचे बैठती है। उदाहरण के लिए यह औसत दरभगा मे 96 रू प्रति व्यक्ति, छपरा मे 96 रू प्रति व्यक्ति, देवरिया में 98 रू प्रति व्यक्ति तथा टेहरी गढवाल में 84 रू प्रति व्यक्ति आय वार्षिक है। अगर मेरी पिछली

विधि के अनुसार उच्च जनता की 50 प्रतिशत आय को अलग कर दिया जाय तो यह औसत शेष 10 प्रतिशत जनता के लिए 3 आने प्रतिदिन से भी कम बैठती है।"[6]

डॉ लोहिया ने आर्थिक विषमता को दूर करना परम आवश्यक बताया। यहाँ उन बुनियादी विधियो व बिन्दुओ पर सक्षिप्त चर्चा की जा रही है जो लोहिया के मौलिक एव प्रभावी चिन्तन से सामने आएँ हैं –

(अ) आय का अधिकतम तथा न्यूनतम अतर कम से कम हो। एक और करोडपति व दूसरी ओर अर्द्ध नग्न व भूखा इसान ये दो भयानक असमानताएँ समाज की धुरी को हिला देती है। दोनो को प्रकृति ने एक–सा बनाया है। एक जगह जन्म दिया है फिर भी दोनो मे इतना अतर है जो हमारी सामाजिक सचेतना को खोखला कर रहा है।

(ब) कर्मचारियों के वेतन में भी अतर है। एक समान कार्य हेतु केन्द्रीय कर्मचारी व राज्य कर्मचारी के वेतन में अतर है। स्थायी व अस्थायी कर्मचारी के वेतन में अतर है। निजी और सरकारी क्षेत्र के कर्मचारी के वेतन मे अतर व्याप्त है।

(स) लोहिया के अनुसार सरकार अधिकारियो को सुविधा के नाम पर जो व्यय कर रही है वह वस्तुत गरीबों के साथ अन्याय व धोखा है तथा उससे विषमता में वृद्धि हो रही है। इस अनावश्यक शाही खर्च मे तुरत कमी की जानी चाहिए।

(द) देश की कुल आमदनी का 67 प्रतिशत व्यय उन लोगों पर हो रहा है जो कि विशेषाधिकार प्राप्त हैं बडे हैं साहूकार हैं और शेष 33 प्रतिशत आम जनता पर। वस्तुत यह अतर सिद्ध करता है कि सरकार स्वय भेदभाव की इस खाई को पाटना नहीं चाहती। आवश्यकता इस बात की है कि देश की आय आम जनता के हित में व्यय की जानी चाहिएँ।

(य) लोहिया के अनुसार न्यूनतम व अधिकतम वेतन के मध्य अनुपात 1 10 से अधिक नही होना चाहिए।

(र) लोहिया औसत आय की वृद्धि के पक्ष में थे। उनकी मान्यता थी कि किसी देश की औसत आय मे वृद्धि उस देश की सपन्नता की सूचक है। वे मानते थे कि आय बढेगी तो उत्पादन मे स्वत वृद्धि होगी। इससे आर्थिक पिछडापन भी दूर होगा और लोगो का जीवन–स्तर भी सुधरेगा।

राष्ट्रीयकरण सबधी विचार

डॉ लोहिया उद्योगो के पूर्ण राष्ट्रीयकरण के पक्ष में थे। उन्होने कहा कि निजी व सार्वजनिक दोनो के सह–अस्तित्व की स्थिति मे दोनो एक दूसरे से परस्पर बुराइयाँ ग्रहण करते हैं। निजी क्षेत्र सार्वजनिक क्षेत्र की कुप्रबध (Mismanagement) की बुराई ग्रहण करता है तो निजी क्षेत्र शोषण की बुराई सार्वजनिक क्षेत्र को प्रदान करता है हमारे देश मे दोनो के सह–अस्तित्व का जो प्रयोग किया गया है वह निष्फल रहा है।

डॉ लोहिया ने धीरे–धीरे राष्ट्रीयकरण करने की नीति का विरोध किया है। उन्होंने कहा कि राष्ट्रीयकरण एक साथ ही किया जाना चाहिए। निजी क्षेत्र शोषण की जड है इसे एक साथ समाप्त करना होगा। औद्योगिक क्षेत्र के अतर्गत निजी क्षेत्र घरेलू पारिवारिक उद्योग तक ही सीमित होना चाहिए। जहाँ एक ही परिवार के व्यक्ति श्रम करके एक छोटी–सी औद्योगिक इकाई को सचालित करते है उसे ही राष्ट्रीयकरण से मुक्त रखना चाहिए।

राष्ट्रीयकरण के उपरान्त तीव्र औद्योगिक विकास सक्षम हो सकेगा। एक औद्योगिक इकाई के माध्यम से दूसरी औद्योगिक इकाई प्रारम्भ हो सकेगी तथा देशों मे कारखानो की सख्या तेजी से बढेगी। कारखानों से प्राप्त अतिरेक को कृषि विकास मे विनियोजित कर कृषि का विकास भी तेजी से संभव हो सकेगा।

विकेन्द्रीकरण संबंधी विचार

डॉ लोहिया ने विकेन्द्रीकरण को राष्ट्र के समग्र विकास हेतु एक अनिवार्यता बताया। विकेन्द्रीकरण हेतु उन्होंने चौखम्भा राज्य (For Pillar State) की योजना प्रस्तुत की। भारत में विद्यमान सघात्मक व्यवस्था (Fedaral System) को वे अपूर्ण व्यवस्था मानते थे। उनके अनुसार सर्वोच्च शक्ति केन्द्र व राज्य में ही निहित न होकर अन्य छोटी इकाइयो मे विकेन्द्रित होनी चाहिए। देश को एक सूत्र मे बांधे रखने व देश के समग्र विकास को गति प्रदान करने के लिए लोहिया की चौखम्भा योजना के 4 खभे हैं।

(अ) केन्द्र (Centre)

(ब) राज्य (Province or State)

(स) मडल (Mandal or District)

(द) गाँव (Village)

इस चौखम्भा योजना के अतर्गत सशस्त्र सेना केन्द्र के, सशस्त्र पुलिस राज्य के तथा पुलिस मण्डल व ग्रामो के अधीन रहेगी। देश के बडे उद्योग मडल व ग्रामो के अधीन रहेगे। मूल्यो पर नियत्रण केन्द्र रखेगा। मडल तथा ग्राम कृषि, पूँजी तथा श्रम का अनुपात निर्धारित करेगे। सहकारिता, कृषि सुधार, सिचाई, भू–राजस्व की वसूली राज्य नियत्रित होगी। कर के रूप में जो धन केन्द्र के पास एकत्रित होगा, उसके चार भाग आनुपातिक तरीके से वितरित कर दिए जायेंगे अत यहाँ भी समानता की स्थिति देश के विकास मे सहयोग करेगी।

डॉ लोहिया प्रशासन मे भी विकेन्द्रीकरण के हामी थे अत उनका कहना था कि जिलाधीश का पद समाप्त कर देना चाहिए। उसके समस्त अधिकार मडल अधिकारियो को सौंप दिये जायें। डॉ. लोहिया विधायी शक्ति के विकेन्द्रीकरण के पक्ष मे थे। लोहिया के अनुसार राज्यों मे राज्यपाल के पद की कोई आवश्यकता नही है। न्याय व्यवस्था मे भी परिवर्तन होना आवश्यक है ताकि जनता को सस्ता व शीघ्र न्याय मिल सके। लोहिया

यह भी चाहते थे कि वर्तमान कानूनो मे परिवर्तन कर या उनमे सशोधन कर उन्हें लोकतन्त्र के अनुकूल बनाया जाए। प्रशासनिक व्यय को कम करने के लिए दो–तीन राज्यो के मध्य एक न्यायालय पर्याप्त है। साथ ही एक ही लोक सेवा आयोग से काम चलाया जा सकता है। इससे समानता रहेगी व न्याय भी प्राप्त हो सकेगा।

डॉ लोहिया की धारणा थी कि किसी भी देश का विकास उसकी नागरिक क्षमता व चेतना पर निर्भर करता है। नागरिक क्षमता विकेन्द्रित शासन के बिना सभव नहीं है। अत व्यवस्थापिका व कार्यपालिका सबधी शक्तियों का विकेन्द्रीकरण करके ही राष्ट्र निर्माण मे सामान्य नागरिक को सहयोगी बनाया जा सकता है। इस प्रकार चौखाम्भा योजना के द्वारा समुदाय द्वारा समुदाय के लिए समुदाय का शासन स्थापित किया जा सकता है। परस्पर सहयोग पर आधारित यही डॉ लोहिया की कल्पना का समाजवाद है।

मशीनों का उपयोग

डॉ लोहिया मशीनो के उपयोग के सदर्भ में मध्यम मार्गी थे। उन्होने जहाँ एक ओर भारी मशीनों की सहायता से तीव्र औद्योगिकरण की नेहरू की अवधारणा का प्रबल विरोध किया वहीं दूसरी ओर गाँधी जी के प्रबल समर्थक होने के बावजूद "चरखे" का भी विरोध किया। डॉ लोहिया भारतीय सदर्भ मे विद्युत चालित छोटी–छोटी मशीनो के पक्षधर थे। विद्युत चालित छोटी मशीनो की कल्पना भी लोहिया की दूर दृष्टि थी। इस कल्पना का विवरण उन्होने इस प्रकार दिया।

"हर व्यक्ति के पीछे पश्चिमी यूरोप मे 3000 रू और अमेरिका मे 8000 रू की लागत पूँजी उद्योगो मे लगाई जाती है और भारत में केवल 150 रू। ऐसी स्थिति मे बडे पैमाने पर चलने वाले कल–कारखानो का चलाना इस देश मे लागत पूँजी के अभाव मे नामुमकिन है। अत छोटी मशीनो पर चलने वाले उद्योगो से ही देश का उत्पादन बढ सकता है। देश के गाँवों और शहरो में कच्चे माल की विपुलता है। पर आज इसका पूरा इस्तेमाल नहीं हो रहा है। केवल छोटी मशीनो की मार्फत ही उसका पूरा उपयोग किया जा सकता है। मैं उस जमाने का चित्र आँखो के सामने देख रहा हूँ जबकि देश के सभी गाँवो में और शहरो मे विद्युत चालित छोटी मशीनो का एक बडा जाल बुनकर लोगों को काम दिया गया है और देश की सपत्ति बढ रही है।"[7]

डॉ लोहिया चाहते थे कि शक्ति चालित छोटी मशीनों का हमारे देश के वैज्ञानिक आविष्कार करे तथा देश को अपनी आवश्यकता को पूरा करने मे सहयोगी बने। डॉ लोहिया पश्चिम के वैज्ञानिक विकास से निश्चित रूप से प्रभावित थे। उनका कहना था कि इस प्रकार के नवीन आविष्कारो से राष्ट्रीय विकास को गति मिलेगी। इसके लिए कुशाग्र बुद्धि छात्रों को विदेशो में भेजना चाहिए लेकिन राज्य का उन पर पूरा नियत्रण भी आवश्यक है ताकि देश का धन नष्ट न हो। अगर सभव हो तो विदेशी वैज्ञानिकों को शिक्षा देने के लिए देश मे आमत्रित किया जा सकता है।

कृषि विकास व खाद्यान्न आपूर्ति

डॉ लोहिया के समय देश में खाद्यान्न समस्या अति विकट थी। लोहिया का दर्शन सम्पन्नता व आत्म निर्भरता का था। लोहिया का स्पष्ट मत था कि खाद्यान्न समस्या का एकमात्र हल कृषि विकास के माध्यम से उत्पादन वृद्धि ही है। लोहिया का मत था कि खाद्यान्न उत्पादन वृद्धि के माध्यम से देश न केवल आत्म निर्भर हो सकेगा अपितु देश मे सम्पन्नता का मार्ग भी खुल जाएगा।

डॉ लोहिया का कृषि विकास के सदर्भ में सुझाव था कि अधिकाधिक भूमि को कृषि योग्य बनाया जाए। सिचाई की सुविधाओं का विस्तार किया जाय। कृषि में नवीन वैज्ञानिक शोध को प्रोत्साहित किया जाय तथा आधुनिकतम तकनीक से लाभ उठाया जाय। कृषको को प्रशिक्षण दिया जाय। ट्रैक्टर तथा अन्य कृषिगत सामान हेतु किसानो को साख सुविधा उपलब्ध करायी जाये। उत्पादन मे वृद्धि हेतु सरकारी और गैर सरकारी दोनो प्रयत्न हो और उससे एक सामान्य दृष्टि पैदा हो, जिसका काम कृषको को सरकारी तत्र की सुविधाओ से जोड़ना हो।

डॉ लोहिया ने भारत में कृषि विकास के सदर्भ में भू–अन्न सेना की योजना प्रस्तुत की। भू–सेना बेकार पडी भूमि को कृषि योग्य बनाएगी और वहाँ खेती करेगी या कराएगी। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् हालैण्ड ने भी ऐसा ही किया था। हालैण्ड को इस प्रयोग में आशातीत सफलता भी प्राप्त हुई थी। भारत में तो भू–सेना तैयार करने में कुछ भी समय नहीं लगेगा। इससे दोहरा लाभ होगा, एक ओर तो बेकारी दूर होगी व दूसरी ओर खाद्य पदार्थों का उत्पादन बढ़ेगा। इस योजना का लागत लाभ विश्लेषण भी लोहिया ने सरकार को प्रस्तुत किया था।

डॉ लोहिया ने तत्कालीन प्रधानमत्री प नेहरू की कृषि नीति की कडे शब्दों मे आलोचना की थी। उनके अनुसार प्रशासन पर सरकारी तत्र बुरी तरह हावी होता जा रहा है। फलत सरकारी लाभ की योजनाएँ सामान्य किसानो को लाभान्वित नहीं कर पा रही हैं। वे पूर्ववत् ही लाभ से वचित हैं। अत सरकारी तत्र को सीमित कर लाभ की योजनाओं मे प्रत्येक को सम्मिलित किया जाय। लोहिया ने कृषि मूल्यो पर सरकारी नियत्रण का भी सुझाव दिया था।

भारत में भूमि सुधार

डॉ लोहिया प्रकृति से ही शोषण के विरुद्ध थे अत उन्होंने जमीदारी प्रथा का प्रबल विरोध किया। उन्होने जमीदारी प्रथा को जड से उखाड फेकने की बात कही। डॉ लोहिया ने भूमि के समान वितरण पर बल दिया। एतदर्थ भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित करने हेतु कानून बनाये जाए व प्रभावी तरीके से लागू किये जाए। देश मे सहकारी कृषि को प्रोत्साहित किया जाय।

डॉ लोहिया ने भू–राजस्व के सदर्भ में स्पष्ट रूप से कहा है कि छोटे किसानो

से किसी भी प्रकार का लगान वसूल न किया जाय। जिस किसी भी किसान के पास 6 25 एकड से कम कृषि भूमि है वह लगान से पूर्णरूपेण मुक्त किया जाय।

विश्व सरकार की सकल्पना

लोहिया "विश्व सरकार" की स्थापना के प्रमुख समर्थक थे। विश्व सरकार की उनकी कल्पना बहुत पुरानी थी। वे अपनी विकेन्द्रीकरण की चौखम्भा योजना में एक और खभा "विश्व" का स्थापित कर "विश्व सरकार" की सकल्पना करते रहे। सितम्बर 1949 मे स्वीडन की राजधानी स्टॉकहोम मे विश्व सरकार के प्रमुख समर्थकों का एक सम्मेलन किया गया। इस सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व डॉ राम मनोहर लोहिया ने किया। इस सम्मेलन मे विश्व भर के राजनीतिज्ञ व विचारक एकत्र हुए। डॉ लोहिया की विश्व सरकार की सकल्पना को प्रबल समर्थन प्राप्त हुआ। डॉ लोहिया ने कहा—

"सारे यूरोप मे जो सैनिक तैयारी चल रही है उसे देखकर मुझे अचरज होता है। यदि विश्व की सकल्प शक्ति दृढ निश्चय न करेगी तो विस्फोट होगा ही। आज शक्तिशाली गुटो से अलग रहकर जो राष्ट्र निष्पक्ष रहने का प्रयत्न कर रहे हैं उनके लिए मेरे मन में प्रेम और हमदर्दी है। केन्द्रीकरण को दूर करना एक महत्त्वपूर्ण सवाल है। विश्व सरकार से ही यह सवाल हल होगा। सारी दुनिया मे एक पाँच खभों पर आधारित व्यवस्था का निर्माण होना चाहिए। स्थानीय कारोबार में ग्राम व नगर को आजादी हो। अपने इलाके की व्यवस्था मे जिले को अधिकार हो। प्रातीय क्षेत्र की व्यवस्था प्रात की हाथ मे रहे। कुछ मुख्य प्रश्न केन्द्र की सरकार को सौंप दिये जायें और विश्व सरकार अतर्राष्ट्रीय शाति और सुरक्षा तथा विश्व के पुनर्निर्माण के सीमित कार्य करे। इन पाँचों खभो पर विश्व सरकार को आधारित होना चाहिए। ऐसी विश्व सरकार ही हथियार बदी करके युद्ध को रोक सकेगी और शाति स्थापित कर सकेगी।"

लोहिया एक मूल्याकन

डॉ लोहिया एक मौलिक समाजवादी विचारक व प्रमुख अर्थशास्त्री थे। लोहिया के विचारो पर गाँधीजी का स्पष्ट प्रभाव था। गाँधीजी की सत्य व अहिसा लोहिया के क्रातिकारी विचारो मे समाहित है। लोहिया की विकेन्द्रीकरण योजना का आधार गाँधीजी के विचार ही हैं जिन्हे उन्होने अधिक वैज्ञानिक व व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किया।

डॉ लोहिया कार्ल मार्क्स की वर्ग विहीन समाज की अभिकल्पना से अभिभूत अवश्य थे परन्तु उन्हाने भारत मे मार्क्सवाद की स्थापना को अनुचित बताया। उन्होने रूस व चीन दोनो क साम्यवाद को भारत मे न अपनाएँ जाने पर बल दिया। उन्होने कहा कि रूस का साम्यवाद लेनिन–स्टालिन का व्यक्तिवाद है व चीन का साम्यवाद माओवाद है।

डॉ लोहिया न नेहरू की इस बात के लिए कटु आलोचना की कि वे रूस की नियोजन पद्धति का अन्धानुकरण कर रहे हैं। रूस की नियोजन पद्धति रूस में ही समीचीन हो सकती है भारत की परिस्थितियो के अतर्गत नहीं। लोहिया ने भारी उद्योगों

का प्रबल विरोध किया। नेहरू की धीरे–धीरे राष्ट्रीयकरण की योजना को भी अनुचित सिद्ध की। उन्होंने कहा यह राष्ट्रीयकरण एक साथ ही किया जाना चाहिए अन्यथा धन का केन्द्रीकरण कई रूप में हो जायगा और भारत मे यही हुआ। लोहिया दूर दृष्टा थे। उन्होंने कहा था कि यदि भारत नेहरू की आर्थिक नीतियों पर ही चलता रहा तो अंतत सामाजिक आर्थिक असमानता राष्ट्र को जकड लेंगी, गरीबी व बेरोजगारी की समस्याएँ विकराल रूप धारण कर लेंगी व समाजवादी समाज की स्थापना मात्र स्वप्न बनकर रह जायेगी। उनका यह कथन भी उस समय सारगर्भित व दूर दृष्टिपूर्ण था लेकिन आज सत्य है।

संदर्भ

1 ओंकार शरद, लोहिया के विचार, पृष्ठ 19
2 उपर्युक्त, पृष्ठ 21
3 उपर्युक्त, पृष्ठ 25
4 उपर्युक्त, पृष्ठ 28
5. सुविख्यात सांसद मोनोग्राफ सीरीज– डॉ. राम मनोहर लोहिया–लोकसभा सचिवालय नई दिल्ली–1990 पृष्ठ 36
6 ओंकार शरद, लोहिया 'एक जीवनी' पृष्ठ 37
7 उपर्युक्त, पृष्ठ 188
8. उपर्युक्त, पृष्ठ 194

प्रश्न

1 लोहिया द्वारा लिखित प्रमुख पुस्तकों के नाम लिखिए।
2 लोहिया के अनुसार अधिकतम तथा न्यूनतम वेतन के मध्य कितना अनुपात होना चाहिए?
3. विकेन्द्रीकरण हेतु लोहिया द्वारा प्रस्तुत चौखम्भा राज्य की योजना को स्पष्ट कीजिए।
4 लोहिया के भूमि सुधार सम्बन्धी विचारों पर टिप्पणी कीजिए।
5 नेहरू जी के आलोचक के रूप में लोहिया के विचार प्रस्तुत कीजिए।
6 लोहिया के प्रमुख आर्थिक विचारो की व्याख्या कीजिए।
7. लोहिया के राष्ट्रीय आय के वितरण, राष्ट्रीयकरण, विकेन्द्रीकरण, मशीनो के उपयोग, कृषि तथा विश्व सरकार की संकल्पना पर विचार कीजिए।
8 "लोहिया एक समाजवादी विचारक थे" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? सिद्ध कीजिए।
9 "लोहिया कार्ल मार्क्स के वर्ग विहीन समाज की अभिकल्पना से अभिभूत अवश्य थे परन्तु उन्होने भारत मे मार्क्सवाद की स्थापना को अनुचित बताया।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए।



पण्डित दीन दयाल उपाध्याय
(Pandit Deen Dayal Upadhyaya 1916-1968)

परिचय

पंडित दीन दयाल उपाध्याय सादा जीवन उच्च विचार सरल व्यवहार तथा कर्मण्यता की साक्षात्कार मूर्ति थे। प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझकर उनमें से रास्ता निकालने में उन्हें कुशलता प्राप्त थी। पंडित जी का जन्म राजस्थान में जयपुर अजमेर रेलमार्ग पर धानकिया गांव में उनके नाना श्री चुन्नीलाल शुक्ल के घर में हुआ। उनके नाना धानकिया में स्टेशन मास्टर थे। उनके पिता श्री भगवती प्रसाद उत्तर प्रदेश के मथुरा के रहने वाले थे। पण्डित जी के माता पिता का निधन उनके बाल्यकाल में ही हो गया था इसलिए उनका पालन पोषण उनके मामा श्री राधारमण शुक्ल ने किया जो राजस्थान में गंगापुर स्टेशन पर फ्रंटियर मेल के गार्ड थे।

पं दीन दयाल ने बचपन में ही अपने प्रति कठोरता बरतने तथा ध्येयमार्ग में ध्यान एकाग्र करने का मंत्र ग्रहण कर लिया था। इसलिए पण्डितजी ने राजस्थान में सीकर के कल्याण हाई स्कूल में मैट्रिक परीक्षा दी और अजमेर बोर्ड में प्रथम श्रेणी में प्रथम रहकर उत्तीर्ण हुए। फलस्वरूप बोर्ड ने और विद्यालय ने उन्हें स्वर्णपदक दिए। उसके दो वर्ष बाद राजस्थान में पिलानी के बिरला कॉलेज से इंटर की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की तथा उन्हें दो स्वर्ण पदक प्राप्त हुए। कानपुर के सनातन धर्म कॉलेज से गणित विषय लेकर बी ए प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। कॉलेज शिक्षा उन्होंने छात्रवृत्ति के बल पर ही पूरी की।

सन् 1937 में वह राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से सम्पर्क में आये तथा उत्तर प्रदेश में प्रचारक के रूप में कार्य करना शुरू कर दिया। संघ पर प्रतिबंध लगने के कालखण्ड में इन्होंने 'पाञ्चजन्य' साप्ताहिक तथा 'स्वदेश' दैनिक पत्र का सम्पादन कार्य भी किया। इसके अतिरिक्त पंडित जी ने सम्राट चन्द्रगुप्त जगद्गुरू शंकराचार्य नामक दो पुस्तकें भी लिखी। आजादी के बाद कांग्रेस ने राष्ट्र के राजनीतिक आर्थिक सामाजिक व सांस्कृतिक विकास का जो मार्ग चुना उससे असहमत व खिन्न होकर पं दीन दयाल ने कांग्रेस के विकल्प के रूप में एक नयी राजनीतिक पार्टी 'जनसंघ' के गठन में सक्रिय योगदान दिया तथा 1952 में उन्हें इस पार्टी के प्रथम अखिल भारतीय महामंत्री का पदभार सौंपा गया जिसे 1967 तक निभाया। पं दीन दयाल को संघ कार्य

के स्थान पर राजनीतिक कार्य बिल्कुल भी रूचिकर नही था। परन्तु इस कार्य के प्रति इतना उदासीन होते हुए भी उसे इतनी सुव्यवस्थित रीति एव शास्त्रीय पद्धति से, पूरा मन लगाकर तथा सारी शक्ति जुटाकर किया कि जनसंघ देश मे लोकप्रिय दल बन गया। ग्रेग बैम्स्टर ने अपनी पुस्तक "जनसघ" मे लिखा है "जनसघ ही एक मात्र ऐसा दल है जिसने 1952 से 1967 तक के हर चुनाव में प्राप्त मतो का प्रतिशत एव लोकसभा व विधानसभाओं मे मिले स्थानों का अनुपात लगातार बढाया है।"

"जनसघ : आइडियोलॉजी एण्ड आर्गनाइजेशन इन पार्टी बिहेवियर" शीर्षक निबध में वाल्टर के एण्डरसन ने उपाध्याय के बारे में लिखा " उपाध्याय के 1967 मे जनसघ का अध्यक्ष पद स्वीकार करने का अर्थ था कि दल की सगठनात्मक नीव डालने का काम पूरा हो गया है और राष्ट्रीय स्तर पर एक प्रबल प्रतिस्पर्द्धी के नाते सत्ता की प्रतियोगिता मे उतरने का उसका सकल्प है।'

दीनदयाल जी का मूल स्वभाव सघ प्रचारक का ही था। सघ कार्य की प्रारंभिक अवस्था में नये स्थान पर कार्य प्रारम करने मे कितनी कठिनाइयों का सामना करना पडता था तथा दीनदयाल इन कठिनाइयों को किस प्रकार सफलता पूर्वक पार कर लेते थे, आज यह अकल्पनीय है। आज यदि लोगो को यह बताया जाय तो आश्चर्य होगा कि गोलागोकर्णनाथ के लोगों ने उन्हे भड़भूजे की दुकान से चने खरीदकर उन्हीं पर कई दिनो तक निर्वाह करते देखा था। मुहम्मदी के लोगो ने उन्हें दुकान के बाहर की पटरी पर रात बिताते देखा था। स्टेशन से गाव जाने के लिए जब तागेवाला 2 पैसे अधिक माग रहा था तो उनकी बचत करने के लिए भारी वर्षा मे दीन दयाल को भीगते हुए गाव हरदोई के लोगों ने देखा था। बाह्य परिस्थितियों की तो प्रतिकूलता थी ही, साथ ही स्वय दीन दयाल की अनासक्त कर्मयोगी प्रवृत्ति भी महत्वपूर्ण थी। आगे चलकर जीवन में अनुकूलता प्राप्त होने के बाद भी उन्होंने उसका लाभ नहीं उठाया। अपने कपडे स्वय धोया करते थे और अपने फटे-पुराने कपडो की सिलाई भी वे स्वय करते थे। कोई भी चप्पल या कपडा जब तक पहनने के लायक ही नहीं रहता था, तब तक बदलते नहीं थे। स्वदेशी का आग्रह उन्होने प्रत्यक्ष आचरण मे उतारा था। सार्वजनिक धन का उपयोग न्यासी की भाति कितनी मितव्ययता से करना होता है, इसका आदर्श उन्होने अपने आचरण से प्रस्तुत किया था।

सभी छोटी-छोटी बातो का ध्यान रखना उनका स्वभाव बन गया था। कारण, बाह्यत वे लौकिक व्यवहार मे कितने ही निमग्न क्यो न दिखाई देते हों, उनका सच्चा लक्ष्य "ज्ञानोत्तर भक्तिपूर्ण कर्मयोग" ही था। फिर भी दैनिक व्यवहार मे उनका आचरण सामान्य लोगो जैसा होता था। इसीलिए उनके पास के लोग भी इसकी कल्पना नहीं कर पाते थे कि वास्तव मे वे कितने महान हैं।

'राष्ट्रधर्म' का काम देखते समय उन्होंने कई बार कम्पोजिग, बाइडिग तथा डिस्पैचिग का काम भी स्वय किया था। निष्काम कर्मयोग उनकी सहज प्रवृत्ति थी।

अहंकार व्यक्तिगत आकांक्षा आदि क्षुद्र भावनाओं का स्पर्श भी उनको नहीं होता था। आदेश के अनुसार उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश किया किन्तु उनकी वृत्ति थी–दुनिया में हैं दुनिया के तलबगार नहीं। बाजार से निकले हैं खरीददार नहीं। इतनी निर्लेप।

अपने छोटे से राजनीतिक जीवन (1952–68) में उन्होंने देश में ऐसा राजनीतिक संगठन (जनसंघ अब भारतीय जनता पार्टी) खड़ा किया है जो आज केन्द्र की सत्ता में है। पूँजीवादी एवं साम्यवादी व्यवस्थाओं से त्रस्त विश्व को उन्होंने **'एकात्म मानव दर्शन'** का सिद्धांत दिया जो न केवल व्यक्ति–जीवन से लेकर सम्पूर्ण मानव जाति का चिन्तन है अपितु मानवेतर प्रकृति और उससे भी आगे जाकर परमेष्ठी तक सबकी समात्मता दृष्टि से और समग्र रूप से टोह लेने वाला चिन्तन है। इसी तरह तीसरे विकल्प के रूप में उपाध्याय ने विश्व को **"एकात्म अर्थ नीति"** का सिद्धांत दिया जो आजकल देश के एक राजनीतिक दल भारतीय जनता पार्टी ने उसको अपना आधार स्तम्भ बनाया है। अति प्रतिकूल परिस्थिति में भी अपनी ज्वलंत ध्येय निष्ठा विशुद्ध चरित्र स्नेहपूर्ण व्यक्तित्व तथा असाधारण संगठन–कुशलता के बल पर जनसंघ को उन्होंने 15–16 वर्ष की समयावधि में द्वितीय क्रमांक का अखिल भारतीय दल का स्थान प्राप्त करा दिया।

इस दल के प्रथम अध्यक्ष डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने केवल दो–एक वर्ष के अल्प परिचय में ही उनके बारे में कहा था– मुझे ऐसे दो दीन दयाल दे दीजिये मैं सारे देश का नक्शा बदल दूँगा। मुखर्जी के ये उद्गार पूर्णतया यथार्थ थे।

11 फरवरी 1968 को पं. दीन दयाल का मृत शरीर मुगलसराय स्टेशन के यार्ड में पड़ा पाया गया। इस षडयंत्रकारी घटना का रहस्य अभी तक अज्ञात है। भारतीय *जनतन्त्र के राजनीतिक क्षितिज पर विचार कार्य और प्रगति की महान् आशाएँ जो अति* दिव्य जीवन उभर कर सामने आ रहा था और अति प्राचीन भारतीय जीवन दर्शन के *आधार पर युगानुरूप नूतन व्यवस्थायें मौलिक चिन्तन और दार्शनिक दृष्टिकोण से* परिपूर्ण व्यावहारिक व्याख्यायें प्रस्तुत कर रहा था वह सहसा ओझल हो गया। देश के *गौरवशाली अतीत से भव्य भविष्य को जोड़ने वाले वर्तमान का महान शिल्पी चिर–निद्रा* को प्राप्त हो गया। आर्थिक सामाजिक राजनीतिक धार्मिक सभी क्षेत्रों में जन–साधारण के *सुख दुख में समरस होते हुए नेतृत्व का सूत्र धारण करने वाला महान नेता दिवंगत हो गया।*

पं. दीन दयाल जी की रचनाएँ

पं. दीन दयाल उपाध्याय ने अपने *अल्पकालीन* जीवन में राष्ट्रीय जीवन व राष्ट्रीय समस्याओं से संबंधित कई लेख एवं पुस्तकें लिखी। यद्यपि राष्ट्र की विचार प्रक्रिया में पंडितजी का विपुल व गतिशील योगदान था तथापि उसकी तुलना में उनके बारे में लिखा गया साहित्य बहुत कम मात्रा में उपलब्ध है। उनकी प्रमुख रचनाएं निम्न प्रकार हैं–

(i) चन्द्रगुप्त मौर्य–राष्ट्र धर्म प्रकाशन

(ii) जगद्गुरु शंकराचार्य–राष्ट्र धर्म प्रकाशन

(iii) The Two Plans (1958)

(iv) Devaluation-A Great Fall (1966)

(v) Integral-Humanism (1967)

(vi) जनसघ सिद्धात और नीति

(vii) अखण्ड भारत

(viii) इनको भी आजादी चाहिए

(ix) अमेरिकी अनाज पी एल 480

(x) भारतीय अर्थनीति (विकास की एक दिशा)

(xi) बेकारी की समस्या और उसका हल

(xii) एकात्म मानव वाद

(xiii) विश्वासघात

(xiv) टैक्स या लूट

(xv) राष्ट्र जीवन की समस्याएँ

इसके अतिरिक्त कुछ ग्रथ उनके भाषणो व लेखो के सकलन हैं। 1968 मे ही पडित जी के "आर्गनाइजर मे लिखे लेखो का सकलन 'जयको पब्लिशिग हाउस' द्वारा **"पोलिटिकल डायरी"** नाम से प्रकाशित हुआ था। पडित दीन दयाल उपाध्याय के नाम पर दिल्ली में 'दीन दयाल शोध सस्थान' की स्थापना की गयी है जिसने कई परियोजनाएँ हाथ में ले रखी हैं। इस सस्थान द्वारा प्रकाशित प्रमुख पुस्तकें निम्न हैं।

(i) पडित दीन दयाल उपाध्याय व्यक्ति दर्शन (अग्रेजी), 1972

(ii) एकात्म मानव दर्शन (हिन्दी–अग्रजी) 1972

(iii) गॉधी, लोहिया और दीन दयाल (हिन्दी),1979

(iv) पण्डित दीन दयाल उपाध्याय–व्यक्तित्व एव जीवन दर्शन

(v) Who Killed Upadhyaya ?

(vi) प दीन दयाल उपाध्याय हत्याकाड मुकदमा

(vii) प दीन दयाल उपाध्याय–महाप्रस्थान

(viii) एकात्म मानववाद एक अध्ययन

(ix) His Legacy Our Mission

(x) राष्ट्र पुरुष पडित दीन दयाल उपाध्याय

इनके अलावा हिन्दी, मराठी अग्रेजी में उनके योगदान से सबधित कई रचनाएँ हैं।

पं. दीन दयाल का आर्थिक चिन्तन

प दीन दयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित **"एकात्म अर्थ नीति"** के विवेचन से पूर्व उनके द्वारा विश्व को दिये गये **एकात्म मानव दर्शन** के विचार को समझना आवश्यक है।

एकात्मक मानव दर्शन –

एकात्म मानव दर्शन का अर्थ है मानव–जीवन तथा सपूर्ण प्रकृति के एकात्म सबधो का दर्शन। यह एक ऐसा जीवन–दर्शन है जो मनुष्य का विचार केवल आर्थिक मान व के एकागी दृष्टिकोण स न करते हुए जीवन के समग्र पहलुओ का तथा ऐसे मानव के अन्य मानवों एव मानवेत्तर सृष्टि के साथ परस्पर पूरक एकात्म सबधो को भी ध्यान मे रखकर समृद्ध सुखी एव कृतार्थ जीवन की दिशा दर्शाता है।[1]

एकात्म मानव दर्शन भारतीय सस्कृति का जीवन दर्शन है। भारतीय सस्कृति एकात्मवादी है अत शरीर मन बुद्धि एव आत्मा से युक्त धर्म अर्थ काम एव मोक्ष के चतुर्विध पुरुषार्थों की साधना करने वाला तथा एक ही साथ परिवार जाति राष्ट्र एव मानव समाज आदि विविध एकात्म समष्टियो का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखने वाला मानव इस दर्शन का केन्द्र बिन्दु है।[2]

एकात्म मानव दर्शन व्यक्ति–जीवन का भी उसके सभी अगो को ध्यान में रखते हुए सकलित विचार करता है। मानव शरीर मन बुद्धि ओर आत्मा का सकलित रूप है। अत मनुष्य के सर्वांगीण विकास का विचार वास्तव में उसके शरीर मन बुद्धि और आत्मा आदि सभी के विकास का सकलित विचार है। व्यक्तित्व के इन चारो पक्षो की समुचित आवश्यकताओ को पूरा करने उनकी विविध मागों और इच्छा–आकाक्षाओं को पूरा करने तथा उनका सर्वांगीण विकास करने के लिए भारतीय सस्कृति ने व्यक्ति के सामने कर्त्तव्य के रूप में चार पुरुषार्थों का आदर्श रखा है। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में उसकी भौतिक प्रगति के साथ–साथ नैतिक एव आध्यात्मिक उन्नति भी शामिल है जिससे समाज की सुयोग्य धारणा बन सके।[3]

(1) मानव के आदर्श एव परिपूर्ण जीवन के लिए चतुर्विध सुख

मनुष्य के आदर्श एव परिपूर्ण जीवन की कल्पना करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि सामान्यत मानव कैसा है। इस सबध में मानव के स्वभाव की प्रथम विशेषता है उसके जीवित रहने की इच्छा। मरण प्रकृति शरीरिणाम विकृतिर्जीवनमुच्यते जीवन क्षण भगुर है ससार असार है सुख राई जैसा तथा दुख पहाड जैसा है आदि वचनों के प्रचलित होने के बावजूद भी प्रत्यक व्यक्ति दीर्घकाल तक जीवित रहना चाहता है। इसी कारण भारतीय परम्पराओं में दीर्घायुष्मान भव चिरजीवी भव आदि आर्शीवचनों का समावेश है।

किन्तु मनुष्य दीर्घायु के साथ–साथ अपना जीवन सुखमय व्यतीत करना चाहता है। इसी सुख प्राप्ति के लिए वह दिन भर दौड धूप करता रहता है। परन्तु उसकी सुख की कल्पना प्राय एकाकी होती है अर्थात् उसके सुख की कल्पना में इद्रियों द्वारा मिलने वाले सुख या शरीर का सुख ही सपूर्ण सुख है। उसकी सपूर्ण सुख की कल्पना में रोग मुक्त शरीर हाथ में भरपूर पैसा सुन्दर मकान सुन्दन पत्नी होनहार सतान पौष्टिक

भोजन सुन्दर वस्त्र आभूषण, रंगीन टी वी, कार व समाज में प्रतिष्ठा आदि प्रमुख बातें शामिल हैं।

इस भौतिक सुख की प्राप्ति के लिए वह "येन केन प्रकारेण" साधन जुटाता हैं। जो व्यक्ति जितने अधिक साधन जुटा लेता है वह उतना ही अधिक सुखी होता है। परन्तु यह देखा गया है कि जैसे–जैसे एक इच्छा पूरी होती है आगे दूसरी इच्छा आ खडी होती है। अर्थात उपभोग में वृद्धि के कारण वासनाएँ कम होने की बजाय बढती है।

वासनाओ के बढने की पूरी छूट देना तथा उनका पूर्णत क्षय करना दोनो ही एक दम चरम बिन्दु है। भारतीय संस्कृति मे इन दोनो चरम बिन्दुओ को एक तरफ रखकर समन्वित मार्ग दर्शाया है। पुरुषार्थो में अर्थ और काम, दोनों का समन्वय कर भौतिक सुखों का मानवीय जीवन मे जो स्थान है उसे स्वीकार है। परन्तु हमारी ससकृति ने शारीरिक सुखो के साथ मन, बुद्धि एव आत्मा के उन्नत सुखो का भी विचार किया है।[4] मानवीय जीवन की परिपूर्णता के लिए इन सभी सुखो की अपरिहार्यता का प्रतिपादन कर इस संस्कृति ने उसके द्वार मानव के लिए खोल दिये हैं। इंद्रियजन्य सुखो से प्रारम्भ कर मन, बुद्धि का उन्नयन करते हुए, उन सुखों को भी अनुभव करते हुए घनीभूत परम सुख अर्थात मोक्ष–प्राप्ति तक का प्रवास एक यात्रा के रूप में भारतीय संस्कृति ने मानव के समक्ष रखा है।[5]

(ii) चतुर्विध सुख एव चतुर्विध पुरूषार्थ

अब प्रशन उठता है कि मानव के आदर्श एव परिपूर्ण जीवन के लिए चतुर्विध सुखों की प्राप्ति कैसे हो ? सामान्य रूप से मनुष्य के शरीर के सुख के लिए निर्वाह–साधन, मन के सुख के लिए मन की शाति, बुद्धि के सुख के लिए ज्ञान तथा आत्मा के सुख के लिए विवेक आवश्यक होता है। वास्तव मे ये मनुष्य की चार क्षुधाएँ हैं। इन क्षुधाओं को तृप्त कर मनुष्य के सर्वांगीण एव सतुलित विकास के लिए भारतीय संस्कृति ने कर्त्तव्य के रूप मे चार पुरूषार्थो का आदर्श रखा है। ये चार पुरुषार्थ हैं–धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष।[6]

प्रथम तीन पुरुषार्थों का सबध प्रत्यक्ष रूप से इसी जीवन के साथ होता है जब कि मोक्ष का सबध परलोक से है। मोक्ष प्राप्ति के लिए कर्म मार्ग, भक्ति मार्ग व ज्ञान मार्ग हमारे यहॉ बताये गये है। उनमें कर्म मार्ग का सबध शरीर के साथ, भक्ति मार्ग का सबध मन के साथ और ज्ञान मार्ग का बुद्धि के साथ है। यद्यपि यह सत्य है, परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि मोक्ष पुरुषार्थ का मार्ग अन्य तीन पुरूषार्था के मार्गो से सर्वथा स्वतत्र या समानान्तर चलता है। भक्ति–समन्वित, ज्ञानयुक्त निष्काम कर्म मोक्ष का मार्ग है कर्म विहीन भक्ति केवल भावुक होती है। ज्ञान रहित कर्म अधा होता है। भक्ति एव कर्महीन ज्ञान पगु होता है। सुख का विचार करते समय शरीर मन बुद्धि और आत्मा का विचार जिस प्रकार अपरिहार्य है, उसी प्रकार चूँकि मोक्ष परमसुख है, उस सुख की ओर जाने वाला मार्ग भी स्वभावत एकात्म होता है।[7]

इन चतुर्विध पुरुषार्थो से युक्त पूर्ण मानव ही एकात्म मानव दर्शन का केन्द्र बिन्दू है। परन्तु इस ससार मे मानव अकेला नहीं रहता अन्य लोग भी इसके साथ रहते हैं।

परिवार जाति राष्ट्र सपूर्ण मानव समाज आदि विभिन्न स्तरो पर व्यक्ति का अन्य मानवो के साथ सबध आता है। मानव–मानव के बीच यह सबध और व्यवहार सुचारू रूप स चलते रह ओर उसका व्यक्तिगत तथा समष्टि जीवन सभी अगा से उन्नत एव सुखी हो इसके लिए जो विविध सस्थाएँ और व्यवस्थाएँ निर्मित की जाती हैं उनमे मानव को सहभागी होना पडता है। उसे इन सबधो मे ओर इन व्यवस्थाओ मे प्राप्त कर्त्तव्यो को निभाना भी पडता हे। इस मानव की दृष्टि एकाकी सकुचित या विकृत हो तो वह अपने इस कर्तव्य को ठीक प्रकार स नहीं निभा पायेगा । अत अब हमें यह विचार करना होगा कि पूर्णत्व का साधक मानव उत्तरोत्तर अधिकाधिक मानव समूहो के सम्पर्क म आये तो उसके मन की रचना कैसी हो प्रत्यक्ष व्यवहार कैसा हो समाज के साथ उसका सबध कैसा हना चाहिए आदि बातो पर भी विचार करता है। प दीन दयाल जी ने कहा इन चतुर्विध पुरुषार्थो स युक्त पूर्व मानव ही हमारी आराधना का निकष (कसौटी) और साधन है। आदर्श पूर्ण मानव का यह चित्र हमारे मन में सुस्पष्ट एव पक्का चित्रित हो तो फिर एकात्म मानव की दिशा मे होने वाला उसका मार्गक्रमण ठीक से ध्यान मे आना सरल हो जायेगा।

(iii) व्यक्ति एव परिवार

एकात्म मानव दर्शन मे परिवार सस्था का बहुत महत्व है क्योकि व्यक्ति को अहम से वयम की ओर ले जाने के अर्थात समष्टि जीवन को पहला पाठ परिवार में ही दिया जाता है। परिवार मे अनेक व्यक्ति होते हैं पति–पत्नी बहु–बेटियाँ नाती–पोते भाई–बहिन ससुराल ओर मायके के लोगो आदि का समावेश परिवार में ही होता है। इन सबके साथ आत्मीयता के सबधों को प्रत्यक्ष में अनुभव भी किया जाता है। परिवार में कोई सुख–दुख का कार्य होता है ता सभी परिवार के सदस्य हाथ बटाते हैं। परिवार के व्यक्तियो के व्यवहार की न तो कोई नियमावली होती है और न कोई सविधान। सभी का आचारण आपस में समझदारी से और सहज रूप से चलता रहता है। हम सब एक परिवार के सदस्य हैं हमारी धमनियो मे एक ही रक्त बहता है इस आत्मीयता के बोध से जो भावबधन निर्मित होता है उसी का यह चमत्कार है।

पाश्चात्य दशों म परिवार सस्था तेजी से टूट रही है तथा हमारे यहाँ भी यह सकीर्ण हाती जा रही है। पाश्चात्य देशो में इस सस्था के टूटने के तीन प्रमुख कारण हैं– प्रथम व्यक्ति स्वातत्रय द्वितीय कम्युनिष्ट देशा मे कम्यून्स तथा तृतीय समाजवादी प्रशासन या कल्याणकारी राज्य।

परिवार व्यक्ति को समष्टि–जीवन का पहला पाठ देने वाली सस्था है। आपस मे स्नेह एक दूसरे के लिए कष्ट उठाने की प्रवृत्ति सहनशीलता आदि कई सद्गुणो के सस्कार जिनकी समाज धारणा के लिए आवश्यकता होती है परिवार जीवन के स्वाभाविक रूप स मिल जाते हैं। परिवार की इस कल्पना को अधिकाधिक विशाल करते जाना उसको समाजव्यापी व विश्वव्यापी बनाना ही आत्मिक विकास की दिशा है और यही

एकात्म मानव दर्शन की भी केन्द्रीय कल्पना है।

(iv) व्यक्ति एवं समाज[8]

व्यक्ति व समाज के सबधो के सबध मे भारतीय एव पाश्चात्य विचारधारा मे अतर है। पाश्चात्य लोग यह मानते हैं कि व्यक्ति एकत्र होकर परस्पर हितों की रक्षा हेतु समाज का निर्माण करते हैं। इस सिद्धात को "सोशल कान्ट्रेक्ट थ्योरी" का नाम दिया गया है। इस धारणा ने कई प्रकार के प्रश्न उत्पन्न कर दिये हैं। जैसे समाज व व्यक्ति में श्रेष्ठ कौन है ? कुछ यह मानते हैं चूँकि व्यक्तियों ने एकत्र होकर समाज का निर्माण किया है अत निर्माता होने के नाते व्यक्ति समाज से श्रेष्ठ है। दूसरी तरफ लोगों का कहना है कि व्यक्ति के लिए समाज का निर्माण करना अपरिहार्य हो गया इससे यह सिद्ध होता है कि समाज व्यक्ति से हर तरह से श्रेष्ठ है।

आज पाश्चात्य देशो में ये दोनो विचारधाराए प्रचलित हैं। पहली विचारधारा के लोग व्यक्ति स्वातन्त्र्य के नाम पर समाज की उपेक्षा करते हैं तो दूसरी विचारधारा वाले लोग समाज को सर्वसत्ताधीश बनाने की धुन में व्यक्ति बहुरगी व्यक्तित्व को समाप्त कर डालते हैं। पूँजीवादी समाज व्यवस्था पहली विचारधारा की सतान है तो समाजवादी व कम्यूनिष्ट समाज रचना सत्तावाद की निष्पति है।

पाश्चात्य समाज मे आज प्राणलेवा स्पर्द्धा, तनाव, रक्त–पात एव सघर्ष आदि दिखायी पडता है। एकात्म दर्शन की भूमिका है कि समाज व्यक्तियों का बनाया होता है–यह पाश्चात्य लोगों की मूल धारणा ही गलत है। यह तो ठीक है कि समाज व्यक्तियों का समूह होता है, फिर भी व्यक्ति एकत्र हो गये और उन्होने समाज का निर्माण किया, ऐसा कहीं भी दिखायी नहीं देता।

समाज कोई क्लब नहीं है, ज्वाइंट स्टाक कम्पनी या सहकारी सस्था भी नहीं है। समाज इस तरह कृत्रिमता से नहीं बनाया जा सकता। 5–10 लाख या 10–20 करोड एकत्र हो गये उन्होंने आर्टीकल आफ एशोसियेशन प्रकाशित किया, सब की एक सभा बुलायी, उसका पजीकरण किया और जन समूह को समाज कहा जाने लगा, ऐसा कहीं भी नहीं होता। समाज तो प्रकृति से होने वाली एक जीवमा निर्मित होती है।

समाज अपनी रक्षा, जीवन के आदर्शों की अभिव्यक्ति के और विकास के लिए अनेक प्रकार की व्यवस्थाएँ व सस्थाये स्थापित करता है। शिक्षा के लिए गुरुकुल सस्था, देश की अन्तर्बाह्य रक्षा के लिए राज्य सस्था, व्यक्ति व समाज के विकास के लिए वर्णाश्रम व्यवस्था आदि प्राचीन भारतीय सस्थाओ का उल्लेख किया जा सकता है। भारतीय मान्यता है कि समाज सहज सेन्द्रिय जैविक सृष्टि है। कृत्रिम मानवीय उपायो से न तो वह बनता है और न नष्ट होता है। जिन कारणों से व जिन पद्धतियो से सजीव ससार का निर्माण होता है, उन्हीं कारणो व पद्धतियो से भिन्न–भिन्न समाजो का उदयास्त होता रहता है।

व्यक्ति व समाज के बीच परस्पर सबधो को स्पष्ट करते हुए दीन दयाल जी ने कहा "हम अपने व्यक्तिगत हित व अहित का विचार करे, यही उचित व्यवस्था है। व्यक्ति

का हित व समाज का हित दानो मे कोई विरोध या सघर्ष नही है। कुछ लोग भ्रम से पूछत है कि आप व्यक्तिवादी हैं या समाजवादी ? हमारा उत्तर होता है कि हम व्यक्तिवादी भी हैं तथा समाजवादी भी। भारतीय विचारधारा के अनुसार हम व्यक्ति की उपेक्षा नही करत और समाज हित का विचार भी आझल नहीं होने देते। क्योंकि हम समाज हिता का विचार करत हैं इसलिए हम समाजवादी हैं किन्तु साथ ही हम व्यक्ति की भी उपेक्षा नही करत इसलिए हम व्यक्तिवादी भी हैं। किन्तु हम व्यक्ति को सर्वोपरि नही मानते इसलिए हमारा कहना होता है कि हम व्यक्तिवादी नहीं हैं किन्तु साथ म हम यह भी नही मानत कि समाज का व्यक्ति की सभी स्वतत्रताओ का अपहरण करने का अधिकार है और उसे किसी एक सीमा म बाधकर निर्जीव यत्र के समान उससे काम लेने का अधिकार है। इसलिए हम समाजवादी भी नहीं हैं। हमारी मान्यता है कि व्यक्ति के बिना समष्टि की कल्पना करना असभव है ओर समष्टि के बिना व्यक्ति का मूल्य शून्य है। भारतीय सस्कृति मे व्यक्ति ओर समाज दोनो का समन्वित कल्याण साध्य करने की दृष्टि से ही सारा चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। *

(v) समष्टि के पुरूषार्थ

व्यक्ति के समान समाज भी एक जीवमान घटक है ऐसा कहने के बाद स्वाभाविक प्रश्न होता है कि क्या समाज के भी शरीर मन बुद्धि ओर आत्मा होते हैं? समाज यदि कुछ लोगों द्वारा आपस मे सविदा (करार) कर निर्मित की हुई वस्तु नहीं है यदि वह एक सजीव सत्ता है तो फिर किसी जीवनमान घटक के समान समाज के भी शरीर मन बुद्धि व आत्मा अवश्य होगे। प दीन दयाल जी ने दैनिक जीवन का एक परिचित उदाहरण देकर इस बात को स्पष्ट किया है। उन्होंने कहा है समूह के भी शरीर मन बुद्धि और आत्मा होते हैं। उदाहरण के लिए 40 लोगो का एक क्लब है। य 40 लोग मिलकर उस क्लब का शरीर तैयार करते हैं। इकट्ठे होकर इकट्ठे रहकर एक क्लब बनाने की इच्छा या सकल्प उस क्लब का मन होता है। यह इच्छा न हो तो क्लब का निर्माण नहीं होगा। यदि इच्छा समाप्त हो जाय तो क्लब का भी विसर्जन हो जायेगा । इस इच्छा के मूर्तरूप लेने पर क्लब का कारोबार सुचारू ढग से चलाने क लिए कुछ व्यवस्थाए करनी पडती है। सदस्यता पदाधिकारियों के चुनाव चदा आदि के बारे मे सोच समझकर कुछ नियम बनाने पडते हैं। इन नियमों के सहारे क्लब का कारोबार ठीक ढग से चल सकता है। ये नियम और व्यवस्था क्लब की बुद्धि हैं। किन्तु क्लब बनाने की इच्छा मन में होना तथा उसके लिए विचार पूर्व कुछ नियम आदि बनाना ही पर्याप्त नहीं होता। क्लब के कुछ उद्देश्य भी होते हैं। वह उद्देश्य कवल मनोरजन का हो मनोरजन के साथ सेवा का हो या कुछ और हो क्लब का कारोबार अन्तत इस लक्ष्य को सामने रखकर चलाया जाता है। यह लक्ष्य ही उस क्लब की आत्मा है। *

केवल मनोरजन का उसके जैसे ही सीमित लक्ष्य को सामने रख कर चलायी जाने वाली छोटी–सी सस्था के जहॉ शरीर मन बुद्धि आत्मा होते हैं तो फिर पीढियों

से एकत्रित रहने वाले, एकसंघ एकरस समाज के बारे मे –राष्ट्र जीवन के बारे में–तो ये सब बाते कहीं अधिक प्रबल उत्कट रूप मे अवश्य ही रहती होंगी।

एक राष्ट्र की भूमि और उस भूमि म परम्परा से पुत्र के रूप मे रहता आया जन–समूह उस राष्ट्र का शरीर है। हमारे यहा की प्राचीन परिभाषा मे उसे देश की सज्ञा दी गयी है। इस जन–समूह की इच्छा या उसका सामूहिक जीवन का सकल्प उस राष्ट्र का मन है। इस समाज और राष्ट्र का जीवन ठीक से चलता रहे अर्थात उसकी धारणा के लिए उसके लिए कुछ नियम, व्यवस्थाएँ हो वे राष्ट्र का समष्टि–धर्म कहलाता है तथा चौथी बात है उस राष्ट्र का जीवन लक्ष्य उस राष्ट्र की आत्मा है । इन चारो रसायनों से राष्ट्र का निर्माण होता है। इस प्रकार जैसे शरीर मन बुद्धि व आत्मा से एक व्यक्ति बनता है ठीक उसी तरह भूमि व जन (शरीर) सामूहिक सकल्प (मन), धर्म (बुद्धि) तथा जीवन लक्ष्य (आत्मा) से मिलकर राष्ट्र का निर्माण होता है।"

चूंकि व्यक्ति के समान समाज के भी शरीर मन बुद्धि व आत्मा होते हैं अत जिस प्रकार व्यक्ति के समग्र व सतुलित विकास के लिए धर्म अर्थ, काम और मोक्ष, चारो पुरूषार्थो का विचार आवश्यक होता है उसी प्रकार समष्टि व राष्ट्र के सदर्भ मे उनका विचार आवश्यक है।

जिस सहज प्रवृत्ति, सकेतो विवेकशीलता नियम उपनियमों व व्यवस्थाओ के कारण व्यक्ति–व्यक्ति, व्यक्ति–समूहों मे, राष्ट्र–राष्ट्र के बीच आपस मे सौमनस्य रहकर उनका जीवन सुचारू रूप से चलता है, इन सब बातो का समष्टि धर्म मे अन्तर्भाव होता है।

व्यक्ति की भाति समाज के लिए अर्थ–पुरूषार्थ की आवश्यकता होती है पर्याप्त मात्रा में अर्थ का उत्पादन न हो तो समाज का योगक्षेम सुचारू ढग से नहीं चलेगा । अर्थ का अभाव या प्रभाव जब समष्टिगत होता है तब समष्टि के सामने भी अनेक समस्याएँ खडी हो जाती है।

समाज की उन्नति–अवनति का निर्णायक उत्तर अन्त में समष्टि के मनोबल पर निर्भर रहता है। समाज मानस जीवन्त हो तो सर्वथा प्रतिकूल परिस्थिति को भी वह मात दे सकता है तथा भस्म मे से नया जीवन खडा कर सकता है। अपने जन्म के बाद मरूस्थल को नन्दनवन कर दिखाने वाला छोटा–सा इस्राइल, दूसरे विश्वयुद्ध के समय का इगलैण्ड युद्धोतर काल का जापान एव जर्मनी भारतीयो द्वारा ब्रिटिश लोगो को उखाड फैंकना पाकिस्तान के आक्रमणो का मुहतोड जवाब देना आदि समष्टि के काम पुरूषार्थ के उदाहरण है।

समष्टि का मोक्ष को स्पष्ट करते हुए दीन दयाल जी लिखते हैं "प्रत्येक राष्ट्र उस परम सत्ता द्वारा नियत किये जीवन कार्य को लेकर ही जन्म लेता है। इस कार्य की पूर्ति के लिए अपनी सारी शक्ति लगाकर प्रयत्न करना ही उस राष्ट्र के विकास की सर्वोत्तम एव एकमेव साधना है। ५

आत्मा की इस अभिव्यक्ति के लिए स्वराज्य अर्थात परतत्रता से मुक्ति पहली आवश्यकता है। स्वराज्य के बिना राष्ट्र अपन आत्मा की तथा जीवन कार्य की न तो अभिव्यक्ति कर सकेगा और न उन्नति ही कर सकेगा। स्वतत्रता केवल राजनीति नहीं अपितु आर्थिक एव सास्कृतिक दृष्टि स भी स्व राज्य मयी होनी चाहिए। सामान्य धारणा होती है कि मोक्ष केवल व्यक्तिगत विषय है और उसका मार्ग सासारिकता से मुख मोडकर किसी अज्ञात स्थान पर जाकर अन्तहृदय में ध्यान लगाये केवल एकात मे ही वास करना है। माक्ष के बारे म यह धारणा निश्चय ही एकागी व गलत है। एकात्म मानव दर्शन में मोक्ष जागतिक जीवन से मुख मोडने वाला नहीं है मोक्ष व्यक्ति परिवार जाति राष्ट्र के क्रम से समुचे मानव –समूह को आत्मीयता की लपेट में लेकर परमसुख की ओर ले जाने वाला क्रियाशील पुरुषार्थ है।[3]

मोक्ष को स्पष्ट करते हुऐ प दीन दयाल जी ने कहा मुक्ति कभी व्यक्तिगत नहीं होती वह समष्टिगत ही होती है। समाज विपन्नावस्था मे हो तब भी उसे उसके हाल पर छोडकर मैं अकेले मोक्ष प्राप्त कर सकता हूँ, ऐसी गलत धारणा लिये लोग चलते हैं। समाज मुक्त होगा तो उसका स्तर ऊचा उठेगा वह उन्नत होगा तभी व्यक्ति को शाति प्राप्त होगी। हमारे यहा किसी भी पुराण में आपको यह वर्णन नहीं मिलेगा कि परमात्मा ने अवतार लिया और वह किसी गुफा म जाकर अपनी मुक्ति के लिए तप करने बैठा।

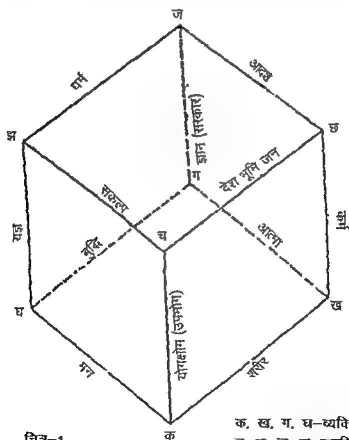
(vi) एकात्म समाज–व्यवस्था

समाज एव व्यक्ति का सबध टहनी और पत्तो जैसा या शरीर व उसके अवयवों जैसा हाने के कारण उनके ये पुरुषार्थ भी परस्पर पूरक होते हैं। व्यक्ति और समाज दोनों को एक दूसरे को जोडे रखने का कार्य जिसके द्वारा करना होता है उसे हमारे यहाँ पुरुषार्थ की सज्ञा दी गयी है। व्यक्ति व समष्टि के पुरुषार्थ के आपसी सबध के बारे में सूत्ररूप म कहा जा सकता है कि शिक्षा कर्म उपभोग एव यज्ञ इन चारों बातो से व्यक्ति व समाज एक दूसरे स जुडे होते है। समाज की दी हुई शिक्षा तथा सस्कारों से ही मनष्य मनुष्य बनता है। हमारी विचार–प्रक्रिया को समाज ही गतिमान बनाता है। माता–पिता गुरुजना तथा शिक्षा सस्थाओ आदि से जो शिक्षा व्यक्ति को मिलती है उसकी सहायता से ही व्यक्ति अपने आप समाज के लिए कर्म अथवा उद्योग कर सकता है। व्यक्ति द्वारा किये गये कर्म के फल के रूप में समाज व्यक्ति के योगक्षेम की तथा उपभोग की व्यवस्था करता है। इस चतु सूत्री मे चोथा भाग है यज्ञ। यज्ञ का सबध कर्म तथा उस कर्म से निहित भावना से रहता है। व्यक्ति उद्योग या व्यवसाय के रूप में जो कर्म करता है उसके द्वारा ही वह समाज स जुडा रहता है। स्थूल दृष्टि से देखने पर लगता है कि मनुष्य *केवल अपने लिये ही उद्योग करता रहता है किन्तु वस्तुत वह समाज के लिए काम* करता है। कुल उत्पादन मे स थोडा अपने लिए रख कर बाकी समाज के लिए बाजार मे बेच देता है। समाज ने उसे खती बाडी की शिक्षा दी । वह उसका मूल्य समाज को अनाज पैदा करके दता है। समाज ने बुनकर को वस्त्र बुनना सिखाया तो बुनकर समाज की कपड की आवश्यकता पूरी करता है। शिक्षक विद्यार्थी अवस्था म परिवार के बडे सदस्यों गुरूजनो तथा समाज से सस्कार ग्रहण करता है तथा आगे जाकर नयी पीढी

के अनगिनत विद्यार्थियों को ज्ञान व सस्कार देने का कार्य करता है।

अन्य क्षेत्रो में कार्य करने वाले व्यक्तियो के ऐसे कर्मों से ही समाज की नाना प्रकार की आवश्यकताऍं पूर्ण होकर समाज की धारणा होती है। शिक्षा, कर्म, योगक्षेम एव यज्ञ, यह धारणाचक्र इस प्रकार अखड रूप से चलता रहता है। अर्थात यह कर्म केवल आवश्यक योगक्षेम या उपभोग की दृष्टि न रखते हुए कर्त्तव्य–भावना तथा समर्पण–वृत्ति से किया जाये, तभी सही अर्थों मे यज्ञ बनता है। कर्त्तव्य भावना से किये गये ऐसे कर्मयज्ञ के कारण व्यक्ति का योगक्षेम तो भलि भाति चलता ही है, साथ ही उसकी नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति भी होती है। इसके अतिरिक्त वह कर्म भी उत्तम होकर समाज को भी सभी अगों से पुष्ट एव उन्नत करता है।

इस प्रकार शिक्षा, कर्म, उपभोग (योगक्षेम) एवं यज्ञ, इन चारों बातों से व्यक्ति एव समाज आपस में जुडे होते हैं। एक घन (Cube) की आकृति के माध्यम से यह सबध स्पष्ट किया जा सकता है। इस सबध को चित्र–1 में सपष्ट किया गया है।



चित्र–1

शिक्षा समाज स व्यक्ति की ओर कर्म व्यक्ति से समाज की ओर उपभोग समाज स व्यक्ति की आर ओर यज्ञ व्यक्ति से समाज की ओर ऐसी यह सरचना है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि व्यक्ति और समाज को जोडने वाली चार बातो मे से दो का दायित्व समाज पर तथा शष दो का व्यक्ति पर हैं। समाज एव व्यक्ति दोनो अपने–अपने दायित्व को प्रयासपूर्वक एव कर्तव्य–भावना स निभाते हैं तो व्यक्ति और समाज दोनो का एकात्म स्वरुप साकार होगा।

इस प्रकार हमारे यहा व्यक्ति व समाज का अस्तित्व सुख–दुख हित–अहित न केवल एक दूसरे से जुडे हुए हैं अपितु एक दूसरे पर निर्भर भी हैं और ये दोनो घटक शिक्षा कर्म योगक्षम तथा यज्ञ इन चार बाता से आपस म सबधित है। हमारे यहाँ व्यक्तिगत जीवन एव समष्टि जीवन का आपस मे तालमेल रखने के उद्देश्य से आश्रम व्यवस्था एव वर्ण व्यवस्था का निर्माण किया था। आश्रम व्यवस्था का उद्देश्य मुख्यत व्यक्ति की धारणा एव विकास है तो वर्ण व्यवस्था मुख्यत समष्टि की धारणा को समक्ष रखकर की गयी है। अथात व्यक्ति धर्म एव समष्टि धर्म परस्पर पूरक है।

(vii) समष्टि से परमेष्ठी तक '

अब तक क वर्णन म हमन चारा पुरूषार्थों स परिपूर्ण व्यक्ति–जीवन से प्रारम्भ कर आगे चलकर परिवार समाज राष्ट्र ओर समुच मानव–समाज तक की बढती कक्षाओ और उनक बीच परस्पर एकात्म सबधा का विचार किया। परन्तु भारतीय सस्कृति की इस भूमि में विकसित एकात्म दर्शन कवल मानव के पास आकर ही नहीं रूकता है। वह प्रकृति की मानवत्तर प्राणि–सृष्टि वनस्पति–सृष्टि तथा प्रकृति की दी हुई अन्य बातो पर भी विचार करता है। मानव जीवन का इस प्रकार सर्वांगीण विचार करत समय इन सभी बातों का उसमे समावेश करना एक परिपूर्ण एकात्म दर्शन के नाते उपयुक्त एव अपरिहार्य भी है। जल वायु प्रकाश वनस्पति प्राणी खनिज सम्पदा आदि हमारे जीवन के साथ ऐसे जुडे हुए हैं कि उनके बिना जीवन भी असभव हो बैठगा। " वनस्पति–सृष्टि ओर मानवेत्तर प्राणि–सृष्टि म कई सीमित होते हें इसलिए उनका नियत्रित उपभोग ही उपयुक्त होगा। प्राकृतिक सपदा के दुरूपयाग के कारण ही आज विश्व के समक्ष पर्यावरण की समस्या आ खडी हो गयी है।

इसी कारण भारतीय सस्कृति मे प्रकृति की पूजा होती है। पहाड नदियो वृक्ष पौधे गाय आदि की पूजा तथा चीटिया कबूतर व चिडियों को नित्य दाना आदि मानवेत्तर प्राणी–सृष्टि व वनस्पति–सृष्टि के प्रति हमारी आस्था का द्योतक है।

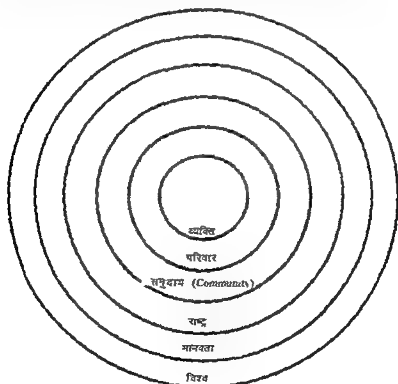
एकात्म दर्शन

पाश्चात्य जीवन दर्शन एव भारतीय जीवन दर्शन म व्यक्ति एव समष्टि के बीच सबधों के बारे म काफी विरोधाभास है। पाश्चात्य विचारधाराएं अधिकाशत प्रतिक्रिया के रूप मे उदित हुई। राम के धर्मपीठ के एकाधिकारवाद की प्रतिक्रिया के रूप में लोकतत्र का उदय हुआ तथा लोकतत्र की अगुली पकडकर पेदा हुए पूँजीवाद की प्रतिक्रिया के रूप मे समाजवाद तथा कम्यूनिज्म का जन्म हुआ ।

पाश्चात्य लागा ने व्यक्ति जीवन क ही नहीं समष्टि जीवन क परिवार राष्ट्र विश्व

मानव आदि वृहत घटको का विचार पृथक–पृथक किया है। यह सही है कि इन सभी इकाइयो का उन्होने सूक्ष्मता से अध्ययन किया है, किन्तु बाहर से अलग–अलग दिखायी देने वाली इन इकाइयो को जोडने वाली जो एक सुदृढ आन्तरिक कडी होती है उसका विचार ही नहीं किया। उदाहरण के लिए व्यक्ति के बारे मे विचार करते समय उन्होने मनुष्य के शरीर मन तथा बुद्धि के बारे मे पर्याप्त विचार किया परन्तु इस प्रकार के विचार करते समय व्यक्ति परिवार, राष्ट्र मानव–जाति मानवेत्तर सृष्टि आदि वृहतर इकाइयो का ही एक अगभूत घटक है, इस विशेषता को उन्होने ध्यान में ही नहीं लिया। परिवार के विरूद्ध व्यक्ति एक राष्ट्र के विरूद्ध दूसरा राष्ट्र, विश्व मानवता के विरूद्ध राष्ट्रवाद, प्रकृति के विरूद्ध मानव ऐसे सघर्ष होते रहे हैं। इसका प्रमुख कारण इस एकात्म–सूत्र के बोध का अभाव ही है।

पाश्चात्य विचार धारा सकेन्द्री वृत्त समूहो की एक आकृति चित्र सख्या–2 से स्पष्ट की जा सकती है। इस आकृति के केन्द्र स्थान मे एक बिन्दू है उसे व्यक्ति माने। इस बिन्दू के चारो ओर के वृत्त को परिवार चक्र इसके बाहर बडे चक्र को जातीय समुदाय उससे आगे राष्ट्र, मानवता तथा विश्व मानव के कई चक्र बनाये हैं।

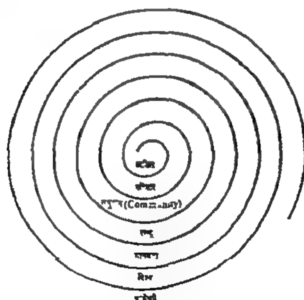


चित्र–2 सकेन्द्री रचना

इस एककेन्द्री रचना में व्यक्ति केन्द्र बिन्दु है तथा सभी वृत्त एक दूसरे से विलग है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता सभी एक दूसरे से सबधित हैं। समाज निर्माण में पाश्चात्य लोगों की "सोशल कान्ट्रेक्ट थ्योरी" तथा विगत 500 वर्षों में पोपशाही के विरुद्ध राष्ट्रीय चर्च सामन्तशाही के विरुद्ध लोकतत्र पूँजीवाद के विरुद्ध समाजवाद जैसे जो सघर्ष हुए उसी कारण उनकी पद्धति में यह पृथकता आयी होगी।

मानव जीवन का इस प्रकार टुकडों में विचार करने की पद्धति के कारण भारत के बाहर मानव एकता के लिए किये गये प्रयत्न किसी न किसी प्रकार एक अग के ढाचे में ठोक–पीटकर बिठाने की दिशा में होते रहे। इस्लाम व ईसाई सम्प्रदाय के बारे में विशेष उल्लेख किया जा सकता है। इन दोनों पथों का विस्तार दूर–दूर तक हुआ परन्तु सारे प्रयास सभी मानवों को एक प्रेषित और एक पवित्र ग्रथ की परिधि में बिठाने की भूमिका ही हुऐ। वह अत में केवल एक मृग–मरीचिका ही रही ।

मार्क्स ने न राष्ट्र न धर्म, न निजी सम्पत्ति, न विवाह तथा न परिवार के पाच सूत्रों के आधार पर वर्ग विहीन समाज की रचना करनी चाही । परन्तु आज हम देखते है कि विश्व मानचित्र से साम्यवाद लगभग समाप्त हो गया है। पूँजीवादी व्यवस्था में परिवार संस्था समाप्त हो गयी है नैतिक मूल्यों का सकट खडा हो गया है अमर्यादित उपभोग तथा अति उर्जा कदित औद्योगिकरण की वजह से पर्यावरण की समस्या खडी हो गयी है।



चित्र-3

अखण्ड मंडलाकार रचना

मानव एकता का विचार केवल भारतीय संस्कृति ने किया है। हमारे यहाँ न केवल मानव एकता का विचार हुआ है बल्कि संपूर्ण प्राणी–मात्र तथा चराचर सृष्टि की एकता का भी विचार किया गया है। यह विचार पृथगात्मकता की भूमिका से नही बल्कि विविधता के मूल मे विद्यमान एकता के आधार पर हुआ है। विविधता से विभूषित समस्त सृष्टि मे एक ही चैतन्य–तत्व समाया है। यही इस विविधता में एकता का प्रमुख सूत्र है। एकता के इस सूत्र को ध्यान मे रखकर इस आतंरिक एकता की अनेक रूपी अभिव्यक्ति मे रहने वाली परस्पर पूरकता को पहचानते हुए मनुष्यो पर इस परस्परानुकूलता के संस्कार करना तथा उस एकता को दृढतर बनाना ही सच्ची संस्कृति है। भारतीय संस्कृति एकात्मवादी है जिसे कुण्डलिन, सर्पिल या अखण्ड मंडलाकार रचना की संज्ञा दी गयी है। इसमें प्रत्येक मण्डल उसके आगे व पीछे के मण्डल से संबंध रखकर ही विकसित होता है (चित्र संख्या–3)। इस रचना का प्रारम्भ व्यक्ति से होता है परन्तु यह व्यक्ति केवल भौतिक सुख या अर्थ–काम के पीछे लगा न रहकर धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष इन चारो पुरुषार्थो की सिद्धि के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहता है। व्यक्ति के बाद अगला मण्डल परिवार का, उसके बाद समुदाय, राष्ट्र, मानवता तथा विश्व मण्डल से आगे परमेष्ठी तत्व के मण्डल तक पहुँचता है। परमेष्ठी तत्व का मण्डल अपने में सभी मण्डलो को समा लेता है। यही नही, परमेष्ठी तत्त्व स्वयं भी अन्य मण्डलों मे व्याप्त रहता है क्योकि परमेष्ठी तत्त्व सर्वातीत, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी और सर्वमय भी है। यही सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापी परम तत्त्व की एकात्म मानव दर्शन की आत्मा है।

इस प्रकार एकात्म मानव दर्शन एक पूरा जीवन दर्शन है। इसलिये एक तरफ समाज के घटकों को इस दर्शन के सभी अंगों से संस्कारित करते हुए, जीवन को भौतिक अभ्युदय के साथ संबंध रखने वाले राजनीति, अर्थनीति, समाजनीति आदि समाज जीवन के सभी क्षेत्रों में इस दर्शन के संजीवक संस्कारो को पहुँचाना चाहिए। प दीन दयाल जी ने एक स्थान पर कहा कि कौन–कौन से क्षेत्र मे किस बिन्दु पर कितना बल देना चाहिए यह तो तारतम्य से निर्धारित करना होगा परन्तु दृष्टि व आक्रामणशीलता सभी मोहरो पर होनी चाहिए। हमे एक ऐसा भारत बनाना है जो हमारे पूर्वजो के भारत से भी अधिक गौरवशाली हो तथा यहाँ जन्मा प्रत्येक मनुष्य अपने–अपने व्यक्तित्व का विकास करते हुए संपूर्ण मानव जाति के साथ ही नही अपितु संपूर्ण सृष्टि के साथ एकात्मता का साक्षात्कार करता हुआ नर से नारायण बनने के लिए समर्थ हो।

एकात्म अर्थ नीति : एक तीसरा विकल्प

प्रत्येक अर्थव्यवस्था का मुख्य उद्देश्य अपने नागरिको को समृद्ध एवं सुखी जीवन–यापन की सुविधाएँ प्रदान करना रहा है। आर्थिक समृद्धि की प्राप्ति के लिए ये अर्थव्यवस्थाएँ जी तोड कर पीछे पडी हुई है। इस विवशता ने कई तरह के आविष्कारो को जन्म दिया है, आर्थिक साधनों के कई स्रोतो का पता लगा है तथा उत्पादन मे कई

गुना वृद्धि भी हुई है। आथिक समृद्धि की दौड म कई अर्थव्यवस्थाएँ ता आगे निकल गयी तथा कई काफी पिछड गयी। परन्तु अति समृद्धिशाली व अभाव ग्रस्त दोनो ही अर्थव्यवस्थाए अलग–अलग तरह की समस्याओ से ग्रस्त हैं।

इन समस्याओ का समाधान करन हतु पश्चिमी देशा में पूँजीवादी *तथा साम्यवादी* विचारधाराएँ पनपी। पूजीवाद अपने मूल रूप म आज कहीं भी अस्तित्व मे नहीं है तथा साम्यवाद व समाजवाद अपने कई रूप बदलता हुआ विश्व मानचित्र से लगभग समाप्त *हो गया है। एडम स्मिथ रिकार्डो मिल मार्क्स हाब्सन केस बर्नहम शुम्पीटर आदि अर्थ* वैज्ञानिका न विगत वर्षों में कई अर्थशास्त्रीय सिद्धात प्रस्तुत किये। विकासशील देशो की अर्थव्यवस्था पर प्रा गुर्नार–मिर्डल प्रो जेकब वाइनर आदि अर्थशास्त्रियो ने आर्थिक चिन्तन प्रस्तुत किया ।

पूँजीवाद चार सिद्धाता पर खडा हुआ है –

(i) अस्तित्व के लिए सघर्ष (Struggle for existence)

(ii) सर्वोत्तम का अस्तित्व (Survival of the fittest)

(iii) प्रकृति का शाषण (Exploitation of nature)

(iv) व्यक्तिगत अधिकार (Individual rights)

इन चार सिद्धातो व आधार पर पूँजीवाद का विकास हुआ। पूँजीवाद को अपन विकास म एडम स्मिथ एव कीन्स क विचारा का काफी सहयोग प्राप्त हुआ।

एडम स्मिथ एक जगह कहते हैं कभी किसी का भला मत करो भला करना ही है तो तब करो जब ऐसा करने से तुम्हारा कोई स्वार्थ सिद्ध होता है (Dont try to do any good, let good come out as a by product of selfishness) । कींस ने कहा आने वाले कम स कम सौ वर्षो मे यदि सच्चाई का कोई उपयोग नही है और असत्य ही उपयुक्त है तो हमे चाहिए कि सच को झूठ और झूठ को सच मान लें। अधिकाधिक धन प्राप्त करने की भूख अधिकाधिक लाभ अर्जित करने की स्पर्द्धा ओर उसके लिए बरती जाने वाली दक्षता ही आने वाले कुछ समय के लिए हमारे देवता है। ये देवता ही हम आर्थिक आवश्यकताओ की अधी गली से बाहर निकालकर प्रकाश की ओर ले जायगे।[17]

दूसरे विश्व युद्ध के बाद पश्चिमी जगत के लिए बेकारी व मदी की समस्या से निपटने क लिए केस का अर्थशास्त्र वरदान सिद्ध हुआ । परन्तु स्मिथ व कींस के विचारो ने *अस्तित्व के लिए सघर्ष तथा सर्वोत्तम का अस्तित्व जैसे सिद्धातो के कारण* पूँजीवादी देशों मे जीवन को काफी प्रतिस्पर्द्धा पूर्ण बना दिया। प्रत्येक व्यक्ति कहीं दूसरे से पिछड न जाय इस डर स रात–दिन मशीन की तरह काम करने लगा। इस कारण *लोगो के जीवन मे रक्तचाप तनाव हृदय राग आदि बढ गय । लोगा को नीद लने के* लिए काम्पोज लेनी पडती है। जितनी हत्याएँ बलात्कार तलाक एव आत्म हत्याएँ अमरीका म हाती है उतन अपराध अन्य देश म नही पाय जात। उनकी पारिवारिक सस्था

ही समाप्त हो गयी है। उद्योगो के केन्द्रीकरण के कारण विशाल महानगर खडे हो गये तथा उनका जन जीवन प्रकृति से तो दूर हो ही गया परन्तु नैतिक दृष्टि से भी पिछड गया ।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के दुष्परिणामो की प्रतिक्रिया में ही मार्क्सवादी अर्थचिन्तन सामने आया। 1917 मे जब रूस में क्रांति हुई तो मार्क्सवाद के बारे में यह कहा गया कि यह एक अत्यन्त वैज्ञानिक विचारधारा है जिसके सामने सभी विचारधाराएँ समाप्त हो जायेगी तथा ऐसे समाज का निर्माण होगा जो समता युक्त तथा सभी प्रकार के शोषण से भी मुक्त होगा। परन्तु मुश्किल से 70 वर्ष बाद ही साम्यवाद का यह महल ढहने लगा तथा आज विश्व मान चित्र से लगभग समाप्त हो गया है। बडे लम्बे चौडे वायदे करने वाली साम्यवादी अर्थव्यवस्थाऐ लोगो को न्यूनतम रोटी–कपडा भी उपलब्ध नहीं करवा पायी।

भारत मे राजनीतिक स्वतत्रता के 55 वर्ष बाद भी लोगों की स्थिति काफी दयनीय है। गरीबी बेकारी असमानता, स्फीति, भुगतान असतुलन आदि कई समस्याएँ ज्यों की त्यो खडी हैं। प दीन दयाल जी ने कहा कि विश्व आज भीषण सभ्रम के चौराहे पर खडा है। इस चक्र–व्यूह से उसे छुडा सकने वाला क्या कोई तीसरा विकल्प है ? दीन दयाल जी ने बडे ही आत्म विश्वास पूर्वक कहा है कि **भारतीय सस्कृति के एकात्म मानव दर्शन के अतर्गत एकात्म अर्थनीति ही ऐसा तीसरा विकल्प बन सकता है।**

जैसा कि इस अध्याय के प्रारम्भ मे बताया गया है कि एकात्म मानव दर्शन एक ऐसा जीवन–दर्शन है जो मनुष्य का विचार केवल "आर्थिक मानव" के एकागी दृष्टिकोण से न करते हुए जीवन के समग्र पहलुओं का तथा ऐसे मानव के अन्य मानवो एव मानवेत्तर सृष्टि के साथ परस्पर पूरक एकात्म सबधों को भी ध्यान में लेकर समृद्ध, सुखी एव कृतार्थ जीवन की दिशा दर्शाता है।

अर्थनीति का विचार करते समय आर्थिक बातों के साथ ही कुछ अनार्थिक बातों का भी विचार करना पडता है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकाश पश्चिमी अर्थशास्त्रियों ने इन आर्थिकेत्तर बातों पर कोई विचार नहीं किया। कुछ अर्थशास्त्रियो जैसे जे. एस. मिल के अनुसार "यह नहीं कहा जा सकता कि सभी आर्थिक प्रश्नो का केवल अर्थशास्त्र के आधार पर ही समाधान ढूँढा जा सकता है। अनेक आर्थिक प्रश्न ऐसे होते है जिनके महत्वपूर्ण राजनीतिक व नैतिक पक्ष भी होते हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।"

प्रो जेकब वाइनर का भी इसी प्रकार का मत है "केवल अधिक पूँजी, अधिक भूमि, कोयले की अधिक खाने आदि बातों के आधार पर आर्थिक प्रगति नहीं की जा सकती। अच्छी शिक्षा, सस्कार, राजनीतिक एव सामाजिक सगठन एव श्रम की प्रतिष्ठा को सजोये रखना भी उसके लिए आवश्यक होता है।" प्रो. गुन्नार मिर्डल ने भी इसी तरह के विचार

प्रकट किये। उन्होने बताया अर्थशास्त्रज्ञो द्वारा निरूपित उत्पादन के घटकों के गुणधर्मों के साथ आर्थिकेत्तर घटको का पर्याप्त सबध रहता है इसलिए आर्थिक घटको के साथ अर्थिकेत्तर घटका का भी विचार करने वाले अर्थशास्त्र का हमें विकसित करना होगा।

परन्तु आज पश्चिमी अर्थशास्त्र विज्ञान का अधिकाधिक विचार कर मानव की केवल भौतिक समृद्धि बढाने की दिशा म ही साचता ह तथा आज उसे भौतिक समृद्धि के साथ मानसिक स्वास्थ्य एव सतोष प्राप्त करा देने वाली सजीवनी की उसे तलाश है। दीन दयाल जी द्वारा प्रस्तुत एकात्म मानव दर्शन और उसके अतर्गत **एकात्म अर्थ नीति** म स इस सजीवनी का अनुभव किया जा सकता ह।

अपन आर्थिक चितन को व्याख्यित करन के लिए दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा नामक पुस्तक लिखी। पुस्तक म अर्थनीति की विवेचना करत हुए उन्होने अपने एकात्म मानव के अर्थायाम की व्याख्या करने का प्रयत्न किया ह। **समाज से अर्थ के अभाव व प्रभाव दोनों को मिटाकर उसकी समुचित व्यवस्था करने को अर्थायाम कहा गया है**[1] उनके द्वारा बताये गये आर्थिक विचार निम्न प्रकार है–

1 भारतीय सस्कृति में अर्थ

भारतीय सस्कृति म धर्म को आधारभूत पुरूषार्थ माना गया हे। सुखस्य मूलम धर्म। धर्मस्य मूलमर्थ। चाणक्य के इस कथन के अनुसार अर्थ क बिना धर्म नहीं टिकता। [9] *1953 म लिख अपन प्रथम अर्थनीति प्रलेख म उपाध्याय लिखते हैं*

हम जानत हैं कि भारतीय ढग सदा से ही धर्म का ढग रहा है (मजहब का नहीं) और धम के इस ढग पर ही आर्थिक नवनिर्माण के लिए नक्शे को तैयार करने की जरूरत है धर्म की वेदा की व्याख्या हम लेते हैं जिसमे उसके 12 लक्षण गिनाए गए हैं। इनमे धर्म का आद्य लक्षण सबसे महत्वपूर्ण हे (श्रमेण तपसा सृष्टा) और वह हे श्रम । श्रम को धर्म का पहला लक्षण बताया। श्रम की महत्ता का ज्ञान मार्क्स और एजिल्स के जन्म तक रुका नही रहा वह अतिपुरातन काल में सहज अनुभूति स हमन मानवता को दे दिया था। अत श्रम का अधिकार देना राज्य का मूलभूत कर्तव्य हे (Duty to work) इसी प्रकार मनुष्य को श्रम करने का यह अधिकार दना राज्य का मूलभूत कर्तव्य है। अत श्रम का अधिकार (Right to work) मनुष्य का सवैधानिक अधिकार है। राज्य का यह पहला कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक नागरिक को उसकी याग्यता व क्षमता क अनुसार काम करने का अवसर दे। इन अवसरा म किसी प्रकार का भदभाव न जाति का न रग का आर न लिग का होन द। राष्ट्र के पुनर्निर्माण की जा भी याजना बनाई जाए उसका उद्दश्य सभी व्यक्तिया का काम दिलाना हाना चाहिए (Full employment) [1] इसी आधार पर दीनदयाल उपाध्याय पचवर्षीय याजनाओं

के निर्माण के संदर्भ में सदैव यह आग्रह करते रहे कि हमें अपना आयोजना लक्ष्य घोषित करना चाहिए "*सब को काम*"।

2. धन का मनोविज्ञान

धन का अभाव मनुष्य को चोर बनाता है। अभाव के क्षणों मे की गई चोरी को भारतीय शास्त्रकार अपराध नहीं वरन् "आपद्धर्म" की सज्ञा देता है

"उन्होंने (विश्वामित्र ने) धर्म की अनेक मर्यादाओ को भग किया। आपत्धर्म की सज्ञा देकर शास्त्रकारा ने उनके इस व्यवहार को उचित ठहराया है। यदि अर्थ के अभाव की आपत्ति बनी रहे तो फिर *आपद्धर्म अर्थात् चोरी ही धर्म बन जाय। यदि यह आपत्ति* समष्टिगत हो जाय अथवा समष्टि का बहुताश इससे व्याप्त हो जाये तो वे एक दूसरे की चोरी कर के अपने आपद्धर्म का निर्वाह करेंगे।"[23]

अर्थात् समाज म अर्थ का अभाव अथवा अभावमूलक नियोजन समाज मे अधर्म को धर्म बना दता है वैसे ही "*अर्थ का प्रभाव भी* धर्म का नाश करता है अर्थ जब अपने मे या उसके द्वारा प्राप्त पदार्थों में और उससे प्राप्त भोग–विलास में सग (आसक्ति) उत्पन्न कर देता है तब अर्थ का प्रभाव कहा जाता है। 'सर्व गुणा काचनमाश्रयति'

जब समाज मे सभी 'धनपरायण' हो जाए तो प्रत्येक कार्य के लिए अधिकाधिक धन की आवश्यकता होगी। धन का यह प्रभाव प्रत्येक के जीवन में अर्थ का अभाव उत्पन्न कर देगा।"[24]

इसलिए वे यह प्रतिपादित *करते हैं कि "समाज के मानदण्ड ऐसे बनाए जायें कि* हर वस्तु पैसे से न खरीदी जा सके। ... (पैसे से ही मूल्य आकने का परिणाम यह होगा कि दुर्बल की रक्षा ही नही हो पायेगी) शरीर शक्ति मे दुर्बल अपनी बुद्धित का उपयोग कर धूर्तता से धन कमाकर, *अपनी रक्षा का मूल्य चुकायेगा* (घुसखोरी होगी)। श्रम का रुपये– पैसे मे मूल्य आकना असमव है। *श्रम और पारिश्रमिक* दोनों का, अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे घनिष्ठ सबध होने पर भी, व्यवहार जगत् के लिए सर्वमान्य एव सर्वकष मूल्य सिद्धात निश्चित करना न तो सरल है, ओर न उपादेय ही। वास्तविकता तो यह है कि दोनों का मूल्याकन पृथक मानदण्ड से होता है। श्रम की प्रतिष्ठा उससे मिलने वाले अर्थ के कारण नहीं, अपितु उसके धर्मत्व से ह। इसी प्रकार किसी भी व्यक्ति को दिया गया पारिश्रमिक उसके द्वारा किए श्रम का प्रतिपादन नही वरन् उसके "योगक्षेम" की व्यवस्था है।"[25]

उपाध्याय इस प्रकार के समाजशास्त्र व मनोविज्ञान के हिमायती है जिसमे कर्म की प्रेरणा का आधार लोभ वृत्ति नहीं, वरन "कर्त्तव्य सुख" है। वे उस अर्थशास्त्र के खिलाफ है जो मानव जीवन के सामाजिक एव मनोवैज्ञानिक पहलुओ की उपेक्षा करता है।

व्यक्तियों की अबाध व असीम प्रतिस्पर्धा को न तो हम सामाजिक जीवन

का नियामक मान सकते हैं और न सुरक्षापूर्ण ही। यह मान्यता ' मात्स्य न्याय का प्रतिपादन करने वाली है। हमने इस न्याय को कभी धर्मसंगत नहीं माना। समाज म मानव की कुछ स्वतत्रताओ पर मर्यादा आवश्यक होती है। अनियत्रित स्वतत्रता केवल कल्पना की वस्तु है। हॉ यह नियत्रण जितना बाहरी होगा मानव को कष्टदायी होगा। शिक्षा और सरकार दर्शन और आदर्शवाद व्यवहार म मनुष्य को आत्म-नियत्रण सिखाते हैं। "

अपनी ही गति स चलने वाले अर्थशास्त्र के हवाले समाज को नहीं किया जा सकता। अर्थचक्र का समाजशास्त्र व धर्मशास्त्र के अनुकूल नियोजन करना आवश्यक है इसलिए वे कहते हैं अपनी ही गति से बराबर गतिमान अर्थव्यवस्था असभव है उसे गति देने के लिए और बाद मे भी कम स कम रुकावट के साथ सुचारु रूप स चलते रहने के लिए व्यक्ति और समाज क जीवन में प्रेरणा का स्रात अर्थ के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र ढूँढना होगा। राष्ट्र की राजनीतिक महत्वाकाक्षाएँ व्यक्ति को सामाजिक प्रतिष्ठा की अभिलाषा कुटुम्ब का प्रेम आदि अनेक प्ररणाए वाछित अर्थरचना को बनाने व टिकाने म सहायक हाती है। "

उपाध्याय की मान्यता है कि उपभोगवाद स्पर्धावाद व वर्गसघर्ष इन सबका आधार अनियन्त्रित उपभोग है। पश्चिम ने अधिकाधिक उपभोग के अपने पुराने सिद्धात को ही चलने दिया और उसमें सशाधन की जरूरत नहीं समझी। वास्तविकता यह है कि अधिकाधिक उपभाग का सिद्धात ही मनुष्य के दु खो का कारण है। उपभोग की लालसा यदि पूरी की जाय तो वह बढती चली जाती है। वर्गसघर्ष जिसके ऊपर समूचा साम्यवाद खडा है एसे उपभाग के कारण ही उत्पन्न हाता है। भारतीय मतवाद जब वर्गसघर्ष का खण्डन करता है तब उसका तात्पर्य यही होता है कि उसने उपभोग की बजाय न्यूनतम उपभोग को आदर्श बनाया है। मनुष्य की प्राकृत भावनाओ का सस्कार कर के उसमें अधिकाधिक उत्पादन समान वितरण तथा सयमित उपभोग की प्रवृत्ति पैदा करना ही आर्थिक क्षेत्र में सास्कृतिक कार्य है। इसमे ही तीनो का सतुलन है।

साम्यवादी व पूँजीवादी विचारधाराएँ समाजशास्त्र मानवशास्त्र विधिशास्त्र सभी को अर्थशास्त्र के हवाले कर देती है। अर्थशास्त्र उनकी समस्त गतियो का नियामक है। अर्थशास्त्र की औद्योगीकरण-प्रवृत्ति ने वित्तीय सत्ता के केन्द्रीकरण को पोषण प्रदान किया है इसस मानव जीवन का ही मशीनीकरण हो गया है। उपाध्याय धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र व समाजशास्त्र म पारस्परिक सतुलन क हिमायती हैं इस सतुलन कार्य को वे सास्कृतिक कार्य मानते हैं तथा इस दृष्टि के अनुकूल अर्थायाम की स्थापना के हिमायती हैं।

3 स्वामित्व का सवाल

सम्पत्ति किसकी ? यह सभ्य समाज का आदिकालिक प्रश्न है। सम्पत्ति को सपूर्ण समाज चक्र का नियामक मान लेने स इस सवाल की अहमियत और बढ गई।

व्यक्तिवाद व समाजवाद के विचारधारात्मक संघर्ष ने इसे एक नवीन आयाम दे दिया, सम्पत्ति पर व्यक्ति का अधिकार अथवा सम्पत्ति पर समाज का अधिकार ? उपाध्याय "सम्पत्ति" के स्वामित्व के लिए व्यक्ति व समाज के द्वन्द्व को ही गलत मानते हैं, अत इस सवाल का सीधा उत्तर नही देते ।

हर व्यक्ति समाज का प्रतिनिधि है अत वह समाज की सम्पत्ति के एक हिस्से का *'न्यासी' या संरक्षक है। उपाध्याय व्यक्ति को श्रीविहीन करने के खिलाफ है व्यक्ति स्वय* "समाज पुरुष" का अग है, अत वह स्वय ही समाज की धरोहर है इसलिए सम्पत्ति पर अमोघ अधिकार तो समाज का ही है लेकिन वे समाज की एकमात्र प्रतिनिधि सस्था के नाते "राज्य" को मानने के लिए तैयार नही है। अत निजी सम्पत्ति के अधिकार के नाम पर समाज के कुछ लोगों के हाथ में सम्पत्ति का केन्द्रीकरण या सम्पत्ति के सामाजिक अधिकार के नाम पर राज्य में सम्पत्ति के केन्द्रीकरण को वे समान रूप से गलत मानते हैं। आम आदमी को पूँजीपतियों अथवा राज्य सस्था का मजदूर या गुलाम बना देना, वे मानवता का अपमान समझते हैं। उपाध्याय सम्पत्ति पर न तो व्यक्ति का असर्यादित स्वामित्व स्वीकार करते है तथा न ही अमर्यादित राज्याधिकार। वे स्वामित्व के केन्द्रीकरण के खिलाफ हैं अत वे विकेन्द्रित राज्य व विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था के समर्थक हैं।

उपाध्याय कहते है, " समाजवादी निजी सम्पत्ति को ही समाप्त करने की बात करते हैं। उनका सिद्धात व व्यवहार दोनों ही दृष्टियों से समर्थन करना कठिन है । यद्यपि सृष्टि के आरम्भ से ही "अपरिग्रह" एव "मागृध कस्यस्विदनम्" का उपदेश मिला है, किन्तु यह ससार मेरे और तेरे का ही नाम है। साम्यवादी जो निजी सम्पत्ति की भावना को जडमूल से समाप्त कर देना चाहते थे, पहले व्यक्तिगत और फिर कुछ-कुछ अश मे निजी सम्पत्ति को भी स्वीकार करने लगे। निजी सम्पत्ति के कारण बुराईयाँ उत्पन्न होने पर भी हम उसका बहिष्कार नहीं कर सकते। हाँ, हमें निजी सम्पत्ति की मर्यादाएँ अवश्य स्थापित करनी होंगी।"[27]

व्यक्तिगत सम्पत्ति के नियमन एव अर्थोत्पदकीय आयोजना के लिए उपाध्याय राज्याधिकार को भी स्वीकार करते हैं। जहाँ कुछ हाथों में पूँजी के केन्द्रीयकरण का खतरा हो वहाँ राष्ट्रीयकरण को वाछनीय मानते हैं

जहाँ तक कुटीर उद्योगो का सवाल है खतरा बहुत कम है लेकिन जहा बडे उद्योगो का क्षेत्र शुरू होता है वहाँ यह खतरा उत्पन्न होता है। सुरक्षा उद्योगो का तो राष्ट्रीयकरण अनिवार्य है। अब प्रश्न बचता है पूँजी उद्योगो का उनका भी अतिम रूप से राष्ट्रीयकरण कर देना उद्देश्य होना चाहिए। आज पूँजी उद्योग व्यक्तिगत क्षेत्र मे आते हैं। उनसे व्यक्तिगत क्षेत्र का क्रमिक उन्मूलन किया जाना चाहिए। जब तक यह राष्ट्रीयकरण अतिम रूप से सम्पन्न नहीं हो जाता तब तक बडे उद्योगों के गुट बनने देने की प्रवृत्ति को रोकना चाहिए। जिन उद्योगों में ये गुट बन गए हैं उनका राष्ट्रीयकरण

कर लिया जाये। कुटीर उद्यागा का विकास करते समय भी इस बात का ध्यान रखना होगा कि उनक गुट बनाकर पूँजीपति उन पर नियत्रण स्थापित न कर ल। जापान मे वितरण तथा सम्पत्ति की असमानता का कारण वहाँ क कुटीर उद्योगो पर पूँजीपतियों का नियत्रण ही हे। ^

स्वामित्व क सवाल का जिस प्रकार पूँजीवाद व समाजवादी लोग प्रस्तुत करते है उसे वे उनकी विभक्त दृष्टि का परिचायक मानते हे। उपाध्याय के नजर मे सम्पत्ति के स्वामित्व की बजाय केन्द्रीकरण का सवाल ज्यादा अहम है साथ ही उपभोगवाद की अवधारणा का सवाल भी महत्वपूर्ण है अत व लिखत हैं

स्वामित्व के साथ अनिर्बंध नियत्रण एव मनमान उपभाग की धारणाआ ने इस विषय का गलत पृष्ठभूमि मे प्रस्तुत किया है। किसी भी वस्तु पर मेरा स्वामित्व होने के बाद भी मुझे यह अधिकार प्राप्त नही कि मैं उसका चाहे जैसा उपभोग करूँ। स्वामित्व एव उपभोग की दोना भावनाओ को जब तक हम अलग–अलग नहीं करेगे तब तक हम होने वाली बुराइयो को नही रोक सकगे। जिस वस्तु का मैं स्वामी हूँ उसका उपभोग समाज हित मे ही करने का मुझे अधिकार है यह विचार प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख चाहिए। राज्य भी जब स्वामित्व ग्रहण कर लेता है तो वह व्यक्तिया द्वारा ही व्यवस्था करता है। जो व्यक्ति आज अपनी चीज का मनमाना उपयोग करने से नहीं डरता वह समाज की वस्तु का उपयाग भी वैसा ही नही करेगा इसकी गारटी नही दी जा सकती। यदि उसके दुरुपयाग को राकने के लिए दण्डनीति आवश्यक समझते हे तो वह उसके पास स्वामित्व का अधिकार रखते हुए भी काम मे लाई जा सकती है। ^

दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति के निजत्व को कुचलन वाले राज्याधिकार व समाज की उपेक्षा करन वाले वैयक्तिक अधिकारा के खिलाफ हैं वे इसे मानव की अस्वस्थ अवस्था का परिचायक मानते हैं। सम्पत्ति पर व्यक्ति या राज्य के अर्निबंध नियत्रण के अधिकार का सवाल भी इस अस्वस्थ अवस्था की उपज है। उनका मत है गभीरता से देखे तो स्वामित्व का अधिकार वास्तव में निश्चित मर्यादाओ तथा निश्चित उद्देश्यों के लिए किसी वस्तु के उपयोग का अधिकार ही है समय के साथ इन अधिकारो मे परिवर्तन होता रहता है। अत हम सेद्धातिक दृष्टि से व्यक्ति ओर समाज के झगड म नही पडगे।

सम्पत्ति का उपभाग कुटुम्ब (समाज) क हित मे होता है मनमान ढग से नही। ट्रस्टीशिप का यह भारतीय सिद्धात गॉधीजी गुरुजी आदि विचारको ने समाज के सम्मुख रखा है। ^

ट्रस्टीशिप का सिद्धात हर व्यक्ति का समाज का दायित्ववान घटक मानता है। समाज म दायित्व–बाध का शिथिलन न आवे तथा दायित्व का सस्कार सामाजिक परिवेश का स्वाभाविक परिणाम हा ऐसी समाज रचना मानवी समाज रचना हे। व्यक्ति की शैतानियत पर राज्य का अकुश एव राज्य की हैवानियत के खिलाफ व्यक्तियो

का विद्रोह संस्कारहीन समष्टि का परिचायक है। "अकुश" व "विद्रोह" मजबूरी के हथियार हैं इनका यदाकदा उपयोग व्यावहारिक माना जा सकता है लेकिन अखण्ड अकुश एव अखण्ड विद्रोह की व्यवस्थाओं का नियोजन, विवेक सम्मत नही माना जा सकता। व्यष्टि व समष्टि के साझेपन मे ही मानवता का सुख अन्तर्निहित है। अत सम्पत्ति पर यह साझा अधिकार ही, उपाध्याय के एकात्म मानववाद को अभिप्रेत है।

पूँजीवाद का निषेध

दीनदयाल उपाध्याय, पश्चिम की विचार–सरणी से उत्पन्न, व्यक्तिवाद के लोकतत्रीय पक्ष के समर्थक है, लेकिन पूँजीवाद को व्यक्तिवाद की विकृति मानते है। उन्मुक्त आर्थिक स्पर्धा पूँजीवाद का आधार है, स्पर्धा–स्वातत्र्य को ही पूँजीवादी लोग व्यक्ति स्वातत्र्य कहते हैं, लेकिन उपाध्याय इससे पूरी तौर पर असहमत हैं। उनका कहना है

' कहा जाता है कि स्वतत्र एव प्रतिस्पर्धी–पण व्यक्ति को उपभोग की स्वतत्रता प्रदान करता है। (यह सही नहीं है) विरोधियो (स्पर्धियों) के समाप्त होन पर, एक या कुछ उत्पादको का उस क्षेत्र मे एकाधिपत्य हो जाता है, तो वे उपभोक्ता से उसके प्रजातत्रीय अधिकारों को छीन लेते हैं। फिर मूल्य, माग और पूर्ति के नियमो से तय न होकर, उत्पादकों की अपनी इच्छा और योजना से तय होते हैं। आर्थिक क्षेत्र मे यह एक प्रकार की "डिक्टेटरशिप" है। प्राप्त शक्ति तथा प्रचार तत्र के सहारे उत्पादकों के स्वामी सामान्य जन को, उसके अधिकार से वचित करते हैं। एतदर्थ आवश्यक है कि उत्पादन के सामर्थ्य की मर्यादा निश्चित की जाये, जो कि विकेन्द्रीकरण से ही सभव है।'"[37]

उपाध्याय कुछ व्यक्तियों के हाथों मे असीमित उत्पादन के सामर्थ्य के केन्द्रीकरण के प्रबल विरोधी हैं " यदि एक व्यक्ति द्वारा उत्पादन की स्वतत्रता दूसरे के मार्ग में बाधक बनती है, तो वह नहीं दी जा सकती। एक बडे कारखाने का मालिक, यद्यपि स्वय उत्पादन की स्वतत्रता का उपभोग करता है, किन्तु वह छोटे–छोटे उद्योगो को समाप्त कर, उनकी स्वतत्रता का अपहरण करता है। फिर कई बार उसके कारखाने मे मजदूरों की स्वतत्रता भी बहुत सीमित हो जाती है। अत नियमन आवश्यक है।" [38]

पूँजीवाद की प्रवृत्ति वित्तीय सत्ता को कुछ हाथो मे केन्द्रीकृत कर देने की है। अपनी समाज निरपेक्ष मानसिकता के कारण वह मनुष्यो के हित की बजाय अपने स्वामित्व के कारण पर ही अधिक बल देता है। यह केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति ही, पश्चिम के औद्योगिकरण को पनपाती है जहाँ मशीन मनुष्य के लिए सहयोगिनी बनकर नहीं वरन् स्पर्धिनी बनकर आई। नित नए यात्रिक अभिनवीकरण ने पूँजीवाद को बल प्रदान किया, अत उपाध्याय बेतहाशा मशीनीकरण व औद्योगिकरण के खिलाफ है।[39] वे कहते हैं

' उत्पादन' पर अधिक बल देने के कारण अमरिका आदि मे पूँजीवाद का विस्तार हुआ। नवाविष्कृत यत्र, इस वृद्धिगत उत्पादन के कारण बने और इन यत्रो के स्वामी ही,

उत्पादन के स्वामी भी बन गए। लाभ मे जब श्रमिको को भाग नही मिला जब उनमे प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई उन्होने एक नई प्रणाली समाजवाद या साम्यवाद का विकास किया जिसमे पुन वितरण पर बल दिया और इसके लिए राज्य द्वारा व्यक्ति को कुचलकर रख दिया गया। " पूँजीवादी व्यवस्था समाज मे प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है सम्यक जीवन का नियोजन नहीं करती। समाज के सास्कृतिक मूल्यो को नष्ट कर उसे उपभोगवाद के दुष्चक्र मे फसाकर लोलुप बनाती है। पूँजीवाद द्वारा प्रस्तुत की गई आर्थिक मानव की कल्पना भी भ्रमपूर्ण है। उपभोगवाद व आर्थिक मानव की कल्पनाओ ने आर्थिक जीवन एव मानव को विभक्त कर दिया है श्रम एव आनद के बीच एक गहरी खाई पैदा कर दी है। यत्र को मनुष्य का सहयोगी बनाने के बजाय मनुष्य का यत्र का पुर्जा बना दिया है। उत्पादन कार्य मे से शिल्प व सृजन के सुख का अपहरण कर लिया है। दीनदयाल आगे कहते है

एक स्वतत्र जुलाहे को समाप्त कर उसे विशाल कारखाने का मजदूर बना दिया गया। बाजार के स्थान पर एक विभागीय स्टोर्स बना दिया गया। दर्जी के स्थान पर रेडीमड कपडा लाकर रख दिया गया। मनुष्य यानी एक जन्तु,जो आठ घटे यत्रवत् मजदूरी करे और सोलह घटे खाए। कार्य और जीवन के बीच एक दीवार खडी हो गई। पश्चिम के कई देशो मे कहा जाता है पाच दिन काम के और दो दिन छुट्टी के। उन दो दिनो में *केवल मस्ती केवल खनापीना और मौज काम की बात भी नहीं।* अर्थात् ये पाच दिन कमाई करते हैं तथा दो दिन जीवित रहते हैं। अत हमे मनुष्य के कमाई के साधनो का इस प्रकार निर्धारण करना होगा कि उसके कार्य और वास्तविक जीवन के बीच कोई खाई न रहे। हाड–मास के मनुष्य के पास हृदय मस्तिष्क व शरीर तीनो की भूख है इन तीनो का ही विचार करना होगा। अन्यथा कार्य के आठ घटो का जो अमानवीय प्रभाव (Dehumanising effect) होता है उसे समाप्त करने मे ही उसके शेष सोलह घटे व्यतीत हो जाते है उनके समाप्त होते ही वह पुन आठ घटो के चक्र मे फस जाता है। "

समाजवाद का निषेध

व्यक्तिवाद के समानान्तर समाजवाद का विचार भी पश्चिम मे पैदा हुआ। समाजवाद का प्रतिनिधि अततोगत्वा सर्वहारा की तानाशाही वाला साम्यवाद बन गया। जो अलोकतात्रिक राज्यवाद एव वर्गवाद के साथ ही पूँजीवाद के समान औद्योगीकरण व केन्द्रीकरण का समर्थक है। उपाध्याय समाजवादी वृत्ति के प्रशसक हैं लेकिन उसके राज्यवाद व केन्द्रीकरण के व्यावहारिक उपायो के सर्वथा खिलाफ है।

समाजवाद व्यक्तिवाद के अतिवाद का निषेध करता है। वह व्यक्ति की बजाय व्यवस्था मे परिवर्तन का हामी है व्यक्ति को अव्यवस्था की ही उपज मानता है। उसका यह व्यवस्थावाद ही उसे अन्तत राज्यवादी बना देता है। उपाध्याय व्यक्ति बनाम व्यवस्था के विवाद को भी गलत मानते हैं। कोई व्यवस्था व्यक्ति–निरपेक्ष नहीं होती तथा

कोई व्यक्ति व्यवस्था निरपेक्ष नहीं हो सकता। वे इस प्रकार की समाज व्यवस्था के पोषक हैं जो अपने "मनुष्य" की चिता करता है

बुराई का वास्तविक कारण व्यवस्था नहीं, मनुष्य है। मनुष्य ही प्रथम आता है। बुरा व्यक्ति अच्छी से अच्छी व्यवस्था मे घुसकर बुराई फैला देगा। समाज की प्रत्येक परम्परा और व्यवस्था किसी न किसी अच्छे व्यक्ति द्वारा प्रारम की गई है। परन्तु उसी अच्छी परम्परा पर जब बुरा व्यक्ति आ बैठा तो वहाँ बुराई आ गई। इसकी क्या गारटी है कि यदि कोई व्यक्ति निजी क्षेत्र मे स्वतत्र रहकर बुराई करता है तो उसके स्थान पर राज्य का व्यक्ति बैठा देने पर बुराई न फैलेगी? अत हमारा ध्यान व्यक्ति की कर्त्तव्य भावना को जगाने पर केन्द्रित होना चाहिए था।"[35]

केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति मनुष्य के कर्त्तव्य भाव को मारती है। उसमें "मजदूर" का भाव जगाती है। "मजदूरी" का भाव "मजबूरी" का भाव है इसमे कर्ता को सम्मान एव कर्त्तव्य का सुख नहीं रहता। उपाध्याय मानते हैं कि समाजवाद मे केन्द्रीकरणवादी पूँजीवाद के सब दोष विद्यमान रहते हैं, राज्यवादी नौकरशाही का एक अतिरिक्त दोष और जुड जाता है। अत वे पूँजीवाद व समाजवाद दोनो की साझी आलोचना करते हैं

"वर्तमान साम्यवाद तथा पूँजीवाद दोनों मे स्वामित्व के स्वरूप का अतर छोडकर और कोई फर्क नहीं है। अत दोनों मे ही व्यक्ति के विकास की सुविधा नहीं है।"[36] दोनो ही प्रत्यक्ष या परोक्ष अपनी केन्द्रित सत्ता की सुरक्षा के लिए राज्य पर अपना अधिकार जमाते हैं। उपाध्याय विवेचित करते हैं कि " पूँजीवादी अर्थव्यवस्था पहले आर्थिक क्षेत्र पर आधिपत्य जमाकर फिर परोक्ष रूप से राज्य पर अधिकार करती है, तो समाजवाद राज्य को ही सपूर्ण उत्पादनो का स्वामी बना देता है। दोनो व्यवस्थाएँ व्यक्ति के प्रजातत्रीय अधिकार एव उसके स्वस्थ विकास के प्रतिकूल हैं।"[37]

उपाध्याय केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को ही अमानवीय मानते हैं। मनुष्य की सास्कृतिक चेतना व्यक्ति–व्यक्ति में, व्यक्ति और समाज मे, प्रकृति और व्यक्ति मे तथा कर्त्ता और कृति मे, परस्पर 'आत्मीयता' का सचार करती है। ये दोनो व्यवस्थाएँ इस "आत्मीयता" के सचार को समाप्त कर सबधों में एक यात्रिकता पैदा कर देती है। "केन्द्रीय व्यवस्थाएँ मानव को मानव न मानकर उसके एक 'टाईप' के साथ व्यवहार करती है। इनमे मानव की विविधताओ और विशेषताओ के लिए कोई स्थान नहीं। फलत वे उसे ऊँचा उठाने के स्थान पर एक मशीन का पुर्जा मात्र बना देती है उसका अपना व्यक्तित्व मर जाता है। अत विकेन्द्रकरण ही हमारी सस्कृति के अनुकूल है।"[38] केन्द्रीकृत औद्योगीकरण में श्रद्धा रखने वाली पूँजीवादी समाजवादी व्यवस्थाओं को उपाध्याय मानव विरोधी मानते हैं। अत वे 'समग्र मानववाद' के आधार पर आर्थिक लोकतत्र व विकेन्द्रित अर्थनीति का निरुपण करते हैं। उनके अनुसार पूँजीवाद व समाजवाद, दोनों ही 'लोकतत्र' का व्यवहारत निषेध करते हैं।

6 आर्थिक लोकतंत्र

दीनदयाल उपाध्याय लोकतंत्र को केवल राजनीतिक जीवन का आयाम नहीं मानते। उनका मत है प्रत्येक का वोट जैसे राजनीतिक प्रजातंत्र का निकष है वैसे ही प्रत्येक को काम यह आर्थिक प्रजातंत्र का मापदण्ड है। " प्रत्येक को काम के अधिकार की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं काम प्रथम तो जीविकोपार्जनीय हो तथा दूसरे व्यक्ति को उसे चुनने की स्वतंत्रता हो। यदि काम के बदले मे राष्ट्रीय आय का न्यायोचित भाग उसे नहीं मिलता हो तो उसके काम की गिनती बेगार मे होगी। इस दृष्टि से न्यूनतम वेतन न्यायोचित वितरण तथा किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था आवश्यक हो जाती है। " उपाध्याय आगे कहते हैं

'जैसे बेगार हमारी दृष्टि मे काम नही है वैसे ही व्यक्ति के द्वारा काम मे लगे रहते हुए भी अपनी शक्ति भर उत्पादन न कर सकना काम नही है। अडर इम्पलायमेंट भी एक प्रकार की बेकारी है। '

उपाध्याय उस अर्थव्यवस्था को अलोकतान्त्रिक मानते हैं जो व्यक्ति के उत्पादन स्वातत्र्य या सृजन कर्म पर आघात करती है। अपने उत्पादन का स्वय स्वामी न रहने वाला मजदूर या कर्मचारी अपनी स्वतत्रता को ही बेचता है। आर्थिक स्वतत्रता व राजनीतिक स्वतत्रता परस्पर अन्योन्याश्रित है राजनीतिक प्रजातत्र बिना आर्थिक प्रजातत्र के नही चल सकता। जो अर्थ की दृष्टि से स्वतत्र है वही राजनीतिक दृष्टि से अपना मत स्वतन्त्रतापूर्वक अभिव्यक्त कर सकेगा अर्थस्य पुरुषो दास " (– पुरुष अर्थ का दास हो जाता है)।

मनुष्य के उत्पादन स्वातत्र्य पर सबसे बडा हमला पूँजीवादी औद्योगीकरण ने किया है। अत उपाध्याय औद्योगीकरण का इस प्रकार से नियमन चाहते हैं जिससे कि वह स्वतत्र लघु एव कुटीर उद्योगो को समाप्त न कर सके आज जब हम सर्वागीण विकास का विचार करते है? तो सरक्षण की आवश्यकता को स्वीकार करके चलते हैं। यह सरक्षण देश के उद्योगो का विदेशी उद्योगो की प्रतिस्पर्धा से तथा देश के छोटे उद्योगो को बडे उद्योगो से देना होगा। " उपाध्याय यह महसूस करते है कि पश्चिमी औद्योगीकरण के नकल ने भारत के पारम्परिक उत्पादक को पीछे धकेला है तथा बिचोलियो को आगे बढाया है हमने पश्चिम की तकनीकी प्रक्रिया का आख बद कर के अनुकरण किया है। हमारे उद्योग का स्वाभाविक विकास नही हो रहा। वे हमारे अर्थव्यवस्था के अभिन्न व अन्योन्याश्रित अग नही अपितु ऊपर से लादे गए हैं। (इनका विकास) विदेशियो के अनुकरणशील सहयोगी अथवा अभिकर्ता कतिपय देशी व्यापारियो द्वारा हुआ है। यही कारण है कि भारत के उद्योगपतियो मे सबके सब व्यापारी आढतियो तथा सटोरियो मे से आए हैं। उद्योग एव शिल्प मे लगे कारीगरो का विकास नही हुआ है। "

देश के आम शिल्पी व कारीगर की उपेक्षा करने वाला औद्योगीकरण अलोकतान्त्रिक है। पूँजीवाद व समाजवाद के निजी व सार्वजनिक क्षेत्र के विवाद को उपाध्याय गलत मानते हैं। इन दोनो ने ही स्वयसेवी क्षेत्र (Self employed sector) का गला घोटा है। आर्थिक लोकतत्र के लिए आवश्यक है स्वयसेवी क्षेत्र का विकास करना। इसके लिए विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था जरुरी है

'. राजनीतिक शक्ति का प्रजा मे विकेन्द्रीकरण कर के जिस प्रकार शासन की सस्था का निर्माण किया जाता है, उसी प्रकार आर्थिक शक्ति का भी प्रजा में विकेन्द्रीकरण कर के अर्थव्यवस्था का निर्माण एव सचालन होना चाहिए। राजनीतिक प्रजातत्र में व्यक्ति की अपनी रचनात्मक क्षमता को व्यक्त होने का पूरा अवसर मिलता है। ठीक उसी प्रकार आर्थिक प्रजातत्र मे भी व्यक्ति की क्षमता को कुचलकर रख देने का नहीं, अपितु उसको व्यक्त होने का पूरा अवसर प्रत्येक अवस्था मे मिलना चाहिए। राजनीति में व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता को जिस प्रकार तानाशाही नष्ट करती है, उसी प्रकार अर्थनीति मे व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता को भारी पैमाने पर किया गया औद्योगीकरण नष्ट करता है। इसलिए *तानाशाही की भाति ऐसा औद्योगीकरण भी वर्जनीय है।*"[45]

यत्रचालित औद्योगीकरण की मर्यादा को स्पष्ट करते हुए उपाध्याय एक समीकरण प्रस्तुत करते है *"प्रत्येक को काम का सिद्धात स्वीकार कर लिया जाए तो सम–वितरण* की दिशा सुनिश्चित हो जाती है और हम विकेन्द्रीकरण की ओर बढते हैं। औद्योगीकरण को उद्देश्य मानकर चलना गलत है। इस सिद्धात को गणित के सूत्र में यो रख सकते हैं ज X क X य = इ।"[46]

यहाँ 'ज' जन का परिचायक है, "क" कर्म की अवस्था व व्यवस्था का, 'य" यत्र *का तथा "इ समाज की प्रभावी इच्छा या इच्छित सकल्प का द्योतक है।* 'इ' तथा 'ज' तो सुनिश्चित है 'इ" और 'ज" के अनुपात मे "क" तथा 'य' को सुनिश्चित करना है। लेकिन औद्योगीकरण लक्ष्य होने पर 'य' को सुनिश्चित करना है। *लेकिन औद्योगीकरण* लक्ष्य होने पर 'य' सबको नियत्रित करता है। 'य' के अनुपात मे जन की छटनी होती है। 'य' के अनुपात मे 'इ' को भी यत्रो के अति उत्पादन का अनुसरण करना पडता है, जो कि सर्वथा अवाछनीय है। 'ज" की छटनी कर देने वाली कोई भी अर्थव्यवस्था अलोकतात्रिक है। 'इ' को नियत्रित करने वाली अर्थव्यवस्था तानाशाही है, अत 'ज *तथा 'इ' के नियत्रण मे 'क' तथा 'य" का नियोजन होना चाहिए वही लोकतात्रिक एव* मानवीय अर्थव्यवस्था कही जा सकती है।

7. भारी औद्योगीकरण का निषेध

बडे उद्योगों के उत्पादन के केन्द्रीकरण के कारण तथा माग व पूर्ति पर यन्त्रवाद के हावी हो जाने के कारण बडे उद्योग तानाशाही प्रवृत्ति वाले व अमानवीय हो जाते हैं। उपाध्याय ने अपने साहित्य में इस विषय का बडा विशुद्ध विवेचन किया है। उसका हम *विभिन्न बिन्दुओ मे निम्न प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं*

1 भारतीय परम्परागत अर्थव्यवस्था से असबद्ध होने के कारण इन्हें आरोपित करना होगा इससे समाज की समरसता भग होगी।

2 यह स्वतत्र उत्पादक शिल्पी के पूरक नही वरन् प्रतिकूल हैं अत अवाछनीय हैं।

3 ये प्रत्येक को काम के लक्ष्य के भी प्रतिकूल हैं। प्रौद्योगिक बेरोजगारी बढाते हैं।

4 ये पूँजीप्रधान हैं अत यह भारत के सामान्य उद्योजक व उत्पादक के सामर्थ्य के बाहर है।

5 इनकी आयात निर्भरता बहुल हे फलत ये हमारे भुगतान सतुलन पर भारी बोझ डालते हैं।

6 ये देश म उपलब्ध प्रबध व श्रमिक प्रशिक्षा के साथ मेल नही खाते।

7 ये श्रमिक को कुटुम्ब कुल जाति और ग्राम समाज से उच्छेद कर एक नवीन कृत्रिम बोझिल मानव–मूल्य–विरहित वातावरण म खडा कर देते हैं। इस वातावरण मे मानव मजदूर भर रह जाता है। उसके शष सभी मूल्यो का विनाश होकर वह अपने व्यक्तित्व का विकास करने के स्थान पर विकृतियो का शिकार बनता है। भारत की सस्कृति का उनसे मेल नही खाता।

8 इनका बहुत सामाजिक मूल्य चुकाना पडता है। नागरीकरण (शहरीकरण) के परिणामस्वरूप स्वास्थ्य आवास आदि की भारी समस्याएँ उत्पन्न होती है।

9 इनकी उत्पादन व प्रबध प्रणाली जटिल है जो आशुफलदायी भी नही है। लगाई गई पूँजी का गुणक प्रभाव भी कम रहता है।

10 कृषि का निकट सबध न होने से दोनो के बीच शोषणकारी व जटिल दलाल निकायो का जन्म होता है।

11 औद्योगिक श्रम सगठन और नियमों की आज की स्थिति ने भारत मे श्रम को महगा व अनुत्तरदायी बनाया है। धीरे–धीरे स्थिति ऐसी बन रही है जहाँ औद्योगिक पूँजी व श्रम मिलकर उपभोक्ता का शोषण कर सकेगे।"[7]

12 हमारी श्रम प्रधान कृषि से मजदूरो को हटाकर शहरो मे ले जाने से कृषि पर प्रतिकूल परिणाम होगा। सख्या व गुण दोनो से ही ग्राम पिछडेगा।

13 जिन परिस्थितियो मे पश्चिम के देशो ने बडे उद्योगो की स्थापना की थी ये आज हमे उपलब्ध नहीं हैं। उनके पास उपनिवेशो के विस्तृत बाजार थे जहाँ वे पक्का माल बिना किसी प्रतियोगिता के बेच सकते थे तथा कच्चा माल तथा खाद्य सस्ते भाव पर खरीद सकते थे। मजदूरो को कम तनख्वाह पर रखकर भारी मात्रा मे पूँजी सचय कर सकते थे। इस पर भी उन्हे विकास मे डेढ सौ वर्ष लगे।

14 एक स्थान पर केन्द्रित होने अथवा स्थानीकरण की प्रवृत्ति के कारण इससे सार्वदेशिक एव विस्तृत विकास के मार्ग मे बाधा उत्पन्न होती है। (भारत मे सगठित

उद्योगो मे काम करने वाले श्रमिको का 66 प्रतिशत बगाल, बम्बई व मद्रास मे है) देश के कुछ भागो का विकास, शेष मे असतोष उत्पन्न कर एकता और राष्ट्रीयता के लिए खतरा पैदा कर सकता है।

15 बडे उद्योगो के परिणामस्वरूप ऐसे शक्तिशाली आर्थिक गुट तैयार हो जाते हैं जो देश की राजनीति पर भी कब्जा कर बैठते हैं।

16 बडे उद्योग भयानक विषमता का सृजन कर समाज मे "वर्गसघर्ष" की स्थितियो का निर्माण करते हैं।[48]

इन सबके अलावा, बडे उद्योगो का एक और खतरनाक पक्ष है विदेशी पूँजी निवेशकों से सहज ही उनकी दोस्ती हो जाती है। उपाध्याय राष्ट्रीय औद्योगिक क्षेत्र मे विदेशी पूँजी को बहुत अमगलकारी मानते हैं। उनका मत है

हमारे देश को विदेशी पूँजी के बल पर औद्योगीकृत नहीं किया जाना चाहिए। विदेशी पूँजी के राजनीतिक के अलावा आर्थिक प्रभाव भी अशुभ होते हैं। विदेशी पूँजी का विनियोग स्वदेशी श्रम का शोषण करता है। बडे उद्योग व विदेशी पूँजी का विनियोग हमारे यहाँ पश्चिमी प्रकार के शोषणवादी पूँजीवाद को उत्पन्न करेगा। पूँजीवाद के सभी दोषो का हमारे समाज में प्रवेश हमारी सामाजिक सस्कृति के लिए बहुत विषैला होगा।[49]

उपाध्याय इस बात को बहुत गलत मानते थे, कि दोषपूर्ण बुनियाद पर खडे पूँजीवाद व समाजवाद को सिद्धान्तवाद के नाम पर नवस्वतत्र विकासशील देशो में अपनाने की होड–सी लगी है। उनके अनुसार पुस्तकीय सिद्धातो की बजाय सामाजिक व्यावहारिकता को इस सदर्भ मे अपनी नीति का आधार बनाया जाना चाहिए। आर्थिक व उत्पादकीय सत्ता का केन्द्रीकरण सामाजिक व वैयक्तिक स्वातत्र्य का शत्रु है, हमे पश्चिम के गलाकाटी अनुभव से कुछ सीखकर आगे कदम बढाना चाहिए।

8. अपरमात्रिक उद्योग नीति

भारी एव आरोपित औद्योगीकरण के विरुद्ध होते हुए भी उपाध्याय स्वस्थ औद्योगीकरण के विकास के समर्थक थे

'प्राचीन शास्त्रकारो ने वाणिज्य, शिल्प एव उद्योग के बारे में लिखा है कि उन्हें 'अपरमात्रिक' होना चाहिए। किन्ही आवश्यक वस्तुओं के लिए उन्हे दूसरों पर निर्भर न रहना पडे। हाँ, देश के "उद्धर्त" माल को बाहर निकालने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का उपयोग होना चाहिए।[50]

'अपरमात्रिक' अर्थात् उत्पादन में स्वावलम्बन से कुछ अधिक उत्पन्न करने वाली उद्योग नीति होनी चाहिए। उद्योग नीति की वाछनीयता के निकष हैं

1 वह सबको काम देने मे सहायक हो।

2 उत्पादन के केन्द्रीकरण के बजाय विकेन्द्रीकरण में सहायक हो।

3 उसका विकास पारम्परिक उत्पादक कारीगर व शिल्पी के औजारो के आधार पर हो।

4 वह भारत की कृषि ग्राम व्यवस्था के लिए पूरक हो।

5 वह ग्रामो से प्रतिभा पलायन न होने दे ग्रामो का ही उद्योग अपरमात्रिक हो।

6 मानव मूल्यो के प्रति घातक प्रभाव वाला न हो।

7 जन–श्रमप्रधान उद्योग नीति हो यत्रप्रधान नहीं। जन–श्रम के सहायक के रूप मे मशीना का यथायोग्य विकास हो।

मुनाफाखोरी व एकाधिकार की प्रवृत्ति पर नियत्रण के लिए उपाध्याय निम्न उपाय सुझाते हैं

1 निगम व्यवस्था
2 ससदीय नियत्रण
3 प्रबध मे श्रमिको का सहभाग तथा
4 विकन्द्रीकरण की आर्थिक आयाजना।

वाछित उद्योग नीति के विकास की चुनौती का सामना करने के विषय मे उपाध्याय एम एस ठक्कर का उद्धत करते है। ठक्कर ने मद्रास मे भारतीय विज्ञान काग्रेस के सभापति पद से बोलते हुए कहा था

अभी तक हमने बाहर के देशा से स्फूर्ति ली है। हमने मशीनो कारखानों तज्ञों तथा कारीगरो का आयात किया है। शायद यह उन परिस्थितियो मे आवश्यक रहा हो। परिणाम यह हुआ है कि भारत म जो बडे यात्रिक उद्योग स्थापित हुए हैं वे दूसरे देशो की नकल भर हैं। देशी आविष्कारो पर विकसित उद्योग कदाचित ही मिलेंगे। हमें पश्चिम से बडी उदारता से सहायता मिलेगी। हम ज्ञान विज्ञान एव सौहार्द को जहाँ से भी वह मिलेगा लेंगे। किन्तु प्रत्येक पुष्प स मधु लेकर भी शहद मे परिवर्तित करने वाली मधुमक्षिका की भाति हमे सपूर्ण प्राप्त सहायता को अपनी आवश्यकता व लक्ष्यो के अनुरूप ढालकर देश म औद्योगीकरण के एस ढाचे का विकास करना होगा जिसे हमें अपना कह सके। यह भारत के वैज्ञानिको एव प्राविधिको के ऊपर दायित्व हैं। "

मनुष्य और मशीन

उपाध्याय मनुष्य तत्व पर मशीन के हावी हो जाने के विरोधी हैं। उत्पादन के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति वाले मशीनीकरण के वे विरोधी हैं लेकिन मानव श्रम को सुगम करने वाले तथा अपरमात्रिक उत्पादन देने वाले सहयोग यत्र के वे समर्थक है। उनका मत है जहॉ एक ओर मशीन के श्रद्धालु भक्त है ता दूसरी ओर कट्टर दुश्मन भी मोजूद है। एक मशीन क अभिनवीकरण के अभाव को ही भारत की गरीबी का कारण मानकर चलते हैं तो दूसरे अभिनवीकरण और यत्रीकरण को ही देश के विनाश के लिए

जिम्मेदार मानते हैं। वास्तव मे मशीन न तो मनुष्य का शत्रु है, न मित्र। वह एक साधन है तथा उसकी उपादेयता समाज की अनेक शक्तियों की क्रिया–प्रतिक्रिया पर निर्भर करती है।"[32] मशीनीकरण के सदर्भ मे पश्चिम की नकल नहीं करनी चाहिए। उपाध्याय इसके लिए तर्क प्रस्तुत करते हैं "पश्चिम से जो मशीनें हमे मिलती हैं, वे उन देशों द्वारा पिछली कई शताब्दियो में विकसित की गई। उनका मानकीकरण करके, वे आज बाजार मे बेच रहे हैं। हम उन्हे खरीदते हैं किन्तु यह भूल जाते हैं कि वे एक लम्बे आर्थिक विकास का कारण नहीं, उसके परिणामस्वरूप हैं।"[33] उपाध्याय यत्रारोपण के बजाय यत्रो के स्वदेशानुकूल विकास के पक्षपाती हैं। हमे छोटे व कुटीर उद्योगों के सचालन एव अपने शिल्पियों तथा कारीगरों के सहयोग के लिए आधुनिकतम सुलभ यत्र चाहिए, पूँजीपतियों को उत्पादन का एकाधिकार बनाने वाले यत्र हमारी अर्थव्यवस्था के शत्रु हैं।

दीनदयाल कहते हैं : "हमारी मशीन हमारी आर्थिक आवश्यकताओं के अनुकूल ही नहीं, अपितु हमारे सास्कृतिक एव राजनीतिक जीवन–मूल्यों की पोषक नहीं, तो कम से कम अविरोधी अवश्य होनी चाहिए।"[34]

इस प्रकार उपाध्याय न तो मशीन के भक्त हैं तथा न विरोधी, मशीन को समाज एव अर्थव्यवस्था पर हावी नहीं होने देना चाहते। जब समाज एवं अर्थव्यवस्था पर मशीन हावी हो जाती है तो उसमें "केन्द्रीकरण" का दोष आता है। "केन्द्रीकरण" से पूँजीवाद व समाजवाद की दोषपूर्ण क्रिया–प्रतिक्रियाएँ होती हैं, अत एक तनावपूर्ण असहज प्रक्रिया से विवेकपूर्वक, बचने के लिए वे पुरजोर आग्रह करते हैं कि हमें विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था, कुटीर उद्योग व स्वविकसित लघु मशीन के संयोजन की दिशा में प्रवृत्त होना चाहिए।

10. विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था

विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के लिए विकेन्द्रित राजनीतिक व्यवस्था भी जरुरी है, इसके लिए उपाध्याय स्वावलम्बी समर्थ ग्राम–पचायतों व जनपद व्यवस्था के पक्षधर हैं। हमारी अर्थव्यवस्था का आधार हमारे ग्राम तथा जनपद होने चाहिए। ग्रामो को उजाडने वाले आर्थिक नियोजन अन्तत भारत को उजाडने वाले सिद्ध होंगे। शहर व ग्रामो का विषम विकास, हमारी राष्ट्रीय अखण्डता के लिए भी घातक होगा। ससाधनों व सत्ता के केन्द्रीकरण के कारण हम पूँजीवाद व उसके प्रतिक्रियात्मक दुष्चक्र से बच नहीं सकते, अत आर्थिक लोकतत्र की स्थापना के लिए विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था ही, भारतीय परिस्थितियों मे हमारे लिए उपादेय है। अत उपाध्याय कहते हैं

"... ...विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था चाहिए। स्वयसेवी क्षेत्र (Self employed sector) को खडा करना होगा। यह क्षेत्र जितना बडा होगा, उतना ही मनुष्य आगे बढ सकेगा, मनुष्यता का विकास हो सकेगा, एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का विचार कर सकेगा। प्रत्येक मनुष्य की व्यक्तिशः आवश्यकताओं और विशेषताओं का विचार करके उसे काम देने पर

उसके गुणों का विकास हो सकता है। यह विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था भारत ही संसार को दे सकता है। " जो व्यवस्थाएं भारी उद्योगो व केन्द्रीकरण के दुष्चक्र में एक बार फस गई उसे वापस लौटाना कठिन है अतः तृतीय विश्व के देशों को छोटे–घरेलू–लघु उद्योगों वाली विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था को अपनाना चाहिए।

विकेन्द्रीकरण से वे समस्याऐं हल होती हैं जिनका कारण अति केन्द्रीकरण है। पूँजीवाद अतिकेन्द्रीकरण के कारण ही उत्पन्न होता है। जब लोगो को बड़े पैमाने पर उत्पादन का अवसर ही नहीं मिलेगा तो पूँजी इकट्ठी ही कैसे हो सकेगी ? इससे गाव तो अधिकाधिक स्वावलम्बी होंगे ही व्यक्ति को प्रेरणा मिलने के कारण वस्तु का गुण तथा उत्पादन दोनो ही बढ़ेगे। पुरातन काल में कुटीर उद्योग जितनी उत्तम श्रेणी की वस्तुऐं तैयार करते थे उतनी आज की मशीन नहीं तैयार कर पाती। कुटीर उद्योगो मे उस कौशल और शिल्प को जो बहुत बड़ा क्षेत्र मिलता है यह मशीन उद्योगो मे बिल्कुल नहीं मिल पाता। जिस प्रकार राजनीतिक लोकतंत्र मे ग्राम–पंचायत आदि इकाइयो से लोकतंत्र मे ग्राम तथा कुटीर उद्योगों और इसी प्रकार विकेन्द्रीकरण के अनुसार किए जाने वाले कृषि उत्पादन के क्षेत्र से उठकर लोकतंत्र ऊपर जाना चाहिए। साम्यवाद केन्द्रित अर्थनीति का ही एक अंग है अतः उसकी जड़े आसमान में है जबकि इस अर्थव्यवस्था की जड़ धरती के भीतर गहरी घुसी हुई हैं। " उपाध्याय के मतानुसार बड़े उद्योगों का सर्वथा निषेध विकेन्द्रीकरण का हेतु नहीं है। वे बड़े उद्योगों को छोटे उद्योगो पर अवलम्बित करना चाहते हैं

उत्पादक वस्तुऐं बड़े उद्योग तैयार करें तथा उपभोग वस्तुए छोटे उद्योगो द्वारा बनाई जाए। दूसरा उपभोग वस्तु के उत्पादन के काम मे आने वाली वस्तुओं को अलग–अलग छोटे पैमाने पर तैयार करना तथा उनका एकत्रीकरण बड़े कारखानो मे करना जैसे स्विट्जरलैण्ड म घड़ियो के पुर्जे छोटे–छोटे शिल्पियो द्वारा तैयार करके उन्हें इकट्ठा करके घड़ी के रूप मे बड़े कारखाने मे तैयार किया जाता है। मोटर आदि जितनी बड़ी–बड़ी चीजे हैं उनके बहुत से भाग इसी प्रकार तैयार किए जा सकते हैं। जापान मे इस दृष्टि से बहुत काम हुआ है। वहाँ रेलगाड़ियाँ बनाने के लिए 77 प्रतिशत जहाज बनाने के लिए 70 प्रतिशत तथा मोटर के निर्माण मे 62 प्रतिशत इन छोटे उद्योगो द्वारा तैयार सामान प्रयुक्त होता है यदि उपर्युक्त दो वर्गो के उद्योगो को भलीभांति स्थापित कर दिया जाए तो प्रतिस्पर्धी उद्योग का क्षेत्र बहुत सीमित हो जायेगा। "

दीनदयाल उपाध्याय इस बात से सहमत नहीं हैं कि छोटे उद्योग आर्थिक दृष्टि से किफायती नहीं होते। उनका मत है कि बड़े उद्योगो की किफायत एक भ्रम है वास्तविक किफायत छोटे उद्योगो मे ही होती है

सत्य तो यह है कि किफायत बड़े पैमाने पर उत्पादन से नहीं अधिक उत्पादन के कारण होती है। अगर हम इतिहास को देखे तो ब्रिटेन में बड़े पैमाने पर कपड़ा तैयार होने पर भी भारत का कपड़ा वहाँ जाकर सस्ता पड़ता था। जापान की जो

वस्तुएँ सस्ती बाजार मे आकर, बाकी सब माल को निकाल देती हैं, बडे कारखानों में नहीं, घरो मे बनती है। यदि उनकी (छोटे उद्योगो की) असुविधाएँ दूर कर दी जाय तथा बडे उद्योगो को जो सुविधाएँ अतिरिक्त कारणों से प्राप्त है, न मिले, तो निश्चित ही वे (छोटे उद्योग) बाजी मार ले जायेगे। हमें मालूम है कि 1930–37 के काल मे, छोटे–छोटे मोटर चलाने वालों ने रेलों को प्रतियोगिता में पछाड दिया था। यदि शासन और युद्ध रेलो की मदद को नहीं आते, तो उनके लिए जीवित रहना कठिन हो जाता।"[55]

बडे उद्योगो की किफायत भ्रमपूर्ण है, इसको निरुपित करते हुए उपाध्याय कहते हैं 'श्री एम एम मेहता ने अपनी पुस्तक "स्ट्रक्चर ऑफ इण्डियन इडस्ट्रीज" में बडे उद्योगा की वृद्धि की विशद् व्याख्या की है। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि–

1 बडे उद्योगो की "किफायते" उचित प्रतियोगिता के कारण नही, बल्कि उसे दबाकर, डाका डालने वाली व्यापारिक क्रियाओ से प्राप्त होती है।

2 बडे उद्योगो की दूसरे पक्षों से अपने लिए हितकर और अच्छी शर्तें मनवाने की क्षमता, कार्य–कुशलता का फल नहीं, अपितु आर्थिक एव वित्तीय सामर्थ्य के परिणामस्वरूप हैं।

3 बडे उद्योग बहुधा मजदूरो का शोषण करते हैं, ऊँचे मूल्य लेते हैं तथा अपने निहित स्वार्थों की रक्षा के लिए वैज्ञानिक सुधारो को दबा देते हैं।

4 एक बार बाजार का आधिपत्य स्थापित करने के बाद उनकी औद्योगिक कुशलता की प्रेरणा नष्ट हो जाती है।

5 अधिकाश बडे–बडे उद्योग, धीरे–धीरे विकास के आधार पर नहीं, बल्कि वित्तीय एव शासनिक एकीकरण के कारण बडे हैं।

6 ये उद्योग मदी के समय, जब अपनी अधिकाधिक योग्यता तथा आर्थिक क्षमता दिखाने का अवसर रहता है, नहीं बढे, बल्कि तेजी के उस काल में बढे, जबकि 'सिक्यूरिटियों' और 'स्टॉक' से ज्यादा से ज्यादा कमाने का मौका रहता है।

7 ये इतने बडे है कि इनका आर्थिक दृष्टि से सचालन किया ही नहीं जा सकता।

हम यह जानते है कि बैंकों, रेलों, आढतियो आदि सबकी सुविधा इन बडे उद्योगों को सहज ही मिल जाती है। ..(जबकि) छोटे उद्योग असगठित होने के कारण, आज की बाजार अर्थव्यवस्था मे, कच्चे माल की प्राप्त से लेकर, पक्के माल को बेचने तक की श्रृखला की व्यवस्था नहीं रोक पाते। एक बार यह श्रृखला पूरी हो गई तो फिर उनका (छोटे उद्योगों का) मुकाबला कर पाना कठिन होगा। शासन का कर्त्तव्य है कि वह इस सगठन को खडा करने में सहायक हो।"[56]

इन छोटे उद्योगों में अन्तर्निहित, अनन्त सभावनाओं के विषय में भी उपाध्याय बहुत आशान्वित हैं, वे कहते हैं छोटे उद्योगों का क्षेत्र जो एक बार काफी सकुचित हो गया था, विशद् होता जा रहा है। जिन वस्तुओ की छोटे आधार पर उत्पादन की हम

कल्पना नहीं कर सकते थे वे अच्छी और आर्थिक आधार पर पैदा की जाने लगी हैं। हाल ही मे चीन के एक समाचार ने कि वहाँ इस्पात भी छोटे आधार पर पैदा किया गया है औद्योगिक क्षेत्रो मे छोटे उद्योगो के विकास की सम्भावनाओ को काफी बढा दिया है।[40]

विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था मे छोटे व कुटीर उद्योग अर्थव्यवस्था के मेरुदण्ड होगे तो भी आधुनिक उत्पादन व्यवस्था एव मानवीय आवश्यकताएँ ऐसी हैं कि बडे उद्योगों की एकदम अवहेलना नही की जा सकती अत वे बडे उद्योगो की अनिवार्यता को स्वीकार करते है लेकिन इससे आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण न हो इसके लिए वे मुख्यत दो सुझाव रखते हैं 1 शासन व्यवस्था द्वारा नियमन की तथा 2 श्रमिको की स्वामित्व में हिस्सेदारी की व्यवस्था हो। इस विषय मे वे निजी व सार्वजनिक उद्योग की रुढिवादी व्याख्याओ के प्रति कट्टरता को अव्यावहारिक मानते हैं उनका इन सदर्भो मे मत है

1 कोई बडा रुढिवादी व सैद्धातिक (Theoretical) दृष्टिकोण अपनाना ठीक नहीं होगा। विश्व बैंक के अध्यक्ष श्री ब्लैक ने अक्टूबर 1957 मे विश्व के प्रमुख उद्योगपतियो के सम्मेलन में कहा था "मैं पूँजीवाद के पुजारियों से जो यह प्रचार करते हैं कि निजी पूजी विश्व की सभी विकास की आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है उतना ही परेशान हूँ जितना कि समाजवादियो से जो यह दावा करते है कि सार्वजनिक उद्यम ही सपूर्ण माग को सतुष्ट कर सकता है। अविकसित देशो मे व्यावहारिक दृष्टि से निजी उद्योग और शासन दोनो की अपनी-अपनी मर्यादा होती है। कहा गया है कि अविकसित देशो मे दुर्लभ उत्पादन यदि कोई है तो वह है जोखिम उठाने वाला उद्यमी (enterprencur) ऐसी अवस्था मे राज्य को स्वाभाविक ही आगे आना पडता है। समाजवाद से कोसो दूर भागने वाले कई देशी राज्यो ने इसी कारण अपनी ओर से उद्योग-धंधो की स्थापना की। अत व्यावहारिक नियम यह भी बनाया जा सकता है कि जहाँ निजी क्षेत्र न आ सकता हो वहाँ शासन प्रवेश करे। हालाकि शासन का कार्य साधरणतया अर्थोत्पादन नहीं है।"[41] जहाँ ऐसे उद्योजक मिलते हो, वहाँ उपाध्याय का मत है कि शासन उनका नियमन करे तथा उन पर ससदीय नियत्रण हो।[42]

2 बडे उद्योगो की एक बडी विकृति है पैसे को मालिक मानना तथा श्रम को मजदूर।

उपाध्याय बडे उद्योगो की मिल्कियत को भी श्रमिकों प्रबधको व अशधारियो मे विकेन्द्रित करना चाहते हैं

अचल उत्पादन के सबध में जैसे भूमि में श्रम करने वाले उत्पादक के स्वामित्व को स्वीकार किया गया है (भूमि उसकी जो जोते)। फिर क्यो न उद्योग मे भी मजदूरो का स्वामित्व स्वीकार किया जाय ? यह आश्चर्य का ही विषय है कि कम्पनियो मे एक शेयर होल्डर तो जो बहुधा किसी उद्योग से लाभाश के अतिरिक्त और कुछ सबध नही रखता स्वामित्व के अधिकार का उपभोग करे और जो मजदूर उस कारखाने मे बराबर

काम करता है, वास्तविक रूप से बलो को सक्रिय बनाता है तथा जिसकी पूरी जीविका उस उद्योग के भले–बुरे पर निर्भर है, सदैव ही परायापन अनुभव करता रहे। नि स्पृहता की यह भूमिका ठीक नही। अत आवश्यक है कि अशधारी के साथ मजदूर को भी स्वामित्व का अधिकार प्राप्त हो, उसे भी लाभ और प्रबध मे भागीदार बनाया जाय। इस प्रकार श्रमिको के प्रतिनिधि सचालन मण्डल में रहेंगे।[63]

'विकेन्द्रीकरण' को दीनदयाल उपाध्याय अर्थव्यवस्था का केन्द्रीय मुद्दा मानते हैं। विकेन्द्रीकरण से ही हम सामाजिक न्याय व स्वदेशी स्वावलम्बन को प्राप्त कर सकते हैं। उनका मत है कि "आज की परिस्थिति में यदि दो शब्दो का प्रयोग कर अपनी अर्थव्यवस्था की दिशा के परिवर्तन को बताना हो तो वे हैं "विकेन्द्रीकरण" और "स्वदेशी"।[64]

11. कृषि

प दीनदयाल जी ने भारत की प्रवृत्ति व परिस्थितियो को दृष्टिगत रखते हुए अर्थव्यवस्था की सीढियो का निम्न क्रम बताया – कृषि, उद्योग, परिवहन एव व्यापार और समाज सुरक्षा–सेवा। ये सभी क्षेत्र एक दूसरे से इतने घनिष्ठ रूप से सबधित है कि इसमे से किसी एक क्षेत्र का विचार अन्य क्षेत्रो को छोडकर नहीं कर सकते। ऊपर दिये गये सोपानो का क्रम बदलकर, खेती को वरीयता न देते हुए जिन अविकसित राष्ट्रों ने नियोजन किया–जैसे घाना, इडोनेशिया, ब्रह्मा आदि उनके लिए अपना सच्चा आर्थिक विकास करना समव नहीं हो पाया। हमारे देश में भी इसी प्रकार का अनुभव रहा है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना से हमने खेती की उपेक्षा कर पश्चिम ढग के औद्योगिकरण पर बल दिया और आर्थिक विकास करने का प्रयास किया। किन्तु विकास के स्थान पर दरिद्रता और बेरोजगारी में वृद्धि ही हुई।

भारत कृषि प्रधान देश है। हमारी राष्ट्रीय आय में लगभग 60 प्रतिशत उत्पादन कृषि से ही होता है। लगभग 70 प्रतिशत आजीविका भी कृषि क्षेत्रों से ही उपलब्ध होती है। अत जब तक कृषि के सभी अगों का विकास नहीं होता, देश के आर्थिक प्रश्न सुलझेंगे नहीं, इस बात पर चितन करके ही दीनदयाल जी ने अपने कृषि सबधी विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने पहचान लिया था कि कृषि विकास को सुदृढ किए बिना देश का औद्योगीकरण विस्तृत एव पक्की नींव पर खडा नहीं हो सकता। यहाँ का किसान केवल अनाज का और उद्योगो के लिए आवश्यक कच्चे माल का उत्पादक ही नहीं हैं, वह कारखानो में निर्मित होने वाले पक्के माल का बडा ग्राहक भी है। किसान का उत्पादन और उसकी आय जितनी मात्रा मे बढेगी उतनी मात्रा मे ही उसकी क्रयशक्ति भी बढेगी और उतनी ही अधिक मात्रा मे उद्योगो में तैयार होने वाला माल खरीद सकेगा।

दीनदयाल जी का कहना था कि खाद्यान्न उत्पादन में हमें स्वावलम्बी बनना होगा और ऐसा स्वावलम्बन कृषि को वरीयता देने से ही हासिल हो सकता है। इस सबध में यह उल्लेखनीय है कि 1951 मे प नेहरू ने घोषणा की थी कि अब विदेशो से अनाज

का आयात नहीं किया जायेगा' परन्तु उनकी यह घोषणा केवल हवा म ही रही। 1954 से 1966 के 12 वर्षों मे करोडो रुपयो का अन्न अमरीका कनाडा आस्ट्रेलिया आदि देशों से आयात किया गया। अगस्त 1956 से 1960 के पौन चार वर्ष के काल में अकेले अमरीका से 1067 करोड रुपये के अनाज का आयात किया गया। अनाज के आयात की ये बाते दीनदयाल जी को बहुत व्यग्र करती थी। इसक स्थान पर व चाहते थे कि अनाज के मामले मे स्वावलम्बी होने के लिए सरकार एक व्यापक कार्यक्रम हाथ में लेती परन्तु इसके स्थान पर सरकार ने पी एल 480 (पब्लिक लॉ 480) के तहत व्यापक पैमाने पर गेहूँ आयात करने का अनुबध किया।

प दीनदयाल का यह सोचना बाद म सही निकला कि इस प्रकार के अनुबधों के कारण देश पर अन्तर्राष्ट्रीय वित्त सस्थाओ का दबाव बढ जाता है जब ■ जून 1966 को भारत सरकार ने अमरीका व विश्व बैंक के दबाव में रुपये का 36 5 प्रतिशत अवमूल्यन कर दिया। विदेशों से मिलने वाली सहायता का उपयोग ठीक से तथा देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए किया जाय ऐसा तभी सभव हो सकता है जब ऐसी सहायता का सदुपयोग किया गया हो। ऐसा न करने पर वे देश अपनी सहायता का उपयोग अपनी दबाव की राजनीति को हमारे गले उतारने के लिए ही करते रहेगे। पी एल 480 के सबध में यही हुआ। 1965 के भारत–पाक युद्ध के दौरान अमरीका ने पाकिस्तान की पुकार को दी जाने वाली अनाज की सभी सहायता रोक देने की घोषणा की और शास्त्रीजी की प्रस्तावित अमरीका यात्रा स्थगित करने की एक पक्षीय घोषणा की। परन्तु शास्त्रीजी ने स्वाभिमान दिखाकर अमरीका की अपनी यात्रा निरस्त कर दी। उन्होंने अमरीका को बता दिया कि हमें अनाज की सहायता की कोई आवश्यकता नहीं। शास्त्रीजी के इस निर्णय का दीनदयालजी ने *स्वागत किया और कहा कि भारत के किसान भागीरथ प्रयत्न कर देश* को अनाज में आत्मनिर्भर बनायेंगे।

कृषि में बहुत थोडी पूँजी लगाकर बहुत अधिक लोगों को रोजगार देने की क्षमता है। साथ ही कृषि–उद्योगों में उत्पादन बहुत थोडी अवधि मे ही हाथ म आ जाता। इन कारणों से वे खेती को योजना में वरीयता देने के पक्ष म थे और इस माग को उन्होने जनसघ के मच से बार–बार उठाया भी था। तीसरी योजना के इस प्रारुप को वे पूरा होने वाला नहीं मानते थे जिसमे कहा गया था कि देश इस योजना के अत तक खाद्यान्नों में *आत्मनिर्भर हो जायेगा। इसका कारण था देश के कृषि विकास कार्यक्रमों का अपर्याप्त* होना।

कृषि–आर्थिक विकास के सदर्भ म विचार करते समय उन्नत खेती की प्रविधि सहकारी खेती उन्नत बीज रासायनिक खाद कीटनाशक यत्रीकरण आदि बातें सामने आती हैं। दीनदयाल जी इन उन्नत प्रविधियों व साधनों का विरोध नहीं करते थे। किन्तु उनका कहना था कि इन बातों का विचार करते समय हमारे देश की स्थिति तथा पश्चिमो

देशो को इन उन्नत तकनीको के बारे में प्राप्त मूल अनुभव का भी हमें ठीक ढग से विचार करना चाहिए। विज्ञान के लाभ भारतीय किसान तक अवश्य पहुँचने चाहिए, किन्तु साथ ही उन प्रयोगो के क्या दूरगामी परिणाम होगे, इसका भी ध्यान रखना चाहिए।

कृषि के लिए बडी–बडी बांध परियोजनाएँ बनाम छोटे–छोटे बांध

स्वतत्रता के बाद खेती को पानी पहुँचाने के लिए बडी–बडी बाध परियोजनाएँ प्रारम्भ कर दी गई थी और इन परियोजनाओ का उत्पादन की दृष्टि से कुछ तात्कालिक लाभ भी हमे मिला। किन्तु इस प्रश्न का सभी अगो से विचार करने पर दीनदयाल जी इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि खेती के विकास के लिए बडी–बडी बाध परियोजनाओं की अपेक्षा छोटे–छोटे बाध ही अधिक उपर्युक्त हैं। अपनी भारतीय अर्थनीति पुस्तक में उन्होने 1951–56 तक के काल मे विभिन्न बाध परियोजनाओ के कारण कृषि उत्पादन में हुई वृद्धि की साख्यिकीय जानकारी प्रस्तुत की है। उससे स्पष्ट है कि बडी बाध परियोजनाओं पर बजट मे स्वीकृत राशि में से 92% राशि खर्च होकर भी कृषि उत्पादन केवल 47% बढा, जबकि छोटी बाध परियोजनाओ पर उसी अवधि मे 63% खर्च होकर खेती का उत्पादन 91% बढा। दीनदयाल जी ने आकडे देकर यह भी दिखा दिया है कि छोटी बाध परियोजनाओ के कारण रोके गये पानी में से 95% पानी खेती के काम आ सकता है जबकि बडी बाध परियोजनाओं का केवल 55% पानी का ही उपयोग किया जा सकता है।

बडी बाध योजनाओ से जिस भूमि को पानी मिलता है, उसके नीचे पानी का तल थोडे ही दिनो में ऊँचा उठ जाता है। इस प्रकार भूमि के नीचे पानी का तल बढ जाने के कारण भू–गर्भ के विविध क्षार भू–तल के ऊपर आ जाते हैं और खेती के काम आने वाली भूमि बजर बन जाती है। बडे बाधो के कारण पानी का निकास ठीक ढग से नहीं हो पाता क्योंकि भूमि की पानी सोख लेने की क्षमता कम हो जाती है फलस्वरूप थोडी सी वर्षा आ जाने पर आस पास के प्रदेश में बडी बाढ आ जाती है। दूसरी मुख्य बात यह है कि बडी बाध परियोजनाएँ मुख्यत पूँजी प्रधान होती है इनमे होने वाला खर्च और समय लगातार बढता ही रहता है। इसके अलावा ये परियोजनाएँ बहुधा विदेशों से आयातित सामग्री, तकनीक व साधनो पर निर्भर करती है।

खाद और उर्वरक

अन्न की पैदावार बढाने के लिए तथा भूमि की उपजाऊ शक्ति को बनाए रखने के लिए खाद और उर्वरको की आवश्यकता होती है किन्तु भूमि का सही परीक्षण कर उत्पादन की प्रणाली, फसल सिचाई के साधन आदि का विचार करके ही उसके उपर्युक्त एव योग्य मात्रा में खाद एव उर्वरक का प्रयोग होना चाहिए। यह नि सदेह कहा जा सकता है कि लगातार रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से खेत की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है। अत इनका प्रयोग गोबर आदि की खाद के साथ मिलाकर सीमित मात्रा में करना

चाहिए। हमारे देश मे लगभग 8 000 लाख टन गोबर होता है। इसमे से लगभग आधा गोबर उपले बनाकर जलाने के काम आता है। गोबर को जलाने के काम मे लाने की यह प्रथा बद कर गोबर गैस सयत्र लगाना ईंधन और खाद के रूप मे उसका दोहरा उपयोग करना चाहिए। ऐसा करने से गॉवो की ईंधन समस्या हल करने मे सहायता मिलेगी और रासायनिक उर्वरको के कारण होने वाला भूमि का क्षरण भी रुक जायेगा।

भू–स्वामी कृषि

दीनदयाल जी की भू–स्वामी कृषि प्रणाली एक ऐसी व्यवस्था है जिसमे जोतने वाला कृषक ही भूमि का स्वामी होता है। हमारे यहाँ कृषि व्यवस्था मे विभिन्न ऐतिहासिक कारणो से अनेक मध्यस्थो का समावेश होता गया है। इन मध्यस्थो मे से जमींदार और जागीरदार तो अब समाप्त हो गये हैं परन्तु रैयतवारी प्रथा अभी भी विद्यमान है जिसमें वे अपनी भूमि स्वय न जोतते हुए किसी दूसरे को बटाई पर देते हैं और किसान द्वारा उत्पन्न की गई उपज मे से आधे से लेकर छठा भाग तक ले लेते हैं। सैद्धातिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि जब तक विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियो को किराए पर उठाने का अधिकार है तब तक भूमिपति (Land-holder) को अपनी जमीन किराए पर देने से रोकना अन्याय होगा। किन्तु हमे भूमि और अन्य सम्पत्तियो मे भेद करना होगा और विशेषकर आज के समय जबकि भूमि मे व्यापक सुधार कर उत्पादन बढाने की आवश्यकता है। कृषक कई बार तो ज्यादा अन्न उत्पादित करना ही नही चाहता क्योकि उसे यह भय बना रहता है कि अगर अधिक उत्पादन हुआ तो खेती की कीमत बढ जायेगी और फिर उसको वहाँ से हटाकर या तो मालिक खुद जोतेगा अथवा किसी दूसरे को अधिक किराये (बटाई) पर दे देगा। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि भूमि पर से सब प्रकार की बेदखलिया समाप्त कर दी जाये। जो समाज प्रत्येक को काम देने की जिम्मेदारी लेना अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझता हो वह बेदखल करके किसान को आजीविका के साधन से कैसे वचित कर सकता है? हॉ यदि वह भूमि को स्वय न जोतकर अपनी आजीविका किसी दूसरे रास्ते से कमा ले तो उसे भूमि पर स्वामित्व बनाये रखने का कोई अधिकार नही होना चाहिए।

भूमि का वितरण

सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए एक किसान के पास अधिक से अधिक कितनी भूमि रहे इसे निश्चित करने की नितात आवश्यकता है। एक बार यह अधिकतम सीमा निश्चित हो गयी तो उस सीमा से अधिक भूमि उस किसान से ली जा सकती है। किन्तु आज भूमिहीन किसानो मे से अधिसख्य किसान हरिजन होने के कारण भूमि के वितरण के प्रश्न को आर्थिक के साथ–साथ सामाजिक एव राजनीतिक आयाम भी प्राप्त हुए हैं। अत भूमिहीनो को भूमि देने का प्रश्न अत्यत विवादग्रस्त बना हुआ है।

योजना आयोग ने इस सबध में जो ऑकडे, प्रस्तुत किये हैं उनमें जोतों की सख्या निश्चित करते समय विभिन्न मध्यवर्ती अधिकारो का कोई ध्यान नहीं रखा गया और न सिचित एव असिचित भूखण्डों में विभेद किया गया है। अत उससे कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते। कृषि–श्रमिक जाच समिति ने इस ओर महत्वपूर्ण काम किया है तथा जमीनवाले और बिना जमीन वाले खेतिहर मजदूरों का अनुमान लगाया है किन्तु वहाँ भी प्रत्येक को कितनी जमीन और कैसे दी जायेगी इसका विचार नहीं हुआ। वास्तविकता तो यह है कि जमीन बाँटने की जितनी कल्पनायें हैं वे एक स्थिर अर्थव्यवस्था का आधार लेकर चलती है। यदि हम अपनी अर्थव्यवस्था को गतिशील बनाना चाहते हैं तथा समाज के सभी वर्गो के सम्मुख रोजगार की व्यवस्था करना चाहते हैं तो फिर भूमि के बारे में इतनी भूख नहीं रहेगी। यदि समाज सुधार के द्वारा सामाजिक समता स्थापित हो जाय तो खेतिहर मजदूर को उचित मजदूरी मिलने लगे तब यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक खेतिहर के पास भूमि भी हो।

पुन मजदूरो मे ऐसा वर्ग बहुत बडा है जो वर्ष मे कुछ ही दिन खेतो पर काम करता है तथा शेष समय अन्य उद्योग धधो मे व्यस्त रहकर अपनी जीविकापार्जन करते हैं। खेती मे बुवाई व कटाई के समय अधिक लोगों की आवश्यकता पडती है अत ऐसे समय में आशिक रूप से अन्य गैर कृषि कार्यो में व्यस्त रहने वाले मजदूरों की हमें सहायता लेनी होगी। अगर ऐसे भूमिहीन मजदूरो को हमने नाम मात्र की जमीन दे भी दी तो हम उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकेंगे। इसके विपरीत ऐसी नाम मात्र की जमीन से चिपटे रहने के कारण वे न तो अन्य गैर कृषि धन्धो की ओर ठीक से लग पायेगें और न आवश्यकता पडने पर दूसरो की खेती पर मजदूरी ही कर पायेगे। अत भूमि वितरण में हमें यह ध्यान रखना होगा कि जिसको भूमि मिले वह उसका आर्थिक जोत के रुप में उपयोग कर सके। इस दृष्टि से प्राथमिकता भूमिहीनों की अपेक्षा उन्हें प्राप्त हो जिसके पास अनार्थिक एवं अपर्याप्त जोते हैं।

सहकारी खेती का विरोध

प दीनदयाल जी सहकारी कृषि के विरुद्ध थे। उनका विश्वास था कि इसकी अतिम परिणति सामुदायिक खेती में होगी, भूमि का आज का स्वामी भूमिहीन मजदूर बन जायेगा एव लोकतत्र की अपेक्षा तानाशाही प्रवृत्ति मजबूत होगी। सहकारिता का अनुभव विश्व भर में ज्यादा उत्साहवर्धक नहीं रहा। सहकारी खेती हमारे अधिक से अधिक अन्न उत्पादन करने के लक्ष्य के विरुद्ध भी जायेगी।

दीनदयाल जी इतना अवश्य चाहते थे कि वास्तविक किसान को उत्पादन बढाने के लिए न लाभ व हानि के आधार पर सभी सहायक एव पूरक सेवाएँ उपलब्ध कराने के लिए सेवा सहकारिताओ को अधिक से अधिक बढावा दिया जाए।

कृषि उपज की कीमत

किसान केवल अनाज या कच्चे माल का उत्पादक न होकर उद्योगो मे बनाये जाने वाले माल का बहुत बडा ग्राहक भी होता है। अत किसान को उसकी कृषि उपज का उचित मूल्य मिलना ही चाहिए। उसी प्रकार औद्योगिक माल एव कृषि उपज मूल्य मे सतुलन भी होना चाहिए। अपनी पुस्तक Two Plans Promises Performance and Prospects मे लिखते हैं। खेती से उपजने वाले माल और कारखाने मे तैयार होने वाले माल के मूल्यो मे समानता न होने के कारण प्रारभिक निर्माताओं और श्रमिको पर त्याग करने की विवशता बलात लाद दी जाती है।

12 विदेशी पूँजी

स्वावलम्बन की दृष्टि से पूँजी का स्थान महत्वपूर्ण है। हमारे देश मे श्रम शक्ति तथा कच्चा माल विपुल मात्रा मे उपलब्ध है परन्तु औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक पूँजी की कमी है। *आर्थिक नियोजन मे इस बात का ध्यान नहीं रखा गया। श्रम प्रधान* नियोजन के स्थान पर पूँजी प्रधान नियोजन प्रारम्भ किया गया। फलस्वरूप पूँजी की कमी *अधिक महसूस हुई और इस कमी की पूर्ति हेतु विदेशी पूँजी आमत्रित की गई।*

विदेशी पूँजी मुख्यत तीन प्रकार से प्राप्त होती है 1 विदेशी पूँजीपतियो से व्यक्तिगत रीति से 2 अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय सस्थाओ से तथा 3 विदेशी सरकारों से। यह पूँजी ऋण के रूप मे अथवा उद्योगो मे भागीदारी के माध्यम से प्राप्त होती है। विदेशी पूँजी के बारे मे दीनदयाल जी कहते हैं आज पश्चिमी राष्ट्र उनके अपने हित के लिए नयी–नयी योजनाएँ प्रस्तुत करते हैं। उपनिवेशवाद तथा राजनीतिक दासता अब अतीत की बाते हो चली हैं। उनके स्थान पर आर्थिक एव वैचारिक आधार पर अन्य देशो को अपने नियन्त्रण मे लेने की योजनाएँ पश्चिमी देशो द्वारा प्रारम्भ की गयी।

विदेशी पूँजी और रुपये का अवमूल्यन

रुपये का अवमूल्यन सामान्यत न होने वाली घटना होती है परन्तु जब बाध्यतावश अवमूल्यन किया जाता है तो उसका परिणाम केवल आयात तक ही सीमित नहीं रहता अपितु उत्पादन मूल्यो औद्योगिकरण तथा आर्थिक विषमता पर उसका दूरगामी प्रभाव होता है।

5 जून 1966 को रुपये का मूल्य **विदेशी मुद्रा** (डालर) मे 36 5 प्रतिशत *कम* किया गया था। वित्त मत्रालय ने उस समय अपनी विज्ञप्ति मे कहा था कि यदि यह अवमूल्यन नही किया जाता तो विदेशों से सहायता मिलना असभव हो जाता। दीनदयाल ने अवमूल्यन एक महापतन नाम पुस्तिका मे लिखा कि विदेशी राजनीतिक दवाब में आकर रुपये का अवमूल्यन किया गया। वास्तव मे अवमूल्यन के समर्थन में जो आयात कम होने व निर्यात वृद्धि के तर्क दिये जाते है वे समय की कसौटी पर खरे नहीं उतरते

हैं। दीनदयाल जी के शब्दो में "आतरिक अर्थव्यवस्था की दृष्टि से अवमूल्यन के दोहरे परिणाम होते हैं। निर्यात बढने के कारण देश मे वस्तुओ की कमी होकर कीमतें बढ जाती हैं वही आयातित वस्तुओं की कीमत में वृद्धि से देश के आतरिक बाजार भाव और अधिक बढ जाते है।

विदेशी पूँजी ओर विदेशी उत्पादन प्रणाली

इस सबध मे दीनदयाल जी ने अपनी अर्थनीति" मे कहा है कि "विदेशी पूँजी के साथ हमें विवश होकर विदेशों की उत्पादन प्रणाली भी स्वीकार करनी पडती है। हमारे देश मे प्रचलित पूँजीपति और विशेषज्ञ उनके अपने देश मे प्रचलित उत्पादन–पद्धति के अनुसार और उपलब्ध यत्र सामग्री की सहायता से यहाँ उत्पादन प्रारम्भ करते हैं। इससे हमारा देश औद्योगिकरण के मार्ग पर चार कदम आगे तो बढ जायेगा किन्तु गहरी जडो वाले विकासोन्मुख एव व्यापक औद्योगीकरण की नींव कदापि नहीं रखी जा सकती। इस प्रकार की विदेशी उत्पादन प्रणाली से रोजगार निर्माण भी कम होगा।

इस विदेशी उत्पादन प्रणाली और साधन सामग्री के कारण स्वदेशी विज्ञान एव अनुसधान कार्य पिछड गये और देश का परावलबन अधिकाधिक बढता गया। विदेशी सहयोग के समझौतो मे विदेशी कम्पनियाँ आयात–निर्यात कच्चा माल, पक्के माल की बिक्री, रायल्टी आदि विषयों में अपनी शर्तों को लागू करवाती है जिससे स्थानीय उद्योगो पर विपरीत दूरगामी प्रभाव पडता है। कई बार स्वय के देश में काल–बाह्य (out dated) हुई यत्र सामग्री एव उत्पादन प्रविधि सहायता लेने वाले देशो के उद्योगों के सिर पर मढी जाती है।

इस सबध मे दीनदयाल जी का मत था कि विदेशों से पूँजी आयात न करके उद्योग के प्राथमिक निर्माण तक के तत्र विज्ञान का आयात करना अधिक हितकारी होगा। वे आग्रहपूर्वक कहते थे कि ऐसे विदेशी तत्र विज्ञान पर सदा के लिए निर्भर नहीं रहना चाहिए। अपितु अनुसधान द्वारा इस विषय मे स्वय पूर्ण होना चाहिए।

13. अर्थ संस्कृति

मानव जीवन मे उत्पादन, वितरण एव उपभोग ये तीन कृतियाँ, उसके आर्थिक जीवन को रुपायित करती हैं। अनियत्रित या असयमित उपभोग, वितरण में विषमता व लूट को प्रेरित करता है, उत्पादन की भी कोई मर्यादा नहीं रहती, यह असस्कृति आर्थिक जीवन है। उपाध्याय की अर्थ सस्कृति का सूत्र है अपरमात्रिक उत्पादन, समान वितरण तथा सयमित उपभोग।

उत्पादन की मर्यादा के लिए वे तीन बातें कहते हैं

1 उपभोग की आवश्यकता एव अपेक्षित बचत के लिए पर्याप्त उत्पादन को अपरमात्रिक उत्पादन कहते हैं। यह उत्पादन की मर्यादा है।

2 जिस उत्पादन को खपत के लिए बाजार खोजना पडे लोगों मे उपभोग की लालसा जगानी पडे वह सामाजिक सस्कारो मे असतुलन उत्पन्न करता है। बडे उद्योग व उपभोगवाद मे चोली–दामन का साथ है।

3 प्राकृतिक ससाधनो की एक सीमा है। उनका उच्छृखल दोहन नही करना चाहिए। प्रकृति में एक Equalbrium है प्रकृति अपनी पद्धति से क्षय की पूर्ति करती रहती है। मानव इतनी तेजी से उसका विनाश कर रहा है कि न तो प्रकृति क्षतिपूर्ति कर पाती है और न उसका सतुलन ही टिक पाता है। प्रत्येक क्रिया के सर्वांगीण परिणामो का विचार करने लायक ज्ञान का अभी भी मानव के पास अभाव है।[65] अत प्राकृतिक ससाधनो की मर्यादा का उल्लघन करने वाला उत्पादन वर्जनीय है।

वितरण मे समानता के नियमन के विषय मे भी वे तीन बाते कहते हैं

1 वितरण इस प्रकार होना चाहिए कि 'रोटी कपडा मकान पढाई और दवाई *ये पाँच आवश्यकताएँ प्रत्येक व्यक्ति की पूरी होनी चाहिए।*[66]

2 अधिकतम व न्यूनतम आय का नियत अनुपात नही बिगडना चाहिए।

3 वितरक निकाये उत्पादक व उपभोक्ता के साथ सतुलन वाली हो। अतिरिक्त मूल्य उपभोक्ता के लिए शोषणकारी न हो तथा उत्पादक व वितरक मे अतिरिक्त मूल्य का न्यायसगत बटवारा हो।

उपभोग के विषय मे उनकी मान्यता है–

1 सयमित उपभोग का तात्पर्य है स्वस्थ शरीर की आवश्यकता के अनुकूल उपभोग। इन्द्रीय लोलुपता को जगाकर किया जाने वाला उपभोग शारीरिक व सास्कृतिक दोनों दृष्टियो से घातक होता है।

2 अनियत्रित उपभोग असमान वितरण का कारण है। उपभोग मे सयम तथा सादा जीवन भारतीय अर्थव्यवस्था का प्राण है। उत्पादन उपभोग का नियत्रण नही करता उपभोग ही उत्पादन का नियत्रण करता है।

3 आर्थिक अभाव तथा प्रभाव दोनो ही उपभोग को असयमित करते हैं अत अर्थव्यवस्था ऐसी चाहिए जो जीवन के अर्थायाम की सम्पूर्ति करे।[67]

4 आत्मिक बौद्धिक व मानसिक आनद के अभाव में भी व्यक्ति का भौतिक उपभोग असयमित हो जाता है। व्यक्ति जब सब प्रकार के आनद की पूर्ति केवल भौतिक उपभोग से प्राप्त करने की कोशिश करता है तो 'उपभोगवाद के त्रासदायी दृष्चक्र मे फसता है। अत सयमित उपभोग के सयोजन के लिए समाज मे योग्य शिक्षा व सस्कार की व्यवस्था आवश्यक है सास्कृतिक आनद उपभोग को सयमित करता है।

इस प्रकार उपाध्याय निरुपित करते हैं कि उत्पादन उपभोग व वितरण कोरी आर्थिक क्रियाएँ नहीं हैं इनके अन्य सामाजिक व सास्कृतिक पहलू भी हैं। इन पहलूओ

की उपेक्षा करने वाला उत्पादन, उपभोग व वितरण, मानव को विषमता, लोलुपता, शोषण एव असवेदनशीलता से ग्रस्त करेगा। अत. हमे केवल आर्थिक नियोजन व नियमन ही नहीं, वरन् एक अर्थ–सस्कृति का भी विकास करना है, जिससे हम अर्थ–विकृति से बच सके।

14. आदर्श अर्थव्यवस्था

उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत आर्थिक विचारो से आदर्श अर्थव्यवस्था के कुछ अभिधारणात्मक तत्त्व उभरकर सामने आते हैं, जिनको निम्न प्रकार सूचीबद्ध किया जा सकता है –

1 "अर्थायाम"

2 "श्रम का मूलभूत कर्तव्य एव अधिकार" –सबको काम।

3 "उपभोगवाद", "स्पर्धावाद" व "वर्गसघर्ष" का निषेध।

4 "स्वामित्व का नहीं, स्वामित्व के केन्द्रीकरण का सवाल"।

5 कोई स्वामित्व समाज निरपेक्ष नहीं, कोई व्यक्ति स्वामित्व निरपेक्ष नही "–न्यास सिद्धात"।

6 "पूँजीवाद व समाजवाद" का निषेध

7 "आर्थिक लोकतत्र"।

8 "अर्थ सूत्र–ज X क X य =इ"।

9 भारी औद्योगीकरण का निषेध।

10. "विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था एव लघु उद्योग"।

11 "अपरमात्रिक उद्योग व उत्पादन"।

12 "अदेवमात्रिका कृषि"।[85]

13. "स्वयसेवी उत्पादन क्षेत्र"

14. "अर्थ सस्कृति", आदि।

अपने बम्बई के प्रसिद्ध भाषण में उन्होंने कहा कि "हमारी अर्थव्यवस्था का उद्देश्य होना चाहिए –

1 प्रत्येक व्यक्ति को न्यूनतम जीवन स्तर की आश्वस्ति तथा राष्ट्र के सुरक्षा सामर्थ्य की व्यवस्था।

2 इस स्तर के उपरात उत्तरोत्तर समृद्धि, जिससे व्यक्ति और राष्ट्र को वे साधन उपलब्ध हो सकें, जिनसे वे अपनी "चिति" के आधार पर विश्व की प्रगति में योगदान कर सकें।

3 उपर्युक्त लक्ष्यो की सिद्धि के लिए प्रत्येक स्वव एव स्वस्था व्यक्ति को साभिप्राय आजीविका का अवसर देना तथा प्रकृति के साधनों को मितव्ययिता के साथ उपयोग करना।

4 राष्ट्र के उत्पादक–उत्पादना का विचार कर अनुकूल प्रौद्योगिकी का विकास करना।

■ यह व्यवस्था 'मानव' की अवहेलना न कर उसके विकास में साधक हो तथा समाज के सास्कृतिक व अन्य जीवन मूल्यो की रक्षा करे। यह लक्ष्मण रेखा है जिसका अतिक्रमण अर्थरचना को किसी भी परिस्थिति मे नहीं करना चाहिए।

6 विभिन्न उद्योगो आदि म राज्य व्यक्ति तथा अन्य सस्थाओ के स्वामित्व का निर्णय व्यावहारिक आधार पर हो। [54]

उपर्युक्त प्रकार की अर्थव्यवस्था के नियमन मे मुख्य बाधा तो राजनीतिक इच्छा–शक्ति का अभाव एव आर्थिक विचारों की समाजवाद एव पूँजीवाद सबधी पाश्चात्य अवधारणाओ की भ्रमोत्पादक विचार सारणी है लेकिन उपाध्याय मानते हैं कि स्वदेशी निहित स्वार्थ भी इसमे एक बहुत बडी बाधा है

भारत म ऐसे लोग बडी सख्या मे हैं जिनके हित पाश्चात्य अर्थव्यवस्था एव उत्पादन प्रणाली से जुडे हुए हैं। पिछले सौ वर्षों में जिस अर्थव्यवस्था का भारत में विकास हुआ है उसने भारत और पश्चिम के ओद्योगिक देशों की व्यवस्था को एक दूसरे का पूरक बनाया है। इसमे भारत के हितो का सरक्षण नहीं हुआ बल्कि उनका बराबर शोषण ही होता रहा। इस शोषण की क्रिया म पाश्चात्य आर्थिक हितों ने भारत के कुछ वर्गों को भी अपने अभिकर्त्ता के रूप में साझीदार बनाया है। प्रारम में व्यापारी व कमीशन एजेंट के रूप में और बाद मे कुछ अशो मे उद्योगपति (स्वतत्र अथवा साझीदार) के रूप में इनके हित सबध विदेशी आर्थिक हितो के साथ बध गए। इस वर्ग का देश के आर्थिक जीवन पर प्रभुत्व रहा है। आज भी सख्या तथा देश की राष्ट्रीय आय में उनका योगदान कम होते हुए भी वे समाज और देश के जीवन पर भारी प्रभाव रखते है इस वर्ग की आकाक्षाएँ निश्चित हैं। वे अधिकाधिक अपने विदेशी प्रतिद्वद्वियो का स्थान ग्रहण करना चाहते हैं। पाश्चात्य अर्थशास्त्र के भारतीय विद्वानों से उनका सहज ही सम–सयोग मेल बैठ जाता है। भारत के सभी समाचारपत्र विशेषकर अग्रेजी उनके प्रभाव क्षेत्र में है। ये सब मिलकर जाने या अनजाने में ऐसा मायाजाल रच देते हैं कि साधारण जन उसमे स निकल ही नहीं पाता। [55] इस मायाजाल से शीघ्र चमत्कारिक परिणामाकाक्षी राजने का भी सामजस्य हो जाता है। इस सदर्भ में उपाध्याय कहते हैं

विदेशी सहायता विदेशी विशेषज्ञों की सम्मतियों तथा विदेशी जीवन का चित्ताकर्षक बाह्य स्वरूप तथा थोडी अवधि में कुछ कर दिखाने की राजनीतिक आवश्यकताओं ने उनको (राजनेताओं को) जनजीवन से दूर हटाकर उसकी समस्याओं को यथार्थ आकलन करने में अक्षम बना दिया है। उपाध्याय आग्रहपूर्वक प्रतिपादित करते हैं कि 'भारत के 'स्व' का साक्षात्कार किए बिना हम अपनी समस्याओं को सुलझा नहीं पाएगे। [7]

दीनदयाल उपाध्याय का अर्थचिंतन समग्रतावादी है। निपट आर्थिक दृष्टि से ही सपूर्ण मानव जीवन को देखने के वे विरोधी हैं। मानवीय सास्कृतिक मूल्यो की दृष्टि से उनका अर्थचिंतन आदर्शवादी है, लेकिन वह चिंतन अव्यावहारिक न बने अत उन्होने साथ–साथ व्यवहार्य व्यवस्थाओं के विवेचन का भी प्रयत्न किया है।

वे किसी वाद विशेष से कट्टरतापूर्वक बधने की बजाय, शाश्वत जीवन मूल्यो के प्रकाश मे यथासमय आवश्यक परिवर्तन एव मानवीय विवेक में आस्था रखते हैं। अपनी "भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा पुस्तक के विषय में वे लिखते हैं

"जैसा कि पुस्तक के नाम से प्रकट होगा यहाँ एक दिशा की ओर सकेत भर किया गया है। विकासोन्मुख भारत की मोटी रेखाएँ खींची गई है। अनेक छोटी–छोटी रेखाओ का अकन एव चित्र मे रग भरने का काम प्रकृति और पुरुष द्वारा ही पूरा होगा। यह जैसे–जैसे होता जायेगा, चित्र वैसे ही भरता जायेगा। हमारा कर्तव्य है कि दर्शक कह उत्सुकता छोडकर निर्माता की लगन और पुरुषार्थ से उसमें जुट जाएँ।"[12]

आज तृतीय विश्व का हर देश पाश्चात्य अर्थशास्त्र से जूझ रहा है। राजनीतिक साम्राज्यवाद भी अब प्रच्छन्न आर्थिक साम्राज्यवाद का अधिष्ठान ग्रहण कर रहा है। आधुनिक पाश्चात्य तकनीकी के साथ प्रताडित समाजों की प्रतिभा का मेल बैठना कठिन है। आज न चाहते हुए भी तृतीय विश्व के देश साम्राज्यवादी अर्थशास्त्र से अपने को मुक्त नहीं कर पा रहे है। अपने स्वदेशी जन को भूखा मारकर भी साम्राज्यवादियो को बाजार देने के लिए वे बाध्य हैं। पाश्चात्य तकनीकी व तज्ञ, स्वदेशी अर्थसत्ता पर ही नियत्रण कर लेते हैं। कुछ समृद्धि के टापू खडे कर लेते हैं, आम आदमी विषमताग्रस्त होकर उपेक्षित होता है, नेतृ वर्ग एव मध्यम प्रतिभा के धनी अल्पशिक्षित वर्ग के निहित स्वार्थों को साम्राज्यवादी पाश्चात्य अर्थशास्त्र कुछ सीमा तक पूरा करता रहता है। परिणामत एक सास्कृतिक अराजकता, राजनीतिक अस्थिरता व आर्थिक गुलामी का सृजन हो रहा है।

इन साम्राज्यवादी पाश्चात्य आक्रमणों से बचने के लिए माओ–त्से–तुग व जूलियस न्येरेरे जैसे जन–नेताओ ने अपने देशों को इन साम्राज्यवादी मुख्य धारा से काटकर तथा राजनीतिक इच्छाशक्ति के बल पर अनेक ग्राम प्रधान एव लघु उद्योग प्रधान स्वावलम्बी प्रयोग किए हैं। लेकिन इन प्रयोगों को करने के लिए उन्होंने तानाशाही राज्यशास्त्र व्यवस्थाओ के दुष्परिणाम अब वहाँ प्रकट भी होने लगे हैं। उपाध्याय राजनीतिक व आर्थिक लोकतत्र की आधारशिला के रूप में "विकेन्द्रित" व "स्वदेशी" आर्थिक व्यवस्था के पक्ष मे अपने विचारो का नियमन करते हैं, अत वे अधिक महत्वपूर्ण है।

उपाध्याय के आर्थिक विचार मानव प्रधान एव समाजपरक हैं। उनका सास्कृतिक अर्थशास्त्र आत्मरजक भी लगता है, बुद्धिगम्य भी, लेकिन जिन निहित स्वार्थों का उन्होंने वर्णन किया है, क्या उन्हें सस्कारों के बल पर नियत्रित किया जा सकता है ? लोकतान्त्रिक

मानवाधिकारों के दुरुपयाग ने भी पूजीवाद को जन्म दिया था। सरकार द्वारा नियमन तो उपाध्याय को स्वीकार है नियत्रण नहीं। सरकारी व ससदीय नियमन तथा आर्थिक निहित स्वार्थों में सघर्ष की अवस्था का वर्णन उपाध्याय अपने विचारों मे नहीं करते हैं। उनका विवचन ज्यादा विधायक है तथा सृजनात्मक है। यह सही है कि सघर्ष को किसी दर्शन का आधार नहीं बनाया जा सकता लेकिन व्यवहार में उससे बचना कठिन है। दीनदयाल उपाध्याय का उत्तर है सरकार शिक्षा लोकमत परिष्कार व नियमन यही लक्ष्मण–रेखा है इसी की मर्यादा में हमें प्रयोग करने चाहिए। मानव की श्रेष्ठता में उनका अगाध विश्वास है।

सदर्भ

1 शरद अनन्त कुलकर्णी प दीन दयाल उपाध्याय विचार–दर्शन खण्ड–4 एकात्म अर्थनीति पृ 13

2 उपर्युक्त पृष्ठ 13

3 विनायक वासुदेव नेने प दीन दयाल उपाध्याय विचार–दर्शन खण्ड–2 **एकात्म मानव दर्शन 12**

4 उपर्युक्त पृष्ठ 27

5 उपर्युक्त पृष्ठ 27–28

6 उपर्युक्त पृष्ठ 39–57

7 उपर्युक्त पृष्ठ 51–52

8 उपर्युक्त पृष्ठ 58–61

9 उपर्युक्त पृष्ठ 63

9 उपर्युक्त पृष्ठ 63

10 उपर्युक्त पृष्ठ 64

11 उपर्युक्त पृष्ठ 65

12 राष्ट्र चिन्तन पृष्ठ 132–133

13 एकात्म मानव दर्शन पृ ~ 76

14 उपर्युक्त पृष्ठ 78–90

15 उपर्युक्त पृष्ठ 91–95

16 उपर्युक्त पृष्ठ 96–103

17 उपर्युक्त पृष्ठ 9–10

18 दीनदयाल उपाध्याय भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा अध्याय–2 भारतीय सस्कृति में अर्थ राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन लखनऊ (1958 में प्रकाशित) पृ 18

19 क्र 2 पृ 16

20 दीनदयाल उपाध्याय, भारतीय जनसघ की अर्थनीति (भारतीय जनसघ उत्तर प्रदेश के प्रादेशिक सम्मेलन, 1953 के अवसर पर कार्यकर्त्ता शिविर के लिए भेजा गया लेख) पाचजन्य जनसघ अधिवेशनाक, 25 जनवरी 1954 पृ 8
21 क्र 2 पृ 17
22 क्र 2 पृ 18
23 क्र 2 पृ 18
24 क्र 2 पृ 20
25 क्र 2. पृ 23
26 क्र 1, अध्याय–12 अर्थनीति का भारतीयकरण पृ 85
27 क्र 1, अध्याय–10 छोटे उद्योग और बडे उद्योग पृ 113–114
28 क्र 4 पृ 9
29 क्र 2 अध्याय–10 'छोटे उद्योग और बडे उद्योग' पृ 125
30 क्र 2 पृ 125
31 क्र 2 अध्याय–3 आधारभूत लक्ष्य, पृ 28
32 क्र 2 पृ 28
33 क्र 1 अध्याय–12 अर्थनीति का भारतीयकरण पृ 85
34 क्र 1 पृ 92–93
35 क्र 1 पृ 90
36 क्र 2 अध्याय–10 छोटे उद्योग और बडे उद्योग, पृ 115
37 क्र 2 अध्याय–3 आधारभूत लक्ष्य पृ 29
38 क्र 2 पृ 30
39 क्र 2 पृ 27
40 क्र 2 पृ 27
41 क्र 2 पृ 29
42 क्र 2 पृ 26
43 क्र 2 अध्याय–6 उद्योग, पृ 65
44 क्र 2 पृ 66
45 दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र जीवन की समस्याएँ, राष्ट्रधर्म प्रकाशन लि, मॉडल हाउसेज लखनऊ प्रथम सस्करण 1960 अध्याय–9 अर्थनीति का भारतीयकरण पृ 42
46 क्र 29 पृ 44
47 उपर्युक्त पृष्ठ 44
48 उपर्युक्त पृष्ठ 45
49 उपर्युक्त पृष्ठ 46

50 क्र 2 अध्याय–6 उद्योग अपरमात्रिक पृ 63
51 क्र 2 पृ 67
52 क्र 2 अध्याय–7 मनुष्य और मशीन पृ 77–78
53 क्र 2 पृ 74
54 एकात्म दर्शन दीनदयाल शोध संस्थान नई दिल्ली अध्याय–4 राष्ट्रीय जीवन के अनुकूल अर्थरचना पृ 64
55 क्र 37 अध्याय–13 विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था पृ 95
56 क्र 37 अध्याय–12 अर्थनीति के भारतीयकरण पृ 87
57 क्र 2 अध्याय–10 पृ 120
58 क्र 2 पृ 121
59 क्र 2 पृ 122–123
60 क्र 2 पृ 123
61 क्र 2 पृ 126
62 दीनदयाल उपाध्याय विकेन्द्रीकरण की विडम्बना पाचजन्य उद्योग अक दीपावली स 2024 30 अक्टूबर 1967 पृ 14
63 क्र 45 पृ 14
64 क्र 37 अध्याय–4 राष्ट्रजीवन के अनुकूल अर्थव्यवस्था पृ 71
65 क्र 2 अध्याय–4 प्राथमिकताए पृ 34
66 क्र 4 पृ 9
67 एकात्म अर्थनीति पृष्ठ–18
68 हमारे भारतीय शासन का यह ध्यय रहा है कि वह सिचाई की योग्य व्यवस्था करे। कृषि को अदेवमात्रिका बनाने का शास्त्रकारो को आदेश है। क्र 2 अध्याय–5 कृषि पृ 43
(वामन शिवराम आप्टे द्वारा रचित संस्कृत–हिन्दी कोश मे अदेवमात्रिक का अर्थ निम्न प्रकार दिया है
अदैव
1 जो देवताओ की भाति न हो और
2 देवविहीन अपवित्र। सम
मातृक (वि) जहाँ वर्षा न हुई हो माता की भाति दूध पिलाने या पानी देने के *लिए जहाँ वर्षा का देवता काम न करता हो।)*
69 क्र 37 अध्याय–4 राष्ट्रीय जीवन के अनुकूल अर्थरचना पृ 70
70 क्र 2 अध्याय–1 अर्थ चितन पृ 13–14
71 क्र 2 पृ 14
72 क्र 2 पृ 3

प्रश्न

1 प दीनदयाल उपाध्याय द्वारा लिखित प्रमुख पुस्तको के नाम लिखिए।
2 एकात्म मानव दर्शन का अर्थ लिखिए।
3 दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार पूँजीवाद किन सिद्धान्तों पर आधारित है ? नाम लिखिए।
4 प दीनदयाल के अनुसार अर्थायाम किसे कहते हैं ?
5 प दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित 'एकात्म मानववाद' के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
6 भारतीय सस्कृति मे अर्थ धन के मनोविज्ञान को स्पष्ट करते हुए प दीनदयाल के स्वामित्व, पूँजीवाद तथा समाजवाद पर विचार स्पष्ट कीजिए।
7 'जिस अर्थशास्त्र को मानव के समग्र जीवन और उसके आर्थिक घटको के सम्बन्ध का भान न हो वह मानव को शाश्वत कल्याण की योग्य दिशा कदापि नहीं दे सकता।' इस कथन को दृष्टिगत रखते हुए प दीनदयाल उपाध्याय की 'एकात्म अर्थनीति' की व्याख्या कीजिए।
8 'विश्व आज भीषण सम्भ्रम के चौराहे पर खडा है। इस स्थिति से निकलने के लिए भारतीय सस्कृति के एकात्म मानव दर्शन के अन्तर्गत एकात्म अर्थनीति ही तीसरा विकल्प बन सकती है।' प दीनदयाल के इस कथन की व्याख्या कीजिए।
9 उपाध्याय के 'आर्थिक लोकतत्र' की व्याख्या कीजिए।
10 प दीनदयाल उपाध्याय के कृषि तथा विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था पर विचार स्पष्ट कीजिए।
11 नेहरू जी के औद्योगीकरण पर आधारित आर्थिक विकास की जगह प दीनदयाल ने औद्योगीकरण के सम्बन्ध मे क्या विचार दिए। इस सम्बन्ध मे उनकी 'अपरमात्रिक उद्योग नीति' भी स्पष्ट कीजिए।
12 प दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक विचारो से ऐसे कौन से अभिधारणात्मक तत्त्व उभर कर आते हैं जिनके आधार पर एक आदर्श अर्थव्यवस्था की परिकल्पना की जा सकती है ?
13 प दीनदयाल जी द्वारा विश्लेषित निम्न पर सक्षेप मे टिप्पणियाँ कीजिए
(i) आदर्श अर्थव्यवस्था
(ii) विदेशी पूँजी
(iii) विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था
(iv) मनुष्य एव मशीन
(v) अपरमात्रिक उद्योग नीति
(vi) आर्थिक लोकतत्र

22

जे के मेहता
(J K Mehta 1901-1980)

जे के मेहता संक्षिप्त परिचय

भारतीय आध्यात्मिक परम्परा के अनुशीलकर्त्ता व उसकी महान परम्परा के परिप्रेक्ष्य म अर्थशास्त्र क दृष्टा विश्व प्रसिद्ध भारतीय अथशास्त्री जे के मेहता का जन्म 25 दिसम्बर 1901 को राजनद गाव म हुआ। जे के मेहता का पूरा नाम जमशद केखुशरो मन्ता (Jamshed Kaikhusroo Mehta) था। उनके पिता खुशरोमनचर्जी मेहता बम्बई के एक मध्यमवर्गीय परिवार स थे। जे के मेहता की प्रारम्भिक शिक्षा राजनन्द गाव म हुई। हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करन के उपरान्त उन्होने मूर सेन्ट्रल कॉलज इलाहाबाद म प्रवेश लिया व गणित अग्रेजी व अर्थशास्त्र के विषयो के साथ स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की। 1925 म इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम ए अर्थशास्त्र की परीक्षा उत्तीर्ण की तथा वही शोधककार्य म सलग्न हो गये।

1927 म चार माह उन्हान क्राइस्ट चर्च कॉलेज (Christ Church College) कानपुर म अध्यापन कार्य किया तथा शीघ्र ही इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे प्रवक्ता (अर्थशास्त्र) क रूप म उनकी नियुक्ति हो गयी। कुछ समय उपरान्त जे के मेहता वही रीडर हो गय। 1951 म वे प्राफेसर व विभागाध्यक्ष बन गये तथा 36 वर्ष तक इस पद पर रहे। विश्वविद्यालय मे अध्यापन कार्य के उपरान्त 1963 मे सेवनिवृत्ति हो गय परन्तु विश्वविद्यालय अनुदान आयाग दिल्ली ने उनकी सराहनीय सवाओ को दृष्टिगत रखते हुए उन्हे यू जी सी प्रोफेसर ऑफ इकॉनामिक्स (U G C Professor of Economics) नियुक्त किया। प्रा जे क मेहता न एतदर्थ इलाहाबाद विश्वविद्यालय को ही चयन किया और 1963 से 1969 तक पद पर रहे। 1968 मे प्रा जे के मेहता भारतीय आर्थिक परिषद (Indian Economic Association) के अध्यक्ष भी रहे। प्रो जे क मेहता आजीवन अर्थशास्त्र के अध्ययन व अध्यापन से जुड रहे और सपूर्ण अवधि में लेखन कार्य मे सलग्न रहे। अर्थशास्त्र के अन्तर्गत उनके अप्रतिम योगदान को कभी नही भुलाया जा सकता उनके द्वारा लिखित पुस्तके निम्न प्रकार हैं

1 Groundwork of Economics
2-Studies in Advanced Economic Theory

3-Public Finance
4-Lectures on Modern Economic Theory
5-Economic Problems of Modern India
6-A Philosophical Interpretation of Economics
7-Economics of Growth
8-A Guide of Modern Economics
9-Economic Development Principles and Problems
10-Foundation of Economics
11- Principles of Exchange
12-Elements of Economics-Mathematically in terpreted
13-Macro Economics
14-Rhyme,Rythm and Truth in Economics

अर्थशास्त्र की परिभाषा एवं क्षेत्र (Definition and Scope of Econimics)

मानव व्यवहार जो कि अर्थशास्त्र की विषय वस्तु है मस्तिष्क के असन्तुलन की स्थिति का परिणाम है। मस्तिष्क के असतुलन की स्थिति इसलिए है क्योंकि यह अनावश्यक ही इस पर कार्य कर रही शक्तियो से प्रभावित है। यह इसलिए भी है कि ससार प्रतिक्रिया स्वरूप हमे उत्तेजित कर रहा है कि हमारा मस्तिष्क अशान्त स्थिति मे है। एक मस्तिष्क जो कि प्रतिक्रिया स्वरूप उत्तेजना प्रदान नही कर सकता, पूर्ण विश्राम की स्थिति में होगा और निश्चयपूर्वक सतुलन की स्थिति मे भी होगा। मस्तिष्क का असतुलन हमारे चारों तरफ फैले हुए ससार के विरूद्ध विरोध स्वरूप हमारे मानसिक स्व (Mental Self) की जागृति का प्रतीक है।'

प्रो जे के मेहता ने बताया कि बाहरी उत्प्रेरणाओ पर भिन्न–भिन्न मस्तिष्क भिन्न–भिन्न रूपेण प्रतिक्रिया करते हैं। कुछ परिस्थितियो मे उत्प्रेरणाओ का समूह इस प्रकार की क्रिया प्रदान करता है तो दूसरी परिस्थिति मे अन्य प्रकार की क्रिया प्रदान करता है। कुछ परिस्थितियो में ये उत्प्रेरणाएँ किसी प्रकार की भी क्रिया को जागृत नही कर पाती । यद्यपि यह परिस्थिति बहुत कम पायी जाती है। जो व्यक्ति उच्च श्रेणी के आध्यात्मिक विकास को प्राप्त कर लेते हैं उन्हे किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया प्रभावित नहीं कर पाती है।

प्रो मेहता ने मानव मस्तिष्क की सूक्ष्म विवेचना करते हुए स्पष्ट शब्दो मे कहा कि *यह तो मानव मस्तिष्क का नियम है कि वह असतुलन (Disequilibrium) को* नापसद करता है तथा सतुलन की प्राप्ति के लिए सघर्ष करता है। हमारी शारीरिक एव *मानसिक दोनों ही गतिविधियॉं सतुलन की प्राप्ति के साधर्ष (Means) है। असतुलन की* स्थिति की चेतना दुख है। चेतना की असतुलन की स्थिति मे कमी या सतुलन की प्राप्ति की ओर अग्रसर होने को सुख कहा जा सकता है। इस पकार दुख का निवारण ही सुख

है। प्रारंभिक दुख जितना अधिक होगा उसके निवारण पर सुख भी उतना ही अधिक होगा। अधिकतम सुख की प्राप्ति हेतु दुख को न्यूनतम करना होगा।[2]

प्रो जे के मेहता ने समस्त दुखो का मूलकारण आवश्यकता (Want) को बताया है। समस्त क्रियाएँ या गतिविधियॉ इसलिए सम्पन्न होती है क्योकि आवश्यकता का अस्तित्व होता है। उन्होने कहा कि जब मस्तिष्क असतुलन की स्थिति मे होता है तथा सतुलन के लिए सघर्ष करता है तो यह कहा जा सकता है कि यह सतुलन चाह रहा है। इस प्रकार आवश्यकता व दुख दोनो साथ–साथ उपस्थिति होते हैं। जब तक आवश्यकता असतुष्ट रहती है दुख विद्यमान रहता है तथा इसके निवारण की प्रक्रिया सतुष्टि या सुख (Pleasure) उत्पन्न करती है। जब आवश्यकता का पूर्ण निवारण हो जाता है तो किसी भी प्रकार का दुख शेष नही रहता तथा और अधिक सुख प्राप्ति की कोई सभावना भी शेष नही रह जाती तथा यह स्थिति मस्तिष्क के सतुलन का परिचायक है। जहॉ न दुख है न सुख वरन् प्रसन्नता (Happiness) है। इस प्रकार प्रसन्नता को हम इस यथार्थ की चेतना कह सकते है कि हमारा मानसिक स्व (Mental Self)सतुलन की स्थिति मे है।[3]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मानसिक स्व के असतुलन से दुख की अनुभूति होती है तथा इस असतुलन के निवारण से सुख की अनुभूति होती है। इस प्रकार सतुलन की प्राप्ति हमारी मूलभूत आवश्यकता है। इस मूलभूत आवश्यकता की प्राप्ति हेतु तदनुरूप सतुलन की प्राप्ति हेतु हमे ऐसे प्रयास करने होगे जहॉ हमारा मस्तिष्क वातावरण के विरोध का अत कर सके। इस विशिष्ट स्थिति की प्राप्ति हेतु दो मार्ग है–[4]

प्रथम मार्ग के अन्तर्गत मस्तिष्क की इच्छानुसार वातावरण परिवर्तित किया जाए। इस मार्ग का अनुसरण करने पर हमे चारो ओर व्याप्त ससार को पुर्नव्यवस्थित करना होगा। वस्तुत यह साधनो के उपयोग से सम्बन्धित है। साधनो के उपयोग हेतु प्रयास करना होगा और प्रयास अनिवार्य रूप से विभिन्न क्रियाओ का परिचायक है।ये क्रियाए वस्तुत वातावरण के प्रति मानव मस्तिष्क की प्रतिक्रिया है। हमारा मस्तिष्क शरीर के माध्यम से प्रतिक्रिया करता है। जब मस्तिष्क असतुलन की स्थिति में होता है तो शरीर मे कुछ निश्चित परिवर्तनो का कारण होता है जिसका कि परिणाम साधनो का उपयोग कहा जा सकता है।

द्वितीय मार्ग के अनुसार मस्तिष्क को इस प्रकार ढाला जाय कि वह वातावरण से व्याकुल ही न हो । इस मार्ग के अतर्गत हम आतरिक स्व को इस प्रकार परिवर्तित कर सतुलन स्थापित करते हैं कि हमारा मस्तिष्क वातावरण से प्रभावित ही नहीं होता तथा इसे किसी प्रकार का विरोध व्यक्त करने की आवश्यकता ही शेष नही रह जाती । इस विधि का अनुपालन अधिक कठिन है। हममे से अधिकाश यह नही जानते कि हमारे स्व का कौनसा भाग मस्तिष्क को शिक्षित कर सकता है ताकि वह कार्य कर रही बाह्य

शक्तियों को वश मे कर लें। यहाँ किसी प्रकार का विरोध या निग्रह नही होगा। मस्तिष्क को प्रतिक्रिया व्यस्त करने से रोका नही जायेगा वरन् उसे इस प्रकार परिवर्तित किया जायेगा कि वह प्रतिक्रिया व्यक्त ही न करें। धर्म व दर्शन हमे इस सदर्भ में पर्याप्त शिक्षा प्रदान कर सकते हैं।

प्रो जे के मेहता भारतीय धर्म व दर्शन के एक प्रखर मनीषी थे। भारतीय धर्म व दर्शन मे उनकी गहन आस्था ही नही वरन् तदनुरूप उन्होने स्वय के जीवन को ढाला भी। प्रो. मेहता ने एक ओर अर्थशास्त्री के रूप मे अर्थशास्त्र के सिद्धातो का गहन अध्ययन किया व दूसरी ओर वे भारतीय धर्म व दर्शन के प्रकाण्ड पडित व मर्मज्ञ थे। उन्होने अर्थशास्त्र के विधार्थी होने के उपरान्त भी जीवनस्तर (Standard of Living) की तुलना में जीवन मूल्यों (Life Standard) पर बल दिया। ऋषि, मुनियो की भॉति वे सत्य की खोज में सलग्न रहे। वे एकमात्र अर्थशास्त्री थे जिन्होने भारतीय आध्यात्म के परिप्रेक्ष्य मे अर्थशास्त्र को एक विज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होने अर्थशास्त्र को भारतीय आध्यात्मवादी परम्परा के परिप्रेक्ष्य मे देखा व प्रस्तुत किया।

प्रो जे के मेहता की गॉधी जी के 'सादा जीवन उच्च विचार' मे गहन आस्था थी। गॉधी जी का भी कहना था कि हमे आवश्यकताओं को कम से कम करना चाहिये। आवश्यकताए तो अनन्त है हम उन्हें जितना बढायेगे उतनी ही बढती चली जाएगी। गॉधी जी के शब्दो मे ' यह मन उस चचल पक्षी के समान है जिसे जितना मिलता है, उतनी ही ज्यादा इसकी भूख बढती जाती है और अत मे फिर भूखा का भूखा रहता है। इसलिए इच्छाओ की सीमाओ का अत्यन्त विस्तार करना और फिर उनकी पूर्ति के लिए हाय-हाय करना मात्र एक भ्रम और जाल प्रतीत होता है। सभ्यता का सच्चा अर्थ अपनी इच्छाओ को बढाना नहीं बल्कि सप्रयास कम करना है।[5]

प्रो जे के मेहता ने आध्यात्मवादी दृष्टिकोण के कारण उपर्युक्त दो सभव मार्गों में से द्वितीय मार्ग को चुना । उन्होने बताया कि अर्थशास्त्रियो ने एक नियम की भाति मस्तिष्क के सतुलन हेतु प्रथम मार्ग पर बल दिया है। यह माना गया है कि ससाधनों के समुचित उपयोग के माध्यम से ही असतुलन का दूर किया जा सकता है। लेकिन प्रो मेहता ने प्रथम मार्ग का विरोध करते हुए स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि यह सत्य है कि साधनो के समुचित उपयोग के माध्यम से मस्तिष्क के असतुलन को कुछ समय के लिए तो दूर किया जा सकता है लेकिन पूर्ण सतुलन की प्राप्ति इसके द्वारा असभव है। प्रथम मार्ग मे पूर्ण सतुलन अल्पावधि मे भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। प्रथम मार्ग से असतुलन दूर करने की प्रक्रिया कुछ नये असतुलन उत्पन्न करती है। प्रत्येक कार्य जो कि वर्तमान इच्छा या आवश्यकता को दूर करने के लिए किया जाता है नई आवश्यकता को जन्म देता है। एक आवश्यकता की सतुष्टि दूसरी आवश्यकता को जन्म देती है।

प्रो मेहता ने स्पष्ट किया कि केवल प्रथम मार्ग का अनुसरण करने पर अर्थशास्त्र

मानव व्यवहार का अध्ययन है जिसके अन्तर्गत सतुलन की प्राप्ति हेतु या आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु साधना का उपयोग समाहित हे मानवीय क्रियाएँ–शारीरिक व मानसिक दोनों ही अर्थशास्त्र की विषय वस्तु है। ये मानवीय क्रियाएँ वस्तुत सतुलन की प्राप्ति का साधन (Means) है । इस प्रकार सतुलन की प्राप्ति साध्य (End) तथा मानवीय क्रियाएँ साध्य की प्राप्ति हतु साधन (means) है। प्रथम मार्ग का अनुसरण करने पर पूर्ण सतुलन की प्राप्ति असमव हे और इस यथार्थ की स्थिति मे मानवीय व्यवहार का उद्देश्य जितना समव हा सके सतुलन के निकट पहुँचना है। इस प्रकार स मानवीय क्रियाएँ जिनका कि अर्थशास्त्र म अध्ययन किया जाता है इस स्थिति को पाने का साधन मात्र है।'

मानवीय क्रियाएँ साधनों के उपयोग द्वारा सतुलन की बिंदु की प्राप्ति का माध्यम है। साधनो के विभिन्न उपयोग हे उनका उपयोग निश्चित तरीके से किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति लक्ष्य की प्राप्ति हतु साधनो के उपयोग के एक विशिष्ट तरीके का चयन करता हे। एक अर्थशास्त्री इस उपयोग के चयन हेतु आधारभूत नियम बनाते समय मानव व्यवहार का अध्ययन करता हे। आधारभूत नियमो का निर्धारण इसलिए समव है क्योंकि वे वास्तव म पाये जाते हैं। सभी व्यक्तियो के मस्तिष्क की बाह्य शक्तियो के प्रति प्रतिक्रिया लगभग समान ही होती है तथा एक मानव की प्रतिक्रिया सभी समय एक समान होती है। ये आधारभूत नियम चयन प्रक्रिया मे मानव को सहायता प्रदान करते हैं। अर्थशास्त्री इन आधारभूत नियमो की खाज करते हैं तथा ये आधारभूत नियम या सिद्धान्त मिलकर अर्थशास्त्र या आर्थिक सिद्दात (Economic Theory) का निर्माण करते हैं।

प्रो मेहता के अनुसार अर्थशास्त्री सभी आधारभूत नियमो के अन्तर्गत मानवीय साधनो को इस प्रकार निर्दिष्ट करते हैं कि अधिकतम सतुष्टि की प्राप्ति हो सके। अधिकतम सतुष्टि की प्राप्ति का आधार यह है कि मानव सतुलन चाहता है। सतुलन को प्राप्त करने हेतु असतुलन को दूर करना होता है। असतुलन का निराकरण या निवारण दुख निवारण के सदृश्य है। पुनश्च दुख निवारण सुख की प्राप्ति ही है। अधिकतम सभव सुख दुख के न्यूनतमकरण (Minimisation of pain) द्वारा सभव हो पाता है और जब दुख न्यूनतम होगा तब हम अतिम साध्य सतुलन के निकटतम होगें।

प्रो मेहता ने स्पष्ट किया कि अधिकतम सुख की प्राप्ति का निर्धारण करते समय प्रथम मार्ग का अनुसरण कारने वाले अर्थशास्त्री समय तत्त्व पर ध्यान नही देते उनके अनुसार समय तत्त्व का भी एक विशिष्ट स्थान हे। यह अधिक महत्वपूर्ण है कि एक व्यक्ति वर्तमान मे सतुलन प्राप्त करना चाहता है या अतत भविष्य म प्राप्त होने वाले पूर्ण सतुलन पर बल देता है। व्यक्ति वर्तमान में कम सतुलन (Less equilibrium) को प्राथमिकता देता है तथा भविष्य मे वृहत्तर सतुलन (Greater equilibrium) को प्राथमिकता प्रदान करता है।यह भी विचारणीय है कि क्या व्यक्ति भविष्य की कीमत पर आज के सतुलन पर ही बल देता है। इन सभी प्रश्ना के समाधान के समय हमारे समक्ष समय अधिमान'

की समस्या आ जाती है। प्रो मेहता के अनुसार यह सत्य है कि हम वर्तमान मे रहते है। हमारी सारी मानसिक प्रक्रियाएँ वर्तमान अनुभव एव अनुभूतियो के अधीन होती है तथा हम वर्तमान से जुडे होते हैं न कि मृत भूता या अजन्मे भविष्य से। यही कारण है कि हम वर्तमान को अधिक प्राथमिकता प्रदान करते हैं लेकिन प्रो मेहता ने वर्तमान की अपेक्षा भविष्य के पूर्ण सतुलन पर अधिक बल दिया। भविष्य को अधिक प्राथमिकता देने का कारण है कि भविष्य वर्तमान मे स्पष्ट परिलक्षित होता है। हमे भविष्य का विचार होता है और अधिकाश व्यक्ति भविष्य की प्रत्याशा में वर्तमान मे निर्णय लेते हैं । भविष्य की सुखद कल्पना की जाती है, निकट भविष्य मे आने वाली खुशिया वर्तमान मे हमारे मस्तिष्क पर प्रभाव डालती है। मस्तिष्क के मनोवैज्ञानिक विश्लेषणार्थ वर्तमान के साथ–साथ भविष्य पर भी बल दिया जाना आवश्यक है। भविष्य का विश्लेषण वर्तमान के लिये उपयोगी है।[7]

प्रो मेहता ने द्वितीय मार्ग का अनुसरण किया तथा वर्तमान व भविष्य दोनो को दृष्टिगत रखते हुए निरपेक्ष व पूर्ण सतुलन पर बल दिया। अधिकतम सतुष्टि या सुख की प्राप्ति के स्थान पर प्रसन्नता (Happiness) पर बल दिया है। प्रो मेहता के शब्दो मे "हम स्वतत्रता पूर्वक कह सकते हैं कि समस्त व्यवहार का उद्देश्य या तो मानसिक सतुलन की स्थिति को प्राप्त करना है, या दुख को न्यूनतम स्तर पर पहुँचाना है या सुख को अधिकतम करना है, या अधिक स्पष्ट शब्दो मे अतिम ध्येय प्रसन्नता (Happiness) की प्राप्ति है। असतुलन दुखमय है। असतुलन को दूर करने की प्रक्रिया या सतुलन पर पहुचने की प्रक्रिया सुखमय है। निरपेक्ष सतुलन की प्राप्ति पर मानसिक स्थिति प्रसन्नता की परिचालक है। सुख ओर दुख असतुलन के सहवर्ती है। दुख असन्तुलन के साथ जुडा है तथा सुख इसके निवारण के साथ जुडा है। इस प्रकार सुख या सतुष्टि इस तथ्य की मानसिक अनुभूति है कि निरपेक्ष या पूर्ण सतुलन की प्राप्ति हेतु एक निश्चित प्रक्रिया जारी है। प्रसन्नता इसकी परिणति है तथा सुख इसकी प्रतीती मात्र है। हमे सुख का अनुभव तभी होता है जब हम यह जानते हैं कि हम प्रसन्नता की ओर अग्रसर हो रहे हैं। हम प्रसन्नता का अनुभव तभी करते हैं जब हम यह जानते हैं कि हमें किसी प्रकार का न तो कोई दुख है, न कोई आवश्यकता है और न ही किसी भी प्रकार का कोई असन्तुलन है।[8]

प्रो मेहता के अनुसार हमारी सुख–दुख की गणनाएँ व मानव व्यवहार का अध्ययन हमारे वर्तमान जीवन क्रम के यथार्थ से जुडा हुआ है। व्यक्ति सतुलन के लक्ष्य की प्राप्ति में प्रयासरत रहता है। लक्ष्य की प्राप्ति हेतु साधनों का उपयोग कर अधिकाधिक आवश्यकताओ से मुक्ति चाहता है। समस्त आवश्यकताओ से मुक्ति की स्थिति में ही लक्ष्य प्राप्त हो सकता है अन्य शब्दों मे आवश्यकता विहीनता (Wantlessness) की स्थिति मे ही लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है जिसके लिए व्यक्ति सघर्ष करता है।

प्रो मेहता के अनुसार आवश्यकता विहीनता की स्थिति मानव व्यवहार का वास्तविक लक्ष्य है। इसे प्राप्त करने हेतु हमे समस्त आवश्यकताओं से मुक्ति पानी होगी यदि हम वर्तमान मे सभी आवश्यकताओं से मुक्ति पा लेंगे तो भविष्य मे प्रसन्नता ही प्रसन्नता होगी। लेकिन प्रो मेहता ने स्पष्ट किया है कि समस्त आवश्यकताओ से एक साथ मुक्ति नही हो सकती। *हमे इन आवश्यकताओ को इस प्रकार कम करत जाना है कि पुन वे हमारे समक्ष* न आये तथा आवश्यकता विहीनता की स्थिति प्राप्त हो जाये । हमे एतदर्थ नई-नई आवश्यकताओ की उत्पत्ति को वर्तमान मे निषेध करना होगा अन्यथा भविष्य मे आवश्यकता विहीनता की स्थिति हमें प्राप्त नहीं हो सकती। इस आवश्यकता विहीनता की स्थिति की प्राप्ति हेतु समस्त मानव व्यवहार अर्थशास्त्र विज्ञान की विषय वस्तु है।

प्रो जे के मेहता ने पूर्ण व निरपेक्ष सतुलन आवश्यकता विहीनता की प्राप्ति हेतु समुचित मार्ग निम्न चित्र की सहायता से प्रस्तुत किया है।'



चित्र-1

चित्र-1 के अन्तर्गत एक विश्रामगृह है जो कि अतिम ध्येय आवश्यकता विहीनता का द्योतक है प्रारम्भिक बिंदु से इस विश्रामगृह को जाने वाले मार्ग सभी दिशाओं में फैले हुए हैं जो यह बता रहे हैं कि लक्ष्य की प्राप्ति हेतु विभिन्न साधन या मार्ग है। चित्र में दर्शित यात्री वह व्यक्ति है जिसकी क्रियाएँ विचार-विमर्श हेतु हमारे समक्ष है। वह व्यक्ति विश्रामगृह पर विभिन्न मार्गो मे से किसी का भी चयन कर पहुच सकता है। लेकिन प्रो मेहता के अनुसार एक मार्ग ही ऐसा है जो उसे सतत रूप से विश्रामगृह पर ले जाता है। यह मार्ग चित्र मे चिन्हित (Arroowed) है व गहरी रेखाओ के रूप मे दृश्य है। इस मार्ग के अतिरिक्त कोई भी मार्ग लक्ष्य की प्राप्ति हेतु मार्ग नहीं है। प्रत्येक मोड पर विश्राम गृह की ओर जाने वाले उचित अनुचित मार्ग दोनो ही हैं। विश्राम गृह पर हम *अनुचित मार्ग को अपना लेने पर भी पहुच सकते है लेकिन अतत हमे उचित मार्ग का* ही अनुसरण करना पडेगा अत समीचीन यही होगा कि हम प्रारभ से ही उचित मार्ग को अपनाएँ । कोई भी व्यक्ति A या B स्थिति से प्रारम्भ होने की स्थिति में भी अतत उचित मार्ग पर चलकर ही विश्राम गृह पर पहुँच सकता है।

प्रो मेहता की दृष्टि मे सर्वोत्तम व्यवहार वही है जो व्यक्ति को विश्राम गृह के

उतना ही निकट ले जाये जितना समव हो। अर्थशास्त्र के अतर्गत हम उस मानव व्यवहार का अध्ययन करते हैं जो विश्राम गृह पर पहुँचाने हेतु किया जाता है।[10]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रो जे के मेहता ने अतिम ध्येय (पूर्ण व निरपेक्ष सतुलन) आवश्यकता विहीनता की प्राप्ति हेतु मानव व्यवहार को अर्थशास्त्र की विषय वस्तु बताया है। उन्होंने विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा अपनाए जा रहे मार्ग, मानव व्यवहार लक्ष्य व अर्थशास्त्र की विषयवस्तु को स्पष्ट करते हुए स्वय द्वारा प्रस्तुत मार्ग लक्ष्य व तद्नुसार अर्थशास्त्र की विषय वस्तु को अध्यारोपित किया है। यह कार्य उन्होने वैज्ञानिक अर्थशास्त्री की भाँति सफलतापूर्वक किया है। अर्थशास्त्र को भी उन्होंने उपर्युक्त परिपेक्ष्य में ही परिभाषित किया है।

प्रो. मेहता द्वारा प्रदत्त अर्थशास्त्र की परिभाषा–

प्रो मेहता भारतीय दार्शनिक व आध्यात्मिक परपरा का अनुसरण करते हुए स्वय के द्वारा पूर्ण सतुलन प्राप्ति हेतु द्वितीय मार्ग– मस्तिष्क को इस प्रकार ढाला जाए कि वह वातावरण से व्याकुल ही न हो' का वरण करते हुए अर्थशास्त्र को परिभाषित किया है। उनके द्वारा प्रदत्त परिभाषा निम्न प्रकार है–

'अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जो उस मानवीय व्यवहार का अध्ययन करता है जो कि आवश्यकता विहीन स्थिति के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए प्रयत्न करता है।'[11]

(Economics is a Science that studies human behaviour as a means to the end of wantlessness)

आवश्यकता विहीन स्थिति , जैसा कि पूर्व में ही स्पष्ट किया जा चुका है, दु ख के न्यूनतमकरण व प्रसन्नता की स्थिति की परिचायक है और प्रो मेहता ने इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए अधिक स्पष्ट शब्दों मे अर्थशास्त्र को निम्न शब्दो मे परिभाषित किया है।

'अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जो उस मानवीय व्यवहार का अध्ययन करता है जो दीर्घकाल मे दु ख को न्यूनतम करने के प्रयास के रूप मे किया जाता है अथवा दूसरे शब्दों में, आवश्यकताओ से मुक्ति पाने और प्रसन्नता की स्थिति तक पहुँचने के प्रयास के रूप मे किया जाता है।'[12]

(Economics is therefore, the science that studies human behaviour as the effort to minimise pain in the long run of in other works, as an endeavour to gain freedom from wants and reach the state of happiness)

प्रो मेहता की परिभाषा से स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र, आवश्यकता विहीन स्थिति की प्राप्ति हेतु किये जाने वाले समस्त मानव व्यवहार का अध्ययन करता है। यह मानव को आवश्यकता के बधन से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। आवश्यकताओ से मुक्ति एक साथ प्राप्त नही की जा सकती। इसकी प्राप्ति हेतु सर्वप्रथम निम्नस्तरीय आवश्यकताओ की अपेक्षा उच्च स्तरीय आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होगी। प्रो मेहता के अनुसार निम्न

स्तरीय आवश्यकताओ के स्थान पर उच्चस्तरीय आवश्यकताओ को अपना लेने से निम्न स्तरीय आवश्यकताएँ स्वत ही समाप्त हो जाती हैं। प्रो मेहता ने इस सदर्भ मे एक उदाहरण भी दिया है कि घटिया फिल्म देखने की अपेक्षा उत्तम साहित्य पढना चाहिये। आवश्यकता विहीन स्थिति की प्राप्ति पूर्ण व निरपेक्ष सतुलन की प्राप्ति है जहॉ न दुख है न सुख है वरन प्रसन्नता ही प्रसन्नता है। आवश्यकता विहीन स्थिति हमे निर्वाण (Nirvana) का मार्ग प्रशस्त करती है। निर्वाण एक आधारभूत सत्य (Fundamental Truth) है।

प्रो मेहता व प्रो रोबिन्सन की अर्थशास्त्र की परिभाषाओ की तुलना

प्रो जे के मेहता की अर्थशास्त्र की परिभाषा की तुलना यदि हम अन्य अर्थशास्त्रियो द्वारा प्रदत्त परिभाषाओ से करे तो वैचारिक दृष्टि यह प्रो रॉबिन्स की परिभाषा के अधिक निकट है। प्रो रॉबिन्स पहले अर्थशास्त्री है जिन्होंने अर्थशास्त्र को मानव व्यवहार के अध्ययन के रूप मे प्रतिष्ठित किया। प्रो रॉबिन्स की परिभाषा की तुलना करने हेतु उनकी परिभाषा पर दृष्टिपात आवश्यक है। प्रो रॉबिन्स ने अर्थशास्त्र को निम्न शब्दो मे परिभाषित किया है –

अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जो उस मानवीय व्यवहार का अध्ययन करता है जिसका सबध लक्ष्यो व वैकल्पिक उपयोगो वाले सीमित साधनो से होता है।[11]

(Economics is the science which studies human behaviour as a relationship between ends and scarce means which have alternative uses)

प्रो रोबिन्स की परिभाषा से निम्न तथ्य स्पष्ट है–

1 अर्थशास्त्र मानव व्यवहार का अध्ययन करता है।

2 उद्देश्यो या लक्ष्य से आशय मानवीय आवश्यकताओ से है जो कि अनत व असीमित होती है।

3 साधन सीमित होते हैं।

4 सीमित साधनो के वैकल्पिक उपयोग होते हैं।

5 आवश्यकताओ की अनतता व सीमित साधनो का वैकल्पिक उपयोग चयन की समस्या उत्पन्न करते हैं।

प्रो मेहता तथा प्रो रॉबिन्स दोनो ही अर्थशास्त्र को मानव व्यवहार का अध्ययन बताते है। दोनो ही मानवीय आवश्यकताओ का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं और ऐसा करते समय दोनो ही चयन सबधी क्रियाओ पर बल देते हैं परन्तु प्रो मेहता के विचार प्रो रॉबिन्स से काफी भिन्न है। इस वैचारिक भिन्नता को निम्न बिंदुओ के अतर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है–

1 प्रो रॉबिन्स ने आवश्यकताओ की असीमितता व अनतता को दृष्टिगत रखते हुए

भी उनकी पूर्ति पर बल दिया है जबकि प्रो मेहता ने इन आवश्यकताओ को कम करने तथा अतत आवश्यकता विहीन स्थिति की प्राप्ति पर बल दिया है।

2 प्रो रॉबिन्स ने मानसिक सतुलन की प्राप्ति के 'प्रथम मार्ग' का अनुसरण किया है जबकि प्रो मेहता ने अधिक श्रेयस्कर 'द्वितीय मार्ग' का अनुसरण किया है।

3 प्रो रॉबिन्स का दृष्टिकोण अदूरदर्शी है क्योकि वे अधिकतम सतुष्टि की प्राप्ति मे विश्वास करते हुए उसे आवश्यकताओ की पूर्ति तक सीमित कर देते है जबकि प्रो मेहता का दृष्टिकोण दूरदर्शी है क्योंकि वे पूर्ण निरपेक्ष सतुलन पर बल देते हैं जहॉ न सुख है और न दुख वरन् प्रसन्नता ही प्रसन्नता है यह स्थिति आवश्यकता विहीन स्थिति है।

4 प्रो रॉबिन्स ने अर्थशास्त्र को एक वास्तविक विज्ञान माना है तथा उसे नीति शास्त्र से दूर रखा है दूसरी ओर प्रो मेहता ने अर्थशास्त्र मे नैतिक विचारो को समाविष्ट कर अर्थशास्त्र का आदर्श विज्ञान माना है।

आवश्यकता विहीनता का अर्थ *(Meaning of Want lessness)*

आवश्यकताऍ अनत है असीमित है और जैसे ही एक आवश्यकता की पूर्ति की जाती है तत्काल ही दूसरी आवश्यकता जन्म ले लेती है। हितोपदेश मे कहा भी गया है–

यद्यदेव हि वाञ्छेद ततो वाञ्छा प्रवर्तते "

अर्थात् जिस वस्तु की इच्छा की जाती है उसी से और इच्छा बढती है। ओर इस प्रकार इच्छाऍ चक्र की पक्ति के समान बढती ही चली जाती है। उनकी कभी तृप्ति नही होती है।

भर्तृहरि ने भी नीतिशतक में इस यथार्थ को स्वीकार किया है। इसी कारण प्रो जे के मेहता ने भारतीय सस्कृति के आधार स्तम्भ 'सतोषपरम सुखम' का अनुसरण करते हुए आवश्यकता विहीनता को अतिम ध्येय माना जिसके अतर्गत प्रसन्नता ही प्रसन्नता है। प्रो जे के मेहता द्वारा प्रस्तुत यह प्रसन्नता की स्थिति सतोष रूपी अमृत से प्राप्त सुख के सदृश ही है। हितोपदेश मे कहा भी गया है–

सतोषामृत तृप्ताना यत्सुखम शान्त चेतसाम्
कुतस्तद्धन लुब्धानामितश्चेतश्च धावताम।[6]

अर्थात् सतोष रूपी अमृत से तृप्त और शान्त चित्त वालो को जो सुख मिलता है वह धन के लोभी ओर (इसीलिए) इधर–उधर भटकने वाला को कहॉ से प्राप्त होगा ?

प्रो जे के मेहता ने इस सतोष की स्थिति को ही अर्थशास्त्र मे आवश्यकता विहीनता की स्थिति के रूप म लिया है तथा इस अनिर्वचनीय सुख की स्थिति को प्रसन्नता की स्थिति के रूप में लिया है तथा ध्येय की प्रप्ति हेतु मानव व्यवहार क अध्ययन को अर्थशास्त्र की विषय वस्तु बताया है।

आवश्यकता विहीनता पूर्ण व निरपेक्ष सतुलन है तथा प्रसन्नता की स्थिति की द्यातक है। प्रा जे के महता ने इस स्थिति का आध्यात्म के विकास के साथ जोडा है तथा ऐसा करते समय उन्हाने क्रिया व प्रतिक्रिया के मध्य अतर किया हे। उनका मत है कि आवश्यकता विहीन स्थिति म व्यक्ति क्रिया (Action) ही करता है प्रतिक्रिया (Reaction) नहीं करता है। प्रा मेहता ने इस क्रिया व प्रतिक्रिया के अतर को उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया हे। उन्हीं क शब्दा में 'यदि तुम पेड पर चढते हो फल ताडते हो तथा उसे खाते हा तो निश्चित ही तुम बाह्य उत्प्रेरणाओ के विपरीत विराध स्वरूप प्रतिक्रिया कर रहे हो। दूसरी आर यदि तुम्ह फल खाने के लिये प्रस्तुत किया जाता है तो तुम निश्चय ही उत्प्रेरणाआ की अनुपालना के केवल क्रिया कर रहे हो। '[17]

प्रो मेहता का स्पष्ट मत हे कि एक आध्यात्मिक रूप से विकसित व्यक्ति बाहरी उत्प्रेरणाओं के समक्ष केवल क्रिया करता हे वह प्रतिक्रिया नहीं करता हे ओर इस सदर्भ में प्रतिक्रिया का शाब्दिक अर्थ अनायास ही हमें आभास कराता हे कि आवश्यकता विहीनता अहिंसा (Non - violence) क ही समान है। इस प्रकार आवश्यकता विहीनता की स्थिति में किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया शप नहीं रह जाती है। इस आवश्यकता विहीनता की स्थिति मे सुख दु ख की अनूभुति शष नहीं रह जाती है।[18] महता ने आवश्यकता विहीनता की स्थिति की स्पष्ट व्याख्या करते हुए कहा है कि आपके विवेक के अनुसार आदश की कठार अनुपालना आवश्यकता विहीनता की स्थिति का गठन करती है। आप जो चाहत हैं वा कार्य मत कीजिये वरन वह कार्य कीजिये जिसे आपका विवेक चाहता है। व्यक्तिगत स्वार्थ के वशीभूत होकर मत चलिए अपितु विश्वव्यापी स्वार्थ के अनुसार चलिए। स्वार्थी नही स्वार्थहीन (Selfless) बनो। स्वय को स्वविवेकानुसार कार्य करने की अनुमति प्रदान करते समय हम स्वय को विश्वव्यापी शक्तियो के अनुसार सचालित होने दें। ये शक्तियाँ –सर्वशक्तिमान ईश्वर स निकलती है।[19]

प्रो महता की आवश्यकता विहीनता की स्थिति क्रियाहीनता की स्थिति नहीं है। उन्होने स्पष्ट शब्दा म कहा है आवश्यकता विहीनता का आशय क्रिया विहीनता (Actionlessness) कदापि नहीं हे जब हम आवश्यकता विहीनता की नीति का अनुसरण करते हें ता आर्थिक क्रियाएँ रूक नहीं जाती है। एक समाज आवश्यकता विहीनता के लक्ष्य पर आधारित आर्थिक नीतियो का पालन उत्पादन की मूल पद्धति म परिवर्तन के बिना भी कर सकता है। वस्तुआ एव सेवाओ का उत्पादन व उपभाग मे आवश्यकता विहीनता के आदर्शानुसार परिवर्तन किया जा सकता है।[20] आवश्यकता विहीनता का आशय यह कदापि नहीं है कि हम खाना–पीना बन्द कर दे और न ही आय अर्जन नहीं करने से है। ये सभी काय जा कि आवश्यक है स्वार्थहीन उद्देश्य से करने है। आय प्राप्ति का उद्देश्य हमारे स्वय के लिए उपयोग नहीं होना चाहिये बल्कि उन सभी की सहायतार्थ उपयोग होना चाहिये जिन्हें हमारा विवेक उचित मानता है। जीवन के प्रति ऐसा आवश्यकता विहीन आचरण न केवल हम प्रसन्नता प्रदान करेगा वरन सामाजिक

कल्याण हेतु हमे योगदान करने योग्य बनाएगा। एक व्यक्ति का कल्याण समाज के कल्याण के रूप मे समान रूप से देखना होगा। व्यक्ति कल्याण व सामाजिक कल्याण के मध्य समानता को हमारे पवित्र धर्म ग्रन्थो मे भी विशिष्ट स्थान दिया गया है।

प्रो जे के मेहता ने आवश्यकता विहीनता को गॉधीजी के ट्रस्टीशिप के सिद्धात के परिपेक्ष्य मे भी प्रस्तुत किया है तथा इसे समस्त समस्याओं का अत माना है। प्रो मेहता के शब्दो मे 'यदि हम सभी 'प्रसन्नता' के सही मार्ग का अनुसरण कर लें तो राज्य का कार्य यदि समाप्त नहीं होगा तो बहुत बडी सीमा तक कम हो जायेगा। निर्धनों के कल्याण हेतु धनी वर्ग पर कर लगाने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। यह भी आवश्यक नहीं होगा किसी भी व्यक्ति को एक सीमा से अधिक धन प्राप्त करने से रोका जाए। महात्मा गाधी जी का धनी व्यक्तियो के लिए ट्रस्टीशिप मे विश्वास था। गॉधी जी की इच्छा थी कि धनी व्यक्ति को धन अर्जित करना चाहिये व अपने पास बनाए रखना चाहिये । लेकिन गॉधी जी की यह भी इच्छा थी कि धनी इसका उपयोग स्वय के लाभ के लिए तो करे लेकिन साथ ही निर्धनो के कल्याण के लिए भी करे। अन्य शब्दो में, वह यह चाहते थे कि व्यक्ति आवश्यकता रहित हो उन्होंने हमारा ध्यान व्यक्ति व सामाजिक कल्याण के मध्य आधारभूत सबध की ओर आकृष्ट किया । हमारी समस्याओ का अत आवश्यकता विहीनता के मार्ग में निहित है।

आवश्यकताओं का दर्शन (The Philosophy of Wants)

आवश्यकताएँ अनत होती है, असीमित होती हैं व अपरिमित होती हैं, किन्तु उनकी पूर्ति की जा सकती है। इन आवश्यकताओं के सदर्भ मे अब तक दो सर्वमान्य तथ्य उभर कर आये है।[27]

1 एक आवश्यकता की सतुष्टि दु ख दूर करती है। तथा

2 एक आवश्यकता को सतुष्ट करने की प्रक्रिया नई आवश्यकता को जन्म देती है।

प्रो जे के मेहता ने इसे कुछ अचेतन आवश्यकताओं के चेतन होने के रूप में देखा है।

प्रो मेहता ने आवश्यकताओ को इस प्रकार दो भागो में रखा है–

1 चेतना आवश्यकताएँ (Conscious Wants)

2 अचेतन आवश्यकताए (Unconscious Wants)

प्रो मेहता ने चेतन व अचेतन आवश्यकताओ की सूक्ष्म दार्शनिक विवेचना की है। उन्होने धनी व निर्धन वर्ग की आवश्यकताओं व उनके सतुष्टि के स्तर की गहन समीक्षा की है। प्रो मेहता के आवश्यकताओं के दर्शन को निम्न दो शीर्षकों के अतर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है–

1 चेतन व अचेतन आवश्यकताएँ

प्रो मेहता ने बताया कि जब एक आवश्यकता की पूर्ति की जाती हे तो निश्चय ही सतुष्टि की प्राप्ति होती हे और यह सुख या सतुष्टि की प्राप्ति दु ख निवारण की प्रक्रिया के रूप मे होती है। यह इसलिए सभव हो पाता है क्योकि आवश्यकता के विद्यमान रहन या उसके सतुष्ट न कर पाने की स्थिति मे दु ख की अनुभूति होती है जो कि मस्तिष्क की चेतनता का प्रतीक है। प्रो मेहता के अनुसार यही चेतन आवश्यकताएँ हैं। उन्होने अचेतन आवश्यकताओ को और मौलिक रूप म प्रस्तुत किया है। प्रो मेहता के अनुसार कुछ आवश्यकताएँ ऐसी होती है जिनकी वर्तमान मे हम अनुभूति होती है परन्तु दु ख का निवारण नही होता। दु ख का निवारण इसलिए नही होता क्योकि वे मस्तिष्क की चेतन अवस्था मे विद्यमान ही नही होती है। ये अचेतन आवश्यकताएँ है ये चेतन आवश्यकताओ को पूरा करने पर अस्तित्व मे आती है। कुछ अचेतन आवश्यकताएँ तो चेतन आवश्यकताओ के साथ स्वत ही सतुष्ट हो जाती है।[22]

प्रो मेहता ने अचेतन आवश्यकताओ का दार्शनिक विश्लेषण करते हुए बताया कि इनकी अनायास आपूर्ति सुखदायक है। एक व्यक्ति जिसने न कभी पिक्चर (Picture) के विषय मे सुना न कभी देखा है तो निश्चय ही उसकी इसे देखने की चेतन आवश्यकता नही होगी और न ही इसके अभाव मे दु ख की अनुभूति होगी। लेकिन फिर भी यदि वह पिक्चर देखता है तो निश्चय ही आनदित होगा लेकिन यह सुख दु ख निवारण के रूप मे नही होगा। इस प्रकार अचेतन आवश्यकता की पूर्ति धनात्मक योगदान प्रदान करेगी। एक अचेतन आवश्यकता की सतुष्टि कल्याण मे धनात्मक योगदान प्रदान करती है इसलिए इसे सतुष्ट किया जाना चाहिये। लेकिन उल्लेखनीय है कि इसकी सतुष्टि चेतन आवश्यकता की सतुष्टि के साथ स्वत ही हो जाती है। लेकिन एक बार अचेतन आवश्यकता की सतुष्टि हो जाने के बाद पुन वह चेतन आवश्यकता के रूप मे हमारे समक्ष आ जाती है। और इस प्रकार आवश्यकता विहीनता के अतर्गत दोनो को समान रूप से सम्मिलित किया जाना चाहिये।

2 धनी व निर्धन की आवश्यकताएँ

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि एक औसत निर्धन व्यक्ति एक औसत धनी व्यक्ति के समान सुखी नहीं है। इसलिए निर्धन व्यक्ति दया का पात्र है। प्रो मेहता ने इस तथ्य का सशक्त शब्दो मे खण्डन किया है। प्रो मेहता ने बताया कि इस दया के वितरण व धन के मध्य विपरीत सबध का कोई वैज्ञानिक न्याय नही है। अर्थात निर्धन व्यक्ति निर्धनता के कारण दया का पात्र है इस बात का कोई वैज्ञानिक या न्यायसम्मत आधार नही है। प्रो मेहता के अनुसार एक निर्धन व्यक्ति की इच्छाएँ एक धनी व्यक्ति की तुलना मे कम होती हे तथा वह अपनी न्यून आय के माध्यम से न्यून आवश्यकताओ की पूर्ति करने म सक्षम होता है। उसकी कुछ आवश्यकताएँ ही सतुष्ट हुए बिना रह जाती है।

दूसरी ओर धनी व्यक्ति की आवश्यकताएँ अधिक होती है तथा अधिक लाभ के उपरान्त भी उसकी अधिक आवश्यकताएँ बिना सतुष्ट हुए रह जाती है, जो कि धनी व्यक्ति के दुख का कारण है। यद्यपि यह सत्य है कि निर्धन व्यक्ति की सतुष्ट आवश्यकताएँ धनी व्यक्ति की तुलना में बहुत कम होती है परन्तु उनकी आवश्यकता की तीव्रता अधिक होती है।[23]

प्रो जे के मेहता ने धनी व निर्धन के जीवन–स्तर की तुलना यथार्थ रूप मे की है। उनके अनुसार जीवन–स्तर के प्रति धनी व निर्धन दोनो की आवश्यकताएँ समान सख्या में नहीं होती । उच्च जीवन स्तर के उपरान्त भी धनी व्यक्ति की आवश्यकताएँ जीवन स्तर को सुधारने के लिए निर्धन की आवश्यकताओ की तुलना में अधिक होती है। आवश्यकताओ की विशाल सख्या के कारण धनी व्यक्ति की काफी आवश्यकताएँ असतुष्ट रह जाती है तथा उसे दुख की अनुभूति होती है। जीवन स्तर के प्रति निर्धन वर्ग की आवश्यकताएँ अचेतन अवस्था में होती है और ये अचेतन आवश्यकताएँ दुख का कारण कदापि नही है।

प्रो. मेहता ने इस सदर्भ मे एक और महत्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि धनी व निर्धन दोनों के लिए धन की सीमात उपयोगिता एक समान नहीं होती। निर्धन व्यक्ति के लिए धन की सीमात उपयोगिता अधिकाश परिस्थितियों में धनी व्यक्ति की तुलना में अधिक होती है। प्रो मेहता ने बताया कि निर्धन व्यक्ति की प्रसन्नता का स्तर धनी व्यक्ति की तुलना में अधिक होता है। लेकिन इसका यह आशय कदापि नहीं है कि निर्धन व्यक्ति पर धनी व्यक्ति की तुलना में अधिक कर लगाया जाए। कर भार तो धनी व्यक्ति पर ही अधिक होना चाहिये। इस सदर्भ में दो तथ्य उत्तरदायी हैं।[24]

1 धनी व्यक्ति के लिए धन की सीमात उपयोगिता तुलनात्मक दृष्टि से कम होती है।

2. धनी व्यक्ति की, कर लगने पर, असतुष्ट आवश्यकताओ की तीव्रता निर्धन व्यक्ति की असतुष्ट आवश्यकताओ की तुलना मे कम होती है।

प्रो. मेहता ने बताया कि कर का निर्धारण त्याग की मात्रा के अनुसार होना चाहिये और उपर्युक्त दोनों तथ्यो के आधार पर धनी व्यक्ति पर अधिक मात्रा में कर लगाया जाना चाहिये। इस प्रकार प्रो मेहता ने आवश्यकताओं की दार्शनिक विवेचना कर सामाजिक न्याय की स्थापना व अधिकतम सामाजिक कल्याण की प्राप्ति हेतु कर निर्धारण का सिद्धात प्रतिपादित किया है।

विशुद्ध व व्यावहारिक अर्थशास्त्र (Pure and Applied Economics)

प्रो जे के मेहता ने अर्थशास्त्र को विशुद्ध व व्यावहारिक दोनो ही रूप मे प्रस्तुत किया है । प्रो. मेहता के अनुसार प्रत्येक विज्ञान दो शाखाओं में विभाजित होता है– विशुद्ध व व्यावहारिक। यही अर्थशास्त्र के साथ भी है। विशुद्ध गणित व विशुद्ध भौतिक शास्त्र की

भाँति विशुद्ध अर्थशास्त्र होता है तथा व्यावहारिक भौतिक शास्त्र व व्यावहारिक गणित की भाति व्यावहारिक अर्थशास्त्र भी होता है।[25]

प्रो जे के मेहता ने विशुद्ध व व्यावहारिक विज्ञान के मध्य विभाजन के इस कथन को कि प्रथम प्रकाश देता है व दूसरा फल देता है अवैज्ञानिक बताया है। उनके अनुसार 'यह कहना पर्याप्त होगा कि विशुद्ध विज्ञान के अतर्गत हम सामान्य सिद्धात का अध्ययन करते हैं। जबकि व्यावहारिक विज्ञान के अतर्गत हम दिए हुए ढाचे मे उपर्युक्त सिद्धातों का परीक्षण करते है। चूँकि अर्थशास्त्र विज्ञान की विषय वस्तु मानव व्यवहार का अध्ययन है अत विशुद्ध अर्थशास्त्र इस व्यवहार से शासित सिद्धातों का अध्ययन करता है। यह विशुद्ध अर्थशास्त्र मानव व्यवहार का अध्ययन साधनो की सीमितता' के निश्चित दृष्टिकोण के अतर्गत करता है। व्यावहारिक अर्थशास्त्र के अतर्गत हम यह देखते हैं कि ये सिद्धात मानवीय क्रियाओ के विशिष्ट क्षेत्र मे किस प्रकार लागू होते हैं।

प्रो मेहता के अनुसार विशुद्ध अर्थशास्त्र के अतर्गत हम कल्याण के क्षेत्र में अधिक होते है। हम हमारे मस्तिष्क में एक शब्द की कल्पना करते है और यह शब्द हमारे अध्ययन की विषय–वस्तु बन जाता है। व्यावहारिक अर्थशास्त्र के अतर्गत हम वास्तविक ससार के क्षेत्र मे होते हैं या और अधिक स्पष्ट शब्दों में हम ससार के उस क्षेत्र में होते हैं जिसे हम देखते और अनुभव करते है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विशुद्ध अर्थशास्त्र के अतर्गत मरितष्क अधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है तथा विशुद्ध अर्थशास्त्र के अतर्गत उसका अनुभव व चेतना अधिक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।

प्रो मेहता के अनुसार व्यावहारिक अर्थशास्त्र का अध्ययन अतिम ध्येय की प्राप्ति है और होनी चाहिये। विशुद्ध अर्थशास्त्र की केवल यही महत्ता है कि यह हमारे अतिम ध्येय की प्राप्ति का साधन है। व्यावहारिक अर्थशास्त्र सामान्य सिद्धातों का प्रयोग करता है *तथा यह देखता है कि ये किस प्रकार निश्चित व्यावहारिक क्षेत्र के अतर्गत कार्य करते* हैं। इस प्रकार सर्वप्रथम हमें सामान्य सिद्धातों के अध्ययन की आवश्यकता है। ये सामान्य सिद्धात शून्य के अन्तर्गत कार्य नहीं कर सकते अत इनके कार्य करने के लिए परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी होगी और एतृदर्थ हमें वास्तविक जगत की आवश्यकता होगी। प्रो मेहता ने आवश्यकता विहीनता की प्राप्ति अतिम ध्येय बताया है। यह अतिम ध्येय प्रसन्नता का द्योतक है। इस उद्देश्य की प्राप्ति व्यावहारिक अर्थशास्त्र का उद्देश्य तथा विशुद्ध अर्थशास्त्र इसकी प्राप्ति का साधन है। विशुद्ध अर्थशास्त्र व व्यावहाहिक अर्थशास्त्र दोनों का अध्ययन अतिम ध्येय की प्राप्ति हेतु आवश्यक है।

प्रो जे के मेहता ने विशुद्ध अर्थशस्त्र व व्यावहारिक अर्थशास्त्र के मध्य अतर को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि विशुद्ध अर्थशास्त्र के अतर्गत सिद्धात शामिल किए जा सकते हैं तथा व्यावहारिक अर्थशास्त्र के अतर्गत नियम शामिल किए जा सकते

हैं। इस प्रकार व्यावहारिक अर्थशास्त्र के अतर्गत हम ग्रेशम के नियम (Gresham's Law) व तुलनात्मक लागत के नियम (Law of Comparative Cost) को सम्मिलित कर सकते हैं। दूसरी ओर विशुद्ध अर्थशास्त्र के अतर्गत ह्रासमान प्रतिफल का सिद्धात (Principle of Diminishing Returns) व प्रतिस्थापन के सिद्धात को सम्मिलित कर सकते है।[27] प्रो मेहता ने इस सदर्भ में सिद्धात व नियम दोनों के मध्य अतर स्पष्टरूपेण समझने पर बल दिया है।

प्रो मेहता के मत में हमारे विज्ञान विशुद्ध अर्थशास्त्र के अतर्गत मुख्य आधारभूत सिद्धात सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम जिसे ह्रासमान उपयोगिता का सिद्धात (Principle of Diminishing Utility) भी कहा जा सकता है। विशुद्ध अर्थशास्त्र मे बहुत से सिद्धात इस सिद्धात पर आधारित है। यह सिद्धात अन्य सिद्धातो के साथ मिलकर व्यावहारिक अर्थशास्त्र की समस्त समस्याओं को समझने में सहायता प्रदान करता है। एक व्यावसायी, एक गृह स्वामी व एक प्रशासक के समक्ष आने वाली समस्त समस्याओं को समुचित रूप में समझने में अर्थशास्त्र विज्ञान सहायता करता है। प्रो. मेहता ने विशुद्ध व व्यावहारिक दोनों ही अर्थशास्त्र को समान उपयोगी बताया है।[28]

व्यष्टि व समष्टि अर्थशास्त्र (Micro Economics & Macro Economics)

प्रो जे के मेहता ने व्यष्टि अर्थशास्त्र व समष्टि अर्थशास्त्र, जो कि अर्थशास्त्र विज्ञान के अध्ययन की दो शाखाएँ हैं, का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत करता है। दोनो के अध्ययन की विषय वस्तु की विशद विवेचना करते हुए अध्ययन की आवश्यकता को निरूपित किया है। यद्यपि उन्होंने व्यष्टि अर्थशास्त्र तथा समष्टि अर्थशास्त्र दोनों के अध्ययन को ही महत्ता प्रदान की है।

प्रो. मेहता के अनुसार एक समाज के अतर्गत बहुत–सी इकाइयाँ समाहित है। अर्थशास्त्र विज्ञान इन इकाइयों के व्यवहार से जुडा है। यदि इन इकाइयों के ऊपर कार्य कर रही उत्प्रेरणाओं को निकाल दिया जाय तो सभी सतुलन की स्थिति में होगीं और अर्थशास्त्र के अध्ययन हेतु कोई विषय वस्तु प्रदान नहीं करेगी। लेकिन वास्तविक जगत मे प्रत्येक इकाई बहुत–सी उत्प्रेरणाओं से नियत्रित है जो कि उस वातावरण से निकलती है जहाँ ये इकाइयाँ स्थित है। एक इकाई के व्यवहार की सामान्य पद्धति वह है जिसे प्राप्त करना अर्थशास्त्र विज्ञान का लक्ष्य है।

प्रो. मेहता के मत में तकनीकी भाषा में अर्थशास्त्र के अन्तर्गत उपभोग व उत्पादन के नियम समाहित है। यदि एक अर्थशास्त्री को "व्यक्ति" (Individual) के व्यवहार का पूर्ण ज्ञान है तथा वातावरण से सबद्ध पूर्ण जानकारी है तो निश्चय ही वह बता सकता है कि व्यक्ति (Individual) कितना कार्य करेगा, कितनी मात्रा में वह उत्पादन करेगा, कितनी मात्रा में बेचेगा, कितनी मात्रा में खरीदेगा, कितनी मात्रा में बचत करेगा, और

कितनी मात्रा मे उपभोग करेगा आदि। अध्ययन के अतर्गत आवश्यकताएँ उनकी सरचना व गहनता व्यक्ति से सबद्ध ज्ञान उपलब्ध कराती है जबकि दूसरी ओर वातावरण की प्रकृति जिसके अतर्गत मानवीय व भौतिक शक्तियाँ निहित हैं उन उत्प्रेरणाओ का ज्ञान कराती है जो कि समुपस्थित है।[29]

उपर्युक्त विवरण के अतर्गत प्रस्तुत एक इकाई के व्यवहार का अध्ययन व्यष्टि अर्थशास्त्र है। इसे व्यष्टि या सूक्ष्म अर्थशास्त्र इसलिए कहा जाता है क्योकि इसकी एक विशिष्ट इकाई सभी इकाइयों को मिलाकर एक साथ रखने पर सापेक्ष रूप मे बहुत छोटी होती है। एक इकाई का सही व्यष्टिगत आर्थिक अध्ययन हम यह जानने मे सक्षम बनाता है कि एक विशिष्ट इकाई किस प्रकार व्यवहार करती है। यह हमे उस स्थिति की जानकारी प्रदान करती है जिसमें एक इकाई सतुलन की स्थिति म होती है। इस प्रकार व्यष्टिगत आर्थिक अध्ययन उन इकाइयो व समाज के विषय मे कुछ नही बताती जो कि उस इकाई विशेष से सबधित है। समस्त इकाइया का एक साथ व्यष्टि अर्थशास्त्र मे अध्ययन हमे इस योग्य बनाता है कि समाज किस प्रकार व्यवहार करता है। प्रो मेहता के अनुसार यह अध्ययन व्यष्टिगत आर्थिक अध्ययन नही है अपितु समष्टिगत आर्थिक अध्ययन है यह समष्टि आर्थिक अध्ययन हैं जो समस्त (The whole) का अध्ययन करता है।[30]

प्रो महता के अनुसार व्यक्ति समाज मे रहते है अत अर्थशास्त्री समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन की उपेक्षा नहीं कर सकते उसे एक का नही वरन समस्त व्यक्तियों (All the individuals) का अध्ययन करना चाहिये एतदर्थ वह अध्ययन का कोई मार्ग अपना सकता है। प्रो महता ने इस अध्ययन के दो मार्ग बताये हैं– [31]

अर्थशास्त्री एक समय बिंदु पर एक इकाई का अध्ययन कर सकता है फिर वह सभी अध्ययनो को येनकेन प्रकारेण समायोजित कर सकता है। यह वस्तुत एक साथ अध्ययन की जा रही सभी व्यक्तिगत अर्थ व्यवस्थाओ का आशिक सतुलन विश्लेषण (Partial equilibrium analysis) है। एक विस्तृत समाज के अतर्गत इस प्रकार का विश्लेषण निश्चय ही एक कठिन कार्य है। इसके विश्लेषणार्थ गणितीय विधियाँ प्रयुक्त करनी होगी जिससे यह जटिल हो जायेगा।

2 समाज के अध्ययन के समष्टि आर्थिक अध्ययन का दूसरा मार्ग है कि हम समाज को इकाई मानकर अध्ययन करे। इसके अतर्गत व्यक्तिगत इकाइयो के अध्ययन स प्रारभ होने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम समाज को ही एक इकाई मानकर अध्ययन प्रारभ कर सकते हैं। समाज की अपनी आवश्यकताएँ हैं इसका अपना वातावरण है जिसके विरुद्ध यह प्रतिक्रिया करता है। इसका वस्तुओ व सेवाओं का उत्पादन है उपभोग है तथा बचत व विनियोग है। समष्टि आर्थिक अध्ययन की यह विधि हम विस्तृत परिणाम प्रदान करती है। प्रो मेहता के अनुसार प्रथम विधि से इसका मूलभूत अतर यह

है कि इसके अतर्गत वातावरण का आशय प्रकृति (Nature) से है, जिसे अर्थशास्त्री भूमि (Land) कहते हैं।

प्रो मेहता के अनुसार दोनों अध्ययन विधियों मे द्वितीय विधि श्रेष्ठ है, यद्यपि प्रथम विधि की महत्ता को भी स्वीकार करना होगा।

स्थैतिक, विकासात्मक व प्रावैगिक अर्थशास्त्र

(Static. Developmental and Dynamic Economic)

एक उत्पादन इकाई के सतुलन के विस्तार अथवा सकुचन की प्राय अनुपस्थिति होती है। यह एक स्थिति है जिसके अतर्गत किसी इकाई की विस्तार या सकुचन की कोई इच्छा नहीं होती । प्रो मेहता के अनुसार अर्थशास्त्र के अध्ययन के अतर्गत हम सतुलन की स्थिति का निर्धारण करते हैं। प्रो मेहता ने इस सतुलन की स्थिति को अर्थशास्त्र के तीन विशिष्ट स्वरूपो के अतर्गत स्पष्ट किया है–

1. स्थैतिक अर्थशास्त्र (Static Economics)

हम सतुलन की स्थिति से यह निश्चत करते हैं उत्पादन के प्रत्येक साधन का क्या अश होगा, सभी उत्पादित वस्तुओं की क्या कीमत होगी व उपभोग की जाने वाली वस्तुओं व सेवाओ की क्या मात्रा होगी। जब हम आर्थिक प्राणाली के अतर्गत इस सतुलन की स्थिति की प्राप्ति की प्रत्याशा करते हैं व उसका अध्ययन करते है तो उसे स्थैतिक अर्थशास्त्र के रूप मे जाना जाता है। हमारा उद्देश्य उस स्थिति का निर्धारण है जो कि उन समस्त आवश्यकताओ की पूर्ति करेगी जो कि सबसे प्रारभ मे होती है वह स्थिति जिसके अतर्गत दी हुई आवश्यकताएँ पूरी होती है, सतुलन की स्थिति है, अधिक स्पष्ट यह स्थैतिक समय है। यह अध्ययन समय बिंदु (Time point) से सबद्ध होता है।[32]

2. प्रावैगिक अर्थशास्त्र (Dynamic Economics)

जब प्रारंभिक समक मे कोई परिवर्तन नहीं होता समायोजनो की प्रक्रिया द्वारा अतिम स्थिति प्राप्त की जा सकती है और यदि हम चाहे तो ऐसा मार्ग अपना सकते है जिसके द्वारा पूर्ण सतुलन प्राप्त किया जा सके। यह अध्ययन प्रावैगिक अर्थशास्त्र कहा जा सकता है जिसके अतर्गत समयानुसार समायोजन की प्रक्रिया की व्याख्या की जाती है। हम यहाँ मार्ग निर्धारित करते हैं जिसके अतर्गत आर्थिक परिवेश समय–समय पर परिवर्तित होता है। यह अध्ययन समय बिंदु के स्थान पर समय–अवधि (Period of Time) से सबधित होता है।[33]

3. विकासात्मक अर्थशास्त्र (Developmental Economics)

विकासात्मक अर्थशास्त्र के अतर्गत एक दी हुई अवधि मे उत्तरोत्तर प्राप्त होने वाली सतुलन की स्थिति का अध्ययन किया जाता है। ये सतुलन की स्थितियाँ सतुलन की अतिम स्थिति की प्राप्ति हेतु है जो समयावधि के अत मे प्राप्त होती है। प्रो मेहता के

अनुसार हमारा विकासात्मक अर्थशास्त्र प्रो टिन्बर्गन (Pro Tinbergen) के आथिक प्रादैगिकी के सदृश है जिसके अतगत अत प्रभावी प्रक्रियाएँ शामिल हैं। प्रो टिन्बर्गन के अनुसार इन प्रक्रियाओ को समझने के लिए तथा कदम–कदम पर इस अनुकूल प्रक्रिया के अनुगमन क लिए उत्तरोत्तर हाने वाली गतिविधियों के लिए जिस सिद्धात की आवश्यकता है वह आर्थिक प्रादैगिकी (Economic Dynamics) कहा जाता है।[4]

उपयोगिता की मापनीयता (Measurality of Utility)

उपभाग आवश्यकताओ की सतुष्टि स शासित सिद्धातो का एक अध्ययन है। आवश्यकताओं की सतुष्टि उपयोगिता (utility) उपजाती है और इस प्रकार उपभाग को उपयोगिता को आनदानुभूति से शासित सिद्धातो के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। प्रो मेहता के अनुसार अर्थशास्त्र एक विज्ञान है अत हमें उपयोगिता के मात्रात्मक स्वरूप की व्याख्या करना आवश्यक है। आवयकता उनकी सतुष्टि व उपभोक्ता के सतुलन के वैज्ञानिक विश्लेषणार्थ उपयोगिता मापनीयता अत्यावश्यक है।

प्रो महता ने उपयोगिता के मात्रात्मक मापन पर बल दिया है। उन्होने प्रो हिक्स व एलन द्वारा प्रस्तुत तटस्थता वक्र विश्लेषण को भी उपयोगिता का मात्रात्मक मापन ही सिद्ध किया है। प्रो मेहता ने उपयोगिता के मापन के सदर्भ म विभिन्न व्यावहारिक प्रश्न तथा उनके समाधान से सबधित निम्न तथ्य प्रस्तुत किये।[5]

1 उपयोगिता एक भाववाचक पदार्थ है। प्रश्न यह उपस्थित होता है कि एक भौतिक पदार्थ ही मापा जा सकता है लेकिन एक भाववाचक अभौतिक पदार्थ कैसे मापा जा सकता है? प्रो मेहता ने जन सामान्य के इस प्रश्न का जन सामान्य की भाषा मे उत्तर देते हुए कहा है कि और भी बहुत से भाववाचक पदार्थ ऐसे है जिन्हें मापा जाता है जैसे ऊर्जा विद्युत ताप आदि। इसलिए यह कहना गलत है कि उपयोगिता एक अभौतिक पदार्थ है अत इसे मापा नहीं जा सकता।

2 *उपयोगिता स्थिर नहीं रहती । यह समय–समय पर बदलती रहती है।* यह प्रश्न किया जाता है कि एक स्थायी रूप से परिवर्तनशील पदार्थ मापा जा सकता है तो दूसरा भी मापा जा सकता है। एक समय विन्दु पर किसी पदार्थ की उपयोगिता स्थिर रहती है अत यह मापी जा सकती है।

3 उपयोगिता के मापन की कोई इकाई (Standerd) नहीं है। भौतिक पदार्थों का मापन निश्चित इकाई की सहायता से कर सकते हैं। अत किसी क्षण पदार्थ की लम्बाई 'गज' (Yard Stick) द्वारा वजन पोड (Ponds) द्वारा मापा जा सकता है। लेकिन उपयोगिता को मापने वाली इस प्रकार की इकाई नहीं है। लेकिन प्रो मेहता के अनुसार अर्थशास्त्र के अतर्गत सतुष्टि को मौद्रिक इकाइयों द्वारा मापा जा सकता है। इस प्रकार 'मुद्रा' उपयोगिता के मापन की इकाई है। प्रो मेहता ने इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि भौतिक लक्ष्य कभी नहीं मापे जाते हैं। जबकि हम

किसी कपडे को मापते हैं तो उस क्षण उसकी लबाई मापते हैं। लम्बाई अभौतिक है व उपयोगिता के सदृश्य है। इस प्रकार प्रो मेहता के अनुसार उपयोगिता को अमापनीय कहना गलत है।

प्रो मेहता के अनुसार मार्शल द्वारा उपयोगिता की मापनीयता के सदर्भ में प्रस्तुत गणनात्मक दृष्टिकोण (Cardinal approach) उचित व सार्थक है। उन्होंने कहा कि मार्शल ने मुद्रा रूपी इकाई द्वारा उपयोगिता को जिस प्रकार मापा है, वह सही है। प्रो मेहता के अनुसार प्रो हिक्स व ऐलन आदि द्वारा प्रस्तुत क्रमवाचक दृष्टिकोण भी वस्तुत दूसरे रूप में उपयोगिता को मापनीय लेकर ही चलता है। उन्होंने क्रम वाचक दृष्टिकोण के अतर्गत भी उपयोगिता की मापनीयता को उदाहरण द्वारा सिद्ध किया है।

माना कि पाँच वस्तुओं की उपयोगिता मात्रानुसार बढते हुए क्रम में रखें। इस प्रकार उपयोगिताओं को रखने पर ज्ञात होता है कि प्रथम वस्तु से न्यूनतम उपयोगिता प्राप्त होगी, दूसरी वस्तु से प्रथम की तुलना में कुछ अधिक उपयोगिता प्राप्त होगी तथा अतिम वस्तु से सर्वाधिक उपयोगिता प्राप्त होगी। यदि हम इस क्रम को निम्न रूप में प्रस्तुत करे– 1,3,5,7, व 9 तो निश्चय ही उपयोगिता के सदर्भ में अधिक प्रभावी तथ्य हमारे समक्ष आएगा कि एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर जाने की स्थिति में उपयोगिता बढ जाती है। प्रो मेहता के अनुसार उपयोगिता के इस क्रम से जिसमें कि उपयोगिता मापनीय है, एक बात और स्पष्ट होती है कि हम यह कह सकते हैं कि पहली इकाई की तुलना में दूसरी से 3 गुना व तीसरी इकाई से 5 गुना उपयोगिता प्राप्त होती है।[36]

प्रो मेहता ने गणितीय दृष्टि से उपयोगिता को दो स्वरूपों के अतर्गत मापनीय सिद्ध किया है।[37]

1. रूपात्मक रूपान्तरण (Monotonic Transformation)

यदि हम विभिन्न वस्तुओं के स्थान पर एक ही वस्तु की विभिन्न इकाईयों को क्रमानुसार रखें तो हम कह सकते हैं कि एक वस्तु की सभी इकाइयों से प्राप्त होने वाली सीमात उपयोगिता धनात्मक है। उपर्युक्त उदाहरण के क्रम–1,3,5,7 व 9 से ज्ञात होता है कि सीमात उपयोगिता 2,2,2 व 2 होगी जो कि धनात्मक है। गणितीय भाषा में कहा जा सकता है कि जब सीमात उपयोगिता मापनीय है तो सीमात उपयोगिता का चिन्ह (धनात्मक या ऋणात्मक) निश्चित है।

2. रैखिक रूपान्तरण (Linear Transformation)

यदि हम उपभोग की जाने वाली वस्तु की क्रमानुसार उपयोगिता के सदर्भ में अधिक जानकारी रखते हैं। हम यह भी जानते हैं कि वस्तु की क्रमानुसार उपभोग की जाने वाली इकाइया बढती हुई उपयोगिता प्रदान करती है। उपयोगिताओं के मध्य इस प्रकार के सबध के प्रस्तुतीकरण हेतु इसे विशिष्ट प्रकार की श्रेणियों की आवश्यकता होगी। उदाहरण के लिए श्रेणिया है–

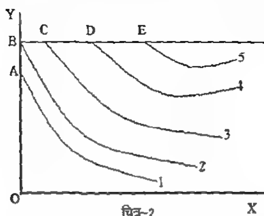
3	4	4
[redacted]	10	11
15	18	21
24	28	34
35	40	50

इन सभी तीनो श्रेणियो के अतर्गत सीमात उपयोगिताएँ बढती हुई है। यहाँ हम केवल यह ही नही जानते है कि सीमात उपयोगिता ऋणात्मक है या धनात्मक है अपितु यह भी जानते है कि यह सीमात उपयोगिता किस गति मे परिवर्तित हो रही है। तब हम यह भी जानते है कि सीमात उपयोगिताएँ घट रही है या बढ रही है। इन श्रेणियो की विशाल सख्या हो सकती है। गणितीय भाषा मे उपयोगिता रैखिक रुपान्तरण तक मापनीय है। प्रो मेहता के अनुसार इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यह (क्रमवाचक) दृष्टिकोण गणनावाचक दृष्टिकोण मे परिवर्तित हो गया है। हम केवल यह ही नहीं कह सकते कि एक की उपयोगिता अधिक है या दूसरी की अधिक है अपितु यह भी कह सकते हैं कि दोनो के मध्य क्या अतर है। हम सीमात उपयोगिताओ की परस्पर तुलना कर सकते हैं।

प्रो मेहता के अनुसार सत्य यह है कि उपयोगिता के सदर्भ मे चाहे गणनावाचक दृष्टिकोण हो या क्रमवाचक दृष्टिकोण हो वास्तविकता यह है कि उपयोगिता मापनीय है।

प्रो मेहता ने प्रो हिक्स व ऐलन द्वारा प्रस्तुत तटस्थता वक्र विश्लेषण के सदर्भ मे स्पष्ट मत व्यक्त किया है कि वास्तव मे इसी तथ्य पर आधारित है कि 'उपयोगिता मापनीय है' यद्यपि प्रो हिक्स स्वय के द्वारा प्रस्तुत तटस्थता वक्र विश्लेषण को अधिक श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं। उनका सिद्धात इस मान्यता पर आधारित है कि व्यक्ति के स्वय के अधिमान होते हैं। विभिन्न तटस्थता वक्र विभिन्न अधिमानो को दर्शाते हैं। एक व्यक्ति उसी तटस्थता वक्र को पसन्द करेगा जो मूल बिंदु से सापेक्षतया दूर हो। प्रो हिक्स का इस अधिमान के सदर्भ मे स्पष्ट तर्क है कि प्रत्येक ऊपर वाले तटस्थता पर नीचे वाले तटस्थता वक्र की तुलना मे वस्तु की मात्रा अधिक है।[38]

प्रो मेहता ने तटस्थता वक्र विश्लेषण को चित्र द्वारा समझाते हुए स्पष्ट किया है कि व्यक्ति द्वारा ऊपर वाले तटस्थता वक्र को अधिमान इसलिए प्रदान किया जाता है क्योकि उस पर वस्तु की मात्रा अधिक होने के कारण अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है यह तथ्य चित्र 2 से स्पष्ट है–[39]



चित्र–2

उपर्युक्त चित्र–2 के अंतर्गत कई तटस्थता वक्र दिए हुए हैं। एक उपभोक्ता तटस्थता वक्र–1 की तुलना में तटस्थता वक्र–2 पर उपभोग करना पसद करेगा क्योंकि तटस्थता वक्र–2 पर Y– वस्तु की OB मात्रा प्राप्त हो रही है जो कि तटस्थता वक्र–1 की OA मात्रा की तुलना मे AB मात्रा अधिक है।

इसी प्रकार उपभोक्ता तटस्थता वक्र–3 का चयन तटस्थता वक्र–2 की तुलना मे करेगा। तटस्थता वक्र–3 पर तटस्थता वक्र–2 की तुलना मे X वस्तु की BC मात्रा अधिक प्राप्त हो । प्रो मेहता के अनुसार BC मात्रा के समान तटस्थता वक्र–3 पर अधिक उपयोगिता मिलेगी और उपभोक्ता इसका चयन करेगा। प्रो मेहता के मत मे किसी वस्तु की अधिक मात्रा, अधिक उपयोगिता की परिचायक है और इस प्रकार प्रो हिक्स द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण किसी न किसी रूप मे यथार्थ को स्वीकार करता है कि उपयोगिता मापनीय है।

प्रो मेहता ने उपयोगिता की मापनीयता के पक्ष मे परेटो (Pareto) द्वारा प्रस्तुत कल्याणकारी अर्थशास्त्र (Welfare Economics) से सबद्ध विचारो की समुचित व्याख्या की है। उन्होने बताया कि डॉ ओ लागे (Dr O LANGE) द्वारा प्रस्तुत उपयोगिता फलन (Utility Function) भी उपयोगिता को मापनीय सिद्ध करता है।

कल्याण का अर्थशास्त्र (Welfare Economics)

प्रो मेहता के अनुसार समस्त अर्थशास्त्र को जितना हम जानते है, कल्याण का अर्थशास्त्र है व अवश्य होना भी चाहिये। यद्यपि इस सदर्भ अर्थशास्त्र को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है एक व्यक्तिगत अर्थशास्त्र (Economics of individuals) व दूसरा समाज का अर्थशास्त्र (Economics of society) है। कल्याण के आधार पर प्रथम व्यक्तिगत कल्याण का अर्थशास्त्र व द्वितीय सामाजिक कल्याण का अर्थशास्त्र होगा।

प्रो महता क अनुसार कल्याण का अर्थशास्त्र वस्तुत सामाजिक कल्याण का अथशास्त्र ही ह। सामाजिक कल्याण का परिभाषित करना अत्यत कठिन कार्य है। सामाजिक कल्याण व्यक्तियो के मस्तिष्क म निवास करता है। समाज का कोई मस्तिष्क नही हाना ह अत सामाजिक कल्याण का अनुभव व्यक्तियो द्वारा ही किया जाता है। इस प्रकार कल्याण व्यक्तिगत हा या सामाजिक उसका व्यक्तियो द्वारा ही अनुभव किया जाता ह।[1] व्यक्तियो का समूह ही समाज ह और इस प्रकार सामाजिक कल्याण निश्चय ही व्यक्तिगत कल्याण स सबद्ध हे।

प्रो महता के अनुसार सामाजिक कल्याण एक फलन है–व्यक्तियो के मस्तिष्क व उस वातावरण का जिसम व्यक्ति निवास करता हे। इस प्रकार एक व्यक्ति जब सामाजिक कल्याण का मापन करता है ता वह सामाजिक कल्याण वस्तुत दो तथ्यों पर निर्भर करता हे।[1]

1 वातावरण जिसम व्यक्ति निवास करता है तथा
2 व्यक्ति क मस्तिष्क का व्यवहार।

व्यक्ति के मस्तिष्क का व्यवहार उस समय हमारे समक्ष उपस्थित होता है जब वह व्यक्तियो के कल्याण की न्यायोचित समीक्षा करता है। यह व्यक्तियों का कल्याण ही समूह रूप मे सामाजिक कल्याण है।

प्रो जे क महता के मत में सामाजिक कल्याण का मापन विशुद्ध रूप से मानसिक व मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है अत इसके मापन का कोई निश्चित मानदड सभव नहीं है। लकिन प्रो मेहता के अनुसार फिर भी यह एक उपयोगी अवधारणा है। उनके अनुसार यदि हमारा मस्तिष्क कुछ सोचता है तथा सामाजिक कल्याण को मापता है तो निश्चय ही मापन या निष्कर्ष सवेदनशील व बुद्धिमतापूर्ण होगे और इस मापन का कुछ उपयोग किया जा सकता है ता यह महत्वहीन नहीं होगा। ओर भी इस प्रकार का मापन व्यावहारिक उद्देश्यो की पूर्ति हतु नीति निर्माताओ द्वारा उपयोग में लाये जा सकते हैं।[2]

प्रो मेहता ने सामाजिक कल्याण को किसी राष्ट्र के आर्थिक पुनर्निर्माण मे अत्यन्त उपयागी बताया है। उनके अनुसार यदि किसी राष्ट्र के आर्थिक पुनर्गठन का गहन विचार किया जाना प्रस्तावित हे प्रभावी रूप से वास्तव मे किया जा रहा है तो निश्चय ही यह सवेदनशील मस्तिष्क हमें बता सकता है कि नयी व्यवस्था के अतर्गत सामाजिक कल्याण होने वाला है या वास्तव मे हो चुका है। आवश्यक समको के दिये होने पर यह मस्तिष्क हम बता सकता है कि विभिन्न सम्भव आर्थिक पुनर्गठन के स्वरूप मे से कौनसा स्वरूप सामाजिक कल्याण म सर्वाधिक वृद्धि करेगा।

प्रो महता की दृष्टि म सामाजिक कल्याण के एक मानसिक व मनोवैज्ञानिक अवधारणा होने के कारण हम इसक लिए कोई वस्तुपरक माप तो प्रदान नहीं कर सकते लेकिन हम एक स्थिति के अतर्गत सामाजिक कल्याण की तुलना दूसरी स्थिति से कर

सकते हैं, और बता सकते हैं कि किस स्थिति मे सामाजिक कल्याण अधिक है और नीति निर्माताओ को इस अत्युपयोग ज्ञान की आवश्यकता होती है। प्रा मेहता के अनुसार यह सीमात सामाजिक कल्याण (Marginal social welfare) ही है। जिसकी कि हमे सार्थक उपयोगिता है। हमे यह जानने की आवश्यकता है कि सीमात सामाजिक कल्याण धनात्मक है या ऋणात्मक। यदि सीमात सामाजिक कल्याण धनात्मक है तो नीति वाछनीय है। हम इस नीति का अनुसरण करते हैं। हमारी नीति मे तब तक किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं होगी जब तक यह सीमात सामाजिक कल्याण शून्य (Zero) नही हो जाये। जब सीमात सामाजिक कल्याण शून्य होगा तभी सामाजिक कल्याण अधिकतम होगा और यही सर्वश्रेष्ठ स्थिति हैं।

लगान (Rent)

प्रो जे के मेहता ने लगान को आय नहीं माना है। उनके अनुसार 'लगान लागत के ऊपर एक अतिरेक है।'[43] (Rent is surplus above cost)। प्रो मेहता की दृष्टि मे जब एक उत्पादन का साधन केवल एक ही विशिष्ट उपयोग मे लाया जाता है तो उसको समस्त आय प्रकृति से एक अतिरेक (surplus) ही है। साधन के उपयोग मे निहित लागत या त्याग एक साथ समाप्त हो जाता है। यदि कोई एक ही प्रकार का कार्य करने मे सक्षम है तो निश्चय ही वास्तविक शाब्दिक अर्थ में कोई त्याग नहीं होगा और समस्त आय अतिरेक ही होगी और यह अतिरेक ही लगान है।

प्रो जे के मेहता के अनुसार यह असमव है कि कोई साधन निरपेक्ष रूप में केवल एक ही विशिष्ट उपयोग में प्रयुक्त होता है। अत किसी साधन की विशिष्टता व अतिविशिष्टता के मध्य अतर समझाना आवश्यक है। यह अतर किसी साधन के विशिष्ट होने या अतिविशिष्ट होने के साथ जुड़ा हुआ है। जब हम किसी साधन के विशेष पहलू को ध्यान मे रखते हैं तो उसकी समस्त आय प्रकृत्यनुसार अतिरेक या लगान होगी। किसी भी साधन मे इस अतिरेक या लगान की मात्रा साधन के विशिष्टता तत्त्व के साथ जुडी हुई है। जिस साधन की विशिष्टता का गुण जितना अधिक होगा, उस साधन को उतना ही अधिक अतिरेक या लगान प्राप्त होगा।[44]

प्रो मेहता के अनुसार अतिरेक या लगान या साधन की विशिष्टता एक सापेक्ष मूल्य है निरपेक्ष मूल्य नहीं है। अतिरेक सर्वदा दो मात्राओं के मध्य अतर का परिणाम है। लगान किसी साधन को प्राप्त होने वाली एक मात्रा है, जो कि इसके एक उपयोग की उत्पादकता के व दूसरे सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक उपयोग मे उत्पादकता के मध्य अतर है। इसी प्रकार अन्य उपयोगो में भी इसे ज्ञात किया जा सकता है।

प्रो जे के मेहता ने लगान के सदर्भ में निम्न तथ्य निष्कर्ष रूप मे प्रस्तुत किये हैं–[45]

1 लगान एक सापेक्ष अवधारणा (Relative Concept) है न कि एक निरपेक्ष अवधारणा (Absolute Concept)।

2 जब इसका अतिरेक के रूप म प्रयोग किया जाता है तो वास्तविक अर्थो में एक से अधिक परिणाम प्रस्तुत करने म सक्षम है।

3 प्रत्यक प्रकार की आय लगान या अतिरेक क रूप में प्रकट हो सकती है।

4 प्रत्यक प्रकार की आय के अतर्गत अतिरेक का तत्त्व पाया जाता है।

5 इस अतिरेक का मात्रात्मक मापन इस तथ्य पर निर्भर करता है कि हम लगान को एक साधन क लगान के रूप म ले रहे है या लगान वाले साधन के विशिष्ट उपयोग रूप मे ले रहे है।

6 हम इस अतिरक या लगान को किसी भी रूप में क्यो न ले रहे हो यह वस्तुत सामान्य या विशिष्ट उपयोग दोनो के ही अतर्गत साधन की विशिष्टता का ही परिणाम है।

लाभ (Profit)

प्रो ज के महता क अनुसार लाभ साहसी को जोखिम वहन करने के बदले में प्राप्त होन वाला प्रतिफल है। यह प्रावैगिक स्थिति में ही प्राप्त होता है। लाभ जोखिम वहन करन के बदल म या असामान्य व अप्रत्याशित प्राप्ति के रूप म ही होता है स्थैतिक स्थिति म प्राप्त नहीं हो सकता है। यदि हम यह कहते हैं कि स्थैतिक स्थितियो में लाभ प्राप्त होता है तो निश्चय ही हमारा ज्ञान अपूर्ण होगा। हमारे ज्ञान की अपूर्णता की मान्यता की स्थिति में ही स्थैतिक स्थिति में अल्पकाल व दीर्घकाल के मध्य अतर किया जा सकता है। प्रो मेहता के अनुसार यदि हम स्थैतिक स्थिति म अल्पकाल की बात कर रहे है तो वस्तुत यह प्रावैगिक स्थिति से स्थैतिक स्थिति में आने पर सक्रमण काल की स्थिति है। इस स्थैतिक स्थिति म साहसी को भविष्य म कोई अतर नहीं होता है और इस प्रकार किसी प्रकार के जोखिम की स्थिति शष नही रह जाती है। अत स्पष्ट है कि स्थैतिक स्थिति क अतर्गत लाभ की प्राप्ति नहीं होती।

प्रो महता के अनुसार कवल प्रावैगिक स्थिति म ही लाभ प्राप्त होता है। प्रावैगिक स्थिति क अतर्गत अल्पकाल हो या दीर्घकाल लाभ की प्राप्ति होती है। अल्पकाल के अतर्गत फर्म माग के अनुसार उत्पादन क पैमाने को समायोजित करने की स्थिति में नहीं होती अत इस अवधि म अनायास ही लाभ या हानि की स्थिति प्राप्त हो सकती है। गतिशील ससार में पूर्ण समायोजन दीर्घकाल म भी सभव नहीं है अत इस अवधि मे कीमत औसत लागत के समान नहीं हो पाती। जोखिम की स्थिति विद्यमान रहती है और इस प्रकार प्रावैगिक स्थिति म ही जोखिम वहन करने के बदले साहसी को लाभ की प्राप्ति होती है। लाभ सदैव अनिश्चित व अप्रत्याशित होता है।[14]

प्रतिनिधि फर्म (The Representative Firm)

सतुलन शब्द की सर्वश्रेष्ठ परिभाषा दी जा सकती है कि यह वह स्थिति है जिसमे उत्पादन के विस्तार व सकुचन की कोई प्रवृति न हो। इस प्रकार एक फर्म के सतुलन का आशय उस स्थिति से होगा जिसमें इसके विस्तार व संकुचन की कोई प्रवृत्ति न हो। उद्योग के सतुलन का आशय भी उस स्थिति से होगा जिसमे इसके उत्पादन मे कमी व वृद्धि की प्रवृत्ति न हो।"

प्रो जे के मेहता ने पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग के सतुलन को स्पष्ट करते हुए कहा कि सतुलन की स्थिति मे उत्पादन के विस्तार व सकुचन की कोई प्रवृत्ति नही होती। सतुलन की स्थिति मे निम्न से एक शर्त अवश्य पूरी होती है–[48]

1 जब व्यक्तिगत फर्म सतुलन की स्थिति मे होती है तो नई फर्मों के प्रवेश व पुरानी फर्मो के बर्हिगमन की कोई प्रवृत्ति नही होती है।

2 जब व्यक्तिगत फर्म में सतुलन की स्थिति नहीं होती और कुछ फर्मों के अवस्तिार व कुछ के सकुचन की स्थिति होती है तो उत्पादन परस्पर वृद्धि व कमी मे समायोजित होकर उतना ही रहता है तथा फर्मो की सख्या मे कोई कमी या वृद्धि नहीं होती।

3 जब फर्म सतुलन की स्थिति मे नहीं होती है। कुछ के विस्तार व कुछ के सकुचन की स्थिति होती है तथा कुछ बर्हिगमन करती है तब भी उत्पादन मे परस्पर समायोजन के कारण कोई वृद्धि या कमी नहीं होती।

इस प्रकार उद्योग के सतुलन हेतु सभी फर्मों का सतुलन आवश्यक नहीं है। उद्योग का सतुलन उस स्थिति मे भी हो सकता है जब फर्म उद्योग मे प्रवेश व बर्हिगमन कर रही हो। ऐसी स्थिति में उत्पादन परस्पर समायोजन के कारण पूर्व स्तर पर ही बना रहता है। उसमें विस्तार व सकुचन की कोई प्रवृत्ति नहीं होती। प्रो जे के मेहता ने सकुचन के आशय के उपर्युक्त परिपेक्ष्य में प्रतिनिधि फर्म की अवधारणा को प्रस्तुत किया है उनके द्वारा प्रस्तुत प्रतिनिधि फर्म वास्तविकता के अधिक निकट है, स्पष्ट है तथा तर्क सम्मत है।

प्रतिनिधि फर्म की अवधारणा को सर्वप्रथम प्रो मार्शल ने प्रस्तुत किया, प्रो मार्शल के अनुसार 'प्रतिनिधि फर्म वह फर्म है जिसका पर्याप्त जीवन है जो पर्याप्त सफल है जो सामान्य योग्यतानुसार व्यवस्थित है, जो आतरिक व बाहरी बचते दोनो ही सामान्यत प्राप्त कर चुकी है तथा जो उत्पादन की समग्र मात्रा से सबधित है।' [49]

प्रो मेहता के अनुसार प्रतिनिधि फर्म का न विस्तार होता है न सकुचन होता है। जबकि अन्य फर्मों के उत्पादन मे वृद्धि या कमी हो सकती है। प्रो मार्शल द्वारा प्रस्तुत प्रतिनिधि फर्म के निम्न दो वास्तविक दोष हैं–

1 मार्शल ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि उनकी यह अवधारणा स्थैतिक स्थिति के लिए है या प्रावैगिक स्थिति के लिए है या दोनो के लिए है।

। यह मान्यता गलत है कि प्रतिनिधि फर्म सदैव सतुलन की स्थिति में होती है इसे वस्तुत उद्योग का प्रतिनिधित्व करना चाहिये। उद्योग के विस्तार के साथ इसका विस्तार होना चाहिये व सकुचन के साथ सकुचन होना चाहिये। प्रो पीगू (Prof PIGOU) ने भी मार्शल द्वारा प्रस्तुत प्रतिनिधि फर्म की व्याख्या पर प्रहार किया तथा स्पष्ट शब्दों में कहा कि यह प्रतिनिधि फर्म नहीं है अपितु एक सतुलन फर्म (Equilibrium firm) है।

प्रो जे के मेहता ने प्रतिनिधि फर्म की प्रो मार्शल द्वारा प्रस्तुत अवधारणा को भ्रामक व अस्पष्ट बताया है तथा इसे नवीन मौलिक रूप में प्रस्तुत किया। उनकी अवधारणा में प्रो मार्शल की अवधारणा के दोषों का निवारण किया गया है।

प्रो मेहता के अनुसार प्रतिनिधि फर्म वह फर्म है जो उद्योग का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है। जब उद्योग का विस्तार हो रहा होता है तब इसका विस्तार होता है व उद्योग के सकुचन की स्थिति में इसका सकुचन होता है।

(A Representative Firm is that firm which represents the industry fully That is it expands when the industry is expanding and contracts when the industry is contracting)

प्रो मेहता की प्रतिनिधि फर्म के सन्दर्भ में निम्न दो तथ्य उल्लेखनीय हैं–

1 प्रो मेहता द्वारा प्रस्तुत प्रतिनिधि फर्म प्रो मार्शल की प्रतिनिधि फर्म की भाति सदैव सतुलन की स्थिति में नहीं होती। यह तो सपूर्ण समय समस्त उद्योग की प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है।

2 प्रो मेहता द्वारा प्रस्तुत प्रतिनिधि फर्म केवल दीर्घकालीन प्रावैगिक स्थिति में कीमत निर्धारण में सहायता प्रदान करती है। दीर्घकालीन स्थैतिक स्थिति का यहाँ कोई महत्त्व नहीं है।

प्रो मेहता की परिभाषा से स्पष्ट है कि उद्योग के विस्तार व सकुचन के साथ फर्म का भी विस्तार व सकुचन होता है। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जब प्रतिनिधि फर्म का विस्तार होता है तो उद्योग का भी विस्तार हो रहा होता है तथा इसके सकुचन की स्थिति में उद्योग भी सकुचित होता है। प्रतिनिधि फर्म के विस्तार की स्थिति में नवीन ससाधन उद्योग में प्रवेश करते हैं ताकि इसके सकुचन की स्थिति में ससाधन बाहर चले जाते हैं। यह कहना न्याय सम्मत होगा कि उद्योग के अतर्गत प्रतिनिधि फर्म सभी फर्मों के लिए आकर्षण का केन्द्र है। उद्योग के अतर्गत प्रवेश करने वाली अन्य फर्मों के लिए भी यह आकर्षण का केन्द्र बिन्दु है। प्रतिनिधि फर्म की औसत लागत कीमत निर्धारण करती है।

जब प्रतिनिधि फर्म का विस्तार हो रहा होता है तो उद्योगों के अतर्गत नयी फर्मों के प्रवेश की प्रवृत्ति होगी व उद्योग का विस्तार होगा। इसका परिणाम कीमत में कमी

होगी। कीमत में कमी से फर्मों के विस्तार की प्रवृत्ति कमजोर हो जायेगी। स्थायित्व की स्थिति तब आयेगी जब प्रतिनिधि फर्म के विस्तार की प्रवृत्ति शेष नहीं रह जायेगी। इस स्थिति के अतर्गत कीमत प्रतिनिधि फर्म की ओसत लागत के बराबर हो जायेगी । सकुचन की स्थिति में इसके विपरीत स्थिति होगी। प्रतिनिधि फर्म के सकुचन की स्थिति मे कीमत इसकी औसत लागत की तुलना मे कम हो जाती है। कुछ फर्म उद्योग से बाहर चली जाती है। पुन कीमत प्रतिनिधि फर्म की ओसत लागत के बराबर हो जाती है। प्रतिनिधि फर्म पुन सतुलन की स्थिति को प्राप्त हो जायेगी। उद्योग में सतुलन की स्थिति होगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि कीमत मे उतार–चढाव हो सकता है परन्तु अतत यह प्रतिनिधि फर्म की औसत लागत के बराबर होगी।

प्रो मेहता ने स्पष्ट किया कि प्रतिनिधि फर्म व प्रतिनिधि फर्म की औसत लागत भी सदैव स्थिर नहीं रहती ये परिवर्तित हो सकती है। लेकिन कीमत की प्रवृत्ति सदैव प्रतिनिधि फर्म की औसत लागत के बराबर होने की रहती है। इस प्रकार यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि प्रतिनिधि फर्म की औसत लागत ही कीमत का निर्धारण करती है।

उपर्युक्त विवरण को गणितीय भाषा मे प्रस्तुत किया जा सकता है। माग और पूर्ति की परस्पर क्रिया द्वारा कीमत का निर्धारण होता है । माग को स्थिर लिया जाता है तथा पूर्ति लागत पर निर्भर करती है। यह व्यक्तिगत फर्म की लागत नहीं है अपितु समस्त उद्योग की लागत है। बहुत–सी फर्मो की औसत लागत, उद्योग की औसत लागत से कम या अधिक हो सकती है। लेकिन एक फर्म अवश्य होगी जिसकी औसत लागत उद्योग की औसत लागत के समान होगी यह फर्म ही प्रतिनिधि फर्म है। चूँकि इस फर्म की लागत, उद्योग की लागत के समान है अत यह कहना न्यायसम्मत होगा कि इसकी औसत लागत कीमत का निर्धारण करेगी।

सार्वजनिक वित्त (Public Finance)

प्रो जे के मेहता ने सार्वजनिक वित्त से सबद्व प्रत्येक क्षेत्र पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने सार्वजनिक वित्त की परिभाषा के साथ इसके प्रत्येक अग पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। सार्वजनिक वित्त पर प्रो मेहता के विचारों को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. सार्वजनिक वित्त की परिभाषा

'सार्वजनिक (Public) व वित्त (Finance) दोनों को मिलाकर सयुक्ताक्षर 'सार्वजनिक वित्त ' बना है। प्रो. मेहता के अनुसार सार्वजनिक वित्त किसी सार्वजनिक सस्था के वित्तीय सबधो से सबद्ध है। और इस प्रकार सार्वजनिक वित्त का विज्ञान किसी सार्वजनिक सस्था द्वारा वित्तीय ससाधनो की प्राप्ति व उपयोग से सबद्ध सिद्धातो का अध्ययन करता है।[*]

प्रो. मेहता द्वारा प्रदत्त परिभाषा सार्वजनिक वित्त के क्षेत्र को बहुत अधिक व्यापक बना देती है। सार्वजनिक सस्थाओं के अतर्गत राज्य के अतिरिक्त और भी सस्थाएँ जैसे

स्थूल क्लब संयुक्त पूजी कपनी आदि भी सम्मिलित हो जाती है। लेकिन प्रो मेहता ने स्पष्ट किया है कि सार्वजनिक शब्द का यहा आशय राज्य से है। इस प्रकार यह राज्य के वित्तीय ससाधन व इसके उपयोग का अध्ययन करता है।

2 सार्वजनिक आय

प्रो मेहता के अनुसार आय साधन है व सार्वजनिक वस्तु (Public Good) साध्य है। राज्य अपनी समस्त गतिविधिया इस प्रकार लागू करता है ताकि सामाजिक कल्याण मे वृद्धि हो सके। आधुनिक आर्थिक सन्दर्भ में ये गतिविधिया मुद्रा द्वारा भली–भाति सम्पन्न की जा सकती है। यह सार्वजनिक आय को बढाते हुए वह इसका उपयोग सेवाओं के निष्पादन व समाज के लाभ मे करते हुए होती है। एतदर्थ ही करारोपण किया जाता है। अधिक विस्तृत व स्पष्ट शब्दों में सार्वजनिक व्यय हेतु सार्वजनिक आय प्राप्त की जाती है। सार्वजनिक व्यय निश्चित ही समाज के लिए लाभप्रद है तथा दूसरी ओर सार्वजनिक आय मे हानि होती है। यदि इसका विशुद्ध परिणाम कल्याण मे वृद्धि है तो निश्चय ही राज्य द्वारा किया गया यह कार्य न्यायोचित होगा।[3]

प्रो मेहता ने प्रो पीगू द्वारा प्रदत्त सार्वजनिक आय के न्यूनतम त्याग के सिद्धात व प्रो अदारकर (Prof ADARKAR) के विचारो से असहमति व्यक्त करते हुए सार्वजनिक वित्त आय का उचित सिद्धात प्रतिपादित किया है। प्रो मेहता के शब्दो मे हमें सार्वजनिक आय की नियोजन अवस्था व आय म वास्तविक वृद्धि के मध्य अतर करना होगा। जब हम सार्वजनिक आय के नियोजन के सदर्भ मे सोचते हैं तो निश्चय ही यह सोचते हे कि कितनी मुद्रा बढायी जानी चाहिये। निश्चय ही हम यह ध्यान रखते हैं कि मुद्रा को किस प्रकार खर्च किया जायेगा ओर यह किस प्रकार जनता के कल्याण को प्रभावित करेगी। जब हम सोचते हैं कि मुद्रा किस प्रकार बढे तो निश्चय ही सार्वजनिक व्यय से असबद्ध हमारा मत हो सकता है।[34]

प्रो जे.के. मेहता ने सार्वजनिक आय को चार भागो मे वर्गीकृत किया है–[35]

1 कर (Taxes)

2 शुल्क (Fees)

3 (Duties)

4 विविध स्त्रोत जैसे उपहार (Gift) दड (Fines) विशेष निर्धारण (Special Assessement) आदि।

▫ सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure)

प्रो मेहता के अनुसार सार्वजनिक व्यय का सार्वजनिक वित्त मे वही स्थान हे जो कि अर्थशास्त्र के अध्ययन म उपभोग का है। जिस प्रकार समस्त गतिविधियों का अत है उसी प्रकार सार्वजनिक व्यय समस्त वित्तीय गतिविधिया का अत है। सार्वजनिक व्यय अतिम ध्येय (Final end) नही है अपितु यह राज्य द्वारा समाज का समर्पित सेवाओ के

रूप मे एक साधन (Means) है। यह वस्तुत राज्य द्वारा प्राप्त आय के व्यय को दर्शाता है। और इस प्रकार यह कुछ उपयोगिता प्राप्ति हेतु उत्पादन क्रिया है।

प्रो मेहता के अनुसार जिस प्रकार व्यक्ति मुद्रा खर्च करता है उसी प्रकार राज्य भी अपनी आय खर्च करता हे। इस प्रकार किसी भी समय दो अभिकर्ताओ द्वारा वित्तीय ससाधन खर्च किये जाते हें। ये अभिकर्त्ता है जनता व राज्य । राज्य जनता द्वारा मिलकर बना है अत यह कहा जा सकता है कि जनता अपने वित्तीय ससाधनो को दो प्रकार से खर्च कर सकती है–

1 निजी रूप मे तथा, 2 सार्वजनिक रूप मे

प्रो मेहता के अनुसार यदि हम इसी दृष्टि से विचार करें तो निजी व सार्वजनिक व्यय के मध्य अतर की प्रकृति को समझने में सहायता मिलेगी। सार्वजनिक व्यय व्यक्तियों की उन आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए किया जाता है जिसे व्यक्ति व्यक्तिगत रूप में कुशलता पूर्वक पूरा नहीं कर सकता । जनता को अपनी कुछ निश्चित आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु परस्पर सहयोग करना होता है। सार्वजनिक व्यय इस प्रकार की प्रकृति का होता है जो व्यक्तियो द्वारा कुशलतापूर्वक नही किया जा सकता।[36]

प्रो मेहता ने सार्वजनिक व्यय को नवीन रूप मे दो भागों मे विभाजन किया है।[37]

1. स्थिर व्यय (Constant Expenditure) स्थिर सार्वजनिक व्यय वह व्यय है जो जनता को जनता द्वारा इस सेवा के उपभोग के अनुसार निर्धारित नही होता अर्थात् यदि जनता इस सेवा का उपयोग कम करे तो यह कम नहीं होता तथा अधिक उपयोग किये जाने पर बढता नहीं। इसका सर्वोत्तम उदाहरण प्रतिरक्षा व्यय (Difence Expenditure) है यह व्यक्तिगत उपयोग के आधार पर निश्चित नहीं होता है।

2. परिवर्तनशील व्यय (VarIabal Expenditure) परिवर्तनशील व्यय वह व्यय हे जो व्यक्तियो द्वारा सेवा के उपयोग द्वारा प्रभावित व निर्धारित होता है। यदि सार्वजनिक सेवा का उपयोग अधिक किया जाता है तो सावजनिक व्यय बढ जाता है दूसरी ओर यदि सार्वजनिक सेवा का उपयोग कम किया जाता है तो सार्वजनिक व्यय कम हो जाता है। इस व्यय के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं– डाकघर सेवाओं पर व्यय न्यायिक अदालतो पर व्यय, सार्वजनिक उपक्रमो पर व्यय आदि।

4. सार्वजनिक ऋण (Public Debt)

सार्वजनिक ऋण के सदर्भ में प्रो मेहता के विचार सत्यता के परिचायक हैं। उनके अनुसार जब व्यक्ति मुद्रा उधार लेना प्रारभ करता है तो यह उसकी आदत बन जाती है। वह अपनी आर्थिक स्थिति को ध्यान मे रखे बिना ऐसा करता है। यही भय राज्यो के सदर्भ में भी व्याप्त रहता है। किसी भी राज्य की सरकार का गठन वहाँ रह रही जनता द्वारा होता है। सरकार द्वारा ऋण लेना एक आदत बन जाती है और यह एक गभीर खतरा है।

प्रो जे के मेहता के अनुसार एक राष्ट्र का सार्वजनिक ऋण इसकी अर्थव्यवस्था को दो प्रकार से प्रभावित करता है

1 जब सरकार द्वारा मुद्रा वृद्धि हेतु ऋण लिया जाता है तो जनता अपने बजट समायोजित करती है जब सरकार कर (Taxes) लगाती है तो जनता कर चुकाने के लिए अपने व्यय मे कटौती करती है लेकिन जब उतनी ही मात्रा राज्य द्वारा ऋण के रूप में वसूल की जाती है तो जनता सामान्यत खर्च म कटौती नही करती है वरन् अपनी पुरानी व वर्तमान बचत द्वारा जारी ऋण पत्र क्रय करती है। यह सार्वजनिक ऋण का प्रथम व तुरन्त प्रभाव है।

2 द्वितीय प्रभाव सार्वजनिक ऋण का दूरगामी प्रभाव है। इसके अतर्गत लिये गये सार्वजनिक ऋण का जनता पर होन वाले व्यय की स्थिति मे पहुचने वाला लाभकारी प्रभाव समाहित है। यह वस्तुत इस तथ्य से सबद्ध है कि सार्वजनिक ऋण का उपयोग किस प्रकार किया जाता है। प्रो मेहता का स्पष्ट मत है कि सार्वजनिक ऋण का उपयोग उत्पादन कार्यो मे किए जान पर ही सार्वजनिक ऋण का लाभकारी प्रभाव सभव है। इस सदर्भ मे उन्होने सार्वजनिक ऋण का उत्पादन उपभोग वितरण निजी उद्योग बचत ब्याज की दर पर पड़ने वाले प्रभाव का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाता है।

5 वित्तीय प्रशासन (Financial Administration)

प्रो मेहता ने वित्तीय प्रशासन को सार्वजनिक वित्त का चतुर्थ व अतिम अग निरूपित करते हुए इसकी महत्ता सिद्ध की है। उनके अनुसार राज्य की विभिन्न वित्तीय गतिविधियो के सचालन हेतु एक सरकारी तत्र की आवश्यकता है। इस वित्तीय प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य बजट तैयार करना है यह बजट सार्वजनिक आय सार्वजनिक व्यय सार्वजनिक ऋण का बजट है। प्रत्येक राज्य मे एक सस्था है जो यह निश्चय करती है कि क्या गतिविधिया सपन्न की जाएगी और वर्ष के अतर्गत उसकी क्या मात्रा होगी। इस प्रकार वित्तीय प्रशासन के अतर्गत सपूर्ण बजट प्रक्रिया समाहित है।

सैद्धातिक अध्ययन की दृष्टि से वित्तीय प्रशासन के अतर्गत हम उन आधारभूत सिद्धातो का अध्ययन करते हैं जिनके आधार पर वित्तीय गतिविधिया सपन्न होती है। इसके अतर्गत वित्तीय प्रशासन की ऐतिहासिक विवेचना भी की जा सकती है तथा एक देश की दूसरे देश से तुलना भी की जाती है। अन्य शब्दो मे वित्तीय प्रशासन को सफल बनाने हेतु सभव प्रयास किय जाते हैं।

इस प्रकार प्रो जे के मेहता का स्थान आधुनिक भारतीय अर्थशास्त्रियो मे सर्वोपरि है। प्रो मेहता द्वारा प्रस्तुत विचारो का अध्ययन समस्त विश्व मे अर्थशास्त्र के मनीषियो द्वारा सुरुचि पूर्वक किया जाता है। उनके द्वारा लिखित ग्रन्थ अर्थशास्त्र विषय को अप्रतिम देन है। प्रो मेहता वस्तुत अर्थशास्त्र के विद्यार्थी थे । उन्हने अर्थशास्त्र के सिद्धातों का गहन अध्ययन किया व उनके अतर्गत आवश्यक व महत्वपूर्ण सशोधन किये। उन्होने अर्थशास्त्र के अतर्गत गणित का प्रयोग कर इसे और अधिक व्यावहारिक बनाने का सफल प्रयास किया ।

प्रो मेहता ने भारतीय संस्कृति व आध्यात्मिक परम्परा का निर्वाह करते हुए इसके उच्च मूल्यो को अर्थशास्त्र मे समाविष्ट किया। उन्होने यह कार्य अर्थशास्त्र के सिद्धातो मे आवश्यक संशोधन करते हुए किया। ऐसा करते समय उन्होने अर्थशास्त्र के सिद्धातों को और अधिक सशक्त रूप में प्रस्तुत किया। भारतीय दर्शन के मूलाधार–समस्त दु खो का आत्यन्तिक निवारण व निरतिशय सुख की प्राप्ति का मार्ग आवश्यकता विहीनता की स्थिति की प्राप्ति के रूप में प्रस्तुत किया। यह आवश्यकता विहीनता की स्थिति ही प्रो मेहता के अनुसार पूर्ण व निरपेक्ष सतुलन है जिसकी प्राप्ति अर्थशास्त्र का अतिम लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु ही मानव व्यवहार का अध्ययन अर्थशास्त्र की विषय–वस्तु है। इसी परिपेक्ष्य में प्रो मेहता ने अर्थशास्त्र को परिभाषित किया।

प्रो जे के मेहता के सदर्भ में यह कहना कोई अतिशयोक्ति नही होगी कि उन्होने अर्थशास्त्र विज्ञान के अतर्गत भारतीय सास्कृतिक व दार्शनिक मूल्यो की प्राण प्रतिष्ठा की।

प्रो जे के मेहता ने विशुद्ध अर्थशास्त्र के स्थान पर व्यावहारिक अर्थशास्त्र को, व्यष्टि अर्थशास्त्र के स्थान पर समष्टि अर्थशास्त्र को, स्थैतिक अर्थशास्त्र के स्थान पर प्रावैगिक अर्थशास्त्र को तथा वास्तविक अर्थशास्त्र के स्थान पर आदर्शात्मक अर्थशास्त्र को वरीयता प्रदान की। उनके द्वारा प्रस्तुत प्रतिनिधि फर्म की अवधारणा मार्शल की प्रतिनिधि फर्म की अवधारणा पर एक सुधार है। उनके द्वारा प्रस्तुत सार्वजनिक आय व सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरण अधिक व्यावहारिक व समीचीन है वस्तुत उन्होने अर्थशास्त्र के प्रत्येक क्षेत्र के अतर्गत जो योगदान दिया वह अतुलनीय है।

संदर्भ

1 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी, पृष्ठ 1
- जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी, पृष्ठ 1
3 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी पृष्ठ 2
4 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी, पृष्ठ 2
■ गाँधी – हिन्द स्वराज्य, पृष्ठ 44–45
6 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी पृष्ठ 3
7 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी, पृष्ठ 5
8 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी, पृष्ठ 7
9 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी पृष्ठ 9
10 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी, पृष्ठ 10
11 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी, पृष्ठ 10
12 जे के मेहता – लेक्चर्स आन मॉडर्न इकॉनामिक्स, पृष्ठ 8
13 राबिन्स एल–एन ऐसे ऑन दी नेचर एण्ड सिग्निफिकेन्स ऑफ दी इकॉनॉमिक्स, पृष्ठ16

14 हितोपदेश निज लाभ – श्लोक सख्या 184
15 भृर्तहरी नीति शतक – श्लोक सख्या
16 हितोपदेश निज लाभ – श्लोक सख्या 140
17 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी पृष्ठ 17
18 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी पृष्ठ 17
19 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी पृष्ठ 19
20 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी पृष्ठ 19
21 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी, पृष्ठ 22
22 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी पृष्ठ 24
23 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी, पृष्ठ 25
24 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी पृष्ठ 25
25 जे के मेहता – लेक्चर्स आन मॉडर्न इकानामिक्स पृष्ठ 1
26 जे के मेहता – लेक्चर्स आन मॉडर्न इकॉनामिक्स पृष्ठ 1
27 जे के मेहता – लेक्चर्स आन मॉडर्न इकॉनामिक्स, पृष्ठ 3
28 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी पृष्ठ 141
29 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी, पृष्ठ 142
30 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनॉमिक थ्योरी पृष्ठ 143
31 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी पृष्ठ 144
32 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी पृष्ठ 132
33 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी पृष्ठ 133
34 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी पृष्ठ 136
35 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी, पृष्ठ 29
36 जे के मेहता – एडवान्सड इकॉनामिक थ्योरी पृष्ठ 50
37 जे के मेहता – लेक्चर्स आन मॉडर्न इकॉनामिक्स, पृष्ठ 51
38 जे के मेहता – लेक्चर्स आन मॉडर्न इकॉनामिक्स, पृष्ठ 54
39 जे के मेहता – लेक्चर्स आन मॉडर्न इकॉनामिक्स पृष्ठ 55
40 जे के मेहता – लेक्चर्स आन मॉडर्न इकॉनामिक्स पृष्ठ 57
41 जे के मेहता – लेक्चर्स आन मॉडर्न इकॉनामिक्स, पृष्ठ 58
42 जे के मेहता – लेक्चर्स आन मॉडर्न इकॉनामिक्स पृष्ठ 59
43 जे के मेहता – लेक्चर्स आन मॉडर्न इकॉनामिक्स पृष्ठ 240
44 जे के मेहता – लेक्चर्स आन मॉडर्न इकॉनामिक्स पृष्ठ 237
45 जे के मेहता – लेक्चर्स आन मॉडर्न इकॉनामिक्स पृष्ठ 238
46 जे के मेहता – लेक्चर्स आन मॉडर्न इकॉनामिक्स पृष्ठ 114
47 जे के मेहता – लेक्चर्स आन मॉडर्न इकॉनामिक्स पृष्ठ 174

48 जे के मेहता – लेक्चर्स आन मॉडर्न इकॉनामिक्स, पृष्ठ 175
49 मार्शल – प्रिन्सिपल्स ऑफ इकॉनामिक्स पृष्ठ 318
50 जे के मेहता (Edited by)– फन्डामेन्टल्स ऑफ इकॉनामिक्स, पृष्ठ 360
51 जे के मेहता (Edited by) – फन्डामेन्टल्स ऑफ इकॉनामिक्स, पृष्ठ 318
52 मेहता, जे के, अग्रवाल, एस एन – पब्लिक फाइनेन्स – थ्योरी एड प्रेक्टिस, पृष्ठ 3
53 जे के मेहता (Edited by)– फन्डामेन्टल्स ऑफ इकॉनामिक्स पृष्ठ 635
54 जे के मेहता , अग्रवाल, एस एन – पब्लिक फाइनेन्स – थ्योरी एड प्रेक्टिस, पृष्ठ 46
55 जे के मेहता (Edited) – फन्डामेन्टल्स ऑफ इकॉनामिक्स, पृष्ठ 632
56 जे के मेहता, अग्रवाल, एस एन–पब्लिक फाइनेन्स – थ्योरी एड प्रेक्टिस, पृष्ठ 21
57 जे के मेहता , अग्रवाल, एस एन – पब्लिक फाइनेन्स – थ्योरी एड प्रेक्टिस, पृष्ठ 40
58 जे के मेहता अग्रवाल, एस एन – पब्लिक फाइनेन्स – थ्योरी एड प्रेक्टिस, पृष्ठ 125

प्रश्न

1 प्रो जे के मेहता द्वारा लिखित प्रमुख पुस्तको का नाम लिखिए ?
2 प्रो मेहता ने समस्त दु खो का मूल कारण किसे माना है ?
3 प्रो मेहता द्वारा प्रदत अर्थशास्त्र की परिभाषा लिखिए ?
4 प्रो मेहता तथा प्रो रॉबिन्स की अर्थशास्त्र की परिभाषाओं की तुलना कीजिए ?
5 प्रो जे के मेहता के आवश्यकता के सम्बध में विचारों को स्पष्ट लिखिए ?
6 प्रो मेहता के व्यष्टि एव समष्टि, स्थैतिक एव प्रावैगिक तथा कल्याण का अर्थशास्त्र के सम्बध मे व्यक्त किये गये विचारो को लिखिए ?
7 प्रो जे के मेहता के सार्वजनिक वित्त सम्बधी विचारो की व्याख्या किजिए ?
8 निम्न पर टिप्पणी लिखिए –
(i) प्रतिनिधि फर्म
(ii) कल्याण का अर्थशास्त्र
(iii) उपयोगिता का माप
(iv) विकासात्मक अर्थशास्त्र
(v) विशुद्ध व व्यावहारिक अर्थशास्त्र
(vi) चेतन व अचेतन आवश्यकताएं



23

चरणसिंह

(Charan Singh 1902-1987)

जीवन परिचय – चौधरी चरणसिंह का जन्म 23 दिसम्बर 1902 में मेरठ जिले के नुरपुर में एक किसान परिवार में हुआ। उन्होंने मैट्रिक परीक्षा राजकीय हाईस्कूल मेरठ से पास की। बी.एस.सी. करने के बाद उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से एम.ए. की डिग्री प्राप्त की और आगरा विश्वविद्यालय से ही लॉ करके मेरठ में वकालत करने लगे। 1925 में उनका गायत्री देवी से विवाह सम्पन्न हुआ। तिलक एवं गाँधीजी की प्रेरणा पाकर चरणसिंह स्वतंत्रता आन्दोलन में कूदे और कई बार जेल भी गये। 1929 में चौधरी जी कांग्रेस में शामिल हुए। आजादी से पूर्व उत्तर प्रदेश विधान सभा के चुनाव में छपरौली से जीतकर पहुंचे। इस स्थान से चरणसिंह लगातार पाँच बार विधायक चुने गये। उत्तर प्रदेश सरकार में चौधरी 1946 में शामिल हुए। 1967 में चन्द्रभानु गुप्त मंत्रिमंडल को हटाकर मुख्यमंत्री बनने तक न्याय सूचना कृषि स्वास्थ्य राजस्व परिवहन इत्यादि प्रमुख विभागों को कुशलता से सम्भाल चुके थे। वे दुबारा 1970 में पुनः उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बने। 29 अगस्त 1974 में उन्होंने भारतीय लोकदल की स्थापना की। आपातकाल के बाद सभी गैर कांग्रेसी दलों (साम्यवादियों को छोड़कर) के विलय से जनता पार्टी का गठन हुआ जिसमें चौधरी जी की निर्णायक भूमिका रही। 1977 के चुनावों में सफलता मिलने पर वे मोरारजी देसाई मंत्रीमंडल में गृहमंत्री व उपप्रधानमंत्री बने। बाद में अगस्त 1979 को देसाई सरकार को हटाकर स्वयं देश के प्रधानमंत्री बने परन्तु कांग्रेस का समर्थन न मिलने के परिणामस्वरूप मध्यावधि चुनाव हुए वे जनवरी 1980 तक इस पद पर रहे। उनकी मृत्यु मई 1987 में हुई।

चरणसिंह समूचे भारत के किसानों के प्रतिनिधि नेता थे। उन्होंने जीवन भर अपनी छवि किसान नेता से अलग हटकर नहीं बनने दी। इसी वजह से चौधरी साहब जहाँ कहीं जाते तो लाखों की संख्या में किसान उनके मुंह से उनकी बात सुनने को आतुर रहते थे। यह आश्चर्यजनक ही कहा जायेगा कि बगैर किसी मजबूत संगठन के एक व्यक्ति आधे भारत में सत्तारूढ़ दल के सामने चेतावनी खड़ी करने में सफल रहा।

चौधरी जी को जाट नेता के रूप में मान्यता मिली लेकिन इतना ही बड़ा सच है कि कभी उन्होंने जाट संस्थाओं के कार्यक्रमों में शिरकत नहीं की। और ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता कि किसी पद पर पहुंच कर उन्होंने कभी जातिवादी रवैया अपनाया हो।

चरणसिह के साथ त्रासदी यह रही कि कभी भी वे किसी एक पार्टी को लगातार बनाये नहीं रख सके। काग्रेस से राजनीतिक जीवन शुरूआत करने के बाद भारतीय क्राति दल, भारतीय लोकदल, जनता पार्टी, दमकिपा लोकदल आदि दल बनाते रहे। चरणसिह लोकसभा से भी दूर नहीं थे। आपातकाल के बाद 1977 के चुनावो मे जनता पार्टी को विजय मिलने पर मोरारजी देसाई देश के प्रधानमत्री एव चरणसिह गृहमत्री बने। परन्तु उनके मन में प्रधानमत्री बनने का महत्वाकाक्षी सपना था, और इसी सपने ने जनता पार्टी के प्रयोग को चकनाचूर कर दिया।

वे साफ दिल के थे। इसलिए सबका विश्वास कर लेते थे। उन्होंने यह कभी नहीं सोचा होगा कि वे प्रधानमत्री सिर्फ इसलिए बनाये जा रहे हैं कि काग्रेस जनता पार्टी को तोडना चाहती थी । राजनारायण द्वारा खेले गये खेल मे चरणसिह की छवि काफी धुमिल हुई। इसके बाद उन्होंने काग्रेस (स) फिर दलित मजदूर किसान पार्टी और पुन लोकदल बनाकर अपने समर्थकों को हमेशा जुटाये रखा।

उनके जीवन से एक बडी शिक्षा ली जा सकती है वह है– सार्वजनिक जीवन से भ्रष्टाचार के खात्में की । वे स्वय पाक–साफ रहे और उत्तर प्रदेश में मत्री एव मुख्यमत्री बनने पर भ्रष्टाचार समाप्त करने के प्रयास किये। लोकतत्र मे वशवाद के कट्टर विरोध का इससे बडा उदाहरण क्या मिलेगा कि होश रहते हुए उन्होंने अजीतसिंह को राजनीति में प्रश्रय नही दिया।

चरणसिह ने खेत–खलिहानो के महत्व के साथ स्वदेशी भावना का परिपालन कर, उनकी स्मृति को जनजीवन मे बनाएँ रखा।

चौधरी चरणसिह मूलत गॉधीवादी विचारक थे। अपने आर्थिक विचारों में चरणसिह ने महात्मा गॉधी की भारत के लिए आर्थिक नीति को ही समझाने का प्रयास किया है। उनके अनुसार देश के राजनीतिक नेता एक और तो महात्मा गाँधी को राष्ट्रपिता कहते आयें हैं। आजादी की लडाई में उनकी भूमिका को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते रहे हैं, पर दूसरी तरफ उनके आर्थिक दर्शन की उपेक्षा करते आये हैं इनकी इस दुहरी नीति का ही नतीजा है कि आजादी के इतने वर्ष बाद भी हमारा देश गरीब है। हजारो लोग प्राकृतिक आपदाओ के मौत के मुँह मे चले जाते हैं। लाखो बच्चे एव बूढे कुपोषण का शिकार हो जाते हैं। अशिक्षा तथा बेरोजगारी हमारी व्यवस्था के अग बन गये हैं। आजाद भारत मे रिश्वतखोरी का दानव रात–दिन ताकतवर होता जा रहा है। इसका सिर्फ एक कारण है और वह है, हमारे नीति निर्माताओ द्वारा गलत आर्थिक नीति को अपना लेना अर्थात गॉधी द्वारा प्रतिपादित कृषि तथा लघु–उद्योग विकास की नीति को ठुकरा कर भारी उद्योगो के विकास की नीति को स्वीकार करना।

चरणसिह के अनुसार स्वतत्र भारत को विरासत में चार समस्याएँ मिली है, जिनका आपस में सम्बंध है, ये समस्याएँ–गरीबी, बेरोजगारी और कम रोजगार,

वैयक्तिक आय मे भारी असमानताएँ और कठिन काम न करने की प्रवृति है। ये सभी समस्याएँ जीवन के गलत दर्शन से उत्पन्न हुई । लम्बे अर्से तक विदेशी अथवा अल्पसंख्यको का शासन रहा। स्वतत्रता प्राप्ति से भी इन समस्याओ का निराकरण नही हुआ। इसके विपरीत इन समस्याओ का विकराल रूप होता गया है । इनके साथ ही राजनीतिक एव प्रशासनिक क्षेत्रो के उच्च पदाधिकारियो मे भी प्रत्येक प्रकार का भ्रष्टाचार फैला है। इन सबका उत्तरदायी चौधरी चरणसिंह ने राजनीतिक नेतृत्व को माना है। देश के नेताओं ने हमारी समस्याओ के निराकरण करने के लिए विदेशों के सिद्धान्तो को लागू करना चाहा जबकि हमारी परिस्थितियाँ भिन्न हैं। हमे अपनी परिस्थितियो के अनुसार राजनीतिक लोकतत्र के ढाँचे मे ही आर्थिक व्यवस्था पुर्नसंरचना करनी चाहिए थी।

भारत की वर्तमान दुर्दशा का अर्विर्भाव चौधरी भी स्वतत्रता के साथ ही मानते हैं उनके अनुसार गॉधीजी कृषि को सर्वप्रथम प्राथमिकता देने के साथ–साथ कुटीर उद्योग अथवा हस्तकलाओ को भी बढावा देने के पक्ष मे थे और इनके बाद ही भारी उद्योगो का विकास करना था। परन्तु गॉधीजी के इन विचारो को उनके उत्तराधिकारी (नेहरू जी) ने अस्वीकार कर ऐसी नीतियो को अपनाया जो आन्तरिक स्थिति से बिल्कुल भी मेल नहीं खाती थी। गॉधीजी भारत के निर्माण को निम्न स्तर से ऊपर उठाना चाहते थे जिनका केन्द्र ग्राम था जबकि नेहरू जी भारत को ऊपरी स्तर से प्रारम्भ करके निम्न स्तर तक ले जाना चाहते थे। इस हेतु उन्होने नगर को केन्द्र माना। कृषि और श्रम प्रधान तथा अल्पकालीन योजनाओ की अपेक्षा नेहरू जी ने विशाल खर्चीली पूँजी प्रधान योजनाओ को प्राथमिकता दी जो न केवल अधिक समय लगने वाली थी अपितु विरल ससाधन यथा–सीमेट इस्पात जटिल तकनीकी विशेषता और विदेशी मुद्रा के बेकार उपयोग कराने मे लगी रही। परिणामस्वरूप एक ओर आय की समानता बढी और एकाधिकार का प्रादुर्भाव हुआ तो दूसरी ओर बेरोजगारी भी बढी। चौधरी इसका मूल कारण पूँजी प्रधान परियोजनाओ तथा उद्योगो को प्राथमिकता तथा श्रम प्रधान उद्यमों एव कुटीर उद्योगो की अवहेलना मानते हैं। भारत की आर्थिक उन्नति मे मुख्य बाँधा राजनीतिक नेतृत्व विशेषकर आयोजको और शहरी अर्थशास्त्रियो को माना है जिनका मार्क्स के उन सिद्धान्तो के प्रति आकर्षण रहा है जो हमारे देश की वर्तमान आर्थिक वास्तविकताओ की दृष्टि से नितात बेकार है। भारत का यह दुर्भाग्य रहा है कि योजना का भवन उन आदर्शो पर टिकाया गया है जिनमे साधारण समझ का भी भाव नहीं रहा। चौधरी जी ने अपनी आर्थिक नीति मे कृषि हस्तशिल्प और कुटीर उद्योगो को प्रमुखता दी है। विकेन्द्रीकरण और स्वावलम्बन पर बल दिया गया है तथा इन सबसे ऊपर आज की परिस्थितियो मे राजकीय एजेन्सियो को अर्थव्यवस्था के क्रम मे यथासम्भव कम से कम भूमिका अदा करने के लिए कहा है। चौधरी चरणसिंह ने विभिन्न विचारो तथा एजेन्सियो द्वारा दिये आकडो से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भारतीय अर्थव्यवस्था को कृषि की प्रगति आवश्यक है न कि बडे उद्योगो की। उद्योगो का विकास कृषि के माध्यम से ही हो सकता

है। देश कृषि की उन्नति से ही स्वावलम्बी हो सकता है, विदेशी सहायता से नहीं। देश में व्याप्त गरीबी, बेकारी, आदि आर्थिक समस्याओं का निदान कृषि की प्रगति में ही सन्निहित माना है क्योकि नेहरू जी की पश्चिमी परक नीति के परिणामस्वरूप चालीस वर्ष के नियोजन के बाद भी ये समस्याएँ कम होने के बजाय बढी ही हैं। इसका मूल कारण चौधरी जी ने कृषि, गॉवो, हस्तशिल्प एव कुटीर उद्योगो की उपेक्षा एव पश्चिमी की नकल बडे उद्योगों को प्राथमिकता, शहरो को गॉवों से अधिक प्राथमिकता तथा विदेशों पर निर्भरता को माना है।

चौधरी चरणसिह के विचार उनके द्वारा लिखित " भारत की अर्थ नीति --गॉधीवादी रूपरेखा " 1977 (इडियाज इकोनामिक पॉलिसी गॉधीयन ब्ल्यू प्रिंट), भारत की भयावह आर्थिक स्थिति -- " कारण और निदान " (1982) (इकोनामिक नाइट मेअर ऑफ इडिया इट्स काज एण्ड क्योर) तथा (3) " इडियन पावर्टी एण्ड इट्स सोल्यूसन (1964) " पुस्तको मे सन्निहित है, जिनका अध्ययन निम्न बिन्दुओं के रूप मे कर सकते हैं

I कृषि

चरणसिह के अनुसार राजनीतिक स्वतत्रता प्राप्त करने के बाद यदि हम अपनी उपलब्धि का मूल्याकन करें तो हमे अतीत की ओर देखना होगा जिसे हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। (i) वह काल जब अग्रेज हमारे देश मे व्यापारी के रूप में घुसे थे तब देश खाद्यान्नो का आयातक नहीं वरन् निर्यातक था। देश में हस्तशिल्प एव कुटीर उद्योगों का स्वर्णिम युग था। बेकारी, गरीबी आदि समस्याएँ नहीं थीं। (ii) वह काल जब हमने स्वतन्त्रता की पहली लडाई प्रारम्भ की और अपने देश से विदेशियों को बाहर निकाल दिया तथा बाद में नियोजन के माध्यम से देश की उन्नति करनी चाही, जिसमे प्रगति के बजाय हमने खाद्यान्नों का तेजी से आयात किया । हमारी गिनती दुनियाँ के निर्धनतम देशों मे होती है। देश में ससार के चौथाई पशु है फिर भी हमारी दुग्ध सप्लाई ससार की मात्र 8 प्रतिशत ही है। अधिकाश जनसख्या कुपोषण का शिकार है। कृषि की स्थिति दयनीय है। चौधरी जी ने भारतीय अर्थव्यवस्था मे कृषि की भूमिका को निम्न बिन्दुओं मे व्यक्त किया है--

(i) खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि की आवश्यकता :-- स्वतत्रता के बाद भारत की सबसे बडी कमजोरी यह रही है कि हमारे लोगो के जीवन की अर्थव्यवस्था मे कृषि का महत्व अथवा उसकी भूमिका को महसूस करने में असफलता हुई है। इसका मुख्य कारण भारी उद्योगो के प्रति अधिक ललक रही है। भोजन मनुष्य की पहली आवश्यकता है। मनुष्य सड़के, शिक्षा, आवास, कपडा एव बडे उद्योगों को टाल सकता है लेकिन भोजन के बिना नहीं रह सकता। गाँधीजी ने एक बार कहा था कि "एक भूखा व्यक्ति किसी भी काम को करने से पूर्व अपनी क्षुधा शांत करने की बात सोचता है, वह अपनी आजादी और सभी कुछ एक ग्रास पाने के लिए बेच देगा। "क्या भारत में

साम्यवाद हमारे देश की लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली की अपेक्षा कहीं पहले खाद्यान्न समस्या के निवारण मे समक्ष होगा। यह स्थिति सोवियत रूस ने स्वय ही अपनी असफलता स्वीकार करके स्पष्ट कर दी है अमेरिका से प्रति व्यक्ति भूमि अधिक होने के बावजूद रूस 1963 से बराबर खाद्यान्न का आयात कर रहा है।

वास्तव मे 1946 से अब तक शायद ही ऐसा कोई वर्ष हो जब हमने खाद्यान्न का आयात ना किया हो । 1950 से 1976 तक चालू कीमतो पर 7 283 करोड रूपये के खाद्यान्नो का आयात किया। यदि यही राशि किसानो पर देश मे ही खर्च होती तो भारत कृषि मे ही नही औद्योगिकरण में भी काफी सफलता प्राप्त कर लेता।

उनके अनुसार कम कृषि उत्पादन से कुपोषण बढा है तथा ससार की परिस्थितियाँ तेजी से बदल रही हैं इसीलिए हम विदेश से लगातार खाद्यान्न आयात नहीं कर सकते। इसकी तीन प्रमुख बाधाऐं हैं–

(अ) जैसे–जैसे समय बीतता जाता है उन देशो से जिनसे हम आज अनाज खरीदते हैं उनकी अपनी जनसख्या भी बढ रही है और उनकी भूमि के कटाव की सम्भावना है तथा असम्भव शर्तें थौपना चाहेंगे।

(ब) मुक्त व्यापार या प्रतियोगिता आज कही नहीं देखी । जो देश आत्मनिर्भर हैं वे विदेशी वस्तुएँ खरीदना नही चाहते और यदि उन्हें उस माल की आवश्यकता भी होती है तो वे चुगी जैसे अनेक कर लगा देगे। तथा

(स) विशाल जनसख्या के कारण हमे अधिक खाद्यान्नों की आवश्यकता पडेगी खाद्यान्नो का मूल्य बढता जायेगा जबकि हमारे माल की कीमतो मे गिरावट आयेगी। इसके अलावा आत्म सम्मान की माग निर्यात करने वाले देशो का हम पर प्रभुत्व जमाने की सम्भावना युद्ध के समय खाद्यान्न आने की अनिश्चितता और धनी अथवा शक्तिशाली राष्ट्र बनाने के हमारे स्वप्न का साकार बनाने की इच्छा भी ऐसे कारक हैं कि हमें कृषि की उन्नति कर खाद्यान्नों मे आत्म निर्भरता प्राप्त कर सके और अन्य देशो पर आश्रित न हो।

(II) कच्चे माल का उत्पादन – समस्त जनसख्या के लिए खाद्यान्न उपलब्ध कराने के अतिरिक्त कृषि ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जो उपभोक्ता उद्योगो को चलाने के लिए लगातार और उत्तरोतर बढते हुए कच्चे माल को उपलब्ध कराती है। कृषि फसलो से उत्पन्न कच्चा माल कतिपय उद्योगो जैसे कपडा तेल निकालने चावल कूटने आटा जूट चीनी वनस्पति तम्बाकू–निर्माण आदि के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार वनरोपण व पशुपालन से भी लकडी गोंद सीसा चमडा हड्डियॉ आदि उद्योगों को कच्चा माल के रूप में प्राप्त होता है। इसी प्रकार खदानों से लोहा ताबा बाक्साइट कोयला पत्थर आदि पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगो के विकास के लिए आवश्यक है । बाहर से कच्चे माल का आयात अतिम रूप से तैयार की गई वस्तुओं के लिए

अधिक मूल्य बढाने वाला होगा। बढी हुई कीमते इतनी अधिक होगी कि हमारे देश के अधिकाश लोग इसे नहीं चुका पायेंगे। ऐसे माल की बिक्री विदेशी बाजारो में भी नहीं हो पायेगी, क्योंकि वहाँ प्रतियोगिता करना भी मुश्किल होगा। अत कच्चे माल का उत्पादन बढाना होगा और कुछ अनुपातों मे भूमि को उद्योगो के लिए कच्चे माल के उत्पादन मे काम लिया जा सकता है।

चौधरी चरणसिह ने कपास का उदाहरण देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि-जो कपास सुपर फाइन साडियो मलमल, वायल, कैम्ब्रिक, धोतियों और पापलीन तैयार करने मे काम आता है। भारत उसका 90 प्रतिशत मिश्र या सूडान से खरीदता है। दुर्भाग्य की बात यह है कि इसका 10 प्रतिशत भाग भी न तो अच्छा बनाया जा सका है और न ही उसे निर्यात किया जा सकता है। जबकि विश्व के किसी भी देश की अपेक्षा कपास की खेती भारत मे सबसे अधिक होती है, लेकिन उत्पादन सबसे कम है।

(iii) जनता की क्रय शक्ति :– चौधरी जी का मत है कि जब देश की 2/3 जनसख्या कृषि पर आश्रित हो तथा आय एव रोजगार भी कृषि पर ही निर्भर हो तो उनकी क्रयशक्ति भी कृषि की स्थिति पर ही निर्भर होगी। क्रयशक्ति कृषि –उत्पादन की वृद्धि से ही मिलेगा। जितना अधिक उत्पादन होगा उतना ही वह उत्पादन उत्पादको की आवश्यकताओ से अधिक होगा और उत्पादन बिक्री के लिए उपलब्ध होगा तथा विक्रेता अथवा उत्पादक के लिए क्रयशक्ति अधिक प्राप्त होगी। कृषि शक्ति के बढने से कृषितर सामान और सेवाओं की मॉग अधिक होगी। किसानो की आमदनी बढने से औद्योगिक विकास के लिए भी खुला बाजार मिल जायेगा। हमारे अपने घरेलू बाजार के बिना ये कारखाने शीघ्र ही धूलि–धूसरित हो जायेंगे।

यहाँ तक की कुटीर उद्योगों अथवा हस्तशिल्पो का भविष्य इस बात पर आधारित है कि हमारे देहाती क्षेत्रों में किसानों की आय मे किस दर से वृद्धि हो जाती है। कोई भी किसान एक जोडी जूता उस समय तक नहीं खरीद सकता जब तक कि वह अपने उत्पादन में से कुछ हिस्सा बाजार में बेच नही देता क्योकि खेतों मे जूते नहीं उगाये जा सकते।

जिस प्रकार उद्योग क्रयशक्ति के लिए कृषि पर निर्भर है उसी प्रकार सेवाओं (शिक्षा,चिकित्सा, बिजली, परिवहन, आदि) की मॉग भी कृषि की उन्नति मे ही निहित है। उद्योगपति, परिवहन कार्यकर्त्ता, शिक्षाविद् व्यापारी, डॉक्टर, इजीनियर आदि सभी कृषि उत्पादन के बढने के साथ ही सम्पन्न होते जाते हैं।

(iv) कृषि से कामगारों की मुक्ति :– चौधरी चरणसिह के अनुसार विकसित कृषि से जनता को क्रयशक्ति ही नहीं मिलती अपितु इससे मजदूर भी कृषि से मुक्त होकर औद्योगिक तथा तृतीयक कार्यो में लग सकेंगे। इस प्रकार मजदूरों के मुक्त होने या स्थानान्तरित हुए बिना न तो देश का विकास हो सकेगा और न ही गरीबी मिट

सकती है। चरणसिह ने जापान एव ब्रिटेन के आर्थिक विकास के रूप को भारतीय अर्थव्यवस्था मे अपनाने का सुझाव दिया है जो लेविस मॉडल पर खरा उतरता है। भारत की विशाल जनसख्या भूमि ससाधनो की तुलना मे अर्थात् कम भूमि–श्रम अनुपात औद्योगिकरण अथवा रोजगार वृद्धि में बाधक हैं क्योंकि अधिक लोग कम लोगों की अपेक्षा खाद्यान्न अधिक पैदा करेगे। चूँकि व्यक्तियो को खाद्यान्न की आवश्यकता अधिक है। लोग कृषि कार्य तभी छोडते हैं और वस्तुओं का निर्माण तभी करत हैं जब केवल खाद्यान्न उपलब्ध ही नही होता बल्कि वह निर्मित माल की अपेक्षा सस्ता होता है। चरणसिह का विचार है कि जो किसान जिनकी जोत अलामकारी है वह कुटीर एव लघु उद्योग को अपनालें। परिणामस्वरूप शेष किसानो के जोतो का क्षेत्रफल भी बढ जायेगा और उनकी आमदनी एव क्रयशक्ति मे बढोतरी हो जायेगी। उनकी क्रयशक्ति बढने से कृषितर वस्तुओ व सेवाओ की माग भी बढेगी जिसके फलस्वरूप अधिक कामगारो की मॉग होगी और ये कामगार द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्र को कृषि से ही प्राप्त होगे। इन्होंने विभिन्न देशो के उदाहरण से स्पष्ट किया है वे सभी देश जो आज समृद्ध हैं वहाँ गत वर्षो मे कृषि क्षेत्रो से कृषितर रोजगारो मे कामगारों के अतरण मे वृद्धि हुई है।

(v) कृषि उत्पाद का निर्यात – चौधरी जी के मत में कृषि पदार्थों का घरेलू मॉग से अधिक उत्पादन को विदेशो को निर्यात कर विदेशी मुद्रा प्राप्त की जा सकती है जिससे हम औद्योगिक विकास के लिए पूँजीगत माल के आयात को वित्तपोषित कर सकते हैं। यह राष्ट्रीय हित की दृष्टि से भी उचित है कि हम उद्योग से हट कर कृषि उत्पादन पर बल दे ताकि खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर होने के साथ–साथ निर्यात कर विदेशी मुद्रा भी प्राप्त करें। इसलिए हमें उन नकली डिजायनो और औद्योगिक वस्तुएँ तैयार करने मे अपनी शक्ति बर्बाद नहीं करनी चाहिए जिन्हें हम निर्यात करते हैं और जिनसे सहायता के रूप में 300 करोड से अधिक की राशि प्रतिवर्ष नहीं पाते बल्कि औद्योगिक राष्ट्रो से यही याचना करते रहते हैं कि वे अपने सीमा शुल्क कम करते रहे।

भारत की स्थायी आर्थिक स्थिति–कृषि की प्रधानता – चरणसिह के अनुसार ऐतिहासिक अभिलेखा से यह प्रमाणित होता है कि भारत बहुत पहले ही कृषि प्रधान देश बन चुका था। बडे पैमाने के विनिर्माण और अन्तरनिर्माण क्षेत्रको में उल्लेखनीय विकास के बावजूद कृषि क्षेत्र मे कामगारो की सख्या बिल्कूल भी कम नहीं हुई है। जो निम्न तालिका से स्पष्ट है–

वर्ष	कृषि क्षेत्र में कामगारों का प्रतिशत
1911	72 3
1921	73 1
1931	72 0
1941	74 0

1951	72 8
1961	71 94
1971	72 01

स्त्रोत :– सेन्सस ऑफ इण्डिया, 1961,1971

ईस्ट इण्डिया कम्पनी जो एक व्यापारिक सस्था थी,जिसने 1757 मे बगाल में सत्ता हथियाने के बाद 1857 मे सम्पूर्ण भारत पर अधिकार जमा लिया और बाद मे भारत पर सीधा ब्रिटिश सरकार का नियत्रण स्थापित हुआ। ब्रिटिश शासन के दौरान ऐसी वाणिज्यिक नीति अपनायी गयी जिसमें भारतीय माल पर निषेधात्मक कर लगा कर यूरोप में आयात को नियत्रित किया और ब्रिटिश माल पर साधारण कर लगा कर निर्यात को प्रोत्साहन दिया। अग्रेजों की नीति थी कि भारत में कच्चे माल का उत्पादन कराया जाये और ब्रिटेन के बने हुए माल की भारत मे खपत की जाय। मुक्त व्यापार की आड में हिन्दुओं को बाध्य किया कि लकाशायर, यार्कशायर ग्लासगो आदि में भाप से चलने वाली खड्डियो से तैयार किए हुए माल को ले जिसे खरीदने के लिए नाम मात्र के कर लगाये जबकि बगाल और बिहार के हाथो से बने हुए कपडे का धागा सुन्दर और मजबूत था, लेकिन इन कपडो पर इग्लैण्ड मे आयात पर कहीं अधिक निषेधात्मक कर लगाये गये।

चरणसिह ने एच एच विल्सन के कथन को उद्धत करते हुए स्पष्ट किया है कि ब्रिटिश निर्माताओ ने राजनीतिक अन्याय का सहारा लिया ताकि वह अपने प्रतिद्वन्द्वी को हटा सके और अन्ततोगत्वा उसका दमन ही कर दे जिसके साथ बराबरी की शर्तो पर प्रतियोगिता नहीं हो सकती थी। परिणामस्वरूप लाखों भारतीय कारीगरों को आमदनी का नुकसान हुआ और स्वदेशी उद्योगो के पतन के बाद कृषि ही एक मात्र विकल्प रहा जिससे वे अपना जीवन–यापन कर सकें।

उनके अनुसार स्वतत्रता प्राप्ति के बाद निर्बल राष्ट्रीय उत्पादन मे तृतीयक क्षेत्र (परिवहन, सचार, व्यापार आदि) का अश तो बढा है परन्तु यह आर्थिक प्रगति का सूचक नहीं है, क्योकि सेवा क्षेत्र की तुलना में प्राथमिक एव द्वितीयक क्षेत्र ही देश के रहन–सहन के स्तर को ऊँचा उठा सकते हैं। अत वित्तीय ससाधनो का उत्पादक स्रोतों से अनुत्पादक स्रोतो की ओर अतरण हुआ, जो भारत जैसे अत्यन्त निर्धन देश के लिए उपयुक्त नहीं है।

उद्योग बनाम कृषि – चौधरी चरणसिह ने नेहरू विकास व्यूह रचना की इस आधार पर आलोचना की है कि जो देश मुगलकाल से ही आर्थिक जडता की तरफ बढ रहा था, ब्रिटिश शासन ने अपने स्वार्थो के लिए देश का भरपूर शोषण किया, आजादी के बाद कृषि विकास को प्राथमिकता की दृष्टि से प्रथम स्थान देना चाहिए था परन्तु नेहरू जी ने रूस से प्रभावित होकर कृषि से हटकर भारी उद्योगों को प्राथमिकता दी। यही कारण है कि जब फिर कभी उनके विचारो मे कृषि का महत्व आया तो उन्होंने बडी–बडी मशीनों

से बडे पैमाने पर सहकारी फार्मों तथा खाद्यान्नों में राज्य व्यापार का समर्थन किया। नेहरू जी चीन यात्रा से लौटने के तुरन्त बाद ही बिना मत्रीमडल योजना आयोग तथा दल की कार्यकारिणी से परामर्श के ही अपनी नीति की घोषणा कर दी और औद्योगिकरण को स्वीकार कर पुराने छोटे कारखानों को नकार दिया। भारी मशीनो के निर्माण से ही देश की तीव्र गति से उन्नति पर बल दिया।

नेहरू जी यह तो ठीक कहते थे कि लोगों के रहन–सहन का स्तर उँच्चा उठाने के लिए देश का औद्योगिकरण आवश्यक है । लेकिन नेहरू जी ने गलती यह की कि रूस की नकल करने की कोशिश मे पहले भारी उद्योगों के विकास की नीति अपनायी जिससे हमारी अर्थव्यवस्था बर्बाद हो गयी। भारतीय परिस्थितियाँ स्पष्ट करती हैं कि अगर भारत को जिन्दा रहना है और आगे बढना है तो खेती से नहीं बचा जा सकता । इसका अर्थ यह नही है कि हम ओद्योगीकरण की प्रक्रिया बद कर दे। बल्कि कृषि एव उद्योग दोनो एक दूसरे के पूरक हैं। सवाल यह है कि प्राथमिकता सर्वप्रथम किसे दी जाय ?

चौधरी के मत मे इस नीति परिवर्तन में नेहरू जी को प्रो महालनोविस का मार्गदर्शन मिला । उन्होने औद्योगिक नीति का सकल्प तैयार किया। परिणामस्वरूप पहली योजना (1951–56) में जो कृषि निवेश था वह दूसरी योजना (1956–61) मे घटा कर आधा कर दिया और औद्योगिक निवेश पॉच गुना बढा दिया। तीसरी योजना (1961–66) दूसरी योजना का ही प्रतिरूप था केवल इतना सा परिवर्तन हुआ कि कृषि निवेश मे केवल 3 0 प्रतिशत वृद्धि हुई । नेहरू जी ने कृषि के विकास और उसके माध्यम से कृषितर क्षेत्र के विकास की अपेक्षा जिसे सभी लोकतत्रीय देशो ने अपना लक्ष्य बनाया था और जो हमारी राजनीतिक एव आर्थिक परिस्थितियों की भी मॉग थी को छोडकर विदेशी ऋणों और उधार लिये गये खाद्यान्न के बल पर साम्यवादी–सिद्धात की ओर उन्मुख हुए। उन्हें इस बात की चिन्ता थी कि एक नया औद्योगिक आधार तैयार किया जाए और आर्थिक आत्मनिर्भरता की उपलब्धि की जाए।

चरणसिंह के अनुसार जब से देश आजाद हुआ है दुनियाँ यह विचित्र तमाशा देख रही है कि अमेरिका जो औद्योगिक दृष्टि से सबसे विकसित देश है भारत जैसे कृषि प्रधान देश को खाद्यान्न दे रहा है। अमेरिका तेल आयात की कमी का अधिकाश भाग खाद्यानों के निर्यात से ही पूर्ण करता है परन्तु अमेरिका जो आधुनिक शिखर पर है वह कृषि पशुधन एव तत्व सबधी व्यापार के बलबूते पर ही हुआ है अमेरिका के 4 130 लाख एकड कृषि भूमि के 1/4 भाग में वे फसले उगाई जाती है जिनका केवल निर्यात ही किया जाता है परन्तु भारत मे 70 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति कृषि मे भाग करते हुए भी निर्यात करना दूर अपना पेट भी नहीं भर पाते।

आखिरकार नेहरू जी को यह सोचने हेतु मजबूर होना पडा कि हमारी अर्थव्यवस्था में कृषि और उद्योग का क्या स्थान है ? लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी 1963

के अत तक 2600 करोड रु अनाज के आयात पर खर्च हो चुके थे। विदेशी ऋण काफी बढ चुके थे और कीमते भी काफी ऊँची हो चुकी थी । इस समय उन्हे घोषणा करनी पडी कि "कृषि उद्योग से अधिक महत्वपूर्ण है। कृषि ही है जिससे प्रगति के लिए साधन सम्पत्ति जुटती है, यदि हम कृषि में असफल रहते हैं तो हम उद्योग में भी असफल हो जाते है। कृषि उद्योग से अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है, जिसका सरल कारण यह है कि उद्योग कृषि पर निर्भर करता है। उद्योग नि सदेह बहुत महत्वपूर्ण है लेकिन उसकी प्रगति तब तक नहीं हो सकती जब तक कि कृषि ठोस तथा स्थाई और प्रगतिशील न हो।

चौधरी जी यह लिखते हैं कि यह दुर्भाग्य की बात है कि नेहरू जी जैसे नेता की अपनी कोई नीति नही थी, जो हमारी विशेष परिस्थितियो के अनुकूल होती, लेकिन वे प्रेरणा के लिए बाह्य स्रोत की ओर ही देखते रहे। चीन में तीन खराब फसलें (1959–61) होने पर ही अपनी नीति में भारी उद्योगों के स्थान पर कृषि को वरीयता दी। परन्तु भारत में सौ खराब फसलो के बाद भी नीति मे परिवर्तन नहीं आया । चरणसिंह ने इसके पीछे यह तर्क दिया कि माओ त्से-तुग ग्रामीण लोगो से उभर कर आये थे, जबकि हमारा शासक परिवार शहरी विशिष्ट वर्ग से आया है। जिन्हें बचपन से ही वैभवपूर्ण जीवन मिला है। वे यह नहीं जानते कि कृषि भी एक जैविक प्रक्रिया है, जो प्रकृति की अप्रत्याशित और विशेषतया अनियन्त्रित शक्तियो से शासित होती है और किसी गरीब आदमी या पूर्णरूप से राष्ट्र के लिए खराब फसल का क्या परिणाम होता है।[2]

भारत में भारी उद्योगो की सर्वप्रथम नीति अपनायी गयी, उसमें रूस की ही नकल थी, जिसका परिणाम यह हुआ कि आधुनिक कारखानो ने हमारी अर्थव्यवस्था को गैर औद्योगिक बनाने मे मदद की है और हमारे लाखो कामगारो को बेरोजगार बना दिया है। वस्तु स्थिति यह है कि राष्ट्रीय आय मे उतार –चढाव कृषि उत्पादन में परिवर्तनों पर निर्भर है, लोगो का रहन–सहन का स्तर ही नहीं वरन् अन्य क्षेत्रो की उन्नति भी कृषि उत्पादन की वृद्धि पर ही निर्भर होती है। छटे दशक के अत मे योजना आयोग ने भी स्वीकार किया है कि "जिन राज्यों ने कृषि उत्पादन में काफी प्रगति की है, उन राज्यों ने अन्य दिशाओ मे भी काफी प्रगति की है।" यह आम बात है कि बिहार देश का सबसे गरीब राज्य है परन्तु बगाल को छोडकर सभी राज्यो की तुलना मे सबसे अधिक उद्योग है। जबकि पजाब एव हरियाणा मे प्रति व्यक्ति आय सबसे अधिक रही है जहाँ भारी उद्योगो की बहुत कमी है, लेकिन जहाँ देश भर में सबसे अधिक कृषि उत्पादन होता है। इसी प्रकार उन्होने उत्तर प्रदेश के जिलों के तुलनात्मक विवेचन से सिद्ध किया है कि मेरठ जिला कृषि के बलबूते पर ही कानपुर और लखनऊ जैसे बडे पैमाने के उद्योगों वाले राज्यो से ज्यादा प्रगतिशील है साथ ही दुर्गापुर, भिलाई तथा राउरकेला के तीन इस्पात सयत्रो जिन पर 1951 से 1976 तक 1125 करोड रु व्यय हो चुके हैं, इस अवधि मे देश ने वर्तमान कीमतो पर 7200 करोड रु के खाद्यान्न तथा 2000 करोड रु

की कपास आयात की है और इसका भुगतान भी दुर्लभ विदेशी मुद्रा मे किया गया। यदि हम इस आयातित खाद्यान्न कपास को यहीं पैदा करते तो इस राशि से एक दर्जन से कहीं अधिक इस्पात सयत्र और लगा लेते। जबकि इन कारखानों स 50 प्रतिशत भी उनकी क्षमता का उत्पादन प्राप्त नहीं कर सके।

देश म औद्योगिकरण तभी सम्भव है जब हम कामगारा को कृषि से कृषितर व्यवसायो मे हस्तान्तरण करे। यह हस्तातरण तभी सम्भव हो सकता है जब कृषि उत्पादन में वृद्धि हो और कृषि उत्पादन देश की आवश्यकताओं से अधिक अन्न उत्पादन करने लगे। यही समृद्धि का मूल मत्र है ।

इसके साथ ही चरणसिंह ने यह भी स्पष्ट किया है कि आज जिन परिस्थितिया मे भारत में कृषि की जाती है उनको बदलना होगा और उनमें क्रान्तिकारी परिवर्तन करना ही होगा। यदि हमने एसा नहीं किया ओर खाद्यान्न का अभाव बना रहा तो उन्नत कृषि ही एक एसा साधन है जो औद्योगिक और अन्य कृषितर कामगारा को खाने के लिए खाद्यान्न उद्योगो के लिए कच्चा सामान विदेशों स पूँजी माल की खरीद हेतु मुद्रा उद्योग उत्पादनो के लिए आतरिक बाजार और उद्योगो परिवहन तथा वाणिज्य आदि चलाने हेतु कामगारा को उपलब्ध करा सकता है।

चरणसिंह ने यह भी मत व्यक्त किया है कि अब तक कृषि उत्पादन म कमी रही है उससे औद्योगिकरण म सबसे अधिक बाधा उपस्थित हुई है और वित्त पोषण की कमी के साथ–साथ कीमतो म तजी से वृद्धि हुई है। आतरिक बाजारों का सकुचन हुआ है शहरो में बैचेनी बढी है और निवेश का वातावरण विकृत हो गया है । अत उद्योग एव कृषि दोना का ही विकास काफी हद तक एक दूसरे पर निर्भर है। जैसा ही कृषि का विकास होता है और किसान समृद्ध होता है वैसे ही उद्योग समृद्ध होता है। परन्तु उन्होंने उद्योगों के बजाय कृषि को ही प्राथमिकता दी है। उनके अनुसार मनुष्य बिना औद्योगिक वस्तुओं के रह सकता है लेकिन वह बिना खाद्यान्न के जीवित नही रह सकता। कृषि भारी अथवा पूंजीगत माल के उद्योग के बिना भी हो सकती है, लेकिन उद्योग बिना कृषि के नहीं चल सकते। सीमेंट इस्पात और बिजली बिना भी कपडे, जूते और किताबें बनायी जा सकती है। स्पष्ट है कि कृषि विकास ही हमारे लिए ज्यादा महत्वपूर्ण है।

भू–व्यवस्था

चौधरी चरणसिंह के मत म भूमि की उत्पादकता इस बात पर निर्भर होती है कि उसका स्वामित्व किसके पास है ओर स्वामी उस पर कैसा काम करता है। खेतीहर स्वावलम्बी है या खेती का सहकारीकरण या सभूहीकरण हो गया है या फिर बहुत बडे–बडे सरकारी या निजी फार्म हैं । उन्हा1 भूमि प्रणाली के सदर्भ म निम्न प्रकार स व्यक्त किया है।

(1) सहकारी खेती –आजादी क बाद नेहरू जी न दूसरी याजना से रूस

एव चीन का अनुकरण करते हुए सहकारी खेती अपनाने पर जोर दिया जिसमें आवश्यक रूप से भूमि के छोटे–छोटे टुकडो को एकत्र करना और सयुक्त प्रबध करना निहित था। 1959 में काग्रेस अधिवेशन के बाद सेवा सहकारी समितियो के माध्यम से ऋण, विपणन, वितरण, ग्रामीण उद्योग की वृद्धि,भूमि सुधार सभी क्षेत्रो में सहकारी आदोलन पर जोर दिया।

परन्तु कृषि उत्पादन एक जैविक प्रक्रिया है। न तो इसमें समय बचाया जा सकता है और न ही कृषि को कूता जा सकता है। सयुक्त कारोबार में ज्यों–ज्यो प्रोत्साहन कमजोर पडते जाते हैं सयुक्त फार्मो मे उत्पादन गिरता जाता है फार्मो का आकार बढाने से रोजगार के अवसर नहीं बढते अपितु श्रमिकों को यथोचित स्थान देने की आवश्यकता पडती है और उनके प्रबन्ध करने में कठिनाई होती है। यत्रीकरण का दबाव पडने पर सयुक्त फार्म मे बेरोजगारी की समस्या बढेगी और उसका निराकरण नहीं होगा।

चरणसिह के मत मे, कृषि विज्ञान और वाणिज्य के अलावा जीवन का एक मार्ग भी है, जिसे सरलता से नही बदला जा सकता। सहकारी अथवा सामूहिक खेती में शामिल होने का तात्पर्य है कि व्यक्ति अपनी स्वतत्रता तथा पहल करने की इच्छा त्याग दे, और ऐसा भारतीय किसान कभी नहीं चाहता जिसमें प्रेरणा एव अपनी पहचान दोनों ही नष्ट हो जाय। मानवीय प्रकृति ही ऐसी है कि एक माँ से पैदा होने वाले भाई भी एक दूसरे से अलग–अलग हो जाते हैं। ऐसी परिस्थितियों मे यह आशा करना व्यर्थ है कि एक साधारण परिवार का सदस्य अपने हितों को छोडकर हजारो लोगों के हितो के साथ जोड दे, जो उनके जीवन मे अभी तक नितात अजनबी रहे हैं।

इसी कारण भारत तथा इजराइल में सहकारी फार्म पहले ही टूट चुके हं और रूस में भी इनको जिन उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु स्थापित किया था वे प्राप्त नहीं हुए है, लोग राजकीय सामूहिक फार्मो के बजाय अपने निजी फार्मो मे ज्यादा काम करने लगे और रूस की कृषि असफल हो गयी।

चरणसिह ने यह प्रतिपादित किया है कि जब सहकारी खेती रूस मे ही सफल नहीं हुई, वह भारत मे कहाँ सफल होगी, क्योकि भारतीय ग्रामीणों की आवश्यकताओं, अभावों, प्रवृत्तियों और मनोविज्ञान समर्पण (सहकारी खेती में) के अनुरूप नहीं है। सिह ने अपनी पुस्तक ' इडियन पावर्टी एण्ड इट्स सोल्यूसन' मे यह स्पष्ट किया है कि भारत में सहकारी खेती का प्रयोग उन शहरी बुद्धिजीवियों के प्रयोग की उन योजनाओ में से एक है जिनका आधार विदेशी लेखकों की वे पुस्तके रही है, जो भारत के लिए अव्यावहारिक है। सहकारी खेती भी एक ऐसी ही योजना है जो असफल हो चुकी है और कभी भी सफल नहीं होगी।"[3]

जैसाकि आशा की जाती थी, हमारे राष्ट्र का समय,शक्ति और धन काफी बर्बाद हो जाने के बाद योजना आयोग ने चौथी योजना में अतत सहकारी कृषि का विचार

बिल्कुल ही त्याग दिया। परन्तु 1972–73 में कांग्रेस एवं वामपंथियों ने फिर सहकारी खेती के समर्थन में अपनी आवाज उठाई क्योंकि इंदिरा गांधी ने सोचा कि यदि नेहरू को सफलता नहीं मिली तो मुझे तो मिल सकती है। परन्तु अंतत सहकारी खेती के पक्ष में पुन आवाज भी समाप्त हो गयी लेकिन देश का बहुमूल्य समय नष्ट हो गया और देश की परिस्थितियाँ और भी खराब हो गयी।

(1) फार्म का आदर्श आकार – किसी व्यक्ति को एक छोटा खेत रखने की इजाजत दी जाये तो इसका क्षेत्रफल क्या हो या किस सीमा के अन्दर वह खेत रहे? सिद्धांत तथा न्याय का तकाजा यह है कि व्यक्ति उतनी ही भूमि अपने पास रखे जितनी वह प्रचलित तरीकों से खेती कर सके। भूमि की उपज खेतों के आकार पर निर्भर नहीं करती वरन् वह मिट्टी की उर्वरता जलवायु पर अधिक निर्भर करती है बड़ी–बड़ी मशीनों से उत्पादन वृद्धि में सहायता तो मिल सकती है परन्तु यह एक मात्र कारण नहीं है क्योंकि यदि ऐसा होता तो अमेरिका व रूस में जापान एवं पयूरोपीय देशों से अधिक उत्पादन होता।

बड़े फार्म में प्रति एकड़ उतना ही उत्पादन होता है जितना कि छोटे फार्म पर प्रति एकड़ उत्पादन होता है। साथ ही यदि छोटे फार्मों पर निवेश किया जाय तो उनका प्रति एकड़ उत्पादन बड़े–बड़े फार्मों के प्रति एकड़ उत्पादन की अपेक्षा अधिक हो सकता है।

चरणसिंह ने बड़े फार्मों के बजाय छोटे फार्मों को निम्न कारणों से प्राथमिकता दी है या इन्हें भारतीय खेती के लिए लाभदायक माना है –

(i) हमारे यहाँ श्रम की नहीं भूमि की कमी है।

(ii) जनसंख्या की रफ्तार तेजी से बढ़ रही है।

(iii) भारत के सामने बेरोजगारी की समस्या है इसलिए राष्ट्रीय हित में कृषि ही अर्थव्यवस्था की माँग है जहाँ ग्रामीण क्षेत्र में अधिकतम लोगों को रोजगार मिले जो छोटे खेतों में ही संभव है।

(iv) जापान ब्रिटेन आदि देशों से यह सिद्ध हो चुका है कि छोटे खेत बड़े खेतों के बजाय प्रति एकड़ कम उत्पादन नहीं देते वरन ज्यादा ही देते हैं।

(v) यहाँ प्रति इकाई लागत कम आती है।

(vi) छोटे–छोटे फार्मों पर केवल अधिक मजदूर ही काम पर नहीं लगाये जाते वरन् कृषि आय का भी समान रूप से वितरण किया जाता है।

(vii) कृषितर वस्तुओं की भी माँग को प्रोत्साहन मिलता है।

(viii) समतावादी समाज को प्रोत्साहन मिलता है।

इनके आधार पर चरणसिंह ने छोटे फार्मों की वकालत की है। हमारे देश में आज कृषि का क्षेत्र कम है जबकि इसकी तुलना में लोगों की संख्या ज्यादा है जो कृषि पर

निर्भर है। इस प्रकार छोटे फार्मो की प्रणाली हमारी आवश्यकताओ की पूर्ति करती है अर्थात हमारे उद्देश्यो को पूरा करती है।

(3) भारत में भूमि सुधार :– भारत मे कानून द्वारा जमींदारी या मध्यस्थ प्रणाली को समाप्त कर दिया। परन्तु चरणसिंह के अनुसार जमींदारों को स्वय खेती करने के लिए वापस भूमि प्राप्त करने की छूट प्रदान की गयी। गत वर्षों में किसानो की बेदखली की गयी । उत्तर प्रदेश को छोडकर कहीं भी भूमि सुधारो को उपलब्धियों के रूप मे नहीं माना है। उन्होंने लेडिजिन्स्की के इस निष्कर्ष को व्यक्त किया है कि भूमि सुधार के लिए वास्तव मे जितने कानून बनाये गये, चाहे वे लगान नियमन के हों, सुरक्षा और कब्जे का स्वामित्व अथवा अधिकतम सीमा निर्धारण से सबधित हों, उनका देश भर में क्रियान्वयन नही हो पाया। क्योकि केन्द्र ने राज्य सरकारो को यह छूट दे दी कि राज्य सरकारें ऐसे कानून बनाये जिनसे जमीदार 30 से 60 एकड तक भूमि स्वयं खेती के लिए वापस प्राप्त कर सके। चरणसिंह ने नक्सली आदोलन के जन्म का मुख्य कारण जमींदारी उन्मूलन के सबध मे काग्रेस– नेतृत्व के सिद्धान्त एव व्यवहार में अतर को माना है।

कृषि मजदूरों का प्रतिशत बढा है, जिससे बेरोजगारी एव कम रोजगार पाने वाले व्यक्तियो की सख्या मे वृद्धि हुई है।

यन्त्रीकृत फार्मों की सख्या बढने से लाखो गरीब किसान बेदखल कर दिए गये। अधिकतम सीमा के सबध मे भी 1972 मे आयोजित मुख्यमत्रियो के सम्मेलन की सिफारिशों के आधार पर नया कानून तो बन गया। परन्तु 1979 तक 52 लाख 75 हजार एकड अतिरिक्त अनुमानित भूमि में से मात्र 22 लाख 84 हजार एकड भूमि ही सरकार के कब्जे में आ सकी। भूमि सुधार कार्यक्रम का मूल्याकन यह बताता है कि मध्यस्थ वापस भूमि पर काबिज हो गये, बटाई पर खेती करने के ढग की कारत मे किसानों का शोषण किया जा रहा है। इसका मुख्य कारण जमींदारो का राजनीतिज्ञों, उद्योगपतियों एव अफसरों के रूप में सत्ता प्राप्त करना रहा। उन्होने पजाब, हरियाणा मध्यप्रदेश विधान सभाओ के उदाहरणों से सिद्ध किया है कि वे जमींदार सासद एव विधायक बने जिनके पास अधिकतम भूमि की सीमा से अधिक भूमि रही है। चरणसिंह के भूमि सुधार सबधी विचारों को हम निम्न बिन्दुओं में और स्पष्ट कर सकते हैं –

भूमि का पुनर्वितरण :– भूमि से आदमी का कभी भी मोह–भग नहीं होता । भूमि की निरन्तर जीवतता की उस भूमि में काम करने वाले लोगों को सीधे ही सुरक्षा की भावना प्रदान करती है। भूमि प्रकृति का निशुल्क उपहार है परन्तु इसके उचित वितरण की आवश्यकता है, क्योंकि बडे–बडे फार्मो ने स्पष्टतया व्यक्तियों के बीच असमानताएँ पैदा कर दी हैं। भूमि का पुनर्वितरण आवश्यक है। अत राज्यों की स्थिति, भूमि की बनावट, साधनो की उपलब्धता के आधार पर भूमि का उचित वितरण आवश्यक है। चरणसिह ने पुरानी तकनीक से होने वाली कृषि में एक लाभकारी जोत का आकार

7.5 से 10 एकड तथा नयी प्राद्योगिकी मे 25 से 500 एकड तक भूमि की गुणवत्ता तथा उपलब्धता पर निर्भर मानी है।

फिर भी अतिरिक्त भूमि का पुनर्वितरण करते समय कानून में यह प्रावधान है कि आगामी 20 वर्ष तक वह व्यक्ति न तो उसे बेचे और न ही कहीं गिरवी रखे। नहीं तो आवंटी भूमि बेच देंगे तो फिर भूमिहीन हो जायेंगे अत आवंटन का उपविभाजन नहीं हो।

चकबदी – चरणसिंह के अनुसार बिखरी हुई जोतों का एक चक बना देने से उत्पादन के तीनों कारको अर्थात भूमि श्रम व पूँजी का कारगर ढंग से उपयोग किया जा सकता है। चकबंदी के फलस्वरूप जलनिकासी का नियंत्रण सिंचाई जल की आपूर्ति अपेक्षाकृत अधिक आसान होता है। जिससे भूमि का अपेक्षाकृत अधिक उपयोग हो सकता है क्योंकि छोटे–छोटे खेतो पर कुऐं नहर या नलकूप से सिंचाई आसान नहीं है तथा झगडे और हो जाते है। साथ ही एक ही जगह पर किसान की भूमि होने से उसका समय एव श्रम की बचत तो होती ही है बाड या घेरेबंदी भी आसान हो जाती है। कृषि उपकरणों का बेहतर उपयोग सम्भव होता है। उनके अनुसार चकबंदी से भूमि पूँजी एव श्रम की उत्पादकता बढ जाती है और प्रति एकड उत्पादकता काफी बढ जाती है। पर उनका मानना है कि किसानों का अपने खेत के प्रति अटूट प्रेम तथा पडौसियों से द्वेष होने से चकबंदी पूर्ण नहीं हो पाती। उन्होंने आकडे देकर सिद्ध किया है कि देश के आधे राज्यों मे चकबंदी कानून बनाये हैं जबकि आंध्रप्रदेश आसाम केरल उडीसा तमिलनाडू प बंगाल तथा जम्मू एव कश्मीर मे तो कानून भी नहीं बनाये है। चकबंदी का अधिकाश कार्य पंजाब हरियाणा उत्तर प्रदेश एव महाराष्ट्र मे तथा आंशिक रूप से गुजरात तथा बिहार मे हुआ है।

सेवा सहकारी समितियाँ – चरणसिंह की मान्यता है कि चकबंदी छोटे–छोटे एव फैले हुए खेतो की समस्या का निराकरण कर सकती है पर भूमि का क्षेत्रफल नहीं बढा सकती इससे सीमात अथवा अलाभकारी जोतों की समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता क्योंकि ये अलाभकारी जोतें न तो किसान के लिए पर्याप्त भोजन तथा कपडे उपलब्ध करा सकती है और न ही उसके परिवार को वर्ष भर रोजगार उपलब्ध करवा सकती है। किसान के स्वामित्व का सयुक्त कृषि मे परिवर्तन ही एक ऐसा संस्थागत परिवर्तन है। परन्तु इस कदम का किसानो द्वारा विरोध हुवा है और इसका सदैव विरोध होगा। उनकी मान्यता है कि साझे की खेती से न उत्पादन बढता है न बेरोजगारी घटती है और न जनतत्रीय व्यवहार सुदृढ होता है। हमारे देश में जोतें छोटी हैं और छोटी ही रहेगी। उनका कहना है कि स्वतंत्र अस्तित्व के खेत बने जिन पर व्यक्तिगत ढग से किसान काम करे साथ ही सहकारिता के सिद्धात पर इस स्वतत्र हस्तियों की एक कडी बने देश को सेवा समितियों की आवश्यकता है जो किसानो को छोटी जोतों पर ही साधन उपलब्ध कराये। जापान एव पश्चिमी यूरोप मे ऐसी व्यवस्था है जिसमें खेत एव खेतीहर की अलग–अलग पहचान पर आच नहीं आती। चरणसिंह ने लिखा है कि

हम लोग कम्यूनिष्टो के तौर तरीकों की नकल करना तो चाहते हैं परन्तु अपने असली इरादो को छिपाने के लिए जनतत्रीय शब्दावली का जामा पहनाते हैं। जापान, जर्मनी, इग्लेण्ड की तरह सहकारी समितियाँ तभी सफल हो सकती है, जब वे जनता की आकाक्षाओ के अनुसार जनता मे से ही किसी सार्वजनिक आवश्यकता की पूर्ति अथवा समाधान के एक उपादान के रूप में निकलकर आये। भारत के अतिरिक्त और किसी भी देश मे सहकारी आदोलन सरकारी महकमे की तरह नहीं चलाया जाता है।[5]

(4) कृषि में पूँजी का अभाव :– चरणसिह की मान्यता है कि भारत सरकार बराबर खेती को प्राथमिकता देने की बात कहती आयी है और उत्पादन के लक्ष्य भी बहुत ऊँचे निर्धारित करती आयी है लेकिन हमारी योजनाओ मे कृषि के लिए बहुत कम सार्वजनिक परिव्यय की व्यवस्था की जाती रही है, और निजी पूँजी लगाने के लिए बिल्कुल नहीं या बहुत कम अभिप्रेरणाएँ दी गयी हैं। कोई यदि कहे कि कृषि को जानबूझ कर पूँजी से वचित रखा गया है तो सच ही होगा। दुनियाँ मे ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसके लिए हमारी सरकार के पास धन न रहा हो, लेकिन कृषि के लिए नहीं रहा। उन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र मे 1951–52 से 1978–79 तक के योजना व्यय के आकडो से सिद्ध किया है कि कृषि के निवेश के परिरूप मे दूसरी योजना के बाद से कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, जबकि उसके बाद भारत की खाद्य स्थिति लगातार बिगड रही है । चालू कीमतो के आधार पर सरकारी प्रकाशनो में दिए गये गगनचुम्बी आकडों से ऐसा लगता है कि अधाधुध व्यय किया जा रहा है, लेकिन उससे भोले–भाले लोग गुमराह ही होते हैं। कृषि के लिए पहली योजना में कुल व्यय का परिव्यय 37 प्रतिशत था, घटकर दूसरी योजना मे 20 9 प्रतिशत रह गया और उसके बाद से कभी भी 23 4 प्रतिशत से आगे नहीं बढा जबकि सगठित उद्योग व खदान मे निवेश पहली योजना मे 4 9 प्रतिशत से बढा कर दूसरी योजना में 24 1 प्रतिशत कर दिया और उसके बाद से 23 7 प्रतिशत से नीचे नहीं रहा। पाचवी योजना 1974–78 मे कृषि मे 21 2 तथा उद्योगों में 25 5 प्रतिशत परिव्यय हुआ। इससे स्पष्ट है कि कृषि मे देश की 72 प्रतिशत कार्यशील जनता लगी रहती है, राष्ट्रीय आय में योगदान भी इसी का सर्वाधिक है, फिर भी कुल योजना व्यय का 25 प्रतिशत से कम का आवटन किया जाता है। (पहली योजना को छोड़कर) जबकि उद्योग व खनन में कार्यशील जनता का केवल 10 प्रतिशत से अधिक भाग रोजगार का नही होता, राष्ट्रीय आय में योगदान 16 प्रतिशत से अधिक नहीं हुवा, लेकिन इसके लिए पूँजी का आँवटन कृषि से अधिक रहा।

चरणसिह ने इस तरफ भी हमारा ध्यान खींचा है कि कृषि क्षेत्र को स्पष्ट रूप से अनुदान और राज्य सहायता प्रदान की जाती रही है, परन्तु हमारा ध्यान अभी तक इस तरफ नहीं गया है कि शहरी क्षेत्रो को कितनी सहायता और सुविधाएँ प्रदान की गयी हैं। आज ग्रामीण क्षेत्र में राशन की मात्र 32 प्रतिशत दुकान है जबकि शहरों में 68 प्रतिशत राशन की दुकानें हैं। रियायती दरो पर ब्याज आवास परिवहन एव शिक्षा की सुविधाएँ,

रेल्वे आदि का लाभ शहरों को ही प्राप्त होता है गॉवों को नहीं। पश्चिमी देशों के बराबर पहुँचने की हमारी आकाक्षा ने देश को कहाँ पहुँचा दिया हे इस कुछ निश्चित उदाहरणों से स्पष्ट किया है जैसे कुल उत्पादित बिजली का 1974–75 में 12 31 प्रतिशत कृषि उपभोग मे तथा 65 69 प्रतिशत भाग उद्योगो म उपयाग मे लाया गया। 1976–77 मे यह अनुपात 14 44 प्रतिशत तथा 62 47 प्रतिशत रहा है। फार्म क्षेत्र को मात्र 8 प्रतिशत ही डीजल की आपूर्ति होती है। चतुर्थ योजना (1974–79) मे इस्पात कारखाना में अपनी उत्पादन क्षमता से 30 प्रतिशत उत्पादन हो रहा था फिर भी उस अवधि मे 2800 करोड रु की चौका देने वाली रकम योजना आयोग खर्च करना चाहता था। योजना आयोग ने पाचवी योजना म विजय नगर (कर्नाटक) म 753 करोड रु तथा विशाखापटटनम (आध्रप्रदेश) में 747 करोड रूपये की लागत के कारखानों के लिए प्रारभिक कार्य की मद में 450 कराड रूपये की रकम रखी थी यह जानते हुए कि ये कारखाने कभी भी अपनी लागत नहीं निकाल पायेगे फिर भी इन पर कृषि की कीमत पर भारी निवेश किया गया।

चरणसिह ने मत व्यक्त किया है कि कृषि को निजी क्षेत्र से भी सहायता प्राप्त नहीं हो सकी क्योकि निजी तौर पर काम करने वाले व्यक्तियो को प्रशासकीय आदेशों तथा मूल्य–विकृतियों ने अपरोक्ष रूप से इतना उत्साहित कर दिया है कि वे ग्रामीण क्षेत्र से अपने ससाधनों का शहरों मे स्थानान्तरण कर रहे हैं।

चरणसिह का विचार है कि कृषि को समृद्ध बनाना है तो उसे सस्ती दरो पर और दीर्घकालीन ऋणो की पूर्ति करनी होगी। विश्वभर में सरकारों ने यह उचित समझ कर ही किसानो की ऋण की आवश्यकताएँ पूरी की हैं और उसका परिणाम भी सकारात्मक ही रहा परन्तु हमारी सरकार ने इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। जब बैंकों एव जीवन बीमा का राष्ट्रीकरण हुवा था तो यह साचा था कि इससे कृषि लघु उद्योगो को वित आपूर्ति हो सकेगी परन्तु यह आशा भी हमारी पूरी नहीं हो पायी है क्योकि अब भी इन वित्तीय सस्थाओं द्वारा उद्योगों में ही भारी निवेश किया जाता रहा है। परन्तु ग्रामीण बैंकों एव सहकारी बैंकों ने जरुर इस दिशा मे सराहनीय कार्य किया है। और वे कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र की वित्त आवश्यकताओ को पूरा करने का प्रयास कर रहे है। सिह ने किसानों के बैंकों के बढते हुए ऋण की वाछनीयता के साथ–साथ बैको में ऋण वितरण के भ्रष्टाचार का भी उल्लेख किया है। उन्होने डॉ कर्णसिह को उद्धत किया है जिन्होने ऋण की राशि का एक तिहाई भाग रिश्वत में जाने का उल्लेख किया था परन्तु शासक दल की दृष्टि में किसी प्रकार का बडे से बडा भ्रष्टाचार अपराध नहीं माना गया । इसके साथ ही उन्होंने सहकारी कर्मचारियों द्वारा कृषि ऋणों में की गयी लूटमार का भी जिक्र किया है जिनकी वजह से किसानों को ऋण पर्याप्त मात्रा में एव सही समय पर नहीं मिल पाता।

चौधरी जी ने यह तो स्वीकार किया है कि हमारे पास पूँजी की कमी है। परन्तु सवाल निवेश नीति की प्राथमिकताओं के क्रम को बदलने की है क्योकि निवेश की निर्धारित धनराशि बडे पैमाने के उद्योगों और सेवाओं की तुलना में कृषि न केवल

अपेक्षाकृत अधिक धन पैदा करती है, बल्कि अधिक रोजगार भी प्रदान करती है। अत अलाभकारी उद्योगों को वरीयता देने के स्थान पर कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाए। उन्होने यह मत भी व्यक्त किया है कि आधुनिक विकसित देशों ने कृषि पर अत्यधिक बल दिया, जिसके फलस्वरूप वहाँ कृषि सर्वाधिक पूँजी प्रधान मूल उद्योग हो गया है, और वैज्ञानिक ज्ञान के प्रयोग से प्रति इकाई उत्पादन बढ़ा है। आज से 50 वर्ष पूर्व भारत तथा चीन मे प्रति एकड चावल की पैदावार पश्चिमी देशों से अधिक थी परन्तु आज कैनीफोर्निया में प्रति एकड पैदावार चीन से दस गुना से भी अधिक है। बहुत से औद्योगिक देश जो खाद्यान्नों का आयात करते थे आज न केवल अपनी आवश्यकताओं की ही पूर्ति करते हैं। बल्कि वे अतिरिक्त खाद्योत्पादक भी करते हैं।

(5) किसान का शोषण :– चरणसिंह का विचार है कि हमारे यहाँ जोतों का आकार छोटा है, और यदि कृषि जिंसों की कीमतों को अलाभकारी स्तरों पर गिरने दिया जाय तो कृषि विकास नहीं होगा। तथा साथ ही मौसम की अनिश्चितताओं के कारण पैदावार में उतार–चढ़ाव भी होते हैं। फलस्वरूप कृषि उत्पादन का माँग के अनुरूप समायोजन नहीं हो पाता और यही किसानों की निर्धनता का कारण है। अतः किसानों के लिए कीमतों को व्यावहारिक बनाने और न्यूनतम कीमतो की गारटी देने से उसकी कहीं अधिक सहायता की जा सकती है। परन्तु भारत सरकार ने 29 अगस्त 1956 को अमेरिका से पी एल 480 के तहत रियायती दरों पर खाद्यान्न आयात का समझौता करके तथा वसूली मूल्य हमेशा बाजार कीमतों से कम रहने के कारण किसानों का अपेक्षाकृत अधिक खाद्यान्न उत्पादन करने का उत्साह नहीं रहा। जब अमेरिका ने अपनी सभी खाद्यान्न सहायता रोकने की धमकी दी, तभी हरित क्रांति के रूप में हमारी कृषि की नवीन नीति को अपनाया गया। 1972–73 में गेहूँ व्यापार का राष्ट्रीयकरण होने पर किसानों को अपने उत्पादन का कुछ भाग कम कीमत पर देने के लिए बाध्य होना पडा। राज्य व्यापार तो 1974 में बद कर दिया गया परन्तु तुलनात्मक रूप से कम कीमत की नीति जारी रही। दूसरी तरफ उर्वरकों की कीमतें बहुत अधिक रहने से किसान उनका अधिक उपयोग नहीं कर सके। चौधरी जी ने माइकेल लिपटन का इस सदर्भ में यह उल्लेख किया है कि कृषि की कीमतों की तुलना में उर्वरको की कीमतें पाकिस्तान की अपेक्षा भारत में अधिक रही है, और यह कीमतें विश्व में सब से अधिक है। इसलिए कृषि उत्पादकों की ऊँची कीमतों का माँगना उदारता अथवा राजकीय सहायता की दलील ही नहीं बल्कि समता के आधार पर एक सही दावा है।

उनका मत है कि किसानों का शोषण कृषि जिंसों की कम कीमत ही नहीं वरन् कृषि साधनो की ऊँची कीमत का भी होना है, उन्होंने इसे उदाहरण देकर सिद्ध किया है कि भारत में जहाँ एक 10 हार्स पावर टिलर 22,000 रूपये से अधिक में प्राप्त होता है जबकि जापान मे वह 16,000रु से भी कम कीमत पर किसान को प्राप्त हो जाता है। (यह तुलना 1978 की कीमतों के आधार पर की गयी है)। भारतीय किसान को अमेरिकी

किसान की तुलना मे नाइट्रोजन तथा डीजल की कीमत भी अधिक देनी पडती है, चाहे वह गरीब ही क्यो न हो जो उनके द्वारा दी गयी निम्न सारणी से दृष्टिगोचर होता है–

भारतीय और अमेरिकी किसानों के लिए नाइट्रोजन और डीजल तेल की तुलनात्मक लागत

मद	भारतीय किसान	अमेरिकी किसान
1 नाइट्रोजन प्रति किलोग्राम (रूपयो मे)	3 50 रूपये (यूरिया के रूप मे	1 63 रूपये (एनीड्राअस अमोनिया के रूप मे)
2 डीजल तेल (प्रति लीटर रूपयो मे)	1 50 रूपये	0 72 रूपये

चौधरी जी ने कृषि वैज्ञानिक और नोबल पुरस्कार विजेता डॉ नार्मन ई बोरलौग को 11 सितम्बर 1973 मे भारतीय कृषि शोध संस्थाओ के भाषण के इस कथा को अद्भूत करते हुए कहा कि भारत मे अनाज की पैदावार और भी कम होती जायेगी यदि अनाज की कीमते अवास्तविक रूप से कम रखी जाती है। हरित क्रांति की असफलता के मुख्य कारणो मे उन्होने एक कारक वसूली कीमतो की कमी को भी माना है। सरकार ने एक तरफ गेहूँ और चावल की कीमतो को बढने नही दिया दूसरी तरफ उन वस्तुओं के मूल्यो पर सरकार ने नियत्रण का कोई प्रयत्न नहीं किया जिन्हे किसानों को खरीदना था। इससे किसानो का दुहरा शोषण हुवा जिसमे सरकार की नीतियॉं ही मुख्य भागीदार रही।

चौधरी जी के अनुसार सरकार तथा नगरवासियों की ओर से प्राय यह तर्क दिया जाता है कि यदि किसानो को खाद्यान्नो की ऊँची कीमत दी गयी तो इससे मुद्रास्फीति बढेगी। परन्तु स्फीति का कारण यह न होकर प्रतिवर्ष बजट घाटे को पूरा करने हेतु अतिरिक्त नोटो का निर्गमन रहा है। दूसरी तरफ जब सरकार अपने कर्मचारियो को अतिरिक्त महँगाई भत्ता प्रदान करने का निर्णय लेती है तो सरकार या ऐसे व्यक्तियों के दिमाग मे मुद्रास्फीति के बारे मे कोई तर्क नहीं होता, यह बात उस समय भी याद नही रखी जाती जब औद्योगिक मजदूरो की मजदूरी बढाई जाती है। चौधरी जी के अनुसार किसानो को अधिक कीमत मिलने से कृषि मे विनियोग बढेगा और वह ज्यादा उत्पादन कर सकेगा।

उनके अनुसार एक तरफ सरकार खाद्यान्ना की कीमत नही बढाती और दूसरी तरफ विदेशी मुद्रा का सकट होते हुए भी उससे कही अधिक दर पर विदेशो से आयात करती है। उन्होने 1974 का उदाहरण देकर स्पष्ट किया है कि उस वर्ष मे 200 डालर टन की औसत कीमत पर गेहूँ आयात किया गया जबकि देश मे वसूली मूल्य 105 रूपये प्रति क्विटल अथवा 132 डालर प्रति टन निर्धारित किया और खास बात यह थी कि आयातित गेहूँ की गुणवता से देशी गेहूँ की गुणवता कही अधिक अच्छी थी।

कृषि कर के सम्बन्ध में उन्होने कहा है कि जो लोग कृषि कर की बात करते हैं, उन्हे यह भी पता नहीं है कि प्रत्येक किसान को चाहे उसकी आय कुछ भी क्यो न हो, राज्य सरकार को भू राजस्व अथवा विकास कर के रूप मे प्रत्यक्ष कर देना होता है जबकि एक नगर निवासी या कृषितर कामगार को केवल उस स्थिति मे ही कर देने की आवश्यकता है, जब वह प्रतिवर्ष 12,000 रूपये से अधिक राशि की आमदनी कर पाता है।

चौधरी जी ने सरकार की **खाद्यान्न कीमत नीति का मुख्य उद्देश्य शहरी उपभोक्ताओं को खाद्यान्न आपूर्ति का साधन माना है**, चाहे उनकी आर्थिक स्थिति कैसी भी हो, उन्हे सस्ती दरों पर खाद्यान्न, वनस्पति, तेल, चीनी आदि सरकार हानि सहन करके भी आपूर्ति करती है, जबकि शहरो की अपेक्षा गॉवो में ज्यादा गरीब होते हुए भी वहाँ 30 प्रतिशत से अधिक राज सहायता खाद्यान्न कभी भी नहीं पहुँचा है।

अत चरणसिंह ने भारत सरकार की इस नीति को शोषण एव असमान व्यवहार का प्रतीक माना है, जिसका मुख्य कारण राजनीतिक सत्ता शहर के निवासियों के हाथो मे होना है जो शहरी हितों को ही प्राथमिकता देते हैं।

(6) गाँव की वचना :– चौधरी जी के अनुसार 1947 के बाद से शहरी क्षेत्र के मुकाबले मे गॉवो मे रहन–सहन का स्तर अथवा प्रति व्यक्ति आय में गिरावट आयी है और गॉवो तथा शहरों के बीच असमानता की खाई अधिक चौडी हो गयी है। सामाजिक सुविधाओं जैसे स्वास्थ्य, आवास, परिवहन, बिजली और शिक्षा की व्यवस्था करने में गॉव तथा शहर के बीच सरकारी भेदभाव से ही गॉवो के प्रति सरकार के रवैये का पता चल जाता है। पीने का साफ पानी को ही लीजिए, पॉचवी योजना के शुरुआत मे 85 प्रतिशत शहरी आबादी को नल का पानी मिल रहा था, जबकि 1,16000 गाँव ऐसे थे जिनमे 6 कराड से अधिक निवासियों के लिए पीने के साफ पानी की कोई व्यवस्था ही नहीं थी। इनमे से भी 90,000 तो ऐसे गॉव थे जिनके आस–पास एक मील की दूरी तक पानी का कुआ भी नहीं था।

बिजली की आपूर्ति के सदर्भ में उनके विचार हैं कि एक तो गॉवो को बिजली मिलती नही और जहॉ मिलती है वहॉ उन्हे उद्योगों से अधिक कीमत पर एव कम समय दी जाती है। *शिक्षा के सदर्भ मे उन्होने लिखा है कि **शिक्षा से** जितना आदमी का दिमाग खुल जाता है उतना और किसी वस्तु से नही परन्तु शिक्षा का भी झुकाव गॉवों की अपेक्षा शहरों की तरफ रहा है। 1971 की जनगणना के अनुसार गॉवो में साक्षरता 23.74 प्रतिशत* रही जबकि शहरों में यह 52.49 प्रतिशत थी। जहॉ तक उच्च शिक्षा तथा तकनीकी शिक्षा का सवाल है, वहॉ इसे गॉवों से पूर्णतया दूर रखा गया है, जिसका नतीजा यह निकलता है कि उच्च सेवाओ मे अधिकतर शहर वाले ही चुनकर आते हैं गॉव वाले नहीं।

चरणसिंह ने कृषि और गॉवों की उपेक्षा का कारण यह माना है कि हमारा शासक वर्ग शहरी है, उसका दृष्टिकोण शहरी है। अत देश का नेतृत्व जब तक गॉवो की

आवश्यकताओ तथा वास्तविकताओ से अपरिचित होता है उस हद तक उसकी आर्थिक नीति जाने या अनजाने शहरो के लिए ही होती है। उन्होने इस सदर्भ मे यह भी विचार व्यक्त किया है कि उच्चतर सेवाओ की भर्ती अधिकाधिक अनुपात मे वर्तमान नौकरशाही से ही हो रही है। अत वर्तमान नौकरशाही एक विरासती जाति बनती जा रही है और गॉव वालो के लिए इन सरकारी नौकरियो के दरवाजे बद से होते जा रहे हैं।

चौधरी जी का विचार है कि इन सब का प्रभाव यह हो रहा है कि वर्तमान शिक्षा पद्धति ने लोगो को गॉव से शहर की ओर जाने के लिए प्रोत्साहित किया है। जिससे असमानता बढ रही है। ग्रामीण भी शहरी जीवन को अपना भविष्य का आदर्श मानने लगे हैं और गॉवो का विकास नही हो पाता।

II औद्योगिक ढाचा

चरणसिह के अनुसार कृषितर साधनो का विकास जीवन–स्तर को ऊँचा उठाने के लिए नही बल्कि रोजगार के साधन के रूप म भी आवश्यक है। हमे 1947 में राजनीतिक स्वतत्रता प्राप्त करने के बाद किस प्रकार की औद्योगिक अभिरचना अपनानी चाहिए थी। इस सम्बन्ध मे दो दृष्टिकोण है–एक भारतीय जागरण के प्रेरक महात्मा गॉधी का और दूसरा स्वतत्र भारत के प्रथम प्रधानमत्री जवाहरलाल नेहरू का। गॉधी जी हमेशा देश मे कुटीर उद्योगो को प्रोत्साहन दिया करते थे वह हमेशा कहते थे भारत गॉवो मे रहता है शहरो मे नही । गॉव वाले गरीब हैं उनमे अधिकतर बेरोजगार या अल्परोजगार प्राप्त होते हैं। अत उनको उत्पादक रोजगार देना होगा जिससे देश की सम्पत्ति बढे। उनका तर्क था कि जब देश मे पर्याप्त मानव शक्ति हो और हमारे पास पूँजी की कमी हो तो हमे पूँजीगत यत्रीकृत उद्योग जो पश्चिमी आदर्श है जिनसे न केवल बेकारी ही बढेगी अपितु धन का सकेन्द्रीकरण कुछ ही लोगो के हाथो मे होगा और इन बुराईयों के साथ पूँजीवाद का उदय होगा। इसलिए उन्होने कुटीर व हस्तशिल्प उद्योगो पर जोर दिया। गॉधी का आदर्श चर्खा था परन्तु गॉधी जी का उद्देश्य यह नहीं था कि सभी मशीनरी का उन्मूलन कर दिया जाय वे केवल उनके परिसीमन के पक्ष मे थे। गॉधी जी के ही शब्दो मे यदि हमे मशीनो की आवश्यकता महसूस होगी तो हम निश्चय ही उन्हे प्राप्त करेगे। ऐसी प्रत्येक मशीन की उपयोगिता है जो व्यक्ति की सहायता करे लेकिन उन मशीनो का हमारे जीवन मे कोई स्थान नहीं होना चाहिए जिनके माध्यम से केवल कुछ ही लोगो के हाथो में सत्ता केन्द्रित हो जाती है और जो आम लोगो को केवल मशीन प्रवृत्त बनाती हो यदि वास्तव में वे उन लोगों को बेरोजगार न करती हों उनको छोटी इकाइयो द्वारा विकेन्द्रित उत्पादन पसन्द था।

इसके विपरीत नेहरू जी बडे पैमाने के उद्योगो के विकास के पक्ष मे थे उनकी नीति की प्रमुख बात उत्पादन है न कि रोजगार। रोजगार महत्वपूर्ण है लेकिन उत्पादन के सदर्भ में बिल्कुल महत्वहीन है और उत्पादन पहले से श्रेष्ठतर तकनीको से ही बढ

सकता है। नेहरू जी व उनके सलाहकारों ने मान लिया था कि देश को भारी उद्योगों–कोयला, बिजली, लोहा व इस्पात, भारी रासायनिक कारखानो की आवश्यकता है, जिससे भारी उद्योगो का उत्पादन होता रहेगा। उनकी मान्यता थी कि तेज सवृद्धि के लिए भारी उद्योगों का होना आवश्यक है, उनके विस्तार से अर्थव्यवस्था स्वावलम्बी होगी, उनके विकास से ही मध्यम एव लघु उद्योगो मे जान आयेगी, और अन्ततोगत्वा वृहत्तर रोजगार क्षमता भी बढ़ेगी।

पूँजी प्रधान उद्योगों के अनुकूल परिस्थितियाँ अविद्यमान :—चरणसिंह के विचारो में नेहरू जी विकास की जिस पश्चिमी नीति की नकल करना चाहते थे, उसके लिए इतनी अधिक पूँजी लगाने की जरुरत है जो भारत के लिए सभव न तब थी और न अब है। इसके साथ ही भारत में भूमि एव प्राकृतिक साधनो की मात्रा एव गुणवता स्थिर है, जबकि आबादी बढ़ रही है। ऐसी स्थिति मे आर्थिक सवृद्धि तभी हो सकती है, जब देश मे पूँजी निर्माण बढे। पूँजी निर्माण बचत तथा करो की मात्रा पर निर्भर करती है, और हमारे लोगों की आमदनी कम होने से न तो बचत ही ज्यादा है, और न ही करो से ज्यादा आय प्राप्त हो सकती है।

चरणसिंह की मान्यता है कि यदि भारत एक सौ वर्ष पहले ईमानदारी और मेहनत के साथ अपना औद्योगिकरण करता तो उसके लिए विकास का पश्चिमी मार्ग खुला हुआ होता, क्योंकि एक सौ वर्ष पहले इस पूरे महाद्वीप की कुल जनसख्या 20 करोड़ से ज्यादा नहीं थी, मृत्यु दर ऊँची थी, जनसख्या वृद्धि की दर आधे प्रतिशत से भी कम थी और उद्योगो में लगाने के लिए तब आज की जितनी अधिक पूँजी की जरुरत नहीं होती। लेकिन आज वह रास्ता पूरी तरह बद है, भारी उद्योगों के लिए जितनी पूँजी चाहिए, उतनी न तो हमारे पास है, और न ही हम जमा कर सकते हैं, और न ही भारी उद्योग आज की बढती जनसख्या को रोजगार दे सकते हैं।

चरणसिंह ने नेहरू जी की रूस का अनुसरण करके भारी उद्योगो को प्राथमिकता देने सबधी नीति की इस आधार पर आलोचना की है कि रूस ऐसा उदाहरण प्रस्तुत नहीं करता जिसका भारत उपयोगी रूप मे अनुसरण कर सके। आज की परिस्थितियो मे साम्यवाद उत्पादन बढाने मे उतना सक्षम नहीं है, जितना की पूँजीवाद है। उनके विचार में भारत चीन से भी कुछ नहीं सीख सकता, यदि साम्यवाद के तरीके से रूस ने स्पष्ट रूप से अपनी जनता के रहन–सहन का स्तर ऊँचा नही किया, जबकि उसके पास पर्याप्त ससाधन थे। चीन के पास तो बहुत कम ससाधन होने से ऐसी आशा ही नहीं की जा सकती है। यदि चीन ने भारत की तुलना में थोडी सफलता भी प्राप्त की है, तो इसका मुख्य कारण उसके द्वारा गाँधी जी की एक से अधिक शिक्षाओं का ग्रहण करना है।

चरणसिंह के अनुसार नेहरू जी पश्चिमी अर्थशास्त्रियों–नर्कसे तथा लेविस की इस दलील के शिकार हो गये कि निर्धन देशो मे आय कम है, इसलिए बचत कम है, बचत कम होने से निवेश कम होता है इसलिए उत्पादकता कम है, क्योंकि उत्पादकता कम

है इसलिए आय कम है अतः विशाल विदेशी सहायता के बिना प्रचुर विकास नहीं कर सकते। परन्तु हमारे लिए एक रास्ता और भी खुला हुआ था जो गाँधीजी ने हमें दिखाया था वही था देश का धीरे–धीरे व धैर्यपूर्वक अपने ससाधनों के सहारे नीचे से निर्माण किया जाय। लेकिन नेहरू जी अमेरिका व सोवियत सघ की तरह एक औद्योगिक अभिरचना की सहायता करने पर तुले हुए थे। इसलिए उन्होने सारा ध्यान व सारी मेहनत विदेशी पूँजी व विदेशी प्रौद्योगिकी प्राप्त करने मे लगा दी। यही नहीं उन्होने सारे घरेलू ससाधन भी भारी उद्योगो मे लगा दिए और खाना पानी कपडा मकान शिक्षा व स्वास्थ्य की आवश्यकताओ तक की उपेक्षा की।

समाजवाद और मिश्रित अर्थव्यवस्था – चरणसिंह के अनुसार पश्चिमी साहित्य मे वर्णित जनतत्र मे दृढ विश्वास रखने और साथ ही रूसी क्राति के उद्देश्यों से आकर्षित होने की वजह से भारतीय राज–नेताओ विशेषकर नेहरू जी एक ऐसी राजनीतिक– आर्थिक व्यवस्था के स्वप्न देखते थे जिसमे न किसी का शोषण हो सके बल्कि हर एक को अपनी उन्नति के लिए अवसर भी मिल सके। इसलिए नेहरू जी ने समाजवाद व पूँजीवाद मे समझौता करके 'मिश्रित–अर्थव्यवस्था' स्वीकार करली *जिसमे राष्ट्र के भौतिक ससाधनों पर कुछ राज्य का और कुछ नागरिकों का स्वामित्व रहे* तथा सार्वजनिक व निजी क्षेत्र एक साथ चले। नेहरू जी की समाजवाद मे अटूट श्रद्धा उनके इस कथन से स्पष्ट हो जाती है 'मै इस बात का कायल हूँ कि विश्व की समस्याओं और भारत की समस्याओं के निराकरण की कुँजी समाजवाद में ही निहित है और जब मै इस शब्द का प्रयोग करता हूँ तब मैं अस्पष्ट मानवतावादी तरीके के रूप में नहीं बल्कि समाजवाद को एक वैज्ञानिक आर्थिक विचार के रूप मे समझता हूँ। फिर भी समाजवाद आर्थिक सिद्धान्त से भी कहीं बढकर है मुझे समाजवाद के *अलावा कोई भी मार्ग नहीं दिखाई देता जिससे भारतीय लोगों की गरीबी उनकी* व्यापक बेरोजगारी उनके पतन और गुलामी को दूर किया जा सके।' चरणसिंह के अनुसार उनकी ये नीतियाँ ही देश का दुर्भाग्य साबित हुई।

1959 मे काग्रेस अधिवेशन मे सहकारी कृषि के सबध में सकल्प पारित किया और 1971–73 में इस आशय की घोषणा की गयी कि कृषि क्षेत्र मे पर राजकीय अथवा सयुक्त फार्मों की स्थापना की जाये तथा भूमि के राष्ट्रीयकरण पर भी विचार किया जाने लगा। सभी साम्यवादियो के समान नेहरू जी को भी उद्योग की भाति कृषि मे भी बडी यूनिटो पर विश्वास था। यही कारण था कि उन्होने काग्रेस–मच से सहकारी कृषि के पक्ष मे सकल्प पारित करवाया और राजकीय फार्मिंग के विचार के साथ भी खिलवाड की।

चरणसिंह के अनुसार नेहरू जी के समान ही इदिरा गाँधी ने भी समाजवाद का नारा दिया और इसी मार्ग पर अग्रसर होकर बैको एव अन्य सस्थाओ का राष्ट्रीयकरण किया। लेकिन इन मामलों में गाँधी जी की आवाज अनसुनी कर दी गयी जिसका नतीजा यह हुआ कि राष्ट्रीयकरण अथवा सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों की स्थापना के प्रयोग आर्थिक सवृद्धि के हमारे मार्ग में बडे–बडे पत्थर जैसे अवरोध बनकर उभरे हैं।

इस सदर्भ मे यह ध्यान देने योग्य बात है कि आज हमें चरणसिह के विचारों के अनुरूप ही चलने हेतु बाध्य होना पड रहा है क्योकि धीरे–धीरे पुन हम घाटे में चल रहे सार्वजनिक उद्योगो को निजी क्षेत्र के अधीन करते जा रहे हैं।

विदेशी ऋण एवं सहायता :– चरणसिह के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र मे भारी उद्योग की स्थापना के साथ–साथ मौजूदा निजी उद्योग के राष्ट्रीयकरण से भारत पर विदेशी कर्ज का बोझ नावाजिब ढग से बढा है। स्वतत्रता के समय देश मे अग्रेज रिजर्व बैंक मे 1,180 करोड रूपये के सिक्के व सोना तथा अन्य कीमती धातुएँ छोड कर गये थे। इसके अलावा इग्लैण्ड 1,733 करोड रूपये का देनदार (हमारा कर्जदार) था और हमे युद्धपूर्व ऋण के भुगतान मे 425 करोड रु मिलने थे साथ ही 115 करोड रूपये ब्रिटिश साम्राज्य के पास जमा डालरो मे से भी हमारा हिस्सा मिलना था। अर्थात कुल मिलाकर हमारे पास 3 453 करोड रूपये थे। परन्तु आज निर्यात बढने तथा विदेशी शासको के रख–रखाव के लिए रूपया भेजना बद हो जाने पर भी भारत सर्वोच्च ऋणी देशो मे हो गया है। आज हमारी दशा यह है कि हमे विदेशी ऋणो पर ब्याज चुकाने हेतु भी ऋण लेना पडता है। उनके अनुसार 1972 में भारत पर विदेशी ऋण राष्ट्रीय आय का 20 2 प्रतिशत था। हम अग्रेजो द्वारा छोडा धन पानी की तरह बहा चुके हैं। 1951–79 की अवधि मे हमारे द्वारा माँगी गयी राशि 19231 6 करोड रु थी ओर इसमे 9 7 प्रतिशत सीधा अनुदान था।[8]

सिह ने स्पष्ट किया है कि विदेशी विनिमय के सकट एव पी एल–480 के अन्न के आयात की बढती हुई निर्भरता ने ही हमारे नीति निर्माताओ को विश्व बैंक के अधीन धनी देशो से सहायता की कीमत पर अपने आधारभूत दृष्टिकोण के प्रति समझौता करना पडा और 1966 का अवमूल्यन हमारे ऊपर थोप दिया गया जिसके फलस्वरूप एक ही बार मे विदेशी ऋण दायित्वो में 2,648 करोड रु की वृद्धि हो गयी।

हमे अपने ऋणो के भुगतान के लिए दिन–प्रतिदिन की आवश्यकताओ की वस्तुएँ–चाय, चीनी, कॉफी, तिलहन, बासमती चावल काजू आदि का निर्यात करना पडता है, और अपने देश के लोगो को भूखा रखा जाता है तथा उपलब्ध वस्तुओ की कीमते बढ जाती है। सिह के विचार में भारत जैसे विकासशील देश ऋणों के रूप में विदेशी सहायता माँगता है लेकिन यह बात भुला दी जाती है कि विदेशी सहायता की निर्भरता आर्थिक रूप से गला घोटने वाली ही नहीं बल्कि अपमानजनक भी है। नेहरू जी तो उद्योग के मूर्ति–पूजक थे वह विदेशी पूँजी को लाने के लिए चाहे वह कर्जो की शक्ल मे हो या चाहे विदेशी पूँजीपतियो द्वारा यहाँ लगायी गयी हो–कमर कस कर जुट गये। परन्तु नेहरू जी को यह मालूम नहीं था कि भारतीय वित्तीय ससाधनो का विदेशियो द्वारा लूटे जाने का ही नाम विदेशी सहयोग है।

चरणसिह ने नेहरू जी की विदेशी सहायता के दृष्टिकोण की इस आधार पर आलोचना की है कि हम ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के शोषण से स्वतत्रता प्राप्त करने का सघर्ष

किया था और अपने देश को स्वतन्त्रता दिलायी थी परन्तु आज हमारे यहाँ केवल एक विदेशी शोषक ही नही बल्कि कई शोषक हैं (बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के रूप मे) जिन्होने मिलकर 25 वर्षो की अवधि मे 7 गुना शोषण बढा दिया है। चरणसिह ने इस बात पर अफसोस जाहिर किया है कि हमारे पास न आवश्यक मात्रा में पूँजी है न आवश्यक मात्रा में प्राद्योगिकी है जिसकी वजह से हम दूसरों की सहायता का सहारा लेने के ऐसे कुचक्र में फस गये हैं जिसका कहीं अत नहीं है। दुख की बात यह है कि हमारे राष्ट्र का आर्थिक *विकास विदेशी पूँजी विदेशी मशीनो और विदेशी प्रौद्योगिकी पर निर्भर है। जबकि चीन* एव जापान ने न विदेशी पूँजी का आयात किया न विदेशी प्रबध का परन्तु आज वे विकास के शिखर पर है। जबकि हमने दियासलाई जैसी तुच्छ वस्तु का उत्पादन भी विमको जैसी बहुराष्ट्रीय कम्पनी को सभला दिया जो माचिस के कुल उत्पादन के 80 प्रतिशत से अधिक भाग पर कब्जा किये हुए है।

चरणसिह के अनुसार इन विदेशी कम्पनियो द्वारा देश की लूट मे हमारे कुछ राजनीतिक नेता भी साझेदार हैं। *जिन्हे ये विदेशी कम्पनियाँ चन्दा मदिरा की आपूर्ति* विलासपूर्ण होटलो मे मनोरजन तथा विदेश जाने पर उनकी आतिथ्य की व्यवस्था उपलब्ध कराती है और वे इनके हितो के पोषक होते है।

चरणसिह ने इसे **नवउपनिवेशवाद** की सज्ञा दी है जो देश का तरह–तरह से शोषण करती है इस शोषण के सबध मे अनुमान लगाने की बात तो अलग है अभी तक इसे रोकने के लिए कोई प्रभावी कदम भी नहीं उठाये गये हैं क्योंकि इस लूटपाट मे राजनीतिज्ञ एव अधिकारी वर्ग भी हिस्सा बँटाते है और प्रबुद्ध समाज को पतनोन्मुख कोका कोला एव चुइगम सस्कृति का उत्साही मार्गदर्शन बना दिया है।

निजी क्षेत्र व आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण – चरणसिह के अनुसार काग्रेस ने सविधान में उल्लेखित नीति–निर्देशक सिद्धातों के अनुसरण में मार्च 1971 के लोक सभा चुनावों मे यह वचन दिया कि कतिपय लोगो के हाथो मे आर्थिक सत्ता और सम्पत्ति का सकेन्द्रण नहीं होने दिया जायेगा क्योंकि यह स्थिति लोकतत्र और सामाजिक न्याय की सकल्पना के साथ मेल नहीं खाती। लेकिन दूसरे क्षेत्रों की तरह आगे चलकर इस विषय को भी भूला दिया गया और भारी उद्योगो के कारण हमारे यहाँ हर वर्ष सम्पत्ति व आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण चौकडियाँ भर–भर कूद कर बढ रहा है तथा टाटा बिडला मफतलाल सिघानिया थापर आदि घरानों की परिसम्पत्ति में दिन–रात वृद्धि हो रही है।

उनके अनुसार इन बडे–बडे घरानो ने देशी प्राद्योगिकी के विकास के लिए कोई भी उल्लेखनीय प्रयास नहीं किये हैं जबकि उनके हाथ मे विशाल मानवीय और अन्य ससाधन है। उनकी सवृद्धि का अधिकाश भाग विदेशी प्राद्योगिकी और पूँजी के आयात पर ही निर्भर करता है तथा इनकी परियोजना लागत का 50 प्रतिशत भाग सार्वजनिक क्षेत्र

की वित्तीय सस्थाओं द्वारा ही वित्तपोषित किया जाता है। 11 दिसम्बर, 1963 में नेहरू जी ने भी स्वीकार किया था कि योजना से सम्पत्ति कुछ ही हाथों में सकेन्द्रित नहीं होनी चाहिए लेकिन सरकार और योजना आयोग दोनों ही सकेन्द्रण को बचाने के लिए प्रभावकारी उपाय करने में असफल सिद्ध हुए।

बढती हुई आय की असमानताएँ :– चरणसिह के अनुसार राजनीतिक स्वतत्रता प्राप्त किए हुए हमें 30 वर्ष से अधिक समय व्यतीत होने के बाद हमारी जनसख्या का 2/5 भाग राष्ट्रीय आय का लगभग 16 प्रतिशत भाग प्राप्त करता है, जबकि इसकी तुलना मे शीर्ष 5 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 22 प्रतिशत भाग ले लेते हैं, जो हमारी जनसख्या के कुल आधे लोगो को प्राप्त आय से कुछ ही अधिक है। देश में एक तरफ पाच सितारा सस्कृति फलफूल रही है तो दूसरी तरफ लाखो लोग ऐसे हैं जो सडकों पर रहते हैं, पटरियों पर सोते हैं, पहिनने के लिए कपडे नहीं है। देश में भारी उद्योगो ने चाहे वे निजी क्षेत्र में हो या सार्वजनिक क्षेत्र मे दोहरी अर्थव्यवस्था उत्पन्न करदी है, जिसके फलस्वरूप गरीबी, बेरोजगारी और निष्क्रियता के भीतरी प्रदेश मे समृद्धि के कुछेक क्षेत्रों का ही निर्माण हो पाया है। इससे शीर्ष के लोगों के हाथ मे सम्पत्ति एकत्रित हो गयी है और लाखो लोग बेकार और गरीब हो गये हैं। **"गरीबी हटाओ"** नारा के बाद भी एकाधिकारी घरानो का तेजी से उदय हो रहा है, जिनकी सम्पत्ति दिन–रात बढ रही है तथा वे विलासमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं तो दूसरी तरफ गदी बस्तियों में रहने वाले बेकारो की भीड तथा रोटी के एक ग्रास के अभाव में मरने वालों की सख्या बढ रही है।

चरणसिह ने आय की असमानता बढने के कारकों में कुछ औद्योगिक घरानों द्वारा अर्जित आय के अलावा औद्योगिक कामगारों, बैंकों, विभिन्न निगमों में कार्यरत कर्मचारियों का बढता वेतन ,महँगाई भत्ता से अर्जित आय को मुख्य माना है, साथ ही कोटा या धारक, लाइसेसधारी, लाभ उठाने वाले, तस्कर, काला धधा करने वाले, कमीशन ऐजेंट, ट्रॉसपोर्टर और भ्रष्ट राजनीतिज्ञों से भी आय मे असमानताएँ बढती हैं। उनके अनुसार काग्रेस के समाजवादी रूप ने समाज के उच्च शिखर के लोगो को जो कि हमारे जनमानस में 10 प्रतिशत है, और ये लोग औद्योगिक कार्यकर्त्ता तथा सरकारी कर्मचारी होते हैं, ये सबसे अधिक धनी व्यक्ति शहरी जनसख्या में मिलते हैं। भारी उद्योगों में परिणामस्वरूप कृषि को तो पूँजी के अभाव से ग्रस्त कर दिया है और एक कृषक तथा कामगार की आय के बीच की खाई दिन–रात चौडी होती जा रही है। उनके अनुसार 1950–51 में इनका अनुपात 1 2 का था जो बढकर 1976–77 में 1.4 हो गया । और यह स्थिति उस भारत की है जो समाजवादी है।

बढती हुई बेरोजगारी :– चरणसिह के अनुसार भारी उद्योगों पर जोर देने के परिणामस्वरूप भारत में बेरोजगारी एव अल्परोजगार बढा है और सबसे बडा सामाजिक एव आर्थिक दुर्गुण सिद्ध हो रही है। नेहरू जी को प्राद्योगिकी एव भारी उद्योग रूपी जुडवाँ

देवताओं पर अंधविश्वास था। यह विश्वास गलत साबित हुआ। पश्चिम मे श्रम की कमी थी इसलिए आदमी की जगह मशीन से काम लेना जरुरी था। पर यह प्रौद्योगिकी भारत जैसे देशो की समस्या का हल नही है जहाँ श्रमिको को अल्परोजगार मिलता है और वे भर–पेट खाना नही खा पाते तथा पूँजी की बेहद कमी है। नेहरू जी को यह भ्रम हो गया कि भारी पूँजी–प्रधान उद्योगो से उत्पादन बढता हे जिसस राष्ट्रीय आय अथवा सकल राष्ट्रीय उत्पाद मे वृद्धि होती है इससे गरीबी एव बेरोजगारी की समस्या अपने आप ही हल हो जायेगी। अर्थव्यवस्था मे इतनी जान आ जायेगी कि वह अपने आप ही बढने लगेगी और छोटे एव मध्यम उद्योगो में भी जान फूँक देगी जिससे रोजगार के बहुत से नय रास्ते खुल जायगे। नेहरू जी इसलिए राष्ट्रीय आय बढाना ही नियोजन का लक्ष्य मानते थे और उनकी दृष्टि मे रोजगार के नये अवसर आय– वृद्धि का उप– उत्पाद मात्र थे। इसीलिए सवृद्धि को अधिकाधिक द्रुतगामी बनाने के लिए पूँजी को रियायतें प्रदान की गयी और पूँजी प्रधान लागत बढाने के लिए प्रशासनिक नियत्रण का प्रयोग किया । रोजगार को सम्पूर्ण सवृद्धि उप–उत्पाद बनाकर पीछे का दर्जा दिया गया। यह भी तर्क दिया गया कि श्रम प्रदान सस्थानो की आय इतने लोगों में बट जायेगी कि दुबारा लगाने के लिए बचत करने लायक किसी की आय नहीं होगी।

चरणसिह के मत म रोजगार व उत्पादन मे तथा रोजगार मे वृद्धि और आय में कोई विरोध नहीं है। सामाजिक न्याय तथा विकास एक साथ सम्भव है। गाँधी जी की सलाह के विपरीत नेहरू आधुनिक क्षेत्र के मोह म फस गये क्योकि आधुनिक तकनीकी का जादू इतना मोहक था कि वे चौंधियॉ गय और यह नहीं देख सके कि एक उप–उत्पाद के नाते प्राद्यागिकी हमारी अर्थव्यवस्था मे बेकारी बढाकर व आय की असमानताओं में वृद्धि कर कितनी सामाजिक कीमत वसूल कर रही हे। नतीजा यह है कि स्वराज्य के तीस वर्ष बाद भी देशभर मे गॉवों मे दरिद्रता और बेकारी बढती जा रही है। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। बल्कि सोच–समझ कर चलायी गयी योजना का नतीजा है। सत्रह से अधिक वर्षो तक भारी उद्योगो को तरजीह देने की नीति से जब देश को बहुत हानि हो चुकी तब नेहरू जी की समझ में आया कि गाधी जी सही कहते थे। 11 दिसम्बर 1963 में नेहरू जी ने ससद मे कहा कि मैं अधिकाधिक महात्मा गाँधी के दृष्टिकोण के बारे में सोचने लगा हूँ मैं पूरी तरह से आधुनिक मशीन का प्रशसक हूँ और बेहतरीन मशीन व बेहतरीन तकनीक चाहता हूँ लेकिन हमारे देश में हालत यह है कि हम आधुनिक युग म चाहे जितना बढ जाये उसका बहुत दिनो तक हमारे लोगों की बहुत बडी सख्या पर कोई प्रभाव नही पडेगा। उन्हे उत्पादन में भागीदार बनाने के लिए कोई और उपाय करना होगा चाह उत्पादन यत्र आधुनिक के मुकाबले मे बहुत कुशल न हों। परन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी थी और छह महीने मे ही वे चल बसे।

निष्कर्ष रूप में चरणसिह ने देश मे बढती हुई बेरोजगारी का मूल कारण नेहरू जी द्वारा अधिकाधिक पूँजी प्रधान उद्योगों का स्थापित करना माना है जिससे अधिक लोग

बेकार हो जाते हैं। इसलिए हमारे देश मे लबी–चौडी योजनाएँ जिनमें जरुरत से अधिक बल भारी उद्योग पर दिया जाता है , पॉच वर्ष मे जब पूरी होती है, तो मालूम होता है कि पहले से अधिक बेरोजगारी फैली हुई है। भारत अग्रेजों के आने से पूर्व विशुद्ध रूप से कृषि देश ही नहीं था, यह एक महत्त्वपूर्ण निर्माण केन्द्र भी था। इस देश से यूरोप, अरब, मिश्र और चीन को बहुत सी वस्तुएँ निर्यात की जाती थीं। अग्रेजों ने अपने स्वार्थ के कारण भारतीय हस्तकलाओं को उखाड फेका और देश में उद्योग ही कम नहीं हुए वरन् कृषि की स्थिति भी निम्नतर स्थिति मे पहुँच गयी। परन्तु स्वतत्रता बाद भी हमारी सरकार की अव्यावहारिक नीतियों से गॉवों मे कृषि को छोडकर कोई धधा नहीं बचा है। पूँजीवादियो के हित में आधुनिकीकरण के नाम पर मशीन प्रक्रिया के लागू करने से रोजगार कम होता गया और असख्य लोग बेरोजगार होते जा रहे हैं।

श्रम नीति :–चरणसिह के अनुसार, आर्थिक, विशेषकर औद्योगिक विकास भारतीय नीति का मुख्य लक्ष्य रहा है, औद्योगिक विकास को एक मजबूत और स्पष्टतया परिभाषित श्रम नीति की आवश्यकता है, जिससे श्रमिक उत्पादकता बढे, लेकिन सरकार आज तक इस प्रकार की नीति का निर्माण करने में असफल रही है। इसके विपरीत ऐसे श्रम कानून देश मे बनाये गये हैं जो प्रगति मे अवरोधक ही सिद्ध हुए हैं। सिह की मान्यता है कि भारत में औद्योगिक श्रमिक प्रारम्भ से ही दूसरे देशों की तुलना मे अधिक अधिकार एव सुविधाएँ प्राप्त करता रहा है। हमने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की सिफारिशों को बिना विवाद के स्वीकार किया। परन्तु इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं दिया कि भारत जैसे कम विकसित देशों में जहॉ रहन–सहन का स्तर दयनीय हो, हम भी कामगारो को वही सुविधा उपलब्ध करवाये जो कि पश्चिमी देशों के कामगारो को मिलती है। उन्होने कुछ कानूनों की *व्याख्या कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि इन कानूनो से* देश की अर्थव्यवस्था मे उत्पादन भी नहीं बढा है, बल्कि अव्यवस्था और अराजकता का माहौल ही पैदा हुआ है। जिनकी विवेचना इन्होने निम्न रूप में व्यक्त की है–

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 के अनुसार एक बार मजदूरी की कम से कम दर निर्धारित होने के बाद नियुक्त उन्हीं निर्धारित दरों पर मजूदरी का भुगतान करे, चाहे उसकी क्षमता हो या ना हो, साथ ही सबधित सरकार को 3 वर्षों मे या प्रतिकूल कीमत वृद्धि की दशा में मजदूरी में सशोधन करना चाहिए। इसके अलावा बोनस, उपदान राशि, भविष्य निधि , बीमा अथवा परिवार पेंशन, प्रबध में भागीदारी, बर्खास्त किए कामगारों को प्रतिकर भुगतान आदि के लिए भी कानून बनाए।

चरणसिह के विचार मे इन प्रावधनों की तुलना उस सुरक्षा और सुविधाओं से की जानी चाहिए जो एक औसत ग्रामीण को, यहॉ तक कि नगर निवासी अथवा उद्योगत्तर कामगार को मिलती है। अब बोनस भी अनुग्रही अदायगी अथवा लाभ का हिस्सा नहीं रहा है। एक माह का वेतन बोनस के रूप में भुगतान करने का मुद्दा कामगारों ने नहीं बल्कि केन्द्रीय श्रम मत्रालय ने स्वय 1971 में शुरु किया था। यह एक राजनीतिक चाल थी।

उनके अनुसार श्रमिक सघो पर राजनीतिक दलो का आधिपत्य होता है और कभी–कभी ये सघ कामगारा को न केवल हिसा के लिए बल्कि उस सयत्र को नष्ट करने के लिए भडकाते हैं जो उनके जीवन–यापन का मुख्य स्रोत है। दुर्भाग्य से सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगा मे भी श्रमिको की प्रवृत्ति अनुत्तरदायी रही हे उन्होने बिहार व उत्तर प्रदेश के उदाहरणा से यह व्यक्त करने का प्रयास किया है कि हमारे यहाँ अधिक मजदूरियों और अधिक उत्पादन के बीच कोई तालमेल की सकल्पना उभर कर नहीं आयी हे। जबकि जापान मे कामगारो की प्रवृत्ति यह होती है कि वे अपने नियोक्ताओ के हितों मे योगदान करते हैं उनकी अपनी कम्पनी के प्रति वफादारी पूर्णतया पौराणिक है। अनुशासन और कार्य करने की इच्छा जापानियों के जन्मजात सस्कार हैं। अत हमे भी यदि उन्नति करनी है तो हम स्वेच्छिक अनुशासन एव आत्म नियमन को स्वीकार करना होगा। उनके अनुसार हमें यह स्वीकार करना होगा कि विभिन्न श्रम कानून मजदूरी बढाते हैं इसस हमारे श्रम प्रधान देश मे श्रम की तुलना मे मशीने सस्ती हो जाती हैं जिसस श्रम की आवश्यकता कम होती जाती है। सस्ता श्रम हमारी सबसे बडी परिसम्पति है और राष्ट्रीय हित में तथा श्रम के हित में इसे बर्बाद नही होने देना चाहिए। इसके उपयोग से रोजगार के अवसर बढेगे आर्थिक सवृद्धि मे वृद्धि होगी आय की असमानताएँ घटेगी और निर्यात को प्रोत्साहन मिलेगा।

उन्नत अथवा उपर्युक्त तकनीकें – चरणसिह के अनुसार हमारे यहा श्रम पर्याप्त है लेकिन पूँजी का अभाव है। हमारी समस्या यह है कि हम अपने ऐसे उत्पादन के तरीको या तकनीको को तैयार करे जा पूँजी की मितव्ययिता बढाये। हमारी परिस्थितियों मे यह सुविधाजनक होगा कि उपलब्ध पूँजी को कम श्रम में अधिक सघनता से न लगाकर अधिक श्रम मे लगाया जाय। इसलिए देश भर मे फैले हुए कुटीर एव श्रम प्रधान उद्यमो मे अभिनवीकरण अथवा प्राद्योगिकी को उन्नत करने के लिए विशेष ध्यान दिया जाना है ताकि प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ जाएँ–चाहे उपयोग मे आने वाली पूँजी अधिक न हो।

चरणसिह का मत है कि हमे ग्रामीण उद्यागो मे आधुनिक तकनीक का स्वागत कर इसे उनमें प्रयोग करे जैसे हाथकरघा उद्योग ने आधुनिक कारखानो मे तैयार सूती और सिन्थेटिक धागों का सफलता पूर्वक प्रयोग किया है। इसी प्रकार से गोबर गैस सयत्र ग्रामीण समुदायो को जैव उर्वरको को उपलब्ध करने मे भारी योगदान कर सकते हैं। नवीन अनुसधानों से नये कुटीर उद्योगो का विकास किया जा सकता है। उदाहरणार्थ वर्धा स्थित ग्रामीण उद्योगों के लिए केन्द्रीय शोध सस्थान ने कुम्हार के चाक को इस डिजाइन में बनाया है कि उसमे बाल–बियरिंग लगे हुए हैं इससे उत्पादन ही नहीं बढा है वरन् मानव श्रम की भी बचत हुई है। उनके अनुसार गाँधी जी ग्रामीण उद्योगो और हस्तशिल्प के अग्रदूत रहे वे मशीनो के विरोधी नहीं थे बल्कि उनका विचार था कि "मैं सबसे जटिल मशीनरी के उपयोग का समर्थन करता हूँ। यदि इसक द्वारा भारत की

बेकारी और उसके फलस्वरूप गरीबी को हटाया जा सके।"

परन्तु हम पश्चिमी डिजाइन पर आधारित ऐसी तकनीक को स्थान दे रहे हैं जो केवल श्रम लागतों को ही कम कर सकती है पूँजीगत लागतों को नहीं। हमे ऐसी तकनीक का प्रयोग करना चाहिए जिनसे निम्नलिखित लक्ष्यों की यथा सम्भव पूर्ति हो सके– (1) उत्पादन की प्रति इकाई के हिसाब से पूँजी उपयोग को कम करना, (2) निवेश की प्रति इकाई के हिसाब से अधिकतम रोजगार की खोज करना (3) हमारे देश, क्षेत्र या गॉव में स्थानीय प्रतिभाओ, कच्चे माल और उपलब्ध ससाधनो का नवीन रूपो मे अधिकतम उपयोग करना, (4) इसमें ऊर्जा उपभोग को न्यूनतम करना, तथा (5) पर्यावरण प्रदूषण को कम करना, जिसमें प्रकृति में जलवायु सबधी सतुलन बना रह सके।

चरणसिह की मान्यता है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी को छोटी मशीनो में भी प्रयोग किया जा सकता है, और ऐसी मशीनो के लिए अपेक्षाकृत कम पूँजी की आवश्यकता होती है और रोजगार भी अधिक उपलब्ध होगा तथा शोषण भी नहीं हो सकेगा और बेकारी भी नहीं बढेगी। हमे कम पूँजी प्रधान (कृषि और) दस्तकारियों तथा छोटे पैमाने के विकेन्द्रित उद्योगो पर जोर देना होगा।

III. एक नीति–विकल्प

चरणसिह की मान्यता थी कि यदि देश को बचाना है तो नेहरूवादी नीति के स्थान पर गाँधीवादी दृष्टिकोण अपनाना होगा । हमें आज की स्थिति से निकलने के लिए गाँधी जी के पास वापस जाना होगा। गॉधी जी के विचार न केवल 1977 के लिए सर्वाधिक उपर्युक्त है बल्कि हमारे लिए वे 2000 ई मे भी उपर्युक्त रहेगे। हमने 1947 में गॉधी का मार्ग छोडकर पश्चिमी नीति का अनुसरण करके एक गलत नीति का चुनाव किया है। गॉधीवादी नीति का उद्देश्य वृहत स्तर पर, विकेन्द्रीकरण के आधार पर अधिकतम उत्पादन व सगठन करना और उसके लिए स्थानीय साधनो व योग्यताओं का प्रयोग करना है। अत हमे मुख्यत इन दो बातो पर ध्यान देना है– (1) वित्तीय साधनो के बटवारे को कृषि के पक्ष मे बदलना और (2) जहाँ तक हो सके बडी मशीनों का प्रयोग छोड देना। इससे एक ओर तो ग्रामीण विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता मिलेगी और दूसरी ओर अपने उपलब्ध साधनों पर आधारित अर्थव्यवस्था का निर्माण होगा जिसमें विदेशी पूँजी एव विदेशी तकनीक को छोडकर आत्म निर्भरता प्राप्त होगी ।

चरणसिह का कथन है कि एक प्रकार से भारत के योजना बनाने वालों का " मूल अपराध" कृषि की उपेक्षा है। जिससे कृषि की स्थिति बिगडने से हमें खाद्य पदार्थों के आयात पर 6000 करोड रूपया अब तक व्यय करना पडा है। दूसरी गलती हमने यह की कि बहुत ऊँची उडान ली और राजनीतिक सत्ता पाते ही भारी उद्योगों के मोह में फस गये। गॉधी जी चाहते थे देश का निर्माण नीचे से शुरु हो और अपने ही ससाधनों से किया जाय। परन्तु हम यह भूल गये।

इसलिए हमे ससाधनो को उच्च मध्यवर्गीय क्रयशक्ति पर आधारित महानगरीय औद्योगीकृत पूँजी प्रधान व केन्द्रित उत्पादन से हटाकर ऐसे कृषि रोजगार–प्रधान व विकेन्द्रित उत्पादन मे लगाकर जो गॉधी के शब्दो मे न केवल सर्वसाधारण के लिए किया जाता है बल्कि उनके द्वारा किया जाता हो।

चरणसिह के अनुसार अधिकतर देशो म पहले कृषि एव श्रम–प्रधान उद्योगों का विकास हुआ जिसकी वकालत गॉधी जी करते थे। जापान इसका प्रमुख उदाहरण है चीन भी इसी रास्ते पर चल रहा है। यही एक मार्ग है जिससे हम बेकारी एव गरीबी की समस्या हल कर सकते है और साथ मे ऐसे भारी उद्योगो का निर्माण कर सकते है जो उनके यहॉ होने ही चाहिए। उनके अनुसार आर्थिक प्रगति का एक मात्र आधार कृषि ही है ओर अन्य क्षेत्र नहीं क्योकि बिना कृषि उत्पादन के न तो कोई व्यापार चल सकता है और न ही दस्तकारी । भारत की प्रगति का मापदण्ड यह नही हे कि हम कितना इस्पात या कितना टी वी सेट या कितनी मोटर गाडियॉ बना सकते हैं बल्कि यह है कि हम कितनी मात्रा मे व किस तरह जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ जैसे खाना कपडा आवास स्वास्थ्य शिक्षा आदि को उस आदमी तक पहुँचा सकते हो जिसे गॉधी जी **आखिरी आदमी** कहते थे। ऐसे बहुत से विकासशील देश है जिनको भारत से अधिक प्राकृतिक साधन उपलब्ध नही हे फिर भी वहा रोजगारो का बाहुल्य हे कम गरीब हैं कम बच्चे मरते हैं और साक्षरता भी ज्यादा है जैसे ताइवान मिश्र इजराइल आदि। जबकि हमारी नीतियॉ गलत होने से हम गरीबी एव दरिद्रता के गर्त मे पडे हैं।

चरणसिह ने बेराजगारी को देश का सबसे बडा शत्रु माना है उनके विचार से बेरोजगारी का हल गरीबी एव आय की व्यापक असमानताओ की समस्याओ के समाधान का कुजी है। उनके अनुसार यदि किसी सेना के मनोबल का मापदण्ड है कि वह अपने घायल सैनिकों की देखभाल कैसे करती है और उन्हें मैदान में पडा न छोडने के लिए कितने खतरे उठाती है उसी प्रकार किसी अर्थनीति या राजनीति की गुणवत्ता का मापदण्ड यह है कि वह अपने पीडित दुर्बल बेरोजगार मूक नागरिको का उद्धार कैसे करती है और कैसे राहत पहुँचाती है। **भारत में राजनीतिक नेतृत्व की परख अब उनके क्रातिकारी नारों से नहीं बल्कि लोगों को दिए गये काम से होगी।**

चरणसिह ने तीन ऐसे क्षेत्र बताए हें जिनमे बडे स्तर पर रोजगार के अवसर पैदा किए जा सकते हें–(1) कृषि जिसमे पशुपालन देशी खाद बनाना सफाई तथा गोबर गैस शामिल है। (2) गॉवो में निर्माण कार्य जैसे सिचाई परियोजनाएँ भूमि सरक्षण भूमि उद्धार जगल लगाना आदि और (3) ग्रामीण एव कुटीर उद्याग। उन्होंने यह चेतावनी दी है कि हमे यह अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि यदि हम रोजगार की समस्या का दिल से निदान करना चाहते हैं तो कम से कम उन क्षेत्रो मे जहॉ खेती हर मजदूरो की प्राथमिकता है वहॉ बडी मशीनो को प्रशासनिक या वित्तीय प्रोत्साहन देने से बचना होगा। श्रम प्रधान उद्योगों को स्वचालित उद्योगों के आक्रमण से बचाना हागा तथा उनका विकास

करना होगा। हमे बेरोजगारी के समाधान के लिए उत्पादकता एव रोजगार दोनों को एक साथ बढाना होगा न कि बिना रोजगार बढाये ही उत्पादकता बढाये, जैसाकि अब तक हमारे भाग्य विधाता करते आये हैं।

संदर्भ

1 चरणसिह–भारत की भयावह आर्थिक स्थिति पृष्ठ 59
2 चरणसिह–भारत की भयावह आर्थिक स्थिति पृष्ठ 112
3 चरणसिह –इडियन पावर्टी एण्ड इट्स सोल्यूसन 1964
4 चरणसिह–भारत की भयावह आर्थिक स्थिति पृष्ठ 140
5 चरणसिह– भारत की अर्थनीति– पृष्ठ 37
■ माइकेल लिपटन–द क्राइसिस ऑफ इडियन प्लैनिग आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1968 पृष्ठ 102
7 चरणसिह–भारत की भयावह आर्थिक स्थिति पृष्ठ 236
8 चरणसिह–भारत की भयावह आर्थिक स्थिति पृष्ठ 273–75

प्रश्न

1 'चरणसिह मूलत गॉधीवादी विचारक थे' स्पष्ट कीजिए।
2 चरणसिह के अनुसार देश की समृद्धि का मूल मत्र क्या है ?
3 चरणसिह के अनुसार स्वतत्र भारत को विरासत में कौनसी चार समस्याएँ मिली हैं ? नाम लिखिए।
4 चरणसिह द्वारा लिखित प्रमुख पुस्तको के नाम बताइये ?
5 चौ चरणसिह ने किन कारणो से बडे फार्मो के बजाय छोटे फार्मो को प्राथमिकता दी है ? बताइये।
6 "चौधरी चरणसिह नेहरू की आर्थिक नीतियों के कटु आलोचक थे" पुष्टि कीजिए।
7 चरणसिह ने चकबदी के कौन–कौन से लाभ बताये हैं ? लिखिए।
8 चौधरी चरणसिह के आर्थिक विचारो की सक्षेप मे विवेचना किजिए ?
9 चरणसिह के कृषि सम्बधी विचारो को लिखिए ?
10 चरणसिह के मत में भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व बताइये ?
11 कृषि, उद्योग, सहकारी खेती औद्योगीकरण के सम्बध मे नेहरू जी के विचारों की चरणसिह द्वारा किये गये आलोचनात्मक विचारो को स्पष्ट कीजिए ?
12 चरणसिह ने भारतीय अर्थव्यवस्था के ऐसे कौनसे क्षेत्र बताये है जहॉ रोजगार की समानताऍं हैं ?
13 चरणसिह के अनुसार भारत के लिए उपर्युक्त तकनीक कैसी होनी चाहिए ?



24

अमर्त्य सेन
(Amartya Sen)

प्रोफेसर अमर्त्य सेन को 14 अक्टूबर 1998 को स्वीडन की रायल–विज्ञान अकादमी ने विश्व के श्रेष्ठ सम्मान अर्थशास्त्र मे नोवेल पुरस्कार देने की घोषणा की। अर्थशास्त्र मे नोवेल पुरस्कार अर्थशास्त्र क क्षेत्र मे महत्वपूर्ण योगदान देने के लिए प्रदान किया जाता है। प्रो सेन को यह पुरस्कार उनके कल्याणकारी अर्थशास्त्र मे योगदान के लिए प्रदान किया गया है। इस पुरस्कार से न केवल प्रो अमर्त्य सेन का व्यक्तिगत सम्मान बढ़ा है अपितु भारत की विश्व मे अर्थशास्त्र के ज्ञान की दृष्टि से विश्वसनीयता भी बढी है। नोबेल पुरस्कार के अन्तर्गत प्रो सेन को एक स्वर्ण पदक प्रशसा पत्र तथा 10 लाख अमरीकी डालर की राशि प्रदान की गई है। प्रो सेन से पूर्व पॉच भारतीयों को यह पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। 1913 मे विश्व प्रसिद्ध कवि रविन्द्रनाथ टेगौर को साहित्य के क्षेत्र मे 1930 में प्रसिद्ध भौतिक वैज्ञानिक सी वी रमन को भौतिकी में रमन–प्रभाव के लिए 1968 मे हरगोविन्द खुराना को दवा के क्षेत्र मे 1979 मे मदर टरेसा गरीबो के लिए काम करने के लिए तथा 1983 मे सुब्रह्मण्यम चन्द्रशेखर को भौतिकी के क्षेत्र के लिए नोबेल पुरस्कार प्रदान किये गये हैं।

नोबेल पुरस्कारो की सूची मे अर्थशास्त्र को सर्वप्रथम 1969 मे शामिल किया गया। यह पुरस्कार प्रतिवर्ष अक्टूबर माह मे घोषित होता है तथा स्वीडन की राजधानी स्टाकहोम में दिसम्बर माह मे प्रदान किया जाता है। अर्थशास्त्र मे सर्वप्रथम नोबेल पुरस्कार 1969 में रैग्नर फ्रिश तथा जन टिम्बरगन को सयुक्त रूप से दिया गया। अर्थशास्त्र में कुछ प्रमुख नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले अर्थशास्त्रियो मे सेम्यूलसन (1970) साइमन कुजनेटस (1971) जॉन हिक्स एव कैनेथ ऐरो (1972) डब्ल्यू लियोन्टिफ (1973) गुर्नार मिर्डल तथा फैड्रिक हेयक (1974) मिल्टन फ्रीडमेन (1976) जेम्स टोबिन (1981) रॉबर्ट सोलो (1987) अमर्त्य सेन (1998) राबर्ट मुण्डेल (1999) जेम्स हेकमेन (2000) तथा जार्ज एकरलोफ माइकल स्पेन्स एव जोसेफ स्टिगलिज को सयुक्त रूप से 2001 में प्रदान किया गया।

अमर्त्य सेन ने अपनी आत्मकथा मे लिखा है कि वह विश्वविद्यालय परिसर मे ही जन्मे पूरे जीवन भर किसी न किसी विश्व विद्यालय परिसर मे ही रहे और सेन का जन्म 3 नवम्बर 1933 को रवीन्द्रनाथ टेगौर के विश्वभारती विश्वविद्यालय शाति निकेतन मे

हुआ। उनके पिता आशुतोष सेन ढाका विश्वविद्यालय में रसायन शास्त्र के प्रोफेसर थे। प्रो सेन का अध्ययन कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज तथा केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कालेज मे हुआ। इन्होने अपना शोधकार्य प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्रीमती जोन रॉबिन्सन के निर्देशन मे पूर्ण किया। प्रो सेन ने कलकत्ता, केम्ब्रिज, देहली विश्वविद्यालय, हावर्ड विश्वविद्यालय मे अध्यापन कार्य किया तथा एम आई टी, स्टेन फोर्ड, बर्कले तथा कॉरनेल विश्वविद्यालयो मे अतिथि शिक्षक के रूप मे अध्यापन कार्य किया। प्रो सेन का अर्थशास्त्र विषय के साथ प्रारम्भ से ही लगाव था। वे हमेशा शिक्षक बनना ही पसद करते रहे और शैक्षणिक जीवन से जुड़ाव ही उनका लक्ष्य रहा है। वर्तमान मे सेन केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के मास्टर ऑफ ट्रिनिटी कालेज के पद पर कार्यरत है।

प्रो सेन रवीन्द्रनाथ टेगौर के दर्शन से बहुत अधिक प्रभावित रहे है। उनके अर्थशास्त्र के लेखन पर 1943 के बगाल अकाल का गहरा प्रभाव रहा जिसमें लगभग 30 लाख लोग मौत के शिकार हुए।

अमर्त्य सेन कई शैक्षणिक सस्थाओ के अध्यक्ष रहे है। प्रमुख रूप से 1984 मे इकॉनामैट्रिक्स सोसायटी 1986 से 1989 तक अर्न्तराष्ट्रीय आर्थिक परिषद, 1989 मे भारतीय आर्थिक परिषद तथा 1994 मे अमेरिकी आर्थिक परिषद के अध्यक्ष रहे।

प्रो. सेन की 20 पुस्तके तथा 225 से अधिक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। आर्थिक क्षेत्र मे उन्होने अकाल एव गरीबी पर प्रमुख रूप से कार्य किया है। इन्होने अपना प्रथम शोधकार्य 'तकनीको के चुनाव' पर किया जिसमे श्रमिको के वर्तमान एव भावी रोजगार का तुलनात्मक अध्ययन किया है। इस अध्ययन मे श्रमिको के कल्याण पक्ष को भी शामिल किया गया है।

प्रो सेन द्वारा लिखित प्रमुख रचनाएँ निम्नाकित है –

1. Collective Choice and Social walfare (1970)
2. On Economic Inequality (1973)
3. Poverty and Famines : An Essay on Entitlement and Deprivation (1981)
4. Choice, Walfare and Measurement (1982)
5. Resources, Values and Development (1984)
6. Commodities and capabilities (1985)
7. On Ethics and Economics (1987)
8. The Standard of Living (1987)
9. Inequality Re-examined (1995)

प्रो. सेन के प्रमुख आर्थिक विचार

अमर्त्य सेन ने आर्थिक क्षेत्र मे विविध पक्षो पर अपनी पुस्तको एव लेखों में विचार

निर्णय की स्थिति में पहुँचा जा सकता है। यद्यपि इससे सामान्यतया के गुण मे कमी आती है। सेन का विचार है कि व्यवहार मे ऐरो के असभव प्रमेय की आवश्यकता नही होती है। सेन के अनुसार सामाजिक चुनाव मे मुख्य मुद्दा यह है कि हम किस प्रकार व्यापक सहमत निर्णयो के आधार पर किसी नीति निर्देश तक पहुँचते है और हमारे चिता का कारण भी यही व्यावहारिक कारण होना चाहिए। उनका मत था कि बहुमत के नियम मे कई तरह की कमियां है, विशेषरूप से जब बहुमत कोई निर्णय कर लेता है तो अल्प मत की स्वतत्रता एव अधिकारो का हनन होता है। उदाहरण के लिए, यदि इक्यावन प्रतिशत लोगों ने किसी नीति के पक्ष मे मत प्रकट किया है और उनचास प्रतिशत लोगों ने उस नीति के विरोध मे मत व्यक्त किया है तो बहुमत के सिद्धात के अनुसार उनचास प्रतिशत लोगों की कोई बात नही सुनी जाएगी। कल्याणकारी अर्थशास्त्र पर बहुत समय तक उपयोगितावादी दृष्टिकोण हावी रहा। जिसकी बेन्थम, जे एस मिल, एजवर्थ, मार्शल, पीगू आदि ने मुख्य रूप से पेरवी की। उपयोगितावाद के अन्तर्गत सामाजिक स्थिति के विश्लेषण के लिए उपयोगिता फलन का उपयोग किया जाता है। इससे लोगो के अधिकार एव स्वतन्त्रता की उपेक्षा होती है जो कि सेन के अनुसार किसी भी अर्थव्यवस्था मे सामाजिक चुनाव एव कल्याण के लिए मूलभूत आवश्यकता है। सेन ने अपने प्रकाशन "Collective choice and social walfare" मे वैयक्तिक स्वतत्रता एव अधिकारों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। उपयोगितावाद के वैयक्तिक उपयोगिता के जोड के आधार पर निर्णय लेने से सूधनात्मक कमी से कल्याणकारी अर्थशास्त्र के विकास में बाधा पहुँचती है। सेन ने अपनी उपरोक्त पुस्तक मे सामाजिक चुनाव के क्षेत्र मे वैयक्तिक अधिकार, स्वतत्रता का खुलकर प्रयोग किया है। इस प्रकार ऐरो के असभव प्रमेय से जो निराशावाद अत्पन्न हो गया था उसे अमर्त्य सेन के योगदान से दूर करने मे मदद मिली है। उन्होने सामाजिक चुनाव के सिद्धात मे एक नये क्षेत्र की शुरूआत की और यह मत व्यक्त किया कि अर्न्तवैक्तिक तुलना के सम्बन्ध में विभिन्न समस्याओं के सामूहिक निर्णयों के सम्बन्ध मे एक सगत तथा गैर–अधिनायकवादी नियम को प्राप्त करने की सभावना किस प्रकार प्रभावित होती है तथा वैयक्तिक उपयोगिता मे अर्न्तवैयक्तिक तुलना की स्थिति को स्वीकार किया है।

2 असमानता का अर्थशास्त्र

प्रो सेन के आर्थिक असमानताओ के विश्लेषण से आर्थिक असमानता की अवधारणा को समझने में बहुत सहायता मिली हैं। सेन ने अपनी पुस्तक "On Ecoomic Inequlity" मे पूर्व के सभी सिद्धातो की कमियो का उल्लेख किया है। सेन ने यह पाया कि यद्यपि समानता के इच्छित उद्देश्य मानने पर सभी अर्थशास्त्री सहमत है फिर भी उन्होने आर्थिक समानता मापने के अलग–अलग सन्दर्भ परिभाषित किये है। उदाहरण के लिए जॉन रॉल ने प्राथमिक या आवश्यक वस्तुओ के वितरण मे समानता की

आवश्यक्ता प्रदर्शित की है रोनाल्ड डॉर्किन ने साधनो की समानता की बात की है हर्षयानी तथा हेयक ने सभी पक्षो के लिए समान हितो के लिए समान भार की चर्चा की है तथा हेटकिन्सन ने अर्थव्यवस्था को उस स्थिति मे पहुँचाने की बात की है जहाँ सामाजिक कल्याण अधिकतम होता हो।

आजकल सामाजिक कल्याण के क्षेत्र मे विभिन्न देशो की तुलनात्मक प्रगति जानने के लिए मानव विकास सूचकाक को विकसित किये जाने के प्रयास किये जाने लगे है। 1991 से चार्ल्स हुमों ने मानव स्वतत्रता सूचकाक (Human freedam index) बनाने के प्रयास किये है।

प्रो सेन ने अपनी पुस्तक 'Inequity Reexamined (1992) मे बताया है कि असमानता किसी प्रमुख चर से प्रभावित होती है। असमानता को मापने के लिए मानव सुचकाक की भाति जीवन की गुणवत्ता सम्बन्धी कोई माप होना चाहिए। जीवन की गुणवत्ता सम्बन्धी सूचकाक की चर्चा करने के बाद असमानता को मापने तथा विकास सम्बन्धी व्यूहरचना का क्षेत्र बढ गया है। प्रो सेन ने असमानता व अन्याय के क्षेत्र मे परिवार व समाज के स्तर पर लिगभेद सम्बन्धी अवधारणा का भी जिक्र किया है। इस सम्बन्ध मे सेन ने भातीय समाज मे व्याप्त उच्चस्तरीय लिग असमानता तथा महिला उपेक्षा का वर्णन किया है। प्रो सेन ने विकासशील देशो मे विपरीत तरीके से बढ रहे स्त्री–पुरूष अनुपात की भी चर्चा की है। उन्होने अपने लेखो मे स्त्रियो के स्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से महिलाओ की उपेक्षा की तरफ भी न केन्द्रित किया है। सेन ने अपने लेख मे खोई स्त्री (Missing women) का एक मोटा अनुमान तीन करोड सत्तर लाख के लगभग लगाया है जो अधिक जीवित रहती बशर्ते उनके सम्बन्ध मे स्वास्थ्य सम्बन्धी अलाभकारी तत्वो को हटा दिया जाता। सेन तथा सेन गुप्ता ने अपने लेखो मे उत्तरी भारतीय क्षेत्र मे लडकियो के स्वास्थ्य सुरक्षा पोषण तथ अन्य आवश्यक्ताआ की उपेक्षाओ की ओर ध्यान खीचा है। सेन ने इस बात पर अफसोस जाहिर किया है कि प्रचार माध्यम महिला अत्याचारो को मोटी सुर्खियो मे छापते है परन्तु समाज व परिवारो के द्वारा महिलाओ की उपेक्षाओ के सम्बन्ध मे किसी प्रकार की चर्चा नही की जाती। इसलिए आर्थिक विकास के लाभ पुरुष और महिलाओ के बीच ठीक अनुपात मे उपलब्ध नही होते है। महिलाओ का पिछडापन तथा उनकी उपेक्षा कई सामाजिक कारको द्वारा प्रभावित होती है। उन्होने अपने लेखो मे इस सम्बन्ध मे जातिव्यवस्था बालविवाह दहेजप्रथा सतीप्रथा आदि का वर्णन किया है। उनका यह मानना है कि महिलाओ को अधिक शक्तिशाली बनाने की दृष्टि से उपर्युक्त तत्वो मे कमी के साथ सत्री शिक्षा तथा महिला आय सवर्द्धन के उपाय किये जाने आवश्यक है। उनकी यह निश्चित मान्यता है कि यदि महिलाओ को लाभ पूर्ण रोजगार उपलब्ध करा दिया जाए तो महिलाओ के स्तर मे सुधार होगा तथा उनके जीवन की गुणवत्ता बढ़ेगी जिसका आगे की स्त्रियो अच्छा प्रभाव पडेगा।

प्रो सेन के उपर्युक्त शोध के बाद महिला क्षेत्र मे शोध बढा है तथा बहुत महत्वपूर्ण तथ्य सामने आये है। सेन के अनुसार जनसख्या नीति एव महिलाओ की समृद्धि मे सीधा सम्बन्ध है जिसके कारण प्रजनन प्रारूप मे बदलाव आ सकता है, यद्यपि आज जन्म दर मे कमी लाने की महत्वपूर्ण आवश्यकता है परन्तु सेन बलपूर्वक जन्मदर नियत्रण के विरुद्ध रहे है। जैसा कि चीन मे तथा भारत मे आपत्तिकाल के समय हुआ। सेन का विश्वास है कि प्रजातत्र मे बलपूर्वक तरीको की राजनीतिक लागत काफी ऊँची होती है। बलपूर्वक जनसख्या नियंत्रण के तरीको के कारण स्वैच्छिक जन्म दर नियन्त्रण कार्यक्रम भी असफल हो जाते हैं। सेन ने केरल व तमिलनाडू का उदाहरण देते हुए बताया कि इन राज्यो मे महिला शिक्षा दर ऊँची होने के कारण ही यहाँ जन्म दर चीन की जन्मदर से भी कम रही है।

सेन ने अपने लेखो मे इस बात को सिद्ध किया है कि जिन राज्यो मे महिलाओ के स्वास्थ्य सूचक प्रगति पर है वहाँ महिलाओ ने आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रो मे महत्वपूर्ण योगदान किया है। इसके विपरीत जिन राज्यो मे लिग असमानता तथा महिलाओ की उपेक्षा की गयी है वे आर्थिक रूप से काफी पिछडे हुए है। लिग असमानता तथा उपेक्षा सेन के अनुसार बडी सामाजिक असफलता है जिसके कारण अन्य आर्थिक एव सामाजिक बुराईयो का उदय होता है।

3 गरीबी और अकाल

गरीबी एव अकाल पर सेन का योगदान वास्तव में समाज के गरीब वर्गो से उनके लगाव का परिचायक है। रेन (Rein) के अनुसार लोगों को इतना गरीब नहीं बनने दिया जाना चाहिए कि वे उत्तेजित हो जाए या समाज के लिए कष्टदायक बन जाए। यह स्थिति गरीब के लिए उतनी दु:खद भी नही होती जितनी कि पूरे समुदाय के लिए गरीबी कष्टप्रद होती है। सेन गरीबी के सम्बन्ध मे इस तरह के विचारो के विरोधी है। सेन ने यह प्रश्न किया कि हमारी चिता का केन्द्र बिन्दु गरीब होना चाहिए या अन्य पूरा समाज? सेन के अनुसार निर्धनता एक नैतिक मुद्दा है तथा गरीब की क्षमताएँ तथा कार्यप्रणाली हमारे चिता के मुख्य बिंदु है। उन्होने निर्धनता के माप के लिए उचित सूत्र विकसित करने पर जोर दिया है। उन्होने बताया कि निर्धनता मापने के हैड काउट अनुपात (Head Conut ratio) तथा आय अतराल माप में कुछ सीमाएं है। यह अनुपात निर्धनता के बारे मे उस स्थिति मे भी गलत सूचना प्रदान करता है जबकि सरकार के द्वारा गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे विभिन्न आय वर्गो के लोगो की आमदनी बढाकर गरीबी रेखा से नीचे के सबसे अधिक आय वर्ग के समीप भी ले आया जाता है। उदाहरण के लिए यदि निर्धनता रेखा के लिए 250 रू प्रतिमाह न्यूनतम आय मान ली जाए तो 200 रू 150 रु. 75 रु प्रतिमाह पाने वाला व्यक्ति भी निर्धन माना जायेगा। यदि सरकार निर्धनता दूर करने के उपायो से 75 रु मासिक प्राप्त करने वाले तथा 150 रु. मासिक

आय प्राप्त करने वाले व्यक्ति की आमदनी बढाकर 240 रू भी कर दे तो भी Head count ratio के अनुसार गरीबी रेखा से नीचे ही माने जायेगे क्योकि इससे निर्धनता के अनुपात में किसी भी प्रकार से कोई परिवर्तन नही होगा। उसी तरह आय अतराल विधि भी *निर्धन लोगो की सख्या के बारे मे कोई सूचना नहीं देती है।* इसलिए एक ऐसे माप की आवश्यकता है जो निर्धनो मे निर्धनता की मात्रा का पता लगा सके। इसके लिए सेन ने निर्धनता का एक ऐसा माप सुझाया है जो गरीबी की रेखा से नीचे के लोगो मे व्याप्त आय की असमानता पर आधारित है। इन कमियो को दूर करने के लिए सेन ने निर्धनता मापने के लिए निम्न सूत्र को विकसित किया –

$$P = H[I + (I - I)G]$$

जहाँ

P = सेन निर्धनता सूचकाक

H = निर्धनता की रेखा से नीचे जनसख्या का अनुपात (Head Count Ratio)

I = आय के वितरण का माप

G = गरीबो मे आय वितरण का गिन्नी गुणाक

(i) सेन के अनुसार P का मूल्य सभी इच्छित शर्ते पूरी करता है जैसे यह गरीब व्यक्ति की आमदनी मे कमी होने पर सवेदनशील है जबकि गैर–गरीब की आमदनी बढने पर असवेदनशील है।

(ii) यदि गरीब से गैर –गरीब का आय को आय का हस्तातरण होता है तो P का मूल्य बढता है।

सेन के इस सूचकाक के विकसित होने के बाद इस क्षेत्र मे भी शोध बढा है। प्रो सेन के इस निर्धनता सूचकाक का प्रतिवर्ष UNDP द्वारा मानवीय विकास सूचकाक बनाने मे प्रयोग किया जाता है। निर्धनता एव वितरण का विश्लेषण करते समय सेन ने अपना ध्यान भूख पर केन्द्रित किया है। इससे विकासशील देशो मे अकालों की स्थिति पर शोध बढने लगा है।

परम्परागत दृष्टिकोण के अनुसार यदि खाद्यान्न आपूर्ति मे किसी क्षेत्र मे कमी आती है तो उसका परिणाम भूख एव मृत्यु के रूप मे होता है। सेन ने इस परम्परागत तर्क की आलोचना करते हुए लिखा कि भूख वह स्थिति हे जिसमे किसी व्यक्ति को पर्याप्त भोजन खाने को नही मिलता। परन्तु इसका तात्पर्य यह नही है कि खाद्यान्नो की कमी है। उन्होंने 1943 के बगाल के अकाल की चर्चा करते हुए बताया कि अकाल जॉच आयोग का यह कथन बिल्कुल गलत है कि अकाल का कारण खाद्यानो की आपूर्ति मे महत्वपर्ण कमी होना है। उन्होने कहा कि 1943 का प्रतिव्यक्ति उत्पादन 1941 के प्रतिव्यक्ति उत्पादन से अधिक था। सेन ने 1973 के इथोपिया तथा बगलादेश के अकाल का वर्णन करते हुए लिखा कि अकाल बिना खाद्यानो की आपूर्ति मे कमी के कारण भी उत्पन्न हो

सकते है। उनका यह मानना है कि अकाल बाजार की असफलता के कारण या लोगो की क्रय शक्ति मे कमी के कारण होता है। प्रो सेन का यह कहना भी सही है क्योकि यह सभव है कि किसी वर्ष विशेष मे पर्याप्त मात्रा में उत्पादन हो जाए परन्तु बाजार की असफलता के कारण खद्यान्न लोगो तक नही पहुच पाते या खाद्यान्न लोगो तक पहुच भी जाए पर लोग पर्याप्त क्रय शक्ति के अभाव मे उसे खरीद नहीं सके। अत उन्होने सरकारी हस्तक्षेप के द्वारा बाजार सयंत्र की अकुशलता को सुधारने तथा ऐसे समय लोगों की क्रय शक्ति बढाने के उपाय किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया।

4 विकास की सार्थक व्यूह रचना

वर्षो से विकास अर्थशास्त्र के अनतर्गत प्रतिव्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पत्ति मे वृद्धि का विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है, जिसमे यह मान कर चला जाता है कि प्रतिव्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पत्ति मे वृद्धि के साथ विकास के अन्य घटक जैसे स्वास्थ्य शिक्षा, जीवन की प्रत्याशा आदि भी साथ–साथ बढते रहेंगे। इस प्रकार आय का स्तर एव आय का वितरण बहुत लम्बे समय से विकास अर्थशास्त्र के आधार स्तम रहे ।

प्रो सेन ने अपने लेखो में यह बताया कि विकास की वर्तमान परिभाषा सही मायने मे विकास की वर्तमान चुनौतियो का सामना करने के लिए अपर्याप्त है। 1980 से पूर्व सेन की विकास की अवधारणा भी मोटे रूप से इसी परम्परागत विकास की अवधारणा के आसपास रही परन्तु उन्होंने विकासशील अर्थव्यवस्थाओ की सस्थापत जटिलताओं पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। 1980 के बाद सेन की विकास की अवधारणा बिल्कुल बदल गई। 80 के दशक के प्रारभ में उनके लेख 'तकनीक का चुनाव' (Choice of technique 1960) में यह बताया कि विकासशील देश किस प्रकार से अपने विकास की सम्भावनाओ को अधिकतम कर सकते है। उनका अधिकाश ध्यान सस्थागत जटिलताओं तथा अर्थव्यवस्थाओ की अपूर्णताओ की तरफ रहा।

विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के सदर्भ में विवेकशील चुनाव सेन के कृषि अर्थशास्त्र के शोध मे परिलक्षित होता है। 60 के दशक के प्रारभ मे भारत के कृषि अर्थव्यवस्था के विकास पर बडी लम्बी बहस चली थी। उस समय अर्थशास्त्री कृषि फार्म के आकार तथा उत्पादकता मे व्याप्त विपरीत सम्बन्धों के शोध में व्यस्त थे। यह बहस भारतीय नीति–निर्माताओ के लिए महत्वपूर्ण थी क्योकि उनके दिमाग में दो बाते घर कर गयी थी –क्या सामूहिक कृषि को अपनाया जाय या कृषि को बाजार की शक्तियो के भरोसे छोड दिया जाए। फार्म के आकार एव उत्पादकता के विपरीत सम्बन्धों ने कृषि को बाजार की शक्तियो के हवाले छोड देने का सुझाव दिया परिणामस्वरूप नई कृषि नीति विकसित होने लगी।

सेन ने उपर्युक्त कृषि नीति को चुनौती दी। उन्होने अपने शोध के आधार पर यह बताया कि भारतीय किसानों का एक बहुत बडा भाग एक अलग मानसिकता से काम

करता है जिसे अस्तित्व की विवेकशीलता कह सकते है जो किसान के अनुकूलतम स्तर से अधिक अनाज उत्पन्न करने के लिए बाध्य करती है। अस्तित्व की यह विवेकशीलता सेन ने छोटे फार्म एव अधिक उत्पादकता के रूप मे जानी। विकासशील देशो मे कृषि की विवेकशीलता के अन्तर्गत सेन ने यह पाया कि यदि कृषि मे परिवार द्वारा लगाये गये कृषिगत ससाधन (Inputs) को बाजार कीमत पर आका जाए तो भारतीय किसानो के बहुत बडे भूभाग के कृषि फार्म घाटे मे चलते है। सेन के इस महत्वपूर्ण योगदान के बाद विकासशील देशो मे कृषको के व्यवहार से सम्बन्धित कई घटको कृषि तकनीक की कुशलता राज्य का योगदान तथा बाजार का योगदान आदि पर खुली बहस होने लगी। सेन ने यह पाया कि विकासशील देशो मे कृषि के मामले मे राज्य एव बाजार का योगदान अन्य घटको की तुलना मे ज्यादा होता है। सेन ने विकास के अर्थशास्त्र मे मूलभूत आवश्यक्ता दृष्टिकोण को विकसित कर एक नयी बहस प्रारम्भ की। उन्होने अपनी पुस्तक निर्धनता एव अकाल मे यह बताया कि राज्य को विकासशील देशो मे सामाजिक सुरक्षा के उपाय लागू करने चाहिए जिनमे अनुदानित खाद्यान्न वितरण योजना स्वास्थ्य रक्षा जाल तथा लोगो की क्रय शक्ति को कम करने वाले घटको पर रोक आदि शामिल है सेन ने विकासशील राष्ट्रो के समक्ष दो वैकल्पिक व्यूह रचनाएँ प्रस्तुत की । प्रथम विकास प्रेरित सुरक्षा व्यूहरचना तथा द्वितीय समर्थन प्रेरित सुरक्षा व्यूहरचना। प्रथम दृष्टिकोण (Trickle down effect) पर आधारित है तथा द्वितीय किसी अर्थव्यवस्था मे राज्य द्वारा मूलभूत आवश्ययकताओ के लिए सार्वजनिक प्रावधान करने पर बल देती है। सेन के विकास सम्बन्धी विचारो से महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह निकलता है कि सभी लोगो को शिक्षित करने की बहुत बडी आवश्यकता है। उनके अनुसार आधारभूत शिक्षा के फैलाव से आर्थिक समानता मे वृद्धि होती है। सेन का शिक्षा पर दबाव स्व–सुरक्षा के उपकरण के रूप मे है। उन्होने अपने शोध मे यह पाया कि निम्न औसत शिक्षा की दर निम्न महिला शिक्षा की दर राज्यो मे शैक्षिक स्तरो मे असमानता अल्प आयु समूह मे व्याप्त अशिक्षा की व्यापकता स्कूलो मे बीच मे पढाई छोडने की उच्च दर आदि भारत मे कृषि नीति की कमियो बाल श्रम के अधिक फैलाव तथा उच्चशिक्षा पर अधिक जोर आदि को प्रकट करती है। वह यह तर्क देते है। कि भारत मे आर्थिक सुधारो के सदर्भ मे शैक्षणिक प्राप्तियो को जनता की सुधार कार्यक्रमो के रूप मे अधिक देखा जाना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि सेन ने अर्थशास्त्र के विभिन्न क्षेत्रो को छूकर गहन अध्ययन किया है। उन्होने कल्याणकारी अर्थशास्त्र में कल्याण सूचकाको निर्धनता सूचकाको सामाजिक अधिकारो व सामाजिक अवसरो अकाल के वास्तविक कारणो तथा विकास अर्थशास्त्र मे सामाजिक तथ्यो की प्रबल भूमिका को उजागर करके आर्थिक विश्लेषण को एक सार्थक स्तर तक पहुँचाने का प्रयास किया है उनके अध्ययन मे ार्थशास्त्र धर्मशास्त्र नीतिशास्त्र दर्शनशास्त्र व गणित का एक सम्पूर्ण सम्बन्ध देखने को ालता है।

संदर्भ

1 Roy sunondo,' The Economics of Amortya sen-A Review' of Occasional papers, Reserve Bank of India, val 19, No , Dec.1998, P. 396

2 पूर्वोक्त पृ 399–401

3 पूर्ववत, पृ 402

प्रश्न

1 अमर्त्य सेन की प्रमुख पुस्तकों के नाम बताइये।

2 अमर्त्य सेन के कल्याण सम्बन्धी विचारों को समझाइये।

3 असम्भव प्रमेय क्या है ?

4 प्रो सेन के सामाजिक चुनाव के सिद्धान्त को समझाइये।

5 गरीबी एव अकाल पर प्रो सेन के दृष्टिकोण को समझइये।

6 प्रो सेन द्वारा विकसित निर्धनता को मापने का सूत्र बताइये।

7 प्रो सेन के विकास सम्बन्धी व्यूहरचना को स्पष्ट कीजीए।

8 प्रो अमर्त्य सेन के प्रमुख आर्थिक विचारों को समझाइये।